इकाई 1 भारत: प्राकृतिक विशेषताएं

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 प्राकृतिक भूगोल और इतिहास
1.2.1 पर्यावरण और मानव बस्तियाँ
1.2.2 भौगोलिक नियतत्ववाद के विरुद्ध तर्क
1.3 आधारभूत भू-आकृतिक विभाजन
1.4 क्षेत्रीय प्राकृतिक विशेषताएं
1.4.1 हिमालय और पश्चिमी सीमा प्रदेश
1.4.2 सिन्धु का मैदान
1.4.3 गांगेय उत्तरी भारत
1.4.4 पूर्वी, पश्चिमी और मध्य भारत
1.4.5 प्रायद्वीपीय भारत
1.4.6 सुदूर दक्षिण
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे कि:

- किसी देश के इतिहास के अध्ययन के लिए इसके भौगोलिक लक्षणों और विशेषताओं की जानकारी आवश्यक क्यों है ?
- इतिहास के एक विद्यार्थी के रूप में प्राकृतिक विशेषताओं को हम किस तरह देखते हैं,
- पर्यावरण, भूगोल और इतिहास के बीच क्या सम्बन्ध है,
- भारतीय उपमहाद्वीप में ऐतिहासिक विकास का स्वरूप असमान क्यों है।

1.1 प्रस्तावना

बिना भूगोल के इतिहास प्राय: अधूरा रहता है और अपने एक प्रमुख तत्व से वंचित हो जाता है। यानी स्थान की अवधारणा के अभाव में इतिहास अपने लक्ष्य से भटक सकता है। यही कारण है कि इतिहास को मानव जाति के इतिहास और पर्यावरण के इतिहास, दोनों ही रूपों में देखा जाता है। इन दोनों को अलग करना कठिन है। मानव इतिहास और पर्यावरण का इतिहास दोनों ही परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। मिट्टी, वर्षा, वनस्पति, जल-वायु और पर्यावरण मानव संस्कृतियों के उद् विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वस्तुत: मानव प्रगति का सार प्रकृति को नियन्त्रित करके मानव जीवन को बेहतर बनाने में है। इस सम्बन्ध में तकनीकी प्रगति पर्यावरण को अपने नियंत्रण में लाने में मनुष्य की मदद करती है। मनुष्य प्रभावशाली ढंग से अपने पर्यावरण पर नियंत्रण स्थापित करने में इतिहास के बहुत आगे के चरण में ही सफल हो पाया। अत: जब हम अपने अतीत को समझने का प्रयास करते हैं तो यह आवश्यक हो जाता है कि हम उस भूगोल, पर्यावरण और उन प्राकृतिक क्षेत्रों को समझने और जानने का प्रयास करें जिन्होंने भारतीय इतिहास को प्रभावित किया। इस इकाई में हम आपको भारतीय उपमहाद्वीप की उन प्राकृतिक विशेषताओं से अवगत कराने का प्रयास करेंगे जिनका कि भारत के ऐतिहासिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

1.2 प्राकृतिक भूगोल और इतिहास

मिट्टी, स्थलाकृति, वर्षा और जलवायु की विविधता ने अलग-अलग प्रकार के अनेक ऐसे क्षेत्र बनाए हैं जिनके प्राकृतिक लक्षण और पहचानें भी अलग-अलग हैं। प्राकृतिक क्षेत्र सांस्कृतिक क्षेत्रों के अनुरूप होते हैं। इन भिन्न प्राकृतिक क्षेत्रों में सांस्कृतिक विकास ही भिन्न प्रकार का रहा है। तात्पर्य यह है कि ये क्षेत्र भाषा बोली पोशाक, फसल, जनसंख्या घनत्व, जाति, संरचना आदि की दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न हैं। उदाहरण के लिए, उत्तर प्रदेश और उत्तरी बिहार जैसे कुछ क्षेत्रों में, यानी गंगा घाटी के उपजाऊ मैदानों में जनसंख्या घनत्व बहुत अधिक है। जबकि पठारी मध्य भारत की बसावट काफी छितरी हुई है। इसी प्रकार मगध, कौशल, अवन्ति, महाराष्ट्र, आन्ध्र कलिंग और चोल देश जैसे कुछ क्षेत्र प्रारंभ में विकसित क्षेत्रों के रूप में उभरे, जबकि अन्य क्षेत्र विकास की दृष्टि से पिछड़े रहे। ऐतिहासिक रूप से विभिन्न प्रदेशों के उद्भव की प्रक्रिया असमान रही और विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों का विकास हुआ जो मुख्य रूप से भूगोल और पर्यावरण से संबंधित थीं और उनसे प्रभावित थीं। एक अन्य उदाहरण में हम देखते हैं कि गेहूं पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के लोगों का मुख्य भोजन है जबकि बंगाल, बिहार और उड़ीसा जैसे पूर्वी भारत के प्रदेशों के लोगों का मुख्य भोजन और वहां की मुख्य फसल चावल है। ऐसा क्यों है ? ऐसा इसलिए है कि:

- विभिन्न फसलों के प्राकृतिक वास क्षेत्र भिन्न होते हैं।
- ये फसलें विशेष प्राकृतिक परिस्थितियों में उगती हैं और समय के साथ बाद में ये फसलें उस स्थान विशेष के लोगों की भोजन सम्बन्धी आदतों को प्रभावित करती हैं।

इसी प्रकार सिंचाई के साधन भी अलग-अलग प्रदेशों में अलग-अलग हैं।

- नदियां और नहरें उत्तर भारत में सिंचाई का सर्वाधिक प्रमुख साधन रहे हैं।
- प्राकृतिक तालाब पूर्वी भारत में बहुत उपयोगी रहे हैं।
- जलाशयों द्वारा सिंचाई ने दक्षिण भारत की कृषि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

इन भिन्नताओं का अर्थ यह नहीं है कि पूर्वी या दक्षिण प्रदेशों में नदियों का महत्व नहीं रहा है। बल्कि इनसे जो बात सामने आती है वह यह है कि विभिन्न प्रदेशों में जल संसाधनों में वृद्धि के लिए लोग विभिन्न तरीके अपनाते हैं। एक क्षेत्र विशेष में अपनाया गया तरीका इस बात पर निर्भर करता है कि वह उस क्षेत्र के लिए कितना उपयोगी है।

भूगोल और पर्यावरण, वस्त्र शैलियों के सम्बन्ध में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उदाहरण के लिए, हम कश्मीरी, राजस्थानी तथा तटवर्ती क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के वस्त्र और उनके पहनने ओढ़ने के तरीकों की तुलना कर सकते हैं। विभिन्न प्रदेशों की वस्त्र शैलियों पर उन प्रदेश की जलवायु और पर्यावरण का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

गंगा के मैदान और डेल्टा उन्नत संस्कृतियों के जन्म स्थान रहे हैं, और यहां उनका युगों तक पोषण भी हुआ जबकि मध्य भारत के पर्वतीय इलाकों में अलग-अलग क्षेत्रों के आदिवासी लोगों की अच्छी बसावट रही है। इस तरह जब नदियों के मैदानों में भरपूर प्राकृतिक सम्पदा रही है और मैदानी लोगों का अपना एक विशिष्ट जीवन रहा है, वहां अलग-अलग क्षेत्रों में बसे लोगों का जीवन अन्य भू-क्षेत्रों में हुई प्रगति से अप्रभावित रहा। इसलिए भारतीय उपमहाद्वीप की वस्त्र शैली से संबंधित या भोजन सम्बन्धी आदतों या संस्कृतियों से सम्बद्ध विविधताओं के सहअस्तित्व को यहां के प्राकृतिक भूगोल के संदर्भ में ही ठीक से समझा जा सकता है।

प्राकृतिक भौगोलिक परिस्थितियों द्वारा पोषित क्षेत्रीय भिन्नताएं और उनसे संबंधित भिन्न क्षेत्रीय पहचानें भारतीय इतिहास में स्थायी अखिल भारतीय राज्यों के उदय के मार्ग में बाधा बनी रही हैं। समूचा भारतीय उपमहाद्वीप कभी भी एक राजनीतिक इकाई नहीं रहा। यह बात मौर्य साम्राज्य दिल्ली सल्तनत, मुगल साम्राज्य और साथ ही ब्रिटिश भारत पर समान रूप से लागू होती है। साथ ही यहां यह बताना भी आवश्यक है कि हालांकि भौगोलिक संरचनागत क्षेत्रीय विविधताओं ने हमारे इतिहास में अखिल भारतीय राज्यों के विकास में बाधा पैदा की फिर भी इन विविधताओं ने किसी भी काल में विभिन्न राष्ट्रीयताओं को जन्म नहीं दिया।

भारत के प्राकृतिक क्षेत्र

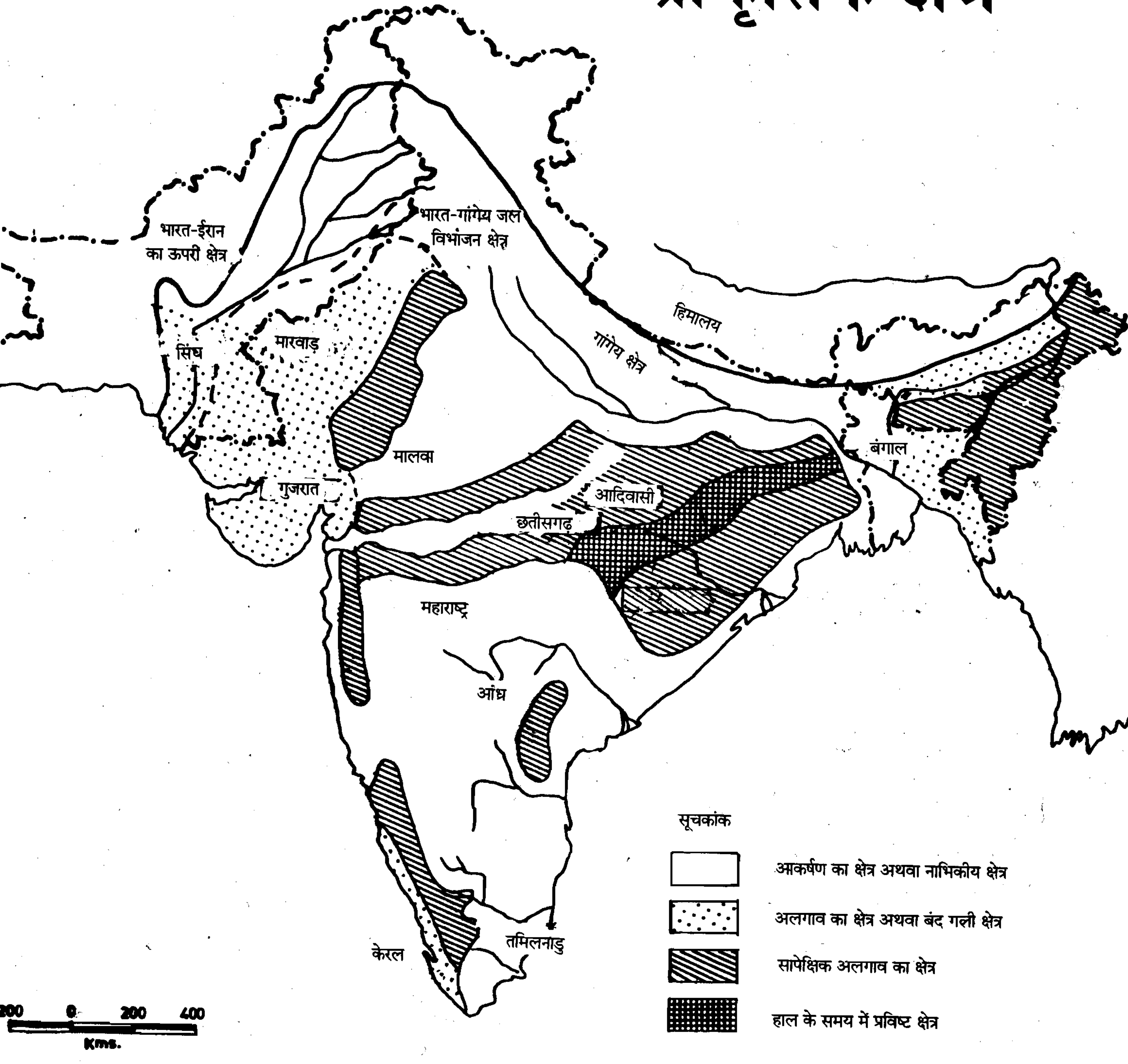

मानचित्र 1.

1.2.1 पर्यावरण और मानव बस्तियां

प्राकृतिक भूगोल मानव बस्तियां और बसावट की शैलियों का परस्पर सम्बन्ध एक और ऐसा महत्वपूर्ण विषय है जिस पर ध्यान देने की जरूरत है। उदाहरण के लिए, सिंध प्रदेश आज अपेक्षाकृत गर्म और शुष्क है क्योंकि इस क्षेत्र में वर्षा बहुत कम होती है। फिर भी हम जानते हैं कि अतीत में इसी क्षेत्र के अधिकांश भागों में हड़प्पा की सभ्यता का विकास हुआ था। कुछ विद्वानों का मत है कि उस समय इस क्षेत्र की जलवायु नम रही होगी और वर्षा भी अपेक्षाकृत अधिक होती होगी, जिसके कारण यहां उच्चस्तरीय सभ्यता का विकास हो सका और लम्बे समय तक यह सभ्यता बनी रह सकी। कुछ विद्वानों द्वारा यह तर्क भी दिया जाता है कि प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन के कारण प्राकृतिक वनस्पति के क्षेत्र को नुकसान पहुँचा और साथ ही शुष्क जलवायु पैदा होने से लोगों के जीवन-निर्वाह का आधार ही खतरे में पड़ गया। इस प्रकार यह सभ्यता नष्ट हो गई (इस विषय पर विस्तृत जानकारी के लिए देखें खंड-2 इकाई-9)।

अनुपयोगी भौगोलिक स्थितियों और भूमि तथा संसाधनों पर पड़ने वाले संभावित जनसंख्यात्मक दबाव ने लोगों को सभ्यता के इस केन्द्र से निकलने पर मजबूर कर दिया। इस प्रकार यह सभ्यता धीरे-धीरे नष्ट हो गई।

दूसरी ओर मगध साम्राज्य की सफलता और इस साम्राज्य द्वारा स्थापित किया गया राजनीतिक प्रभुत्व हमें आश्चर्य में डाल देता है। इसके क्या कारण थे ? यह तर्क दिया जा सकता है कि इस साम्राज्य की स्थापना में कई तत्व सहयोगी बने:

- अत्यधिक उपजाऊ जमीन,
- पर्याप्त वर्षा और उससे होने वाली धान की वार्षिक अच्छी फसल,
- लोहे की खानों तथा छोटा नागपुर पठार के पत्थर और लकड़ी के स्रोतों का निकट होना,
- नदियों द्वारा पर्याप्त संचार और व्यापार की सुविधा उपलब्ध कराना,
- मानव बस्तियों की निकटता और निरंतरता, जो बहुत कुछ इन प्राकृतिक सुविधाओं के कारण संभव हुई, अत्यधिक जनसंख्या घनत्व की ओर इशारा करती हैं।

संयुक्त रूप से इन तथ्यों ने आसानी से उत्तरी गांगेय मैदान पर विजय प्राप्त करने में मदद दी। वास्तव में इन्हीं कारणों से सिंधु-गांगेय का मैदानी प्रदेश, कृषि उत्पादकता और जनसंख्या की दृष्टि से अन्य प्रदेशों से आगे था। उत्तरी मैदानों की ओर सीमाई विस्तार से उस समय निर्विवाद भारतीय सर्वोच्चता की स्थापना का आधार मिला। इस तरह इस क्षेत्र में एक के बाद एक घटने वाली घटनाओं को एक क्रम में देखा जा सकता है। मगध राज्य का भारत पर अधिपत्य उसकी उत्तरी मैदानों की विजय पर आधारित थी। इन मैदानों की भूमि, वर्षा, वनस्पति, सहज संचार सुविधा और अन्य प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धि ने मगध साम्राज्य को शक्तिशाली बनाने में मदद दी।

मगध के राजनीतिक प्रभुत्व के बढ़ने से इसकी राजधानी पाटलीपुत्र उत्तरी भारत की राजधानी बन गई। साम्राज्यिक राजधानी के रूप में पाटलीपुत्र का महत्व कई शताब्दियों तक बना रहा। पाटलीपुत्र के उत्थान और पतन के अनेक भौगोलिक कारण गिनाए गए हैं। पाटलीपुत्र के इतिहास के प्रारंभिक दिनों में गंगा, सोन और गंडक जैसी नदियां उसे प्राकृतिक संरक्षा प्रदान करती थीं। साथ ही व्यापार और परिवहन की सहज सुविधाएं भी देती थीं। लेकिन प्रथम सहस्त्राब्दि ईसवी के मध्य तक लगातार बाढ़ों के कारण इन नदियों का महत्व कम हो गया। यह सर्व विदित है कि गुप्त काल और उत्तर गुप्त काल में व्यापार की क्षति हुई और नगरों का पतन हुआ गुप्त काल और उत्तर गुप्त काल में उत्तर भारत में व्यापार और वाणिज्य के पतन के साथ मानव गतिविधियों के कम हो जाने और गंगा नदी का मार्ग बदल जाने से इन नदियों की उपयोगिता कम हो गई। इस काल में गांगेय उत्तर भारत में नगरों के पतन के कारणों में भीतरी क्षेत्रों में वनों की कटाई और परिणामत: वर्षा में कमी जैसे भौगोलिक कारण भी बताए गए हैं। हो सकता है कि ये कारण पूरी तरह से सही न हों। फिर भी ये उदाहरण निश्चित रूप से यह बताते हैं कि ऐतिहासिक प्रक्रियाओं और भौगोलिक विशेषताओं के बीच सदैव ही निकट सम्बन्ध रहा है।

1.2.2 भौगोलिक नियतत्ववाद के विरुद्ध तर्क

यहां यह ध्यान रखना आवश्यक है कि प्राकृतिक विशेषताओं और ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के विकास के बीच अन्तर्सम्बन्ध को देखना और समझना एक बात है, परन्तु इतिहास को भौगोलिक नियतत्ववाद के अर्थ में देखना एक पूरी तरह भिन्न बात है। भौगोलिक तथ्यों की जानकारी से सांस्कृतिक विकास को भली प्रकार समझने में मदद मिलती है। इससे विभिन्न प्रदेशों में विकास के अलग-अलग तरीकों और शैलियों को भी समझने में सहायता मिलती है। फिर भी भूगोल और पर्यावरण को एकमात्र या प्रमुख नियामक कारकों के रूप में नहीं लिया जा सकता क्योंकि अंततः प्राकृतिक क्षेत्र मात्र संभावनाओं वाले क्षेत्र होते हैं और उन संभावनाओं को मनुष्य अपनी तत्कालीन तकनीकी उपलब्धियों के आधार पर कार्यान्वित करता है। यह कहा जा चुका है कि प्रकृति, विकास का मार्ग तय करती है। जबकि मनुष्य विकास की अवस्था और उसकी गति को तय करता है। इसलिए न तो प्रकृति का प्रभाव स्थायी होता है और न ही मनुष्य और पर्यावरण के सम्बन्ध ही सुस्थिर हैं। मनुष्य अपने अनुभव और अपने औजारों के बल पर प्रकृति द्वारा लगाई गई सीमाओं और बाधाओं पर विजय प्राप्त करता रहा है। यह एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है जो मानवीय अनुभव को निरंतर समृद्ध बनाती है और पर्यावरण पर मनुष्य के नियंत्रण की सीमाओं को निरंतर विस्तार देती जाती है। एक समय में जो प्राकृतिक विशेषताएं और पर्यावरण से सम्बद्ध स्थितियां प्रतिकूल प्रतीत होती हैं दूसरे चरण में वे ही समृद्ध संभावनाओं वाली हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, शिकार-जीवी लोग जंगलों के निकट, या जिन्हें आज हम सीमांत क्षेत्र कहते हैं, वहां रहना पसंद करते थे। लेकिन प्रारंभिक किसानों को लोहे आदि के हल इत्यादि के अभाव में स्वयं को गंगा-यमुना दो-आब के पश्चिम में नर्म भूमि तक ही सीमित रहना पड़ा। ये किसान, गांगेय उत्तरी भारत के समृद्ध जलोढ़ मैदानों पर लोहे के आगमन के साथ ही पहुंच सके और तभी वे घनी वनस्पति और भारी तथा उपजाऊ मिट्टी वाली भूमि का दोहन कर सके।

1.3 आधारभूत भू-आकृतिक विभाजन

अब हम भारतीय उपमहाद्वीप प्राकृतिक लक्षणों के और इन लक्षणों द्वारा निर्मित विभिन्न प्रदेशों की विशिष्टताओं की चर्चा करेंगे। भू-आकृतिक लक्षणों के आधार पर उपमहाद्वीप को तीन भागों में बांटा जा सकता है।

1) हिमालय के पर्वतीय प्रदेश,
2) सिंधु गंगा के मैदान, और
3) प्रायद्वीपीय भारत।

इनमें से प्रत्येक का आगे भी विभाजन किया जा सकता है। यह माना जाता है कि हिमालय पर्वत श्रृंखला की ऊँचाई अब भी बढ़ रही है। हिमालय की पर्वतीय श्रृंखलाओं के अपक्षय और भूमि कटाव के कारण जलोढ़ यानी कछारी मिट्टी निरंतर बह कर भारी मात्रा में इन मैदानों में आती है। हिमालय की बर्फ के पिघलते रहने से सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र तीन बड़ी नदियों में निरंतर जल प्रवाह बना रहता है। उत्तर भारत का कछारी मैदान लगभग 3200 किलोमीटर तक एक धनुष के आकार में सिंधु के मुहाने से लेकर गंगा के मुहाने तक फैला हुआ है। लगभग 320 किलोमीटर चौड़ाई वाला यह मैदान तमाम संभावनाओं से भरा हुआ है। सिंधु के मैदान में भारतीय उपमहाद्वीप की पहली सभ्यता का विकास हुआ जबकि गंगा के मैदान में ईसा पूर्व पहली सहस्राब्दि से नगर जीवन, राज्य, समाज और साम्राज्य सम्बन्धी ढांचे का पोषण और विकास हुआ।

उत्तर के मैदान और प्रायद्वीपीय भारत को, एक विशाल मध्यवर्ती क्षेत्र जिसे किसी बेहतर शब्दावली के अभाव में मध्य भारत कहा जा सकता है, अलग करता है। यह मध्यवर्ती क्षेत्र गुजरात से लेकर पश्चिमी उड़ीसा तक लगभग 1600 किलोमीटर तक फैला हुआ है। राजस्थान की अरावली पहाड़ियां सिंधु के मैदान को प्रायद्वीप से अलग करती हैं। मध्यवर्ती क्षेत्र में विंध्याचल और सतपुड़ा की पर्वत श्रेणियां और छोटा नागपुर का पठार है जो बिहार, बंगाल

और उड़ीसा के कुछ क्षेत्रों तक फैला है। इस मध्यवर्ती क्षेत्र यानी मध्य भारत को चार उप प्रदेशों में बांटा जा सकता है:

1) उदयपुर और जयपुर के बीच राजपूतों की भूमि,
2) उज्जैन के आस-पास माल्वा का पठार जो प्राचीन समय में अवन्ति के नाम से प्रसिद्ध था।
3) विदर्भ या नागपुर के आस-पास का उप-क्षेत्र, और
4) पूर्वी मध्य प्रदेश के छत्तीसगढ़ का मैदान जो प्राचीन काल में दक्षिण कौशल के नाम से जाना जाता था।

हालांकि सामान्य रूप में इस मध्यवर्ती क्षेत्र में संचार तथा आवागमन कभी भी आसान नहीं रहा फिर भी इन चार प्रत्यक्ष रूप से अलग-अलग उप प्रदेशों के बीच आपस में सम्पर्क बना रहा, तथा मध्यवर्ती क्षेत्र और अन्य भौगोलिक क्षेत्रों के बीच भी सम्पर्क बना रहा।

मध्यवर्ती क्षेत्र या मध्य भारत के दक्षिणी सिरे पर वह भू-रचना शुरू होती है जिसे प्रायद्वीपीय भारत कहा जाता है यह एक प्राचीन भू-भाग है जिसमें स्थायित्व के सभी लक्षण मौजूद हैं। यह भू-भाग पठारी है। इस पठारी चट्टानी संरचना का झुकाव पश्चिम से पूर्व की ओर है। इसमें चार प्रमुख नदियां हैं जो बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। ये नदियां हैं महानदी, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी। इन नदियों के कारण इस पठारी क्षेत्र में जलोढ़ मैदान बने और इन मैदानों तथा नदियों के डेल्टाओं में मूल आवास क्षेत्रों का विकास हुआ। यहां दीर्घ काल तक सांस्कृतिक विकास की धारा प्रवाहित हुई जो प्राचीन काल से प्रारंभ होकर मध्य काल मे होते हुए आधुनिक काल तक निरंतर बहती रही।

मध्य भारत में बहने वाली नर्मदा और ताप्ती नदियों का प्रवाह पश्चिम की ओर है। पर्वतीय मध्य भारत में लम्बी दूरी तय करने के बाद ये नदियां गुजरात में अरब सागर में गिरती हैं। उपमहाद्वीप के इस भाग की प्रमुख विशेषता दक्कन का पठार है। यह उत्तर में विंध्य पर्वत श्रेणियों से लेकर कर्नाटक की दक्षिणी सीमाओं तक फैला हुआ है। महाराष्ट्र तथा मध्य भारत के भू-भागों में काली मिट्टी विशेष रूप से उपजाऊ है, क्योंकि इसमें नमी बनी रहती है और इस जमीन को स्वहलित भूमि यानी ऐसी भूमि माना जाता है जिसमें जुताई की आवश्यकता नहीं होती। भूमि की इस विशेषता के कारण वार्षिक वर्षा की कमी और सिंचाई सम्बन्धी अन्य कठिनाइयां फसल के लिए बड़ी बाधा नहीं बनतीं। यह भूमि कपास, ज्वार, मूंगफली और तिलहन की अच्छी फसल देती है इसलिए यह बात आश्चर्यजनक नहीं है कि पश्चिम और मध्य भारत में प्रारंभिक कृषि संस्कृतियां (ताम्र पाषाण संस्कृति) इसी क्षेत्र में उदित हुई। दक्षिण का यह पठार पश्चिम में पश्चिमी घाट तक फैला है और पूर्व में इसकी सीमाएं पूर्वी घाट से लगी हुई हैं। पूर्वी घाट इसको पूर्वी तटवर्ती मैदानों से अलग करता है। मैदान पश्चिम के संकरे मैदानों की तुलना में कहीं अधिक चौड़े हैं। नीलगिरी और कार्डोमोम पहाड़ियां मूल प्रायद्वीपीय संरचना की उत्पत्ति मानी जाती हैं।

बोध प्रश्न 1

1 सही कथन पर (✓) चिह्न लगाइए।
प्राकृतिक भूगोल की जानकारी:

i) विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की जीवन शैलियों को समझने में मदद करती है,
ii) अतीत में सांस्कृतिक विकास की प्रकृति को समझने में कोई मदद नहीं करती,
iii) का इतिहास के विद्यार्थी के लिए कोई महत्व नहीं है,
iv) आपको केवल विशेष क्षेत्रों के अध्ययन तक सीमित कर देती है।

2 मगध के उत्थान की उत्तरदायी प्राकृतिक विशेषताओं का उल्लेख करिए। उत्तर लगभग दस पंक्तियों में दीजिए।

....
....
....
....
....
....

भारत के भूआकृतिक क्षेत्र

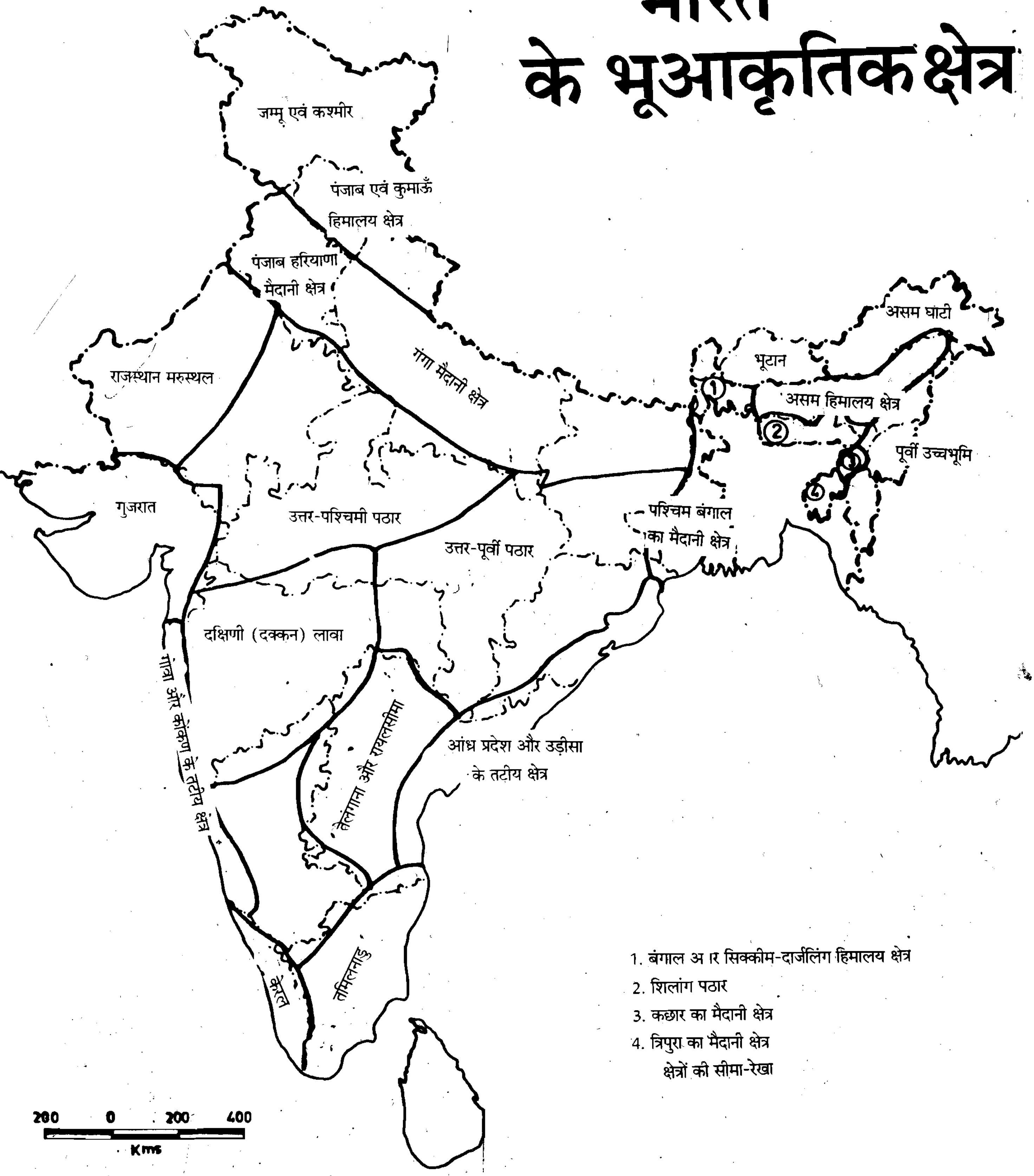

मानचित्र 2.

....

....

....

....

3 रिक्त स्थान भरिए:

i) भौगोलिक तथ्य मगध के ... (उत्थान और पतन/बाढ़ग्रस्त होने) के कारणों को तय करने में ... (हमारी मदद करते हैं/हमारी मदद नहीं करते हैं)

ii) मनुष्य प्रकृति को सफलता से नियंत्रित ... (करता है/करने का प्रयास करता है)

iii) भारत में मूल भू-आकृतिक विभाजन ... हैं। (पांच/दो/तीन)

iv) मध्यवर्ती क्षेत्र में ... (मूल भू-आकृतिक/उपक्षेत्र) शामिल हैं।

1.4 क्षेत्रीय प्राकृतिक विशेषताएं

अभी तक हमने मोटे तौर पर भौगोलिक विभाजनों की विशेषताओं का सामान्य आधार पर विवेचन किया है। अब हम उन विशिष्ट प्रमुख भौगोलिक इकाइयों को लेंगे जो आमतौर पर भाषा पर आधारित विभाजनों को पुष्ट करती हैं, और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से उनकी प्राकृतिक विशेषताओं की चर्चा करेंगे।

1.4.1 हिमालय और पश्चिमी सीमा प्रदेश

हिमालय को तीन प्रमुख भागों में बांटा जा सकता है:

- पूर्वी हिमालय
- पश्चिमी हिमालय, और
- मध्यवर्ती हिमालय

पूर्वी हिमालय पर्वत श्रृंखला ब्रह्मपुत्र के पूर्व में उत्तर दक्षिण दिशा में असम से लेकर दक्षिणी चीन तक फैली हुई है। हालांकि पूर्वी हिमालय पर्वतमाला के बीच से गुजरने वाले मार्ग दुर्गम हैं फिर भी प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक कालों में दक्षिण-पूर्व एशिया और दक्षिण चीन से सांस्कृतिक प्रभावों का आना नहीं रुका। मध्यवर्ती हिमालय पर्वत श्रृंखलाएं, जो भूटान से चित्राल तक फैली हुई हैं तिब्बत के विशाल पठार की सीमा पर स्थित हैं। भारत और तिब्बत के बीच व्यापार तथा अन्य प्रकार के सम्बन्ध इसी सीमा प्रदेश के माध्यम से बने रहे।

संकरी हिन्दुकुश पर्वत श्रृंखला हिमालय से दक्षिण पश्चिम की ओर प्राचीन गांधार प्रदेश को घेरती हुई अफगानिस्तान में दूर तक फैली है। भौगोलिक और सांस्कृतिक रूप से पश्चिमी अफगानिस्तान का गहरा सम्बन्ध साम्य पूर्वी ईरान से है। लेकिन दक्षिण-पूर्वी अफगानिस्तान सांस्कृतिक रूप से नवपाषाण काल से ही भारतीय उपमहाद्वीप के निकट रहा है। खैबर दर्रा और अन्य दर्रे तथा काबुल नदी इस क्षेत्र को सिन्धु के मैदान से जोड़ते हैं। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि अफगानिस्तान के इस भाग में स्थित शोर्टुगाई हड़प्पा की सभ्यता का एक प्रमुख व्यापारिक बाह्य केन्द्र था। काबुल और कन्धार जैसे प्राचीन नगर ईरान और भारत के बीच व्यापार मार्गों पर स्थित हैं।

बलूचिस्तान की ओर चलते हुए दक्षिण पश्चिम अफगानिस्तान में रेगिस्तानी हालात काफी प्रखर रूप से सामने आते हैं। इस क्षेत्र में नवपाषाण काल से ही पशुचारण को जीवन के लिये एक लाभदायक अनुकूल नीति के रूप में अपनाया जाता रहा है। बलूचिस्तान का तटवर्ती क्षेत्र जो कि मकरान कहा जाता है, मानव बस्तियों के लिए कभी भी उपयुक्त क्षेत्र नहीं रहा। उदाहरण के लिए, भारत अभियान से वापस लौटते हुए जब सिकन्दर अपनी सेना के एक भाग को मकरान तट से होकर ले गया तो उसे भोजन और पानी की कमी के कारण भारी जन हानी उठानी पड़ी। यह प्रदेश एक प्रकार का केन्द्रीय स्थल रहा है क्योंकि यहां से एक ओर तो मध्य एशिया और चीन के लिए रास्ते निकलते हैं। तो दूसरी ओर ईरान और सुदूर पश्चिम की ओर रास्ते निकलते हैं।

वे सभी प्रमुख मार्ग, जो अफगानिस्तान होकर भारत के मैदानों को ईरान और मध्य एशिया से जोड़ते हैं, गोमाल, बोलन और खैबर दर्रों से होकर जाते हैं। ऐतिहासिक कालों अथवा उससे भी पहले से व्यापारी, हमलावर और विविध सांस्कृतिक प्रभाव इन सभी प्रमुख मार्गों से होकर भारत आते रहे। यूनानी, शक, कुषाण, हूण और अन्य हमलावर इन्हीं मार्गों से भारत आए। बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृति के अन्य प्रभाव अफगानिस्तान और मध्य एशिया तक इन्हीं दर्रों से होकर पहुंचे। इस तरह ऐतिहासिक रूप से अफगानिस्तान और बलूचिस्तान के पहाड़ी क्षेत्र महत्वपूर्ण सीमान्त क्षेत्र रहे हैं।

1.4.2 सिंधु का मैदान

इन दर्रों से निकलने वाले ये मार्ग सिंधु के उपजाऊ मैदानों की तरफ ले जाते हैं। इस मैदान को दो भागों में बांटा जा सकता है:

- पंजाब, और
- सिंध

पंजाब (इस समय भारत और पाकिस्तान के बीच विभाजित) का शाब्दिक अर्थ है पांच नदियों की भूमि। विस्तृत जलोढ़ मैदान के बीच से बहने वाली सिंधु नदी की पांच सहायक नदियों ने इस क्षेत्र को उपमहाद्वीप का बहु-धान्य प्रदेश बना दिया है। इस मैदान का पूर्वी भाग गंगा के थाले से जा मिलता है। पंजाब विभिन्न संस्कृतियों का मिलन स्थल और उनके परस्पर एकीकृत होने का स्थान रहा है। पूर्व स्थापित संस्कृतियों के तथा बाहर से आने वाले नये तत्व यहां घुल-मिल कर एक होते रहे हैं। पंजाब की सामरिक स्थिति और यहां की समृद्धि सदा ही हमलावरों को आकर्षित करती रही है।

सिंधु घाटी का निचला क्षेत्र और डेल्टा मिल कर सिंध प्रदेश का निर्माण करते हैं। यह प्रदेश उत्तर पश्चिम में बलूचिस्तानी पहाड़ियों और दक्षिण-पूर्व में थार के रेगिस्तान से घिरा हुआ है इस प्रदेश के गुजरात के साथ ऐतिहासिक सम्बन्ध रहे हैं। इस प्रदेश में वर्षा बहुत कम होती है लेकिन यहां की जलोढ़ भूमि बहुत उपजाऊ है। सिंध प्रदेश, सिंधु नदी का प्रदेश है और बड़ी मात्रा में चावल और गेहूं उत्पन्न करता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सिंधु मैदान में ईसा पूर्व दूसरी सहस्त्राब्दि के दौरान भारतीय उपमहाद्वीप की पहली नागरीय संस्कृति पनपी। इनके दो प्रमुख नगर हड़प्पा और मोहनजोदड़ो क्रमशः पंजाब और सिंध में स्थित हैं।

1.4.3 गांगेय उत्तरी भारत

सिंधु के मैदान की तुलना में गंगा का मैदान जलवायु की दृष्टि से अधिक आर्द्र है। वार्षिक वर्षा जो सिंधु-गंगा विभाजक पर 50 सेंटीमीटर होती है वह बंगाल तक पहुंचते-पहुंचते बढ़ कर दो सौ सेंटीमीटर हो जाती है। गंगा के मैदानी क्षेत्र को तीन उप-क्षेत्रों में बांटा जा सकता है:

- ऊपरी क्षेत्र,
- मध्य क्षेत्र, और
- निचला क्षेत्र।

पश्चिम और मध्य उत्तर प्रदेश के ऊपरी मैदानी क्षेत्र में अधिकांश दोआब का इलाका शामिल है। यह संघर्ष और सांस्कृतिक संश्लेषण का क्षेत्र रहा है। हड़प्पा संस्कृति के इस क्षेत्र तक फैले होने के बहुतायत में साक्ष्य उपलब्ध हुए हैं। यह क्षेत्र "चित्रित धूसर या भूरे भांड संस्कृति" का केन्द्र भी था और उत्तर वैदिक काल में हलचल भरी गतिविधियों का केन्द्र इलाहाबाद (प्राचीन प्रयाग) भी दोआब की सीमा पर गंगा और यमुना नदियों के संगम पर स्थित है। गांगेय मैदान का मध्य क्षेत्र पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार तक फैला हुआ है। यह वही क्षेत्र है जहां प्राचीन कौशल, काशी और मगध स्थित थे। यह क्षेत्र ईसा पूर्व छठी शताब्दी से नगर जीवन, मौद्रिक अर्थव्यवस्था तथा व्यापार का केन्द्र रहा है। इसी प्रदेश ने मौर्य साम्राज्य के विस्तार को आधार प्रदान किया और यह भू-प्रदेश राजनीतिक दृष्टि से गुप्त काल पांचवी शताब्दी इसवी तक महत्वपूर्ण बना रहा।

गंगा के मैदान का ऊपरी और मध्य क्षेत्र भौगोलिक रूप से उत्तर में हिमालय पर्वत श्रेणियों और दक्षिण में मध्य भारत की पर्वत श्रृंखलाओं से सीमाबद्ध होता है। गंगा के मैदान का निचला क्षेत्र बंगाल प्रान्त के साथ फैला हुआ है। बंगाल का विस्तृत मैदान, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों द्वारा लाई गई जलोढ़ यानी कछारी मिट्टी से निर्मित हुआ है। मैदान के निचले क्षेत्रों में

भारी वर्षा होने से यहां घने जंगल और दल-दल हैं। इनके कारण बंगाल में प्रारंभिक बस्तियों की बसावट में काफी बाधाएं आईं। इस जलोढ़ भूमि की उर्वरता का उपयोग तभी किया जा सका जब लौह तकनीक पर नियंत्रण और उसका प्रयोग अच्छी मात्रा में शुरू हो गया। इस क्षेत्र में मध्य क्षेत्रीय मैदान की नगरीय संस्कृति का प्रवेश अपेक्षाकृत देर से हुआ। यहां के पर्यावरण को देखते हुए तालाब और पोखर प्राचीन समय से ही बंगाल के जीवन में विशिष्ट बने रहे हैं। प्राचीन समय से ही मछली यहां के सभी वर्गों के भोजन का आवश्यक अंग रही है।

अन्य वृहद बसावट वाले क्षेत्रों की तुलना में गंगा का मैदान अनेक घनी बस्तियों वाला क्षेत्र रहा है। जनसंख्या घनत्व भी यहां अपेक्षाकृत अधिक रहा है। ईसा पूर्व पहली सहस्त्राब्दि से ही यह क्षेत्र भारतीय सभ्यता का मुख्य केन्द्र रहा है। अति प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक इस प्रदेश की यह स्थिति बनी हुई है। बंगाल के मैदान से लगी हुई ब्रह्मपुत्र द्वारा निर्मित दूर तक फैली हुई असम घाटी है। यह 600 किलोमीटर से भी अधिक लम्बाई में फैली हुई है। सांस्कृतिक रूप से असम बंगाल के निकट है। लेकिन ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से यह प्रदेश उड़ीसा की तरह देर से विकास प्रक्रिया में आने वाला प्रदेश है।

1.4.4 पूर्वी, पश्चिमी और मध्य भारत

मध्य भारत जैसा कि पहले बताया जा चुका है, एक पूरी तरह भिन्न प्रकार का क्षेत्र है और उसमें कोई भी ऐसा विशेष स्थान नहीं है जिसे केन्द्र स्थान मान कर बात की जा सके। यह एक पर्वतीय प्रदेश है जहां पहाड़ियां अधिक ऊंचाई तक नहीं पहुंचती। प्रपातीय ढाल इस क्षेत्र की पर्वत श्रृंखलाओं को बीच-बीच में खंडित करते हैं और घाटियां इन्हें विभाजित करती हैं। ये पर्वत श्रृंखलाएं सामान्य रूप से पूर्व से पश्चिम की ओर चलती हैं। लेकिन इस भू-आकृतिक क्षेत्र के उत्तर, पश्चिम भाग में अरावली पर्वत श्रृंखलाएं दक्षिण पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर फैली हुई हैं। अरावली पर्वत श्रृंखलाएं मरू प्रदेश राजस्थान को लगभग दो भागों में विभाजित करती हैं। अरावली पर्वत श्रृंखला के पूर्व में राजस्थान राज्य का दक्षिण पूर्वी भाग मालवा उप-क्षेत्र का एक अंग है। इस प्रदेश की मिट्टी उपजाऊ है। इसलिए यहां सिंचाई के अभाव के बावजूद अच्छी फसलें हो जाती हैं। इस प्रदेश में ताम्र-पाषाण युगीन बस्तियां काफी संख्या में फैली हुई हैं। इसकी भौगोलिक अवस्थाओं को देखते हुए प्रतीत होता है कि यह प्रदेश हड़प्पा-कालीन समुदायों और मध्य भारत तथा उत्तरी दक्कन के दूसरे ताम्र पाषाण युगीन समुदायों के बीच पुल के रूप में रहा होगा। सांस्कृतिक रूप से इस प्रदेश में उत्तर कालों में, उत्तरी मैदानों की संस्कृति का ही विस्तार हुआ। इस प्रदेश के पूर्व में ऊपरी महानदी क्षेत्र में छत्तीसगढ़ का मैदान एक छोटा उपजाऊ क्षेत्र है। यहां अच्छी वर्षा होती है और धान उगाया जाता है। चौथी-पांचवी शताब्दी से यहां का ऐतिहासिक विकास उसी प्रकार का था जैसा कि पश्चिमी उड़ीसा के ऊँचे नीचे पहाड़ी क्षेत्रों में हुआ। इन क्षेत्रों में भौगोलिक निकटता के कारण सांस्कृतिक और राजनीतिक आदान-प्रदान होता रहा।

यह अधिकांश भू-भाग जिसे हमने मध्य भारत बताया है, आज मध्य प्रदेश के नाम से जाना जाता है। इस प्रदेश में उत्तर से दक्षिण यात्रा में विंध्य और सतपुड़ा पर्वत श्रृंखलाएं तथा नर्मदा और ताप्ती नदियां रुकावट बनती हैं। मध्य भारतीय क्षेत्र, जिसमें विशेष रूप से दक्षिण बिहार, पश्चिम उड़ीसा और पूर्वी मध्य प्रदेश आते हैं, आदिवासी बहुल क्षेत्र है। फिर भी यह ऐसा क्षेत्र है जिसमें बाह्य तत्वों के प्रवेश की गति धीमी और निरंतर रही। इस प्रदेश के आदिवासी निकटवर्ती क्षेत्रों के सांस्कृतिक प्रभाव में आकर प्रारंभिक ऐतिहासिक कालों से या कहें कि गुप्त काल से ही, भारतीय समाज के प्रमुख जाति-कृषक आधार वाले ढांचे से जुड़ते रहे।

गुजरात मध्य भारत क्षेत्र के पश्चिमी किनारे पर स्थित है। यह प्रदेश तीन प्राकृतिक भागों में बंटा हुआ है। सौराष्ट्र अनर्त (उत्तरी गुजरात) और लता (दक्षिण गुजरात) अनर्त की विशेषता यहां अर्ध शुष्क वायु प्रवाहित मिट्टी है तो लता में पश्चिम तट का उपजाऊ क्षेत्र शामिल है। गुजरात का मध्यवर्ती प्रायद्वीप काठियावाड़ कहलाता है। इस प्रदेश का एक और प्राकृतिक भाग कच्छ के रण का निचला इलाका है। मानसून के दिनों में कच्छ का रण बादली क्षेत्र में बदल जाता है। इस प्राकृतिक उप-विभाजन के बावजूद गुजरात की अपनी सांस्कृतिक पहचान और एकता रही है क्योंकि यह प्रदेश विंध्य पर्वत श्रृंखलाओं और पश्चिमी घाट से पूर्व में और उत्तर में मरुस्थल से सीमाबद्ध है। हालांकि यह एक अलग-थलग क्षेत्र प्रतीत होता है किन्तु

वास्तव में यह हड़प्पा कालीन समय से ही निरंतर प्राचीन बस्तियों का क्षेत्र रहा है। सौराष्ट्र में इसकी सिंधु नदी के साथ भौगोलिक निकटता के कारण हड़प्पा की सभ्यता का विस्तार हुआ। यह क्षेत्र प्राय: सिंध तथा सुदूर पश्चिमी क्षेत्र और भारत के बीच संक्रान्ति का क्षेत्र रहा है यहां का मैदान नर्मदा, ताप्ती, साबरमती और माही नदियों द्वारा मध्य भारतीय पर्वत श्रृंखलाओं से लाई गई कछारी भूमि से समृद्ध है। अपनी संरक्षित स्थिति और लम्बी तट रेखा के कारण गुजरात चार हजार वर्षों से भी अधिक समय से तटीय (समुद्र तटीय) और विदेशी व्यापार का केन्द्र रहा है। मध्य भारत पर्वत श्रृंखलाओं के पूर्वी छोर पर गंगा के डेल्टा के दक्षिण पश्चिम में उड़ीसा के तटवर्ती मैदान हैं। हालांकि इसी तट पर बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली कुछ अन्य नदियां भी हैं। ये तटवर्ती मैदान पर्वत श्रृंखलाओं का ही एक विस्तार है और जैसा कि छत्तीसगढ़ के मैदान के सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है, इसके कुछ प्राकृतिक लक्षण भी वैसे ही हैं। इस तरह उड़ीसा में दो भू-आकृतिक भाग हैं जो विकास की असमान प्रक्रियाओं को दर्शाते हैं। समृद्ध कृषि आधार वाला उपजाऊ तटवर्ती मैदान मानव गतिविधि का स्थल और सामाजिक सांस्कृतिक विकास का केन्द्र रहा है। उड़ीसा ने अपनी भाषाई और सांस्कृतिक पहचान देर से पहली शताब्दी में बनायी थी।

1.4.5 प्रायद्वीपीय भारत

प्रायद्वीपीय भारत की सीमाएं इसको घेरने वाले तटवर्ती मैदानों और दक्कन के पठार से निर्धारित होती हैं। तटवर्ती मैदान पूर्व में और सुदूर दक्षिण में चौड़े हैं, जबकि पश्चिम में ये संकरे हैं। बंबई और पालघाट के बीच का मैदान सर्वाधिक संकरा है। दक्कन का पठार तीन प्रमुख भागों में बंटा हुआ है। ये भाग महाराष्ट्र,आंध्र और कर्नाटक राज्यों में पड़ते हैं। महाराष्ट्र में अन्य क्षेत्रों के अलावा दक्कन के पठार का उत्तरी भाग शामिल है। सुदूर दक्षिण के लिए सांस्कृतिक प्रभावों का प्रसार दक्कन द्वारा होता रहा है। और ऐसा इसलिए संभव हुआ होगा क्योंकि पश्चिम भाग को छोड़ कर वहां और घने जंगल नहीं हैं। महाराष्ट्र और आन्ध्र के बीच सीमा प्राकृतिक रूप से निर्धारित हुई प्रतीत होती है क्योंकि यह सीमा रेखा उपजाऊ काली मिट्टी के वितरण के आधार पर बनी है। यानी इस सीमा के इस ओर महाराष्ट्र में उपजाऊ काली मिट्टी है तो सीमा के उस पार तैलंगाना में लाल मिट्टी है जो नमी सोखने में सक्षम नहीं होती है। इसलिए तैलंगाना तालाबों तथा अन्य प्रकार के कृत्रिम सिंचाई के साधनों का क्षेत्र रहा है। प्रारंभिक बस्तियों के विकास पर पर्यावरण सम्बन्धी भिन्नताओं का प्रभाव इस क्षेत्र में जितने रूप में सामने आता है उतना अन्य क्षेत्रों में नहीं। दक्षिण पश्चिम आन्ध्र के प्रारंभिक नव-पाषाण युगीन लोगों ने अनुकूल व्यवहार नीति के रूप में पशु चारण को अपनाया तो उत्तरी दक्कन ताम्र-पाषाण युगीन मानव समुदायों ने कृषि को अपना उद्यम बनाया।

कर्नाटक में दक्षिण-पश्चिमी दक्कन शामिल है। कुछ छोटे-छोटे क्षेत्रों को छोड़ कर दक्कन लावा का फैलाव यहां तक नहीं हैं इसके अलावा पश्चिम घाट और पश्चिमी तटवर्ती मैदान का एक भाग इस राज्य में शामिल है राज्य दक्षिण भाग में अपेक्षाकृत अधिक पानी है और यह क्षेत्र मानव बस्तियों के लिए उत्तर की तुलना में अधिक उपयुक्त है। महाराष्ट्र और कर्नाटक के बीच विभाजन रेखा किन्हीं विशेष प्राकृतिक दशाओं को नहीं दर्शाती। इस क्षेत्र में पर्यावरण द्वारा पैदा की गई बाधाओं की पर्याप्त पुष्टि इस क्षेत्र के नव-पाषाण युगीन लोगों के अपेक्षाकृत अपर्याप्त सांस्कृतिक अवशेषों से होती है।

चार दक्षिण भारतीय राज्यों में आन्ध्र विशालतम है। इसमें तेलगाना, उपजाऊ तटवर्ती मैदान, रायल सीमा जैसे अनेक उप क्षेत्र शामिल हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, राज्य का उत्तर-पश्चिमी भाग तेलंगाना कहा जाता है। यहां की ललछोंहा मिट्टी अधिक उपजाऊ नहीं है और यहां की मुख्य फसलें, ज्वार, दलहन और तिलहन हैं। पूर्व में पूर्वी घाट और तटवर्ती मैदान का एक भाग उत्तर में उड़ीसा की सीमा पर महेन्द्र गिरि के निकट से लेकर दक्षिण में तमिलनाडु तक, जिसका अधिकेन्द्र कृष्णा-गोदावरी की संयुक्त डेल्टा है, आन्ध्र-प्रदेश में शामिल है। यह एक चावल प्रधान क्षेत्र है। दोनों नदियों के बीच का तटवर्ती क्षेत्र जो प्राचीन समय में वैनगी नाम से जाना जाता था धान का प्रमुख उत्पादन केन्द्र रहा है। कृष्णा और तुंगभद्रा के बीच रायचूर दोआब की तरह, इस क्षेत्र के लिए भी प्राचीन ऐतिहासिक कालों में निरंतर संघर्ष होते रहे।

1.4.6 सुदूर दक्षिण

दक्कन का पठार सुदूर दक्षिण में नीलगिर और कार्डामोम पहाड़ियों जैसे अलग-अलग खण्डों में विभाजित हो जाता है। ये पहाड़ियां मोटे तौर पर पूर्वी और पश्चिमी तटवर्ती मैदानों को विभाजित करती हैं। दक्षिण में विस्तृत पूर्वी तटवर्ती मैदान और इससे जुड़े भीतरी प्रदेश तमिलनाडु में आते हैं। तमिलनाडु के तटवर्ती जिलों में भारी मात्रा में चावल पैदा होता है। कावेरी का मैदान और इसका डेल्टा इस क्षेत्र का अधिकेन्द्र है। इस क्षेत्र की नदियाँ मौसमी हैं इसलिए यहां के किसान पल्लव चोल कालों से ही सिंचाई के लिए तालाबों पर निर्भर रहते आए हैं। असिंचित क्षेत्रों में ज्वार, दलहन और तिलहन की फसलें होती हैं। यह जानना रोचक है कि इन पारिस्थितिक विविधिताओं का उल्लेख, जिनके कारण विविध वैकल्पिक जीवन शैलियाँ अस्तित्व में आई, इस भूमि के प्राचीनतम साहित्य यानी संगम साहित्य में प्राप्त होता है। भौगोलिक, भाषायी और सांस्कृतिक रूप से इस प्रदेश की अपनी निजी पहचान बनी है।

पश्चिमी तटवर्ती मैदान भी सुदूर दक्षिण में मालावार यानी आज के केरल राज्य तक फैला हुआ है। केरल में धान तथा अन्य फसलों के अलावा काली मिर्च तथा अन्य मसालों का उत्पादन भी होता है पश्चिम के साथ केरल इन मसालों का व्यापार उत्तर मौर्य काल से ही होता आया है। तमिलनाडु की ओर से केरल में प्रवेश पालघाट घाटी के द्वारा और पश्चिमी घाट के दक्षिणी छोर से संभव है। भूमि से अपेक्षाकृत अलग-थलग केरल राज्य, समुद्र की ओर से पूरी तरह खुला हुआ है। यह एक रोचक सत्य है कि भारत में ईसाई प्रभाव और बाद में मुस्लिम प्रभाव समुद्र के माध्यम से ही आया। यह ध्यान देने योग्य है कि केरल और तमिलनाडु, दोनों ही प्रदेश गंगा के मैदान की तरह घने आबाद हैं।

बोध प्रश्न 2

1 निम्न में से कौन से कथन सही (✓) अथवा गलत (×) हैं:

i) पूर्वी हिमालय क्षेत्र चीन के सांस्कृतिक प्रभावों से अछूता रहा।
ii) हड़प्पा पंजाब में अवस्थित है।
iii) गंगा के मैदान में सबसे अधिक मानव बस्तियां फली फूलीं।
iv) दक्कन पठार का तटवर्ती मैदान बम्बई और पालघाट के बीच बहुत चौड़ा है।

2 खाली स्थान भरिए:

i) हिमालय को .... (पांच /तीन) मुख्य .... (क्षेत्रों /इकाइयों) में बांटा जा सकता है।

ii) कच्छ का रन .... (वर्षा /शरद) ऋतु के दौरान .... (समुद्र /दलदल) में बदल जाता है।

iii) सुदूर दक्षिण की असिंचित भूमि .... (गेंहू /जौ /ज्वार) और .... (तिलहन / चावल) पैदा करती है।

iv) तेलंगाना .... (नदियों /तालाबों) की और कृत्रिम .... (खेती /सिंचाई) की भूमि हो गई है।

1.5 सारांश

भारतीय उपमहाद्वीप में प्राकृतिक विभाजन मोटे तौर पर भाषाई क्षेत्रों के अनुरूप है। इन भाषाई क्षेत्रों ने समयानुकूल विकसित होकर अपनी अलग सांस्कृतिक पहचान कायम की। विभिन्न प्राकृतिक भागों के लोगों को विभिन्न रुचियां, भोजन संबंधी आदतें और वस्त्र शैलियां हैं। ये आदतें और रुचियां विभिन्न प्राकृतिक क्षेत्रों की सीमाओं के अन्दर विकसित हुए संसाधनों के उपयोग के तरीके, पर्यावरणीय व्यवस्था और जीवन के ढंग से पैदा हुईं। बृहद क्षेत्रों के अन्दर और दो बृहद क्षेत्रों के बीच जो असमान विकास हुआ उसे इन क्षेत्रों में उपलब्ध या अनुपलब्ध संसाधनों के संदर्भ में, और मानवीय तथा तकनीकी हरित क्षेत्र के आधार पर समझा जा सकता है। देश की प्रमुख नदीयां घाटियां, जिनमें प्रति वर्ष वर्षा का औसत पचास

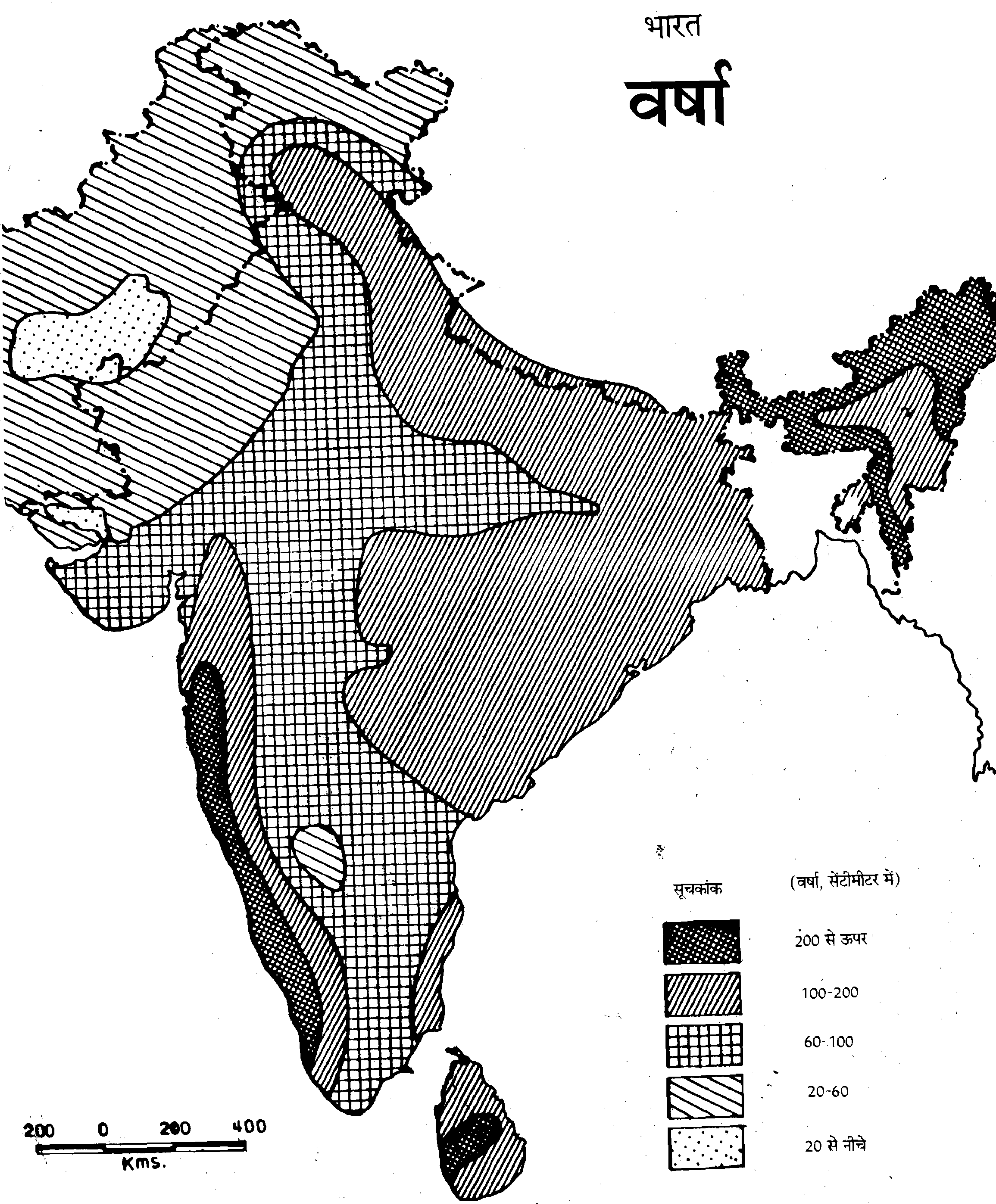
भारत
वर्षा
सूचकांक
(वर्षा, सेंटीमीटर में)
200 से ऊपर
100-200
60-100
20-60
20 से नीचे
200 0 200 400
Kms.

मानचित्र 3.

भारत

वनों के प्रकार

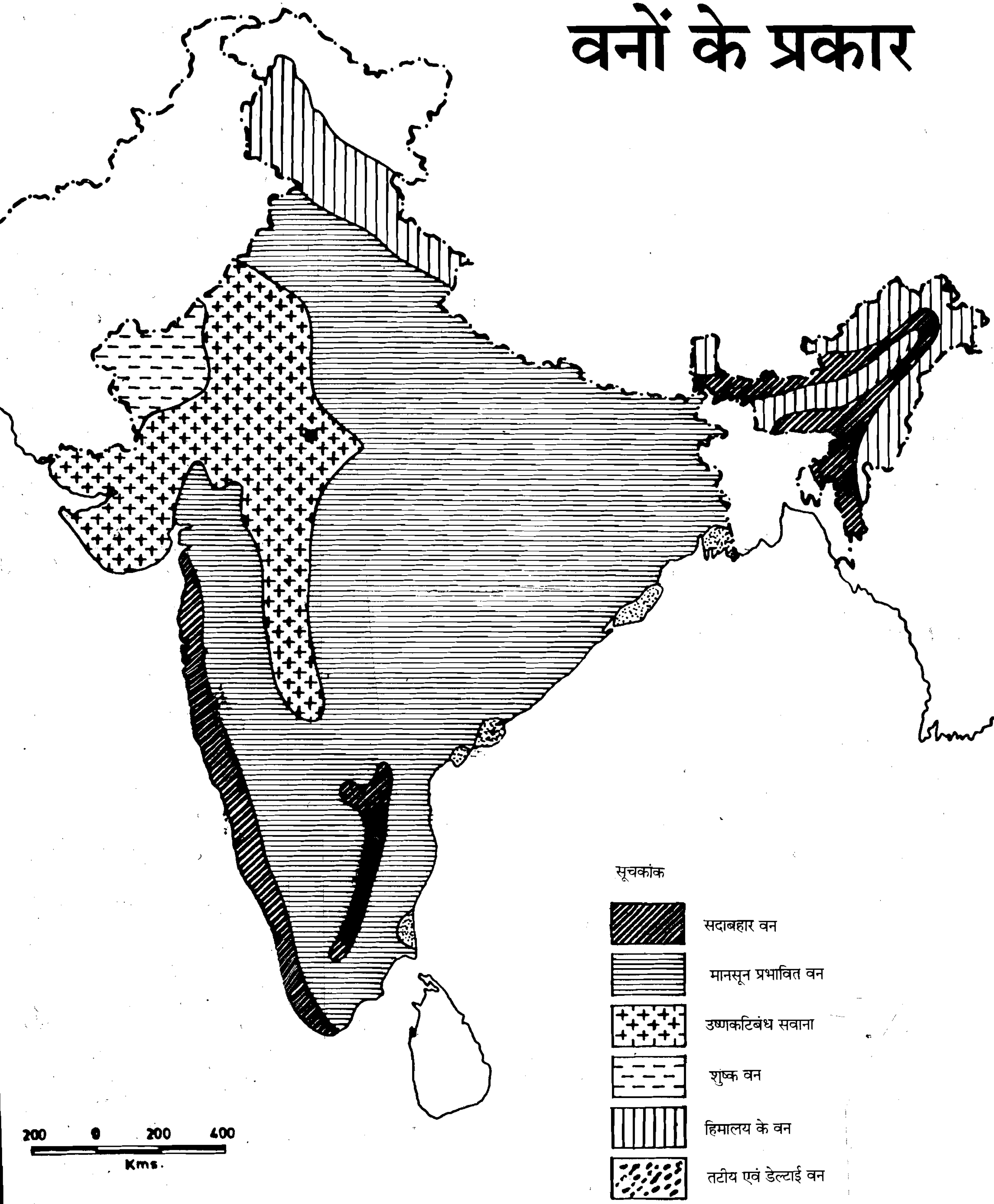

मानचित्र 4.

और सौ सेंटीमीटर के बीच रहा है और जो बड़े पैमाने पर कृषि समुदायों को पोषण प्रदान करने में सक्षम रही हैं, वे युगों से पूरी तरह आबाद रही हैं। कम या अधिक वर्षा वाले क्षेत्र अनुर्वरता और घनी वन्य वनस्पति की समस्याओं से ग्रस्त रहे हैं। और ऐसे क्षेत्र कृषि के लिए अधिक उपयुक्त नहीं रहे हैं। उपमहाद्वीप में इष्टतम वर्षा वाले क्षेत्र और कृषि के लिए साफ किए गए क्षेत्रों में आश्चर्यजनक सह-सम्बन्ध पाया गया है (मानचित्र देखिए)। ऐतिहासिक प्रक्रियाओं का विकास सभी जगह न तो संतुलित हुआ है और न एक-जैसा।

उत्तर में हिमालय और दक्षिण, दक्षिण-पश्चिम और दक्षिण-पूर्व में समुद्री सीमाओं से घिरा भारतीय उपमहाद्वीप एक बन्द और अलग क्षेत्र होने का आभास कराता है। मगर इन सीमाओं के पार से सांस्कृतिक प्रभावों का आदान-प्रदान होता रहा, और इस महाद्वीप के पश्चिम, पश्चिम-एशिया और दक्षिण पूर्व एशिया के साथ समुद्र मार्ग से सम्बन्ध बने रहे। आन्तरिक रूप से मध्य भारत का ऊबड़-खाबड़ और दुर्गम पहाड़ी प्रदेश, देश के विभिन्न प्रदेशों के बीच विचारों और प्रभावों के अदान-प्रदान के मार्ग में कभी भी वास्तविक बाधा नहीं बन सका। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हालांकि भूगोल और पर्यावरण ऐतिहासिक विकास को पूरी तरह नियत नहीं करते, फिर भी उसे पर्याप्त मात्रा में प्रभावित करते हैं।

1.6 शब्दावली

अनुकूलन नीति: मनुष्य द्वारा अपनाई गई वह नीति या ढंग जिससे वह नए पर्यावरण या संस्कृति के साथ सामंजस्य करता है उसके अनुकूल स्वयं को ढालता है।

जलोढ़ मैदान: नदी द्वारा लाई गई मिट्टी या बालू आदि के इकट्ठा होने से बना मैदान।

जाति-कृषक आधार: प्रारंभिक व्यवस्थित कृषि-समाज से सम्बन्धित, जिसके सदस्य सामाजिक रूप से जाति-आधार पर वर्गीकृत थे। ये सदस्य अपने समाज के खेती करने वाले सदस्यों की पैदावार पर निर्भर रहते थे।

ताम्र पाषाण युगीन बस्तियां: उस युग का प्रतिनिधित्व करने वाली बस्तियां जिसमें पत्थर और तांबे दोनों से ही निर्मित वस्तुओं का उपयोग होता था।

सीमान्त क्षेत्र: एक कृषिक बस्ती के बाहर का क्षेत्र सामान्य रूप से ऐसे क्षेत्रों का कुछ सामाजिक-आर्थिक सम्बन्ध मुख्य बस्ती से होता था। उदाहरण के लिए, ऐसे सीमान्त क्षेत्रों में रहने वाले खानाबदोश मुख्य बस्ती को दूध, भेड़, खाल, ऊन आदि की आपूर्ति किया करते थे।

भौगोलिक निकटता: प्राकृतिक रूप से निकटवर्ती या साथ-साथ लगे क्षेत्र।

भाषाई विभाजन क्षेत्र: प्राकृतिक क्षेत्र का उस क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषाओं के आधार पर विभाजन।

तटवर्ती: समुद्र तट पर स्थापित।

चित्रित भूरे या धूसर भांड संस्कृति: गंगा दोआब क्षेत्र में प्राप्त भूरे रंग के बर्तनों या भांडो से सम्बन्धित संस्कृति।

पशुचारण: वह पेशा या व्यवसाय जिसके तहत पशु पाले जाते हैं।

भू-आकृतिक क्षेत्र या प्राकृतिक क्षेत्रों के अर्थ में: भारत के भू-आकृतिक या प्राकृतिक क्षेत्रों के अर्थ में।

तकनीकी हस्तक्षेप: एक क्षेत्र की संसाधन क्षमता के विकास में नई तकनीकों और जानकारियों का प्रभाव।

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 (1)

2 आपके उत्तर में भारी उपजाऊ भूमि, सिंचाई सुविधाएं, पत्थर लकड़ी जैसे विभिन्न संसाधनों की निकटता आदि को शामिल किया जाना चाहिए। देखिए उप-भाग 1.2.1।

3 i) उत्थान और पतन, हमारी मदद करते हैं
ii) करने का प्रयास करता है
iii) तीन
iv) उपक्षेत्र

बोध प्रश्न 2

1 i) × ii) ✓, iii) ✓, iv) ×

2 i) तीन, भागों ii) वर्षा, दलदल
iii) ज्वार, तिलहन iv) तालाब सिंचाई

इकाई 2 भारतीय इतिहास में क्षेत्र: गठन एवं विशेषताएं

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 क्षेत्रीय परिवर्तन के कारण
  2.2.1 ऐतिहासिक क्षेत्रों के उदय की असमान प्रक्रियाएं
  2.2.2 मृत्कला प्रमाण
  2.2.3 साहित्यिक प्रमाण
2.3 भारतीय इतिहास में क्षेत्रों की महत्ता
  2.3.1 चक्रवर्ती संकल्पना
2.4 क्षेत्रों की श्रेणीबद्धता
  2.4.1 बुनियादी भौगोलिक प्रभाव
  2.4.2 केन्द्रीय क्षेत्र
  2.4.3 समय एवं स्थान के संदर्भ में बस्तियों की संरचना
2.5 प्राचीन भारत में कुछ क्षेत्रों का गठन
  2.5.1 गांगेय थाला
  2.5.2 तमिल देश
  2.5.3 दक्कन: आंध्र एवं महाराष्ट्र
  2.5.4 कलिंग एवं प्राचीन उड़ीसा
  2.5.5 उत्तर-पश्चिम
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ सकेंगे कि:

- भारतीय इतिहास के विभिन्न चरणों को समझने के लिए (भारतीय) भौगोलिक क्षेत्रों की जानकारी क्यों आवश्यक है,
- इन क्षेत्रों का उदय कैसे हुआ, तथा
- एक क्षेत्र दूसरे क्षेत्र से किस रूप में भिन्न था।

2.1 प्रस्तावना

इकाई 1 में हमने देखा कि भारतीय उपमहाद्वीप कई क्षेत्रों से मिलकर बना है और प्रत्येक क्षेत्र की अपनी विशेषताएं हैं देश के ऐतिहासिक उद्‌भव की प्रक्रिया में क्षेत्रों ने विशेष सांस्कृतिक विशिष्टताएं ग्रहण की तथा कई आधारों पर जैसे समान ऐतिहासिक परंपरा, भाषा, सामाजिक संगठन, कलाएं आदि, हम एक क्षेत्र से दूसरे की भिन्नताओं को इंगित कर सकते हैं। इस प्रकार भारतीय इतिहास में समान सामाजिक तथा सांस्कृतिक रीतियों एवं संस्थाओं तथा साथ ही क्षेत्रीय विशिष्टताओं की संरचना के स्थायित्व की दोहरी प्रक्रिया देखने को मिलती है।

यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि इतिहास में क्षेत्रों के उदय की प्रक्रिया का स्वरूप असमान रहा है। अत: वर्तमान की भांति भूत में भी विभिन्न क्षेत्रों में ऐतिहासिक परिवर्तन की प्रक्रिया में काफी असमानताएं रही हैं यद्यपि कोई भी क्षेत्र कभी भी पूरी तरह से कटा हुआ नहीं रहा है। इस इकाई में भारतीय इतिहास में क्षेत्रों के गठन की प्रक्रिया तथा क्षेत्रीय विभिन्नताओं पर प्रकाश डाला जाएगा। स्थान एवं काल के आधार पर भारतीय समाज के उद्‌भव के विभिन्न

चरणों में भिन्नता को समझने के लिए भारतीय उप महाद्वीप का गठन करने वाले क्षेत्रों के स्वरूप की जानकारी अत्यावश्यक है।

2.2 क्षेत्रीय परिवर्तन के कारण

क्षेत्रों तथा क्षेत्रीय संस्कृतियों के बीच विभिन्नताओं के चिह्न संभवत: खाद्य उत्पादन के रूप में जीवन यापन के नए साधन की शुरुआत के साथ ढूंढे जा सकते हैं। उपमहाद्वीप की मुख्य नदियों के क्षेत्रों में कृषि आधारित अर्थव्यवस्था की शुरुआत मात्र एक घटना नहीं बल्कि एक प्रक्रिया थी जो कई सहस्त्राब्दियों में फैली हुई थी। कच्ची मैदान (जो कि अब पाकिस्तान में है) के अंतर्गत मेहर गढ़ में कृषिगत् गतिविधियां अपेक्षाकृत जल्दी लगभग 6000 ईसा पूर्व से पहले ही आरंभ हो गयीं थी तथा सिंधु घाटी में चौथी-तीसरी सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व में, गंगा की घाटी में कोलडिहवा (उत्तर प्रदेश) में 5000 ईसा पूर्व में, चिरंद (बिहार) में तीसरी सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व के उत्तरार्ध तथा अतरंजी खेडा (दोआब) में दूसरी सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व के पूर्वार्ध में कृषि की शुरुआत हुई तथापि गंगा घाटी में पूर्ण रूप में नियोजित कृषि, खेतीहर गांव तथा अन्य सम्बद्ध लक्षण जैसे नगर का उदय, व्यापार तथा राज्य प्रणाली आदि प्रथम सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व के मध्य में ही दिखायी देते हैं। मध्य एवं प्रायद्वीपीय भारत में ऐसे कई स्थान थे जहां बदलाव की यह प्रक्रिया प्रथम सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व की अंतिम शताब्दि में ही आरंभ हो सकी। इसी प्रकार गंगा, गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी के क्षेत्रों में कृषक समुदाय तेज़ी से फैलता रहा और सभ्यता के चरणों की विभिन्न प्रक्रियाओं को तेज़ी से तय करता रहा। जबकि असम, बंगाल, गुजरात, उड़ीसा तथा मध्य भारत के काफी क्षेत्र जो कि बाकी क्षेत्रों से अपेक्षाकृत अथवा पूर्णतया कटे हुए थे। काफी लम्बे समय तक इन विकासों से अछूते रहे तथा आदिम अर्थव्यवस्था के चरण से आगे नहीं बढ़ पाए थे। अंतत: जब कुछ अपेक्षाकृत कटे हुए क्षेत्रों में बदलाव की प्रक्रिया का ऐतिहासिक दौर शुरू हुआ तो अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा इन विकासों के बीच न केवल समय का लंबा अंतराल था बल्कि क्षेत्रों के गठन के स्वरूप में भी स्पष्ट अन्तर था। पूर्व विकसित क्षेत्रों के मुख्य केन्द्रों का सांस्कृतिक प्रभाव इन कटे हुए क्षेत्रों के विकास की प्रक्रिया पर आरंभ से ही पड़ा। अत: आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि कुछ क्षेत्र अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक तेज़ी से विकसित हुए तथा अभी भी कुछ क्षेत्र हैं जो अन्य की अपेक्षा पिछड़े हुए हैं।

2.2.1 ऐतिहासिक क्षेत्रों के उदय की असमान प्रक्रियाएं

जैसा कि हमने इकाई 1 में देखा, अनेक क्षेत्रों में सांस्कृतिक विकास की असमान प्रक्रिया तथा ऐतिहासिक शक्तियों का असमान विन्यास भूगोल से अत्यधिक प्रभावित रहा। क्षेत्रों के असमान्य विकास को ऐतिहासिक स्थितियों द्वारा दर्शाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, तीसरी सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व के उत्तरार्ध में गुजरात में मध्य पाषाण युगीन संस्कृति मौजूद थी जबकि इसी समय दकनी क्षेत्रों में नवपाषाण युगीन पशु पालक काफी संख्या में मौजूद थे। ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि अन्य क्षेत्रों के इन संस्कृतियों के युग में ही हड़प्पा जैसी विकसित सभ्यता विद्यमान थी। फलत: विकास के विभिन्न चरणों में क्षेत्रों एवं संस्कृतियों के एक दूसरे से प्रभावित होने के प्रमाण मिलते हैं। यह प्रक्रिया भारतीय इतिहास के हर दौर में दिखायी देती है। दूसरे शब्दों में, जहां एक ओर सिंधु एवं सरस्वती के क्षेत्रों में घुमक्कड़ लोग तीसरी सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व में बसने लगे थे वही दूसरी ओर दकन, आंध्र, तमिलनाडु, उड़ीसा एवं गुजरात में बड़े पैमाने पर खेतिहार समुदाय बुनियादी रूप में लौह-युग में गठित हुए जो कि प्रथम सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व का उत्तरार्ध अनुमानित किया जा सकता है।

लोहे के प्रादुर्भाव के साथ ही स्थायी कृषिगत् गतिविधि पर आधारित भौतिक संस्कृति का प्रसार आरंभ हुआ। तीसरी सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व के आरंभ से गांगेय उत्तरी भारत तथा मध्य भारत के सीमावर्ती क्षेत्रों की भौतिक संस्कृति में काफी कुछ समानता दिखायी देती है। यद्यपि अशोक के शिला लेखों के भौगोलिक वितरण (जो कि उत्तर से दक्षिण तक मिलते हैं) के कारण पूरे उपमहाद्वीप में कुछ हद तक सांस्कृतिक समानता स्वीकार की जाती है, विंध्याचल के दक्षिण के क्षेत्रों में जटिल सामाजिक संरचना वाले आरंभिक ऐतिहासिक, साक्षर युग के उदय की प्रक्रिया मौर्य युग में तथा उसके उपरांत तेज़ हुई।

वास्तव में उत्तर मौर्य युग, 200-ईसा पूर्व 300-ईसवी दक्षिण भारत तथा दक्कन के अधिकतर क्षेत्रों की संस्कृति के विकास का आरंभिक चरण था। इन क्षेत्रों की ऐतिहासिक बस्तियों की खुदाई से प्राप्त पुरातात्विक आंकड़ों से इस तर्क को बल मिलता है। यहां यह बताना आवश्यक है कि बीच के काफी क्षेत्र अथवा मध्य भारत की जंगली पहाड़ियां कभी भी पूरी तरह नहीं बसीं और आदिम युगीन अर्थव्यवस्था के विभिन्न चरणों में आदिवासियों को शेष मानव समाज से अलग रहने का अवसर देती रहीं। इस उपमहाद्वीप में सभ्यता तथा पारंपरिक सामाजिक संगठन के रूप में अधिक जटिल संस्कृति विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न कालों में पहुंची तथा अपेक्षाकृत अधिक विकसित भौतिक संस्कृति का क्षेत्रीय प्रसार काफी असमान रहा।

2.2.2 मृत्कला प्रमाण

अपने अनश्वर गुण के कारण मृत्भाण्ड किसी संस्कृति की पहचान का विश्वस्नीय चिह्न होते हैं तथा पुरातत्वात्मक श्रेणीबद्धता का महत्वपूर्ण साधन होते हैं। विभिन्न संस्कृतियां अपने विशिष्ट मृत्भाण्ड के आधार पर पहचानी जाती हैं। गेरू चित्रित मृत्भाण्ड जो कि 1000 ईसा पूर्व से पहले के हैं, चित्रित भूरे मृत्भाण्ड जो 800–400 ईसा पूर्व के बीच के हैं, काले एवं लाल मृत्भाण्ड जो उपरोक्त दोनों के बीच के काल के हैं, तथा उत्तरी काले पालिश वाले मृत्भाण्ड जो कि 500–100 ईसा पूर्व के हैं। मृत्भाण्ड की प्रथम तीन श्रेणियां मुख्यत: भारत-गांगेय विभाजन तथा दोआब सहित ऊपरी गंगा घाटी में मिलते हैं। काली पालिश वाले मृत्भाण्ड उत्तरी मैदान से आरंभ होकर मौर्य काल के दौरान मध्य भारत तथा दक्कन तक फैल गए।

विभिन्न प्रकार के मृत्भाण्डों के वितरण से हमें संस्कृतियों की सीमाओं तथा उनके विस्तार के चरण के विषय में जानकारी प्राप्त होती है: भारत-गांगेय विभाजन तथा ऊपरी गंगा क्षेत्र में एक नई संस्कृति का उदय सर्वप्रथम दूसरी सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व के उत्तरार्ध में हुआ जो कि धीरे-धीरे पूर्व की ओर फैली जो मौर्य काल में संभवत: मुख्य गांगेय क्षेत्र से भी आगे बढ़ गई।

2.2.3 साहित्यिक प्रमाण

प्राचीन भारतीय साहित्य से हमें संस्कृति स्वरूप के भौगोलिक प्रसार के प्रमाण भी मिलते हैं। ऋग वैदिक काल का भौगोलिक केन्द्र बिंदु सप्तसिंधु (सिंधु तथा इसकी सहायक नदियों की भूमि) तथा भारत-गांगेय विभाजन था। उत्तर वैदिक काल में दोआब ने यह स्थान ले लिया तथा बुद्ध के युग में मध्य गांगेय घाटी (कौशल एवं मगध) को यह गौरव प्राप्त रहा यहां यह कह देना उपयुक्त होगा कि भौतिक संस्कृति के विकास के साथ ही भौगोलिक विस्तार के चरणों का विकास होता रहा। राज्य सीमा के अर्थों में राष्ट्र शब्द का प्रयोग उत्तर वैदिक काल में आरंभ हुआ और इसी काल में कुरू और पांचाल जैसे क्षेत्रों में छोटे-छोटे राजवंशों एवं राज्यों का उदय हुआ। बुद्ध के युग में (छठवीं शती ईसा पूर्व) सोलह महाजनपदों (बड़े क्षेत्रीय राज्य) का उदय हुआ। यहां रुचिकर तथ्य यह है कि उत्तर पश्चिम में गांधार, मालवा में अवंती तथा दक्कन में अस्माक को छोड़कर अधिकतर **महाजनपद** ऊपरी एवं मध्य गांगेय घाटी में स्थित थे। कलिंग (प्राचीन तटवर्ती उड़ीसा) आंध्र, वंग (प्राचीन बंगाल) राजस्थान एवं गुजरात जैसे क्षेत्रों को इस युग पर प्रकाश डालने वाले साहित्य में स्थान नहीं मिला जिसका अर्थ यह है कि इन राज्यों का तब तक ऐतिहासिक रंगमंच पर प्रादुर्भाव नहीं हुआ था।

विंध्याचल के दक्षिण के राज्यों, जैसे कलिंग, का उल्लेख सर्वप्रथम पाणिनि ने पांचवीं शती ईसा पूर्व में किया सुदूर दक्षिण में तमिल भू-भाग का ऐतिहासिक काल में प्रवेश तक नहीं हुआ था। अत: विभिन्न क्षेत्रों का उदय और गठन एक दीर्घकालीन प्रक्रिया थी। अत: आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि विभिन्न क्षेत्रों की तकनीकी एवं सामाजिक-आर्थिक विकास का यह अन्तर बाद में पनपने वाली सांस्कृतिक विभिन्नता के मूल में रहा।

बोध प्रश्न 1

1 निम्नलिखित कथनों में से कौन सा सही (✓) है और कौन सा गलत (×) है ?

i) क्षेत्रों के असमान विकास की व्याख्या ऐतिहासिक परिस्थितियों के आधार पर नहीं की जा सकती। ( )

ii) पूर्व विकसित क्षेत्रों में सांस्कृतिक विकासों ने पृथक क्षेत्रों पर प्रभाव छोड़ा। ( )

iii) क्षेत्रों के अभ्युदय की प्रक्रिया हर स्थान पर समान रूपी थी। ( )

iv) विभिन्न संस्कृतियों की पहचान उनके विशिष्ट मृत्भाण्ड से होती है। ( )

v) क्षेत्रों की पहचान करने में साहित्य का कोई उपयोग नहीं है। ( )

2 लगभग पाँच पंक्तियों में विभिन्न मृत्भाण्ड कलाएँ और उनसे संबद्ध कालों का विवेचन कीजिए।

....

....

....

....

....

2.3 भारतीय इतिहास में क्षेत्रों की महत्ता

सभी क्षेत्रों में गांव ही बुनियादी सामाजिक संगठन के इकाई रहे हैं और अपने निवासियों तथा शहरी जनता के जीवन यापन तथा राज्य की शक्ति का आधार रहे हैं इनमें से कुछ क्षेत्रों में जनसंख्या का घनत्व, ग्रामीण बस्तियाँ एवं नागरिक केन्द्र अपेक्षाकृत अधिक थे तथा शक्तिशाली विस्तारवादी राज्यों का इन क्षेत्रों में उदय हुआ। इन क्षेत्रों में नव पाषाण युग-ताम्र पाषाण युग से लगातार आबादियाँ तथा बस्तियां होने का प्रमाण मिलता है। यह विशेषता अन्य क्षेत्रों में दिखायी नहीं देती। क्षेत्रों के बीच के अन्तर की व्याख्या निम्न तथ्यों के आधार पर की जा सकती है:

- भूगोल,
- भौतिक संस्कृति के प्रसार का तरीका एवं काल, तथा
- ऐतिहासिक शक्तियों का विन्यास जैसे जनसंख्या, तकनीकी, सामाजिक संगठन, सिंचाई आदि इन तमाम कारणों का संयोग क्षेत्रों की अलग पहचान बनाने में सहायक हुआ।

क्षेत्रों के पृथक एवं मजबूत व्यक्तित्व तथा क्षेत्रीय शक्तियों की असमानता के कारण भारतीय उपमहाद्वीप राजनैतिक एकता प्राप्त न कर सका। कुछ लोगों ने अपनी आंतरिक शक्ति के कारण अखिल भारतीय, अथवा कई क्षेत्रों की सबसे बड़ी शक्ति बनने के उद्देश्य से राज्य विस्तार का प्रयास किया किंतु इन प्रयासों को पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई। मौर्य, तुगलक, मुगल तथा ब्रिटिश साम्राज्यों को राजनैतिक एकीकरण में आंशिक सफलता मिली फिर भी इनमें से कोई भी सभी भौगोलिक इकाइयों और संस्कृतियों में राजनैतिक एकता नहीं ला सका, यद्यपि ब्रिटिश बहुत हद तक इसमें सफल रहे थे। मध्य भारत, या मोटे तौर पर मध्यवर्ती क्षेत्र तथा भारतीय प्रायद्वीप का दूरवर्ती सदैव ही मजबूत विस्तार वादी अखिल भारतीय शक्ति के दायरे से बाहर रहा। जैसा कि इकाई 1 में संकेत दिया गया था, विंध्याचल उत्तरी भारत तथा दक्षिण प्रायद्वीप के इतिहासों को पृथक करने में बहुत कुछ सफल रहा। इसी प्रकार अरावली पहाड़ियाँ कैम्बे खाड़ी के मुख से शुरू होकर दिल्ली तक एक सीमान्ती रेखा तैयार करती हैं। वास्तव में यह बहुत प्रभावी सीमा रही है। तथापि सिन्धु का निचला थाला और गुजरात काफी लम्बे समय तक ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक केन्द्र बने रहे। इस प्रकार जहाँ एक ओर बड़े पैमाने पर केन्द्रीयकृत राज्य लम्बे समय तक बने न रह सके वहीं दूसरी ओर मगध, कौशल अवन्ती आंध्र, कलिंग, महाराष्ट्र, चेर, पाण्ड्य, चोल आदि जैसे प्राचीन राज्य किसी न किसी वंश के अंतर्गत बने रहे। उनके इस दीर्घकालीन स्थायित्व का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि इस प्राकृतिक क्षेत्र में राजनैतिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र बने रहे।

2.3.1 चक्रवर्ती संकल्पना

चक्रवर्ती (विश्व सम्राट) की संकल्पना जो कि प्राचीन भारतीय राजनैतिक विचारों का आदर्श थी इस विषय पर प्रकाश डालती है। आदर्श चक्रवर्ती के लिए विश्व विजेता होना तथा सम्पूर्ण

विश्व पर प्रभुत्व स्थापित करना आवश्यक था। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' के अनुसार हिमालय से समुद्र तट का क्षेत्र चक्रवर्ती सम्राट का क्षेत्र था। रुचिकर तथ्य यह है कि उक्त क्षेत्र उतना ही है जितना भारतीय उपमहाद्वीप है। बाद की कई कृतियों में इस आदर्श को बार-बार दोहराया गया है। जो राजा विश्व-सम्राट का स्तर प्राप्त करना चाहता था उसे अश्वमेघ यज्ञ करना होता था। प्राचीन भारतीय राजनैतिक विचारों में चक्रवर्ती की संकल्पना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस प्रकार राजा की परिकल्पना सदैव विश्व प्रभुत्व से संबद्ध थी। लेकिन न तो कौटिल्य और न ही उसके उत्तराधिकारी इस बात की व्याख्या करते हैं कि सम्पूर्ण भारतीय साम्राज्य का प्रशासन किस रूप में होना चाहिए। संभावना इस बात की है कि चक्रवर्ती आदर्श का अर्थ विरोधियों को वशीकृत करना, उनकी सीमाओं में अपने अधिकारों का विस्तार करना और इस प्रकार साम्राज्य को विस्तृत बनाना था। इसका अर्थ यह नहीं है कि वशीकृत राज्य हमेशा के लिए एक ही प्रशासन प्रणाली का अंग बन जाते थे अथवा उन पर कठोर नियन्त्रण रखा जाता था। दूसरे शब्दों में, चक्रवर्ती का अर्थ श्रेष्ठ राजनैतिक शक्ति प्रदर्शन था और प्रशासन प्रबन्ध और संगठन जैसे पक्षों से इसका कोई मतलब नहीं था।

उक्त आदर्श की इस प्रकार की सीमाओं के बावजूद महत्वपूर्ण बात यह है कि प्राकृतिक क्षेत्रों की मज़बूती और शक्तिशाली क्षेत्रवाद ने इस संकल्पना को साकार नहीं होने दिया। भारतीय उपमहाद्वीप को राजनैतिक रूप में एकीकृत करने के प्रयास यद्यपि अधिक सफल नहीं हुए लेकिन यह इच्छा लगातार बनी रही। इस तथ्य के बारे में हमें पूर्व ऐतिहासिक युग के शिलालेखों से संकेत मिलता है कि छोटे-मोटे शासक भी अश्वमेघ यज्ञ किया करते थे जिससे कि वे अपनी शक्ति और संप्रभुता तथा राज्य के प्रति अपने लम्बे चौड़े दावों का प्रमाण प्रस्तुत कर सकें। वास्तव में यह एक स्पष्ट उदाहरण है जो कि वास्तविकता और आदर्श के अन्तर पर प्रकाश डालता है और हमारे पूरे इतिहास में पृथक प्राकृतिक क्षेत्रों के बड़े पैमाने पर विद्यमान होने की ओर संकेत करता है।

2.4 क्षेत्रों की श्रेणीबद्धता

"देश" शब्द की भांति "क्षेत्र" शब्द भी काफी विस्तृत अर्थ रखता है। आज के संदर्भ में इसका अर्थ स्पष्ट करना आवश्यक है। भूगोलशास्त्रियों तथा समाजशास्त्रियों ने अपने अनुसंधान की आवश्यकताओं के अनुरूप क्षेत्रों को भिन्न रूपों में रेखांकित किया है। फलत: क्षेत्रों के वर्गीकरण में "भाषायी क्षेत्र", "जातीय क्षेत्र", "भौतिक क्षेत्र", "प्राकृतिक क्षेत्र", "सांस्कृतिक क्षेत्र" आदि का उल्लेख मिलता है। यद्यपि ये क्षेत्रीय सीमाएँ लगभग समान प्रतीत होती हैं तथापि आवश्यक रूप से हमेशा ऐसा नहीं होता। भौतिक एवं प्राकृतिक क्षेत्रों की सीमाएं अभिसरित प्रतीत होती हैं। प्राकृतिक क्षेत्र अपनी विशिष्ट भाषायी, जातीय, पारिवारिक बंधुत्व संगठन तथा ऐतिहासिक परंपराओं के साथ स्वतंत्र संस्कृति क्षेत्र थे। तथापि आवश्यक नहीं है कि दो पड़ोसी क्षेत्र समरूप हों। जैसा कि हमने ऊपर पढ़ा है, भौगोलिक रूप से निकटवर्ती क्षेत्रों में भी सम्पूर्ण इतिहास के दौरान विपरीत सांस्कृतिक रुझान मौजूद थे। देश के ऐतिहासिक विकास के प्रतिरूप तथा ऐतिहासिक चरण की ओर संक्रमण में क्षेत्रीय असमानता क्षेत्रों के बीच श्रेणीबद्धता के अस्तित्व की ओर संकेत करती है। इस श्रेणीबद्धता की समझ के आधार पर क्षेत्रों की अंतरीय विशिष्टता तथा उनके विभिन्न कालों में गठन को समझा जा सकता है।

2.4.1 बुनियादी भौगोलिक प्रभाव

"भारतीय ऐतिहासिक भूगोल की बुनियादी संरचना रेखा" अथवा भारतीय इतिहास को मुख्य भौगोलिक विशिष्टताओं जैसे नर्मदा-छोटा नागपुर रेखा अथवा कैम्बे की खाड़ी से मथुरा तक जाने वाली रेखा, अरावली द्वारा संरचित रेखा आदि ने उपमहाद्वीप में सांस्कृतिक प्रसार के प्रतिरूप को काफी प्रभावित किया, इनको निम्नलिखित रूप में चार बुनियादी भागों में विभाजित किया गया है:

- मध्य एवं पश्चिमी एशिया से प्रभाव ग्रहण करने वाले सिंधु के मैदान,
- गांगेय मैदान जो कि दिल्ली-मथुरा रेखा से आरंभ होते हैं तथा उत्तर-पश्चिम सीमाओं से आने वाले तमाम राजनैतिक एवं सांस्कृतिक प्रभावों को समाहित कर चुके हैं,
- केन्द्रीय भारतीय मध्य क्षेत्र जिनके गुजरात तथा उड़ीसा दो छोर हैं, तथा

भारत
संरचनात्मक रेखाचित्र

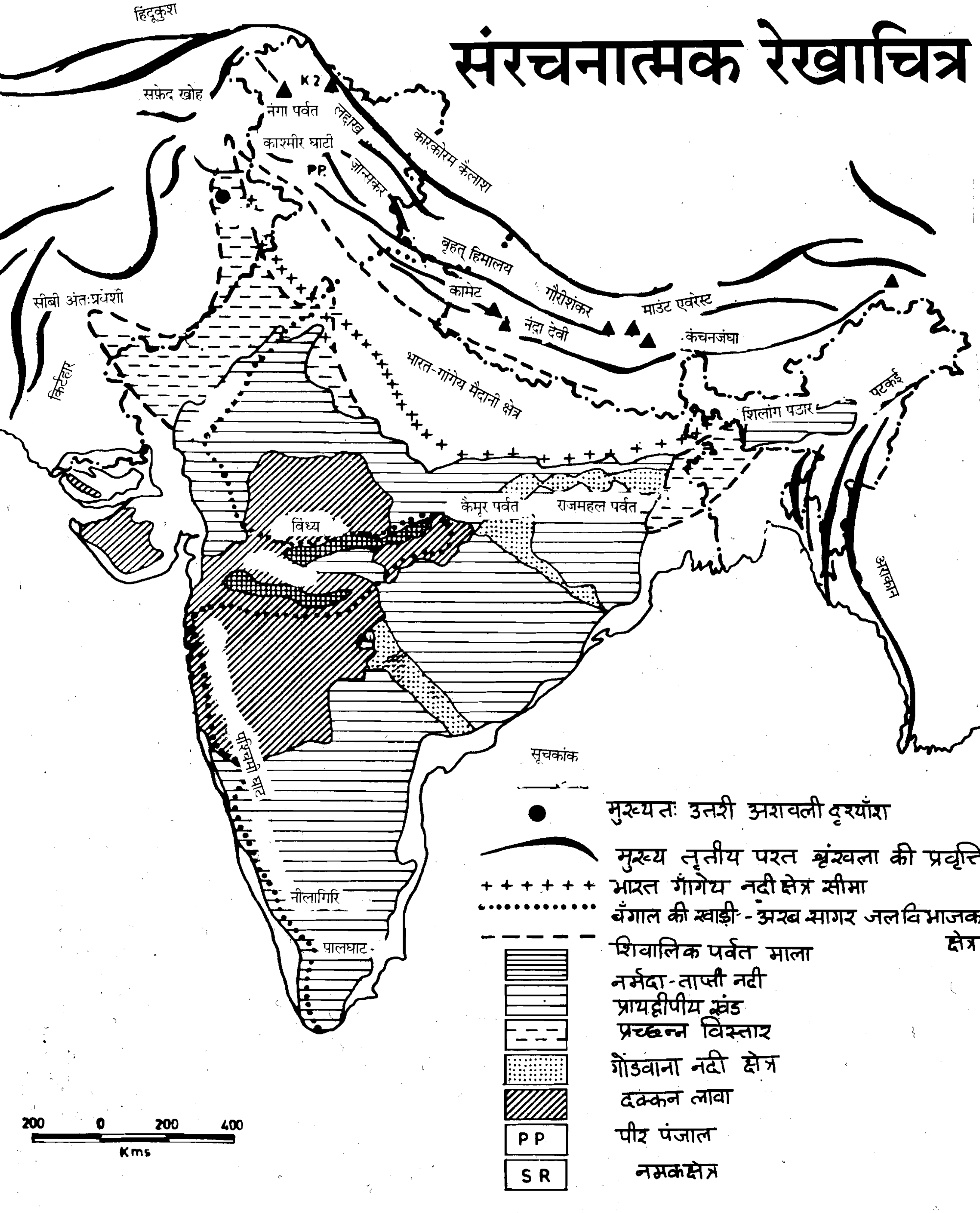

मानचित्र 5.

● प्रायद्वीपीय भारत जो नर्मदा का दक्षिणी भाग है।

अरावली रेखा के उत्तर एवं पश्चिम में सामान्यत: सांस्कृतिक स्थिति भिन्न प्रतीत होती है। आरंभिक ऐतिहासिक दौर में केवल राजस्थान एवं गुजरात के कुछ क्षेत्र गांगेय घाटी के सांस्कृतिक विकास की मुख्य धारा से प्रभावित नज़र आते हैं।

पंजाब के संदर्भ में अन्तर अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट है। ऋग वैदिक काल के बाद पंजाब में विकास की दर धीमी थी। गुप्त काल तक इस क्षेत्र में गैर-राजतंत्रीय जनपदों का नियमित अस्तित्व स्वतंत्र विकास का द्योतक है। इससे क्षेत्र में अविकसित सम्पत्ति संबंध तथा असंतोष-जनक कृषि विकास की ओर भी संकेत मिलता है। पंजाब के मैदानों में भूमि अनुदान शिलालेखों की अनुपस्थिति, जो कि गुप्त काल तथा उत्तर गुप्त काल भारत में सामान्य बात थी, इस विश्वास को और भी बल प्रदान करती है। पंजाब के मैदानों में ब्राह्मणवाद ने कभी जड़ें नहीं पकड़ी थीं और न ही वर्ण व्यवस्था को पूर्ण रूप से स्वीकार किया गया था। ब्राह्मणों ने यदा कदा ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और क्षत्रिय वर्ण शीघ्र ही वर्ण व्यवस्था से लुप्त हो गया। खत्री जो कि स्वयं को क्षत्रिय बताते हैं अधिकतर वैश्यों के व्यवसाय से जुड़े हुए हैं।

इस प्रकार पंजाब गंगा घाटी के दृष्टिकोण से देर से हुए ऐतिहासिक परिवर्तन तथा क्षेत्रीय भिन्नता दोनों ही अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इसी प्रकार नर्मदा-छोटा नागपुर रेखा बुनियादी विभाजन रेखा है क्योंकि गुजरात, महाराष्ट्र एवं उड़ीसा को छोड़कर इस रेखा के दक्षिण के सभी सांस्कृतिक क्षेत्र आरंभिक काल में तमिल मैदानों से प्रभावित नज़र आते हैं। इन क्षेत्रों में भिन्न समुदाय-संगठन तथा जाति श्रेणियां मौजूद थी। महाराष्ट्र, जिसकी सीमा मालवा से मिलती है और चूंकि मालवा और दक्कन लावा क्षेत्र एक दूसरे से जुड़े हुए हैं तथा मालवा गंगा घाटी तथा दक्कन के बीच महत्वपूर्ण सेतु है, अत: यहां विकास प्रक्रिया भिन्न थी। यहां यह उल्लेख अनुचित न होगा कि दक्षिण की ओर जनसंख्या का आवागमन तथा सीमा विस्तार इसी रास्ते से हुआ।

2.4.2 केन्द्रीय क्षेत्र

भारतीय इतिहास में काफी पहले ही कुछ क्षेत्र शक्ति के स्थायी केन्द्र बन गए थे। इन क्षेत्रों में निरंतर शक्तिशाली राज्य बने रहे। इसके विपरीत कुछ क्षेत्र इतने शक्तिशाली नहीं थे। भूगोलशास्त्री एवं इतिहासकार इन्हें तीन वर्गों में विभाजित करते हैं: i) स्थायी केन्द्रीय क्षेत्र ii) अपेक्षाकृत अलग-थलग क्षेत्र तथा iii) अलग-थलग क्षेत्र। स्थायी केन्द्रीय क्षेत्र गंगा, गोदावरी, महानदी, कृष्णा तथा कावेरी जैसी मुख्य नदी घाटियों के क्षेत्र हैं और इन क्षेत्रों में मानवीय बस्तियां अधिकतर संख्या में पायी जाती रही हैं। संसाधनों की उपलब्धता तथा व्यापार एवं संचार के अभिसरण ने इन क्षेत्रों के महत्व को और भी बढ़ा दिया था। तर्कसंगत ही है कि ये क्षेत्र महत्वपूर्ण शक्ति केन्द्रों के रूप में उभरे। किंतु यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि भूगोल और संसाधन केवल संभावनाएं अथवा सीमाएं प्रस्तुत करते हैं। किसी का महत्वपूर्ण केन्द्र होना इस बात पर निर्भर करता है कि ऐतिहासिक कारण क्षेत्र पर किस प्रकार अभिसारित होते हैं। वारंगल के काकातीय राज्य एवं गुजरात के चालुक्य राज्य ऐसे ऐतिहासिक उदाहरण मौजूद हैं जोकि **केन्द्रीय क्षेत्रों** की परिधि से बाहर उदित हुए लेकिन ऐसे उदाहरण छिट-पुट ही हैं। मध्य भारत के अपेक्षाकृत अलग-थलग क्षेत्र, जैसे भीलों का देश, बस्तर एवं राजमहल की पहाड़ियां बस्तियों की संरचना, कृषिगत इतिहास, सामाजिक संगठन तथा राज्य प्रणाली की दृष्टि से केन्द्रीय क्षेत्रों से भिन्न थे। चूंकि क्षेत्रों का विकास ऐतिहासिक रूप में हुआ अत: तीनों प्रकार के क्षेत्रों में अन्तर सदैव एक ही जैसा नहीं था। एक बिन्दु पर एक श्रेणी का दूसरी श्रेणी में परिवर्तित होना संभव था।

2.4.3 समय एवं स्थान के संदर्भ में बस्तियों की संरचना

क्षेत्रों में बस्तियों की संरचना स्थिर नहीं रही। क्षेत्रों में गांव, खेड़े, नगर एवं शहर शामिल होते थे। मध्य गंगा में मैदानों एवं दक्कन जैसे कुछ क्षेत्रों में नगरों की संख्या अधिक थी। जैसे हम गुप्त काल की ओर बढ़ते जाते हैं शहरी केन्द्रों की संख्या कम होती जाती है। कृषि के विस्तार तथा नयी ग्रामीण बस्तियों के प्रसार के निरंतर प्रमाण मिलते हैं। कुछ स्थानों पर आदिवासियों के खेड़े खेतिहर गांव बन गए। आर्थिक गतिविधियों एवं सामाजिक वर्गीकरण के

स्तर पर ब्राह्मण एवं गैर-ब्राह्मण बस्तियों में अन्तर था। इस अन्तर का धीरे-धीरे उन क्षेत्रों में भी प्रसार हो गया जो आरंभिक चरणों में विकास की मुख्य धारा से पूर्णतया जुड़े हुए नहीं थे। इन क्षेत्रों में आदिवासी संस्कृति से अधिक जटिल सामाजिक संरचना की दिशा में परिवर्तन हुए। उदाहरण के लिए, इन क्षेत्रों में संगठित धर्म, राज्य एवं वर्ग समाज का आधार तैयार हुआ। इन परिवर्तनों का अर्थ इन क्षेत्रों में नई बस्तियों का विस्तार तथा जनसंख्या में वृद्धि था। भारतीय इतिहास में सदैव जनसंख्या में अधिक घनत्व वाले क्षेत्र अग्रणी भूमिका निभाते रहे हैं। गंगा घाटी, तमिल मैदान एवं पूर्वी तट सभी ऐसे क्षेत्र थे जहां जनसंख्या का घनत्व अधिक था। संसाधन युक्त तथा अन्य सुविधाओं वाले क्षेत्र स्वाभाविक रूप से अधिक घनी जनसंख्या वाले क्षेत्र थे तथा निरंतर मानवीय संसाधनों का प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होना राज्य की सैन्य शक्ति को बल प्रदान करता था।

बोध प्रश्न 2

1 भारतीय उपमहाद्वीप के राजनैतिक एकीकरण को बाधित करने वाले कारणों की चर्चा दस पंक्तियों में करें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2 चक्रवर्ती संकल्पना से आप क्या समझते हैं ? पांच पंक्तियों में लिखें।

....
....
....
....
....

3 रिक्त स्थानों की पूर्ति करें:

i) प्राकृतिक क्षेत्र . . . (स्वतंत्र /आश्रित) सांस्कृति क्षेत्र होते हैं।

ii) इतिहास में भिन्न संस्कृतियां . . . (नहीं थी /सहअस्तित्व) में विद्यमान थी।

iii) पंजाब में सांस्कृतिक विकास गांगेय घाटी से . . . (भिन्न /मिलता जुलता) था।

iv) भारतीय . . . (अंतरिक्ष विज्ञान / इतिहास) में . . . (अधिक /कम) घनत्व वाले क्षेत्रों की अग्रणी भूमिका रही है।

2.5 प्राचीन भारत में कुछ क्षेत्रों का गठन

गंगा-यमुना दोआब, मध्य गंगा घाटी, मालवा, उत्तरी दक्कन, आंध्र, कलिंग (तटवर्ती उड़ीसा) एवं तमिल मैदान ऐसे मुख्य स्थायी केन्द्रीय क्षेत्र हैं जो शक्ति केन्द्र के रूप में काफी पहले उभर चुके थे। लेकिन कुछ ऐसे छोटे क्षेत्र भी हैं (जिन्हें उप-क्षेत्र कहा जा सकता है) जिन्होंने अपनी पहचान बनाए रखी। कोकान, [illegible]नाडा और छत्तीसगढ़ इसी श्रेणी में आते हैं। कुछ क्षेत्र जैसे कृष्णा और तुंगभद्रा के बीच वेंगी, ऐसे क्षेत्र थे जिनके कृषि संसाधनों की प्रचुरता के कारण इन पर प्रभुता स्थापित करने के लिए निरंतर युद्ध हुए। इन क्षेत्रों पर प्रभुता स्थापित होने से

आसपास के क्षेत्र शक्तिशाली बन सकते थे। मुख्य केन्द्रीय क्षेत्र नदी की मिट्टी वाली उपजाऊ भूमि की विस्तृत उपलब्धता के कारण मुख्य कृषि क्षेत्र भी रहे हैं। अब कुछ उदाहरणों के आधार पर क्षेत्रों के गठन के प्रतिरूपों एवं कारणों पर दृष्टिपात करेंगे।

2.5.1 गांगेय थाला

अधिक उच्च कृषि उत्पादकता तथा जनसंख्या के अधिक घनत्व के कारण गंगा के मैदान भारतीय उपमहाद्वीप में प्रभुत्वशाली रहे हैं। इसके समरूप किसी भी अन्य क्षेत्र का शक्ति आधार नहीं रहा है। किन्तु यह पूरा मैदान जैसा कि इकाई 1 में उल्लेख किया गया है, एक समरूपी भौगोलिक क्षेत्र नहीं है। हम पढ़ चुके हैं कि मध्य गंगा के मैदान कई कारणों से ऊपरी एवं निचले गंगा के मैदानों की अपेक्षा अधिक सफल क्षेत्र रहा और मौर्य काल तक आते-आते इस क्षेत्र ने पूरे उपमहाद्वीप पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। ऋग वैदिक काल के दौरान भारत गांगेय विभाजन इसका केन्द्र था। उत्तर वैदिक काल में 2000 ईसा पूर्व के आसपास भौगोलिक केन्द्र गंगा-जमुना दोआब बन गया। इसके साथ ही वैदिक कालीन बस्तियाँ पूर्व की ओर फैलने लगीं। लेकिन इसके अधिक महत्वपूर्ण विकास का दौर बैलों वाले हल के प्रयोग द्वारा स्थायी खेतिहर जीवन के आरंभ से होता है जिसके परिणामस्वरूप राज्य सीमाएं एवं राष्ट्र एवं जनपदों का उदय हुआ। कुरू और पांचाल इसके अच्छे उदाहरण हैं। छटी शती ईसा पूर्व से जनपदों के उदय की प्रक्रिया तेज हो गयी थी। इसी समय सर्वप्रथम महाजनपदों का उदय होता है जिसमें छोटे जनपद समाहित हो जाते हैं। समकालीन साहित्य में महाजनपदों की संख्या सोलह बतायी गयी है।

रहने योग्य स्थान बनाने के लिए घने जंगलों को आग लगाकर अथवा धातु के औजारों से साफ किया गया। धान की उपज वाली मध्य गंगा घाटी में लोहे के हल, द्वारा गहरी जुताई के कारण अन्न का उत्पादन बढ़ गया। बढ़ती हुई जनसंख्या ने अधिक उपज की आवश्यकता को जन्म दिया। विशेषकर इस अधिक जनसंख्या वाले समाज का एक वर्ग जिसमें शासक, अधिकारी, पुरोहित, सन्यासी आदि शामिल थे किसी प्रकार की प्रत्यक्ष उत्पादन प्रक्रिया में भाग नहीं लेते थे। स्थानीय उपभोगी आवश्यकता से अधिक इस कृषि उत्पादन से नगरों के उदय एवं विकास को बढ़ावा मिला। इस काल के मिट्टी के बर्तन उत्तरी काली पालिश वाले (Northern Black Polish Ware) बर्तन हैं जो 500 ईसा पूर्व के लगभग के हैं। इसी समय सर्वप्रथम सिक्कों का चलन आरंभ होता प्रतीत होता है। बढ़ते हुए व्यापार एवं वाणिज्य के कारण सिक्कों की आवश्यकता महसूस की गयी। उत्तरी काली पालिश वाले बर्तनों का कौशल एवं मगध से उत्तर-पश्चिम में तक्षशिला, पश्चिमी मालवा में उज्जैन तथा तटवर्ती आंध्र में उमरावती जैसे सुदूर नगरों तक फैल जाना संगठित वाणिज्य एवं संचार का द्योतक है जिसने इन सुदूर नगरों के बीच संबंध जोड़ दिया। इस विकास के साथ ही भारी सामाजिक परिवर्तन हुए। बस्तियों में स्थायी जीवन के जड़ पकड़ने के कारण वन विचरण तथा आदिवासी जीवन पद्धति धीरे-धीरे कम होने लगी। उत्तर वैदिक काल की जनता मूल निवासियों के काफी नजदीकी सम्पर्क में आयी। उत्तर वैदिक साहित्य में इस संपर्क तथा आपसी मेल-जोल के प्रमाण मिलते हैं। इन विकासों की पृष्ठभूमि में सर्वप्रथम कुछ हद तक श्रम विभाजन और तदोपरांत व्यवसायों के विस्तार एवं उनमें विशिष्ट दक्षता प्राप्त करने की नयी परिस्थिति ने चार वर्णों की जाति व्यवस्था के लिए उपयुक्त माहौल तैयार कर दिया।

जनपदों एवं महाजनपदों के अभ्युदय (विस्तृत जानकारी के लिए खंड 4 देखें) के साथ ही काफी बड़े पैमाने पर सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिवर्तन प्रकट हुए। प्रत्येक जनपद में आम तौर पर ग्राम, निगम (बड़ी बस्तियाँ जहां व्यापार विनिमय होता था) एवं नगर हुआ करते थे। जंगल (वन) भी जनपदों का एक हिस्सा होते थे। जनपद मूलत: सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र होते थे। इन्होंने राज्य के गठन का आधार तैयार किया, जिसे 6वीं शती ईसा पूर्व में मूर्तरूप प्राप्त हुआ। महाजनपदों के उदय के साथ महानगरों और तदानुरूप धनी एवं निर्धन सामाजिक वर्ग का उदय हुआ। यह पूरी प्रक्रिया मध्य गंगाघाटी में अपने चर्मोत्कर्ष पर मौर्य काल में पहुंची। इस प्रकार समाज में सत्ता का जन्म हुआ। सत्ताधारी वर्ग शक्तिशाली धार्मिक व्यवस्थाओं जैसे ब्राह्मणवाद, बुद्धमत, जैनमत, आदि का प्रयोग करके नयी सामाजिक व्यवस्था तथा स्वयं को स्थायित्व प्रदान करने का भरपूर प्रयास कर रहा था। इन विकासों की पृष्ठभूमि में उत्तरी गांगेय भारत पूरी तरह इतिहास का पात्र बन जाता है।

2.5.2 तमिल देश

तमिल कविताओं के संग्रह से, जिन्हें उनके समग्र रूप में संगम साहित्य के नाम से जाना जाता है, प्राचीन तमिल देश (तमिलाकम्) में पूर्व आदिवासी वन-विचरण चरण से मिलता है इन कविताओं से हमें एक ही समय में भिन्न पर्यावरणीय क्षेत्रों के अस्तित्व तथा भिन्न किन्तु अंत:संबंधित जीवन शैली जैसे भोज्य पदार्थ एकत्रण, प्रारंभिक कृषि, मछली पकड़ना, पशुपालन से लेकर बड़े पैमाने पर खेती के सहअस्तित्व की ओर संकेत मिलता है। कावेरी, पेरियार एवं पैगाई की उपजाऊ नदी घाटियों (मारूटम क्षेत्र) में कृषि उत्पादन भारी मात्रा में होता था तथा यही वे क्षेत्र थे जो कि तीन प्राचीन अग्रणी वंशों, चोल, चेर, एवं पांड्य के प्रभाव क्षेत्र थे। यद्यपि ईसा पूर्व शताब्दियों में लड़ाकू सरदारों, पशु प्राप्ति के लिए आक्रमण, युद्ध एवं लूट आदि का प्रभुत्व था लेकिन धीरे-धीरे लोग किसानों के रूप में बस्तियों में वास करने लगे और एक श्रेणीबद्ध समाज का उदय हुआ जिसमें कृषक, भाट, योद्धा एवं कबायली सरदार मुख्य श्रेणियाँ थीं। युद्ध के रिवाज ने योद्धा वर्ग को अपने मुखिया के आधीन प्रभुत्वमान बना दिया। छापों से बचाव एवं छुटकारा पाने की दृष्टि से किसान वर्ग एक ऐसी व्यवस्था में समाहित होने के लिए तैयार था जिसमें अविकसित राज्य व्यवस्था अस्तित्व में आ चुकी थी। राज्य के गठन की प्रक्रिया तेज़ होने के निम्नलिखित कारण थे:

- आरंभिक ईसवी शताब्दियों में रोम के साथ व्यापार,
- नगरों का उदय, तथा
- ब्राह्मणों के साथ उत्तरी सभ्यता (आर्य) की संस्कृति का आगमन।

ईसवी युग की आरंभिक शताब्दियों में रोम के साथ व्यापार का महत्व बढ़ रहा था। साथ ही तमिलाकम् में विभिन्न क्षेत्रों के बीच आंतरिक तथा तमिलाकम् एवं दक्कन के बीच व्यापार को काफी महत्व प्राप्त हो चुका था। इस आरंभिक काल में केरल तमिलाकम् का अभिन्न हिस्सा था। पहाड़ियों एवं सीमांती कृषि वाले क्षेत्रों के छोटे-छोटे असंख्य कबीले तीन राज्यों की परिधि में लाए गए। सामाजिक रूप से यह प्रक्रिया जाति व्यवस्था के गठन में परिलक्षित होती है। इस व्यवस्था के अंतर्गत किसान शूद्र के स्तर पर पहुंचा दिए गए। इस प्रकार आरंभिक तमिलनाडु में राज्य के उदय का आधार तैयार किया जा चुका था।

2.5.3 दक्कन: आंध्र एवं महाराष्ट्र

आंध्र एवं उत्तरी दक्कन में लोहे का इस्तेमाल करने वाले उत्तर-पाषाण युगीन समुदायों ने, जोकि नवपाषाण युगीन तथा मध्यपाषाण युगीन संस्कृतियों का अनुसरण कर रहे थे स्थायी कृषि के लिए आधार तैयार किया और इन क्षेत्रों के परिवर्तन का पथ प्रशस्त किया। पांचवीं से तीसरी शती ईसा के पूर्व के बीच आंध्र में समुद्र तटवर्ती भूमि पर अधिक उपज वाली धान की फसलें उगाना जारी रहा। उत्तर पाषाणकालीन शवाधानो दफनाने की परम्परा से निम्नलिखित प्रमाण मिलते हैं:

- शिल्पकला में अल्पविकसित विशेषज्ञता,
- अविकसित विनिमय व्यवस्था जिसके अंतर्गत खनिज संसाधन उत्तर दक्कन भेजे जाते थे, तथा
- स्तर का अंतर।

यहां काले एवं लाल बर्तनों के स्थल प्रचूर मात्रा में मिले जिनका अर्थ है कि यहां संभवत: जनसंख्या में वृद्धि हुई होगी। तीसरी शती ईसा पूर्व से उत्तर पाषाणकाल में परिवर्तन विस्तृत रूप में समता आधारित समाज में परिवर्तन की शुरुआत थी, फलत: वर्गीकृत समाज की नीव पड़ी। दूसरी शती ईसा पूर्व के आरंभ से धातु के सिक्के का चलन रोम से व्यापार तथा शहरीकरण के प्रमाण मिलते हैं। शिलालेखों तथा पुरातत्वशास्त्र से प्राप्त जानकारी के आधार पर आंध्र और महाराष्ट्र में काफी संख्या में नगरों के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं। इस समय तक बुद्धमत दक्कन में फैल चुका था और बौद्ध केन्द्र एवं मठ स्थापित हो चुके थे। साथ ही मौर्य साम्राज्य के ऐतिहासिक विस्तार के रूप में एक अन्य स्थिति उत्पन्न हुई जिसने इन विकासों की प्रक्रिया को और तेज कर दिया।

मौर्य प्रसार के साथ उत्तर पाषाण युगीन संस्कृति ने आरंभिक ऐतिहासिक बस्तियों का पथ प्रशस्त किया दक्कन में कई शहरी केन्द्र एवं मठ जिनमें से कई केन्द्रीय स्थल बन गए इसी काल में अस्तित्व में आए। यही अंतर्संबंध दक्कन में स्थानीय बस्तियों के उदय में सहायक रहे। यह स्थानीय बस्तियाँ उत्तरी भारतीय जनपदों के समरूप समझी जा सकती हैं। सतवाहनों

के युग तक स्थानीय बस्तियों ने दक्कन में पूर्व ऐतिहासिक राज्य गठन का आधार तैयार किया। दूसरी शती ईसा पूर्व के बाद से धीरे-धीरे खेतिहर बस्तियों के विस्तार एवं नए समुदायों के समाहित होने की प्रक्रिया दिखायी देती है। सामाजिक मेल-जोल का पथ सर्वप्रथम बुद्धमत एवं मठों ने तदोपरांत ब्राह्मणों एवं ब्राह्मणवाद ने प्रशस्त किया। निवासी समुदायों के बीच त्रिकोणी संबंध प्रतीत होता है। यह तीन पक्ष निवासी समुदाय, राज्य, मठ अथवा /एवं ब्राह्मण थे। यह ऐतिहासिक प्रक्रिया तटवर्ती आंध्र में इक्शवाकुवश, कर्नाटक में कदम्ब तथा महाराष्ट्र में वकातका के अधीन और तेज हुई। प्रथम सहस्त्राब्दि ईसवी के मध्य तक उक्त दो क्षेत्र अपनी अलग पहचान बना चुके थे।

2.5.4 कलिंग एवं प्राचीन उड़ीसा

दक्कन की भांति ही उड़ीसा में भी तीसरी एवं चौथी शती ईसा पूर्व के दौरान महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। 300 ईसा पूर्व तथा चौथी शताब्दी ईसवी के बीच उड़ीसा का इतिहास आदिवासी समाज के आंतरिक परिवर्तन का इतिहास है। यह परिवर्तन आंशिक रूप से स्वतंत्र था तथा कुछ अंश तक गंगा के मैदानों की सुसंस्कृत सभ्यता से प्रभावित था जिसका आरंभ नंद एवं मौर्य काल के समय से इंगित किया जा सकता है। इसके उपरांत चौथी शताब्दी ईसवी से नवीं शताब्दी के बीच इस क्षेत्र में विभिन्न स्थानों पर कई उप क्षेत्रीय राज्यों का उदय हुआ। दसवीं शताब्दी तक यह विकास प्रक्रिया स्पष्ट रूप ले चुकी थी। तथापि यह प्रक्रिया प्रत्येक स्थान पर समरूपी नहीं थी।

डेल्टा तट के तटवर्ती क्षेत्रों में क्षेत्र के अंदर की जंगली भूमि और ढलानों की अपेक्षा, जो कि निकटवर्ती छत्तीसगढ़ एवं बस्तर उपक्षेत्रों से काफी मिलते-जुलते हैं, ऐतिहासिक चरण की दिशा में परिवर्तन जल्दी हुए। केन्द्रीय एवं पश्चिमी उड़ीसा में धीमा और असमान परिवर्तन देखने को मिलता है। बड़ी संख्या में यहां आदिवासियों का बसना तथा भू-आवृति के कारण यहां गंगा प्रदेश की सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन प्रक्रिया की पुनरावृत्ति नहीं हो सकी, उड़ीसा में वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत जातिगत समाज देर से उभरा और जब उभरा भी तो काफी मूल अंतरों के साथ उभरा। सामाजिक संरचना की दृष्टि से उड़ीसा क्षेत्रीय भिन्नता का अच्छा उदाहरण है।

2.5.5 उत्तर-पश्चिम

उत्तर-पश्चिम में सिंध और बलूचिस्तान के विषय में अभी बहुत कम चर्चा हुई है। इसका कारण इन क्षेत्रों की सीमांती स्थिति है। यह क्षेत्र आरंभिक ऐतिहासिक दौर में अधिकतर विशाल भारतीय रेगिस्तान में हो रहे सांस्कृतिक विकासों की मुख्य धारा से कटे रहे। इस तथ्य पर चर्चा की आवश्यकता नहीं कि यह क्षेत्र सांस्कृतिक रूप से विकासरहित था। जिस काल की हम चर्चा कर रहे हैं उस काल में इन क्षेत्रों में जो भी महत्वपूर्ण घटनाएं हुई हैं वह अधिकतर मध्य ऐशिया, अफगानिस्तान अथवा ईरान के संदर्भ से हुई हैं केवल कुशान काल के बाद से ही इन क्षेत्रों में एक अंतर्क्षेत्रीय राजनीतिक व्यवस्था स्थापित हुई जिसमें उत्तरी भारत का भी एक बड़ा भाग शामिल था। उत्तर-पश्चिम में गांधार क्षेत्र इसका अपवाद था। छठवीं शताब्दि ईसा पूर्व में ही गांधार 16 महा-जनपदों की सूची में था। मगध के राजा बिम्बसार का गांधार का राजा के साथ राजनैतिक संबंध था। गांधार की राजधानी तक्षशिला शिक्षा एवं व्यापार का केन्द्र थी। गांधार का विस्तृत आर्थिक आधार था। मथुरा, मध्य भारत तथा रोम के साथ गांधार के व्यापार के प्रमाण हैं। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण गांधार विभिन्न लोगों एवं संस्कृतियों के मिलाप का केन्द्रीय स्थान था। छठवीं शताब्दी ईसा पूर्व के अंतिम 25 वर्षों में यह क्षेत्र राजनीतिक रूप से ईरानी (आर्केमिनिड) साम्राज्य का हिस्सा था। 500 शताब्दी ईसा पूर्व से 500 शताब्दी ईसवी तक लगभग 1000 वर्षों तक तक्षशिला में निरंतर शहरी जीवन के प्रमाण मिलते हैं। किन्तु यह शहरी जीवन अपने चर्मोत्कर्ष पर दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर दूसरी शताब्दी ईसवी तक रहा। इसी काल में सुविख्यात गांधार कला शैली विकसित हुई। भाव की दृष्टि से सामान्य यह कला यूनानी बौद्ध शैली के रूप में व्याख्यायित की जाती है क्योंकि यह गांधार शैली — यूनानी कला तथा बुद्धमत के सामंजस्य का परिणाम मानी जाती है। लेकिन अब निरंतर यह स्वीकार केया जा रहा है कि इस शैली पर बैक्ट्रिया का प्रभाव भी था। अत: गांधार शैली के विकास

पर बैक्ट्रिया विचार पद्धति के प्रभाव को भी नहीं नकारा जा सकता। यहां जो कहने का प्रयास किया जा रहा है वह निम्नलिखित है:

1) प्रथमत: उत्तर पश्चिम में सिंध एवं बलूचिस्तान की तुलना में गांधार एक भिन्न विकास प्रक्रिया दर्शाता है, तथा

2) आरंभिक ईसवी शताब्दियों में इस क्षेत्र की विशिष्ट पहचान अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण विभिन्न बाह्य प्रभावों के आधार पर बनीं।

बोध प्रश्न 3

1 निम्नलिखित में से कौन सा वक्तव्य सही (✓) है और कौन-सा गलत (×) है?

i) गांगेय थाला एक समरूपी भौगोलिक आधार है। ( )

ii) मुद्रा के चलन की आवश्यकता व्यापार एवं वाणिज्य के कारण प्रस्तुत हुई। ( )

iii) संगम साहित्य प्राचीन तमिल देश में राज्य के गठन पर कोई प्रकाश नहीं डालता है। ( )

iv) गांधार क्षेत्र का विकास भिन्न सांस्कृतिक प्रभावों से प्रेरित था। ( )

2 रिक्त स्थानों की पूर्ति करें:

i) . . . (जनपदों / महाजनपदों) के उदय के कारण महानगरों का उदय संभव हो सका।

ii) आंध्र तटवर्ती क्षेत्रों में . . . (पांचवीं, तीसरी, प्रथम, दूसरी) शताब्दी ईसा पूर्व के दौरान अधिक उत्पादक . . . (गेहूँ /धान) उगाना प्रचलित था।

iii) उड़ीसा में . . . (गैर आदिवासी /आदिवासी) परिस्थिति के कारण . . . (उपमहाद्वीप /क्षेत्र) में परिवर्तन की प्रक्रिया में बाधा पड़ी।

2.6 सारांश

हमारे इतिहास में क्षेत्र एवं क्षेत्रीयता की समस्या के सर्वेक्षण तथा क्षेत्रों के गठन की प्रक्रिया को रेखांकित करने वाले उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि क्षेत्रों का सामाजिक सांस्कृतिक अंतर ऐतिहासिक रूप से काफी पुराना अंतर है। स्वाभाविक भौतिक क्षेत्रों का ऐतिहासिक /सांस्कृतिक क्षेत्रों के रूप में उदय भारतीय इतिहास के आरंभिक दौर में भी देखा जा सकता है। बाद के दौर में इन क्षेत्रों ने अपनी विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान तैयार की और पृथक सामाजिक राजनैतिक इकाई के रूप में उभरे। कुछ क्षेत्र, ऐतिहासिक शक्तियों के उनमें आरंभ में ही अभिसरित हो जाने के कारण अपेक्षाकृत जल्दी और तेजी से उभरे। अन्य क्षेत्रों के अंतर्गत विकास इन बुनियादी केन्द्रों के साथ सांस्कृतिक संपर्क तथा इस संस्कृति को समाहित करने के साथ हुआ। कुछ हद तक इससे भिन्न क्षेत्रों की विशिष्टताओं और उनमें भिन्नताओं को समझा जा सकता है। क्षेत्रीय विभिन्नताएं गुप्त एवं उत्तर गुप्त काल में भाषा, शिल्पकला, वास्तुकला एवं जाति व्यवस्था के माध्यम से अधिक स्पष्ट रूप में रेखांकित होती हैं। लगभग सभी क्षेत्रीय भाषाएं इसी काल में विकसित होती हैं। साथ ही प्रत्येक क्षेत्र में अपनी अलग जाति व्यवस्था भी विकसित हुई। यह सांस्कृतिक अंतर केवल भिन्न क्षेत्रों के बीच ही नहीं थे बल्कि एक ही क्षेत्र में भी भिन्नताएं देखी जा सकती हैं। यद्यपि क्षेत्र अपने आप में साधारणतया समरूपी इकाई थे लेकिन क्षेत्रों के अंतर्गत उपक्षेत्रों के अस्तित्व की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। हमने पहले भी देखा है कि गांगेय उत्तरी भारत किसी भी रूप में एक समरूपी क्षेत्र नहीं था। प्राचीन तमिलाकम् (तमिलनाडु) के अंतर्गत पर्यावरणीय विभिन्नताएँ भी ध्यान में रखी जानी चाहिएं। आंध्र, उड़ीसा, पंजाब और गुजरात के संदर्भ में भी यह तथ्य उतना ही सही जान पड़ता है। उपक्षेत्रों के अपने प्राचीन नाम भी थे। तथापि बदलते हुए राजनैतिक प्रतिरूपों और उपक्षेत्रों के एक दूसरे में समाहित हो जाने के कारण यह उपक्षेत्र बाद के समय में नये नाम ग्रहण करने लगे। निश्चित सीमाओं में एक इकाई के रूप में क्षेत्र ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के आधार पर उभरते हैं, और भारतीय इतिहास की समझ के लिए क्षेत्रों की विशेषताओं और उनके गठन की प्रक्रियाओं को समझना आवश्यक है।

2.7 शब्दावली

साक्षर युग: इतिहास का वह काल जब समाज में साक्षरता और लिपि का ज्ञान था।

मृत्भाण्ड: मिट्टी के बर्तन।

संगम साहित्य: तमिल क्षेत्र के लोगों का सबसे पुराना साहित्य। यह पहली से तीसरी ईसवी के बीच संकलित किया गया।

भाट: वह घुमक्कड़ समूह जो गीतों के रूप में प्रशस्तियाँ गाते थे।

केन्द्रीय क्षेत्र: वह क्षेत्र जो किसी बड़े क्षेत्र के विकास में केन्द्रीय बिन्दु की भूमिका निभाते हैं।

निवासी समुदाय: कबायली समुदाय के विपरीत एक स्थान पर रहकर कृषि तथा अन्य तरीकों से जीवनयापन करने वाले लोग।

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 i) × ii) ✓, iii) × iv) ✓, v) ×

2 **संकेत:** गेरू – चित्रित मृत्भाण्ड, चमकाए हुए चित्रित मृत्भाण्ड, उनके काल का भी उल्लेख करें। देखें उपभाग 2.2.2

बोध प्रश्न 2

1 आप के उत्तर में शक्तिशाली क्षेत्रीय इकाइयों के विकास, इकाइयों की शक्ति एवं क्षेत्रीय शक्तियों का मजबूत पक्ष आदि सम्मिलित होना चाहिए, देखें भाग 2.3

2 देखें उपभाग 2.3.1

3 i) स्वतंत्र, ii) सहअस्तित्व, iii) भिन्न, iv) उच्च, इतिहास

बोध प्रश्न 3

1 i) x, ii) ✓, iii) ✓ iv) x, v) ✓

2 i) विकास, ii) महाजनपद, iii) फसल, पांचवीं-तीसरी शताब्दी ई. पू., iv) आदिवासी क्षेत्र।

इकाई 3 शिकारी-संग्रहकर्त्ता: पुरातात्विक परिप्रेक्ष्य

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 पुरापाषाण युग
   3.2.1 पुरापाषाण युग के औजार
   3.2.2 पुरापाषाण युग की बस्तियाँ
   3.2.3 जीवन यापन के तरीके
3.3 मध्य पाषाण युग
   3.3.1 मध्य पाषाण युग के औजार
   3.3.2 मध्य पाषाण युग की बस्तियाँ
   3.3.3 जीवन यापन के तरीके
3.4 सारांश
3.5 शब्दावली
3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- प्रागैतिहासिक काल की शिकारी-संग्रहकर्त्ता अवस्था के विषय में जानकारी प्राप्त करने के विभिन्न तरीकों को समझ सकेंगे,
- उन पुरातात्विक प्रमाणों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे जिनसे इतिहास के पुनर्निर्माण में सहायता मिलती है,
- इस काल के लोगों के जीवन यापन के तरीकों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- उन औजारों के बारे में जान सकेंगे जिनका वे उपयोग करते थे। इसके अलावा इस बात की भी जानकारी मिल सकेगी कि प्रागैतिहासिक कला उनके संगठन के विषय में जानने में कितना सहयोग प्रदान कर सकती है।

3.1 प्रस्तावना

आज बीसवीं शताब्दी में हमें यह जानकर आश्चर्य होगा कि मनुष्य जाति ने अपने अस्तित्व के आरम्भ से लेकर आज तक का 99% हिस्सा शिकारी/संग्रहकर्त्ता के रूप में बिताया है। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य ने मात्र 10,000 वर्ष पूर्व कृषि द्वारा उत्पादन करना सीखा। इससे पहले वह पूर्णत: प्रकृति पर निर्भर था। अपने भोजन के लिए या तो वे प्रकृति से जड़ें, फल, मूल आदि एकत्र करते थे या पक्षियों, जानवरों और मछलियाँ पकड़कर अपना भोजन जुटाते थे। अपने अस्तित्व के अधिकांश कालों में मनुष्य प्रकृति और पर्यावरण पर पूर्णत: आश्रित रहा। इस तथ्य से कई बातें सामने आती हैं। एक तो यह कि उनके भोजन प्राप्त करने के तरीकों का प्रभाव उनके प्रकृति से संबंध और प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण पर पड़ा। दूसरी यह कि शिकारी /संग्रहकर्त्ता एक समूह में रहते थे और इसका संबंध उनके द्वारा भोजन जुटाने की पद्धति से है। यहां एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि अन्य समूहों की अपेक्षा शिकारी /संग्रहकर्त्ता समूहों की बनावट कहीं ज्यादा लचीली थी।

मनुष्य काफी अरसे तक शिकारी /संग्रहकर्त्ता का जीवन बिताता रहा। इसलिए इस काल के मानव इतिहास को जानना जरूरी है। विश्व में ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जहां आज भी लोग शिकारी /संग्रहकर्त्ता का जीवन जी रहे हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि मानव इतिहास में हुए सांस्कृतिक बदलावों के साथ-साथ हम उनकी संस्कृति के बारे में भी जानकारी हासिल करें। पर हम शिकारी /संग्रहकर्त्ताओं के बारे में जानेंगे कैसे ? शिकारी/संग्रहकर्त्ताओं के रहने के ढंग, उनके सामाजिक संगठन और उनके पर्यावरण आदि विभिन्न पहलुओं पर कई मानव जाति

वैज्ञानिकों/मानववेताओं ने प्रकाश डाला है। इन्होंने जीवित शिकारी/संग्रहकर्त्ता समूहों का अध्ययन किया है। इनके कार्यों से अतीत के शिकारी/संग्रहकर्त्ता समुदायों की जीवन पद्धति और स्थिति को जानने की अंतर्दृष्टि प्राप्त होती है। इन समुदायों के बारे में जानने के लिए हमें उन पुरातत्ववेताओं और अन्य वैज्ञानिकों की सहायता लेनी पड़ती है, जो उन समुदाय विशेष के औजारों, हड्डियों के अवशेषों और पर्यावरण विशेष के विशेषज्ञ होते हैं। इस प्रकार के अध्ययन के लिए कई प्रकार के शैक्षणिक संकायों का सहारा लेना पड़ता है। उनके जीवन को जानने के लिए कई प्रकार के साक्ष्यों जैसे जानवरों के अवशेष, पौधे और अन्य जैव अवशेषों का अध्ययन करना पड़ता है और उनका संबंध शिकारी/संग्रहकर्त्ता अवस्था से जोड़ना पड़ता है और इनसे आदि मानव के तत्कालीन भौतिक पर्यावरण को जानने और इसके उपयोग को समझने की अंतर्दृष्टि मिलती है।

शिकारी/संग्रहकर्त्ताओं द्वारा उपयोग में लाए गए पत्थर के औजार पाए गए हैं। इन औजारों को इनके प्रकार तथा काल के अनुसार मध्यपाषाणीय, पुरापाषाणीय आदि वर्गों में विभाजित किया गया है। इन औजारों के बनाने की तकनीक पर भी पुरातत्ववेत्ता विचार करते हैं। पशुओं के अवशेषों के अध्ययन से इस बात की जानकारी मिलती है कि प्रागैतिहासिक काल में उनका किस प्रकार उपयोग किया जाता था। पत्थर पर की गयी खुदाई और चित्रकारी से भी प्रागैतिहासिक काल के लोगों की अर्थव्यवस्था और समाज का पता चलता है।

3.2 पुरापाषाण युग

पुरापाषाण संस्कृति का उदय अभिनूतन (Pleistocene) युग में हुआ था। अभिनूतन युग (20 लाख वर्ष पूर्व) एक भूवैज्ञानिक काल है, जिसमें बर्फ युग अपने अन्तिम चरण में था। इस युग में धरती बर्फ से ढकी हुई थी। पुरापाषाण युग के पत्थर के औजारों के वर्गीकरण के संबंध में भारत के पुरातत्ववेत्ताओं के बीच मतभेद है:

- कुछ विद्वान धारदार ब्लेड (Blade) और लक्षणी वाले काल को "उच्च पुरापाषाण" कहते हैं।
- कुछ विद्वान उच्च पुरापाषाण को यूरोपीय पुरापाषाण संस्कृति से जोड़ते हैं।

पर अब उच्च पुरापाषाण का प्रयोग भारतीय संदर्भ में भी होता है।

3.2.1 पुरापाषाण युग के औजार

पर्यावरण और जलवायु में हुए परिवर्तन और मनुष्य द्वारा बनाए गए पत्थर के औजारों की प्रकृति के आधार पर पुरापाषाण संस्कृति को तीन चरणों में बांटा गया है।

- निचले पुरापाषाण चरण के औजारों में मुख्यत: हाथ की कुल्हाड़ी, तक्षणी, काटने का औजार आदि हैं।
- मध्य पुरापाषाण युगीन उद्योग काटने के औजारों पर आधारित था, और
- उच्च पुरापाषाण युग की विशेषता थी — तक्षणी और खुरचनी।

अब हम इस काल के कुछ औजारों और उनके उपयोग के बारे में चर्चा करेंगे।

- हाथ की कुल्हाड़ी (Handaxe) — इसका मूठ चौड़ा और आगे का हिस्सा पतला होता है। इसका उपयोग काटने या खोपने के लिए होता होगा।
- चीरने का औजार (Cleaver) — इसमें दुहरी धार होती है। इसका उपयोग पेड़ों को काटने और चीरने के लिए होता था।
- काटने के औजार (Chopper) — एक बड़ा स्थूल औजार जिसमें एक तरफा धार होती है और इसका उपयोग काटने के लिए किया जाता है।
- काटने का औजार (Chopping tool) — यह भी चौपर के समान एक बड़ा स्थूल औजार है पर इसमें दुहरी धार होती है, और इसमें कई पट्टे होते हैं। इसका उपयोग भी किसी चीज को काटने के लिए होता था, पर अधिक नुकीली धार वाला होने से यह चौपर से अधिक कारगर होता था।
- पत्तर (Flake) — यह एक प्रकार का औजार होता है, जिसे पत्थर को तोड़कर बनाया जाता है। पत्तर की सतह पर सकारात्मक समाघात और इसके सारभाग में एक नकारात्मक

समाघात (Negative bulb of percussion) होता है। जिस स्थान पर पत्थर के हथौड़े से चोट की जाती है उसे समाघात स्थल कहते हैं। इस चोट से जो गोल, हल्का उत्तल हिस्सा कट कर निकलता है उसे सकारात्मक समाघात कहते हैं। इस चोट के परिणाम स्वरूप सारभाग का जो हिस्सा अवतल हो जाता है उसे नकारात्मक समाघात कहते हैं। पत्तर बनाने की कुछ तकनीकें हैं: फ्री फ्लेकिंग तकनीक, स्टेप फ्लेकिंग तकनीक, ब्लॉक आन ब्लॉक तकनीक, द्विध्रुवीय तकनीक आदि।

- खुरचनी (Side scraper) — इसमें एक पत्तर या ब्लेड होता है और इसका किनारा धारदार होता है। इसका उपयोग पेड़ की खाल या जानवरों का चमड़ा उतारने में किया जाता होगा।
- तक्षणी (Burin) — यह भी पत्तर या ब्लेड के समान ही होता है, पर इसका किनारा दो तलों के मिलने से बनता है। तक्षणी के काम वाले हिस्से की लम्बाई 2–3 से. मी. से अधिक नहीं होती है। इसका उपयोग मुलायम पत्थरों, हड्डियों, क्रोड़ों या गुफाओं की दीवारों पर नक्काशी के लिए होता है।

3.2.2 पुरापाषाण युग की बस्तियाँ

अब हम पढ़ेंगे कि शिकारी /संग्रहकर्त्ताओं द्वारा प्रयुक्त औजार पुरातत्ववेत्ताओं को किन-किन क्षेत्रों में मिले हैं। इन औजारों के क्षेत्रीय फैलाव के बारे में पता चलने पर न केवल हमें शिकारी/संग्रहकर्त्ताओं के निवास स्थलों का पता चलेगा, बल्कि उस पर्यावरण की भी जानकारी मिलेगी, जिसमें वे रहते थे।

विभिन्न क्षेत्रों में इनका अध्ययन करें:

i) कश्मीर घाटी दक्षिण पश्चिम में पीर जंगल पहाड़ियों और उत्तर पूर्व हिमालय से घिरी है। कश्मीर में लिद्दर नदी के किनारे पहलगांव से एक हाथ की कुल्हाड़ी प्राप्त हुई थी। किंतु पुरापाषाण युग के औजार कश्मीर में ज्यादा नहीं मिलते क्योंकि हिमानी युग में कश्मीर में अत्यधिक ठंड होती थी। पोतवार क्षेत्र (आज का पश्चिमी पंजाब और पाकिस्तान) पीर पंजल और नमक पर्वत श्रृंखला के बीच में पड़ता है। इस इलाके में विर्वतनिक बदलाव आया था और इस क्रम में सिंधु और सोहन नदियों की उत्पत्ति हुई थी। सोहन घाटी में हाथ की कुल्हाड़ी और काटने के औजार मिले हैं। ये औजार अडियाल, बलवाल और चौन्टरा जैसी महत्वपूर्ण पुरापाषाणीय बस्तियों में पाये गए हैं। ब्यास, बाण, गंगा और सिरसा नदियों के किनारे भी पुरापाषाण युग के औजार पाए गए हैं।

ii) लूनी नदी (राजस्थान) के आसपास के क्षेत्र में कई पुरापाषाण युगीन बस्तियाँ पाई गई हैं। लूनी नदी का उद्गम अरावली क्षेत्र में हुआ था। चित्तौढ़गढ़ (गंभीर नदी घाटी) कोटा (चंबल नदी घाटी) और नगरई (बेराच नदी घाटी) में पुरापाषाण युग के औजार पाए गए हैं। मेवाड़ की वगांव और कदमली नदियों के आसपास भी मध्य पुरापाषाण युगीन बस्तियाँ पाई गई हैं। इन इलाकों से कई प्रकार की खुरचनी, बेधक औजार और नुकीले औजार भी पाए गए हैं।

iii) गुजरात में साबरमती, माही और उनकी सहायक नदियों के आसपास पुरापाषाण युग के अनेक औजार पाए गए हैं। साबरमती नदी अरावली से निकल कर खम्बात की खाड़ी में जा गिरती है। ओरसंग घाटी के नजदीक भंड़ारपुर में भी मध्य पुरापाषाण युग के औजार पाए गए हैं। सौराष्ट्र में भद्दर नदी के आसपास पुरापाषाण युग के अनेक औजार मिले हैं जैसे हाथ की कुल्हाड़ियां, खुरचनी, काटने के औजार, नुकीले औजार, बेधक औजार आदि। कच्छ क्षेत्र में भी पुरापाषाण युग के अनेक औजार मिले हैं जैसे — खुरचनी, हाथ की कुल्हाड़ी और काटने के औजार।

iv) नर्मदा नदी मैकॉल पर्वत श्रृंखला से निकलती है और खम्बात की खाड़ी में जाकर मिल जाती है। नर्मदा के समतलों में पुरापाषाण युग के अनेक औजार पाए गए हैं, जैसे हाथ की कुल्हाड़ियां और चीरने के औजार। विंध्य क्षेत्र में अवस्थित भीमबेतका (भोपाल के निकट) में पहले एश्यूलियन (Acheulian) संस्कृति के औजार उपयोग में लाए जाते थे किंतु वहां बाद में मध्य पुरापाषाण युगीन संस्कृति का आगमन हुआ।

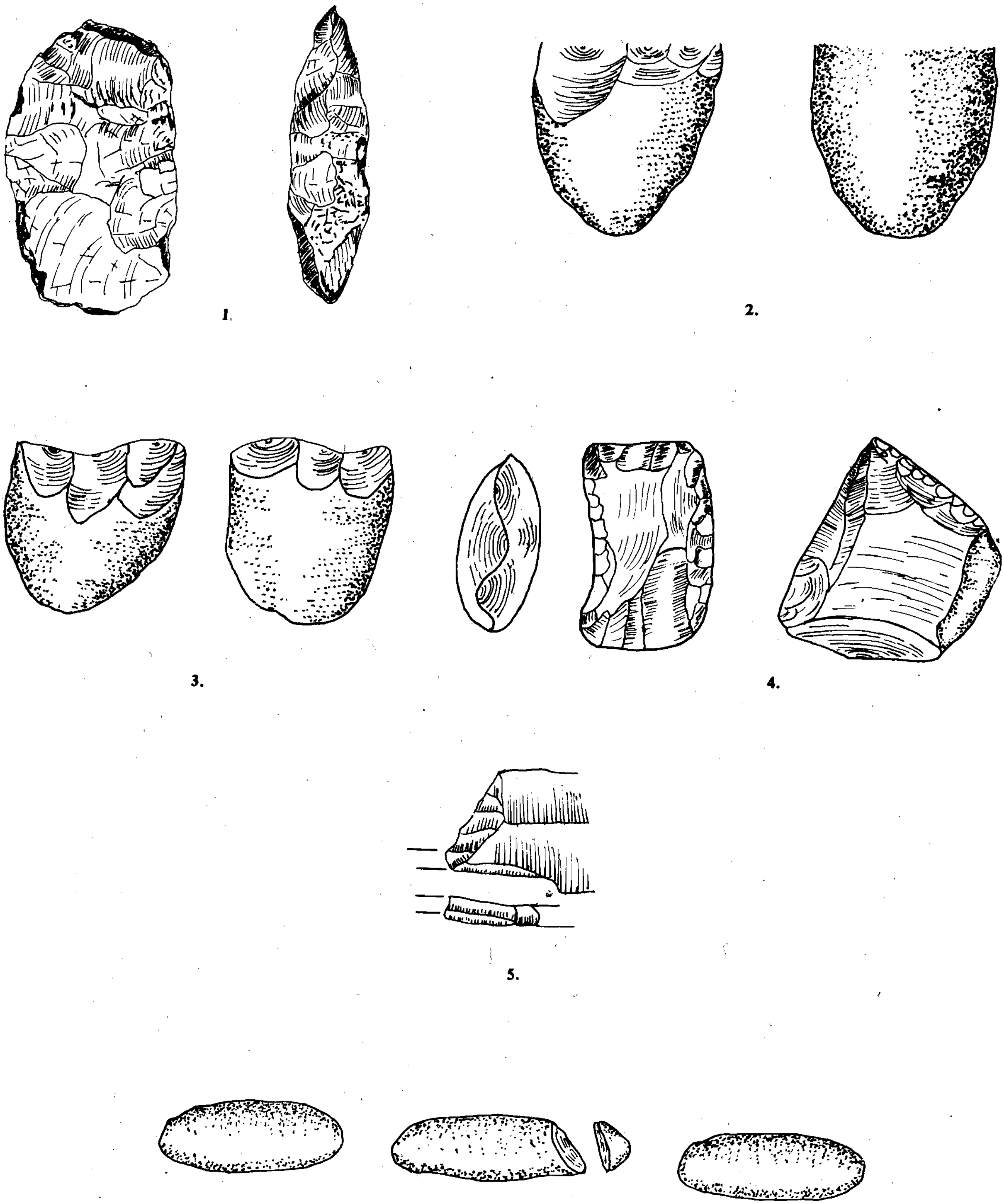

1. चीरने के औज़ार, 2. काटने के औज़ार, 3. काटने के औज़ार,
4. खुरचनियां, 5. तक्षणी, 6. पत्तर

v) ताप्ती, गोदावरी, भीमा और कृष्णा नदियों के आसपास भी कई पुरापाषाण युग की बस्तियाँ पाई गई हैं। पुरापाषाण युग की बस्तियों की अवस्थिति का संबंध पर्यावरण संबंधी बदलाव से भी है जैसे भू-स्खलन, मिट्टी की प्रकृति आदि। ताप्ती की तलहटी में काफी गहराई तक रेगुर काली मिट्टी पाई जाती है। भीमा और कृष्णा नदियों के ऊपरी हिस्से के आसपास के क्षेत्रों में कम पुरापाषाणीय बस्तियाँ पाई गई हैं। महाराष्ट्र में नवासा के नजदीक चिरकी में हाथ की कुल्हाड़ियां, काटने के औजार, बेधक औजार, खुरचनी और मिट्टी तोड़ने के औजार पाए गए हैं। महाराष्ट्र में कोरेगांव, चन्दौली और शिकारपुर पुरापाषाण युग की अन्य प्रमुख बस्तियाँ हैं।

vi) पूर्वी भारत में रासे नदी (सिंहभूम, बिहार) में भी हाथ की कुल्हाड़ियां, काटने के औजार, पत्तर आदि अनेक पुरापाषाण युग के औजार पाए गए हैं। सिंहभूम में भी बहुत सी पुरापाषाण युग की बस्तियाँ मिली हैं। इन बस्तियों में मुख्यत: हाथ की कुल्हाड़ियां और काटने के औजार पाए गए हैं। दामोदर और सुवर्णरेखा नदियों की घाटी से भी पुरापाषाण युग के औजारों के पाए जाने की सूचना मिली है। यहां भी पुरापाषाणीय संस्कृति की अवस्थिति स्थलाकृतिक विशेषताओं से प्रभावित हुई है। उड़ीसा में वैतरनी, ब्राह्मणी और महानदी के डेल्टा क्षेत्र में भी पुरापाषाण युग के कुछ औजार पाए गए हैं।

उड़ीसा में म्यूरभंज में बुहार बलंग घाटी में प्रारंभिक और मध्य पुरापाषाण युग के कई औजार पाए गए हैं जैसे हाथ की कुल्हाड़ियां, खुरचनी, नुकीले औजार और पत्तर।

vii) माल प्रभा, घाट प्रभा और कृष्णा की सहायक नदियों के आसपास पुरापाषाण युग की कई बस्तियाँ पाई गई हैं। घाट प्रभा नदी घाटी में एश्यूलियन (Acheulian) हाथ की कुल्हाड़ियां काफी संख्या में पाई गई हैं। अंगवाडी और बागलकोट घाट प्रभा नदी के पास स्थित दो प्रमुख बस्तियाँ हैं जहां प्रारंभिक और मध्य पुरापाषाण युग के औजार पाए गए हैं। तमिलनाडु में पलर, पेनियारे और कावेरी में भी पुरापाषाण युग के अनेक औजार पाए गए हैं। अतिरमपक्कम और गुड्डियम में प्रारंभिक और मध्य पुरापाषाण युगीन औजार पाए गए हैं जैसे हाथ की कुल्हाड़ियां, खुरचनी, पत्तर, ब्लेड आदि।

3.2.3 जीवन यापन के तरीके

पुरापाषाण युग की बस्तियों में भारतीय और विदेशी मूल के जानवरों के अवशेष काफी मात्रा में पाए गए हैं। नर बानर, जिराफ, कस्तूरी मृग, बकरी, भैंसा, गाय और सूअर स्वदेशी मूल के पशु प्रतीत होते हैं। ऊँट और घोड़े से उत्तरी अमरीका से संबंध का पता चलता है। दरियाई घोड़ा और हाथी मध्य अफ्रीका से भारत आये थे। ये हिमालय की पूर्वी और पश्चिमी सीमा से होकर आये होंगे। अधिकांश जानवर भारत की उत्तर पश्चिमी सीमा से होकर आये। उस समय अफ्रीका और भारत के बीच काफी आदान-प्रदान होता था।

पुरापाषाण युग के मनुष्य भोजन के लिए किन स्रोतों पर निर्भर करते थे ? इस बारे में जानकारी जानवरों के अवशेषों से मिलती है। इन अवशेषों से पता चलता है कि लोग शिकारी और संग्रहकर्त्ता अवस्था में थे। एक इलाके में रहने वाले मनुष्यों और पशुओं की संख्या के बीच संतुलन रहा होगा। उस समय के लोगों ने आसपास पाये जाने वाले पशुओं और पेड़ों का भोजन के रूप में उपयोग किया होगा। मनुष्य छोटे और मध्यम आकार के जानवरों, विशेषत: खुरों वाले पशुओं का शिकार करता होगा। साथ ही वह हिरण, गैंडे और हाथी का भी शिकार करता होगा। इस काल में किसी खास प्रकार की शिकारी प्रवृत्ति का पता नहीं चलता है। कहीं-कहीं कुछ विशेष प्रकार के जानवरों के अवशेष बहुतायत में पाए गए, लेकिन इसका कारण यह है कि उस इलाके में उन विशेष जानवरों की बहुतायत थी और उनका शिकार करना आसान था। ऐसा लगता है कि शिकारी/संग्रहकर्त्ताओं द्वारा पशुओं और पेड़ों को भोजन के रूप में इस्तेमाल करना काफी हद तक शुष्क/आद्र ऋतुचक्र पर आधारित था। पुरापाषाण युग के लोग मुख्य रूप से बैल, गवल, नीलगाय, भैंसा, चिंकारा, हिरण, बारहसिंगे, साम्भर, जंगली सूअर, कई तरह के पक्षियों, कछुओं, मछलियों, मधु और फलदायक पौधों के फलों, मूल, बीज और पत्तों को भोजन के रूप में इस्तेमाल करते थे।

यह कहा जाता है कि आज के वर्तमान शिकारी/संग्रहकर्त्ताओं द्वारा शिकार किए जाने वाले जानवरों से अधिक महत्व शिकारी/संग्रहकर्त्ताओं द्वारा संग्रहित भोजन का है। संग्रहित भोजन

के अवशेष शिकार के अवशेषों की तुलना में अधिक समय तक सुरक्षित रहते हैं। पुरापाषाण युग के लोगों की खाने-पीने की आदतों के बारे में पता लगाना मुश्किल है। ये लोग किस प्रकार के पौधों या फलों का भोजन के रूप में इस्तेमाल करते थे इस बारे में हमें उस प्रकार की जानकारी उपलब्ध नहीं है जैसी कि आजकल के शिकारी /संग्रहकर्त्ता समूहों के बारे में उपलब्ध हैं। यह मुमकिन है कि पुरापाषाण युग के लोग पशुओं के साथ-साथ फल-फूल को भी भोजन के रूप में इस्तेमाल करते होंगे।

पत्थर पर की गई चित्रकारी और खुदाई से भी हमें पुरापाषाण युग के लोगों के रहन-सहन और सामाजिक जीवन के बारे में पता चलता है। सबसे पुरानी चित्रकारी उत्तर पुरापाषाण युग की है। विन्धय क्षेत्र में स्थित भीमबेटका में विभिन्न कालों की चित्रकारी देखने को मिलती है। प्रथम काल में उत्तर पुरापाषाण युग की चित्रकारी में हरे और गहरे लाल रंग का उपयोग हुआ है। इन चित्रों में भैंसे, हाथी, बाघ, गैंडे और सूअर के चित्र प्रमुख हैं। ये चित्र काफी बड़े हैं और कुछ की लंबाई 2 से 3 मीटर तक है। पुरापाषाण युग के लोगों के शिकारी जीवन की सही जानकारी प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार के जानवरों के कितने और किन रूपों में चित्र मिले हैं इसका बारीकी से अध्ययन करना होगा। खुदाई और चित्रकारी से पता चलता है कि शिकार ही जीवन यापन का मुख्य साधन था। इन चित्रों में बनी शारीरिक संरचना के आधार पर पुरुष और स्त्री में सरलता से भेद किया जा सकता है। इन चित्रों से यह भी पता चलता है कि पुरापाषाण युग के लोग छोटे-छोटे समूहों में रहते थे और उनका जीवन निर्वाह पशुओं और पेड़ पौधों पर निर्भर था।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी: निम्नलिखित प्रश्नों को सावधानी से पढ़ें और सही तथा सबसे उपयुक्त उत्तर पर निशान लगायें।

1 सामाजिक विकास का कौन सा काल शिकारी/संग्रहकर्ता चरण का प्रतिनिधित्व करता है:

क) पुरापाषाण युग

ख) मध्य पाषाण युग

ग) पुरापाषाण और मध्य पाषाण युग

घ) नवपाषाण युग

2 प्रागैतिहासिक शिकारी/संग्रहकर्त्ता समाज का अध्ययन कैसे किया जाता है ?

क) लिखित स्रोतों की सहायता से

ख) मुद्रा विषयक स्रोतों की सहायता से

ग) शिलालेख स्रोतों की सहायता से

घ) पुरातत्व अवशेषों की सहायता से

3 अभिनूतन (Pleistocene) युग:

क) बहुत ठंडा था।

ख) बहुत गर्म था।

ग) तापक्रम सामान्य था।

घ) बहुत सूखा था।

4 पुरापाषाण संस्कृति को तीन चरणों में निम्नलिखित में से किस आधार पर विभाजित करते हैं:

क) जलवायु में परिवर्तन

ख) पत्थर के औजारों के प्रकार

ग) पशु-पक्षी अवशेषों

घ) पत्थर के औजारों के प्रकार, मौसम में परिवर्तन और पशु-पक्षी अवशेषों

5 पुरापाषाण युग की अर्थव्यवस्था:

क) भोजन उत्पादन पर आधारित थी।

ख) शिकार पर आधारित थी।

ग) जंगली पौधों से प्राप्त कंदमूल फल के संग्रह पर आधारित थी।

घ) जानवरों के शिकार और जंगली पौधों से प्राप्त कंदमूल फल के संग्रह पर आधारित थी।

3.3 मध्य पाषाण युग

मध्य पाषाण युग का आरम्भ ई. पूर्व 8000 के आसपास हुआ। यह पुरापाषाण और नव पुरापाषाण युग के बीच का संक्रमण काल है। धीरे-धीरे तापक्रम बढ़ा और मौसम गरम और सूखा होने लगा। परिवर्तन से मनुष्य का जीवन प्रभावित हुआ। पशु-पक्षी तथा पेड़-पौधों की किस्मों या प्रजातियों में भी परिवर्तन आया। औजार बनाने की तकनीक में परिवर्तन हुआ और छोटे पत्थरों का उपयोग किया जाने लगा। मनुष्य मूलतः शिकारी-संग्रहकर्ता ही रहा, पर शिकार करने की तकनीक में परिवर्तन हो गया। अब न केवल बड़े बल्कि छोटे जानवरों का भी शिकार करने लगा। मछलियाँ पकड़ने लगा और पक्षियों का भी शिकार करने लगा। यह भौतिक और पारिस्थितिकी परिवर्तन पत्थर पर हुई चित्रकारी से भी प्रतिबिम्बित होता है। अब हम इस युग में उपयोग में लाए जाने वाले कुछ औजारों की चर्चा करेंगे।

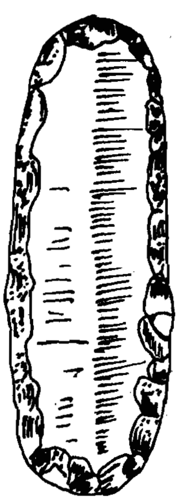

2. ब्लेड

3.3.1 मध्य पाषाण युग के औजार

मध्य पाषाण युग के औजार छोटे पत्थरों से बने हुए हैं। ये सूक्ष्म औजार आकार में काफी छोटे हैं और इनकी लम्बाई 1 से 8 से. मी. तक है। कुछ सूक्ष्म औजारों का आकार ज्यामितीय होता है। ब्लेड, क्रोड़, नुकीले, त्रिकोण, नवचन्द्राकार और कई अन्य प्रकार के औजार मध्य पाषाण काल में उपयोग में लाए जाने वाले मुख्य ज्यामितीय औजार हैं। इनके अलावा इस काल में पुरापाषाण युग के औजार जैसे तक्षणा, खुरचनी और यहां तक कि गंडासा भी मिलते हैं।

i) **ब्लेड (Blade) :** यह एक प्रकार का विशेषीकृत पत्तर होता है। इसकी लम्बाई इसकी चौड़ाई से दुगनी होती है। इनका उपयोग संभवतः काटने के लिए किया जाता होगा। मध्य पाषाण युग में औजार बनाने की तकनीक को फ्लूटिंग (Fluting) कहा जाता है। इसमें सार मात्र पर प्लेटफार्म के नुकीले सिरे से प्रहार किया जाता है। हमें कुछ धारदार ब्लेड भी मिले हैं। ये चौड़े, मोटे और लंबे होते हैं। ब्लेड को धार देने से उसमें पैनापन आता है। कुछ ऐसे ब्लेड पाए गए हैं, जिनके एक या दोनों सिरे धारदार होते हैं अन्यथा दोनों किनारे धारदार होते हैं। ये ब्लेड साधारण ब्लेडों से कहीं अधिक पैने तथा कारगर होते हैं।

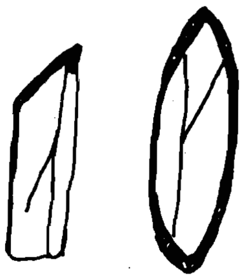

3. नुकीला औजार

ii) **क्रोड (Core) :** क्रोड साधारणतया आकार में बेलनाकार होता है जिसकी पूरी लंबाई में फ्लूटिंग के निशान होते हैं और इसमें एक सपाट प्लेटफार्म होता है।

iii) **नुकीला औजार (Point) :** नुकीला औजार एक प्रकार का टूटा तिकोना ब्लेड होता है। इसके दोनों सिरे ढलवां तथा धारदार होते हैं। इसके सिरे सरल रेखीय या वक्र रेखीय भी हो सकते हैं।

4. त्रिकोण

iv) **त्रिकोण (Triangle) :** इसमें साधारणतः एक सिरा और एक आधार होता है और सिरे को धारदार बनाया जाता है। इसका उपयोग काटने के लिए किया जाता है या इसे तीर के अग्र भाग में भी लगाया जाता है।

5. नवचन्द्राकार

v) **नवचन्द्राकार (Lunate) :** नवचन्द्राकार औज़ार भी एक तरह का ब्लेड होता है लेकिन इसका एक सिरा वृत्ताकार होता है। यह एक वृत्त के हिस्से के समान मालूम होता है। इनका उपयोग अवतल कटाई के लिए किया जा सकता था या ऐसे दो औजारों को मिलाकर तीर का अग्रभाग तैयार किया जा सकता था।

vi) **समलम्ब औजार (Trapeze) :** यह भी एक ब्लेड के समान ही दिखाई पड़ता है। इसके एक से अधिक सिरे धारदार होते हैं। किसी-किसी समलम्ब औजारों के तीन सिरे धारदार होते हैं। इनका उपयोग तीर के अग्रभाग के रूप में होता होगा।

6. समलम्ब औजार

3.3.2 मध्य पाषाण युग की बस्तियाँ

अब हम भारत में मध्य पाषाण युग की महत्वपूर्ण बस्तियों के विषय में चर्चा करेंगे।

i) पचपद्र नदी घाटी और सोजत (राजस्थान) इलाके में सूक्ष्म औजार काफी मात्रा में मिले हैं। यहां पाई गई एक महत्वपूर्ण बस्ती तिलवारा है। तिलवारा में दो सांस्कृतिक चरण पाए गए हैं। पहला चरण मध्य पाषाण युग का प्रतिनिधित्व करता है तथा इस चरण की विशेषता सूक्ष्म औजारों का पाया जाना है। दूसरे चरण में चाक पर बने हुए मिट्टी के बर्तन और लोहे के टुकड़े इन सूक्ष्म औजारों के साथ पाए गए हैं। मध्य पाषाण युग की बड़ी बस्तियों में से एक है — बगोर (राजस्थान) जो कोठारी नदी के किनारे स्थित है। बगोर में खुदाई की गई तो तीन सांस्कृतिक अवस्थाएं पाई गईं। रेडियो कार्बन डेटिंग से अवस्था-I या संस्कृति की सबसे प्रारंभिक अवस्था का समय 5000 से 2000 ई. पू. निश्चित किया गया है

ii) गुजरात में ताप्ती, नर्मदा, माही और साबरमती नदियों के आसपास भी कई मध्य पाषाण युग की बस्तियाँ पाई गई हैं। अक्खज, बलसाना, हीरपुर और लंघनाज साबरमती नदी के पूरब में स्थित हैं। लंघनाज का विस्तार से अध्ययन किया गया है। लंघनाज में तीन सांस्कृतिक अवस्थाएं पाई गई हैं। अवस्था-I में सूक्ष्म औजार पाए गए हैं। सूक्ष्म औजारों में ब्लेड, त्रिकोणीय औजार, अर्धचन्द्रकार औजार, खुरचनी और तक्षणी आदि प्रमुख हैं।

iii) विन्ध्य और सतपुरा इलाके में मध्य पाषाण युग की अनेक बस्तियाँ पाई गई हैं। इलाहाबाद में प्रतापगढ़ इलाके में सराय नहर राय (उत्तर प्रदेश) का विस्तार से अध्ययन किया गया है। कैमूर पर्वत श्रृंखला में मध्य पाषाण युग की दो प्रमुख बस्तियाँ पाई गई हैं — मोरहाना पहाड़ (उत्तर प्रदेश) और लेखहीया (उत्तर प्रदेश)। भीमबेटका (मध्य प्रदेश) में अनेक सूक्ष्म औजार मिले हैं। भीमबेटका में पारिस्थितिकी संतुलन बसने के लिए अनुकूल था। भीमबेटका के दक्षिण में आदमगढ़ (होशंगाबाद) में मध्य पाषाण युग की एक प्रमुख बस्ती पाई गई है।

iv) कोंकण के तटीय इलाके और आन्तरिक पठार में भी मध्य पाषाण युग के औजार पाए गए हैं। कोंकण इलाके में कसूशोअल, जनयेरी, दमालगो और जलगढ़ जैसी कुछ प्रमुख बस्तियाँ पाई गई हैं। असिताश्म के बने दक्षिण पठार में भी अनेक मध्य पाषाण युग की बस्तियाँ पाई गई हैं। धुलिया और पूना जिले में सूक्ष्म औजार पाए गए हैं।

v) छोटा नागपुर पठार, उड़ीसा के तटीय मैदानी क्षेत्र, बंगाल डेल्टा, ब्रह्मपुत्र घाटी और शिलांग पठारी इलाके में भी सूक्ष्म औजार पाए गए हैं। प्राक् नवपाषाण युग के सूक्ष्म औजार छोटा नागपुर पठार में पाए गए हैं। मयूरभंज, कियोनझर और सुन्दरगढ़ में भी सूक्ष्म औजार पाए गए हैं। पश्चिम बंगाल में दामोदर नदी के किनारे बीमानपुर की भी खुदाई हुई है। यहां पर भी सूक्ष्म औजार पाए गए हैं। मेघालय की गारो पहाड़ियों में स्थित सेबालगिरी-2 में भी प्राक् नव पाषाणयुगीन सूक्ष्म औजार पाए गए हैं।

vi) कृष्णा और भीमा नदी में भी अनेक सूक्ष्म औजार पाए गए हैं। ये सूक्ष्म औजार नव पाषाण संस्कृति के चरण में भी पाए गए हैं। कर्नाटक पठार के पश्चिमी किनारे पर स्थित संगनकल में अनेक औजार मिले हैं जैसे क्रोड, नुकीले औजार, अर्धचन्द्राकार पत्तर आदि।

गोदावरी डेल्टा में भी सूक्ष्म औजार काफी मात्रा में पाए गए हैं। यहां पर पाए गए ये औजार नवपाषाणीय संस्कृति से सम्बद्ध हैं। कुरनूल इलाके में भी काफी मात्रा में सूक्ष्म औजार पाए गए हैं। आन्ध्र प्रदेश के चित्तूर इलाके में रेणीगुंटा में सूक्ष्म औजार पाए गए हैं। चूंकि मध्य पाषाण युग की काल सीमा काफी लंबी थी और भारत में अनेक मध्य पाषाण युग की बस्तियाँ पाई गई हैं। अत: विभिन्न बस्तियों को कालक्रमानुसार और वहां प्राप्त भौतिक अवशेषों के आधार पर वर्गीकृत करने का प्रयास किया गया है। कालक्रम तथा सूक्ष्म औजारों की बहुतायत मध्य पाषाण युग के सूचक हैं। कुछ बस्तियाँ कालक्रमानुसार बाद की हैं और

मध्य पाषाण संस्कृति से प्रभावित हैं। ये सभी बस्तियाँ मध्य पाषाणीय परम्परा की बस्तियों की श्रेणी में गिनी जाती हैं। बगोर, सराय-नहर राय, और अदमगढ़ में मध्य पाषाण युग की बस्तियाँ पाई गई हैं।

3.3.3 जीवन यापन के तरीके

आरंभिक मध्यपाषाणीय बस्तियों से जानवरों जैसे भेड़, बकरी, भैंस, सूअर, कुत्ता, हाथी, दरियाई घोड़ा, बनैले सूअर, गवल, गीदड़, भेड़िए, चीते, साम्भर, बारह सिंघे, खरगोश, काले हिरण, मृग, कछुए, साही, नेवले, छिपकली, मवेशियों आदि के अवशेष पाए गए हैं। इनमें से बहुत सी प्रजातियां मध्य पाषाण परम्परा के अंतर्गत विद्यमान रहीं। मध्य पाषाणीय परम्परा का प्रतिनिधित्व करने वाली बस्तियों से जंगली भेड़, जंगली बकरी, गदहा, हाथी, लोमड़ी, गवल, दरियाई घोड़ा, साम्भर, खरगोश, साही, छिपकली, चूहा, मुर्गी, कछुआ आदि नहीं पाए गए हैं। जंगली भैंसा, ऊँट, भेड़िया, गैंडा और नीलगाय मध्य पाषाणीय परम्परा के अंतर्गत पाए गए हैं। ये प्रजातियां आरंभिक मध्यपाषाणीय युग में अनुपस्थित थीं। किसी विशेष काल में पशुओं का पाया जाना और न पाया जाना वस्तुतः जलवायु और पर्यावरण संबंधी परिवर्तन पर निर्भर करता है।

मध्य पाषाण युग के दौरान लोग शाकाहारी एवं मांसाहारी दोनों प्रकार का भोजन खाते थे। मध्य पाषाण युग की अनेक बस्तियों जैसे लंघनाज और तीलवारा से मछली, कछुए, खरगोश, नेवले, साही, मृग, नीलगाय के अवशेष पाए गए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भोजन के रूप में इनका उपयोग किया जाता होगा। शिकार करने और मछली मारने के अलावा मध्य पाषाण युग के लोग जंगली कन्द मूल, फल और मधु आदि का भी संग्रह करते थे और यह उनके भोजन का पूर्ण हिस्सा था। ऐसा प्रतीत होता है कि पौधों से प्राप्त भोजन शिकार से प्राप्त भोजन की अपेक्षा अधिक सुलभ था। कुछ इलाकों में घास, खाने योग्य जड़, बीज, काष्ठफल और फल काफी मात्रा में उपलब्ध थे और लोग भोजन के साधन के रूप में इनका उपयोग करते होंगे। कुछ वर्तमान शिकारी/संग्रहकर्त्ताओं के संदर्भ में यह तर्क दिया जाता है कि उनका मुख्य भोजन फल-फूल ही है। शिकार से प्राप्त भोजन केवल पूरक का ही काम करता है। मध्य पाषाण युग के संदर्भ में पशु मांस और पेड़-पौधों से प्राप्त भोजन के बीच तारतम्य स्थापित करना मुश्किल है, क्योंकि पौधों के अवशेष जल्दी नष्ट हो जाते हैं। यह भी तर्क दिया जा सकता है कि काफी हद तक भोजन की पूर्ति शिकार के माध्यम से होती थी।

पत्थर की गुफाओं की दीवारों पर बनाए गये चित्रों और नक्काशियों से मध्य पाषाण युग के सामाजिक जीवन और आर्थिक क्रिया कलाप से संबंधित काफी जानकारी मिलती है। भीमबेटका, आदमगढ़, प्रतापगढ़, मिर्जापुर मध्य पाषाण युग की कला और चित्रकला की दृष्टि से समृद्ध हैं। इन चित्रों से शिकार करने, भोजन जुटाने, मछली पकड़ने और अन्य मानवीय

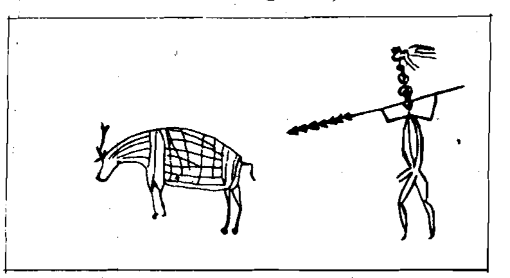

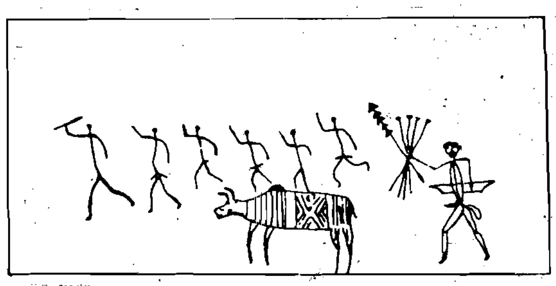

7. मध्य पाषाण युग के चित्र

क्रिया कलापों की भी झलक मिलती है। भीमबेटका में भी काफी चित्र बने मिले हैं। इनमें बहुत से जानवरों जैसे जंगली सूअर, भैंसे, बन्दर और नीलगाय के चित्र बने मिले हैं। इन चित्रों और नक्काशियों से यौन संबंधों, बच्चों के जन्म, बच्चे के पालन पोषण और शव दफन से संबंधित अनुष्ठानों की भी झलक मिलती है। इन सब बातों से यह संकेत मिलता है कि मध्य पाषाण युग में पुरापाषाण युग की अपेक्षा सामाजिक संगठन अधिक सुदृढ़ हो गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि मध्य पाषाण युग के लोगों का धार्मिक विश्वास पारिस्थितिकी और भौतिक परिस्थितियों से प्रभावित था।

बोध प्रश्न 2

1 मध्य पाषाण युग के औजार हैं:

क) हाथ की कुल्हाड़ी और चीरने के औजार

ख) चीरने के औजार और काटने के औजार

ग) ब्लेड, क्रोड़, नुकीले औजार और नवचन्द्राकार औजार

घ) काटने के औजार और पत्तर

2 निम्नलिखित स्थानों में मध्य पाषाण युग की बस्तियाँ पाई गई हैं:

क) कोठारी नदी

ख) ताप्ती नदी

ग) गोदावरी डेल्टा

घ) कोठारी नदी, ताप्ती नदी और गोदावरी डेल्टा

3 निम्नलिखित कथनों में से सबसे सही कथन कौन सा है:

क) मध्य पाषाण युग के लोगों का जीवन यापन जानवरों के शिकार पर निर्भर था।

ख) उनका जीवन जंगली कंदमूल फल के संग्रह पर निर्भर था।

ग) वे जानवरों का शिकार करते थे और जंगली फलों का संग्रह करते थे।

घ) उनका जीवन अधिशेष खाद्य उत्पादन पर निर्भर था।

4 मध्य पाषाण युग के औजारों और चित्रकला के आधार पर मध्य पाषाण युग के जीवन-यापन ढांचे और सामाजिक संगठनों पर प्रकाश डाले। (10 पंक्तियों में)

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3.4 सारांश

शिकारी/संग्रहकर्त्ता प्रागैतिहासिक समुदायों का अध्ययन पुरातात्विक अवशेषों पर आधारित है। इस अध्ययन में मानवशास्त्रीय सिद्धांत सहायता प्रदान करते हैं। सामाजिक विकास के क्रम में पुरापाषाण और मध्य पाषाण युग शिकारी/संग्रहकर्त्ता अवस्था का प्रतिनिधित्व करते हैं। जलवायु में हुए परिवर्तन और पत्थर के औजारों की प्रकृति के आधार पर पुरापाषाण संस्कृति को तीन अवस्थाओं में विभक्त किया जा सकता है। आरंभिक पुरापाषाण के औजार हाथ की कुल्हाड़ियां, चीरने और काटने के औजार हैं। मध्य पुरापाषाण युग के मुख्य औजार पत्तर हैं। उच्च पुरापाषाण संस्कृति के मुख्य औजार तक्षणी और खुरचनी हैं। मध्य पाषाण युग 8000 ई. पू. से शुरू होता है। इस युग में जलवायु में परिवर्तन हुए। इस दौरान सूक्ष्म औजार और छोटे पत्थर के औजार बनाने की दिशा में तकनीकी विकास भी हुए। मध्यपाषाण औजारों में ब्लेड, क्रोड़, नुकीले औजार, त्रिकोणीय औजार और नवचंद्राकार औजार मुख्य हैं।

जीव जन्तुओं के अवशेषों से भी पुरापाषाण और मध्य पाषाण युग के लोगों के जीवन यापन के बारे में काफी जानकारी मिलती है। पुरापाषाण युग में लोग मुख्यत: शिकारी/संग्रहकर्त्ता थे। ये

लोग बड़े और छोटे आकार के पशुओं जैसे हाथी, बैल, नीलगाय, हिरण, जंगली भालू और कई प्रकार के पक्षियों का शिकार करते थे। इसके अतिरिक्त ये फल, बीज आदि का भी आहार के रूप में प्रयोग करते थे। मध्य पाषाण युग में भी मनुष्य शिकारी/संग्रहकर्त्ता ही था। हालांकि कुछ नये जानवर जैसे जंगली बकरा, लोमड़ी आदि भी इस काल में पाए जाते थे। पुरापाषाण युग और मध्य पाषाण युग की शिकार प्रवृत्ति में एक मूलभूत अन्तर है। पुरापाषाण युग में लोग बड़े जानवरों का शिकार करते थे जबकि मध्य पाषाण युग में छोटे जानवरों का भी शिकार किया जाने लगा और मछलियाँ मारी जाने लगीं। प्रागैतिहासिक काल की चित्रकला उस युग के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर प्रकाश डालती है।

3.5 शब्दावली

एश्यूलियन (Acheulian) : यह एक प्रकार की हाथ की कुल्हाड़ी है। ये कुल्हाड़ियां आरंभिक हिम युग के दिनों की हैं, ये सबसे पहले फ्रांस में पायी गयी हैं।

शिल्प अवशेष: कोई ऐसी वस्तु जो मनुष्य द्वारा बनाई तथा उपयोग में लाई जाए। इसके अन्तर्गत अपरिष्कृत पत्थर से लेकर आधुनिक तकनीक से बनी कोई भी वस्तु शामिल हो सकती है।

संकलन: विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का समुच्चय जिनका आपस में अंतर्सम्बंध हो। जब यह संकलन अनेक बार पाया जाता है और मानव गतिविधि का पूर्ण रूप से विवरण देता है तब उसे संस्कृति कहते हैं।

व्यासमापन: रेडियो कार्बन तिथि अंकन में इस शब्द का इस्तेमाल किया जाता है।

अवतल: अन्दर की तरफ धंसा हुआ, बीच की परत किनारे की परत से पतली।

उत्तल: बाहर की तरफ उठा हुआ और बीच का भाग, किनारे की अपेक्षा मोटा।

मानवजाति वर्णन: इसमें संस्कृतियों का विस्तृत वर्णन पाया जाता है।

पारिस्थितिकी: पशु जीवन और पौधों के जीवन का अंतर्सम्बन्ध।

पुरालेखशास्त्र: इसमें शिलालेखों का अध्ययन किया जाता है।

वनस्पति: इस विज्ञान के अंतर्गत पौधों के जीवन का अध्ययन किया जाता है।

जीव-जंतु विज्ञान: इसमें पशुओं के जीवन का अध्ययन होता है।

भू-विज्ञान: इसमें पृथ्वी की बनावट, संरचना और इतिहास का अध्ययन होता है।

हिमाच्छादन: ठंडी जलवायु का काल जिसमें बर्फ की मात्रा अधिक थी, कई हिमाच्छादन मिलकर एक हिम-युग बनाते हैं।

स्तनधारी: ऐसे जानवर जो अपने बच्चों को स्तनपान कराते हैं।

मुद्राशास्त्र: इसमें मुद्रा का अध्ययन किया जाता है।

पराग विश्लेषण: इस तकनीक का उपयोग कालक्रम स्थापित करने के लिए किया जाता है। इसमें फूलों के पराग का विश्लेषण किया जाता है।

नर वानर: स्तनधारी जीव (मानव, बंदर, लंगूर आदि)।

आयत: समकोण चतुर्भुज।

सरल रेखीय: जिसमें सीधी रेखा हो।

रेडियो कार्बन: ऐसी विधि जिसके द्वारा 70,000 वर्ष पुरानी कार्बनिक वस्तु के काल का पता लगाया जा सकता है। पौधे और अन्य जीव अपने जीवन काल में वातावरण से कार्बन ग्रहण करते हैं। इसमें कार्बन 14 (14सी) भी रहता है, जो रेडियोधर्मी तत्व है। पौधों और जीवों के मरने के बाद इस कार्बन की मात्रा कम होने लगती है। इस प्रकार कार्बन की मात्रा से अवशेषों की पुरातनता का पता चल जाता है।

अनुप्रस्थ: चौड़ाई के मुताबिक।

कगार: नदी के किनारों के आसपास की जमीन।

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) क, 2) घ, 3) क, 4) घ, 5) घ

बोध प्रश्न 2

1) ग, 2) घ, 3) ग

4) इस प्रश्न का उत्तर देने की प्रक्रिया में आपको अपनी कल्पना का सहारा लेना होगा और आपको समझना होगा कि किस प्रकार दीवारों पर बने चित्र तत्कालीन जीवन को प्रतिबिम्बित करते हैं। उदाहरणस्वरूप, एक चित्र जिसमें कुछ लोग मिलकर जानवर का शिकार कर रहे हैं, इससे छोटे सामाजिक समुदायों की स्थापना के विषय में पता चलता है। इससे उनकी आहार प्रवृत्ति और औजारों के प्रकार का भी पता लगाया जा सकता है। देखें उपभाग 3.3.1 ।

इकाई 4 कृषि और पशु पालन का आरम्भ

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 संस्कृति का नवपाषाण चरण
4.3 सबसे प्राचीन किसान
4.3.1 नील घाटी
4.3.2 पश्चिम एशिया के प्रारम्भिक किसान
4.4 भारतीय उपमहाद्वीप के प्राचीन किसान
4.4.1 उत्तर पश्चिमी क्षेत्र
4.4.2 काश्मीर घाटी की नवपाषाण संस्कृति
4.4.3 बेलान घाटी के प्राचीन किसान
4.4.4 बिहार/मध्य गंगा घाटी की नवपाषाण संस्कृति
4.4.5 पूर्वी भारत के प्रारंभिक किसान
4.4.6 दक्षिण भारत के प्रारंभिक किसान
4.4.7 ऊपरी मध्य और पश्चिमी दक्कन की नवपाषाण संस्कृति
4.5 सारांश
4.6 शब्दावली
4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

इस इकाई में धातुओं का उपयोग होने के चरण से पहले कृषि के प्रारम्भ और पशुओं को पालने की शुरुआत पर विचार किया गया है। अनाजों की खेती और कृषि के विकास से यायावर शिकारी/संग्राहक स्थानबद्ध कृषक बन गया। इससे गांव की बस्तियों की और नए प्रकार के उपकरणों के विनिर्माण की शुरुआत हुई। मानव के विकास के इस चरण को नवपाषाण चरण कहा जाता है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप निम्नलिखित के विषय में सीख सकेंगे:

- संस्कृति के नवपाषाण चरण के विशिष्ट लक्षण,
- नए प्रकार के पत्थर के औज़ारों, उगाए गए पौधों आदि के रूप में पुरातात्विक साक्ष्य जिनसे कृषि की शुरुआत प्रदर्शित होती है,
- पश्चिम एशिया और भारतीय उपमहाद्वीप में कृषि के स्वरूप, और
- भारतीय उपमहाद्वीप के अलग-अलग क्षेत्रों में उगाई विभिन्न फसलें।

4.1 प्रस्तावना

इकाई 3 में आपने पढ़ा है कि सामान्यत: मानव समुदाय अपने अस्तित्व में सबसे अधिक लम्बे समय तक शिकारी/संग्राहक के रूप में जीवित रहे। उनके अस्तित्व का यह चरण उनके पत्थर के औज़ारों से प्रकट होता है, जिन्हें पुरातत्वविदों ने निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया है:

i) पूर्व पाषाण, और
ii) मध्य पाषाण

इनके औजारों द्वारा जिन पशुओं का शिकार किया गया है उनके अवशेषों के आधार पर भी उनका वर्गीकरण किया गया है। मानव समुदायों ने संस्कृति के एक नए चरण में उस समय प्रवेश किया, जब जीवित रहने के लिए उन्होंने प्रकृति के साधनों पर पूरी तरह से निर्भर रहने

की बजाए जौ, गेहूं और चावल जैसे अनाज उगाकर अपने भोजन का स्वयं उत्पादन करना शुरू किया और दूध तथा मांस की पूर्ति के लिए और विभिन्न प्रयोजनों के वास्ते उनके श्रम का उपयोग करने के लिए कुछ विशेष प्रकार के पशुओं को पालना शुरू किया। मानव संस्कृति के इस चरण की शुरुआत नए प्रकार के पत्थर के औज़ारों से पता चलती है जो औज़ार नवपाषाण औज़ार अथवा नव पाषाण युग के औज़ार कहलाते हैं। नवपाषाण औज़ार और चरण से सम्बद्ध मानव जीवन के विभिन्न पहलू, जब यह औज़ार बनाए गए थे, संस्कृति के उस चरण के विभिन्न तत्व हैं जिनमें यह नवपाषाण समुदाय रहे थे। इस इकाई में नील घाटी और पश्चिम एशिया में नवपाषाण संस्कृति के प्रसार तथा इसकी विशेषताओं पर भारतीय उपमहाद्वीप में नवपाषाण चरण के अध्ययन की पृष्ठभूमि के रूप में, सक्षेप में विचार किया गया है।

4.2 संस्कृति का नवपाषाण चरण

वनस्पति कृषिकरण और पशुओं को पालना संस्कृति के नवपाषाण चरण का एक मुख्य विशिष्ठ लक्षण माना गया है। नियोलिथिक (नवपाषाण) शब्द का प्रयोग सबसे पहले सर जॉन लुबॉक ने अपनी पुस्तक **"प्रिहिस्टोरिक टाइम्स"** (सर्वप्रथम 1865 में प्रकाशित) में किया था। उसने इस शब्द का प्रयोग उस युग को बताने के लिए किया था, जिस युग में पत्थर के उपकरण अधिक कुशलता से और अधिक रूपों में बनाए गए और उन पर पालिश भी की गई। बाद में वी. गॉर्डन चाइल्ड ने नवपाषाण-ताम्रपाषाण संस्कृति को अपने आप में पर्याप्त अन्न उत्पादक अर्थव्यवस्था बताया और माइल्स बरकिट ने इस बात पर जोर दिया कि निम्नलिखित विशिष्ट विशेषकों को नवपाषाण संस्कृति का माना जाना चाहिए:

- कृषि कार्य
- पशुओं को पालना
- पत्थर के औज़ारो का घर्षण और उन पर पालिश करना,
- मृद्‌भांड बनाना।

नवपाषाण की संकल्पना में इधर कुछ वर्षों में परिवर्तन हुआ है। एक आधुनिक अध्ययन में उल्लेख किया गया है कि नवपाषाण शब्द उस पूर्व-धातु चरण संस्कृति का सूचक होना चाहिए जब यहां रहने वालों ने अनाज उगाकर और पशुओं को पालतू बनाकर भोजन की विश्वस्त पूर्ति की व्यवस्था कर ली थी और एक स्थान पर टिक कर जीवन बिताना आरम्भ कर दिया था। फिर भी, घर्षित पत्थर के औज़ार नवपाषाण संस्कृति की सर्वाधिक अनिवार्य विशेषता है। वनस्पति कृषिकरण और पशुओं को पालने से:

- एक स्थान पर टिककर जीवन बिताने के आधार पर ग्राम समुदायों की शुरुआत हुई,
- कृषि टैक्नोलॉजी की शुरुआत हुई,
- प्रकृति पर और अधिक नियंत्रण अथवा प्राकृतिक साधनों का संदोहन हुआ।

तथापि अपने स्वयं के उपमहाद्वीप में संस्कृति के नवपाषाण चरण के साक्ष्यों और विनिर्दिष्टताओं पर विचार करने से पहले हम मनुष्यों द्वारा, भारत से बाहर के क्षेत्रों में तथा भारतीय उपमहाद्वीप में, पशुओं को पालने और वनस्पति कृषीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत पर संक्षेप में विचार करेंगे।

चार्ट- 1

क्षेत्र	युग	खेती
नील घाटी	लगभग 12,500 ई. पू.	गेहूं और जौ
पश्चिम एशिया	8500 ई. पू. से आगे	- वही -
बलूचिस्तान	6000 ई. पू. से आगे	- वही -
उत्तर प्रदेश में बेलान घाटी	5440 – 4530 ई. पू.	चावल
दक्षिण भारत	2500 – 1500 ई. पू.	रागी

चार्ट- 1 में वह अनुमानित समय अवधि बताई गई है, जिसमें वनस्पति कृषीकरण तथा पशुओं को

4.3 सबसे प्राचीन किसान

अभी हाल तक ऐसा समझा जाता था कि वनस्पति कृषीकरण और पशुओं को पालने के कार्य की शुरुआत पश्चिम एशिया में हुई और वहां से यह विसरण के द्वारा संसार के विभिन्न अन्य क्षेत्रों में फैला। लेकिन अब मिस्र में नील घाटी तथा अन्य क्षेत्रों के हाल ही में प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर, इन दृष्टिकोणों में संशोधन करना आवश्यक है।

4.3.1 नील घाटी

गेहूं और जौ की सबसे पहली खेती के बारे में जो नया साक्ष्य प्रकाश में आया है, वह निम्नलिखित स्थानों पर उत्खननों से प्राप्त हुआ है:

- वाडी कुब्बानिया (दक्षिण मिस्र में आसवान के उत्तर में थोड़ी दूरी पर स्थित)
- बाडी टस्का (आबू सिम्बेल, के पास जो अब जलमग्न है),
- कोम अम्बो (आसवान के उत्तर से कुब्बानिया स्थलों से लगभग 60 किलोमीटर दूर), और
- एसना के पास का स्थल-समूह।

इस साक्ष्य के विषय में बात यह है कि ये सभी नील घाटी में स्थित उत्तर पुरापाषाण स्थल हैं, न कि नवपाषाण स्थल।

पुरातत्वविदों ने इन स्थलों का काल-निर्धारण आज से 14500 - 13000 वर्षों के बीच किया है।

नील घाटी से प्राप्त साक्ष्यों से कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न उठते हैं:

- चूंकि मिस्र के स्थलों में पशुओं को पालतू बनाए जाने के कोई प्रमाण नहीं मिलते, अत: यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस क्षेत्र में अनाजों की खेती पशुओं को पालने से पहले आरम्भ हुई। इस प्रकार वनस्पति कृषिकरण और पशुओं के पालने के कार्य आवश्यक रूप से अन्त सम्बद्ध नहीं हैं।
- चूंकि अनाजों की खेती परवर्ती पुरापाषाण औज़ार से सम्बद्ध है, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कुछ मामलों में अनाज उत्पादन उस नवपाषाण संस्कृति से पहले हुआ जिससे घर्षित पत्थर के औज़ार सम्बद्ध हैं।
- अनाजों की खेती से नवपाषाण क्रान्ति को बल मिला और यह खेती इस क्रान्ति से पहले हुई।
- चूंकि कुब्बानिया स्थल जंगली गेहूं और जंगली जौ, दोनों के विदित क्षेत्र से बाहर स्थित हैं, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह आवश्यक नहीं है कि अन्न उत्पादन उन्हीं क्षेत्रों से शुरू हुआ, जहां पेड़-पौधे अपने जंगली रूप में विद्यमान थे।
- जैसा पहले विश्वास किया जाता था, कृषिकरण पश्चिम एशिया से शुरू नहीं हुआ।

4.3.2 पश्चिम एशिया के प्रारम्भिक किसान

आइए, पश्चिम एशिया में विकास की प्रक्रिया पर विचार करें। इस क्षेत्र में फिलीस्तीन, सीरिया, तुर्की, इराक, कैस्पियन द्रोणी और ईरान के आसपास के क्षेत्र आते हैं। ये वे आधुनिक नगर हैं, जहां पुरातत्वविदों ने सबसे प्रारंभिक खेती करने वाली ग्राम बस्तियों का पता लगाया है। अब यह भली-भांति विदित है कि फिलीस्तीन, सीरिया और तुर्की में खेती नवें-आठवें सहस्राब्दि ई.पू. में शुरू हुई थी। यह महत्वपूर्ण है कि इस क्षेत्र के शिकारियों – संग्राहकों ने एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकना छोड़ दिया और एक स्थान पर टिककर जीवन बिताना आरम्भ किया। पहले उन्होंने यह काम वन्य साधनों के संदोहन पर आश्रित रहते हुए कुछ स्थानों पर किया। मुरेबात, उत्तर सीरिया में यूफरेट्स पर आबू हुरेयरा का उत्तर, और उसी नदी पर दक्षिण तुर्की में सुबेरदे जैसे स्थलों में स्थायी बस्तियां शिकार करने और बटोरने पर ही पूरी तरह से फलफूल सकती थीं। खेती में संक्रमण एक धीमी प्रक्रिया थी, परन्तु लगभग नवें सहस्राब्दि ई.पू. से ऐसा साक्ष्य मिला है कि स्थायी समुदायों का खेती को अपने स्थायी

जीवन के स्वरूप का अनिवार्य आधार बनाकर आविर्भाव हो रहा था। ऐसे अनेक स्थल हैं, जहां पश्चिम एशिया में किसानों के स्थायी समुदायों का पता चलता है:

i) 8500—7500 ई. पू. के बीच फिलीस्तीन में ज़रीको एक बड़ा गांव बन गया था, जहां कृषि के साक्ष्य तो मिले हैं, परन्तु पशुओं को पालने के कोई साक्ष्य नहीं मिले हैं (यह कार्य बाद में हुआ)। उत्खनन के दौरान उत्तर स्तरों में यह पाया गया कि ज़ेरीको के चारो ओर दो मीटर चौड़ी पत्थर की दीवार थी और गोल मीनारें थीं। संसार में किलेबंदी का यह एक सबसे प्रारंभिक उदाहरण है।

ii) दक्षिण तुर्की में हुयुक एक बड़ा गांव था। यहां गेहूं,जौ और मटर की खेती होती थी। मवेशी, भेड़, बकरी जैसे जानवरों को घर में पाला जाता था। कच्चे मकान, छत में होकर प्रवेश करना होता था, दो कमरों के होते थे और मकानों की दीवार मिली होती थीं। घरों की दीवारों पर तेंदुआ, फूटते हुए ज्वालामुखी और बिना सिर के मानव शवों को निगलते हुए गिद्धों के चित्र बने हुए मिले हैं। इस स्थान पर भौतिक संस्कृति के साक्ष्य मृदभांडों, पत्थर की कुल्हाड़ियों, पत्थर के आभूषणों, हड्डियों के औज़ारों, लकड़ी के कटोरों और करंडशिल्प के रूप में मिले हैं।

iii) इराक में जारमों में स्थायी रूप से बसे कृषि गांवों (6500—5800 ई. पू.) के भी साक्ष्य मिले हैं। इनमें लगभग 20 से 30 तक कच्चे मकान होते थे, प्रत्येक में एक आंगन और कई कमरे होते थे और वहां घर्षित पत्थर की कुल्हाड़ियां, चक्कियां, मृदभांड आदि भी होते थे। लोग गेहूं और जौ उगाते थे तथा भेड़-बकरी पालते थे।

iv) ईरान में खेती ख़ुजिस्तान के क्षेत्र में आठवें सहस्राब्दि ई. पू. के दौरान शुरू हुई। लगभग उसी समय जब फिलीस्तीन और अनातोलिया में शुरू हुई। दक्षिण ईरान में (लगभग 7,500 ई. पू. से) अली कोश में हमें ऐसे लोगों के एक जाड़े के मौसम के शिविर के साक्ष्य मिले हैं। जो लोग गेहूं और जौ की खेती करते थे। वे भेड़ भी पालते थे। ऐसा लगता है कि इस क्षेत्र में पशु-पालन और खेती अत:सम्बद्ध थे।

पश्चिम एशिया में फसल उगाना और पशुओं को पालना कुछ स्थलों पर अंत:सम्बद्ध है, ज़बकि कुछ क्षेत्रों में कृषि कार्य पशुओं को पालने के कार्य से पहले शुरू हुआ।

बोध प्रश्न 1

1 संस्कृति के नवपाषाण चरण की मुख्य विशेषताओं पर लगभग दस पंक्तियों में प्रकाश डालिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....

2 नील घाटी में उत्खननों से प्रारम्भिक कृषि के सम्बन्ध में जो मुख्य प्रश्न उठे हैं, उन पर प्रकाश डालिए।

....
....
....
....
....

....
....
....
....
....
....

3 रिक्त स्थानों को भरिए:

i) गार्डन चाइल्ड के अनुसार नवपाषाण संस्कृति एक . . . (आश्रित /आत्मनिर्भर) अन्न उत्पादक अर्थव्यवस्था थी।

ii) . . . (घर्षित पत्थर /तांबे) के औज़ार नवपाषाण संस्कृति के अनिवार्य लक्षण रहे हैं।

iii) ज़ेरीको ऐसा सबसे प्राचीन ज्ञात गांव है, जिसमें . . . (पानी का तालाब/मिट्टी की किलेबंदी) थी।

iv) कताल हुयुक . . . (तुर्की /ईरान) में एक . . . (बड़ा /छोटा) गांव था।

4.4 भारतीय उपमहाद्वीप के प्राचीन किसान

इस महाद्वीप में कृषीकरण और पशुओं को पालने का इतिहास वस्तुत: नवपाषाण संस्कृतियों के उदय से प्रारम्भ होता है। घर्षित पत्थर की कुल्हाड़ियों को छोड़कर इस उपमहाद्वीप की सभी नवपाषाण संस्कृतियां चार्ट- 2 में उल्लिखित भौगोलिक क्षेत्रों में वर्गीकृत की जा सकती हैं।

चार्ट- 2

भारतीय उपमहाद्वीप के क्षेत्र

उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र — (अफगानिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान, विशेष तौर पर बलूचिस्तान में काची मैदान मिलाकर)

उत्तर क्षेत्र — (इसमें काश्मीर घाटी आती है)

दक्षिण-पूर्वी उत्तर प्रदेश — (इसमें इलाहाबाद, मिर्ज़ापुर, रीवा और सिंधी ज़िलों में विंध्य दृश्यांश — खास तौर पर बेलान घाटी आती है)

मध्य पूर्वी क्षेत्र — (उत्तरी बिहार)

पूर्वोत्तर क्षेत्र — (इसमें असम और निकटवर्ती उप-हिमालय क्षेत्र आते हैं)

मध्य पूर्वी क्षेत्र — (इसमें छोटा नागपुर का पठार, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल में विस्तार सहित आते हैं)

दक्षिणी क्षेत्र — (इसमें प्रायद्वीपीय भारत आता है)

इन क्षेत्रों में नवपाषाण कालीन संस्कृतियों की विशेषताओं पर हम अलग-अलग विचार करेंगे।

4.4.1 उत्तर पश्चिमी क्षेत्र

इसी क्षेत्र (आज का अफगानिस्तान और पाकिस्तान) में हमें गेहूं और जौ की खेती की शुरुआत के सबसे पहले साक्ष्य मिले हैं। उत्तरी अफगानिस्तान में पुरातत्वविदों ने ऐसी गुफाएं खोजी हैं जहां शिकारी और संग्रहकर्ता रहते थे। इन गुफाओं में जंगली भेड़ों, मवेशियों और बकरियों की हड्डियों के अवशेष मिले हैं। 7000 ई. पू. के आसपास अफ़गानिस्तान में भेड़ और बकरियां पाली जाती थीं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि मध्य एशियाई क्षेत्र और इसकी परिधियां — जिसमें आज का पंजाब, काश्मीर, पश्चिमी पाकिस्तान, अफ़गानिस्तान और

तजाकिस्तान तथा उज़बेकिस्तान के सोवियत गणराज्य और पश्चिमी त्यान शान शामिल हैं – ब्रेड गेहूं तथा स्पेल्ट गेहूं की खेती के मूल स्थान थे।

पाकिस्तान और बलूचिस्तान में कृषि और पशुओं को पालने की शुरुआत के सम्बन्ध में पुरातात्विक उत्खननों में साक्ष्य मिले हैं। बलूचिस्तान में काची के मैदानों को ऐसे अनेक लाभ प्राप्त थे और ऐसी अनेक सुविधाएं प्राप्त थीं, जिससे उस क्षेत्र में प्रारंभिक कृषि अर्थव्यवस्था का उदय हुआ। भीतरी बलूचिस्तान की बंजर श्रेणियों के मध्य छोटी घाटियों में पहाड़ियों से आती नदियों द्वारा तथा बारहमासी नदी व्यवस्थाओं द्वारा लाई गई उपजाऊ जलोढ़क से उन भूमि खंडों पर सिंचाई करना आसान हो गया था जहां उस समय वनस्पति उगती थी।

मेहरगढ़ का स्थल इसी पारिस्थितिक परिवेश में है। यह क्वेटा से लगभग 150 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इस स्थल पर उत्खननों से पता चलता है कि इस क्षेत्र का पूर्व मृद्भांड नवपाषाणकाल से समृद्ध हड़प्पा-काल तक एक लम्बा सांस्कृतिक इतिहास रहा है। मेहरगढ़ में नवपाषाण स्तर दो चरणों में वर्गीकरण किए गए हैं —i) प्रारंभिक अमृद्भांड (मृद्भांड रहित), और ii) उत्तरवर्ती चरण। जिन अनाजों की यहां खेती की जाती थी, उनमें जौ की दो किस्में और गेहूं की तीन किस्म शामिल थीं। अलूचा और खजूर के जले हुए बीज भी इन बस्तियों से ही प्राप्त हुये थे।

8. नवपाषाण काल के घर (मेहर गढ़)

उत्खननों के दौरान, नवपाषाण-काल (काल-I) के प्रारंभिक स्तरों में चिकारा, अनूप मृग, कुरंग जैसे जंगली जानवरों और भेड़-बकरी और मवेशियों की हड्डियां मिली हैं। लेकिन शीर्ष स्तर में (नवपाषाण निक्षेपों का उत्तरवर्ती चरण) में पालतू मवेशियों भेड़, बकरियों की हड्डियां मिली हैं। साथ ही जंगली चिकारा, सूअर और गोरखर की हड्डियां भी मिली हैं। अत: इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि भेड़-बकरियां स्थानीय रूप से पाली जाती थीं। यहां पूर्व मृद्भांड बस्ती की शुरुआत लगभग 6000 ई. पू. निर्धारित की गई है।

नवपाषाणकाल में जीविका के स्वरूप की विशेषता है प्रारंभिक कृषि और पशुओं के पालने तथा साथ ही शिकार पर आधारित मिश्रित अर्थव्यवस्था। यहां के निवासी कच्ची ईंटों के आयताकार मकानों में रहते थे। कुछ संरचनाओं को छोटे वर्गाकार भागों में विभक्त कर दिया गया था और उन्हें भंडारण के लिए उपयोग में लाया जाता था। औज़ारों की किट में एक पत्थर की कुल्हाड़ी, पांच पत्थर के बसूले, पच्चीस घर्षण पत्थर और सोलह लोढ़ शामिल होते थे। इनमें विशिष्ट फलक उद्योग के सूक्ष्म पाषाण औज़ार भी प्रचुर मात्रा में होते थे। कुछ फलकों पर चमक भी है, जो कण काटने के लिए उपयोग में चकमक की विशेषता है।

मेहरगढ़ से प्राप्त साक्ष्य के आधार पर लगता है कि शायद काची के मैदान मवेशी और भेड़ पालने के तथा गेहूं और जौ खेती के स्वतंत्र अधिकेन्द्र (मूल केन्द्र) थे। मेहरगढ़ में काल-II

ताम्रपाषाण चरण (5000 ई. पू.) का सूचक है जिसमें गेहूं और जौ की खेती के साथ-साथ कपास और अंगूर की खेती के भी साक्ष्य मिले हैं। सम्भवत: हड़प्पा निवासियों ने गेहूं, जौ और कपास की खेती का ज्ञान मेहरगढ़ के प्रारंभिक पूर्वजों से प्राप्त किया होगा। (हड़प्पा निवासियों के लिए अगला खंड देखें)। अत: मेहरगढ़ से प्राप्त इस साक्ष्य के कारण इस सिद्धान्त को संशोधित करना पड़ेगा कि कृषि और पशुओं को पालने का कार्य भारतीय उपमहाद्वीप की ओर पश्चिम एशिया से फैला।

4.4.2 काश्मीर घाटी की नवपाषाण संस्कृति

काश्मीर घाटी में ग्राम बस्तियों का लगभग 2500 ई. पू. में आविर्भाव हुआ बुर्जहोम और गुफ़कराल में हुए उत्खननों से इस क्षेत्र में नवपाषाण संस्कृति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है। इस क्षेत्र के नवपाषाण चरण को बुर्ज़होम में दो चरणों में और गुफ़कराल में तीन चरणों में वर्गीकृत किया गया है। उत्तरवर्ती स्थल पर सबसे प्रारंभिक अमृद्भांड (पुरा मृद्भांड यानि सबसे पुराने मिट्टी के बर्तन) चरण है जो भारत में पहली बार खोजा गया है। काश्मीर घाटी की नवपाषाण संस्कृति की विशेषता है गर्त आवास, अच्छी तरह बनाए गए और गेरू से रंगे फर्श और साथ ही खुले में भी आवास और बड़ी मात्रा में प्राप्त हड्डी के अद्वितीय औज़ारों से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह अर्थव्यवस्था प्रधानत: आखेट अर्थव्यवस्था थी।

गुफ़कराल में, चरण-I में फलियों मसूर, अरहर, गेहूं और जौ के जले हुए अन्न कण प्राप्त हुए हैं और साथ ही मवेशियों, भेड़-बकरियों, साकिन, लाल मृग और भेड़िया जैसे पशुओं की हड्डियां भी मिली हैं। चरण-II और चरण-III की विशेषता है कि उनमें वनस्पति कृषीकरण और पाले गए जानवरों के साक्ष्य मिले हैं। उत्तरवर्ती चरणों से जो अन्य उल्लेखनीय वस्तुएं प्राप्त हुई हैं उनमें लम्बी आदिम कुल्हाड़ियां, प्रस्तर नोकें, परिष्कृत हड्डी के औज़ार (मत्स्य भाले, वाणाग्र आदि) और छिद्रित हार्वेस्टर शामिल हैं। मानव शवाधानों के बीच कुत्तों के शवाधान भी मिले हैं। इनसे पता चलता है कि चरण-I की अनिवार्य आखेट-संग्राहक अर्थव्यवस्था का किस प्रकार धीरे-धीरे चरण-II में सुस्थापित कृषि अर्थव्यवस्था में विकास हो गया।

9. रहने का स्थान (बुर्जहोम)

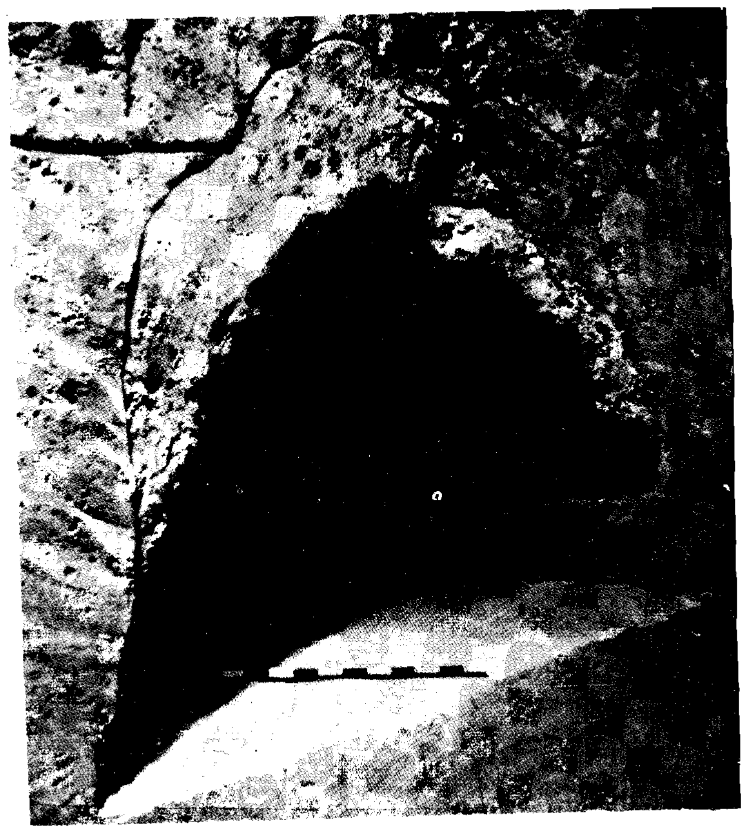

10. दो रहने के स्थानों को मिलाने वाला गलियारा (बुर्जहोम)

यहां यह उल्लेखनीय है कि बुर्ज़होम की नवपाषाण संस्कृति का मृदभांड, हड्डी और पत्थर की वस्तुओं में स्वात घाटी के सराय खोला और घाली गई के साथ सादृश्य प्रकट होता है। गर्त आवास, हार्वेस्टर और कुत्तों के शवाधान उत्तर चीनी नवपाषाण संस्कृति की विशेषताएं हैं। बुर्ज़होम में प्राप्त मृदभांडों से संकेत मिलता है कि इनका पूर्व हड़प्पा निवासियों से भी सम्पर्क था।

दो स्थलों से उपलब्ध सी-14 तिथि-निर्धारणों से संकेत मिलता है कि काश्मीर घाटी में नवपाषाण संस्कृति की समय अवधि 2500–1500 ई. पू. थी।

4.4.3 बेलान घाटी के प्राचीन किसान

बेलान नदी पूर्व से पश्चिम की ओर विंध्य पठार दृश्यांश के किनारे के साथ-साथ बहती है। यह टोंस नदी की उप-नदी है, जो इलाहाबाद के पास गंगा में मिलती है। यह क्षेत्र मानसून मेलखा का एक भाग है। सारे क्षेत्र में सागौन (टीक), बांस और ढाक के घने जंगल हैं। ये जंगल, बाघ, नीलगाय, चीतल आदि जैसे वन्य पशुओं के प्राकृतिक आवास हैं तथा यहां घनी घास, जंगली चावल सहित, उगी हुई है। अनुपुरापाषाण-काल तक से यह स्थान प्रारंभिक पाषाण युग के लोगों का प्रिय आखेट स्थल रहा है। बेलान घाटी के सम्बद्ध उत्खनन स्थल, जिनसे अन्न संग्रह चरण से अन्न उत्पादन चरण में संक्रमण के संकेत मिलते हैं, चौपानी-मांडो, कोल्डीरोवा और महागरा हैं।

पुरातत्वविदों ने चौपानी-मांडों में अनुपुरापाषाण काल से उत्तरवर्ती मध्य पाषाण युग अथवा आद्य नवपाषाण युग तक का तीन चरणों का अनुक्रम सिद्ध किया है। चरण-III (उन्नत मध्य

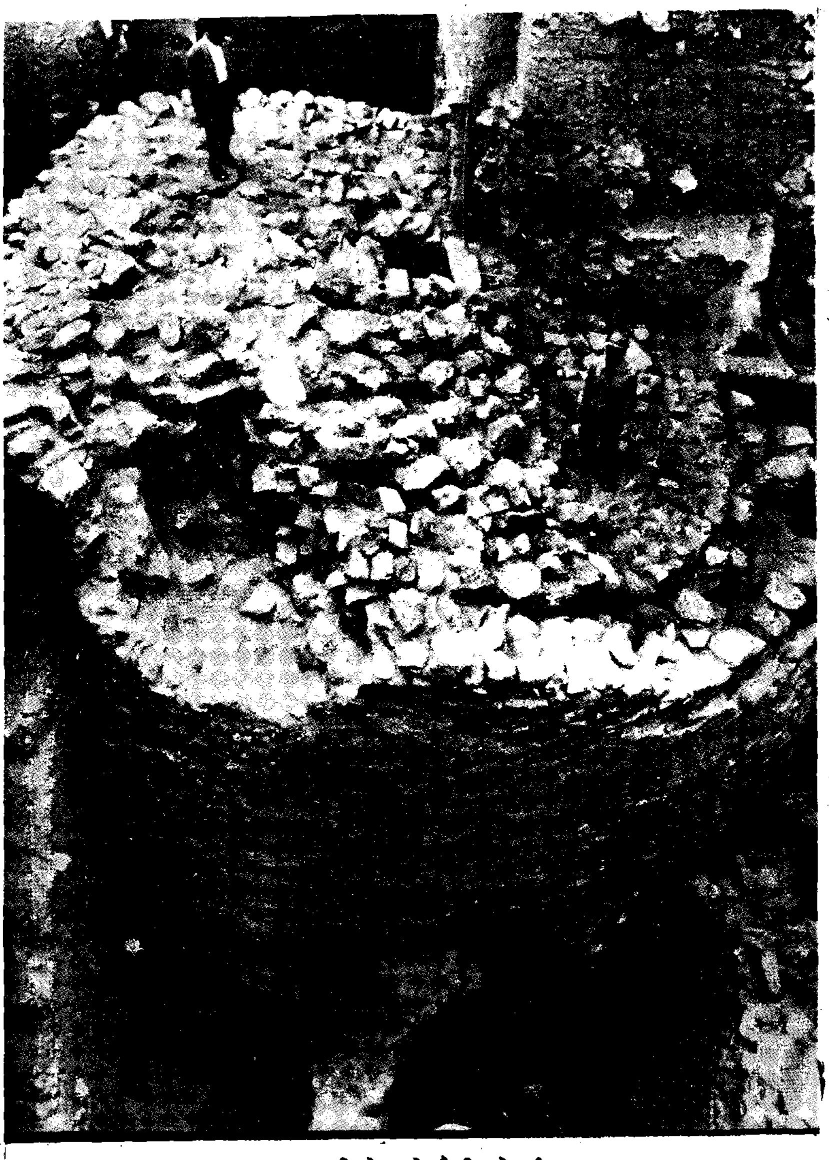

11. मधुमक्खी के छत्ते जैसी झोपड़ी

पाषाण युग) की विशेषता है कि अर्द्ध स्थानबद्ध सामुदायिक जीवन तथा विशिष्ट आखेट-संग्रह अर्थव्यवस्था। यहां मधुमक्खी के छत्ते जैसे झोपड़ियां, साझा चूल्हे, असुबाह्य निहाई, ज्यामितीय आकार के सूक्ष्म पाषाण, औज़ार बड़ी संख्या में वलय-पत्थर, और हाथ से बने सुन्दर मिट्टी के बर्तन मिले थे। आकार और प्रकार में अनेक तरह की चक्कियां और लोढ़े इस बात के परिचायक हैं कि उस समय अधिक ज़ोर अन्न संग्रह पर दिया जाता था। इस चरण में जंगली चावल और जंगली मवेशियों, भेड़ और बकरियों की हड्डियों के महत्वपूर्ण प्रमाण भी मिले हैं।

एकल संस्कृति स्थल ऐसा पुरातात्विक स्थल है जहां नवपाषाण या ताम्रपाषाण जैसे संस्कृति के एकल चरण में ही बस्ती थीं। यदि एक स्थल से, उत्खनन के बाद, पता चलता है कि इसमें नवपाषाण, ताम्रपाषाण अथवा लोहे के प्रयोग के चरणों में बस्ती थीं तो इसे बहु-संस्कृति स्थल कहा जाएगा और नवपाषाण चरण को प्रथम काल, ताम्रपाषाण चरण को द्वितीय काल तथा लोहे के प्रयोग के चरण को तृतीय काल कहा जाएगा। इन कालों से उस स्थल की संस्कृतियों का काल अनुक्रम प्रदर्शित होगा।

कोल्डीहवा में उत्खननों से त्रिविधि सांस्कृतिक अनुक्रम (नवपाषाण, ताम्रपाषाण, और लौह युग) का पता चलता है। महागरा एकल संस्कृति (नवपाषाण) स्थल है। इन दोनों स्थलों से प्राप्त संयुक्त साक्ष्य से स्थानबद्ध जीवन, चावल (**ऑरीज़ा सेटीवा**) उगाने, और मवेशी तथा भेड़-बकरी पालने के संकेत मिले हैं। इस क्षेत्र में रहने वाले लोगों के जीवन पर प्रकाश डालने वाली अन्य वस्तुएं हैं:

- रज्जु-चिन्हित मृदभांड
- गोल आदिम कुल्हाड़ियां और वसूले, आयताकार अथवा अंडाकार अनुप्रस्थ काट तथा केल्सेडोनी फलकों सहित
- वृत्ताकार/अंडाकार फर्श – हस्तकृतियों सहित
- बड़ा मवेशी बाड़ा – मवेशियों के खुरों के निशान सहित भी महागरा स्थलों से मिले हैं।

बेलान घाटी की नवपाषाण संस्कृति से विकसित और उन्नत स्थानबद्ध जीवन का, निम्नलिखित के साथ, पता चलता है:

- निश्चित परिवार इकाइयां
- मृद्‌भांड के रूपों का मानकीकरण
- चक्कियों और लोढ़ों जैसी खाद्य संसाधन इकाइयों का सुबाह्य आकार
- छैनी, कुल्हाड़ियों और बसूलों जैसे विशिष्ट औज़ार
- कृषीकृत चावल की खेती
- मवेशी, भेड़/बकरी और घोड़े पालना

यह सुझाया गया है कि बेलान घाटी के नवपाषाण कालीन किसानों का भारत (छठा सहस्राब्द ई. पू.) सबसे प्रारंभिक चावल उगाने वाले समुदाय के रूप में उदय हुआ, यद्यपि यह सुझाव सभी को मान्य नहीं है। संग्रहण अर्थव्यवस्था से कृषि अर्थव्यवस्था में संक्रमण के भी इस क्षेत्र में स्पष्ट साक्ष्य मिलते हैं। फिर भी, मृद्‌भांड चोपानी-मांडों में (नवां-आठवां सहस्राब्दि ई. पू.) उत्तरवर्ती मध्य पाषाण/आद्य नवपाषाण चरण में दिखाई दिए हैं। यह इस बात का सूचक है कि मृदभांड बनाने का काम कृषीकरण (चावल) और पशु (मवेशी, भेड़/बकरी और घोड़े) पालने के कार्य से पहले शुरू हो गया था।

चोपानी मांडो में संसार में मृद्‌भांड के इस्तेमाल के सबसे प्राचीन साक्ष्य मिले हैं।

4.4.4 बिहार/मध्य गंगा घाटी की नवपाषाण संस्कृति

सभी वनस्पति तथा जीव-जन्तु साधनों से सम्पन्न निचली मध्य गंगा घाटी में बहुत बाद में (2000–1600 ई. पू.) ग्रामीण बस्तियां बसीं। चिरांद, चेचर, सेनुआर और ताराडिब आदि में हुए उत्खननों से इस क्षेत्र के नवपाषाण कालीन लोगों के जीवन स्वरूप पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। सेनुआर (ज़िला रोहतास) में नवपाषाण कालीन किसान चावल, जौ, मटर, मसूर और कुछ मोटे अनाजों की खेती करते थे। इस स्थल से गेहूं और घास मटर की अनेक किस्में बस्ती के उच्च स्तरों से प्राप्त हुई हैं। चिरांद (ज़िला सारन), जो गंगा के उत्तरी तट पर स्थित है, में कच्चे फर्शों, मृद्‌भांडों, सूक्ष्म पाषाणों, घर्षित कुल्हाडियों, हड्डी के औज़ारों, उपरत्नों के मनकों और पकी मिट्टी (टेराकोटा) की मानव

मूर्तिकाओं के संरचनात्मक अवशेष मिले हैं। चिरांद और सेनुआर दोनों अपने उल्लेखनीय हड्डी के औज़ारों के लिए प्रसिद्ध हैं। चिरांद में जो अनाज उगाए जाते थे वे थे गेहूं, जौ, चावल और मसूर।

सेनुआर में उत्तरवर्ती नवपाषाण-ताम्रपाषाण कालीन लोगों ने अपने से पहले के लोगों द्वारा उगाई जाने वाली फसलों के अलावा चने और मूंग की खेती भी शुरू कर दी थी।

4.4.5 पूर्वी भारत के प्रारम्भिक किसान

इस क्षेत्र में उत्तरी कछार को मिलाकर असम की पहाड़ियां और गारो तथा नागा पहाड़ियां आती हैं। पारिस्थितिक दृष्टि से यह क्षेत्र बहुत वर्षा वाले मानसून क्षेत्र में आता है।

इस क्षेत्र की नवपाषाण संस्कृति की विशेषता है स्कंधयुक्त कुल्हाड़ियां, गोलाकार छोटे घर्षित कुल्हाड़े, रज्जु चिन्हित मृद्भांड जिनपर बहुत अधिक स्फटिक कण चिपकाए गए होते थे। उत्तरी कछार पहाड़ियों में देवजाली हाडिंग में किए गए उत्खननों से ऊपर बताई गई सभी वस्तुएं प्राप्त हुई हैं। ये वस्तुएं इन प्रकारों की हैं जो चीन और दक्षिण पूर्व एशिया में व्यापक रूप से पाए जाते हैं। फिर भी, असम के नवपाषाण विशेषकों का चीन अथवा दक्षिण पूर्व एशिया से सादृश्य अन्तिम रूप से निश्चित नहीं हो सका है क्योंकि इनमें बहुत अधिक कालानुक्रमिक अंतर है। असम के नवपाषाण संस्कृति चरण का तिथि निर्धारण अस्थायी रूप से 2000 ई. पू. के आसपास किया गया है।

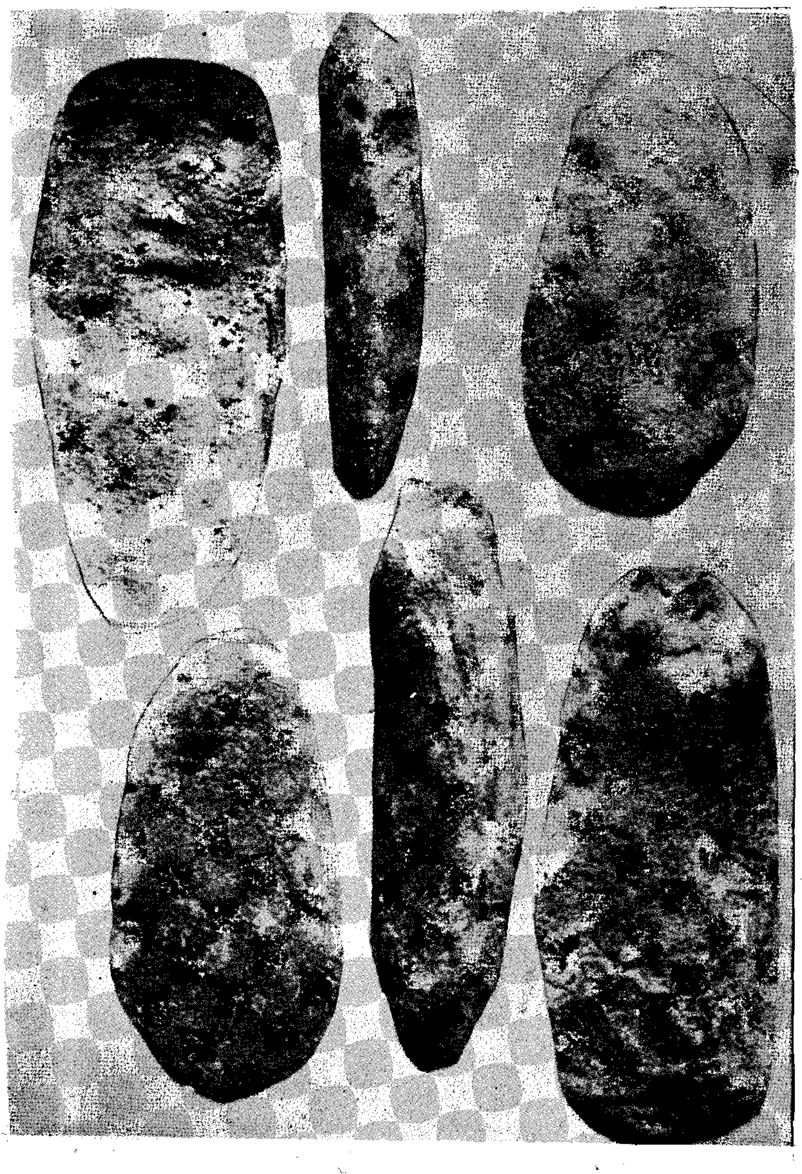

12. आसाम की गारो पहाड़ियों से प्राप्त पत्थर की कुल्हाड़ियां

4.4.6 दक्षिण भारत के प्रारम्भिक किसान

दक्षिण भारत में उन्नत आखेट अर्थव्यवस्था चरण से खाद्य उत्पादक अर्थव्यवस्था चरण में संक्रमण की समस्या अभी तक स्पष्ट रूप में सिद्ध नहीं की जा सकी है। नवपाषाण कालीन बस्तियां पहाड़ी और शुष्क दक्खन पठार पर पाई गई हैं, जहां से भीम, कृष्ण, तुंगभद्रा और कावेरी नदियों को जल प्राप्त होता है। यह बस्तियां खास तौर पर उन क्षेत्रों में फली-फूलीं, जहां सामान्य वर्षा प्रति वर्ष 25 सेंटीमीटर से कम होती है। दक्षिण भारत की नवपाषाण संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने वाले उत्खनित स्थल हैं सनगनकल्लू, नागार्जुन कोंडा, मस्की, बुधगिरि, टेक्कालकोटा, पिकलीहाल, कुपगल, हल्लूर, पलवाय, हेमीजे और टी. नरसीपुर।

पुरातत्वविदों ने दक्षिण भारतीय नवपाषाण संस्कृति को तीन चरणों में वर्गीकृत किया है। सबसे प्रारंभिक चरण के साक्ष्य सनगनकल्लू और नागार्जुन कोंडा में मिलते हैं। नागार्जुन कोंडा में प्राप्त आवासों के धुंधले चिन्ह, लेपित बाहरी सतहों वाले अपरिष्कृत हस्त-निर्मित पीले रक्ताभ भूरे मृद्भांड, चकमक के फलक औज़ार और घर्षित पत्थर के औज़ारों से प्रदर्शित होता है कि लोगों को खेती का केवल अल्प-विकसित ज्ञान था। संभवत: वे जानवर नहीं पालते थे। इस चरण का तिथि निर्धारण 2500 ई. पू. अथवा इससे पहले किया जा सकता है।

चरण-II में, चरण-I के लक्षण तो जारी रहे ही, मृद्भांड मुख्यत: लाल भांड बनावट के थे। तथापि मणिकारी कला और पशु पालना नए लक्षण हैं। अब सूक्ष्म पत्थर स्फटिक क्रिस्टलों के बनने लगे थे।

चरण-III में (तिथि निर्धारण 1500 ई. पू. के आसपास) धूसर भांड प्रमुख हैं। चरण-II के लाल भांड और लघु फलक उद्योग इस चरण में भी जारी रहे। विभिन्न प्रकारों के नवपाषाण औज़ार भी इस चरण में पाए जाते हैं। ये इस बात का संकेत देते हैं कि खेती का काम अधिक किया जा रहा था और भोजन संग्रह तथा आखेट की अब गौण भूमिका रह गई थी।

बाद के दोनों चरणों की विशेषता नागार्जुन कोंडा में आवास गर्तों से लक्षित होती है जिनकी छतों को संभालने के लिए लकड़ी के लट्ठों का इस्तेमाल किया गया था। अन्य स्थलों पर नरकुल और मिट्टी के मकानों के अवशेष भी मिले हैं।

दक्षिण भारत के नवपाषाण कालीन किसानों द्वारा उगाई गई सबसे पहली फसलों में मिलेट (रागी) की फसल थी। इसकी खेती आज भी होती है ओर गरीब लोगों के भोजन का यह एक महत्वपूर्ण स्रोत है। यह मवेशियों के लिए चारे के रूप में भी इस्तेमाल की जाती है। सामान्यत: ऐसा विश्वास किया जाता है कि कृषीकृत रागी पूर्व अफ्रीका से आई। जंगली रागी, जो कृषीकृत रागी के साथ-साथ खरपतवार के रूप में उग जाती थी, कृषीकृत रागी की पूर्वज नहीं थी। लेकिन जंगली रागी पूर्वज परम्परा से अफ्रीकी किस्म से सम्बद्ध थी। दक्षिण भारत के नवपाषाण कालीन किसानों द्वारा जिन फसलों की खेती की जाती थी वे थीं — गेहूं, कुलथी, और मूंग। खजूर भी उगाई जाती थी। लगता है कि इस काल के दौरान सौपान-कृषि खेती की एक महत्वपूर्ण विशेषता रही होगी। इसका उपयोग फसलें उगाने के लिए छोटे-छोटे खेत बनाने के लिए किया जाता था।

उत्खननों के प्राप्त पशुओं की हड्डियों के स्वरूप यह संकेत देते हैं कि पशुओं का उपयोग भार वहन करने के लिए अथवा भारी सामग्री खींचने के लिए तथा खेतों में हल चलाने के लिए किया जाता था। नागार्जुन कोंडा में किए गए उत्खननों से स्पष्ट है कि वनस्पति कृषीकरण पशुओं को पालने से पहले ही शुरू हो गया था। इन स्थलों से मवेशी, भेड़ और बकरी, भैंस, गधा, मुर्गी, सूअर और घोड़े जैसे पाले गए पशुओं की भी सूचना मिली है। सांभर मृग, बारहसिंगा, चित्तीदार मृग और चिकारा का शिकार किया जाता था तथा घोंघा और कछुए भोजन के लिए पकड़े जाते थे।

प्रचुर मात्रा में मवेशी और अन्य प्रकार की खाद्य वस्तुओं से संकेत मिलता है कि नवपाषाण कालीन लोगों की स्थानबद्ध कृषि तथा पशुचारण अर्थव्यवस्था थी। सी-14

तिथि निर्धारणों के आधार पर दक्षिण भारत की नवपाषाण संस्कृति का तिथि निर्धारण 2600 और 1000 ई. पू. के बीच किया गया है।

उत्नूर, कोडेकाल और कुपगल जैसे नवपाषाण स्थलों के पास अनेक राख के टीले मिले हैं। इनमें से कुछ बस्तियों से दूर जंगलों में भी मिले हैं। सुझाया गया है कि यह राख के टीले नवपाषाण कालीन मवेशी बाड़ों के स्थल थे। समय-समय पर, इकट्ठा हो गया गोबर या तो किसी संस्कार के रूप में अथवा दुर्घटनावश जलता रहा। अपेक्षाकृत अधिक दूरस्थ स्थानों पर पाए गए राख के ढेर इस बात का संकेत देते हैं कि लोग कुछ खास मौसमों में जंगलों के पशु-चारण स्थानों पर चले जाया करते थे।

4.4.7 ऊपरी मध्य और पश्चिमी दक्कन की नवपाषाण संस्कृति

कृष्णा और गोदावरी तथा उनकी सहायक नदियों के मध्य और ऊपरी विस्तारों में चित्र कुछ और ही हैं। इन क्षेत्रों में, काले पाश पर बनाए गए घर्षित पत्थर के औज़ारों के अलावा, बड़ी संख्या में समांतर पक्षीय फलक तथा गोमदे, केल्सेडोनी और इंद्र गोप मणि (सभी उपरत्न) के सूक्ष्म पाषाण धूसर भांडों और ताम्रपाषाण प्रकार के चित्रित मृद्भांडों के साथ मिले हैं। इस क्षेत्र से नवपाषाण चरण के कोई स्पष्ट अवशेष नहीं मिले हैं। लेकिन कृष्णा नदी की सहायक नदी भीमा पर चंदोली से प्राप्त साक्ष्य और गोदावरी की सहायक नदी प्रवरा पर नेवासा और दाइमाबाद स्थलों से प्राप्त साक्ष्य इस बात का संकेत देते हैं कि इस क्षेत्र में नवपाषाण किसान ताम्रपाषाण चरण में प्रवेश कर गए थे।

उत्तर महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और गुजरात की ताप्ती और नर्मदा घाटियों के उत्तर में और आगे नवपाषाण चरण के स्पष्ट अवशेष नहीं मिले हैं। केवल बीना घाटी में ऐरान स्थल पर और दक्षिण गुजरात में जोखा स्थल पर पाई गई दक्षिण भारत सादृश्य की नुकीले कुंदा सिरों वाली त्रिभुजाकार कुछ कुल्हाड़ियां ही इस क्षेत्र में नवपाषाण कालीन अवशेष हैं।

चम्बल, बनास, और काली सिंध घाटियों में घर्षित पत्थर के औज़ारों की विद्यमानता का शायद ही कोई प्रमाण हो। इस तथ्य के बावजूद कि प्रारंभिक मध्य पाषाण संदर्भ में पशु पालने का काम शुरू हो गया था, स्थानबद्ध बस्तियां इस क्षेत्र में केवल तभी शुरू हुई जब ताम्र कांस्य उपकरण ज्ञात हुए।

बोध प्रश्न 2

1 उत्तर पश्चिमी क्षेत्र में नवपाषाण संस्कृति की मुख्य विशेषता पर लगभग दस पंक्तियों में चर्चा कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2 निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सही है या गलत ? (✓) या (×) का चिह्न लगाइए।

i) यह कहा जा सकता है कि हड़प्पा निवासियों ने गेहूं, जौ और कपास की खेती का ज्ञान मेहरगढ़ के प्रारम्भिक निवासियों से प्राप्त किया था। ( )

ii) गुफराल में, कृषीकृत वनस्पति और पालतू जानवरों के कोई साक्ष्य नहीं मिलते। ( )

iii) बेलान घाटी स्थलों पर उत्खननों से हमें अन्न संग्रह से अन्न उत्पादन चरण में संक्रमण का स्वरूप निर्धारित करने में सहायता प्राप्त हुई है। ( )

iv) एकल संस्कृति स्थल का अर्थ है एक सांस्कृतिक स्थल में विभिन्न संस्कृतियों का सम्मिलन। ( )

v) दक्षिण भारत में सबसे पहले जो फसल उगाई गई थी, वह थी मिलेट (रागी)। ( )

vi) कछार पहाड़ियों में हुए उत्खननों से नवपाषाण संस्कृति के कोई अवशेष नहीं मिले हैं। ( )

3 मृद्भांड, घर्षित पत्थर के औज़ार और कच्चे मकानों के अवशेष मानव समाज के विकास के सम्बन्ध में क्या संकेत देते हैं ?

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

4.5 सारांश

इस इकाई से आपको उस चरण के मूल लक्षणों की जानकारी प्राप्त हुई है जिसकी विशेषता है वनस्पति कृषीकरण और पशुओं को पालने में संक्रमण आखेट/संग्रहण से खेती में संक्रमण से अनेक परिवर्तन आए। सामान्य शब्दों में, इनमें मृद्भांडों को बढ़िया बनाना, क्योंकि इन भांडों की अन्न संग्रह के लिए भी आवश्यकता थी और उनसे संसाधित भोजन खाने के लिए भी आवश्यकता थी, परिष्कृत औज़ार जो घर्षित थे और कृषि कार्यों के लिए कारगर थे, व्यवस्थित ग्राम समुदाय आदि शामिल थे।

आधुनिक साक्ष्यों से संकेत मिलता है कि सबसे पहले खेती का काम नील घाटी में शुरू हुआ और पश्चिम एशिया में यह कार्य बाद में हुए। कुछ क्षेत्रों में खेती और जानवरों को पालने का काम साथ-साथ हुआ, जबकि कुछ क्षेत्रों में खेती का काम जानवरों को पालने के कार्य से पहले शुरू हुआ।

इस इकाई में आप उन भौगोलिक क्षेत्रों से भी परिचित हुए हैं जिन क्षेत्रों में भारतीय उपमहाद्वीप में नवपाषाण कालीन संस्कृति के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। इन क्षेत्रों में नवपाषाण संस्कृतियों का उदय भिन्न-भिन्न समयों में हुआ और उनकी अवधि भी अलग-अलग थी। उपमहाद्वीप के भीतर ही पारस्थितिक अन्तरों के कारण, उगाई जाने वाली फसलें भी अलग-अलग थीं। पुरातत्वविदों ने विभिन्न प्राचीन स्थलों पर व्यापक उत्खननों से नवपाषाण संस्कृतियों के आविर्भाव और उनमें अन्तरों पर भी प्रकाश डाला है।

4.6 शब्दावली

शिकारी/संग्रहक: मानव विकास की वह अवस्था जब मनुष्य अपना भोजन शिकार करके अथवा जंगलों से कंद-मूल इकट्ठा करके प्राप्त करता था।

अनुपुरापाषाण काल: मानव द्वारा पत्थर के औज़ारों के प्रयोग का प्रारंभिक काल।

मृद्‌भांड: मिट्टी के बर्तन।

प्रारंभिक कृषि: मानव द्वारा जंगली पौधों का स्वयं कृषि द्वारा उत्पादन आरम्भ करना।

प्रारंभिक प्राचीन कृषक: वह मानव समूह जिन्होंने सबसे पहले कृषि करना शुरू किया।

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 आपके उत्तर में ये शामिल होने चाहिए:
गेहूं, जौ आदि की खेती के माध्यम से आखेटक/संग्राहक से अन्न उत्पादन विधि में परिवर्तन, व्यवस्थित ग्राम जीवन, पत्थर के औज़ार बनाने में प्रगति, मृद्‌भांड की शुरुआत आदि। देखें भाग 4.2।

2 ये थीं — वनस्पति कृषीकरण और जानवर पालने का काम आवश्यक तौर पर अंत:सम्बद्ध नहीं थे; अन्न उत्पादन का कार्य संभवत: नवपाषाण संस्कृति से पहले शुरू हो गया था, आदि। देखें उपभाग 4.3.1

3 i) आत्मनिर्भर, ii) घर्षित पत्थर, iii) कच्ची किलेबंदी, iv) बड़ा, तुर्की

बोध प्रश्न 2

1 देखें उपभाग 4.4.1

2) i) ✓, ii) ×, iii) ✓, iv) ×, v) ✓, vi) ×

3 इसका उत्तर देने के लिए आपको अपनी कल्पना शक्ति का सहारा लेना होगा। ये सभी उस प्रक्रिया का संकेत करते हैं, जिसके दौरान मानव सीधे समाजों से जटिल समाजों की ओर बढ़ रहा था; श्रम का विभाजन, टेक्नोलॉजी में विकास, आवश्यकता पर आधारित अन्वेषण आदि आपके उत्तर के लिए कुछ संकेत हैं।

इकाई 5 पूर्ववर्ती इतिहास, कालानुक्रमिक तथा भौगोलिक विस्तार

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 एक प्राचीन शहर की खोज
5.3 हड़प्पा की सभ्यता का युग
5.4 इसे हड़प्पा की सभ्यता क्यों कहा जाता है?
5.5 पूर्ववर्ती इतिहास
5.6 भौगोलिक विशेषताएँ
5.7 कृषि की शुरुआत और बसे हुए गाँव
5.8 आरंभिक हड़प्पा काल
- 5.8.1 दक्षिणी अफगानिस्तान
- 5.8.2 क्वेटा घाटी
- 5.8.3 मध्य और दक्षिण बलूचिस्तान
- 5.8.4 सिंधु क्षेत्र
- 5.8.5 पंजाब और बहावलपुर
- 5.8.6 कालीबंगन

5.9 हड़प्पा की सभ्यता का अभ्युदय
5.10 सारांश
5.11 शब्दावली
5.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- यह जान पाएंगे कि हड़प्पा की सभ्यता की खोज कैसे की गई?
- यह जान पाएंगे कि इसके कालक्रम का निर्धारण कैसे हुआ?
- यह समझ सकेंगे कि ग्रामीण समुदाय किस तरह धीरे-धीरे हड़प्पा की सभ्यता में परिवर्तित हुए?
- यह जान पाएंगे कि हड़प्पा की सभ्यता का भौगोलिक विस्तार किस प्रकार हुआ?

5.1 प्रस्तावना

खंड 1 में आपने पढ़ा कि किस प्रकार मानव समाज शिकारी संग्रहकर्त्ता से कृषि समाज की ओर अग्रसर हुआ। कृषि की शुरुआत के कारण ही मानव समाज में व्यापक परिवर्तन हुए। कृषि की शुरुआत का एक महत्वपूर्ण परिणाम था नगरों और सभ्यताओं का अभ्युदय। इस इकाई में आप एक ऐसी ही सभ्यता के उद्भव से परिचित होंगे, जिसे हड़प्पा की सभ्यता कहते हैं।

5.2 एक प्राचीन शहर की खोज

1826 में चार्ल्स मोसन नामक एक अंग्रेज पश्चिमी पंजाब (जो अब पाकिस्तान में है) में हड़प्पा नामक गाँव में आया। उसने वहाँ बहुत पुरानी बस्ती के बुर्जों और अद्भुत ऊँची-ऊँची दीवारों को देखा। उसने यह समझा कि यह शहर सिकन्दर महान् के समय का है। सन् 1872 में प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता सर अलक्जेंडर कनिंघम इस स्थान पर आया उसे आस-पास के क्षेत्रों के लोगों ने बताया कि हड़प्पा के ये ऊँचे-ऊँचे टीले हजार वर्ष पुराने शहर के अवशेष हैं। अपने राजा की दुष्टता के कारण यह शहर नष्ट हो गया था। कनिंघम ने इस स्थान से कुछ पुरातात्विक वस्तुएँ इकट्ठी कीं, लेकिन वह इन वस्तुओं का काल निर्धारण न कर सका। उसने सामान्य तौर पर यह माना कि संभवतः ये वस्तुएँ भारत से बाहर की हैं। इसलिए उसने गांव के लोगों के इस मत से सहमति व्यक्त की कि यह शहर लगभग एक हजार वर्ष पुराना है। फिर भी 1924 में एक अन्य पुरातत्वविद जॉन मार्शल ने हड़प्पा के विषय में रिपोर्ट दी और एक लम्बे समय से विस्मृत सभ्यता के बारे में बताया। यह सभ्यता उतनी ही प्राचीन थी जितनी मिश्र और मेसोपोटामिया की सभ्यताएं। है न विचित्र बात?

आस-पास के क्षेत्रों के लोग इस शहर के अवशेषों के प्रति उदासीन थे। फिर एक और पुरातत्ववेत्ता भारत आया और उसने हमें बताया कि यह शहर लगभग पांच हजार वर्ष पुराना है। इस संबंध में सामान्य लोगों और विद्वानों के मत इतने भिन्न क्यों थे? किसी बस्ती के काल निर्धारण के लिए इन्होंने क्या तरीके अपनाए?

5.3 हड़प्पा की सभ्यता का युग

पुरातत्ववेत्ता यह पता लगाने के लिए कि ये बस्तियां कितनी पुरानी हैं, अलग-अलग तरीके अपनाते हैं। अब हम मार्शल के उस मत की जांच करेंगे, जिसमें उन्होंने बताया है कि हड़प्पा की सभ्यता पांच हजार वर्ष पुरानी है। कनिंघम इस सभ्यता को एक हजार वर्ष पुरानी मानते हैं। मार्शल ने पता लगाया कि हड़प्पा में मिलीं मुहरें, ठप्पे, लिखित लिपि और कलाकृत्तियां उनसे बिल्कुल भिन्न थीं जिनसे विद्वान पहले से परिचित थे और जो बहुत बाद के समय की थीं। इसी प्रकार सिंध में मोहनजोदड़ो नामक स्थान से इसी प्रकार के तथ्य सामने आए हैं।

मोहनजोदड़ो में प्राचीन बस्तियां कुषाण युग से संबंधित बौद्ध बिहार के नीचे दबी हुई पाई गईं। यह पाया गया है कि यदि प्राचीन काल में कोई मकान किसी कारणवश नष्ट हो जाता था तो लोग आमतौर पर उस मकान की ईंट और गारे का चबूतरा तैयार करने के लिए प्रयोग करते थे और उस पर दूसरा मकान बनाते थे। इसलिए यदि कोई पुरातत्ववेत्ता किसी क्षेत्र की खुदाई करता है और किसी मकान के नीचे उसे दूसरे मकान के अवशेष मिलते हैं तो वह पता लगा सकता है कि नीचे वाला मकान ऊपर वाले मकान से पुराना है। इसलिए वह जितनी गहरी खुदाई करता है, कालक्रम की दृष्टि से वह उतना ही पीछे पहुँच जाता है।

इस प्रकार मार्शल यह पता लगा सका कि बौद्ध विहार के नीचे जो मक. थे वे अवश्य ही कुषाणकाल से पहले के रहे होंगे। इसके बाद इस बात का भी प्रमाण मि.ा ाया कि इन बस्तियों में रहने वाले लोग लोहे का प्रयोग करना नहीं जानते थे। इसका अर्थ यह हुआ कि ये शहर उस युग के थे जब लोगों को लोहे के बारे में जानकारी नहीं थी।

लोहे का प्रयोग 2000 ई. पू. के शुरू में हुआ। जब मार्शल ने अपने खोजों द्वारा प्राप्त जानकारी को प्रकाशित किया तो कुछ अन्य लेखकों को मेसोपोटामिया में ऐसी वस्तुएं मिलीं जो हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की वस्तुओं से मिलती-जुलती थीं। मेसोपोटामिया के शहर 3000 ई. पू. के आरंभ में अस्तित्व में आए। इस प्रकार मेसोपोटामिया के प्राचीन शहरों में हड़प्पा की सभ्यता में पाई जाने वाली कोई वस्तु मिल जाती थी तो उससे यह पता चलता था कि हड़प्पा के निवासी ओर मेसोपोटामिया के निवासी समकालीन थे। इन साक्ष्यों से

विद्वान यह पता लगा सके कि स्थानीय लोगों और कनिंघम के निष्कर्ष गलत थे। मार्शल द्वारा प्रतिपादित हड़प्पा के काल क्रम को रेडियो कार्बन डेटिंग जैसे काल-निर्धारण के नए तरीकों, से और भी समर्थन मिला है। इसलिए विद्वानों ने हड़प्पा पूर्व (Pre Harappa) और हड़प्पा की संस्कृतियों के लिए निम्नलिखित कालक्रम माना है :

हड़प्पा पूर्व और हड़प्पा संस्कृति का कालानुक्रम

5500 ई. पू. से 3500 ई. पू. तक नवपाषाण युग

बलूचिस्तान और सिंधु के मैदानी भागों में स्थिति मेहरगढ़ और फीली गुलमुहम्मद जैसी बस्तियां उभरीं। यहां लोग पशु चराने के साथ-साथ थोड़ा बहुत खेती का काम भी करते थे। इस प्रकार स्थायी गांवों का उद्भव हुआ। इस युग के लोग गेहूं, जौं, खजूर, तथा कपास की खेती की जानकारी रखते थे ओर भेड़ बकरियों और मवेशियों को पालते थे। साक्ष्य के रूप में मिट्टी के मकान, मिट्टी के बर्तन, और दस्तकारी की वस्तुएं मिली हैं।

3500 ई. पू. से 2600 ई. पू. तक आरम्भिक हड़प्पा काल

इस काल में पहाड़ों और मैदानों में बहुत सी बस्तियां स्थापित हुईं। इसी समय गांव सबसे अधिक संख्या में आबाद हुए। तांबा, चाक और हल का प्रयोग कर कई प्रकार के मिट्टी के अद्भुत बर्तन बनाए जाते थे जिससे कई क्षेत्रीय परम्पराओं के आरम्भ का पता चलता है। अन्न भंडार, ऊँची-ऊँची दीवारें और सुदूर व्यापार के प्रमाण मिले हैं। सारी सिंधु घाटी में मिट्टी के बर्तनों की एकरूपता के प्रमाण मिलते हैं। इसके साथ-साथ पीपल, कुबड़े बैलों, शेषनागों, सींगदार देवता आदि के रूपांकनों के प्रयोग के प्रमाण मिले हैं।

2600 ई. पू. से 1800 ई. पू. तक.....पूर्ण विकसित हड़प्पा युग

बड़े शहरों का अभ्युदय, समान आकार की ईंटें, तौलने के बाट, मुहरें, और मिट्टी के बर्तन, नियोजित ढंग से बसे हुए शहर और दूर-दूर स्थानों के साथ व्यापार।

1800 ई. पू. से आगे.....उत्तर-हड़प्पा युग

हड़प्पा की सभ्यता के बहुत से शहर खाली हो गए, अंतर-क्षेत्रीय विनिमय में ह्रास हुआ, लेखन कार्य और शहरी जीवन का त्याग कर दिया गया। हड़प्पा की सभ्यता के शिल्प और मिट्टी के बर्तनों की परम्परा जारी रही। पंजाब सतलुज यमुना की ग्रामीण संस्कृतियों का विभाजन और गुजरात में हड़प्पा की शिल्प और मिट्टी के बर्तनों की परंपराओं का अपनाया जाना।

5.4 इसे हड़प्पा की सभ्यता क्यों कहा जाता है?

हड़प्पा की खोज के बाद से अब तक लगभग एक हजार बस्तियों की खोज की जा चुकी है जिनकी विशेषताएं हड़प्पा से मिलती हैं। विद्वानों ने इसे "सिंधु घाटी की सभ्यता" का नाम दिया क्योंकि शुरू में बहुत सी बस्तियां सिंधु घाटी और उसकी सहायक नदियों के मैदानों में पाई गई थीं। पुरातत्ववेत्ता इसे "हड़प्पा की सभ्यता" ही कहना पसंद करते हैं। ऐसा इसलिए है कि पुरातत्व-विज्ञान में यह परिपाटी है कि जब किसी प्राचीन संस्कृति का वर्णन किया जाता है तो उस स्थान के आधुनिक नाम पर उस संस्कृति का नाम रखा जाता है, जहां से उसके अस्तित्व का पता चला है। हमें यह मालूम नहीं है कि वे लोग अपने को क्या कहते थे क्योंकि हम उनकी लिखाई नहीं पढ़ पाये हैं। इसलिए हम आधुनिक स्थान हड़प्पा को आधार मानकर उन्हें हड़प्पावासी कहते हैं। क्योंकि इसी स्थान पर इस विस्मृत सभ्यता का प्रमाण सबसे पहले मिला था।

5.5 पूर्ववर्ती इतिहास

जब हम "हड़प्पा की सभ्यता" शब्द का प्रयोग करते हैं तो हमारा तात्पर्य असंख्य शहरों,

कस्बों और गांवों से होता है जो 3000 ई. पू. में पूर्णतः विकसित हो चुके थे। एक विशाल भौगोलिक क्षेत्र के अंतर्गत इन शहरों और गांवों में आपसी संबंध थे। इन भौगोलिक स्थानों के अंतर्गत मोटे तौर पर आज का राजस्थान, पंजाब, गुजरात, पाकिस्तान और कुछ आसपास के क्षेत्र आते हैं। यदि हम हड़प्पा की सभ्यता के उद्‌भव से इन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों द्वारा छोड़े गए अवशेषों का अध्ययन करते हैं तो हमें शहरों के उद्‌भव की जानकारी मिल सकती है। विद्वानों का विचार है कि मानवजाति के अतीत में एक ऐसा समय था जब शहरों का अस्तित्व नहीं था और लोग छोटे-छोटे गांवों में रहते थे। अब प्रश्न यह उठता है कि हड़प्पावासियों के पूर्वज कस्बों और शहरों के उद्‌भव से पहले क्या किया करते थे। ऐसे प्रमाण मिले हैं जिनसे पता चलता है कि हड़प्पावासियों के पूर्वज गांवों और छोटे-छोटे कस्बों में रहा करते थे। उनमें से घूम-फिरकर पशु चराने का काम करते थे और कुछ व्यापार के कार्य में लगे हुए थे। हड़प्पा की सभ्यता से कृषक और अर्ध यायावर समुदायों के एक लम्बे समय से चले आ रहे विकास के चरमोत्कर्ष का पता चलता है। अब हम हड़प्पा की सभ्यता के पूर्ववर्ती इतिहास की समीक्षा करेंगे। सबसे पहले हम हड़प्पा की सभ्यता के भौगोलिक क्षेत्र की भौगोलिक विशेषताओं को समझने का प्रयास करेंगे।

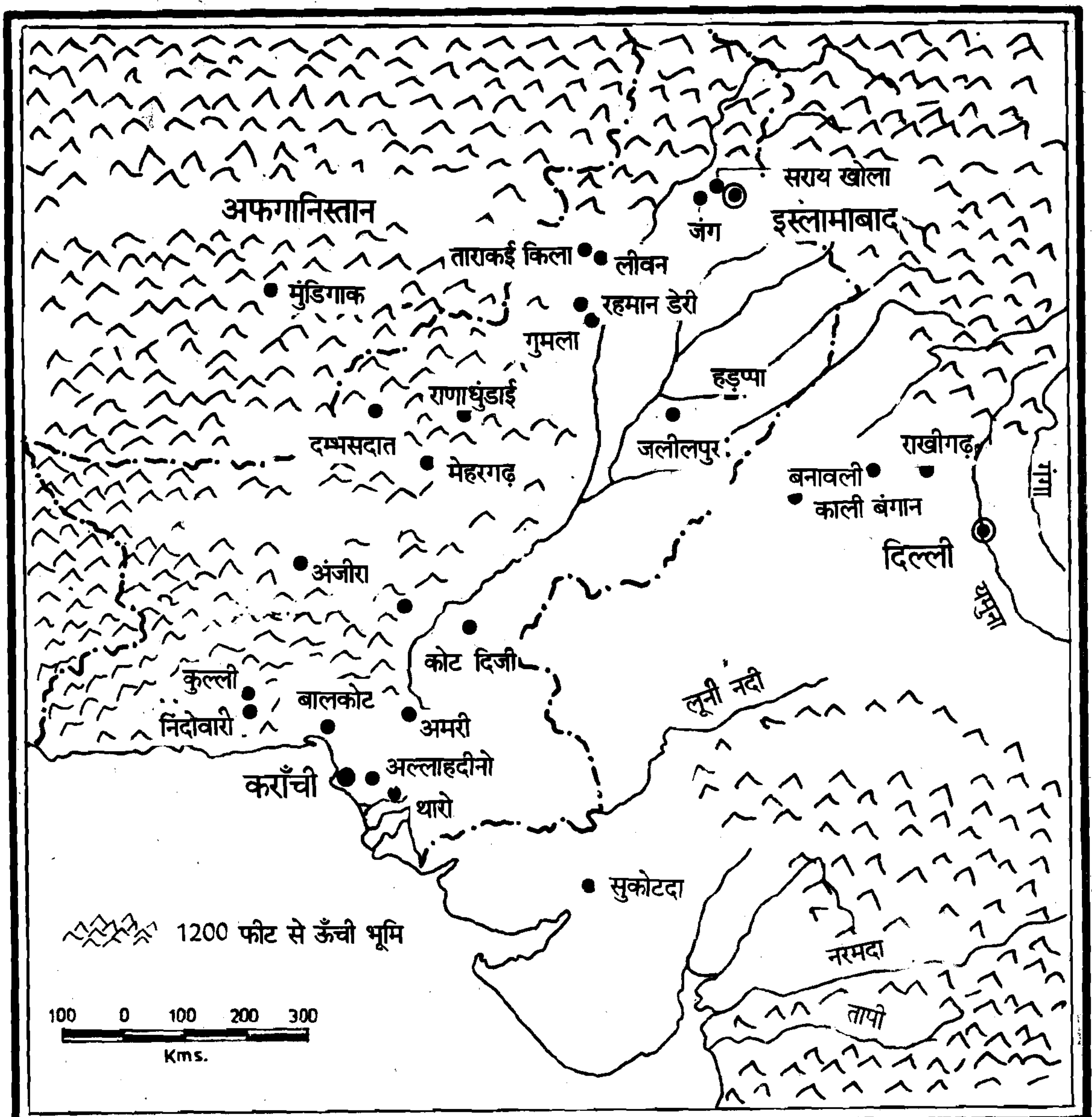

मानचित्र-1 प्रारम्भिक हड़प्पा सभ्यता की बस्तियाँ

5.6 भौगोलिक विशेषताएं

आज के पाकिस्तान और उत्तर पश्चिम भारत के क्षेत्र "हड़प्पा की सभ्यता" के प्रमुख क्षेत्र थे। इन क्षेत्रों में मौसम सूखा रहता है और वर्षा बहुत कम होती है। फिर भी इन क्षेत्रों में कुछ महत्वपूर्ण अंतर है। पंजाब और सिंधु के क्षेत्र में सिंधु नदी के कछारी मैदानों की प्रधानता है। इसी प्रकार बलूचिस्तान के क्षेत्र की एक विशेषता है उसकी दुर्गम चट्टानी पहाड़ियां। उत्तर पूर्वी बलूचिस्तान में घाटियों की तलहटी से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यहां खेती होती होगी। इस क्षेत्र में पशुचारी तथा खानाबदोश जातियां भी रहती आई हैं। ये पशुचारी खानाबदोश जातियां अपने पशुओं के लिए चारे की खोज में ऊंचे स्थानों से निचले स्थानों पर आती जाती रहती थीं। वह सीमांत क्षेत्र जो सिंधु के मैदान में जा मिलता है, पूर्वी ईरान के पठार का ही विस्तारण है। इन पहाड़ी क्षेत्रों में खैबर, गोमाल, बोलन जैसे कई दर्रे बन गए हैं। खानाबदोशों, व्यापारियों, योद्धाओं और विभिन्न लोगों के लिए ये आने-जाने के मार्ग बन गए थे। एक तरफ बलूचिस्तान के ऊपरी भागों के लोगों और सिंधु नदी के मैदानों में बसे लोगों और दूसरी तरफ ईरान में रहने वाले लोगों के बीच अन्तरसम्बन्ध इस भौगोलिक विशेषता से जुड़ा प्रतीत होता है। हड़प्पा की सभ्यता की जलवायु और पहाड़, नदियां आदि तथा ईरान और ईराकी सीमांत प्रदेश की जलवायु और प्राकृतिक दृश्य में समानता होने के कारण। विद्वानों ने यह अनुमान लगाया कि इन क्षेत्रों में कृषक समुदायों का अभ्युदय मोटे तौर पर एक ही काल में हुआ होगा। ईरान और ईराक में खेतीबाड़ी का आरम्भ लगभग 8000 ई. पू. में हुआ है। अब हम यह जानने की कोशिश करेंगे कि सिंधु के आस-पास के क्षेत्रों में कृषि की शुरुआत के विषय में प्रमाण मिले हैं।

5.7 कृषि की शुरुआत और बसे हुए गांव

कृषक समुदायों के उद्‌भव का सबसे प्राचीन प्रमाण मेहरगढ़ नामक स्थान से मिलता है जो पाकिस्तान के बलूचिस्तान प्रांत में बोलन दर्रे के निकट स्थित है। (खंड 1 की इकाई 4 में भी देखें) यह स्थान अस्थायी शिविर के रूप में स्थापित हुआ तथा पांचवीं सहस्त्राब्दी ई. पू. में आबाद गांव बन गया। इस स्थान पर लोग गेंहू, जौ और खजूर पैदा करते थे और भेड़-बकरियों और मवेशी पालते थे।

मेहरगढ़ उस स्थान पर स्थित है जहां सिंधु नदी के कछारी मैदान और भारत-ईरान सीमांत प्रदेश के ऊँचे-नीचे पहाड़ी पठार मिलते हैं। मेहरगढ़ के लोग कच्चे मकानों में रहते थे। कुछ मकानों में पांच-छह कमरे होते थे। तीसरी सहस्त्राब्दी ई. पू. के मध्य में बहुत से छोटे और बड़े गांव सिंधु नदी के आस-पास बलूचिस्तान और अफगानिस्तान के क्षेत्र में बस गए थे। इनमें से कुछ मशहूर हैं : बलूचिस्तान में कीली गुल मोहम्मद और अफगानिस्तान में मुंडीगक। सिंधु नदी के बाढ़ वाले मैदानों में हड़प्पा के पास जलीलपुर जैसे गांव बस गए थे। इन किसानों ने सिंधु नदी के अत्यधिक उपजाऊ मैदानों का उपयोग करना सीख लिया था, इसलिए गांवों के आकार और उनकी संख्या एकाएक बढ़ गई। इन किसानों ने सिंधु नदी के मैदानों का धीरे-धीरे उपयोग करना और सिंधु नदी की बाढ़ पर नियंत्रण करना सीख लिया था। इस प्रकार प्रति एकड़ भूमि पर खेती करने से प्रचुर मात्रा में उपज होती थी। इस कारण सिंधु, राजस्थान, बलूचिस्तान और अन्य क्षेत्रों में भी बस्तियों का काफी विस्तार हुआ। उन्होंने अपने लिए उपयोगी पत्थरों की खदानों और अन्य खदानों का उपयोग करना सीख लिया था। इस काल में अस्थायी बस्तियों में पशुचारी खानाबदोश समुदायों के मौजूद होने के संकेत मिलते हैं। कृषकों के इन खानाबदोश समूहों से संपर्क ने कृषकों को अन्य क्षेत्रों के संसाधनों का उपयोग करने में सहायता दी क्योंकि पशुचारी खानाबदोशों के बारे में यह माना जाता है कि जिन क्षेत्रों से वे गुजरते हैं वे वहां व्यापारिक गतिविधियों में लग जाते हैं। इन सभी कारणों से छोटे-छोटे कस्बों का विकास हुआ। सिंधु नदी के आस-पास के क्षेत्रों की सभ्यता में पाई गई कुछ समानताओं के कारण इस नए विकास के काल को "आरम्भिक हड़प्पा काल" कहते हैं।

बोध प्रश्न 2

1 निम्नलिखित कथनों को पढ़िए और सही (✓) अथवा गलत (×) का निशान लगाइए।

i) जॉन मार्शल ने हड़प्पा की सभ्यता को पाँच हजार वर्ष पुराना माना है। ( )

ii) हड़प्पा की बस्तियों में रहने वाले लोग लोहे का उपयोग जानते थे। ( )

iii) इसे हड़प्पा की सभ्यता इसलिए कहा गया क्योंकि हड़प्पा पहला स्थान था, जिसकी खोज की गई। ( )

iv) हमारे पास इस बात के प्रमाण हैं कि हड़प्पा की सभ्यता के निवासियों के पूर्वज बड़े शहरों में रहते थे। ( )

2 आरम्भिक हड़प्पा की सभ्यता की भौगोलिक विशेषताओं पर दस पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

5.8 आरम्भिक हड़प्पा काल

अब हम हड़प्पा सभ्यता के अभ्युदय के कुछ समय पहले की कुछ बस्तियों की समीक्षा करेंगे। बहुत से विद्वानों ने इसे आरम्भिक "हड़प्पा काल" कहा है क्योंकि उनका विश्वास है कि यह हड़प्पा की सभ्यता का निर्माण-युग था जिसमें सांस्कृतिक एकता की कुछ प्रवृत्तियों के प्रमाण भी मिले हैं।

5.8.1 दक्षिणी अफगानिस्तान

दक्षिणी अफगानिस्तान में मुंडीगक नामक स्थान है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह स्थान व्यापारिक मार्ग पर स्थित रहा होगा। सिंधु सभ्यता के आरम्भिक काल में इस स्थान के निवासी शिल्पकृतियों का प्रयोग करते थे जिनसे एक ओर ईरान के कुछ नगरों और दूसरी ओर बलूचिस्तान के कुछ नगरों के साथ संबंधों का पता चलता है।

खानाबदोश लोगों के कुछ समूहों द्वारा पड़ाव डालने की धीमी शुरुआत से यह स्थान एक घनी आबादी वाला नगर हो गया। इस बात के प्रमाण हैं कि यहां ऊँची दीवार होती थी जिसमें धूप में सुखाई गई ईंटों के वर्गाकार बुर्ज थे। एक विशाल भवन जिसमें खंभों की कतारें थीं महल के रूप में पहचाना गया है। दूसरा विशाल भवन मंदिर जैसा प्रतीत होता है। इसी स्थान पर मिट्टी के बर्तनों की अनेक किस्में भी मिली हैं। वे लोग प्राकृतिक सजावट के रूप में चिड़ियों, लम्बे सींग वाले जंगली बकरे, बैल और पीपल के पेड़ों को चित्रित करते थे। पक्की मिट्टी की बनी हुई स्त्रियों की छोटी छोटी मूर्तियां भी मिली हैं जो बलूचिस्तान की बस्तियों में पाई गई मूर्तियों से मिलती-जुलती हैं। वे कांसे की मूठदार

कुल्हाड़ियों और बसलों का प्रयोग करते थे। सेलखड़ी और लाजवर्द जैसे अल्प अमूल्य पत्थरों से ईरान और मध्य एशिया के साथ अनेक संबंधों का पता चलता है क्योंकि ये पत्थर स्थानीय रूप से उपलब्ध नहीं थे।

5.8.2 क्वेटा घाटी

मुंडीगक के दक्षिण पूर्व की ओर क्वेटा घाटी है। दंब सादात नामक स्थान में बड़े-बड़े ईंटों के घर पाए गए हैं जिनका संबंध तीसरी सहस्त्राब्दी ई. पू. के आरम्भ से है। कई प्रकार के चित्रकारी किए हुए मिट्टी के बर्तन भी पाए गए हैं जो मुंडीगक में पाए गए मिट्टी के बर्तनों जैसे ही हैं ये लोग पक्की मिट्टी की मोहरों और तांबे की वस्तुओं का भी प्रयोग करते थे। इन खोजों से उस समय के समुदायों की सम्पन्नता का संकेत मिलता है जिन्होंने अपनी खाद्य समस्या सुलझा ली थी और दूर के क्षेत्रों से व्यापारिक संबंध स्थापित कर लिए थे। इसी प्रकार आस-पास के क्षेत्रों से भी विशिष्ट कला और मिट्टी के बर्तनों की परंपरा के बारे में जानकारी मिली है। राना घुंदई नामक स्थान में लोग बारीकी से बने हुए तथा चित्रकारी किए हुए मिट्टी के बर्तन प्रयोग करते थे। इन पर काले कुबड़े बैलों के चित्र बने होते थे। इन मिट्टी के बर्तनों तथा क्वेटा घाटी में पाए गए मिट्टी के बर्तनों में सुस्पष्ट समानताएं पाई गईं। एक अन्य स्थान पेरिआनों घुंदाई जिसकी खुदाई की गई है, में भी एक विशिष्ट प्रकार की स्त्रियों की छोटी-छोटी मूर्तियां पाई गई हैं।

5.8.3 मध्य और दक्षिणी बलूचिस्तान

मध्य और दक्षिणी बलूचिस्तान में अंजीरा तोगाऊ, निंदोवाड़ी और बालाकोट जैसी बस्तियां हमें आरम्भिक हड़प्पा सभ्यता के समाजों की जानकारी देती हैं। घाटी की व्यवस्था के अनुसार गांव और उपनगर विकसित हुए। बालाकोट में विशाल इमारतों के अवशेष पाए गए हैं। इस क्षेत्र की कई बस्तियों से फारस की खाड़ी से सम्पर्क का पता चलता है। बालाकोट में जो लोग सबसे पहले बसे उसी प्रकार के मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करते थे जिस प्रकार के मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग बलूचिस्तान के समकालीन गांवों के लोग करते थे किंतु कुछ समय पश्चात् उन्होंने सिंधु नदी के कछारी मैदानों में प्रयुक्त किए जाने वाले मिट्टी के बर्तनों के समान ही मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया था। हमारे लिए महत्वपूर्ण बात यह है कि सम्पूर्ण बलूचिस्तान प्रांत के लोग एक ही प्रकार के मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करते थे। इस प्रकार उन पर एक ओर पारस की खाड़ी के नगरों का तथा दूसरी ओर सिंधु घाटी के नगरों के प्रभावों का पता चलता है। वे अपने मिट्टी के बर्तनों पर कुबड़े बैल और पीपल के चिन्हों का प्रयोग करते थे जो विकसित हड़प्पा काल में भी जारी रहा।

5.8.4 सिंधु क्षेत्र

चौथी सहस्त्राब्दी ई. पू. के मध्य तक सिंधु के कछारी मैदान परिवर्तन का केन्द्र बिंदु बन गए। सिंधु नदी और छग्गर-हाकरा नदियों के किनारों पर बहुत सी छोटी और बड़ी बस्तियां बस गईं। यह क्षेत्र हड़प्पा की सभ्यता का मुख्य क्षेत्र बन गया। इस चर्चा में हम यह बताने का प्रयास करेंगे कि किस प्रकार इन घटनाओं से हड़प्पा की सभ्यता की अनेक विशेषताओं का पता चला।

1 आमरी

सिंधु घाटी के निचले मैदानों के समान सिंधु प्रांत के विकास का पता चलता है। आमरी में मिले मकानों के अवशेषों से पता चलता है कि लोग पत्थर और मिट्टी की ईंटों के मकानों में रहते थे। उन्होंने अनाज को रखने के लिए अनाज के कोठार (अन्नागार) भी बनाए थे।

वे मिट्टी के बर्तनों पर भारतीय कुबड़े बैलों जैसे जानवरों के चित्र बनाते थे। यह चित्र (चिन्ह) पूर्ण विकसित हड़प्पा काल में बहुत लोकप्रिय था। वे चाक पर बने मिट्टी के बर्तनों का भी प्रयोग करते थे। थारो और कोहत्रास बूथी जैसे स्थानों से भी ऐसी ही वस्तुएं पाई गईं। यहां पर हड़प्पा की सभ्यता के शुरू होने से पहले ही उन्होंने अपनी बस्तियों की किलेबंदी कर ली थी।

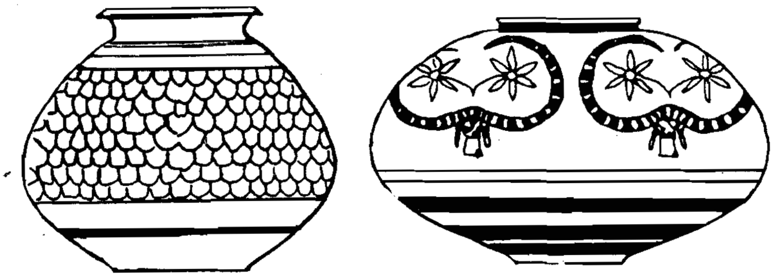

चित्र 1 प्रारम्भिक हड़प्पा सभ्यता के मिट्टी के बर्तन : कोट दीजी।

2 कोट दीजी

मोहनजोदड़ो के सामने सिंधु नदी के बाएं किनारे पर कोट दीजी नामक स्थान है। आरंभिक हड़प्पा काल में यहां के निवासियों ने अपनी बस्ती के चारों ओर अति विशाल सुरक्षात्मक दीवार बना ली थी। उनकी सबसे बढ़िया खोज मिट्टी के बर्तन हैं। वे चाक पर बने मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करते थे जिन पर गहरे भूरे रंग की साधारण धारियों की सजावट होती थी। इस प्रकार के मिट्टी के बर्तन राजस्थान में कालिबंगन और बलूचिस्तान में मेहरगढ़ जैसे दूर-दराज के स्थानों में बसे पूर्व हड़प्पा काल के निवासियों के बताए जाते हैं। कोट दीजी मिट्टी के बर्तनों की किस्में सिंधु नदी के आस-पास के सम्पूर्ण भू-भाग में पाई गई हैं जहां पर हड़प्पा के पूर्व-शहरी और शहरी अवस्था से संबंधित बस्तियों के बारे में जानकारी मिली है। मिट्टी के बर्तनों का समान रूप से सजावट की इस प्रवृत्ति से यह संकेत मिलता है कि सिंधु नदी के मैदानी भागों में रहने वाले लोगों के बीच घनिष्ठ संबंध थे। इससे हड़प्पा की सभ्यता में संस्कृतियों के मूल की प्रक्रिया का भी पूर्वाभास मिलता है। मिट्टी के बर्तनों के अनेक डिजाइन शहरी अवस्था तक शेष रहे। उसी समय के अन्य मिट्टी के र्बन मुंडीगक में बने हुए मिट्टी के बर्तनों के समान थे। इससे आरंभिक हड़प्पा के स्थानों में विस्तृत आपसी संबंधों का पता चलता है। पुरातत्ववेत्ताओं ने मोहनजोदड़ो में इस मैदान की आधुनिक स्तर के 39 फुट नीचे तक खुदाई करके अधिभोग निक्षेप का पता लगाया है। इस प्रकार चान्हूदड़ो नामक स्थान पर आरंभिक हड़प्पा के मकानों का पता चला है। मोहनजोदड़ो में शुरू के स्तर तक खुदाई नहीं हो पाई है परंतु अनेक पुरातत्ववेत्ताओं का यह विश्वास है कि उनके रहन-सहन के ढंग से आरंभिक हड़प्पा की संस्कृति की जानकारी मिलती है जो संभवतः कोट दीजी की संस्कृति से मेल खाती है।

3 मेहरगढ़

इससे पहले भी हम मेहरगढ़ स्थल के बारे में बता चुके हैं। हड़प्पा के शहरीकरण के पूर्ववर्ती काल में मेहरगढ़ के लोगों ने एक संपन्न उपनगर बसाया था। वे पत्थरों की कई प्रकार की मालाएं बनाते थे। वे एक कीमती पत्थर लाजवर्द मणि का प्रयोग करते थे जो केवल मध्य एशिया के बदख्शां क्षेत्र में पाया जाता है। बहुत सी मोहरों और ठप्पों का भी पता चला है। आपसी लेन-देन में प्राधिकार के चिन्ह रूप में इन मोहरों का प्रयोग होता था।

मेहरगढ़ की मोहरों का प्रयोग संभवतः व्यापारियों द्वारा दूर-दराज के क्षेत्रों को भेजे जाने वाले माल की गुणवत्ता की गारंटी देने के लिए किया जाता था। मिट्टी के बर्तनों के डिजाइन, मिट्टी की बनी मूर्तियों, तांबे ओर पत्थर की वस्तुओं से पता चलता है कि इन लोगों का ईरान के निकटवर्ती नगरों के साथ घनिष्ठ संबंध था। मेहरगढ़ के लोगों द्वारा प्रयोग किए गए अधिकतर मिट्टी के बर्तन दम्ब सादात और क्वेटा घाटी की बस्तियों में प्रयुक्त किए जाने वाले बर्तनों से मिलते थे। इसके अतिरिक्त मिट्टी की बनी स्त्रियों की बहुत सी मूर्तियां भी मिली हैं। वे जोब घाटी में पाई गई मूर्तियों से बहुत कुछ मिलती जुलती हैं। इन समानताओं से उस क्षेत्र में रहने वाले समुदायों के बीच निकट आपसी संबंधों का पता चलता है।

4 रहमान ढेरी

यदि हम सिंधु नदी के उत्तर की ओर चलें तो हमें कुछ और बस्तियां मिलेंगी जिनसे हमें

यह पता चलता है कि आरंभिक हड़प्पा काल में लोग किस प्रकार रहते थे। रहमान ढेरी नामक स्थान पर आरंभिक सिंधु उपनगर की खुदाई की गई है। यह उपनगर आयताकार था और इसमें घर, सड़कें, गलियां नियोजित ढंग से बने हुए थे। इस उपनगर की सुरक्षा के लिए एक विशाल दीवार थी यहां भी फीरोजी और नीलम के मनके मिले हैं। इससे उनके मध्य एशिया के साथ संबंधों का पला चलता है। बर्तनों के टुकड़ों पर पाए गए असंख्य भित्ति चित्र हड़प्पालिपि के पूर्वसूचक हो सकते हैं। इस क्षेत्र में मिट्टी के बर्तनों की स्वतंत्र परंपरा धीरे-धीरे बदल गई और कोट दीजी के मिट्टी के बर्तनों के समान मिट्टी के बर्तनों ने स्थान ले लिया। पत्थर, तांबे और कांसे से बनी मोंहरे और औजार भी मिले हैं।

5 तरकाई किला

बन्नू क्षेत्र के उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत में तरकाई किले की किलेबंदी का प्रमाण भी मिला है। पुरातत्वविदों ने खाद्यान्नों के बहुत सारे नमूने खोज निकाले हैं जिनमें गेहूं और जौं, मूंग-मसूर की दालें और देसी मटर के नमूने शामिल हैं। फसल काटने के औजारों का भी पता चला है। उसी क्षेत्र में लीवान नामक स्थान पर पत्थर के औजार बनाने के एक बहुत बड़े कारखाने का पता चला है। हड़प्पा के निवासी और उनके पूर्वज लोहे और तांबे के बारे में बिल्कुल भी जानकारी नहीं रखते थे। अतः अधिकतर लोग पत्थर से बने औजारों का प्रयोग करते थे। इसलिए कुछ स्थानों पर जहां अच्छी श्रेणी का पत्थर उपलब्ध था, बड़ी संख्या में औजार बनाए जाते थे और उसके बाद उन औजारों को दूर-दूर के नगरों और गांवों में भेजा जाता था। लीवान में लोग पत्थर के कुल्हाड़े,. हथौड़े, चक्कियाँ आदि बनाते थे। इस काम के लिए वे निकटवर्ती क्षेत्रों से भी उपयुक्त चट्टानी पत्थर मंगाते थे। नीलम और मिट्टी की बनी मूर्तियों के पाए जाने से मध्य एशिया के साथ संबंधों का पता चलता है। सरायखोला नामक स्थान पर जो पश्चिमी पंजाब के उत्तरी किनारे पर स्थित है एक अन्य आरंभिक हड़प्पा बस्ती का पता चला है। यहां पर भी लोग कोट दीजी जैसे मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करते थे।

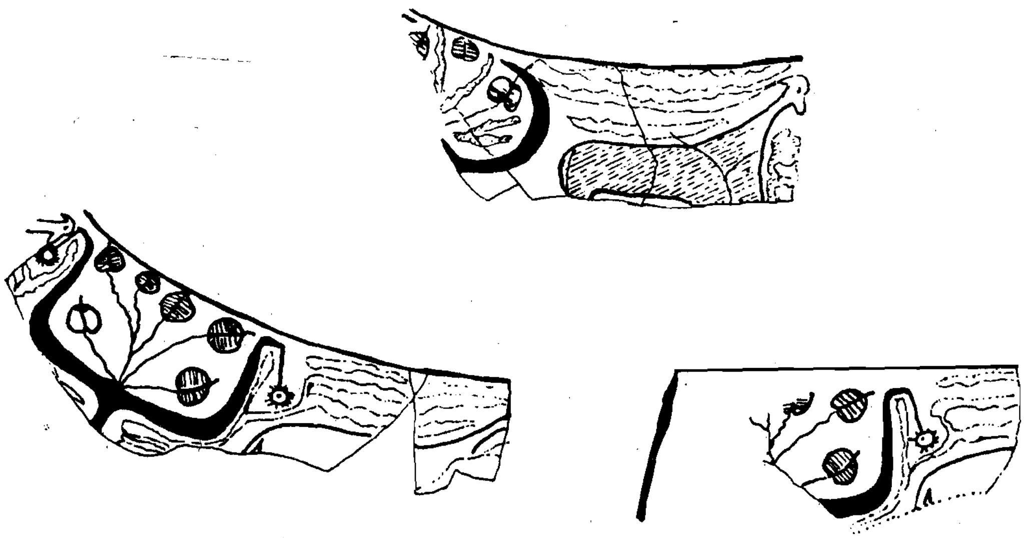

चित्र-2 लीवन में पाए गए रंगे हुए मिट्टी के बर्तन जिन पर पीपल के पत्तों तथा बैलों के सिर की आकृतियां बनी हुई हैं

5.8.5 पंजाब और बहावलपुर

पश्चिमी पंजाब में हड़प्पा प्रसिद्ध है। एक खुदाई के दौरान शहरीकरण की अवस्था से पहले की बस्तियों की खोज की गई है। दुर्भाग्यवश अभी तक उनकी खुदाई नहीं हुई है। यहां पाए गए मिट्टी के बर्तन कोट दीजी के बर्तनों के समान हैं। विद्वानों का विचार है कि ये बस्तियां हड़प्पा में 'आरंभिक हड़प्पा काल' में रही होंगी। बहावलपुर क्षेत्र में हाकरा नदी की सूखी तलहटी में आरम्भिक हड़प्पा काल के लगभग 40 स्थानों का पता लगाया गया है। कोट दीजी में पाए गए मिट्टी के बर्तनों से यहां पर भी आरंभिक हड़प्पा सभ्यता का पता

चलता है। इन स्थानों का बस्ती के स्वरूप के तुलनात्मक विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि आरंभिक हड़प्पा काल में कई प्रकार के मकान बन गए थे। जबकि कई स्थानों में तो साधारण गांव ही थे और उनमें से कुछ स्थानों में विशिष्ट औद्योगिक कार्य हो रहे थे। इसलिए हम देखते हैं कि अधिकतर स्थानों का औसत आकार लगभग पांच से छह एकड़ था गमनवाला 27.3 हेक्टेयर क्षेत्र में फैला है। इसका अर्थ यह हुआ कि गमनवाला कालीबंगन के हड़प्पा उपनगर से बड़ा था। इन उपनगरों में कृषि कार्यों के अतिरिक्त अवश्य ही प्रशासनिक और औद्योगिक होते होंगे।

5.8.6 कालीबंगन

उत्तरी राजस्थान के कालीबंगन स्थान पर आंरभिक हड़प्पा काल के प्रमाण मिले हैं। यहां पर लोग कच्ची ईंटों के मकानों में रहते थे। इन कच्ची ईंटों का मानक आकार होता था। वे बस्ती के चारों तरफ चार दीवारी भी बनाते थे। उन लोगों द्वारा प्रयुक्त मिट्टी के बर्तनों का आकार और डिजाइन दूसरे क्षेत्रों में प्रयुक्त मिट्टी के बर्तनों के आकार और डिजाइन से अलग था। फिर भी मिट्टी के कुछ बर्तन कोट दीजी में पाए गए मिट्टी के बर्तनों से मिलते थे। **बलि स्तंभ** जैसे मिट्टी के बर्तनों के कुछ नमूनों का प्रयोग शहरी चरण के दौरान जारी रहा। इसके अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण खोज थी जुते हुए खेत का तल। इससे सिद्ध होता है कि उस समय भी किसान हल के बारे में पहले से ही जानते थे। पुराने हालात में किसान केवल बीज छितराकर बो सकते थे या खेतों की खुदाई के लिए फावड़े, कुदाली का प्रयोग करते थे। हल से कोई भी व्यक्ति बहुत कम मेहनत से अधिक गहरी खुदाई कर सकता है। इसलिए इसे खेती का उन्नत औजार समझा जाता है जिसमें खाद्य उत्पादन को बढ़ाने की शक्ति है।

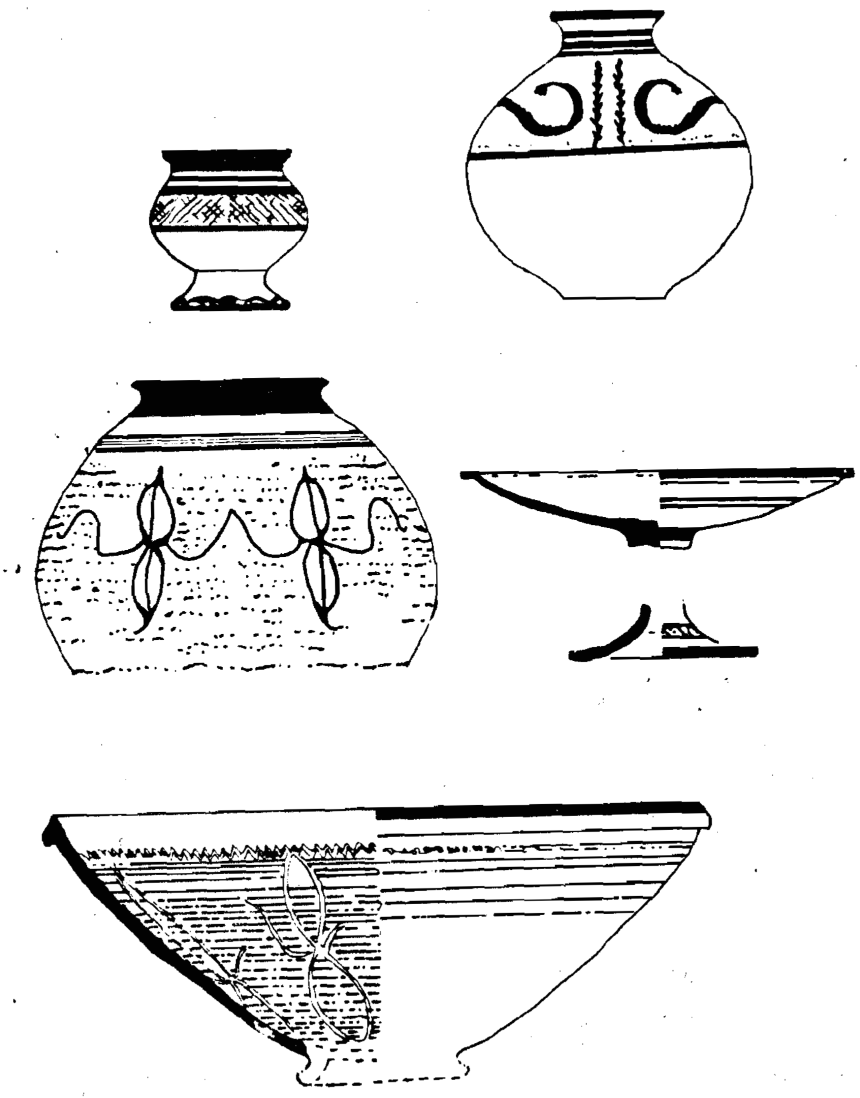

चित्र-3 प्रारम्भिक सिंधु सभ्यता के मिट्टी के बर्तन—कालीबंगन

घग्गर नदी, जो भारत में है सूखी तलहटी में आरंभिक हड़प्पा की अनेक बस्तियाँ पाई गई हैं। ये बस्तियां उन जलमार्गों के पास पाई गई हैं जो अब विलुप्त हो गए हैं। सोथी बाड़ा और सीसवाल जैसी बस्तियों में जो मिट्टी के बर्तनों की शैलियां प्रचलित थीं। वह कालीबंगन के मिट्टी के बर्तनों की शैलियों से मिलती जुलती थी ऐसा प्रतीत होता है कि राजस्थान में खेतड़ी की तांबे की खानों का उपयोग आरंभिक हड़प्पा काल में ही शुरू हो गया होगा। हमने आरंभिक काल में सिंधु क्षेत्रों और उसके आस-पास रहने वाले विभिन्न कृषक समुदायों की सांस्कृतिक परंपराओं में पाई गई समानताओं का उल्लेख किया है।

बलूचिस्तान, सिंधु, पंजाब और राजस्थान में आरंभ में छोटी-छोटी कृषक बस्तियां थीं, इसके पश्चात् इन क्षेत्रों में अनेक प्रकार की क्षेत्रीय परंपराओं का अभ्युदय हुआ है। किंतु एक ही प्रकार के मिट्टी के बर्तन्न, सींग वाले देवता के चित्रण और मिट्टी की मातृदेवियों की मूर्तियों से पता चलता है कि एकीकरण की परंपरा शुरू हो चुकी थी। बलूचिस्तान के लोगों ने पारस की खाड़ी और मध्य एशिया के नगरों के साथ पहले ही व्यापारिक संबंध बना लिए थे। इस प्रकार आरंभिक हड़प्पा काल से हड़प्पा की सभ्यता की उपलब्धियों की जानकारी मिलती है।

हमने लगभग तीन हजार वर्षों में हुई घटनाओं को पढ़ा है। इस काल के दौरान किसानों ने सिंधु नदी के कछारी मैदानों में बस्तियां बसाईं। ये समुदाय तांबे, कांसे और पत्थर के औजारों का प्रयोग करते थे। श्रम से अधिक उत्पादकता प्राप्त करने के लिए वे हल और पहिए वाली गाड़ी का प्रयोग करते थे। ईरान में भेड़-बकरियां पालने का प्रचलन था तो इसके विपरीत सिंधु घाटी के लोग गाय, भैंस आदि पशु पालते थे। इससे उन्हें यातायात और खेती के लिए पशु शक्ति का प्रयोग करने के लिए बेहतर अवसर मिल गये थे। इसी दौरान मिट्टी के बर्तनों को बनाने की परंपरा में धीरे-धीरे एकरूपता आई। कोट दीजी में जो विशेष प्रकार के मिट्टी के बर्तन सबसे पहले पाए गए थे। आरंभिक हड़प्पा काल में वे बलूचिस्तान, पंजाब और राजस्थान के समस्त क्षेत्रों में भी पाए गए। मिट्टी की मातृदेवियों की मूर्तियां और सींगदार देवता के रूपांकन कोट दीजी और कालीबंगन में भी पाए गए। कुछ समुदायों ने अपने घरों के चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवारें बना ली थीं। इन दीवारों के निर्माण के पीछे क्या प्रयोजन रहा होगा, यह हमें मालूम नहीं है। हो सकता है कि ये दीवारें दूसरे समुदायों से सुरक्षित रहने के लिए बनाई गई हों अथवा बाढ़ से बचने के लिए बनाई गई हों। ये सभी घटनाएं फारस की खाड़ी और मेसोपोटामिया की समकालीन बस्तियों के साथ अधिक व्यापक संबंधों के संदर्भ में घटित हो रही थीं।

5.9 हड़प्पा की सभ्यता का अभ्युदय

प्रौद्योगिकीय और वैचारिक एकीकरण की इन प्रक्रियाओं की पृष्ठभूमि में हड़प्पा की सभ्यता का अभ्युदय हुआ। इस सभ्यता की उत्पत्ति से संबंधित प्रक्रियाएं अस्पष्ट हैं क्योंकि उनकी लिपि का अध्ययन नहीं किया गया है और अनेक बस्तियों की खुदाई की जाने की जरूरत है। ऊपर कुछ सामान्य प्रक्रियाओं की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। उन्नत और सिंधु घाटी के उर्वर मैदानों में खेती करने तथा उन्नत प्रौद्योगिकी के प्रयोग से खाद्यान्न उत्पादन में बढ़ोतरी हुई होगी। इससे अतिरेक खाद्यान की संभावनाएं पैदा हुई। इसके कारण जनसंख्या में भी वृद्धि हुई। इसके साथ-साथ समाज के धनी वर्ग बहुमूल्य वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए दूर-दराज के समुदायों के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित करते थे। अतिरेक खाद्यान्नों से गैर-कृषि कार्य करने के अवसर मिले। गांव का पुरोहित सम्पूर्ण क्षेत्र में फैले हुए पुरोहित-कुल का अंग बन सकता था। इसी प्रकार की प्रक्रियाएं धातु विज्ञानियों, कुम्हारों और शिल्पियों के संबंध में भी सामने आईं। गांवों में अनाज रखने के चबूतरे बड़े-बड़े कोठारों में बदल गए।

कई कृषक समूहों और पशुचारों यायावर समुदायों का एक दूसरे के साथ निकट संपर्क होने से उनके बीच तनाव तथा परस्पर-विरोध उत्पन्न हो सकता था। कृषक एक समुदाय के रूप में स्थापित होने के पश्चात् अन्य कम खुशहाल समूहों को अपनी ओर आकृष्ट कर सकते थे।

पशुचारी यायावर जातियों के बारे में यह प्रसिद्ध है कि वे व्यापार और लूटपाट के कार्य में लगी थीं। अपनी आर्थिक दशा के अनुसार वे इन गतिविधियों में सम्मिलित होते थे। कृषक समुदाय में अधिक उपजाऊ भूमि को हथियाने के लिए संघर्ष होता था। संभवतः यही कारण है कि कुछ समुदायों ने अपने चारों ओर सुरक्षा के लिए दीवार बना ली थी। हम जानते हैं कि हड़प्पा की सभ्यता के अभ्युदय के समय कोट दीजी और कालीबंगन जैसी कई बस्तियां आग से नष्ट हो गयी थीं हमें इसका कारण मालूम नहीं है। फिर भी यह तथ्य अधिक विश्वसनीय प्रतीत होता है कि सिंधु क्षेत्र में विभिन्न प्रतियोगी समुदायों में लोगों के एक वर्ग ने दूसरों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। इससे 'विकसित हड़प्पा काल' के आरंभ का संकेत मिला। हड़प्पा सभ्यता एक विस्तृत भौगोलिक क्षेत्र में फैली हुई थी। इस कारण विकसित हड़प्पा काल के आरंभ होने की कोई एक तिथि नहीं हो सकती।

यह संभव है कि विकास के केंद्र के रूप में इस शहर का कई सौ वर्षों की समयावधि में अभ्युदय हुआ होगा। परंतु यह शहर अस्तित्व में आया और यही कारण है कि इस शहर का अगले सात-आठ सौ वर्षों के लिए पूरे उत्तर-पश्चिम क्षेत्र पर प्रभुत्व रहा।

बोध प्रश्न 2

1 निम्नलिखित कथनों को पढ़िए और सही (✓) अथवा गलत (×) का निशान लगाइए।

i) आरम्भिक हड़प्पा सभ्यता के लोगों के ईरान तथा मध्य एशिया के साथ व्यापारिक संबंध थे। ( )

ii) विकसित हड़प्पा काल की बहुत सी विशेषताएं सिंधु नदी के मैदान में विकसित हुईं। ( )

iii) सिंधु मैदानों के विभिन्न क्षेत्रों के बीच संपर्क के प्रमाण नहीं मिले हैं। ( )

iv) आरम्भिक हड़प्पा काल में कालीबंगन तथा अन्य क्षेत्रों में इस्तेमाल किए जाने वाले मिट्टी के बर्तनों की बनावट तथा आकार में एकरूपता थी। ( )

2 आरंभिक हड़प्पा काल के विभिन्न क्षेत्रों में सभ्यता किस प्रकार विकसित हुई? लगभग दस पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

5.10 सारांश

भारतीय इतिहास के अध्ययन के लिए हड़प्पा की सभ्यता की खोज का विशेष महत्व है। यह खोज भारतीय इतिहास को और पीछे ले गई तथा यह बात सामने आई कि हड़प्पा की

सभ्यता मिश्र और मेसोपोटामिया जैसी विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं के समकालीन थी। हड़प्पा की सभ्यता की खोज का मुख्य श्रेय पुरातात्विक स्रोतों को जाता है।

इस इकाई में आपने उस प्रक्रिया के बारे में जिसके द्वारा इस सभ्यता की खोज हुई, जिन अवस्थाओं से आरंभिक हड़प्पा की सभ्यता गुजरी इन अवस्थाओं के ब्यौरे, इसके क्रमिक विकास और अनेक क्षेत्रों में इसके विस्तार के बारे में पढ़ा। इस खंड की अगली इकाइयों में आप हड़प्पा के लोगों के समाज और अर्थव्यवस्था से संबंधित कई अन्य पक्षों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

5.11 शब्दावली

मोहर : लाख या पत्थर अथवा किसी अन्य वस्तु का टुकड़ा जिसमें कोई आकृति बनी होती है इसे प्रमाणीकरण के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

ठप्पा : वह वस्तु जिसमें मोहर की छाप हो।

रेडियो कार्बन डेटिंग : इसे सी-14 डेटिंग भी कहते हैं। यह निर्जीव कार्बनिक पदार्थ में रेडियोधर्मी आइसोटोप को मापने की विधि है। यह रेडियोधर्मी आइसोटोप ज्ञात एवं परिकलनीय दर से लुप्त हो जाता है।

खानाबदोशी (यायावरी) : पशुचारी और चारे की तलाश में घूमने वाले समुदायों से जुड़ी जीवन-शैली। ये लोग एक ही स्थान पर नहीं ठहरते बल्कि एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते हैं।

पशुचारी खानाबदोशी : पशु और भेड़-बकरियां चराने वाले लोगों से जुड़ा सामाजिक संगठन जो चरागाहों की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते हैं।

कालक्रम : समय-निर्धारण करने की विधि।

कछारी मैदान : नदी किनारे के आस-पास का क्षेत्र जिस पर बाढ़ के समय नदी गाद जमा करती है।

5.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 (i) ✓ (ii) × (iii) ✓ (iv) ×

2 भाग 5.6 देखें

बोध प्रश्न 2

1 (i) ✓ (ii) ✓ (iii) × (iv) ×

2 आपके उत्तर में ये बातें शामिल होनी चाहिए : अत्यंत उन्नत प्रौद्योगिकी। खाद्यान्नों की पैदावार, जनसंख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि, बढ़ती हुई विशेषज्ञता और व्यापार में वृद्धि। उपभाग 5.8.5 का अंतिम हिस्सा और भाग 5.9 देखें।

इकाई 6 भौतिक विशेषताएं

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 गांव से कस्बों और नगरों की ओर
6.3 हड़प्पा-सभ्यता : स्रोत
6.4 भौगोलिक विस्तार
6.5 महत्वपूर्ण केन्द्र
 6.5.1 हड़प्पा
 6.5.2 मोहनजोदड़ो
 6.5.3 कालीबंगन
 6.5.4 लोथल
 6.5.5 सुत्काजिन-दोर
6.6 भौतिक विशेषताएं
 6.6.1 नगर-योजना
 6.6.2 मिट्टी के बर्तन
 6.6.3 औजार और उपकरण
 6.6.4 कला और शिल्प
 6.6.5 सिन्धु-लिपि
 6.6.6 जीवन-यापन का स्वरूप
6.7 सारांश
6.8 शब्दावली
6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

इस इकाई में हड़प्पा-सभ्यता के भौगोलिक विस्तार और भौतिक विशेषताओं का विवरण है। इसमें हड़प्पा-सभ्यता की मुख्य बस्तियों और उन भौतिक अवशेषों के बारे में बताया गया है जो इन बस्तियों की विशेषताओं को उजागर करते हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- यह समझ पाएंगे कि प्रारंभिक हड़प्पा और हड़प्पा-सभ्यता के बीच जनसंख्या और भौतिक परम्पराओं की निरंतरता कायम थी,
- हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों के क्रमिक विकास के भौगोलिक तथा जलवायु संबंधी पहलुओं से परिचित हो सकेंगे,
- हड़प्पा-सभ्यता के महत्वपूर्ण केन्द्रों की विशिष्ट भौगोलिक, जलवायु और जीवन-निर्वाह संबंधी विशेषताओं का उल्लेख कर पाएंगे,
- यह जान सकेंगे कि हड़प्पा-सभ्यता की मुख्य बस्तियों की भौतिक विशेषताएं क्या थीं और विशेषकर यह कि इन बस्तियों की भौतिक विशेषताओं में किस तरह की एकरूपताएं पाई गई हैं।

6.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम चरागाही और खेतिहर जातियों तथा छोटे-छोटे कस्बों की नींव पर पनपी हड़प्पा-सभ्यता के भौगोलिक विस्तार और इसकी भौतिक विशेषताओं की चर्चा करेंगे।

प्रारम्भिक हड़प्पा और हड़प्पा-सभ्यता के बीच जनसंख्या और भौतिक परम्पराओं की निरंतरता बनी हुई थी। इसमें हड़प्पा-सभ्यता के भौगोलिक विस्तार के अलावा कुछ महत्वपूर्ण केन्द्रों के संबंध में भी विशेष चर्चा की गई है। इस इकाई में आपको हड़प्पा-सभ्यता की नगर योजना, महत्वपूर्ण इमारतों, कला एवं शिल्प, घरों की बनावट, मिट्टी के बर्तन, औजार तथा उपकरण और जीवन-निर्वाह के तरीकों आदि की जानकारी देने का प्रयास किया गया है। अन्त में, हड़प्पा की बस्तियों की भौतिक विशेषताओं में पाई गई एकरूपताओं पर भी प्रकाश डाला गया है।

6.2 गांवों से कस्बों और नगरों की ओर

इकाई 5 में आप पढ़ चुके हैं कि किस तरह चरागाही घुमन्तु और खेतिहार समुदाय सिन्धु के मैदान में आकर बसे। किस तरह छोटे-छोटे नगर और कस्बे आबाद हुए जिन्होंने दूर-दूर के देश-प्रदेशों से सम्पर्क कायम किया। आगे चलकर इन्हीं खेतिहर समुदायों और छोटे-छोटे नगरों की नींव पर "हड़प्पा-सभ्यता" पनपी।

"हड़प्पा-सभ्यता" में बड़े-बड़े नगरों की मौजूदगी उसका एक महत्वपूर्ण पहलू है। इसका अर्थ यह भी है कि उस समय कुशल कारीगर थे, दूर-दूर तक व्यापार होता था, समाज में धनी और निर्धन दोनों तरह के लोग रहते थे और राजा हुआ करते थे। ये विशेषताएं तो आम तौर पर सभी सभ्यताओं में पाई जाती हैं, किन्तु हड़प्पा-सभ्यता की अपनी कुछ अलग विशेषताएं भी थीं। हड़प्पा-सभ्यता के अवशेष जिस भौगोलिक क्षेत्र में पाए गए हैं, उस क्षेत्र में रहने वाले समुदाय एक ही लिखित लिपि का प्रयोग कर रहे थे। हड़प्पा का कोई भी समुदाय, भले ही, उस समय वह राजस्थान में था या पंजाब में या सिंध में, नाप-तोल के लिए एक ही तरह के बाट और तराजू का इस्तेमाल करता था। वे तांबा और कांसे से निर्मित जिन औजारों का प्रयोग करते थे, वे बनावट, शक्ल और आकार में एक जैसे होते थे। उनके द्वारा प्रयोग में लाई गई ईंटों का अनुपात 4:2:1 था। उनके कुछ नगरों में बनी इमारतों, किलों आदि की बनावट में भी एकरूपताएं थीं। उस पूरे भौगोलिक क्षेत्र में, जहां हड़प्पा-सभ्यता के नगर मौजूद थे, मोहरों (Seals), शंख से बनी चूड़ियों, लाल पत्थर के बने मनकों और सेलखड़ी से बने गोल चपटे मनकों की बनावट एक-सी होती थी। हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों को अधिकतर गुलाबी रंग के मिट्टी के बर्तनों से पहचाना जाता है। इन मिट्टी के बर्तनों का ऊपरी भाग लाल रंग का होता था। मिट्टी के इन बर्तनों पर काले रंग से पेड़ों, पशु-पक्षियों के एक ही प्रकार के चित्र बने होते थे और ज्यामिती की आकृतियों को चित्रित किया जाता था। हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों की भौतिक विशेषताओं में पाई जाने वाली ये एकरूपताएं ही हड़प्पा-सभ्यता की मुख्य विशेषताएं थीं।

6.3 हड़प्पा-सभ्यता : स्रोत

हड़प्पा-सभ्यता के बारे में जानकारी हड़प्पा और मोहनजोदड़ो नामक बस्तियों की खुदाई की रिपोर्टों से प्राप्त होती है। हड़प्पा में खुदाई 1921 में आरंभ हुई। तब से कई हड़प्पा की बस्तियों का पता लगाया जा चुका है और वहां खुदाई की गई है। सर जॉन मार्शल और सर मॉर्टिमर व्हीलर जैसे ख्याति-प्राप्त पुरातत्वविदों ने हड़प्पा की बस्तियों की खुदाई की है। इन विद्वानों ने वहां मिले भौतिक अवशेषों का गहराई से अध्ययन किया है तथा अतीत की कहानी को पुनः स्थापित किया है। चूंकि उन अवशेषों पर लिखे शब्दों को पढ़ा नहीं जा सकता, इसलिए हड़प्पा के लोगों द्वारा प्रयोग किए गए शिल्प-अवशेषों के अध्ययन के आधार पर ही निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। अब तक 1000 से ज्यादा ऐसी बस्तियों की खोज की जा चुकी है जिनमें हड़प्पा-सभ्यता के अवशेष मौजूद हैं। फिर भी, इनमें से अधिकांश बस्तियों की खुदाई नहीं की गई है। एक अनुमान के अनुसार, अब तक जितनी हड़प्पा की बस्तियों का पता लगाया गया है, उनमें से केवल तीन प्रतिशत की ही खुदाई की गई है। जिन स्थानों पर खुदाई का कार्य किया गया है, वहां भी अब तक कुल क्षेत्र के

पांचवें हिस्से के बराबर क्षेत्र में ही खुदाई की गई है। हाकड़ा घाटी में गंवेरीवाला और पंजाब में फुकस्लान नामक कुछ स्थान इतने बड़े हैं, जितना कि मोहनजोदड़ो लेकिन खुदाई करने वालों ने उन्हें अभी तक छुआ भी नहीं है। इसका कारण यह है कि खुदाई के कार्य में बहुत धन खर्च होता है और बहुत अधिक जन-शक्ति की जरूरत पड़ती है। फिलहाल, भारत या पाकिस्तान की सरकारों के पास इन खुदाई के कार्यों के लिए पर्याप्त धन नहीं है। फिर भी, एक बात साफ है और वह यह कि जब हड़प्पा-सभ्यता के बारे में सामान्य अनुमान लगाया जाता है तो बहुत ही सावधानी बरतनी चाहिए। कोई भी नई खोज या खुदाई की रिपोर्ट हड़प्पा-सभ्यता के लोगों के बारे में हमारे विचारों को बहुत हद तक बदल सकती है। उदाहरण के तौर पर, मॉर्टिमर व्हीलर जैसे विद्वान का, जिन्होंने लगभग बीस वर्ष पहले लिखा था, यह विश्वास था कि सिन्धु घाटी में हड़प्पा सभ्यता पूरी तरह विकसित थी और उससे पहले की अवधि में जो लोग इन क्षेत्रों में रहते थे, उनके और हड़प्पा-सभ्यता के बीच कोई साम्य नहीं था। फिर भी, उपलब्ध सामग्री और नई उत्खनन रिपोर्टों का गहराई से विश्लेषण करने पर पुरातत्वविदों को यह मानना पड़ा है कि हड़प्पा-सभ्यता का विकास सिन्धु घाटी और उसके आस-पास ही हुआ था और उसे विकसित होने में काफी समय लगा था। पहले वाली इकाई में आप "प्रारंभिक हड़प्पा" काल में हुई उन्नति के बारे में पढ़ चुके हैं। यह पाया गया है कि "प्रारंभिक हड़प्पा" और हड़प्पा कालों के बीच आबादी और तकनीकी कौशल की निरंतरता थी। खेतिहर बस्तियों में विकास की प्रक्रिया जाहिर थी और बुनियादी शिल्प तथा विशिष्ट सिन्धु शैली संभवतः पहले की क्षेत्रीय परम्पराओं से प्रभावित थी। चूंकि हड़प्पा-सभ्यता का अध्ययन कई मानों में अभी तक अधूरा है, इसलिए यह प्राचीन इतिहास के छात्रों के लिए बहुत ही चुनौतीपूर्ण विषय बना हुआ है।

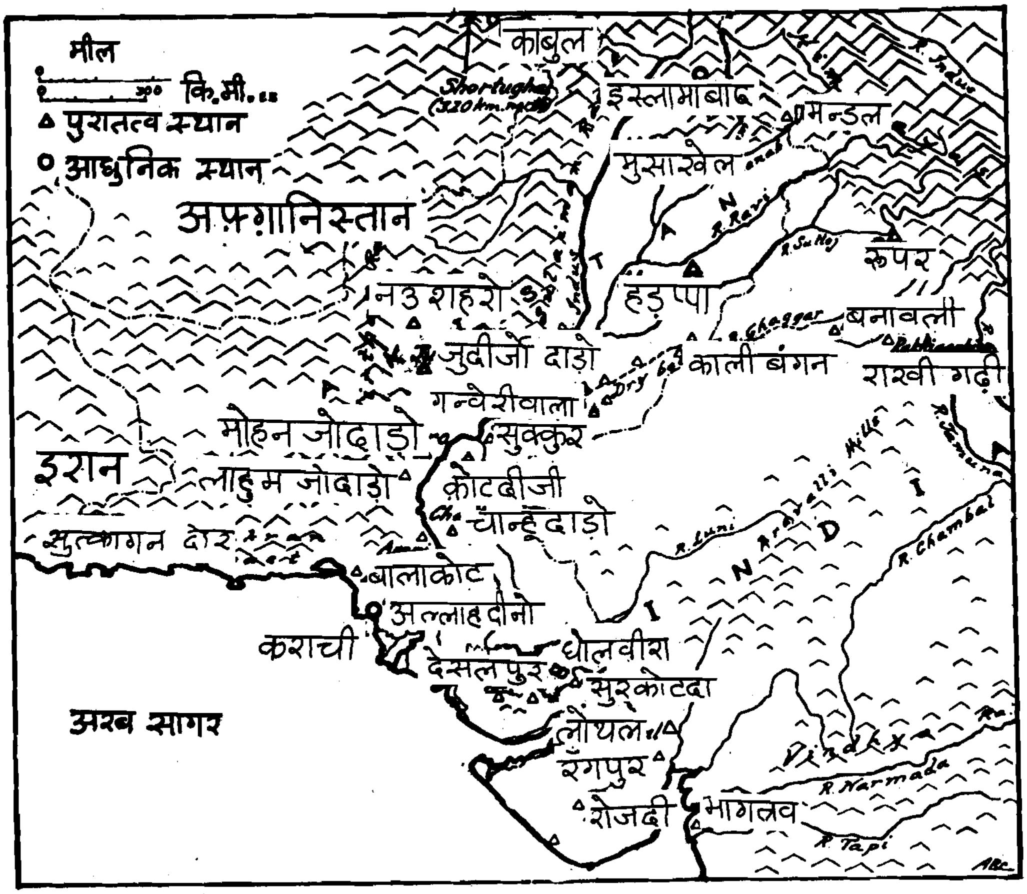

मानचित्र-2 हड़प्पा सभ्यता की बस्तियां

6.4 भौगोलिक विस्तार

विद्वानों का आम तौर पर यह विश्वास है कि हड़प्पा, घग्घर और मोहनजोदड़ो का क्षेत्र

हड़प्पा-सभ्यता का केन्द्र-बिन्दु रहा होगा। अधिकांश हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियां इसी क्षेत्र में हैं। इस क्षेत्र में कुछ खास किस्म की एकरूपताएं पाई जाती हैं। इस पूरे क्षेत्र की भूमि एकदम समतल और सपाट है, जो यह इंगित करती है कि यहाँ जीवन-यापन के तौर-तरीके एक जैसे थे। हिमालय से पिघली बर्फ और मानसून की वर्षा से यहाँ आने वाली बाढ़ के स्वरूप का पता लगता है। इससे खेती और चरागाही के लिए एक जैसी ही संभावनाएं पैदा हुई होंगी। सिन्धु व्यवस्था के पश्चिम में काछी मैदान ईरानी सीमा-भूमि के अंतवर्ती क्षेत्र में स्थित है। यह एक समतल कछारी हिमानी धौत है जो बोलन दर्रे और मंचार झील के निचले भाग में स्थित है।

यह बंजर और शुष्क प्रदेश है, हरियाली कहीं-कहीं बाह्य इलाके में नजर आती है। नौशारो, जुदैरजोदड़ो और अली-मुराद जैसे स्थान इसी क्षेत्र में स्थित हैं। मकरन तट पर सुत्का-कोह और सुत्काजिन-दोर बस्तियां बलूचिस्तान के पहाड़ी क्षेत्र के सबसे अधिक शुष्क भाग हैं। वे हड़प्पा-सभ्यता की पश्चिमी-सभ्यता सीमाएं हैं। उत्तरपूर्वी अफगानिस्तान में शार्तुघई में जो हड़प्पा की बस्तियाँ पाई गई हैं, वे हड़प्पा-सभ्यता की अलग-थलग बस्तियाँ रही होंगी।

हड़प्पा-सभ्यता की पूर्वी सीमाओं पर बड़गांव, मनपुर और आलमगीरपुर जैसी बस्तियां थीं। यह इलाका अब उत्तर प्रदेश में है। गंगा-यमुना दोआब में स्थित इन स्थानों में जीवन-निर्वाह की व्यवस्था, उनकी भौगोलिक स्थिति के अनुकूल थी। इस क्षेत्र में वर्षा अधिक होती थी और यहाँ घने जंगल थे। यह इलाका चरागाही और खानाबदोशी के क्षेत्र से बाहर है और गेहूँ उत्पादक क्षेत्र के अंतर्गत आता है। अतः इसमें बसने की समस्याएं दूसरी तरह की थीं। सम्भवतः इसीलिए कुछ विद्वानों का मानना है कि इस क्षेत्र की अपनी स्वतंत्र संस्कृति थी, जिसे हड़प्पा-सभ्यता से प्रोत्साहन मिलता था। जम्मू में मांडा और पंजाब में रोपड़ वे स्थान हैं, जो भारत में हड़प्पा-सभ्यता के उत्तरी छोर कहलाते हैं। महाराष्ट्र में दैमाबाद और गुजरात में भगत्रव की बस्तियां हड़प्पा की दक्षिणी सीमाएं रहीं होंगी।

गुजरात में भी बसावट का स्वरूप एक जैसा नहीं था। वहां कच्छ और काठियाबाद में छोटे-छोटे कटे हुए पठार थे और असमतल भूमि थी। दूसरी ओर, इस क्षेत्र में काम्बे की खाड़ी और कच्छ के रण से जुड़ा एक बहुत विशाल समुद्रतट था। गुजरात में हड़प्पा के लोग चावल और ज्वार-बाजरे का भोजन के रूप में इस्तेमाल करते थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि हड़प्पा-सभ्यता बहुत बड़े क्षेत्र में फैली हुई थी। इसका क्षेत्र मेसोपोटामिया और मिश्र की समसामयिक सभ्यताओं से अधिक विस्तृत था। मेसोपोटामिया में बस्तियां नदीय मैदानों के पार घने समूहों में फैली हुई थीं। फिर भी, घग्घर-हाकड़ा क्षेत्र में बसी बस्तियों को छोड़कर हड़प्पा-सभ्यता की अन्य बस्तियां बहुत कम घनी थीं और बिखरी हुई थीं। राजस्थान और गुजरात में हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों के बीच सैकड़ों किलोमीटर तक फैला रेगिस्तान और दलदल भरा इलाका था। शार्तुघई का सबसे निकट का हड़प्पा पड़ौसी 300 कि. मी. दूर था। इन खाली स्थानों में आदिम जातियां रहती रही होंगी जो उस समय भी शिकार-संग्रहण या चरागाही-खानाबदोशी द्वारा अपना भरण-पोषण कर रहीं थी। इसी तरह, इस क्षेत्र में किए गए अध्ययनों से हमें हड़प्पा-सभ्यता के किसी नगर में रहने वाली जनसंख्या के आकार का पता चलता है। विद्वानों का मत है कि हड़प्पा-सभ्यता के सबसे बड़े नगर मोहनजोदड़ो की जनसंख्या लगभग 35,000 थी। आधुनिक भारत के सबसे छोटे शहरों की भी आबादी बड़े से बड़े हड़प्पा-सभ्यता के शहरों की आबादी से अधिक होगी। यह याद रखने योग्य बात है कि हड़प्पा काल में परिवहन का सबसे तेज रफ्तार का माध्यम बैलगाड़ी हुआ करती थी, लोहे से लोग अनजान थे और हल के इस्तेमाल को क्रांतिकारी खोज समझा जाता था। ऐसी पुरातन तकनीक का सहारा लेकर जो सभ्यता दूर-दूर तक बिखरे क्षेत्रों को सामाजिक-आर्थिक संबंध के जटिल जाल में पिरोने में सफल रही, उसके लिए उन दिनों यह एक चमत्कारिक उपलब्धि थी।

6.5 महत्वपूर्ण केन्द्र

अब सवाल यह उठता है कि हड़प्पा के लोगों ने अफगानिस्तान में शार्तुघई या गुजरात में सुरकोटड़ा जैसे दूरवर्ती स्थानों को अपने कब्जे में लाने की कोशिश क्यों की? इस सवाल का जवाब हमें मिल सकता है यदि हम कुछ महत्वपूर्ण केन्द्रों की भौगोलिक स्थिति और विशेषताओं से संबंधित विवरण की जांच करें।

6.5.1 हड़प्पा

हड़प्पा पहली बस्ती थी, जहाँ खुदाई की गई। सन् 1920 से आरंभ करके आगे के वर्षों में दयाराम साहनी, एम. एस वेंट्स और मॉर्टिमर व्हीलर जैसे पुरातत्वविदों ने हड़प्पा में खुदाई का कार्य किया। यह बस्ती पश्चिमी पंजाब में रावी के तट पर स्थित है। इसके आकार और इधर पाई गई वस्तुओं की विविधता की दृष्टि से यह बस्ती हड़प्पा-सभ्यता का प्रमुख नगर मानी जाती है। इस नगर के अवशेष लगभग 3 मील के घेरे में फैले हुए हैं। लेकिन हैरानी की बात यह है कि हड़प्पा के इधर-उधर या आस-पास बस्तियों का कोई नामो-निशान नहीं है। हड़प्पा में जनसंख्या का एक बड़ा भाग खाद्य उत्पादन से भिन्न क्रिया कलापों में लगा हुआ था। ये क्रियाकलाप प्रशासन, व्यापार, कारीगरी या धर्म से संबंधित रहे होंगे। चूंकि ये लोग अपने लिए अन्न का उत्पादन नहीं कर रहे थे, इसलिए किसी दूसरे को उनके लिए यह कार्य करना पड़ता था। उत्पादकता कम थी और परिवहन के साधन अविकसित थे। अतः खाद्य का उत्पादन न करने वाले इन लोगों के भरण-पोषण के लिए खाद्य उत्पादक क्षेत्रों से खाद्यान्न प्राप्त करने और ढोने के लिए बहुत लोगों को जुटाना पड़ता होगा। किन्तु ये क्षेत्र नगर से बहुत दूर नहीं रहे होंगे क्योंकि अनाज ढोने का काम बैलगाड़ियों और नावों द्वारा किया जाता था। कुछ विद्वानों का यह कहना है कि आस-पड़ोस के गांवों के लोग नदियों में बाढ़ वाले टेढ़े-मेढ़े मैदानों में जगह बदल-बदल कर खेती करते रहे होंगे। हड़प्पा की भौगोलिक स्थिति का सबसे अलग-थलग होने का कारण यही बताया जा सकता है कि यह कुछ ऐसे महत्वपूर्ण व्यापार मार्गों के मध्य स्थित था, जो आज तक प्रयोग में है। इन मार्गों ने हड़प्पा को मध्य एशिया, अफगानिस्तान और जम्मू से जोड़ा। हड़प्पा की स्थिति इसलिए उत्कृष्ट मानी जाती थी क्योंकि यहां दूर-दूर से आकर्षक वस्तुएं लाई जाती थीं।

6.5.2 मोहनजोदड़ो

सिन्धु नदी के तट पर बसे सिंध प्रांत के लरकाना जिले में स्थित मोहनजोदड़ो को हड़प्पा-सभ्यता की सबसे बड़ी बस्ती माना जाता है। इस सभ्यता की नगर-योजना, गृह-निर्माण, मुद्रा, मुहरों आदि के बारे में अधिकांश जानकारी मोहनजोदड़ो से प्राप्त होती है। इस जगह खुदाई का काम 1922 में, आर. डी. बेनर्जी और सर जॉन मार्शल की देख-रेख में शुरू किया गया। बाद में मैके और जार्ज डेल्स ने भी खुदाई की थोड़ी-थोड़ी खुदाई का काम और नक्शा तैयार करने का काम अस्सी के दशक तक चलता रहा।

खुदाई से पता चलता है कि लोग वहाँ बड़े लम्बे समय तक रहे और एक ही जगह पर मकानों का निर्माण तथा पुनर्निर्माण करते रहे। इसी का यह परिणाम है कि इमारतों के अवशेषों और मलबे के ढेर की ऊंचाई लगभग पचहत्तर फीट है। मोहनजोदड़ो में बसावट के समय से बराबर बाढ़ आती रही। बाढ़ की वजह से वहां जलोढ़ मिट्टी इकट्ठी हो गई। सदियों से बराबर जमा होती गई गाद के कारण मोहनजोदड़ो के आस-पास की भूमि की सतह लगभग तीस फुट ऊंची हो गई। भू-जल तालिका का स्तर भी उसके अनुरूप बढ़ता चला गया है। अतः मोहनजोदड़ो में सबसे पुरानी इमारतें आजकल के मैदानी स्तर से लगभग 39 फुट नीचे पाई गई हैं। जल-तालिका में चढ़ाव के कारण पुरातत्व विशेषज्ञ इन स्तरों की खुदाई नहीं कर पाए हैं।

6.5.3 कालीबंगन

कालीबंगन की बस्ती राजस्थान में घग्घर नदी के सूखे तल के आस-पास स्थित है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, इस क्षेत्र में हड़प्पा की बस्तियों की संख्या सबसे अधिक थी।

कालीबंगन की खुदाई 1960 के दशक में बी. के. थापर के निर्देशन में की गई थी। इस स्थान से पूर्व-हड़प्पा और हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों की मौजूदगी के प्रमाण मिले हैं। इससे पता चलता है कि पूर्व-हड़प्पा और हड़प्पा-सभ्यता के लोगों के बीच धार्मिक विचारों में काफी अन्तर था। कुछ विद्वानों का मत है कि कालीबंगन हड़प्पा-सभ्यता के "पूर्वी अधिकार क्षेत्र" का हिस्सा रहा होगा। आज के हरियाणा, पूर्वी पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों में हड़प्पा युग के बाड़ा, सीसवाल और आलमगीरपुर जैसी बस्तियाँ पाई गई हैं। यहां हड़प्पा काल के मिट्टी के बर्तनों के साथ-साथ कुछ ऐसे प्रमाण भी मिले हैं जिनसे पता चलता है कि मिट्टी के बर्तन बनाने में इन बस्तियों की अपनी अलग परम्पराएं भी मौजूद थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि हड़प्पा-सांस्कृतिक क्षेत्र और पूर्वी प्रान्तों के बीच कालीबंगन की स्थिति एक मध्यस्थ की रही होगी।

6.5.4 लोथल

गुजरात में रंगपुर, सुरकोटड़ा और लोथल जैसी बस्तियां पाई गई हैं। लोथल काम्बे की खाड़ी के तट से लगे सपाट क्षेत्र में स्थित है। ऐसा लगता है कि यह स्थान समकालीन पश्चिम एशियाई समाजों के साथ समुद्री व्यापार के लिए सीमा-चौकी के रूप में महत्वपूर्ण रहा होगा। इसके उत्खनक, एस.आर. राव ने यहां एक जहाजी मालघाट (Dockyard) की खोज का दावा किया है।

चित्र-4 जहाज़ी मालघाट (लोथल)

6.5.5 सुत्काजिन-दोर

सुत्काजिन-दोर पाकिस्तान-ईरान सीमा से लगे मकरान समुद्रतट के समीप स्थित है। आजकल यह बस्ती सूखे बंजर मैदानों के बीच स्थित है। इस शहर में एक किला था जिसके चारों ओर रक्षा के लिए पत्थर की दीवार थी। बंजर भूमि में इसके स्थित होने का कारण यही हो सकता है कि यहां एक बन्दरगाह थी जिसकी व्यापार के लिए आवश्यकता थी।

बोध प्रश्न 1

1 हड़प्पा-सभ्यता के महत्वपूर्ण केन्द्रों की भौगोलिक स्थिति का विवेचन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

2 निम्नांकित स्थानों को उनकी वर्तमान भौगोलिक स्थिति से मिलाइए।

1 हड़प्पा	क) राजस्थान
2 कालीबंगन	ख) सिंध (पाकिस्तान)
3 मोहनजोदड़ो	ग) मकरान तट (पाकिस्तान-ईरान सीमा)
4 सुत्काजिन-दोर	घ) पश्चिम पंजाब (पाकिस्तान)

3 निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) या गलत (×) का निशान लगाएं।

i) हड़प्पा की सभ्यता का सबसे बड़ा केन्द्र हड़प्पा है जो पश्चिमी पंजाब में स्थित है। (   )

ii) मोहनजोदड़ो हड़प्पा की सभ्यता की वह बस्ती है, जहां सबसे पहले खुदाई की गई। (   )

iii) हड़प्पा में खुदाई का कार्य सबसे पहले आर.डी. बेनर्जी और जॉन मार्शल ने किया। (   )

iv) विद्वानों का मत है कि हड़प्पा, घग्घर और मोहनजोदड़ी, हड़प्पा की सभ्यता के आधार-बिन्दु हैं। (   )

6.6 भौतिक विशेषताएं

इस भाग में हड़प्पा-सभ्यता की भौतिक विशेषताओं पर चर्चा की जाएगी इसमें हम हड़प्पा-सभ्यता की नगर-योजना, मिट्टी के बर्तन, औजार और उपकरण, कला एवं दस्तकारी, लिपि और जीविका के स्वरूप पर विचार किया जाएगा।

6.6.1 नगर-योजना

मॉर्टिमर व्हीलर और स्टूआर्ट पिग्ट जैसे पुरातत्वविदों का मत था कि हड़प्पा-सभ्यता के नगरों की संरचना और बनावट में असाधारण प्रकार की एकरूपता थी। प्रत्येक नगर दो भागों में बटा होता था। एक भाग में ऊँचा दुर्ग होता था जिसमें शासक और राजघराने के लोग रहते थे। नगर के दूसरे भाग में शासित और गरीब लोग रहते थे। योजना की इस अभिन्नता का अर्थ यह भी है कि यदि आप हड़प्पा की सड़कों पर घूमने निकलें, तो आप पाएंगे कि वहां के घर, मन्दिर, खलिहान और गलियां बिल्कुल वैसी ही हैं जैसी मोहनजोदड़ो की या हड़प्पा-सभ्यता के अन्य किसी भी नगर की। संकल्पना की अभिन्नता का यह विचार उन विदेशी समुदायों से लिया गया था जिन्होंने अकस्मात हमला करके सिन्धु घाटी को जीत लिया और नए नगरों का निर्माण किया। इन नगरों की योजना ऐसी की गई थी जिसमें कि वहाँ के मूल निवासियों को शासकवर्ग से अलग रखा जा सके। इस तरह, शासकों ने ऐसे किलों का निर्माण किया जिनमें वे आम जनता से अलग-थलग, शान से रह सकें। आजकल विद्वान अब इन विचारों को अस्वीकार कर रहे हैं कि हड़प्पा सभ्यता के नगरों का निर्माण अकस्मात हुआ और उनकी योजना में एकरूपता थी। हड़प्पा-सभ्यता के शहर नदियों के बाढ़ वाले मैदानों, रेगिस्तान के किनारों पर या समुद्री तट पर स्थित थे। इसका मतलब है कि अलग-अलग क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को तरह-तरह की प्राकृतिक चुनौतियों का सामना करना पड़ा। जब उन्होंने स्वयं को वातावरण के अनुकूल ढालना सीखा तो उन्हें अपनी नगर-योजना और जीवन शैली में भी विविधता लाने पर विवश होना पड़ा। बहुत सी बड़ी और महत्वपूर्ण इमारतें निचले नगर में स्थित थीं। अब कुछ महत्वपूर्ण बस्तियों की योजना पर फिर से विचार किया जाएगा।

हड़प्पा, मोहनजोदड़ो और कालीबंगन बस्तियों की नगर-योजना में कुछ समानताएं हैं। ये शहर दो भागों में विभाजित थे। इन शहरों के पश्चिम में किला बना होता था और बस्ती के पूर्वी सिरे पर नीचे एक नगर बसा होता था। यह दुर्ग या किला ऊँचे चबूतरे पर, कच्ची ईंटों से बनाया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि दुर्ग में बड़े-बड़े भवन होते थे जो संभवतः प्रशासनिक या धार्मिक केन्द्रों के रूप में काम करते थे। निचले शहर में रिहायशी क्षेत्र होते थे। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में किलों के चारों ओर ईंटों की दीवार होती थी। कालीबंगन में, दुर्ग और निचले शहर दोनों के चारों ओर दीवार थी, निचले शहर में सड़कें उत्तर से

दक्षिण की ओर जाती थीं और समकोण बनाती थीं। स्पष्टतः सड़कों और घरों की पंक्तिबद्धता से पता चलता है कि नगर-योजना के बारे में वे लोग कितने सचेत थे। फिर भी, उन दिनों नगर आयोजकों के पास साधन बहुत सीमित थे। यह पूर्वधारणा मोहनजोदड़ो और कालीबंगन से मिले प्रमाणों पर आधारित है, जहां गलियाँ और सड़कें अलग-अलग ब्लाकों में अलग-अलग तरह की हैं और मोहनजोदड़ो के एक भाग मोनार क्षेत्र में सड़कों तथा इमारतों की पंक्तिबद्धता शेष क्षेत्रों से बिल्कुल भिन्न है। मोहनजोदड़ो का निर्माण एक सी सपाट इकाइयों में नहीं किया गया था। वास्तव में, इसका निर्माण अलग-अलग समय में हुआ। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में भवनों और इमारतों के लिए पक्की ईंटों का इस्तेमाल किया गया। कालीबंगन में कच्ची ईंटें प्रयोग की गई। सिंध में कोट-दीजी और अमरी जैसी बस्तियों में नगर की किलेबंदी नहीं थी। गुजरात में स्थित लोथल का नक्शा भी बिल्कुल अलग सा है। यह बस्ती आयताकार थी जिसके चारों तरफ ईंट की दीवार का घेरा था। इसका कोई आन्तरिक विभाजन नहीं था, अर्थात् इसे दुर्ग और निचले शहर में विभाजित नहीं किया गया था। शहर के पूर्वी सिरे में ईंटों से निर्मित कुण्ड सा पाया गया, जिसे इसकी खुदाई करने वालों ने बन्दरगाह के रूप में पहचाना है। कच्छ में सुरकोटड़ा नामक बस्ती दो बराबर के हिस्सों में बंटी हुई थी और यहां के निर्माण में मूलतः कच्ची मिट्टी की ईंटों और मिट्टी के ढेलों का इस्तेमाल किया गया था।

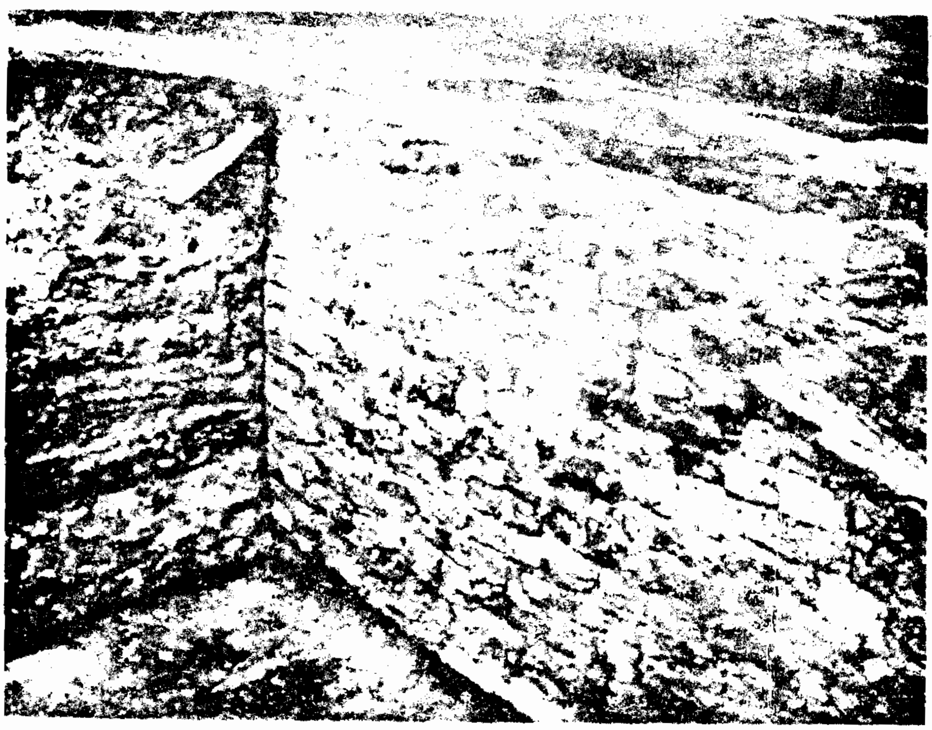

चित्र-5 कच्ची ईंट की दीवार

हड़प्पा-सभ्यता के निवासी पकी हुई और बिना पकी ईंटों का इस्तेमाल कर रहे थे। ईंटों का आकार एक जैसा होता था। इससे पता चलता है कि हर मकान मालिक अपने मकान के लिए ईंटें स्वयं नहीं बनाता था, बल्कि ईंटें बनाने का काम बड़े पैमाने पर होता था। इसी तरह, मोहनजोदड़ो जैसे शहरों में सफाई की व्यवस्था उच्चकोटि की थी। घरों से बहने वाला बेकार पानी नालियों से होकर बड़े नालों में चला जाता था जो सड़कों के किनारे एक सीध में होते थे। इस बात से फिर यह संकेत मिलता है कि उस जमाने में भी कोई ऐसी नागरिक प्रशासन व्यवस्था रही होगी जो शहर के सभी लोगों के हित में सफाई संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए निर्णय लेती थी।

कुछ विशाल इमारतें

हड़प्पा, मोहनजोदड़ो और कालीबंगन में, किले के क्षेत्रों में बड़ी विशाल इमारतें थीं जिनका प्रयोग विशेष कार्यों के लिए किया जाता होगा। यह तथ्य इस बात से स्पष्ट होता है कि ये

इमारतें कच्ची ईंटों से बने ऊँचे-ऊँचे चबूतरों पर खड़ी की गई थीं। इनमें से एक इमारत, मोहनजोदड़ो का प्रसिद्ध "विशाल स्नान कुण्ड" है। ईंटों से बने इस कुण्ड की लम्बाई-चौड़ाई 12 मी. × 7 मी. और गहराई 3 मी. है। इस तक पहुँचने के लिए दोनों तरफ सीढ़ियाँ हैं। कुण्ड के तल को डामर से जलरोधी बनाया गया था। इसके लिए पानी पास ही एक कक्ष में बने बड़े कुएं से आता था। पानी निकालने के लिए भी एक ढलवाँ नाली थी। कुण्ड के चारों तरफ मण्डप और कमरे बने हुए थे। विद्वानों का मत है कि इस स्थान का उपयोग राजाओं, या पुजारियों के धार्मिक स्नान के लिए किया जाता था।

चित्र-6 विशाल स्नान कुण्ड (मोहनजोदड़ो)

मोहनजोदड़ो के किले के टीले में पाई गई एक और महत्वपूर्ण इमारत है, अन्नभण्डार। इसमें ईंटों से निर्मित सत्ताईस खण्ड (Blocks) हैं जिनमें प्रकाश के लिए आड़े-तिरछे रोशनदान बने हुए हैं। अन्नभण्डार के नीचे ईंटों से निर्मित खांचे थे जिनसे अनाज को भण्डारण के लिए ऊपर पहुँचाया जाता था। हालांकि कुछ विद्वानों ने इस इमारत को अन्न-भण्डारण का स्थान मानने के बारे में संदेह व्यक्त किया है किन्तु इतना निश्चित है कि इस इमारत का निर्माण किसी खास कार्य के लिए किया गया होगा।

विशाल स्नान-कुण्ड के एक तरफ एक लम्बी इमारत (230 × 78 फुट) है जिसके बारे में अनुमान है कि वह किसी बड़े उच्चाधिकारी का निवास स्थान रहा होगा। इसमें 33 वर्ग फुट का खुला प्रांगण है और उस पर तीन बरांडे खुलते हैं। महत्वपूर्ण भवनों में एक सभा-कक्ष भी था। इस सभा-कक्ष में पांच-पांच ईंटों की ऊँचाई की चार चबूतरों की पंक्तियां थीं। यह ऊँचे चबूतरे ईंटों के बने हुए थे और उन पर लकड़ी के खंभे खड़े किए गए थे। इसके पश्चिम की तरफ कमरों की एक कतार में एक पुरुष की प्रतिमा बैठी हुई मुद्रा में पाई गई है।

हड़प्पा की प्रसिद्ध इमारतों में से एक अन्नभण्डार है। इसमें एक क्रम में ईंटों के चबूतरे (Platform) बने हुए थे जो अन्नभण्डारों के लिए नींव का काम देते थे। इन पर बने अन्नभण्डारों की दो कतारें थी और प्रत्येक कतार में छः अन्नभण्डार थे। अन्नभण्डार के दक्षिण में ईंटों के गोल चबूतरों की कई कतारें थीं। फर्श की दरारों में पाया गया गेहूँ और जौ का भूसा यह सिद्ध करता है कि इन गोल चबूतरों का इस्तेमाल अनाज गाहने (अनाज से भूसी अलग करने) के लिए किया जाता था।

कालीबंगन नगर मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की तुलना में छोटा था। यहां की गई खुदाई में सबसे महत्वपूर्ण खोज है अग्नि-कुण्डों का पाया जाना। यहां ईंटों के बने बहुत से चबूतरे पाए गए हैं। इनमें से एक चबूतरे पर एक पंक्ति में बने सात "अग्नि-कुण्ड" और एक गड्ढे में पशुओं की हड्डियां तथा मृगश्रृंग पाए गए हैं।

घरों की बनावट

औसत दर्जे के नागरिक निचले शहर में भवन-समूहों में रहा करते थे। यहां भी घरों के आकार-प्रकार में विविधताएं हैं। एक कोठरी वाले मकान शायद दासों के रहने के लिए थे। हड़प्पा में अन्नभण्डार के नजदीक भी इसी तरह के मकान पाए गए हैं। दूसरे मकानों में आंगन और बारह तक कमरे होते थे और अधिक बड़े मकानों में कुएं, शौचालय एवं गुसलखाने भी थे। इन मकानों का नक्शा लगभग एक जैसा था—एक चौरस प्रांगण और चारों तरफ कई कमरे। घरों में प्रवेश के लिए संकीर्ण गलियों से जाना पड़ता था। सड़क की तरफ कोई खिड़की नहीं होती थी। इसका मतलब यह हुआ कि मकान की ईंट की दीवारों का मुंह सड़क की ओर होता था।

हड़प्पा-सभ्यता के मकानों और नगरों के विवरण से पता चलता है कि ऐसे लोग भी थे जिनके पास बड़े-बड़े मकान थे। उनमें से कुछ तो विशिष्ट तरणताल में नहाते थे। अन्य लोग बैरकों (Barracks) में रहते थे। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि बड़े-बड़े मकानों में रहने वाले लोग धनी वर्ग के थे जबकि बैरकों (Barracks) में रहने वाले लोग मजदूर और दास वर्ग के रहे होंगे।

निचले शहर के मकानों में काफी बड़ी संख्या में कर्मशालाएं भी थीं। कुम्हारों के भट्टों, रंगसाजों के हौजों और धातु का काम करने वालों, सीपी-शंख के आभूषण बनाने वालों और मनके बनाने वालों की दुकानों की पहचान कर ली गई है।

6.6.2 मिट्टी के बर्तन

हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों में पाए गए अवशेषों में मिट्टी के बर्तन विशेष स्थान रखते हैं। इनमें बलूचिस्तान की मृत्तिका-शिल्प की परम्पराओं और सिन्धु व्यवस्था के पूर्व की संस्कृतियों का मेल हुआ जान पड़ता है। हड़प्पा की सभ्यता के मिट्टी के बर्तनों में से अधिकांश बिल्कुल सादे हैं, लेकिन काफी बर्तनों पर लाल पट्टी के साथ-साथ काले रंग से की गई चित्रकारी भी पाई गई है।

रंग से की गई चित्रकारी में विविध मोटाई की सपाट लाइनें, पत्तियों के नमूने, तराजू, चारखाने, जाली का काम, ताड़ और पीपल वृक्ष शामिल हैं। पक्षियों, मछलियों और पशुओं को भी दर्शाया गया है। इन बर्तनों की आकृतियों में खास हैं पैडेस्टल (Pedestal), बर्तन, थाली, पानपात्र, चारों और छिद्रित बेलनाकार बर्तन और विभिन्न तरह के कटोरे-कटोरियाँ। मिट्टी के बर्तनों पर बनी आकृतियों और चित्रकारी में एकरूपता के कारण स्पष्ट करना या बताना कठिन है। इस एकरूपता का सामान्यतः स्पष्टीकरण यही है कि मिट्टी के ये बर्तन स्थानीय कुम्हारों द्वारा बनाए जाते थे। किन्तु, गुजरात और राजस्थान जैसे क्षेत्रों में अन्य अनेक तरह के बर्तन भी बनाए जा रहे थे। मिट्टी के कुछ बर्तनों पर मुद्रा के निशान पाए जाने से संकेत मिलता है कि कुछ खास किस्म के बर्तनों का व्यापार भी किया जाता था। फिर भी, अभी तक यह स्पष्ट नहीं है कि इतने विशाल क्षेत्र में मिट्टी के बर्तनों की परम्परा में एकरूपता कैसे संभव हुई।

6.6.3 औजार और उपकरण

हड़प्पा-सभ्यता के निवासियों द्वारा इस्तेमाल किए गए औजारों और उपकरणों के आकार-प्रकार तथा उत्पादन की तकनीक में भी आश्चर्यजनक एकरूपता दिखाई पड़ती है। वे तांबा, कांसा और पत्थर के बने औजारों का प्रयोग करते थे उनके मूल औजार तांबे तथा कांसे के थे। इनमें चपटी कुल्हाड़ी, छैनी, चाकू हरावल और वाणाग्र मुख्य रूप से पाए जाते

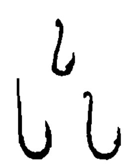

चित्र-7 मछली पकड़ने के लिए कांटा

हैं। सभ्यता के आगे के चरणों में वे छुरे, चाकू और चपटे तथा तीखी नोक वाले औजारों का भी प्रयोग करने लगे थे। वे कांसे और तांबे की ढलाई की तकनीक जानते थे। पत्थर के औजारों का भी आम इस्तेमाल होता ही था।

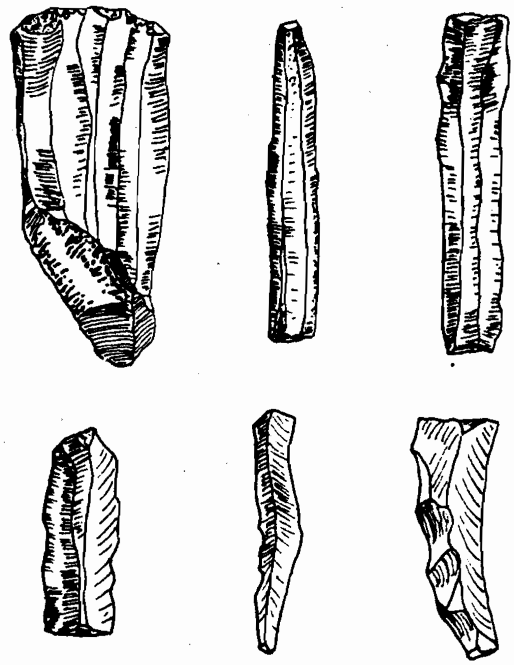

चित्र-8 पत्थर के औजार (मोहनजोदड़ो)

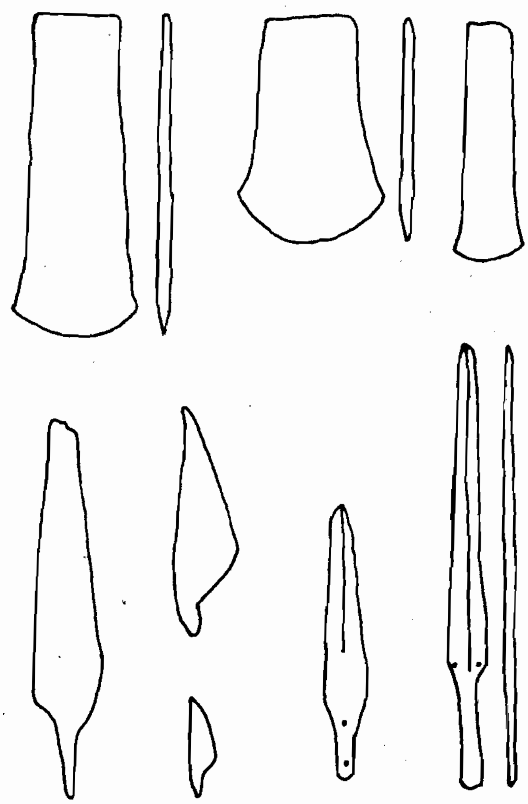

चित्र-9 हड़प्पा-सभ्यता के लोगों द्वारा काम में लाए जाने वाले तांबे और कांसे के औजार।

सिंध में सुक्कूर जैसे उद्योग क्षेत्रों में इन औजारों का निर्माण बड़े पैमाने पर किया जाता था और फिर ये औजार विभिन्न शहरी केन्द्रों को भेजे जाते थे। औजारों के आकार-प्रकार में एकरूपता का यही कारण था। ''प्रारम्भिक-हड़प्पा'' काल में औजार बनने की

परम्पराओं में विविधता थी, लेकिन बाद में हुई प्रगति के युग में हड़प्पा-सभ्यता के निवासियों ने लम्बे, पैनी धार वाले, सुव्यवस्थित औजारों का ही निर्माण किया जो उनकी उच्चस्तरीय क्षमता और विशिष्टता का संकेत देते हैं। पर, इन औजारों को सुन्दर बनाने और उनमें नवीनता लाने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

6.6.4 कला और शिल्प

कलाकृतियों से यह जानकारी मिलती है कि समाज किस तरह अपने वातावरण, अपने परिवेश और परिस्थितियों से जुड़ता है या जुड़ने की कोशिश करता है। कलाकृतियां हमें यह भी बताती हैं कि समाज, प्रकृति, मानव और ईश्वर के प्रति क्या विचार रखता है। पूर्व आधुनिक समाजों के अध्ययन में कला और शिल्प को अलग करना कठिन काम है। अतः उनका एक साथ अध्ययन किया जाएगा।

मोहनजोदड़ो की खुदाई में पाई गई हड़प्पा-सभ्यता की संभवतः सबसे प्रसिद्ध कलाकृति है नृत्य की मुद्रा में नग्न स्त्री की एक कांस्यमूर्ति। सिर पीछे की ओर झुकाए, आंखें झुकी हुई, दाईं भुजा कूल्हे पर टिकाए और बाईं भुजा नीचे लटकी हुई दर्शाने वाली यह मूर्ति नृत्य की स्थिर मुद्रा में है। स्त्री प्रतिमा ने बहुत सारी चूड़ियां पहनी हुई हैं और उसके बालों को सुन्दर वेणी बनी हुई है। इस मूर्ति को हड़प्पा-कला का अद्वितीय नमूना माना जाता है। भैंसे और भेड़ की छोटी-छोटी कांस्य प्रतिमाओं में पशुओं की मुद्राओं को सुन्दर ढंग से पेश किया गया है। खिलौनों के रूप में कांसे की दो गाड़ियां भी बहुत आकर्षक एवं प्रसिद्ध हैं। हालांकि इनमें से एक हड़प्पा में पाई गई थी और दूसरी 650 कि. मी. दूर चान्हू-दारों में—फिर भी इन दोनों की बनावट एक जैसी है।

चित्र-10. नृत्य की मुद्रा में स्त्री की एक कांस्यमूर्ति (मोहनजोदड़ो)

मोहनजोदड़ो में पाई गई दाढ़ी वाले सिर की प्रस्तर प्रतिमा भी बड़ी प्रसिद्ध कलाकृति है। चेहरे पर दाढ़ी है परन्तु मूँछ नहीं है। अर्ध-मुदित आंखें शायद विचारमग्न मुद्रा को दर्शाती हैं। बाएं कंधे के दोनों ओर एक आवरण पड़ा है जिस पर तिपतिया पैटर्न की सुन्दर नक्काशी की हुई है। कुछ विद्वानों का मानना है कि यह पुजारी की अर्ध-प्रतिमा है।

हड़प्पा की खुदाई में पाई गई दो पुरुषों की अर्ध मूर्तियों के बारे में यह भी कहा जाता है कि वे बाद के युग की रही होंगी। प्रतिमा के मांसल भागों को इस खूबसूरती और वास्तविकता से तराशा गया है कि देख कर आश्चर्य होता है। फिर भी, ऐसा लगता है कि हड़प्पा-सभ्यता के लोग अपनी कला-कृतियों के लिए प्रस्तर या कांसे का इस्तेमाल बहुत अधिक नहीं करते थे। इस तरह की कलाकृतियां बहुत कम संख्या में पाई गई हैं।

हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों से पक्की मिट्टी की लघु मूर्तियां बड़ी संख्या में पाई गई हैं। इनका प्रयोग खिलौनों या पूजा-उपासना के लिए किया जाता था। ये लघु मूर्तियां विभिन्न तरह के पक्षियों, बन्दरों, कुत्तों, भेड़ों, मवेशियों और कूबड़दार तथा कूबड़रहित सांडो की हैं। स्त्री और पुरुषों की छोटी-छोटी मूर्तियां भी बड़ी तादाद में मिली हैं। पक्की मिट्टी (Terracotta) की बनी तरह-तरह की गाड़ियों-ठेलों के नमूने भी मूर्ति कला में असाधारण सजीवता को प्रदर्शित करते हैं। इन नमूनों को देखकर लगता है कि आधुनिक काल में इस्तेमाल की गई बैलगाड़ियों का स्वरूप हड़प्पा-युग की बैलगाड़ियों का ही परिवर्तित रूप है।

चित्र-11 दाढ़ी वाले सिर की प्रतिमा (मोहनजोदड़ो)

हड़प्पा-सभ्यता के लोग गोमेद, फीरोज़ा, लाल-पत्थर और सेलखड़ी जैसे बहुमूल्य एवं अर्ध-कीमती पत्थरों से बने अति सुन्दर मनकों का प्रयोग करते थे। इन मनकों को बनाए जाने की प्रक्रिया चान्हू-दारों में एक कारखाने के पाए जाने से स्पष्ट हो जाती है। इस प्रक्रिया में पत्थर को आरी से काट कर पहले तो आयताकार छड़ में बदल दिया जाता था, फिर उसके बेलनाकार टुकड़े करके पॉलिश से चमकाया जाता था। अन्त में, चर्ट बरमे या कांसे के नलिकाकार बरमे से उनमें छेद किया जाता था। सोने और चांदी के मनके भी पाए गए हैं। मनके बनाने के लिए सबसे अधिक सेलखड़ी का प्रयोग किया जाता था।

तिपतिया पैटर्न के बेलनाकार मनकों का संबंध विशेष रूप से हड़प्पा-सभ्यता से जोड़ा जाता है। लाल पत्थर के मनके भी बहुत संख्या में पाए गए हैं। मोहनजोदड़ो में गहनों का ढेर भी पाया गया है। जिसमें सोने के मनके, फीते और अन्य आभूषण शामिल हैं। चांदी की थालियां भी पाई गई हैं।

हड़प्पा की बस्तियों से 2000 से अधिक मुहरें (Seals) पाई गई हैं। इन्हें प्राचीन शिल्पकारिता के क्षेत्र में सिन्धु घाटी का उत्कृष्ट योगदान माना जाता है। ये आम तौर पर चौकोर होती थीं और सेलखड़ी की बनी होती थीं लेकिन कुछ गोल मुहरें भी पाई गई हैं। मुहरों पर अर्थ-चित्रलिपि में संकेत चिन्हों से सम्बद्ध अनेक तरह के जानवरों के आकार बने होते थे। कुछ मुहरों पर केवल लिपि उत्कीर्ण है जबकि कुछ अन्य पर मानव और अर्ध-मानव आकृतियां बनी हुई हैं। कुछ मुहरों पर ज्यामिति से संबंधित विभिन्न नमूने बने हुए हैं। दर्शाई गई पशु आकृतियों में भारतीय हाथी, गवल (Bish) ब्राहम्नी सांड, गैंडा और बाघ प्रमुख हैं। अनेक तरह के संयुक्त पशु भी दर्शाए गए हैं। इस तरह की एक आकृति में मनुष्य के चेहरे पर हाथी की सूंड और दांत बने हुए हैं, सिर पर सांड के सींग हैं, अग्रभाग मेष का है और पीछे का भाग बाघ का। अनेक मुहरों में यह आकृति पाई गई है। इस तरह की मुहरों को धार्मिक प्रयोजन के लिए प्रयोग किया जाता होगा। मुहरों का प्रयोग बड़े शहरों के बीच माल के विनिमय के लिए भी किया जाता होगा। पशुओं से घिरे और योग की मुद्रा में बैठे सींगयुक्त देवता को दर्शाने वाली मुहर को भगवान् पशुपति से संबंधित माना गया है। हड़प्पा-सभ्यता की कलाकृतियाँ हमें दो कारणों से निराश करती हैं:

i) पाई गई कलाकृतियों की संख्या बहुत सीमित है और
ii) उनमें अभिव्यक्ति की उतनी विविधता नहीं है जितनी मिश्र और मेसोपोटामिया की समकालीन सभ्यताओं की कलाकृतियों में पाई गई है।

हड़प्पा-सभ्यता की प्रस्तर मूर्तिकला मिश्र के लोगों की मूर्तिकला की तुलना में सीमित और अविकसित थी। पक्की मिट्टी की कलाकृतियां भी स्तर में उतनी अच्छी नहीं थीं जितनी कि वे जो मेसोपोटामिया में बनाई जाती थीं। संभव है कि हड़प्पा सभ्यता के लोगों ने अपनी कला की अभिव्यक्ति के लिए कपड़ों पर आकृतियाँ बनाई हों और रंगचित्रों का प्रयोग किया हो जो कम टिकाऊ होने के कारण समय के साथ नष्ट हो गए हों।

6.6.5 सिन्धु-लिपि

हड़प्पा-सभ्यता के लोगों द्वारा प्रयोग की गई मुहरों (Seals) पर लिखावट होती थी। यह लिपि अभी तक पढ़ी न जा सकने के कारण रहस्य बनी हुई है। प्राचीन मिश्र की लिपियों जैसे अन्य विस्मृत लिपियों को दुबारा पढ़ना इसलिए संभव हो सका क्योंकि विस्मृत लिपि में लिखित कुछ लेख बाद में एक परिचित लिपि में पाए गए हैं। इस परिचित लिपि के कुछ अक्षर विस्मृत लिपि के अक्षरों से मिलते-जुलते थे। हड़प्पा में कोई द्विभाषिक लेख अभी तक नहीं मिले हैं। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि हड़प्पा-निवासी कौन सी भाषा बोलते थे और उन्होंने क्या लिखा। दुर्भाग्यवश, अब तक पाए गए लेख बहुत संक्षिप्त हैं और मुहरों (Seals) पर खुदे हुए हैं। इस कारण उन्हें पढ़ पाना और भी कठिन हो जाता है। हड़प्पा-निवासी चित्राक्षरों का प्रयोग करते थे और दाईं से बाईं ओर लिखते थे। किन्तु, विद्वान अभी भी इस लिपि के रहस्य को खोलने की कोशिश में लगे हुए हैं। इस कार्य में सफलता मिलने पर हड़प्पा की सभ्यता के बारे में और भी जानकारी प्राप्त होगी।

6.6.6 जीवन-यापन का स्वरूप

हड़प्पा-सभ्यता की शहरी आबादी कृषि उत्पादन पर निर्भर करती थी। विभिन्न स्थानों पर की गई खुदाई के दौरान हड़प्पा-सभ्यता के लोगों की आहार संबंधी आदतों के बारे में वृहत जानकारी प्राप्त हुई है। ऐसा लगता है कि भेड़ और बकरी के अलावा, कूबड़दार मवेशियों को भी पाला जाता था। बहुत सी बस्तियों में सूअर, भैंस, हाथी और ऊँट की हड्डियां भी पाई गई हैं। अभी तक यह निश्चित नहीं है कि ये जानवर पाले जाते थे या उनका शिकार किया जाता था। फिर भी, कुछ मुहरों पर एक सुसज्जित हाथी के चित्र से यह संकेत मिलता है कि इस जानवर को पालतू बना लिया गया था। मुर्गों की हड्डियां भी पाई गई हैं। संभवतः उन्हें पालतू बना लिया गया था। जंगली जानवरों की हड्डियां भी बड़ी तादाद में पाई गई हैं। उनमें हिरण, गैंडे, कछुए आदि की हड्डियां शामिल हैं। हड़प्पा काल में लोग घोड़ों के विषय में शायद नहीं जानते थे।

हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों में गेहूँ की दो किस्में अधिक पाई गई हैं। अन्य फसलों में खजूर और फलदार पौधों की किस्में शामिल हैं, जैसे कि मटर। उनके अलावा इस काल में सरसों और तिल की फसल भी होती थी। लोथल और रंगपुर में चिकनी मिट्टी में और मिट्टी के

बर्तनों में चावल की भूसी दबी हुई पाई गई है। यह नहीं कहा जा सकता कि चावल की ये किस्में जंगली थीं या नियमित रूप से उगाई जाने वाली किस्में।

भारत अपने परम्परागत सूती वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध रहा है। मोहनजोदड़ो में सूती कपड़े का एक टुकड़ा पाया गया है जिससे पता चलता है कि हड़प्पा-सभ्यता के लोग कपास की खेती करने और कपड़े बनाने-पहनने की कला में निपुण हो चुके थे।

कालीबंगन में खांचेदार खेत के प्रमाण मिले हैं जिनसे यह स्पष्ट है कि हड़प्पा-सभ्यता के लोग लकड़ी के हल का प्रयोग करते थे। इस क्षेत्र में अभी भी एक दिशा में काफी दूर-दूर और एक दिशा में बहुत पास-पास आड़े-तिरछे खांचे बनाने की पद्धति प्रचलित है। आधुनिक कृषक अपने खेत में इसी ढंग से खांचे बना कर एक तरफ कुलथी या तिल की खेती करता है और दूसरी तरफ सरसों की। हड़प्पा की सभ्यता के किसान भी शायद यही करते थे।

इस तरह, यह पाया गया है कि हड़प्पा-युग में जीवन-निर्वाह की व्यवस्था अनेक प्रकार की फसलों, पालतू पशुओं और जंगली जानवरों पर निर्भर थी। इस विविधता के कारण ही जीवन-निर्वाह व्यवस्था मजबूत बनी हुई थी। वे प्रति वर्ष एक साथ दो फसलें उगा रहे थे। इससे अर्थव्यवस्था इतनी मजबूत हो गई थी कि नगरों में रहने वाली और अपने लिए अन्न का उत्पादन खुद न करने वाली बड़ी जनसंख्या का भरण-पोषण किया जा सकता था।

बोध प्रश्न 2

1 लगभग 10 लाइनों में हड़प्पा-सभ्यता की भौतिक विशेषताओं का विवेचन करें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2 निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) या गलत (×) का निशान लगाएं :

i) हड़प्पा की खुदाई में पाया गया विशाल स्नान-कुण्ड ईंटों का बना है। ( )

ii) मोहनजोदड़ो में खोजा गया विशाल अन्नभण्डार एक महत्वपूर्ण इमारत है। ( )

iii) अग्नि कुण्ड लोथल में पाए गए हैं। ( )

iv) हड़प्पा-सभ्यता के लोग लोहे के बने औजारों का इस्तेमाल करते थे। ( )

v) हड़प्पा-सभ्यता की लिपि को अभी तक पढ़ा नहीं जा सका। ( )

3 रिक्त स्थानों को सही उत्तरों से पूरा करें :

i) .... (मोहनजोदड़ो/हड़प्पा/कालीबंगन) में मिली नर्तकी की कांस्य मूर्ति को हड़प्पा-कला का उत्कृष्ट नमूना माना जाता है।

ii) लोथल में.............................. (चावल/गेहूँ/जौ) के दाने मिट्टी में धंसे पाए गए हैं।

iii) हड़प्पा-सभ्यता के लोग पशुओं में.............................. (हाथी/ऊँट/घोड़े) से अनजान थे।

iv) कपास के प्रमाण..................... (हड़प्पा/मोहनजोदड़ो/कालीबंगन) से मिलते हैं।

6.7 सारांश

इस इकाई में आपने हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों की भौगोलिक स्थिति और भौतिक विशेषताओं के बारे में पढ़ा है। भौतिक विशेषताओं की एकरूपताओं के कारण हड़प्पा, मोहनजोदड़ो और घग्घर क्षेत्र में जीवन-निर्वाह के एक जैसे तरीके सामने आए। किन्तु अन्य ऐसे स्थान भी थे, जहां जीविका के स्वरूप में वहां की परिवर्ती भौगोलिक विशेषताओं के कारण विविधता थी। हड़प्पा की सभ्यता के लोगों की नगर-योजना अत्यंत कुशल थी। हड़प्पा-सभ्यता के नगरों में मकान और वहां की जलनिकास प्रणाली को देख कर हड़प्पा की सभ्यता के लोगों की अनोखी भौतिक उपलब्धियों का पता चलता है। हडप्पा युग के मिट्टी के बर्तनों, औजारों और उपकरणों में काफी हद तक एकरूपता पाई जाती हैं। हड़प्पा-सभ्यता की मुहरें (Seals) और मनके कारीगरी के सुन्दर नमूने हैं लेकिन उनकी प्रस्तर मूर्तिकला और पक्की मिट्टी की लघु मूर्तियां तकनीकी उत्कृष्टता में समकालीन मिश्र और मेसोपोटामिया की कला का मुकाबला नहीं कर सकतीं। हड़प्पा-सभ्यता की जीवन-निर्वाह व्यवस्था अनेक फसलों की खेती और पालतू जानवरों पर निर्भर करती थी। इससे वहां की अर्थव्यवस्था नगरों में बसे लोगों का भरण-पोषण करने में समर्थ हो सकी। नगरों में रहने वाले लोग अपने अन्न का उत्पादन स्वयं नहीं करते थे। उनके लिए खाद्यान्न निकटवर्ती क्षेत्रों से आता था।

6.8 शब्दावली

शिल्प-अवशेष : मनुष्य की कारीगरी का नमूना।

ढालू प्रणाल (chute) : गंदे पानी को बाहर निकालने का मार्ग।

दुर्ग : शहर में किला, नगर-दुर्ग।

हड़प्पा की सभ्यता का पूर्वी अधिकार क्षेत्र : विशेषकर राजस्थान, हरियाणा, पंजाब और उत्तर प्रदेश में स्थित हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियां।

उत्खनन : पुरानी या प्राचीन जगह पर खुदाई करना।

अन्नभण्डार : अनाज रखने के लिए भण्डार गृह।

टेढ़े-मेढ़े बहना : नदी का मोड़, नदी का सर्प की भांति बल खाते हुए बहना और क्षीण होते जाना जिसके कारण गाद जमा हो जाती है।

चित्रलिपि : जिस लिपि में चित्रों को किसी वस्तु आदि के प्रतीक के रूप में प्रयोग में लाया जाये।

पठार : ऊँचाई पर समतल विस्तृत भूमि।

पक्की मिट्टी (Terracotta) : मूर्तियां बनाने के लिए चिकनी मिट्टी और रेत का मिश्रण। इसे आग में पकाया जाता है और भूरे लाल रंग का होता है।

6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 आपके उत्तर में ये बातें शामिल होनी चाहिएँ :
हड़प्पा की भौगोलिक स्थिति और जीवन-निर्वाह के स्वरूप का वर्णन, मोहनजोदड़ो,

कालीबंगन, लोथल और सुत्काजिन-दोर की भौगोलिक स्थिति का विवेचन। देखें खण्ड 6.5 और उपखण्ड 6.5.1 से 6.5.5 तक।

2 1) घ 2) क 3) ख 4) ग

3 i) (×) ii) (×) iii) (×) iv) (✓)

बोध प्रश्न 2

1 आपके उत्तर में ये बातें शामिल होनी चाहिएँ :
हड़प्पा निवासियों की नगर योजना का विवेचन, मिट्टी के बर्तनों, औजार एवं उपकरण, कला और शिल्प, सिन्धु-लिपि और जीवन-यापन के स्वरूप का वर्णन। देखें खण्ड 6.6 और उपखण्ड 6.6.1 से 6.6.6 तक।

2 i) (×) ii) (×) iii) (×) iv) (×) v) (✓)

3 i) मोहनजोदड़ो ii) चावल iii) घोड़ा iv) मोहनजोदड़ो।

इकाई 7 संपर्कों के रूप

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 व्यापारतंत्रों की स्थापना
7.3 अंतर्क्षेत्रीय सम्पर्क
7.3.1 शहर
7.3.2 गांव
7.4 कच्चे माल के स्रोत
7.5 विनिमय प्रणाली
7.6 फारस की खाड़ी और मेसोपोटामिया के साथ व्यापार
7.6.1 पुरातात्विक प्रमाण
7.6.2 लिखित प्रमाण
7.7 परिवहन के साधन
7.8 सारांश
7.9 शब्दावली
7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- यह व्याख्या कर सकेंगे कि हड़प्पा निवासियों ने दूरस्थ देशों से सम्पर्क स्थापित करने की कोशिश क्यों की थी,
- हड़प्पाकालीन नगरों तथा आस-पास के क्षेत्रों के बीच सम्पर्क के स्वरूप को समझ सकेंगे,
- हड़प्पा निवासियों के समकालीन पश्चिमी एशिया की संस्कृति के साथ व्यापार और विनिमय क्रियाकलापों के बारे में जान सकेंगे,
- इस सम्पर्क के स्वरूप और विनिमय तंत्र के बारे में जिन स्रोतों से पता चलता है उनके बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

हड़प्पाकालीन संस्कृति की विशेषता वहाँ असंख्य छोटे बड़े नगरों की उपस्थिति थी। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो जैसे शहरों के अलावा अल्लाहदीनों (कराची के पास) जैसी बहुत सी छोटी बस्तियों से भी ऐसे प्रमाण मिले हैं जो शहरी अर्थव्यवस्था के सूचक हैं। शहरी अर्थव्यवस्था की विशेषता यह है कि इनमें अंतर्सम्बन्धों का तंत्र किसी क्षेत्रीय सीमा में बंधा नहीं होता। इस इकाई में आप पढ़ेंगे कि हड़प्पा से सैकड़ों मील दूर स्थित दूसरे शहरों और नगरों के लोगों से हड़प्पावासी किस प्रकार सक्रिय आदान-प्रदान में लगे रहते थे।

इस इकाई में इस बात की व्याख्या की गई है कि शहरों में व्यापारतन्त्र क्यों स्थापित किया गया। साथ ही अंतर्क्षेत्रीय व्यापार के तरीकों का भी जिक्र इसमें किया गया है। इसमें कच्चे माल के स्रोतों और समकालीन पश्चिमी एशिया के साथ सम्पर्क का भी उल्लेख है। विभिन्न ऐतिहासिक स्रोतों से हड़प्पा सभ्यता के विषय में पता चलता है और इस इकाई में इनके बारे में बताया गया है।

7.2 व्यापारतंत्र की स्थापना

यह माना जाता है कि पूर्व शहरी समाज में विभिन्न क्षेत्रों के बीच सक्रिय लेन-देन नहीं था। अब सवाल यह है कि नगरवासियों ने दूरस्थ देशों से सम्पर्क क्यों स्थापित किया और हमें इस विषय में कैसे पता चलता है। शहरी केन्द्रों में जनसंख्या का एक महत्वपूर्ण हिस्सा खाद्यान्न उत्पादन में न लगाकर दूसरे अन्य प्रकार के कार्यकलापों में लगा होता है। ये लोग प्रशासनिक, व्यापार और विनिर्माणी कार्य करते हैं। साथ ही यदि वे स्वयं खाद्यान्न उत्पादन नहीं करते हैं तो वह काम दूसरे को उनके लिए करना पड़ता है। यही कारण है कि नगर, खाद्यान्न आपूर्ति के लिए आस-पास के ग्रामीण क्षेत्र पर निर्भर हैं।

यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि शहर और गांव के बीच सम्बन्ध असमान हैं। शहरों को प्रशासनिक या धार्मिक केन्द्रों के रूप में विकास होने पर पूरे देश में संसाधन वहां एकत्र हो जाते हैं। यह सम्पत्ति करों, उपहारों, भेटों या खरीदे हुये सामान के रूप में भीतरी प्रदेश से शहर में आती है। हड़प्पा समाज में इस सम्पत्ति का नियंत्रण शहरी समाज के सबसे अधिक प्रभावशाली लोगों के हाथ में था। साथ ही शहर के धनी और प्रभावशाली लोग आरामदायक जीवन बिताते थे। उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा उनके द्वारा बनाए गए भवनों और उनके द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली भोग विलास की वस्तुओं के अभिग्रहण में प्रतिबिम्बित होती है जो स्थानीय रूप से अनुपलब्ध थीं। यह इस बात की ओर संकेत करता है कि शहरों का दूरस्थ देशों से सम्पर्क स्थापित करने का मुख्य कारण इन अमीर और प्रभावशाली लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करना था। हड़प्पावासियों के दूरस्थ देशों से सम्पर्क स्थापित करने के कारणों में से एक कारण यह भी हो सकता है।

हड़प्पा बहावलपुर और मोहनजोदड़ो वाला भू-भाग हड़प्पा सभ्यता का मूल क्षेत्र है। लगभग दस लाख अस्सी हजार वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में पाई गई बस्तियों में हड़प्पा सभ्यता के प्रभाव के प्रमाण पाए गए हैं।

यहां पर एक प्रासंगिक प्रश्न उठाया जा सकता है कि अफगानिस्तान के शार्तुघई और गुजरात के भगतराव जैसे दूर तक फैले हुए क्षेत्र में हड़प्पा सभ्यता के लोगों ने बस्तियाँ क्यों बसाईं? इसका युक्तिसंगत उत्तर विभिन्न क्षेत्रों की आपसी आर्थिक अंतर्निर्भरता और व्यापारतंत्र है। मूल संसाधनों का अलग-अलग स्थानों पर उपलब्ध होना सिन्धु घाटी के विभिन्न क्षेत्रों को जोड़ने का महत्वपूर्ण कारण था। इन संसाधनों में कृषि संबन्धी संसाधन, खनिज संसाधन, लकड़ी आदि शामिल थे और ये व्यापार मार्गों की स्थापना करके ही प्राप्त किए जा सकते थे। उपजाऊ सिन्ध-हाकड़ा मैदान के धनी लोग अधिक से अधिक विलास की वस्तुएं प्राप्त करना चाहते थे। इस खोज में उन्होंने अफगानिस्तान और मध्य एशिया के साथ पहले से विद्यमान सम्बन्धों को और मज़बूत बनाया। उन्होंने गुजरात और गंगा की घाटी जैसी जगहों में भी बस्तियां बसाईं।

7.3 अंतर्क्षेत्रीय सम्पर्क

अब हम हड़प्पा नगरों के आपसी और उस समय के दूसरे शहरों और समाजों के साथ सम्पर्क के स्वरूप का मूल्यांकन करने की चेष्टा करेंगे। हमारे पास इस सम्पर्क के प्रमाण हड़प्पाकालीन नगरों की खुदाई द्वारा पाई गई वस्तुओं पर आधारित हैं। इनमें से कुछ प्रमाणों की पुष्टि समकालीन मेसोपोटामिया की सभ्यता के लिखित स्रोतों में पाए गए प्रसंगों द्वारा की गई है।

7.3.1 शहर

अब हम हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में पाए गए अन्नभंडारों से संबंधित प्रमाणों की चर्चा करेंगे। ये बड़ी इमारतें अनाज रखने के लिए बनाई गई थीं। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, शहरी केन्द्र खाद्यान्न आपूर्ति के लिए गांवों पर ही निर्भर है। अन्नभंडारों की उपस्थिति इस बात की ओर संकेत करती है कि शासक खाद्यान्न के एक सुनिश्चित भाग

को अपने पास रखना चाहते थे। यह अनुमान है कि आस-पास के गांवों से अनाज लाकर यहां रखा जाता था। फिर यह शहरी निवासियों को पुनर्वितरित किया जाता था। अनाज ऐसा संसाधन है जिसकी रोज बड़ी मात्रा में खपत होती है। काफी मात्रा में अनाज एकत्रित करके बैलगाड़ियों और नावों द्वारा भेजा जाता था। दूरस्थ स्थानों के लिए अधिक मात्रा में खाद्य सामग्री ढोना मुश्किल काम है। यही कारण है कि नगर सर्वाधिक उपजाऊ क्षेत्रों में ही पाए गए हैं और सम्भवतया वहाँ अनाज आस-पास के गांवों से लाया जाता था।

उदाहरणस्वरूप, मोहनजोदड़ो जो कि सिन्ध के लरकाना जिले में स्थित था आज भी सिन्ध का सबसे उपजाऊ क्षेत्र है। परन्तु महत्वपूर्ण व्यापार मार्गों या औद्योगिक क्षेत्रों में भी कुछ अन्य बस्तियां स्थापित हुईं। बस्तियों की अवस्थिति किसी क्षेत्र की कृषि से संबंधित उपजाऊ क्षमता पर उतना निर्भर नहीं करती जितना कि व्यापार और विनिमय की सम्भावनाओं पर निर्भर करती है।

यही कारण है कि बड़े शहरों की अवस्थिति के कारणों का विश्लेषण करते समय विद्वान इन बातों को ध्यान में रखते हैं।

- खाद्य उत्पादन के लिए उस स्थान की समर्थता और
- उसकी व्यापार मार्गों और खनिज स्रोतों से निकटता।

यदि हम उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखें तो हम पाएँगे कि हड़प्पा की अवस्थिति बहुत ही उत्तम है। इसके उत्तर पश्चिम के समूचे भौगोलिक क्षेत्र में किसी दूसरी हड़प्पाकालीन बस्ती के प्रमाण नहीं मिले हैं। यहां तक कि 19वीं शताब्दी में भी इस क्षेत्र में मुख्यतया खानाबदोश चरवाहे ही रहते थे। कुछ विद्वानों का मत है कि हड़प्पा ऐसी जगह पर स्थित था जो दक्षिण की ओर स्थित कृषि बस्तियों और उत्तर पश्चिम की ओर स्थित खानाबदोश चरवाही बस्तियों को एक दूसरे से विभाजित करती थी। इस प्रकार हड़प्पा के लोग दोनों समुदायों के संसाधनों का उपयोग कर सकते थे। ऐसा भी कहा जाता है कि यद्यपि खाद्य उत्पादन के सम्बन्ध में हड़प्पा का कोई भी महत्वपूर्ण योगदान नहीं था, यह एक बड़े शहर के रूप में इसलिए विकसित हो सका क्योंकि एक व्यापारिक बस्ती के रूप में इसकी अवस्थिति बड़ी महत्वपूर्ण थी। यदि हम हड़प्पा को बीच में रखकर लगभग 300 किलो मीटर के क्षेत्र में उसके चारों ओर एक वृत बनाएं तो हम पाएंगे कि हड़प्पा की अवस्थिति बहुत ही उत्तम है।

1) हड़प्पा निवासियों की हिन्दुकुश और पश्चिमोत्तर सीमांत तक पहुँच थी। इसका अर्थ यह है कि लगभग दस दिन की यात्रा करके हड़प्पा निवासी उस क्षेत्र में पहुँच सकते थे जहाँ फीरोज़ा तथा वैदूर्यमणि जैसे बहुमूल्य पत्थर पाए जाते थे। ये बहुमूल्य पत्थर हिन्दुकुश तथा पश्चिमोत्तर सीमांत के मार्गों से लाए जाते थे।
2) वे नमक **क्षेत्र** से **खनिज** नमक भी प्राप्त कर सकते थे।
3) उन्हें राजस्थान से **टिन** और तांबा सुलभ रूप से प्राप्त था।
4) सम्भवतया वे कश्मीर में सोने और एमिथिस्ट के स्रोतों का भी उपयोग करते थे।
5) इस 300 किलोमीटर की परिधि में उस स्थान तक भी उनकी पहुँच थी जहां पंजाब की पांचों नदियां एक धारा में मिल जाती थीं। इसका अर्थ यह हुआ कि हड़प्पा निवासियों का पंजाब की पांचों नदियों के नदी परिवहन पर भी नियंत्रण था। उस समय जब पक्की सड़कें नहीं थीं। नदियों द्वारा परिवहन कहीं अधिक सुलभ था।
6) उनकी अवस्थिति उनको कश्मीर के पर्वतीय क्षेत्रों से लकड़ी प्राप्त करने में सहायता प्रदान करती थी। हड़प्पा ऐसी जगह पर स्थित है जहां आधुनिक समय में भी पश्चिम और पूर्व के अनेक व्यापार मार्ग आपस में मिलते हैं।

अवस्थिति के संदर्भ में मोहनजोदड़ो और लोथल की बस्तियों का भी अपना महत्व था। कुछ विद्वानों का मानना है कि मोहनजोदड़ो में बड़ी इमारतों का धार्मिक स्वरूप इस ओर संकेत करता है कि यह एक धार्मिक केन्द्र था। यह धार्मिक केन्द्र हो या न हो, यहां के अमीर लोग सोना, चांदी और दूसरी बहुमूल्य वस्तुओं का प्रयोग करते थे जो स्थानीय रूप से प्राप्य नहीं थीं। हड़प्पा की तुलना में मोहनजोदड़ो समुद्र के अधिक निकट था। इसके कारण मोहनजोदड़ो वासियों के लिए फ़ारस की खाड़ी और मेसोपोटामिया पहुंचना आसान था। फारस की खाड़ी और मेसोपोटामिया वे क्षेत्र थे जो सम्भवतया चांदी के मुख्य

आपूर्तिकर्ता (Suppliers) थे। इसी प्रकार लोथल निवासी दक्षिणी राजस्थान और दक्कन से संसाधन प्राप्त करते थे। सम्भवतः वे हड़प्पावासियों को कर्नाटक से सोना प्राप्त करने में मदद करते थे। कर्नाटक में सोने की खानों के पास समकालीन नवपाषाण युगीन बस्तियाँ पाई गई हैं।

7.3.2 गांव

गांव आवश्यक अनाज और कच्चा माल नगरों को भेजते थे पर हड़प्पा सभ्यता के नगर बदले में उन्हें क्या देते थे? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें कुछ इने-गिने सुराग मिले हैं। एक तो यह कि नगरों के शासक अनाज को कर के रूप में वसूल करने के लिए बल प्रयोग करते थे। यह कर प्रशासनिक सेवाओं के बदले लोगों द्वारा दिया जाता था। इस ग्रामीण-शहरी सम्बन्ध का एक महत्वपूर्ण अवयव उन समस्त वस्तुओं को प्राप्त करना था जो स्थानीय रूप से उपलब्ध नहीं थीं और उन्हें ग्रामीण भीतरी प्रदेश (Interland) में उपलब्ध कराना था।

हड़प्पा काल की दिलचस्प वस्तुएँ पत्थर के औज़ार थे। हड़प्पा-सभ्यता के लगभग सभी नगरों और गांवों के लोग समानान्तर आकार के पत्थर के ब्लेड का प्रयोग करते थे। ये पत्थर के ब्लेड बहुत ही उच्च स्तर के पत्थर से बनाए जाते थे जो हर स्थान पर नहीं पाए जाते थे। ऐसा माना जाता है कि इस प्रकार का पत्थर सिंध में सुक्कूर (Sukkur) नामक स्थान से लाया जाता था। यह परिकल्पना इस तथ्य से सिद्ध होती है कि हड़प्पा-सभ्यता की शहरी अवस्था के दौरान गुजरात में स्थित रंगपुर के लोग दूर प्रदेशों से लाए गए पत्थर के औज़ारों का प्रयोग करते थे। जब हड़प्पा सभ्यता ह्रास की ओर अग्रसर हुई तब इन क्षेत्रों के लोगों ने स्थानीय पत्थर से बने औज़ारों का प्रयोग करना शुरू कर दिया। हड़प्पा के लोग तांबें और कांसे जैसी धातुओं का भी प्रयोग करते थे। तांबा कुछ ही स्थानों पर उपलब्ध था। हड़प्पा-सभ्यता की लगभग सभी बस्तियों में तांबे और कांसे के औज़ार पाए गए हैं। हड़प्पा-सभ्यता की लगभग सभी बस्तियों में पाए गए इन औज़ारों की बनावट और प्रयोग में एकरूपता थी। इससे यह पता चलता है कि वहाँ उत्पादन और वितरण अवश्य ही केन्द्रीकृत संस्थाओं द्वारा किया जाता होगा। इन संस्थाओं में नगरों में रहने वाले प्रशासक या व्यापारी शामिल थे। जिन वस्तुओं का ऊपर उल्लेख किया गया है वे आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण थीं। इनके अलावा हड़प्पा-सभ्यता की छोटी अथवा बड़ी बस्तियों से सोने, चांदी और अनेक कीमती और अर्ध कीमती पत्थरों से बनी वस्तुएं भी पाई गई हैं। ये धातु और पत्थर व्यापारियों या शहर के शासकों द्वारा लाए जाते थे। शहरीकरण की शुरुआत के साथ हड़प्पा-सभ्यता में व्यापार में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। मोहनजोदड़ो से मनकों के प्रमाण मिले हैं। ये वस्तुएँ छोटे गांवों और नगरों के अमीर और प्रभावशाली लोगों द्वारा उपयोग में लाई जाती थीं।

ऊपर की गई चर्चा से यह बात उभर कर सामने आती है कि :

- गांवों की अवस्थिति मुख्यतया भूमि की उपजाऊ क्षमता और सिंचाई की सुविधा की सुलभता पर निर्भर करती थी।
- नगरों की अवस्थिति ऊपर दिए गए घटक के अन्य अतिरिक्त घटकों जैसे खानों या व्यापार मार्गों से इन नगरों की निकटता पर निर्भर करती थी।

कभी-कभी नगरों की अवस्थिति व्यापार के घटक पर अन्य घटकों से अधिक निर्भर करती थी तथा कई नगर उन अनुपयोगी (Inhospitable) जगहों पर बसाए गए जहां कृषि उत्पादन बहुत कम था। उदाहरणस्वरूप मकरान समुद्र तट सुत्काजिन-दोर एक ऐसी ही बस्ती थी। वह कृषि उत्पादन की दृष्टि से अनुपयोगी (Inhospitable) क्षेत्र में स्थित है और इसकी मुख्य भूमिका हड़प्पा और मेसोपोटामिया के बीच व्यापार चौकी के रूप में थी।

अब हम हड़प्पा-सभ्यता के अन्य शहरों में घटित होने वाली गतिविधियों की चर्चा करेंगे।

- बलूचिस्तान, समुद्रतट के पास स्थित बालाकोट और सिंध में चहुंदड़ो सीपीशिल्प और चूड़ियों के लिए प्रसिद्ध थे,
- लोथल और चहुंदड़ो में लाल (Carnelian) पत्थर और गोमेद के मनके बनाए जाते थे।
- चन्हुंदड़ों में वैदूर्यमणि के कुछ अधबने मनके इस बात की ओर संकेत करते हैं कि

हड़प्पा निवासी दूर दराज़ स्थानों से बहूमूल्य पत्थर आयात करते थे और उन पर काम करके उन्हें बेचते थे।

- मोहनजोदड़ो में पत्थर की चिनाई करने वाले कुम्हार, तांबे और कांसे के शिल्पकार, ईंटें बनाने वाले, सील काटने वाले, मनके बनाने वाले आदि हस्त कौशल में निपुण लोगों की उपस्थिति के प्रमाण पाए गए हैं।

7.4 कच्चे माल के स्रोत

हड़प्पा-सभ्यता की विभिन्न बस्तियों की खुदाई द्वारा बहुत संख्या में चूड़ियां, मनके, मिट्टी के बर्तन और विभिन्न प्रकार की तांबे, कांसे और पत्थर की वस्तुयें पाई गई हैं। हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों में पाई अनेक प्रकार की वस्तुएँ इस बात की ओर संकेत करती हैं कि वे अनेक प्रकार की धातुओं और बहुमूल्य पत्थरों का प्रयोग करते थे जो प्रत्येक क्षेत्र में समान रूप से उपलब्ध नहीं थे। रोचक बात यह है कि हड़प्पा-सभ्यता की छोटी-छोटी बस्तियों में भी बहुमूल्य पत्थरों और धातुओं के औज़ार पाए गए हैं। ये अमीर लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक विस्तृत विनिमय तंत्र की ओर संकेत करते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि हड़प्पा-सभ्यता के लोगों द्वारा प्रयोग में लाए जाने वाले खनिज पदार्थ और धातुओं के क्या स्रोत थे?

- वे राजस्थान की खेतड़ी खानों से तांबा प्राप्त करते थे।
- मध्यवर्ती राजस्थान में जोधपुरा, बागोर और गणेश्वर बस्तियां जो हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों के समकालीन मानी जाती हैं सम्भवतया हड़प्पा सभ्यता के लिए कच्चे तांबे का स्रोत रही होंगी।
- गणेश्वर में 400 से अधिक तांबे के तीर शीर्ष, 50 मछली पकड़ने के कांटे और 58 तांबे की कुल्हाड़ियां पाई गई हैं।

इन बस्तियों में लोग खानाबदोशी चरवाहों तथा शिकार संग्रहकर्त्ताओं दोनों ही की तरह से जीवन-यापन करते थे। इन पर हड़प्पा-सभ्यता का प्रभाव शायद नहीं पड़ा था। इससे व्यापार सम्बन्धों, की समस्या की जटिलता और भी बढ़ जाती है। पुरातत्ववेत्ताओं का विश्वास है कि हड़प्पावासी उस क्षेत्र से तांबे के औज़ारों का आयात करते थे जहां के लोग चरवाहे और शिकारी के रूप में जीवन यापन करते थे। तथापि हम यह नहीं कह सकते हैं कि ये दोनों समुदाय एक जो विकसित शहरी सभ्यता और दूसरा जो चरवाह समुदाय का प्रतिनिधित्व करता है, आपस में किस प्रकार आदान-प्रदान करते थे। सम्भवतया ये सम्बन्ध अप्रत्यक्ष थे।

शायद हड़प्पा-सभ्यता के लोग तांबा बलूचिस्तान और उत्तरी पश्चिमी सीमांत से प्राप्त करते थे। सोना सम्भवतया कर्नाटक के कोलार क्षेत्र और कश्मीर से प्राप्त किया जाता था। हड़प्पावासियों की समकालीन कुछ नवपाषाण युगीन बस्तियां भी इस क्षेत्र में पाई गई हैं। राजस्थान के जयपुर और सिरोही, पंजाब के हाज़रा कांगड़ा और झंग और काबुल और सिन्धु नदियों के किनारे सोने के मुलम्मों के प्रमाण मिले हैं।

हड़प्पा-सभ्यता की बहुत सी बस्तियों से चांदी के बर्तन पाए गए हैं। यद्यपि इस क्षेत्र में चांदी के कोई विदित स्रोत नहीं हैं। चांदी शायद अफगानिस्तान और ईरान से आयात किया जाता होगा। सम्भवतया सिंध के व्यापारियों के मेसोपोटामिया से व्यापार संबंध थे तथा वे अपने माल के बदले में मेसोपोटामिया से चांदी प्राप्त करते थे। सीसा शायद कश्मीर या राजस्थान से प्राप्त किया जाता होगा। पंजाब और बलूचिस्तान में भी थोड़े बहुत सीसे के स्रोत थे।

वैदूर्यमणि जो कि एक कीमती पत्थर था उत्तरी पूर्वी अफ़गानिस्तान में बदक्शां (Badakshan) में पाया जाता था। इस क्षेत्र में शोर्तुघई और अलतिन देपे (Altyn Depe) जैसी हड़प्पाकालीन बस्तियों का पाया जाना उस बात की पुष्टि करता है कि हड़प्पावासियों ने इस स्रोत का लाभ उठाया होगा। फ़िरोजा और जेड मध्य एशिया से प्राप्त किए जाते थे। गोभेद, श्वेतवर्ण स्फटिक और लाज पत्थर सौराष्ट्र या पश्चिमी भारत से

प्राप्त किये जाते थे। समुद्री सीपियां जो हड़प्पावासियों में बहुत लोकप्रिय थीं गुजरात के समुद्र तट और पश्चिमी भारत से प्राप्त की जाती थीं। जम्मू में मांदा (Manda) उस स्थान पर स्थित है जहां पर चेनाब नदी में नौपरिवहन संभव है। सम्भवतया अच्छी किस्म की लकड़ी अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों से प्राप्त होती थी और मध्य सिंधु घाटी में नदियों द्वारा पहुँचाई जाती थी। शर्तुघई (Shortughai) में हड़प्पाकालीन अवशेषों में काफी मात्रा में वैदूर्यमणि पाए गए हैं। यह इस बात की ओर संकेत करता है कि हड़प्पा-सभ्यता के लोगों ने दूरस्थ क्षेत्रों में पाए जाने वाले खनिज पदार्थों का उपयोग करने के लिए उपनिवेशीकरण की नीति अपनाई थी। इससे यह पता चलता है कि व्यापार और बाहर से नई प्रकार की वस्तुएँ प्राप्त करने में हड़प्पा-सभ्यता के लोगों की दिलचस्पी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि व्यापार विनिमय व्यापारियों का आपसी मामला न होकर एक प्रशासनिक कार्यकलाप था क्योंकि लगभग 500 किलोमीटर के क्षेत्र में उपनिवेश स्थापित करना किसी व्यापारी के लिए सम्भव नहीं था। हड़प्पा काल के प्रशासक दूरस्थ प्रदेशों के संसाधनों को नियंत्रित करना चाहते थे।

7.5 विनिमय व्यवस्था

हड़प्पा-सभ्यता के लोगों ने भारतीय उपमहाद्वीप के भीतर और बाहर अंतर्क्षेत्रीय व्यापार का एक बृहद तंत्र स्थापित किया था। लेकिन हमें यह मालूम नहीं है कि हड़प्पा-सभ्यता और अन्य क्षेत्रों के बीच किस प्रकार की विनिमय व्यवस्था प्रचलित थी। इतने बड़े क्षेत्र के बीच आदान-प्रदान की प्रक्रिया में विभिन्न समुदायों का शामिल होना अवश्यम्भावी है। उस समय देश के एक बड़े भू-भाग में शिकारी संग्रहकर्त्ता रहते थे। कुछ क्षेत्रों में खानाबदोश चरवाहे थे। कुछ समुदायों ने कृषि उत्पादन शुरू कर दिया था। इनकी तुलना में हड़प्पा-सभ्यता अधिक विकसित थी। हड़प्पा-सभ्यता के लोग शिकारी संग्रहकर्ताओं या किसी और समुदाय के क्षेत्रों से खनिज पदार्थ प्राप्त करने के लिए क्या तरीके अपनाते थे? हड़प्पा-सभ्यता के लोगों ने ऐसे कुछ क्षेत्रों में अपनी बस्तियां बसाई थीं। सम्भवतया हड़प्पा-सभ्यता के लोगों से भिन्न समुदाय हड़प्पा-सभ्यता के लोगों से कीमती वस्तुएँ प्राप्त करते थे परन्तु विनिमय एक नियमित कार्यकलाप नहीं था। बल्कि यह इन समुदायों के मौसमी प्रवास या किसी एक जगह पर एकत्रित होने पर निर्भर था। हड़प्पा-सभ्यता के व्यापारी उन स्थानों पर जाते थे जहां ये समुदाय मौसमी डेरे डालते थे। मौसमी प्रवास की प्रक्रिया के दौरान खानाबदोश चरवाहे भी दूर-दराज के क्षेत्रों से सामान प्राप्त करते थे। हड़प्पा-सभ्यता के लोगों की विनिमय प्रणाली के बारे में हमें बहुत कम जानकारी है।

हड़प्पा कालीन नगरों के बीच विनिमय पद्धति

हड़प्पा-सभ्यता के लोगों ने आपसी व्यापार और विनिमय को नियंत्रित करने के प्रयास किए। दूर फैली हुई हड़प्पा कालीन बस्तियों में भी नाप और तौल की व्यवस्थाओं में समरूपता थी। तौल निम्न मूल्यांकों में द्विचर प्रणाली के अनुसार है : 1, 2, 4, 8 से 64 तक फिर 150 तक और फिर 16 से गुणा होने वाले दशमलव 320, 640, 1600 और 3200 आदि तक। ये चकमकी पत्थर, चूना पत्थर, सेलखड़ी आदि से बनते हैं और साधारणतया घनाकार होते हैं। लम्बाई 37.6 सेंटीमीटर की एक फुट की इकाई पर आधारित थी और एक हाथ की इकाई लगभग 51.8 से 53.6 सेंटीमीटर तक होती थी। नाप और तौल की समरूप व्यवस्था केन्द्रीय प्रशासन द्वारा हड़प्पा-सभ्यता के लोगों में आपसी तथा अन्य लोगों के साथ विनिमय को व्यवस्थित करने के प्रयास की ओर इशारा करती है।

हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों में काफी संख्या में मुहरें और मुद्रांकण पाए गए हैं। ये मुहरें और मुद्रांकण दूरस्थ स्थानों को भेजे जाने वाले उत्पादों के उच्च स्तर और स्वामित्व की ओर संकेत करते हैं। इनका प्रयोग व्यापारिक गतिविधियों में होता था। इस बात की पुष्टि इस तथ्य से होती है कि बहुत से मुद्रांकणों में पीछे की ओर रस्सी और चटाई के निशान हैं। इनमें पाए जाने वाले चिन्हों से यह पता चलता है कि ये मुद्रांकण तिजारती माल में ठप्पे की तरह प्रयोग में लाए जाते होंगे। लोथल में गोदामों में वायुसंचालन के रास्तों में राख में

अनेक मुद्रांकण पाए गए हैं। ये सम्भवतया आयातित माल के गट्ठरों को खोलने के बाद फैंक दिए जाते होंगे। इन मुहरों पर विभिन्न जानवरों की आकृतियाँ भी चित्रित हैं और इन पर जो लिपि उत्कीर्ण है वह अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी है। ऐसा लगता है दूरस्थ स्थानों के साथ व्यापार विनिमय में इनका प्रयोग होता था।

बोध प्रश्न 1

1 निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) या गलत (×) का निशान लगाएँ।
   क) हड़प्पाकालीन नगर आत्मनिर्भर थे।
   ख) हड़प्पा-सभ्यता के लोगों का दूर तक फैले स्थानों में बस्तियां बसाने का उद्देश्य प्रधान रूप से आर्थिक था।
   ग) बड़े शहरों की अवस्थिति को निर्धारित करने में किसी क्षेत्र की खाद्य उत्पादन क्षमता एक महत्वपूर्ण घटक थी।
   घ) नदी परिवहन आवागमन का सबसे सस्ता और आसान साधन था।
   ड.) हड़प्पाकालीन बस्तियों में पाए गए औजारों की बनावट में समरूपता नहीं दिखाई देती।
   च) सिन्धु के व्यापारी अपने माल का विनिमय मेसोपोटामिया की चांदी से करते थे।

2 खाली स्थानों को भरें।
   क) हड़प्पा-सभ्यता के लोग सोना (स्वर्ण)........................ (कश्मीर/राजस्थान) से प्राप्त करते थे।
   ख) (लोहा/टिन)........................से हड़प्पा सभ्यता के लोग परिचित नहीं थे।
   ग) वैदूर्यमणि........................(कालीबंगन/शोर्तुघई) में अधिक मात्रा में पाया गया है।
   ड.) (सुत्काजिन-दोर/कालीबंगन)........................हड़प्पा-सभ्यता के लोगों और मेसोपोटामिया वासियों के बीच एक महत्वपूर्ण व्यापारिक बंदरगाह था।

3 हड़प्पाकालीन नगरों की विनिमय प्रणाली के बारे में विवेचन करें। दस पंक्तियों में उत्तर दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

7.6 फारस की खाड़ी और मेसोपोटामिया के साथ व्यापार

अब तक हमने हड़प्पा-सभ्यता के लोगों के अंतर्क्षेत्रीय विनिमय कार्यकलापों की चर्चा की है। इन कार्यकलापों में हड़प्पा-सभ्यता के लोग प्रमुख भागीदार थे। अब हम हड़प्पा-सभ्यता के लोगों की समकालीन पश्चिम एशिया की सभ्यताओं के साथ व्यापार और विनिमय के कार्यकलापों की चर्चा करेंगे। मेसोपोटामिया हड़प्पा-सभ्यता के मुख्य क्षेत्र से हज़ारों मील

दूर स्थित था फिर भी इन दोनों सभ्यताओं के बीच व्यापार सम्बन्ध थे।

7.6.1 सम्पर्कों के पुरातात्विक प्रमाण

विनिमय के विषय में हमारी जानकारी का आधार मेसोपोटामिया में पाई गई विशिष्ट हड़प्पाकालीन मुहरें हैं। मेसोपोटामिया के सूसा (Susa) उर (Ur) आदि शहरों में हड़प्पा सभ्यता की, या हड़प्पाकालीन मुहरें से मिलती-जुलती लगभग दो दर्जन मुहरें पाई गई हैं। हाल ही में फारस की खाड़ी में फैलका (Failka) और बेहरैन (Behrain) जैसे प्राचीन स्थानों में भी हड़प्पाकालीन मुहरें पाई गई हैं। मेसोपोटामिया के निप्पुर (Nippur) शहर में एक मुहर पाई गई है जिस पर हड़प्पाकालीन लिपि उत्कीर्ण है और एक सींग वाला पशु बना हुआ है। दो चौकोर सिंधु मुहरें जिन पर एक सींग वाला पशु और सिन्धु लिपि उत्कीर्ण है, मेसोपोटामिया के किश (Kish) शहर में पाई गई हैं। एक अन्य शहर उम्मा (Umma) में भी सिंधु सभ्यता की एक मुहर पाई गई है। इसका अर्थ यह हुआ कि सिंधु घाटी और इन क्षेत्रों के बीच व्यापार विनिमय संबंध थे।

तेल असमार (Tel Asmar) में हड़प्पाकालीन मृतिका शिल्प नक्काशी किये हुए लाल पत्थर के मनके और गुर्दे के आकार के हड्डी के जड़ाऊ काम पाए गए हैं। इनसे मेसोपोटामिया और हड़प्पा-सभ्यता के लोगों के बीच व्यापार सम्बन्ध के बारे में पता चलता है। पक्की मिट्टी की छोटी मूर्तियां, जो साधारणतया सिंधु घाटी में पाई गई हैं, मेसोपोटामिया में निप्पुर (Nippur) में भी पाई गई हैं। इन छोटी मूर्तियों में प्रमुख हैं—एक मोटे पेट वाला नग्न पुरुष, जानवरों जैसे चेहरे, गोलमटोल पूंछें और हिलने डुलने वाले हाथों का जोड़ने के लिए कंधों में खाली जगह। निप्पुर (Nippur) में इसी प्रकार की तीन छोटी मूर्तियां पाई गई हैं जिनसे निप्पुर पर हड़प्पा-सभ्यता के प्रभाव का पता चलता है। सिंधु के चौसर के नमूने (1/2, 3/6, 4/5) मेसोपोटामिया के ऊर (Ur), निप्पुर (Nippur) और तेल असमार शहरों में पाए गए हैं। इनके अलावा मेसोपोटामिया में विशिष्ट आकार के मनके पाए गए हैं और लगता है कि ये सिंधु घाटी से ही लाए गए थे। चहुंदड़ों में पाए गए इकहरे, दोहरे, तिहरे वृत्ताकार मनके, मेसोपोटामिया के किश (Kish) में पाए गए मनकों से बहुत मिलते जुलते हैं। फारस की खाड़ी और मेसोपोटामिया में हड़प्पाकालीन तौल (बाट) भी पाए गए हैं।

हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों में मेसोपोटामिया की बहुत ही कम वस्तुएँ पाई गई हैं। मोहनजोदड़ो में मेसोपोटामिया की सभ्यता के बेलनाकार मुहरों के नमूने पाए गए हैं। कुछ धातु की वस्तुएँ शायद मेसोपोटामिया से लाई गई थीं। लोथल में एक बेलनाकार छोटी मुहर पाई गई है। बेहरैन (Behrain) के बंदरगाह की खुदाई द्वारा इस प्रकार की अनेक मुहरें पाई गई हैं। लगता है कि ये मुहरें फारस की खाड़ी के बंदरगाहों से लाई गई थीं। लोथल में बन (bun) के आकार के तांबे के ढले हुए धातु पिंड भी पाए गए हैं। ये फारस

चित्र-12 फारस की खाड़ी में पाई गई मोहर से मिलती-जुलती लोथल में पाई गई मोहर

की खाड़ी के द्वीपों और सूसा (Susa) में पाई गई मुहरों से मिलते-जुलते हैं। जिन वस्तुओं को हड़प्पा-सभ्यता और मेसोपोटामिया में पाया जाना हड़प्पा और मेसोपोटामिया वासियों के बीच प्रत्यक्ष व्यापार-विनिमय की ओर संकेत करता है, इनके कम मात्रा में पाए जाने के कारण विद्वानों को इन दो सभ्यताओं के बीच प्रत्यक्ष व्यापार की धारणा पर संदेह है। यह माना जाता है कि हड़प्पा-सभ्यता के लोग अपने माल को व्यापार के लिए फारस की खाड़ी की बस्तियों में ले जाते होंगे। कुछ सामान बेहरैन जैसे फ़ारस की खाड़ी के बंदरगाहों के व्यापारियों द्वारा मेसोपोटामिया के नगरों में भेजा जाता होगा।

7.6.2 विनिमय के लिखित प्रमाण

मेसोपोटामिया में कुछ प्राचीन लेख पाए गए हैं जिनसे उसके हड़प्पाकालीन सभ्यता के साथ व्यापार सम्बन्धों का पता चलता है। मेसोपोटामिया में स्थित अक्काड़ (Akkad) के प्रसिद्ध सम्राट सारगॉन (Sargon) (2350 ई. पू.) का यह दावा था कि दिलमुन, मगान (Dilmun, Magan और मेलुहा Meluha) के जहाज़ उसकी राजधानी में लंगर डालते थे। विद्वान साधारणतया मेलुहा तथा हड़प्पा-सभ्यता के समुद्रतटीय नगरों या सिंधु नदी के क्षेत्र को एक ही मानते हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि मगान (Magan) तथा मकरान समुद्रतट एक ही हैं। उर (Ur) शहर के व्यापारियों द्वारा प्रयोग में लाए जाने वाले कुछ अन्य दस्तावेज भी पाए गए हैं। ये इस बात की ओर संकेत करते हैं कि उर (Ur) के व्यापारी मेलुहा से तांबा, गोमेद, हाथी दांत, सीपी, वैदूर्यमणि, मोती और आबनूस आयात करते थे। ऐसा लगता है कि ये वस्तुएं हड़प्पाकालीन बस्तियों में काफी मात्रा में उपलब्ध थीं। हड़प्पा-सभ्यता के लोगों द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली कुछ वस्तुओं जैसे तांबे के विषय में हमें कोई जानकारी नहीं है। फिर भी हमें यह याद रखना चाहिए कि हड़प्पा-सभ्यता के लोग मध्य एशिया तक के एक बहुत बड़े भौगोलिक क्षेत्र के संसाधनों का उपयोग कर रहे थे। शायद उन्होंने आरम्भिक हड़प्पा काल में मध्य एशिया और अफ़गानिस्तान के व्यापार तंत्र पर अधिकार कर लिया था। मेसोपोटामिया के आरम्भिक साहित्य में मेलुहा के व्यापार समुदाय का जिक्र है जो मेसोपोटामिया में रहता था। मेसोपोटामिया के एक अन्य लिखित दस्तावेज में मेलुहा की भाषा के सरकारी दुभाषिए (Interpreter) का जिक्र है। इन सब उदाहरणों से संकेत मिलता है कि हड़प्पा-सभ्यता के लोगों और मेसोपोटामिया के लोगों के बीच सम्बन्ध अप्रत्यक्ष नहीं थे। इन समाजों के बीच भौगोलिक दूरी को देखते हुए इनके बीच नियमित आदान-प्रदान की आशा नहीं की जा सकती। फिर भी इन दोनों सभ्यताओं के बीच बहुत नजदीकी संबंध थे। इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है कि मेसोपोटामिया का राजा यह दावा करता था कि मेलुहा के जहाज उसके बंदरगाहों में लंगर डालते हैं।

हड़प्पा में मेसोपोटामिया की वस्तुओं का न पाया जाना इस तथ्य से स्पष्ट किया जा सकता है कि परम्परागत रूप से मेसोपोटामिया के लोग कपड़े, ऊन, खुशबूदार तेल और चमड़े के उत्पाद बाहर भेजते थे। ये सभी वस्तुएं जल्दी नष्ट हो जाती हैं इस कारण इनके अवशेष नहीं मिले हैं। शायद चांदी भी निर्यात किया जाता था। हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों म चांदी के स्रोत नहीं थे। लेकिन वहाँ के लोग इसका काफी मात्रा में प्रयोग करते थे। सम्भवतया यह मेसोपोटामिया से आयात किया जाता होगा।

7.7 परिवहन के साधन

सम्पर्क और विनिमय के स्वरूप की चर्चा के अंतर्गत परिवहन के साधनों का प्रश्न भी सामने आता है। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में पाई गई मुहरों में जहाज़ों और नावों को चित्रित किया गया है। लोथल में पक्की मिट्टी से बने जहाज का एक नमूना पाया गया है जिसमें मस्तूल के लिए एक लकड़ी चिन्हित खोल तथा मस्तूल लगाने के लिए छेद हैं। लोथल में ही 219 × 37 मीटर लम्बाई का एक हौज मिला है जिसकी 4.5 मीटर ऊंची ईंटों की दीवारें हैं। इसके उत्खनक ने इसको एक जहाजी मालघाट के रूप में पहचाना है। इस स्थान के अलावा अरब सागर के समुद्रतट पर भी अनेक बंदरगाह थे। रंगपुर, सोमनाथ,

बालाकोट जैसे स्थान हड़प्पा-सभ्यता के लोगों द्वारा बाहर जाने के रास्ते के रूप में प्रयोग में लाए जाते थे। मकरान समुद्रतट जैसे अनुपयोगी क्षेत्रों में भी सुत्काजिन-दोर और सुत्काकोह जैसी हड़प्पाकालीन बस्तियां पाई गई हैं। ऐसे अनुपयोगी क्षेत्रों में उनके स्थित होने का मुख्य कारण था कि वे पश्चिमी भारत और सिंधु के समुद्रतट पर टकराने वाली लहरों तथा तूफानी हवाओं से सुरक्षित थीं। बारिश के महीनों में वे हड़प्पा-सभ्यता के लोगों द्वारा बाहर जाने के रास्ते के रूप में उपयोग में लाए जाते थे। सुत्काजिन-दोर (Sutkagendor) आधुनिक पाकिस्तान और ईरान की सीमा पर स्थित है। यह सम्भव है कि ईरान की तरफ भी कुछ हड़प्पाकालीन बस्तियाँ थीं। उनका अभी तक पता नहीं लगा है। इस प्रकार हड़प्पा-सभ्यता के लोगों द्वारा समुद्रतट के पास बस्तियां बसाए जाने के कारण फारस की खाड़ी तक उनके जहाजों को लंगर डालने के स्थान उपलब्ध हो सके।

बैलगाड़ी अंतर्देशीय परिवहन का साधन थी। हड़प्पाकालीन बस्तियों से मिट्टी के बने बैलगाड़ी के अनेक नमूने पाए गए हैं। हड़प्पा में एक कांसे की गाड़ी का नमूना पाया गया है जिसमें एक चालक बैठा है तथा छोटी गाड़ियों के नमूने भी पाए गए हैं जो बहुत कुछ पंजाब के आधुनिक इक्कों से मिलते-जुलते हैं। जंगलों वाले क्षेत्र में लम्बे सफर के लिए भारवाही बैलों के काफिले परिवहन का मुख्य साधन रहे होंगे। ऐतिहासिक काल में खानाबदोश चरवाहे सामान को एक स्थान से दूसरे स्थान भेजते थे। सम्भवतया हड़प्पा-सभ्यता के लोग भी ऐसा ही करते होंगे। उस समय नौ परिवहन अधिक प्रचलित सुलभ तथा सस्ता था।

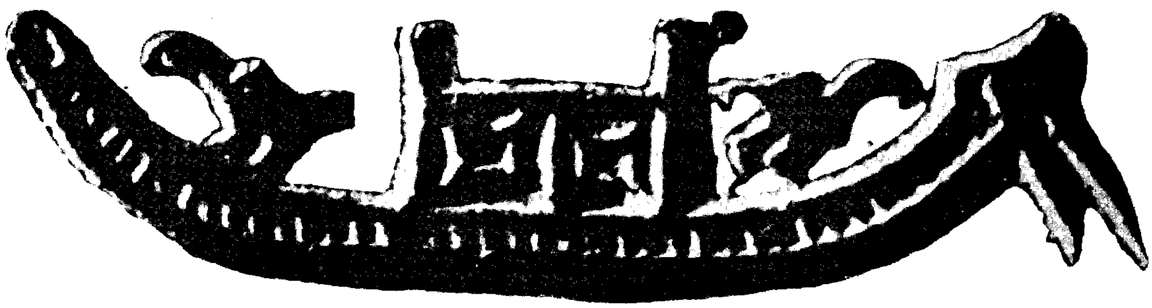

चित्र – 13 पक्की मिट्टी पर जहाज़ की आकृति

बोध प्रश्न 2

1 निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) या गलत (×) का निशान लगाएँ :

i) क) मेसोपोटामिया के लिखित स्रोतों में इस बात का जिक्र नहीं है कि समकालीन हड़प्पा-सभ्यता से उसका कोई सम्पर्क था। ( )

ख) मेसोपोटामिया के शहरों में हड़प्पा-सभ्यता की मुहरों की खोज से सिद्ध होता है कि हड़प्पा और मेसोपोटामिया सभ्यताओं के बीच सम्पर्क था। ( )

ग) लोथल में जहाज़ी मालघाट की खोज से हड़प्पा-सभ्यता के समुद्रवर्ती व्यापार के बारे में पता चलता है। ( )

घ) हड़प्पा-सभ्यता में परिवहन के रूप में बैलगाड़ी प्रचलित नहीं थी। ( )

ii) सही उत्तर पर (✓) का निशान लगाएं।
हड़प्पाकालीन शहरों से मेसोपोटामिया को क्या निर्यात किया जाता था?
क) कपड़े, खुशबूदार तेल, चमड़े का सामान।
ख) चांदी, सोना, कांसा।
ग) तांबा, हाथी दांत, वैदूर्यमणि।

iii) हड़प्पा काल के कुछ प्रमुख बंदरगाह थे–
क) दिलमुन, मगान, मेलुहा।
ख) कालीबंगन, बनवाली, लोथल।
ग) उर (Ur), निप्पुर (Nippur), चहुंदड़ो।

2) हड़प्पाकालीन परिवहन के विषय में पांच वाक्यों में लिखें।

....

....

....

....

....

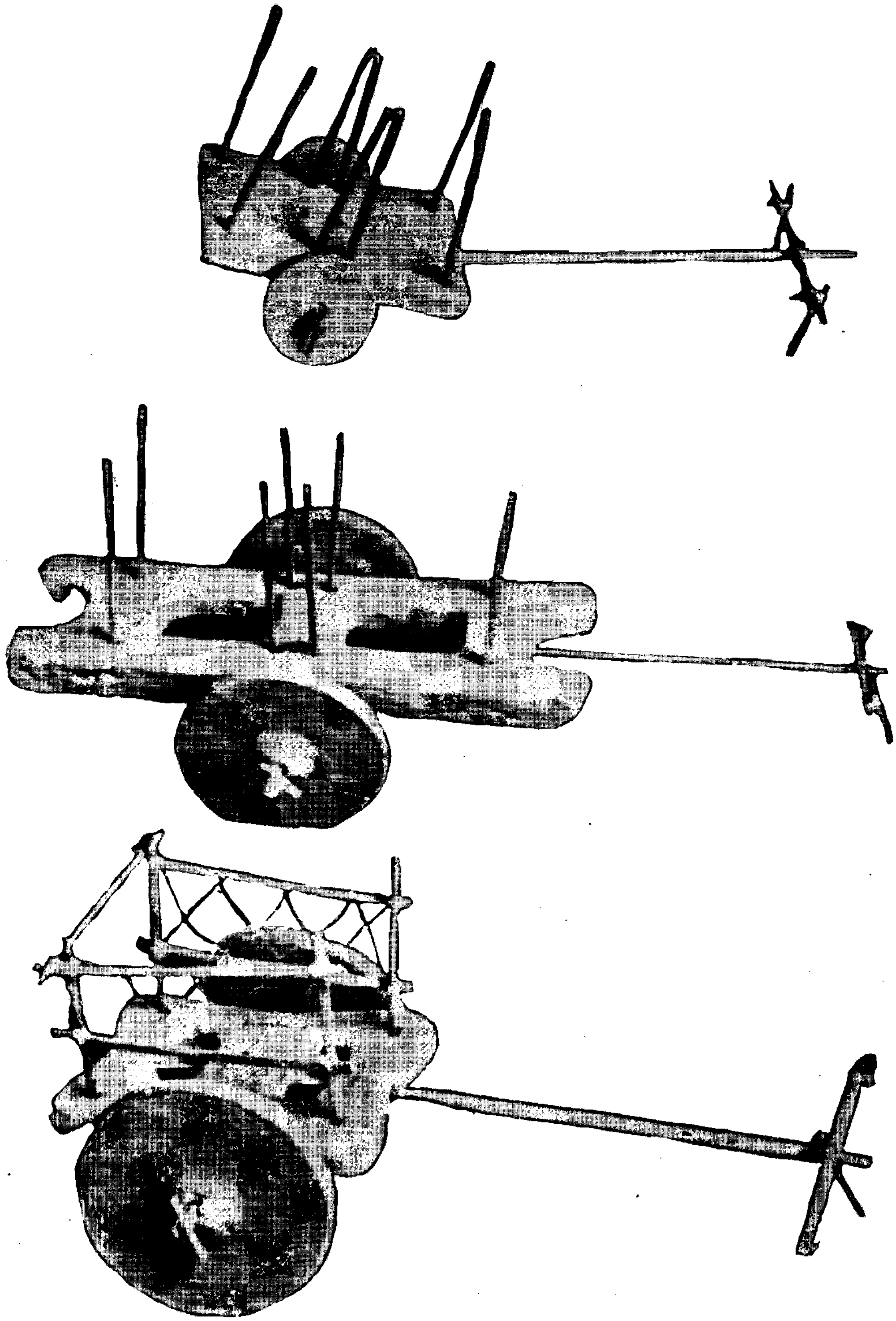

चित्र- 14 खिलौना-गाड़ी

7.8 सारांश

उपर्युक्त बातों से हमें पता चलता है कि हड़प्पाकालीन सभ्यता में आंतरिक व्यापार काफी तेजी में था। आंतरिक व्यापार का अर्थ है कि विनिमय कार्यकलाप 10 लाख 30 हजार वर्ग किलो मीटर तक के क्षेत्र में होते थे। यह विनिमय कार्यकलाप इस तथ्य से भी स्पष्ट हो जाते हैं कि हड़प्पा-सभ्यता कि छोटी सी बस्ती अल्लादीनों में भी मुहरें, मुद्रांकण, अर्द्धकीमती पत्थरों के मनके और धातु के बर्तन पाए गए हैं। इनमें से अधिक वस्तुएं आयात की जाती थीं। नौगम्य जल-मार्गों तथा परम्परागत भू-भागों पर हड़प्पाकालीन बस्तियों का स्थित होना उस बात की ओर संकेत करता है कि हड़प्पा-सभ्यता के लोग व्यापार विनिमय गतिविधियों में संलग्न थे। समकालीन पश्चिमी एशियाई संस्कृतियों के साथ उनके संबन्धों की पुष्टि की जा चुकी है। इसीलिए हम उन्हें नगर केन्द्रित समुदाय कहते हैं।

7.9 शब्दावली

मनका : पत्थर का छोटा टुकड़ा जिसके बीच में तागा पिरोने के लिए छेद होता है।
मेसोपोटामिया : ईराक का प्राचीन नाम।
प्रदेश (Region) : वह क्षेत्र जिसमें विशिष्ट भूदृश्य हो जो उसे अन्य क्षेत्रों से अलग करे।
भीतरी प्रदेश (Hinterland) : बंदरगाह या किसी प्रमुख क्षेत्र से दूर स्थित भीतरी क्षेत्र।

7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 क) (×) ख) (✓) ग) (×) घ) (✓) ङ) (×) च) (✓)

2 क) कश्मीर, ख) ईरान, ग) शोर्तुघई, घ) राजस्थान, ङ) सुत्काजिन-दोर।

3 आपके उत्तर में ये बातें शामिल होनी चाहिए : नापतौल की समरूप व्यवस्थाएँ, तौल की दोहरी व्यवस्था, स्वामित्व और गुण का निश्चय करने के लिए उत्पादों पर मुहरें और मुद्रांकण आदि। देखें भाग 7.5

बोध प्रश्न 2

1 i) क) (×), ख) (✓), ग) (✓), घ) (×)
ii) ग,
iii) क

2 आपके उत्तर में ये बातें शामिल होनी चाहिएं : परिवहन प्रणाली, नदी परिवहन, अंतर्देशीय परिवहन के समर्थन में पुरातात्विक प्रमाण, आदि। देखें भाग 7.7।

इकाई 8 समाज एवं धर्म

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 समाज
  8.2.1 वेश-भूषा
  8.2.2 खान-पान
  8.2.3 भाषा एवं लिपि
  8.2.4 युद्ध
  8.2.5 मुख्य शिल्प व्यवसाय
8.3 हड़प्पा के शासक
8.4 धर्म एवं धार्मिक रीतियां
  8.4.1 पूजा-स्थल
  8.4.2 आराध्य
  8.4.3 मृतकों का अंतिम संस्कार
8.5 सारांश
8.6 शब्दावली
8.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप हड़प्पा वासियों के समाज तथा उनकी विभिन्न धार्मिक रीतियों से अवगत हो सकेंगे, विशेषकर आप :

- उनकी वेश-भूषा एवं खान-पान के प्रति जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- उनकी भाषा एवं लिपि से संबंधित मतभेद पर चर्चा कर सकेंगे,
- उनके मुख्य व्यवसायों के प्रति अवगत हो सकेंगे,
- शासक वर्गों के स्वरूप को समझ सकेंगे,
- उनकी धार्मिक रीतियों एवं मुख्य देवी देवताओं के प्रति जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- उनके अंतिम संस्कारों के प्रति जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

इस खंड की पूर्व इकाइयों में आप हड़प्पा-सभ्यता के महत्वपूर्ण पक्षों का अध्ययन कर चुके हैं। इस इकाई में हम हड़प्पा समाज एवं धर्म पर चर्चा करेंगे।

हमारी यह जानने की जिज्ञासा हो सकती है कि हड़प्पा वासी देखने में कैसे लगते थे? क्या वे वैसे ही वस्त्र पहनते थे जैसे कि हम पहनते हैं। वे क्या पढ़ते-लिखते थे? नगरवासी किस प्रकार के व्यवसाय अपनाते थे? वे कौन सी भाषा बोलते थे? क्या खाते थे? क्या वे चाय के साथ आलू चिप्स खाते थे? क्या वे खेलना पसंद करते थे और युद्ध करते थे? उनके शासक कौन होते थे? उनके मंदिर एवं देवी देवता कैसे होते थे? क्या वे हम जैसे थे? यह सारे प्रश्न वस्तुतः काफी सरल प्रतीत होते हैं लेकिन विद्वानों के लिए इनके उत्तर देना अत्यंत कठिन होता है। इसका कारण उस युग की जानकारी प्राप्त के लिए उपलब्ध स्रोतों का स्वरूप है। इसका मुख्य स्रोत विभिन्न स्थानों पर हुई खुदाई से प्राप्त केवल पुरातात्विक जानकारी है।

इस सभ्यता के संदर्भ में हमारे वर्तमान ज्ञान को देखते हुए विचारों और भावनाओं से जुड़े विभिन्न प्रश्नों का उत्तर कठिनाईयां खड़ी करता है। कभी-कभी ऐसे प्रश्न जो प्रत्यक्षतः अत्यंत सरल नजर आते हैं उत्तर देते समय अत्यंत कठिन प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिए ऐसे प्रश्न का उत्तर कि क्या हड़प्पा के लोग अकीक पत्थर की मालायें बनाने में सुख का अनुभव करते थे, काफी मुश्किल हो सकता है। हम केवल हजारों वर्षों से पड़ी मूक, बेजान वस्तुओं के आधार पर विचारों से संबंधित कुछ प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं जिसका प्रयास इस इकाई में किया जायेगा।

8.2 समाज

हड़प्पा से प्राप्त पुरातात्विक उपलब्धियों के आधार पर इस काल के समाज की कल्पना की जा सकती है। हम इस समाज के लोगों की वेश-भूषा और खान-पान, व्यापार, शिल्प कलायें तथा विभिन्न सामाजिक समूहों के प्रति जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। आइए सबसे पहले हम हड़प्पा के लोगों की प्रकट आकृतियों एवं वेश-भूषा के संबंध में चर्चा करें।

8.2.1 वेश-भूषा

हड़प्पावासी देखने में कैसे लगते थे? इस प्रश्न का उत्तर इस काल की पकी हुई मिट्टी से बनी मूर्तियों तथा पाषाण शिल्प का अध्ययन से मिल सकता है। जानकारी प्राप्त करने का एक अन्य तरीका हड़प्पा बस्तियां की खुदाई में प्राप्त कंकालों का अध्ययन हो सकता है।

कंकालों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि हड़प्पा के लोग वर्तमान उत्तर भारत के निवासियों जैसे दिखते थे। उनके चेहरे, रंग रूप एवं लम्बाई में इन क्षेत्रों के वर्तमान निवासियों से काफी कुछ समानता दिखती है। आधुनिक नर-नारियों की भांति वे पैन्ट-शर्ट अथवा सलवार-कमीज नहीं पहनते थे। हम उनके पहनावे एवं फैशनों का अनुमान उस काल की शिल्प कला तथा पक्की मिट्टी की बनी मूर्तियों के अध्ययन से लगा सकते हैं। पुरुषों को बहुधा एक ऐसे पहनावे में दिखाया गया है जिससे उनके शरीर का निचला भाग लपेटा रहता था तथा वस्त्र का एक सिरा बायें कन्धे से लेकर दायें बाजू के नीचे पहुंच जाता था, जिस प्रकार आधुनिक साड़ी पहनी जाती है। पुरुष अपने बाल विभिन्न तरीकों से बनाते थे, कभी-कभी जूड़ा बनाकर माथे पर पट्टी बांधते थे। आधुनिक भारतीयों की अपेक्षा वे कहीं अधिक गहनों का प्रयोग करते थे। वे अंगूठियां पहनते थे, कंगन पहनते थे तथा गले और हाथों में काफी गहने पहनते थे। महिलायें कमर में गहने पहनती थीं। गले में वे कई प्रकार के हार पहनती थी, चूड़ियों का भी प्रयोग होता था तथा बाल काढ़ने के असंख्य तरीके थे। पुरुष और महिलायें दोनों ही लंबें बाल रखते थे वे सूती कपड़े पहनते थे तथा एक मूर्ति में वस्त्र लाल रंगों में त्रिदल पद्धति में दिखाया गया है। इन तमाम फैशनों के बावजूद यदि हड़प्पा-सभ्यता का कोई पुरुष हमें आज सड़क पर टहलता हुआ दिख जाय तो वह हमें किसी भिक्षु के स्वरूप ही दिखाई देगा।

चित्र-15 सोने और अर्ध-कीमती पत्थर के जेवर

8.2.2 खान-पान

वे क्या खाते थे? इस संदर्भ में भी हमें बहुत कम जानकारी है। सिन्ध और पंजाब में हड़प्पा निवासी गेहूँ और जौ खाते थे। राजस्थान में रहने वाले लोगों को केवल जौ से ही संतुष्ट होना पड़ता था। गुजरात के रंगपुर, सुरकोटला आदि स्थानों के हड़प्पा निवासी चावल और बाजरा खाना पसन्द करते थे। आइए ये देखने का प्रयास किया जाय कि वे प्रोटीन और चर्बी युक्त भोजन कहां से प्राप्त करते थे?

वे तेल और चर्बी तिल, सरसों तथा संभवतः घी से प्राप्त करते थे। हमें इस बात की जानकारी नहीं है कि वे गन्ने की खेती करते थे या नहीं अतः चीनी के विषय में हमारे पास जानकारी नहीं है। सम्भव है कि वे अपने खाने को मीठा बनाने के लिए शहद का उपयोग करते हों। हड़प्पा स्थलों से मिलने वाले उन्नाव और खजूर के बीजों से यहां के लोगों की फल के प्रति प्राथमिकता का पता चलता है। संभवतः वे केले, अनार, खरबूजा, नीबू, अंजीर तथा आम भी खाते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि वे विभिन्न प्रकार के जंगली फलों का भी सेवन करते थे लेकिन उन फलों की पहचान करना अत्यंत कठिन है। वे मटर भी खाते थे। इसके अतिरिक्त हड़प्पा निवासी मांसाहारी भोजन भी शौक से खाते थे। हड़प्पा बस्तियों के अवशेषों में हिरन, भालू, भेड़ तथा बकरियों की हड्डियां मिलती रही हैं। वे मछली, दूध तथा दही का भी सेवन करते रहे होंगे। लेकिन न तो उन्हें चाय का ज्ञान था न ही आलू के चिप्स का। क्या आप स्वयं इसका कारण ढूंढ सकते हो?

8.2.3 भाषा एवं लिपि

वे कौन सी भाषा बोलते थे और क्या लिखते पढ़ते थे। इसकी भी हमें स्पष्ट जानकारी नहीं है। हम केवल हड़प्पा निवासियों की लिपि को खोज सके हैं जैसा कि पहले कहा जा चुका है हम अभी तक इस लिपि को पढ़ने में असमर्थ रहे हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि वहां लिखी जाने वाली भाषा द्रविड़ भाषा समूहों (जैसे तमिल) की जननी थी। अन्य विद्वान इसे किसी आर्य भाषा (जैसे संस्कृत) की जननी मानते हैं।

अभी तक किसी भी विद्वान ने सर्वमान्य तर्क प्रस्तुत नहीं किया है। हड़प्पा की लिपि के संदर्भ में एक बात स्पष्ट नजर आती है कि पूरी हड़प्पा-सभ्यता के काल में इस लिपि में कोई परिवर्तन हुआ ही नहीं जबकि अन्य सभी प्राचीन लिपियों में समय के साथ-साथ परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। इससे ये सिद्ध होता है कि हड़प्पा की लिपि का उपयोग विस्तृत नहीं था। संभवतः एक वर्ग विशेष लिखित शब्दों पर आधिपत्य जमाये बैठा था। वे क्या सीखते थे और कैसे सीखते थे इसका हमारे पास उत्तर नहीं है। समकालीन मेसोपोटामिया की भांति हड़प्पा में भी स्कूल थे अथवा नहीं इसकी भी जानकारी हमारे पास नहीं है।

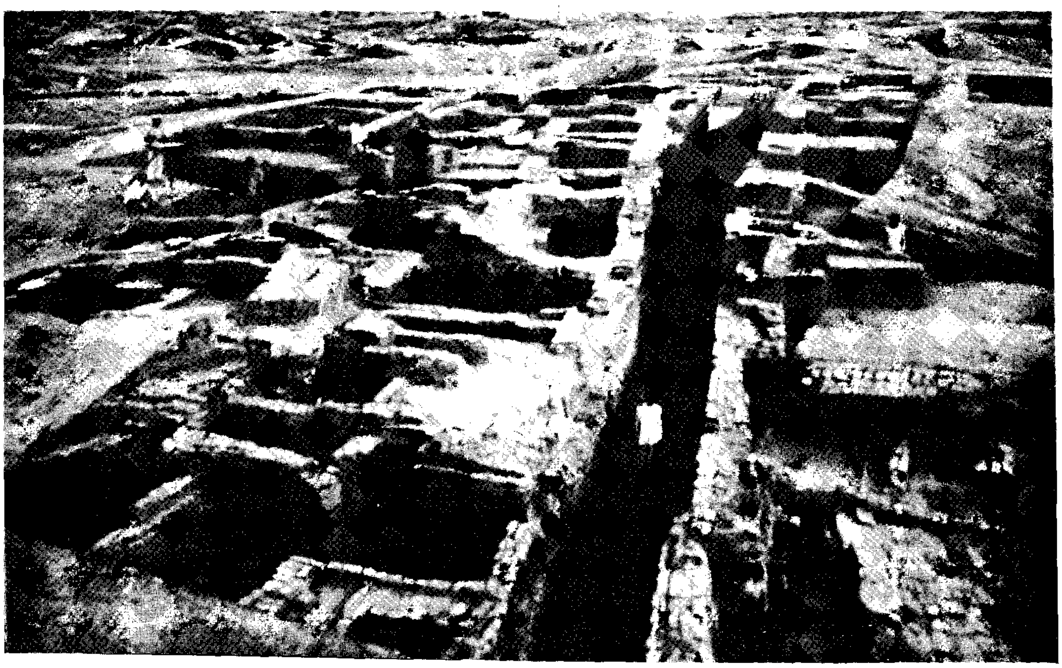

चित्र-16 कालीबंगन किले का उत्तरी भाग

8.2.4 युद्ध

क्या वे खेल खेलते थे और युद्ध करते थे? हम जानते हैं कि वे चौसर खेलते थे लेकिन इसके आगे हमें जानकारी नहीं है। उनके युद्ध करने के काफी प्रमाण हमारे समक्ष हैं। संभवतः ऐसा इसलिए है कि विभिन्न हड़प्पा स्थलों की खुदाई में लगे पुरातत्व शास्त्री युद्ध के प्रमाण ढूंढ रहे थे न कि खेल कूद के। इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण प्रमाण यह भी मिलता है कि हड़प्पा-सभ्यता के उद्‌भव के समय कई "आरंभिक हड़प्पा" स्थल (जैसे कोट दीजी तथा कालीबंगन) जला दिये गये थे। दुर्घटनापूर्ण अग्नि से बड़े नगरों का ध्वस्त हो जाना असंभव तो नहीं है। लेकिन इस बात की प्रबल संभावना है कि ये बस्तियां विजयी मानवीय समूहों द्वारा जलायी गयी होगी। इसके अतिरिक्त मोहनजोदड़ो की गलियों में कंकालों के बिखरे पाये जाने के भी प्रमाण मिलते हैं। प्राचीनतम काल से लेकर अब तक के समाजों में नियमित रूप से अपने मृतकों का अंतिम संस्कार परम्परागत रूप से किया जाता रहा है। यह स्वाभाविक ही है कि हड़प्पा के लोग अपने मृतकों को सड़कों पर सड़ने के लिए नहीं छोड़ देते थे। अतः स्पष्ट है कि किसी असाधारण टकराव के कारण ही हड़प्पा के लोग अपने मृतकों का अंतिम संस्कार नहीं कर पाए। हड़प्पा के कई नगरों के चारों ओर किलेबंदी और दुर्ग बने होने से इस तथ्य की ओर संकेत मिलता है कि इन लोगों को बाहरी तत्वों से सुरक्षा की आवश्यकता प्रतीत होती थी। कुछ सुरक्षा दीवारों का उपयोग बाढ़ से बचने के लिए बांध के रूप में भी हुआ होगा। हड़प्पा नगरों के आस-पास की ग्रामीण जनता की तुलना में नगरवासियों की संपन्नता को देखते हुए इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि अपनी बस्तियों की किलेबंदी करके अपने जान माल की सुरक्षा करना चाहते थे। यहां से तांबे एवं कांसे के काफी हथियार भी प्राप्त हुए हैं।

8.2.5 मुख्य शिल्प व्यवसाय

हड़प्पा निवासी अपने जीवन यापन के लिए क्या करते थे? इस प्रश्न का उत्तर अपेक्षाकृत आसान है। इसका कारण यह है कि पूर्व आधुनिक समाजों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उन समाजों के अधिकतर लोग कृषि से जुड़े हुए थे लेकिन हड़प्पा के काफी सारे लोग विभिन्न प्रकार की अन्य गतिविधियों में भी लगे हुए थे।' मालाएं बनाना हड़प्पा के निवासियों का मन पसंद व्यवसाय था। मोहनजोदड़ो चानहुदाड़ो तथा लोथल बस्तियों में काफी बड़ी संख्या में हड़प्पावासी इस कार्य से जुड़े हुए थे। चूंकि मालाएं बनाने में अकीक, (Carnllion), सूर्यकांत (Lapistazuli), सुलेमानी पत्थर (Agate) तथा नीलम (Jasper) जैसे बहुमूल्य रत्नों का प्रयोग होता था अतः संभव है प्रत्येक रत्न की मालाएं बनाने के लिए भिन्न दक्ष कारीगर होते हों। कुछ अन्य हड़प्पावासी पत्थर के औजार बनाने में दक्ष थे। इनके अतिरिक्त हड़प्पा नगरों में कुम्हारों, कांसे एवं तांबे के कार्य करने वालों, पत्थर के काम करने वालों, घर बनाने वालों, ईंट बनाने वालों तथा मुहरें काटने वालों के होने की पूरी संभावना है। जब हम हड़प्पा-सभ्यता की चर्चा करते हैं तो हम बुनियादी तौर पर इस युग की मुहरों, ईंटों, बर्तनों तथा इसी प्रकार की अन्य वस्तुओं का सहारा लेते हैं इन वस्तुओं के पाए जाने का अर्थ है कि इनके बनाने वाले इस युग में मौजूद थे।

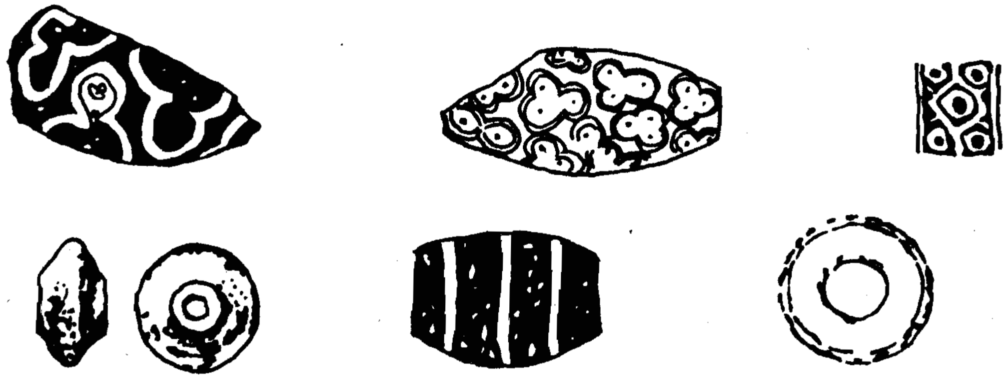

चित्र-17 हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों में पाए गए अर्ध कीमती पत्थर के मनके

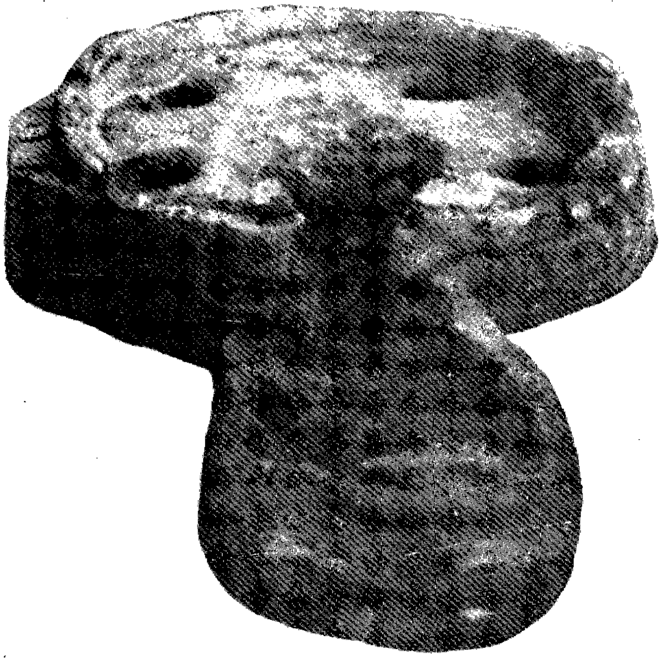

चित्र-18 मनके बनाने के लिए भट्टी

बोध प्रश्न 1

1 निम्नलिखित में से कौन से वाक्य सही (✓) हैं और कौन गलत (×) हैं?

   i) हड़प्पा सभ्यता के पूरे युग में इस क्षेत्र की लिपि में काफी परिवर्तन आए। (   )
   ii) हड़प्पावासी शुद्ध शाकाहारी थे। (   )
   iii) साधारणतया हड़प्पा के नगर किले बंद होते थे। (   )
   iv) हड़प्पावासी पुरुष गहने पहनने के शौकीन थे। (   )

2 निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।

   i) हमें हड़प्पा के लोगों की वेश-भूषा तथा फैशनों की जानकारी.....................से प्राप्त होती है।
   ii) हड़प्पा के लोग धातु औजार बनाने में...................धातु का प्रयोग करते थे।
   iii) राजस्थान में.................पंजाब और सिंध में.................और गुजरात में हड़प्पावासियों का नियमित भोजन................था।
   iv) हड़प्पा बस्तियों में भारी मात्रा में पायी जाने वाली मालाएं....................की बनी हुई हैं।

3 हड़प्पा लिपि के विषय में पांच पंक्तियां लिखें।

....

....

....

....

....

8.3 हड़प्पा के शासक

हड़प्पा समाज के शीर्ष पर तीन प्रकार के लोगों की अदृश्य श्रेणियां थी—शासक, व्यापारी तथा पुरोहित। सामाजिक संगठन की समस्याओं की समझ के आधार पर इन श्रेणियों की कल्पना की जा सकती है। सभ्यता के उदय का संबंध सीधे-सीधे केन्द्रीकृत निर्णय प्रणाली के अभ्युदय से है, जिसे राज्य कहा जाता है। हड़प्पा-सभ्यता के अन्तर्गत स्थानीय शासन

चलाने के लिए निर्णय लेने के अधिकार रखने वालों के अस्तित्व की प्रबल संभावना है। इसके कई कारण हैं।

1) व्यापक स्तर पर नीतियों की व्यवस्था तथा सड़कें बनाने एवं व्यवस्थित रखने के लिए शहरों में स्थानीय प्रशासन की आवश्यकता रही होगी।

2) अनाज गोदामों के होने से भी इस तथ्य की ओर संकेत मिलता है। आस-पास से अनाज इकट्ठा करके नागरिकों के बीच बांटने के लिए प्रशासन अवश्य रहा होगा।

3) जैसा कि पहले कहा जा चुका है, हथियारों, औजारों और ईंटों की बनावट में असाधारण समरूपता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ हथियार तथा औजार किसी एक स्थान पर बड़े पैमाने पर बनाए जाते और विभिन्न नगरों एवं बस्तियों में वितरित किए जाते थे। हजारों मील के क्षेत्र में इन वस्तुओं के उत्पादन एवं विक्रेता के प्रबंध से वह वर्ग असाधारण रूप से शक्तिशाली बन गया होगा जो कि निर्णय लेता होगा कि कितना उत्पादन हो और कहां उसका वितरण हो। यदि यह लोग किसी नगर को वस्तुएं देना बंद कर दें तो वहां औजारों और हथियारों का अकाल ही पड़ जाय।

4) बड़े नगरों के निवासियों द्वारा उत्पादनों के प्रकार एवं मात्रा के उपभोग की दर से संकेत मिलता है कि वहां कोई शासक वर्ग रहता होगा। काफी वस्तुएं सुदूर प्रदेशों से लाई गयी दुर्लभ वस्तुएं होती थी बहुमूल्य पत्थरों एवं धातुओं से संपन्न होने से न केवल उनके मालिकों को बल्कि शेष जनता की भी प्रतिष्ठा बढ़ जाती थी।

5) इसी प्रकार नगरों के वृहत होने से केवल इस ओर ही संकेत नहीं मिलता कि वहां काफी बड़ी जनसंख्या रहती थी बल्कि इस तथ्य का भी पता चलता है कि वहां मन्दिरों तथा महलों जैसे भवन भी मौजूद थे। इन भवनों में रहने वाले लोग राजनैतिक, आर्थिक अथवा धार्मिक क्षेत्र में अधिकार सम्पन्न रहे होंगे। यही कारण है कि वे मोहरें जिन पर व्यापारियों, पुरोहितों अथवा प्रशासकों के अधिकार चिन्ह अंकित हैं, सबसे अधिक संख्या में मोहनजोदड़ो से मिलते हैं। जहां कि सबसे अधिक संख्या में मन्दिरों और महलों के रूप में अवशेष पाये गये हैं।

हमारे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि मोहनजोदड़ो हड़प्पा-सभ्यता की राजधानी थी। यह भी संभव है कि हड़प्पा-सभ्यता में दो अथवा पांच स्वतंत्र राजनैतिक इकाईयाँ रही हों। हमारे कहने का तात्पर्य केवल यह है कि मोहनजोदड़ो नगर राजनैतिक आर्थिक शक्ति का केन्द्र बन गया था। हमें यह ज्ञात नहीं है कि हड़प्पा के शासक कौन थे, संभव है वे राजा रहे हों अथवा पुरोहित अथवा व्यापारी। हम जानते हैं, कि पूर्व आधुनिक समाजों में आर्थिक, धार्मिक एवं प्रशासनिक इकाईयों में स्पष्ट रूप से भेद नहीं किया जाता था जिसका अर्थ यह है कि एक ही व्यक्ति प्रधान पुरोहित भी हो सकता था, राजा भी हो सकता था और धनी व्यापारी भी, लेकिन उपलब्ध प्रमाणों से संकेत मिलता है कि यहां शासक वर्ग अवश्य मौजूद था तथापि इस शासक वर्ग के स्पष्ट रूप से हम अवगत नहीं हैं।

बोध प्रश्न 2

1) हम किस आधार पर कह सकते हैं कि हड़प्पा-सभ्यता एक शहरी सभ्यता थी?

....

....

....

....

....

2) हड़प्पा की खुदायी में काफी तथ्य ऐसे मिले हैं जिनसे संकेत मिलता है कि वहां पर नागरिक तथा राजनैतिक प्रशासन विद्यमान था, वे तथ्य कौन से हैं?

....

....

....

....

....

8.4 धर्म एवं धार्मिक रीतियाँ

हड़प्पा के लोग किसकी पूजा करते थे? यह प्रश्न विद्वानों के बीच काफी चर्चा का विषय रहा है। हड़प्पा के अतीत के अवशेष इस संदर्भ में कोई सूत्र नहीं देते हैं। अतः उनकी धार्मिक मान्यताओं को समझने के लिए हमें केवल अपनी बुद्धि और तर्क पर निर्भर होना पड़ेगा। मुख्य समस्या यह है कि लिखित स्रोतों के अभाव में उनकी लौकिक और अलौकिक गतिविधियों के बीच अन्तर करना कठिन है, इसलिए हड़प्पा से प्राप्त होने वाली प्रत्येक जानकारी पर अलौकिक गतिविधि होने का शक पैदा होता है। इस पृष्ठभूमि में उचित होगा कि हड़प्पा के लोगों की धार्मिक मान्यताओं को आधुनिक मान्यताओं के परिपेक्ष में रखकर उन्हें समझा जाय।

8.4.1 पूजा-स्थल

मोहनजोदड़ो के किले बंद नगर तथा निचले नगर की कई बड़ी इमारतें मन्दिरों के रूप में देखी गयी हैं। इस दृष्टिकोण से इस तथ्य को और भी बल मिलता है कि अधिकतर पत्थर की मूर्तियां इन्हीं इमारतों में मिली हैं।

मोहनजोदड़ो के निचले नगर में एक वृहत इमारत मिली है। इस इमारत में **संस्मारकीय द्वार** तथा एक मंच की ओर ले जाने वाली दोहरी सीढ़ियों का रास्ता है। इस मंच पर 16-½ इंच ऊँची एक पाषाण शिल्प कृति प्राप्त हुई है। इस कृति में अपने घुटनों पर हाथ रखे हुए एक पुरुष बैठा है। पुरुष के चेहरे पर दाढ़ी है तथा माथे पर पट्टी बंधी हुई है जिसके दोनों सिरे पीठ की ओर लटके हुए हैं। इसी इमारत में एक और पत्थर की मूर्ति प्राप्त हुई है यही कारण है कि विद्वानों ने इस इमारत को मन्दिर माना है।

मोहनजोदड़ो में किले के खंडहरों पर कई ऐसी इमारतों के अवशेष प्राप्त हुये हैं जिन्हें देखकर प्रतीत होता है कि वे हड़प्पा के पवित्र स्थल रहे होंगे, इनमें विशाल स्नानगृह सबसे अधिक प्रसिद्ध है। भारत के बाद के ऐतिहासिक युगों में इस प्रकार के विस्तृत स्नानगृहों का निर्माण पवित्र संस्कार स्थलों में होता था। अतः संभव है कि विशाल स्नानगृह कोई साधारण तरण ताल न रहा हो अपितु इसका पवित्र संस्कार स्थल के रूप में महत्व हो।

विशाल स्नानगृह के निकट ही एक अन्य विशाल इमारत (230 × 78 फुट) पाई गयी है जिसे किसी मुख्य पुरोहित का निवास स्थल अथवा पुराहितों का मठ माना जाता है। इसी प्रकार **किले बंद** क्षेत्र में एक सभागार पाया गया है। इसके पश्चिम की ओर एक साथ कई कमरे बने हुए मिले हैं जिनमें से एक में एक बैठे हुए पुरुष की मूर्ति भी मिली है। इसे भी एक धार्मिक इमारत के रूप में देखा गया है। इन पवित्र धार्मिक इमारतों से मोहनजोदड़ो की धार्मिक रीतियों की ओर संकेत मिलता है। हम यह मान सकते हैं कि कुछ धार्मिक गतिविधियां इस विशाल मंदिर जैसी इमारत में की जाती रही होंगी।

8.4.2 आराध्य

आराध्य अथवा पूज्य वस्तुओं के विषय में प्रमाण हड़प्पा की मुहरों एवं पकी मिट्टी की मूर्तियों से प्राप्त होते हैं, मुहरों से मिलने वाले प्रमाणों में सबसे प्रसिद्ध देवता की पहचान आदि-शिव के रूप में की गयी है, कई मुहरों में एक देवता जिसके सिर पर भैंस के सींग का मुकुट है, योगी की मुद्रा में बैठा हुआ है, देवता बकरी, हाथी, शेर तथा मृग से घिरा हुआ है मार्शल ने इस देवता को पशुपति माना है, कई स्थानों पर देवता के सींग के बीच से एक पौधा उगता दिखाया गया है, एक अन्य मुहर पर एक देवता जिसके सिर पर सींग और

लम्बे बाल हैं, नंगे बदन पीपल की शाखाओं के बीच खड़ा है। एक उपासक उसके समक्ष झुका हुआ है उपासक के पीछे जिसका सिर आदमियों जैसा है, तथा अन्य सात मानवीय आकृतियां हैं, इन मानवीय आकृतियों के लम्बी चोटियां है एवं सिर पर लम्बे वस्त्र बंधे हैं। यह मुहर में योगी के साथ एक सर्प की आकृति है। सींग वाली सभी आकृतियों को उत्तर भारतीय इतिहास के शिव के रूप में माना गया है। कुछ हड़प्पा बस्तियों से शिव लिंग भी प्राप्त हुए हैं। इन प्रमाणों के आधार पर विद्वानों ने शिव को हड़प्पा का सबसे महत्वपूर्ण देवता माना है। संभवतः सारे मंदिरों में शिव की पूजा होती थी।

मातृ देवी

हड़प्पा बस्तियों में भारी संख्या में पक्की मिट्टी की मूर्तियां मिली हैं, इनमें महिलाओं की भी मूर्तियां हैं जो कि बड़ी सी मेखला सिंह वस्त्र तथा गले में हार पहने हुए दिखाई गयी हैं वे सिरों पर पंखे के रूप के मुकट धारण किए हैं। कभी-कभी उनके साथ शिशु भी दिखाये गये हैं। अभिजनन पंथ के आम तौर से गर्भ धारण के विभिन्न रूपों द्वारा चित्रित किया गया है। इन प्रमाणों से हड़प्पा सभ्यता में अभिजनन पंथ के प्रति विश्वास तथा देवियों की आराधना की ओर संकेत मिलते हैं।

वृक्ष आत्माएं

संभवतः हड़प्पा के लोग वृक्ष आत्माओं की पूजा करते थे, कई स्थानों पर वृक्षों की शाखाओं के बीच से झांकती हुई आकृतियां दिखाई गयी हैं विद्वानों का मत है कि यह आकृतियां वृक्ष आत्माओं को बिंबित करती हैं। कई चित्रों में आराधक पेड़ के सामने खड़े दिखाये गये हैं। कई अन्य स्थानों पर शेर अथवा किसी अन्य जानवर को वृक्ष के सामने बिंबित किया गया है। एक स्थान पर वृक्ष के सामने सात मानवीय आकृतियां खड़ी दिखाई गयी हैं और वृक्ष के अन्दर एक आकृति जिसके सिर पर सींग हैं, दिखाई गयी है जैसी कि पीछे चर्चा की गयी है सींग वाली आकृति संभवतः शिव की है। भारत में पीपल के पेड़ की पूजा युगों से होती रही है और कहीं-कहीं पीपल के पेड़ और शिव की पूजा साथ-साथ होती दिखाई गयी है। सात आकृतियाँ बहुधा सात महान् ऋषियों अथवा भारतीय मिथक की सात जननी मानी गयी हैं।

कुछ पौराणिक नायक

कुछ अन्य माननीय आकृतियाँ जिनका धार्मिक महत्व हो सकता है मुहरों और गण्डों पर पायी गयी है मुहरों के सिर पर सींग तथा लम्बी दुम वाली आकृतियां बड़ी मात्रा में पायी गयी है यदा कदा इन आकृतियों के खुर तथा पिछली टांगे जानवरों जैसी दिखाई गयी हैं। कुछ अन्य मुहरें मेसोपोटामिया के मिथकों से मिलती-जुलती हैं।

उदाहरण के लिए दो शेरों से लड़ता हुआ एक पुरुष हमारा ध्यान तुरन्त उस प्रसिद्ध योद्धा गिलगणेश की ओर ले जाता है जिसके विषय में दो शेरों को मारने की कथा प्रचलित है।

जानवरों की पूजा

ऐसा प्रतीत होता है कि हड़प्पा के लोग कई प्रकार के जानवरों की पूजा करते थे, इस सन्दर्भ में भी हमारी जानकारी का स्रोत मुहरें एवं पक्की मिट्टी की मूर्तियां हैं, चन्हुदाड़ो में एक मुहर मिली है जिसमें लिंग बाहर किए हुए सांड एक झुकी हुई मानव आकृति के साथ संभोग कर रहा है। यह निश्चित रूप से अभिजनन के प्रति विश्वास का सूचक है। मुहरों पर बहुधा एक ब्राह्मणी बैल चित्रित मिलता है जिसके गले के नीचे भारी झालरदार खाल लटकती दिखाई देती है। संभवतः वर्तमान सभ्यता के बैलों एवं गायों के प्रति आदर भाव के बीज हड़प्पा-सभ्यता में रहे हों।

मिथकीय जानवर

मुहरों पर विभिन्न समष्टि आकृति वाले जानवर चित्रित किए गए हैं, मुहरों पर ऐसा जानवर रूपी जीव मिलते हैं जिनका अगला हिस्सा मनुष्य जैसा है तथा पिछला शेर जैसा दिखाया गया है। इसी प्रकार भेड़ों, बैलों तथा हाथियों की मिली-जुली आकृतियों वाले समष्टि काफी संख्या में प्राप्त हुई हैं। वे निश्चित रूप से पूज्य आकृतियां रही होंगी। हड़प्पा के बाद

के भारतीय परंपरा के मिथकों मे समष्टि आकृति वाले जीवों जैसे "नर सिंह" का विशेष स्थान रहा है। हड़प्पा की मुहरों पर एक अन्य महत्वपूर्ण जानवर एक शृङ्ग (Unicorn) चित्रित मिलता है। यह एक घोड़े जैसा जानवर है जिसके सिर के बीच एक सींग निकली हुई है। इस जानवर के सामने एक विचित्र वस्तु दिखाई देती है जो कि किसी अन्य जानवर से मिलती-जुलती नहीं है। इस चित्र में एक पिंजरे जैसी वस्तु एक दंड से लटक रही है। दंड के बीच में एक कटोरे जैसी वस्तु है। हमें इस वस्तु का प्रयोजन ज्ञात नहीं है। इसकी पहचान पवित्र हौदे अथवा धूपदान के रूप में की गयी है। एक अन्य मुहर में एक शृङ्ग एक मिथकीय पशु था क्योंकि इस प्रकार का कोई पशु कहीं नहीं पाया जाता। संभवतः इसकी उपासना की जाती रही होगी।

ऐसा प्रतीत होता है कि कालीबंगन एवं लोथल के हड़प्पावासी भिन्न धार्मिक रीतियों के अनुयायी थे कालीबंगन में किले में उभरी ईंटों के मंच मिले हैं जिनके ऊपर "अग्नि वेदिया" है जिनमें पशुओं की हड्डियां एवं राख है, इस स्थान पर भी कुआं और स्नानगृह हैं। यह स्थान पूजा क्रिया का केन्द्र रहा होगा जहा पशुओं की बलि धार्मिक पवित्रीकरण तथा अग्नि की पूजा की जाती रही होगी निचले नगर के कई मकानों में भी "अग्नि वेदी" वाल कमरे है। कई अन्य "अग्निवेदियां" होने की भी जानकारी मिली है, लोथल में भी "अग्निवेदियां" पायी गयी हैं यह प्रमाण अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि।

अ) इनमें यह संकेत मिलता है कि विभिन्न क्षेत्रों के हड़प्पावासी विभिन्न धार्मिक रीतियों के अनुयायी थे, तथा

ब) वैदिक युग के धर्म में अग्नि पूजा का केन्द्रीय महत्व था।

वेद युग के आर्यजन भिन्न प्रकार के लोग थे, कालीबंगन से मिले प्रमाणों से ज्ञात होता है कि आर्यों ने हड़प्पा क्षेत्र में आकर बसने के बाद हड़प्पा के लोगों की ही धार्मिक रीतियों को अपनाया।

8.4.3 मृतकों का अंतिम संस्कार

मानव जाति अपने सगे सम्बन्धियों के मृत शरीरों के अंतिम संस्कार को महत्वपूर्ण धार्मिक गतिविधि के रूप में मानती रही है। इसका कारण मृतकों के प्रति दृष्टिकोण तथा इस जीवन तथा मृत्योपरांत जीवन के सम्बंध में मानव जाति के विश्वास से परस्पर जुड़ाव है, हड़प्पा सभ्यता से मृतकों का कोई ऐसा स्मारक नहीं प्राप्त हो सका है जो मिश्र के पिरामिड अथवा मेसोपोटामियां के उप नगर के राजकीय कब्रिस्तान के वैभव की बराबरी कर सकें। तथापि हमें हड़प्पा के लोगों में प्रचलित अंतिम संस्कार पद्धति के विषय में कुछ प्रमाण मिले हैं हड़प्पा में कई कब्रें मिली हैं। शव साधारणतया उत्तर-दक्षिण दिशा में रख कर दफनाए जाते थे। उन्हें सीधा लिटाया जाता था। कब्र में बड़ी संख्या में मिट्टी के बर्तन रख दिए जाते थे कुछ स्थानों पर शवों को गहनों जैसे सीप की चूड़ियों, हार, तथा कान की बालियों के साथ दफनाया जाता था कुछ कब्रों में तांबे के दर्पण, सीप, और सुरमें की सलाइयां भी रखी जाती थी। कई कब्रें ईंटों की बनी हुई मिली है। हड़प्पा में एक कब्र में ताबूत भी प्राप्त हुआ है। कालीबंगन में अंतिम संस्कार की भिन्न रीतियां देखने को मिली हैं। यहा पर छोटे-छोटे वृत्ताकार गड्ढे देखे गए हैं। जिनमें बड़ी राखदानियां तथा मिट्टी के बर्तन मिले हैं। लेकिन यहां कंकालों के अवशेष नहीं मिले हैं। कुछ ऐसे भी गड्ढे मिले हैं जिनमें हड्डियां एकत्रित मिली हैं। लोथल में साथ-साथ दफनाए गए महिला एवं पुरुष के मुर्दों के कंकालों के जोड़े मिले हैं।

इन रीतियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि हड़प्पा के लोगों में मुर्दों के अंतिम संस्कार की रीतियां भारत में बाद में आने वाले समय की रीतियों से भिन्न थीं। भारत के ऐतिहासिक चरणों में अंतिम संस्कार की मुख्य पद्धति दाह संस्कार प्रतीत होती है। साथ ही मुर्दों का सावधानीपूर्वक रखकर अंतिम संस्कार करना तथा आभूषण एवं शृंगार की वस्तुएं उनके साथ रखना इस तथ्य का द्योतक है कि वे लोग मरणोपरांत जीवन में विश्वास रखते थे। इस विश्वास के स्वरूप के विषय में हमें जानकारी नहीं है।

खुदाई से प्राप्त विभिन्न वस्तुओं के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि हड़प्पा-सभ्यता के अंतर्गत विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की धार्मिक रीतियां प्रचलित थीं। कालीबंगन तथा लोथल में अग्नि पूजा प्रचलित थी किन्तु हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो में ऐसा प्रचलन नहीं

था। मोहनजोदड़ो में प्रचलित पवित्र स्नान की रीति संभवतः हड़प्पा में नहीं थी। अंतिम संस्कार में विस्तृत विभिन्नता देखने को मिलती है। एक साथ कई मुर्दे दफनाने से लेकर जोड़े दफनायें तथा मुर्दे के साथ कुछ वस्तुएं रखने तक की रीतियां पायी गयी हैं। कालीबंगन से प्राप्त जानकारी के आधार पर ऐसे तथ्य भी प्राप्त हुए हैं जो यह बताते हैं कि एक ही स्थान पर भी अंतिम संस्कार की भिन्न रीतियां प्रचलित थी। धार्मिक विश्वास एवं रीतियों की इस विभिन्नता से मुख्य नगरों के जटिल स्वरूप की ओर संकेत मिलता है जनजाति समाजों के विपरीत से जहां जनजाति का प्रत्येक सदस्य समान धार्मिक रीति का पालन करता है। मुख्य नगरों में यह विशेषता दिखाई देती है कि वहां के निवासी विभिन्न धार्मिक रीतियों का पालन करते थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि मुख्य नगरों का गठन विभिन्न सामाजिक समूहों के राजनैतिक एवं आर्थिक एकीकरण से हुआ होगा। इसके अतिरिक्त मुख्य नगरों में भिन्न धार्मिक रीतियों के अनुयायी विभिन्न क्षेत्रों के व्यापारी निवास करते होंगे। वे लोग अपनी राजनैतिक तथा आर्थिक विशिष्टता तो बनाये न रख पाये होंगे। लेकिन अपनी सामाजिक तथा धार्मिक रीतियों का पालन करते रहे होंगे।

बोध प्रश्न 3

1 हड़प्पा की धार्मिक इमारतों में से किस इमारत से सामूहिक पूजा के प्रचलन की ओर संकेत मिलता है?

....

....

....

....

2 निम्नलिखित में से कौन से वक्तव्य सही हैं?

i) संभवतः शिव हड़प्पावासियों के सबसे महत्वपूर्ण देवता हैं। ( )
ii) हड़प्पा के आराध्यों में कोई देवी नहीं है। ( )
iii) हड़प्पावासी संभवतः वृक्षों की भू पूजा करते थे। ( )
iv) हड़प्पावासी किसी पशु की पूजा नहीं करते थे। ( )

3 क्या हमें हड़प्पा में अग्नि पूजा के प्रमाण मिले हैं?

....

....

....

....

4 हड़प्पावासियों में मुर्दे दफनाने की रीति के अध्ययन से उस समाज के विषय में से कौन से मुख्य बिन्दु उभरते हैं?

....

....

....

....

8.5 सारांश

इस इकाई में हमने हड़प्पावासियों के दैनिक जीवन से जुड़े सामाजिक एवं धार्मिक पक्षों पर चर्चा की।

हड़प्पावासियों के मुख्य पहनावे आधुनिक साड़ियों जैसे बगैर सिले हुए वस्त्र होते थे जोकि शरीर पर लपेट लिए जाते थे। पुरुष एवं महिलाएं समान रूप से घाघरा एवं कमीज पहनते थे। विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों का सेवन किया जाता था। मुख्य खाद्य पदार्थों में चावल, जौ, बाजरा तथा गेहूं का सेवन किया जाता था। विभिन्न प्रकार के फल, सब्जियां तथा मांसाहारी भोजन भी इस्तेमाल किए जाते थे। आशा है कि उपखण्ड 8.2.2 में पूछे गए प्रश्नों का उत्तर आपको स्पष्ट हो गया होगा। यदि स्पष्ट नहीं हुआ तो उसका कारण यह है कि उस समय उस क्षेत्र में न चाय उगाई जाती थी और न ही आलू की खेती होती थी।

पुरातत्वशास्त्री तथा भाषाविद् अभी भी हड़प्पा की लिपि से जूझ रहे हैं वे अभी तक उसे पढ़ने में समर्थ नहीं हो पाए हैं।

उनकी बस्तियों की किले बंदी तथा प्राप्त हथियारों से उनके युद्ध करने की ओर भी संकेत मिलता है।

मिट्टी के बर्तन बनाना, धातुओं के काम, मालाएं बनाना तथा अन्य शिल्प कलाएं हड़प्पा सभ्यता का अंग थी। यह हड़प्पा में दस्तकार तथा नगर स्थित श्रमिकों के अस्तित्व का द्योतक है। संभवतः समाज वर्गों में विभाजित था ऐसे भी संकेत मिलते हैं कि हड़प्पा में किसी न किसी प्रकार की राजनैतिक संरचना विद्यमान थी। नगरों में प्रमुख सामाजिक वर्ग प्रशासक, पुजारी, व्यापारियों तथा बड़ी संख्या में श्रमिकों के सामाजिक वर्ग रहे होंगे।

कुछ बड़ी इमारतें सामूहिक पूजा अथवा धार्मिक संस्कारों की ओर संकेत करती हैं। भारी संख्या में देवी-देवताओं तथा अन्य आराध्यों की पूजा किए जाने के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। प्रमुख रूप से मात्र देवी, शिव तथा कई प्रकार के पशु एवं वृक्ष आराध्य थे कुछ समष्टि रूपी मिथकीय पशु भी धार्मिक विश्वासों का अंग थे।

मुर्दों के अंतिम संस्कार का सबसे प्रचलित तरीका दफनाना था न कि दाह संस्कार। कब्रों में कई प्रकार के आभूषण तथा अन्य वस्तुएं भी प्राप्त हुई हैं। इन सभी प्रमाणों से हमें हड़प्पा समाज के प्रति यदि पूरी नहीं तो संतोषजनक जानकारी अवश्य प्राप्त हो जाती है।

8.6 शब्दावली

लिपि : लिखने की पद्धति।

अभिजनन पंथ : पूजा की वह रीति जिसमें प्रकृति एवं मानव जाति के पुनरुत्पादन पक्ष पर बल दिया जाता है। इस पंथ का केन्द्र बिन्दु है ऐसा विश्वास कि पूजा से ... अथवा बच्चे प्रचुर मात्रा में पैदा होंगे।

अग्निवेदियां : कालीबंगन में पाए गए ईंटों से बने गड्ढे इनमें जानवरों की हड्डियां तथा राख मिली है विभिन्न समाजों में अग्नि पूजा होती रही है। वैदिक समाज में इसी प्रकार गड्ढे खोदे जाते थे जिनमें अग्नि प्रज्ज्वलित करके उनकी पूजा की जाती थी।

एक श्रृङ्ग : एक मिथकीय पशु जिसका शरीर घोड़े जैसा है और सिर पर एक सीधी सींग है।

उर के राजकीय कब्रिस्तान : मेसोपोटामिया के उर नगर में मिला कब्रिस्तान जो कि ईसा पूर्व तृतीय सहस्त्र युग का है इस कब्रिस्तान में कई राजाओं की कब्रें हैं।

8.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 i) ✗ ii) ✗ iii) ✓ iv) ✓

2 i) पक्की मिट्टी की बनी मानव मूर्तियां ii) तांबा iii) जौ, गेंहू और जौ, चावल तथा बाजरा iv) पत्थर।

3 आपका उत्तर निम्न बातों पर आधारित होना चाहिए :
- कौन सी वर्तमान भाषा हड़प्पा लिपि से निकली प्रतीत होती है?
- इसमें क्या परिवर्तन आए हैं, और
- क्या हम इसे पढ़ पाने में सक्षम हैं?

बोध प्रश्न 2

1 आपके उत्तर में काफी बड़े क्षेत्र में फैली ईंटों की बनी मिली कई इमारतें भारी संख्या में प्राप्त दस्कारी उत्पादन नगरों में नालियों की व्यवस्था आदि का विवरण होना चाहिए। खण्ड 8.3 भी देखें।

2 आपके उत्तर में सुनियोजित नगर, बड़े-बड़े निवास, अनाज गोदाम तथा उनका प्रबंधन तथा इसी प्रकार के अन्य तथ्यों का विवरण होना चाहिए। खण्ड 8.3 पुनः देखें।

बोध प्रश्न 3

1 मंदिरों जैसी बड़ी-बड़ी इमारतें जिनमें कई प्रकार के शिल्प, आम स्नानगृह, सभागार तथा अग्नि कुण्ड आदि। (खण्ड 8.4 तथा उपखण्ड 8.4.1) देखें।

2 i) ✓ ii) × iii) ✓ iv) ×

3 कालीबंगन तथा लोथल जैसी हड़प्पा बस्तियों से प्राप्ति जानकारी से यहां अग्निपूजा का प्रमाण मिलता है। सार्वजनिक पूजा स्थलों तथा घरों में भी अग्निवेदियों का पाया जाना इसके प्रमाण हैं। उपखण्ड 8.4.2 का अंतिम पैराग्राफ देखें।

4 सबसे महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि मृतकों को कुछ संस्कारों के साथ दफनाया जाता था ऐसा प्रतीत होता है कि हड़प्पावासी मरणोपरांत जीवन में विश्वास रखते थे। क्योंकि मूर्दों के साथ रोजमर्रा के इस्तेमाल की वस्तुएं अथवा आभूषण रख दिए जाते थे। कभी-कभी महिला तथा पुरुष के जोड़े साथ-साथ दफनाए जाते थे। कभी-कभी राखदानी जिसमें हड्डियां रखी होती थीं भी दफनायी जाती थीं।

इकाई 9 ह्रास और विघटन

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 हड़प्पा का ह्रास : पुरातात्विक साक्ष्य
9.3 आकस्मिक ह्रास के सिद्धांत
9.3.1 बाढ़ और भूकम्प
9.3.2 सिंधु नदी का मार्ग बदलना
9.3.3 वर्धित शुष्कता और घग्घर का सूख जाना
9.3.4 बर्बर आक्रमण
9.4 पारिस्थितिक असन्तुलन
9.5 परम्परा बाद में भी जीवित रही
9.5.1 सिंध
9.5.2 भारत-ईरानी सीमांत प्रदेश
9.5.3 पंजाब, हरियाणा और राजस्थान
9.5.4 कच्छ और सौराष्ट्र
9.6 हड़प्पा परम्परा का प्रसार
9.7 हड़प्पा-सभ्यता के अवशेष
9.8 सारांश
9.9 शब्दावली
9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको निम्नलिखित के विषय में जानकारी मिलेगी :

- हड़प्पा सभ्यता के ह्रास को समझ पाने में विद्वानों के समक्ष आई समस्याएं,
- हड़प्पा के ह्रास के विषय में विद्वानों द्वारा दिये गये विभिन्न मत, विद्वानों के अने से हड़प्पा के ह्रास के कारण खोजना क्यों बंद कर दिया है, और
- अब विद्वान हड़प्पा-सभ्यता के काफी समय तक बने रहने के साक्ष्य खोज रहे हैं

9.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में हमने हड़प्पा-सभ्यता के उद्भव और संवृद्धि के विभिन्न पहलुओं पर विचार-विमर्श किया था। तथापि इसकी परिपक्वता के विभिन्न पहलुओं जैसे लेखन, नगर नियोजन आदि का प्राचीन भारत के बाद के चरण में लुप्त हो जाना एक रहस्य ही है। इस इकाई में हम इस रहस्य को सुलझाने की दिशा में प्रस्तुत विभिन्न तर्कों की परीक्षा करेंगे।

9.2 हड़प्पा का ह्रास : पुरातात्विक साक्ष्य

हड़प्पा, मोहनजोदड़ो और कालीबंगन जैसे नगरों का नगर नियोजन और निर्माण में क्रमिक ह्रास हुआ। पुरानी जीर्ण ईंटों से बने और घटिया निर्माण वाले घरों ने नगरों की सड़कों और

गलियों पर भी कब्जा कर लिया। पतली विभाजक दीवारों से घरों के आंगनों का उपविभाजन कर दिया गया। शहर बड़ी तेजी से तंग बस्तियों में बदल रहे थे। मोहन-जोदड़ो के वास्तुकला के विस्तृत अध्ययन से पता चलता है कि विशाल स्नानागार के अनेक प्रवेश मार्ग अवरुद्ध हो गए थे। कुछ समय बाद "विशाल स्नानागार" और "अन्न भण्डार" का उपयोग पूर्णतः समाप्त हो गया। इसी समय मोहनजोदड़ो में अपेक्षाकृत बाद के निवास स्थानों में मूर्तियों और लघुमूर्तियों मनकाओं, चूड़ियों और पच्चीकारी की संख्या में स्पष्ट कमी दिखाई देती है। अन्त में मोहनजोदड़ो नगर मूलतः पच्चासी हेक्टेयर से सुकड़ कर मात्र तीन हैक्टेयर की छोटी सी बस्ती रह गया।

हड़प्पा के परित्याग से पहले लगता है एक और जन समूह आया था जिनकी जानकारी हमें उनकी मुर्दों को दफनाने की पद्धतियों से चलता है। वे मिट्टी के जिन बर्तनों का इस्तेमाल करते थे वे बर्तन हड़प्पा निवासियों के बर्तनों से भिन्न थे। उनकी संस्कृति को "सिमेटरी-एच" (कब्रिस्तान-एच) संस्कृति कहा जाता है। कालीबंगन और चंहुदाड़ो जैसे स्थानों में भी ह्रास की प्रक्रिया स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही थी। हम देखते हैं कि शक्ति और विचारधारा से सम्बद्ध और भव्यता प्रदर्शन के सामान अधिक से अधिक दुर्लभ हो रहे थे। बाद में हड़प्पा और मोहनजोदड़ो जैसे नगरों का पूर्ण परित्याग हो गया।

बहावलपुर क्षेत्र में हड़प्पा कालीन और परवर्ती हड़प्पा कालीन स्थानों के शहरी नमूने के

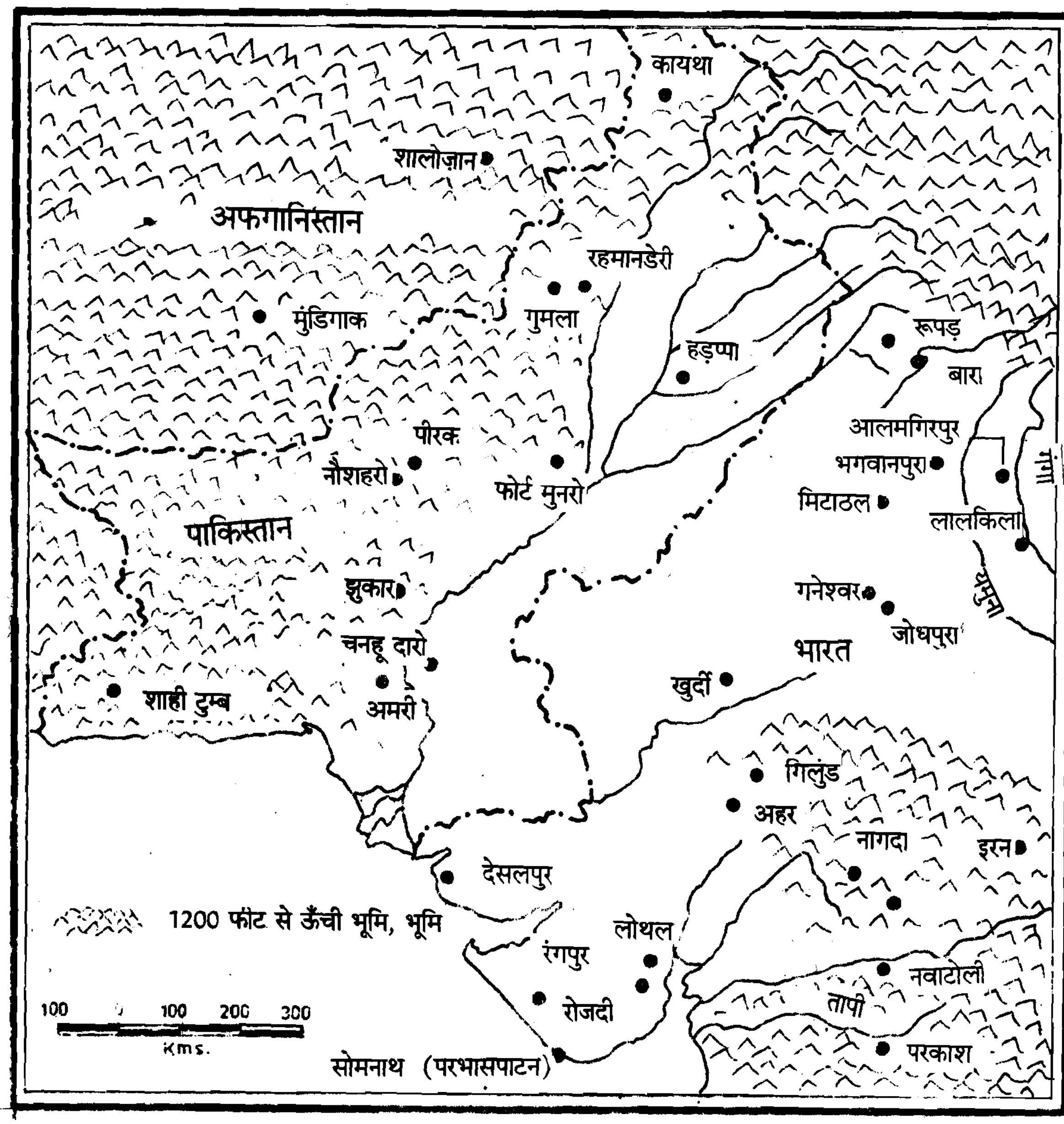

मानचित्र-3 उत्तर हड़प्पा काल की बस्तियां

अध्ययन से भी ह्रास की प्रवृत्ति लक्षित होती है। नदी के हाकंड़ी तटों के साथ परिपक्व काल में जहां 174 बस्तियां थी, वहां उत्तरवर्ती हड़प्पा काल में बस्तियों की यह संख्या घटकर 50 रह गई। इस बात की संभावना है कि अपने जीवन के बाद के दो-तीन सौ वर्षों में हड़प्पा-सभ्यता के मूल प्रदेश में बस्तियों का ह्रास हो रहा था। जन समूह या तो नष्ट हो गए थे या अन्य क्षेत्रों में चले गए थे। जहां हड़प्पा, बहावलपुर और मोहनजोदड़ो के त्रिभुज में बस्तियों की संख्याओं में ह्रास हुआ वहीं गुजरात, पूर्वी पंजाब, हरियाणा और ऊपरी दोआब के दूरस्थ क्षेत्रों में बस्तियों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई। इससे इन क्षेत्रों में लोगों की संख्या में अपूर्व वृद्धि का संकेत मिलता है। इन क्षेत्रों की जनसंख्या में आकस्मिक वृद्धि का कारण हड़प्पा के मूल क्षेत्रों से लोगों का आना हो सकता है।

हड़प्पा-सभ्यता के दूरस्थ क्षेत्रों में जैसे, ज़ेरात, राजस्थान और पंजाब के प्रदेश में लोग रहते रहे। लेकिन उनके जीवन में परिवर्तन आ गया था। हड़प्पा-सभ्यता से संबद्ध कुछ महत्वपूर्ण लक्षण जैसे लेखन, तोलने के समान बाट, हड़प्पा कालीन मिट्टी के बर्तन और वास्तुकला शैली-लुप्त हो गए थे।

सिंधु नदी के नगरों का परित्याग स्थूल रूप से लगभग 1800 ई. पू. में हुआ। इस तारीख का समर्थन इस तथ्य से होता है कि मेसोपोटामिया साहित्य में 1900 ई. पू. के अंत तक मेलुहा का उल्लेख समाप्त हो गया था। तथापि आज भी हड़प्पा कालीन नगरों के अंत का कालानुक्रम स्थाई नहीं है। हम आज तक यह नहीं जान सके कि मुख्य बस्तियों का परित्याग एक ही समय हुआ अथवा भिन्न-भिन्न अवधियों में हुआ। तथापि यह अवश्य निश्चित है कि मुख्य नगरों के परित्याग और अन्य बस्तियों के विनगरीकरण से हड़प्पा-सभ्यता के ह्रास का संकेत मिलता है।

9.3 आकस्मिक ह्रास के सिद्धांत

विद्वानों ने इस प्रश्न के विभिन्न उत्तर दिए हैं कि यह सभ्यता नष्ट क्यों हुई? कुछ विद्वानों ने जिनका विश्वास है कि सभ्यता का नाटकीय अंत हो गया। उन्होंने आकस्मिक विपत्ति के ऐसे साक्ष्य खोजे हैं जिससे शहरी समुदायों का सत्यानाश हो गया। हड़प्पा-सभ्यता के ह्रास के लिए कुछ अपेक्षाकृत अधिक मुक्ति युक्त सिद्धांत निम्न हैं :

क) यह भयंकर बाढ़ से नष्ट हो गई।
ख) ह्रास नदियों का रास्ता बदलने से और घग्घर-हाकड़ नदी तंत्र के धीरे-धीरे सूख जाने के कारण हुआ।
ग.) बर्बर आक्रमणकारियों ने शहरों को बर्बाद कर दिया।
घ) केन्द्रों की बदली हुई मांगों तक क्षेत्र की पारिस्थितिकी भंग हो गई और उसे संभाला नहीं जा सका।

आइए, इन स्पष्टीकरणों पर उनके गुण-दोषों के आधार पर चर्चा करें।

9.3.1 बाढ़ और भूकम्प

हड़प्पा सभ्यता के ह्रास के लिए विद्वानों ने जो कारण बताए हैं, उनमें उन्होंने मोहनजोदड़ो में बाढ़ आने के साक्ष्य भी शामिल किए हैं। प्रमुख खुदाई करने वालों के अभिलेखों तक पता चलता है कि मोहनजोदड़ो में रिहाइश की विभिन्न अवधियों में अत्यधिक बाढ़ के साक्ष्य मिले हैं, यह निष्कर्ष इस तथ्य से निकाला जा सकता है कि मोहनजोदड़ो में मकानों और सड़कों पर इसके लम्बे इतिहास में अनेक बार कीचड़युक्त मिट्टी भरी पड़ी थी और टूटे हुए भवनों की सामग्री और मलबा भरा पड़ा था। लगता है कीचड़युक्त यह मिट्टी उस बाढ़ के पानी के साथ आई जिस पानी में सड़कें और मकान डूब गए थे। बाढ़ का पानी उतर जाने के बाद मोहनजोदड़ो के निवासियों ने पहले के मकानों के मलबे के ऊपर फिर से मकान और सड़कें बना लीं। इस प्रकार की भयंकर बाढ़ और मलबे के ऊपर पुनःनिर्माण का सिलसिला कम से कम तीन बार चला।

रिहाइशी क्षेत्र में खुदाई से पता चला है कि 70 फुट ऊँचाई तक रिहाइशी तलों का सिलसिला था। यह ऊँचाई के बराबर है। आवासी क्षेत्र मिट्टी भर जाने के कारण अलग-अलग हो गए थे। आज के भूतल से 80 फुट ऊँचाई तक कई स्थानों पर मिट्टी के ढेर मिले हैं। इस प्रकार, कई विद्वानों का विश्वास है कि ये मोहनजोदड़ो में विनाशकारी बाढ़ आने के साक्ष्य हैं। इन बाढ़ों के कारण अपने पूरे इतिहास काल में शहर बार-बार अस्थायी रूप से वीरान हुआ और फिर बसा।

यह बाढ़ महा भयंकर थी। यह इस बात से प्रमाणित होता है कि नदी की मिट्टी के ढेर आज के भूतल से 80 फुट ऊँचाई तक मिले हैं जिसका अर्थ है कि बाढ़ का पानी इस क्षेत्र में इस ऊँचाई तक पहुँचा। मोहनजोदड़ो के हड़प्पा निवासी इन बार-बार आने वाली बाढ़ों का मुकाबला करने में हिम्मत हार गए। एक अवस्था ऐसी आई जब कंगाल हड़प्पा निवासी इसे और सहन न कर सके और इन बस्तियों को छोड़कर चले गए।

रेईक्स (Raikes) की प्राक्कल्पना

महा भयंकर बाढ़ के सिद्धांत का विख्यात जलविज्ञानी आर.एल. रेईक्स ने भी समर्थन किया है। उसका मत है कि ऐसी बाढ़ जो बस्ति के भूतल से 30 फुट ऊँचे भवनों को छू सकती थी, सिंधु नदी में सामान्य बाढ़ आने का परिणाम नहीं हो सकती। उसका विश्वास है कि हड़प्पा सभ्यता का हास भयंकर बाढ़ के कारण हुआ। जिससे सिंधु नदी के तट पर स्थित नगर बहुत समय तक डूबे रहे। उसने बताया है कि भू-आकृति विज्ञान की दृष्टि से क्षेत्र अशान्त भूकम्प क्षेत्र है। भूकम्पों से हो सकता है, निम्न सिंधु नदी के बाढ़ मैदानों का स्तर ऊंचा हो गया हो। सिंधु नदी से लगभग समकोण पर एक धुरी के साथ-साथ मैदान के इस उत्थान से नदी का समुद्र की ओर मार्ग अवरुद्ध हो गया। इससे सिंधु नदी में पानी इकट्ठा होने लगा। उस क्षेत्र में एक झील सी बन गई जहां कभी सिंधु नदी के शहर आबाद थे। और इस प्रकार, नदी के बढ़ते हुए पानी के स्तर में मोहनजोदड़ो जैसे शहर डूब गए।

यह बताया जा चुका है कि करांची के पास बालाकोट और मकरान तट पर सतकाग्रदौड़ और सतका-कोह जैसे स्थान हड़प्पा निवासियों के समुद्री तट थे। तथापि आजकल ये समुद्र तट से दूर स्थित हैं। ऐसा संभवतः उग्र भूकम्प के कारण समुद्र तट पर भूमि के उत्थान के परिणामस्वरूप हुआ। कुछ विद्वानों का मत है कि ऐसे उत्थान दूसरी सहस्त्राब्दि ई. पू. में किसी समय हुए। इन उग्र भूकम्पों से जिन्होंने नदियों को अवरुद्ध कर दिया और शहरों को जला दिया, हड़प्पा-सभ्यता नष्ट हो गई। इससे नदी पर आधारित वाणिज्यिक गतिविधियों और तटीय संचार भंग हो गया।

आलोचना

हड़प्पा-सभ्यता के महा भयंकर विनाश का महान सिद्धांत कई विद्वानों को मान्य नहीं है। एच.टी. लैमब्रिक (H.T. Lambrick) का कहना है कि यह विचार कि एक नदी भूकम्पीय उत्थानों से इस प्रकार अवरुद्ध हो जाएगी, निम्नलिखित दो कारणों से सही नहीं है :

1) यदि किसी भूकम्प से अनुप्रवाह पर एक कृत्रिम बंद बन भी गया था, तो भी सिंधु नदी के अत्यधिक मात्रा में जल से वह आसानी से टूट गया होगा। सिंधु में हाल ही में 1819 के भूकम्प से जो टीला बन गया था, वह सिंधु की एक छोटी नदी नारा से उत्पन्न पहली बाढ़ में ही बह गया था।

2) जमा हो गई गाद (कीचड़) परिकल्पित झील में पानी के उठते हुए तल के समान्तर हो गई होती। यह नदी के पिछले मार्ग के तल के साथ जमा होगी। इस प्रकार मोहनजोदड़ो की गाद बाढ़ के कारण इकट्ठी नहीं हुई थी1 इस सिद्धांत की दूसरी आलोचना यह है कि इस सिद्धान्त में सिंधु नदी तंत्र के बाहर की बस्तियों के ह्रास का स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है।

9.3.2 सिंधु नदी का मार्ग बदलना

लैमब्रिक ने इस ह्रास के लिए अपना स्वयं का स्पष्टीकरण दिया है। उसका मत है कि सिंधु नदी के मार्ग में परिवर्तन मोहनजोदड़ो नगर के विनाश का कारण हो सकता है। सिंधु नदी एक अस्थिर नदी तंत्र है जो अपना तल बदलता रहता है, स्पष्टतः सिंधु नदी मोहनजोदड़ो

से लगभग 30 मील दूर चली गई। शहर और आसपास के खाद्यान्न उत्पादक गांवों के लोग इस क्षेत्र से चले गए क्योंकि वे पानी के लिए तरस गए थे। मोहनजोदड़ो के इतिहास में ऐसा अनेक बार हुआ। शहर में देखी गई गाद वास्तव में हवा के कारण इकट्ठी हुई है क्योंकि हवा से बड़ी मात्रा में रेत और गाद उड़कर यहां आई। इस गाद और विधारित कीचड़, कच्ची ईंटों और पकी ईंटों की सरचनाओं तक वह गाद बन गई जिसे गल्ती से बाढ़ से उत्पन्न गाद मान लिया गया।

इस सिद्धांत से भी हड़प्पा-सभ्यता के पूर्णतः ह्रास के कारण स्पष्ट नहीं होते। अधिक से अधिक यह सिद्धांत मोहनजोदड़ो का वीरान हो जाना स्पष्ट कर सकता है और यदि मोहनजोदड़ो के निवासी नदी के मार्ग में इस प्रकार के बदलाव से परिचित थे तो वे स्वयं ही किसी नई बस्ती में जाकर क्यों नहीं बस सकते थे और मोहनजोदड़ो जैसा दूसरा शहर क्यों नहीं बसा सकते थे। स्पष्टतः ऐसा लगता है कि इसके कुछ और ही कारण थे।

9.3.3 वर्धित शुष्कता और घग्घर का सूख जाना

डी.पी. अग्रवाल और सूद ने हड़प्पा-सभ्यता के ह्रास के लिए एक नया सिद्धान्त बताया है। उनका मत है कि हड़प्पा-सभ्यता का ह्रास उस क्षेत्र में बढ़ती हुई शुष्कता के कारण और घग्घर नदी-हाकडा—के सूख जाने के कारण हुआ। संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया और राजस्थान में किए गए अध्ययनों के आधार पर निष्कर्ष निकालते हुए उन्होंने बताया है कि द्वितीय सहस्त्राब्दि ई. पू. के मध्य तक शुष्कता की स्थितियों में बहुत वृद्धि हो गई थी। हड़प्पा जैसे अर्ध शुष्क क्षेत्रों में भी नमी और जल उपलब्धता में थोड़ी सी कमी के भी भयंकर परिणाम हो सकते थे। इससे कृषि उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता और इसके परिणामस्वरूप नगर की अर्थव्यवस्था पर बहुत दबाव पड़ता।

उन्होंने पश्चिम राजस्थान में अस्थिर नदी तंत्रों की समस्या पर चर्चा की है। जैसा पहले बताया जा चुका है। घग्घर-हाकड़ा क्षेत्र हड़प्पा सभ्यता का एक मूल क्षेत्र था। घग्घर एक शक्तिशाली नदी थी जो समुद्र में गिरने से पहले पंजाब, राजस्थान और कच्छ के रन में से होकर बहती थी।

सतलुज और यमुना नदियां इस नदी की सहायक नदियां हुआ करती थीं। कुछ विवर्तनिक विक्षोभों के कारण सतलुज सिंध नदी समा गई तथा यमुना नदी गंगा नदी में मिलने के लिए पूर्व की ओर रास्ता बदल गई। नदी क्षेत्र में इस प्रकार के परिवर्तन से जिससे घग्घर जल विहीन हो गई, इस क्षेत्र में अवस्थित नगरों के लिए भयंकर उलझने हुई होंगी। स्पष्टतः बर्धित शुष्कता तथा जल निकासी स्वरूप में हुए परिवर्तन से आए पारिस्थितिक विक्षोभों से हड़प्पा-सभ्यता का ह्रास हुआ।

यह सिद्धांत रोचक तो है, पर इसमें कुछ समस्याएं भी हैं। शुष्कता की परिस्थितियों के संबंध में सिद्धांतों का पूर्णतः अध्ययन नहीं किया गया है और इस संबंध में और सूचनाएं अपेक्षित हैं। इसी प्रकार घग्घर नदी सूख जाने का काल अभी तक उचित रूप से निर्धारित नहीं किया जा सका।

9.3.4 बर्बर आक्रमण

वीलर का मत है कि हड़प्पा-सभ्यता आक्रमणकारी आर्यों ने नष्ट की थी। जैसा पहले बताया जा चुका है, मोहनजोदड़ो में आवास के अन्तिम चरणों में जनसंहार के साक्ष्य मिलते हैं। सड़कों पर मानव कंकाल पड़े मिले हैं। ऋग्वेद में इनके स्थानों पर दासों और दस्युओं के किलों का उल्लेख मिलता है। वैदिक देवता इन्द्र को पुरन्दर कहा जाता है, जिसका अर्थ है "किलों को नष्ट करने वाला"। ऋग्वेद कालीन आर्यों के आवास के भौगोलिक क्षेत्र में पंजाब तथा घग्घर-हाकड़ा क्षेत्र शामिल थे। चूंकि इस ऐतिहासिक चरण में किसी अन्य संस्कृति समूहों के किले होने के कोई अवशेष नहीं मिलते। वीलर का मत है कि ऋग्वेद में जिसका उल्लेख है वे हड़प्पा के नगर ही हैं। वस्तुतः ऋग्वेद में एक स्थान का उल्लेख है जिसे हरियूपिया कहा गया है। यह स्थान रावी नदी के तट पर अवस्थित था। आर्यों ने यहां एक युद्ध लड़ा था। इस स्थान के नाम से हड़प्पा नाम के बहुत समान ध्वनि निकलती है। इन साक्ष्यों से वीलर ने निष्कर्ष निकाला कि हड़प्पा के शहरों को नष्ट करने वाले आर्य आक्रमणकारी ही थे।

यह सिद्धांत आकर्षक तो है, पर अनेक विद्वानों को मान्य नहीं है। उनका कहना है कि हड़प्पा-सभ्यता के ह्रास का अनुमानित समय 1800 ई. पू. माना जाता है। पर इसके विपरीत आर्य यहां लगभग 1500 ई. पू. से पहले आए नहीं माने जाते। जानकारी की आज की स्थिति के अनुसार दोनों में से किसी भी समय को बदलता कठिन है और इसलिए संभावना यही है कि हड़प्पा निवासी, हड़प्पा निवासियों और आर्यों का कभी एक दूसरे से मिलन नहीं हुआ। साथ ही, न तो मोहनजोदड़ो में और न ही हड़प्पा में किसी सैन्य आक्रमण के साक्ष्य मिले हैं। सड़कों पर मनुष्यों के शव पड़े मिलने का साक्ष्य महत्वपूर्ण है। तथापि ऐसा आस-पास के पहाड़ी स्थानों से आए लुटेरों के हमलों से हो सकता है। बहरहाल बड़े शहरों का तो पहले से ही अपकर्ष हो रहा था। इसके लिए आक्रमण प्राक्कल्पना उचित स्पष्टीकरण नहीं हो सकता।

बोध प्रश्न 1

सही उत्तर पर निशान लगाइये।

1 हड़प्पा-सभ्यता का ह्रास बाढ़ और भूकम्प सिद्धांत द्वारा स्पष्ट नहीं किया जा सकता, क्योंकि :
   - i) यह सिंधु घाटी के बाहर की बस्तियों के ह्रास को स्पष्ट करता है। ( )
   - ii) सिंधु घाटी के बाहर की बस्तियों के ह्रास को स्पष्ट नहीं कर सकता। ( )
   - iii) हड़प्पा निवासी बाढ़ों और भुकम्पों का सामना करना जानते थे। ( )
   - iv) उपर्युक्त में से कोई नहीं। ( )

2 हड़प्पा क्षेत्र में वर्धित शुष्कता हड़प्पा का ह्रास स्पष्ट नहीं कर सकती, क्योंकि
   - i) इस सिद्धांत पर पूरी तरह विचार किया गया है।
   - ii) इस सिद्धांत पर पूरी तरह विचार नहीं किया जा सका है।
   - iii) घग्घर नदी के सूखने का काल निर्धारण अभी तक ही हो सका है।
   - iv) दोनों (ii) और (iii)।

3 बर्बर आक्रमणों ने हड़प्पा को तबाह किया, इस सिद्धांत के पक्ष और विपक्ष में साक्ष्यों पर लगभग 50 शब्दों में चर्चा करें।

....

....

....

....

....

9.4 पारिस्थितिक असंतुलन

फेयर सर्विस जैसे विद्वानों ने हड़प्पा-सभ्यता का ह्रास पारिस्थितकी की समस्याओं के रूप में स्पष्ट करने का प्रयास किया है। उसने हड़प्पा नगरों की आबादी की गणना की है और नगर निवासियों की खाद्य जरूरतों का हिसाब लगाया है। उसने गणना की है कि इन क्षेत्रों में ग्राम निवासी अपनी उपज की लगभग 80% खपत स्वयं करते हैं और लगभग 20% बाजार में बिकने के लिए बचती हैं। यदि कृषि का सही प्रतिमान पहले भी विद्यमान रहा होता तो मोहनजोदड़ो जैसे नगर को, जिसकी आबादी लगभग 35 हजार थी, खाद्यान्न उगाने के लिए बहुत बड़ी संख्या में ग्राम निवासियों की आवश्यकता थी। फेयर सर्विस की गणना के अनुसार इन अर्ध शुष्क क्षेत्रों में नाजुक पारिस्थितिक संतुलन इस लिए बिगड़ रहा था क्योंकि इन क्षेत्रों में मनुष्यों और मवेशियों की आबादी अपर्याप्त जंगलों, खाद्यान्न और

ह्रास के सिद्धांत 1
आकस्मिक (महासंकट) सिद्धांत

बाढ़ और भूकम्प	मोहनजोदड़ो सिंधु नदी के मार्ग बदलने के कारण नष्ट हुआ	वर्धित शुष्कता से ह्रास हुआ	बर्बरों अथवा आर्य आक्रमणकारियों ने हड़प्पा को बर्बाद किया।
बाढ़ : साक्ष्य	**साक्ष्य**	**साक्ष्य**	**साक्ष्य**
क) गाद जमा होने से अवास तल अलग हो गए।	हड़प्पा में जो गाद मिली है, उसका कारण हवा है। जिसके साथ रेत और गाद आई। रेतीली गाद बाढ़ों के कारण नहीं आई।	क) द्वितीय सहस्त्राब्दि ई. पू. का मध्य-वर्धित शुष्कता की अवधि।	क) सड़कों पर नर कंकाल पड़े हुए मिले हैं।
ख) मकानों और सड़कों पर भूतल से 30 फुट तक गाद जमा हो गई।		ख) ऐसी स्थिति में अर्ध शुष्क क्षेत्र (जैसे हड़प्पा) पर सबसे अधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा होगा—कृषि में ह्रास हुआ होगा।	ख) ऋग्वेद में "दासों" के किलों का वर्णन है, जिन्हें देवता पुरन्दर नष्ट करता है।
ग) गाद वाले मलबे पर मकान बनाए गए।		ग) दिवर्तनिक दिक्षेभ से घग्घर जैसा नदी तंत्र प्रभावित हुआ होगा जो सूख गया।	ग) ऋग्वेद कालीन आर्यों के भौगोलिक क्षेत्र में पंजाब और घग्घर का क्षेत्र शामिल है।
भूकम्प साक्ष्य	**आलोचना**	**आलोचना**	
क) सिंधु क्षेत्र अशान्त भूकम्प क्षेत्र है।	इससे यह तो स्पष्ट किया जा सकता है कि लोग मोहनजोदड़ो को छोड़कर चले गए पर इससे इसका ह्रास स्पष्ट नहीं किया जा सकता।	क) पूरी तरह परिणाम नहीं निकाले गए।	घ) वेदों में रावी नदी पर एक स्थान हरियापिया का उल्लेख मिलता है। जहां आर्यों ने युद्ध किया था। यह नाम हड़प्पा के नाम के समान है।
ख) भूकम्प से बाढ़ के मैदानों का स्तर ऊंचा हो गया, जिससे नदी के पानी का समुद्र में जाने का रास्ता अवरुद्ध हो गया और पानी शहरों में घुस गया।		ख) घग्घर नदी के सूखने का अभी तक काल निर्धारण नहीं हो सका है।	**आलोचना**
ग) भूकम्प से भूमि समुद्र तट से दूर चली गई, जिससे वाणिज्य नगरों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।			हड़प्पा का ह्रास 1800 ई. पू. के आस पास हुआ जबकि आर्य 1500 ई. पू. से पहले नहीं आए। अतः हड़प्पा निवासियों और आर्यों का संघर्ष स्वीकार करना कठिन है।
आलोचना			
क) इस सिद्धांत से सिंधु घाटी के बाहर की बस्तियों के ह्रास के संबंध में स्पष्टीकरण नहीं मिलता।			
ख) दिवर्तनिक विक्षोभ से कोई नदी अवरुद्ध नहीं हो सकती।			

ईंधन के स्रोतों को तेजी से समाप्त कर रही थी। हड़प्पा के नगर निवासियों, किसानों और पशुचारकों की सम्मिलित आवश्यकताएं इन क्षेत्रों में सीमित उत्पादन क्षमताओं से अधिक थीं। इसलिए मनुष्यों और पशुओं की बढ़ती हुई आबादी के कारण जिसे अपर्याप्त स्रोतों का सामना करना पड़ रहा था, प्रकृति की छटा मद्धम पड़ने लगी।

जंगल और घास के मैदान धीरे-धीरे लुप्त होते जाने के कारण अब अधिक बाढ़ आ रही थी और अधिक सूखा पड़ रहा था। जीविका के इस आधार के नष्ट हो जाने के कारण इस सभ्यता की समस्त अर्थव्यवस्था पर बहुत दबाव पड़ा। लगता है कि धीरे-धीरे लोग उन क्षेत्रों में बसने के लिए जाने लगे जहां जीविका की बेहतर संभावनाएं थी। यही कारण है कि हड़प्पा समुदाय सिंधु से दूर गुजरात और पूर्वी क्षेत्रों की ओर चले गए। अब तक जिन सिद्धांतों पर चर्चा हुई है, उन सभी में से फेयर सर्विस का सिद्धांत सर्वाधिक युक्ति-युक्त लगता है। संभवतः नगर नियोजन और जीवन स्तर में क्रमिक ह्रास हड़प्पा निवासियों का जीविका आधार समाप्त हो जाने के कारण था। ह्रास की यह प्रक्रिया आस-पास के समुदायों के आक्रमणों और छापों से पूरी हुई। तथापि पर्यावरण संकट के सिद्धांत में भी कुछ समस्याएं हैं।

- भारतीय उंपमहाद्वीप की भूमि की उर्वरता बाद के सहस्त्राब्दों तक बनी रही, इससे इस क्षेत्र में भूमि की क्षमता समाप्त होने की प्राक्कल्पना उचित सिद्ध नहीं होती।
- साथ ही हड़प्पा निवासियों की जरूरतों की गणना अल्प सूचनाओं पर आधारित है और हड़प्पा निवासियों की जीविका संबंधी अपेक्षाओं की गणना करने के लिए काफी अधिक और सूचना अपेक्षित है।

इस प्रकार हड़प्पा निवासियों की आवश्यताओं की एकता अल्प अपर्याप्त सूचना पर आधारित गणना तब तक मात्र प्राक्कल्पना ही रहेगी जब तक इसके पक्ष में और अधिक साक्ष्य नहीं जुटाए जा सकेंगे।

हड़प्पा-सभ्यता के आविर्भाव में नगरों कस्बों और गांवों, शासकों, किसानों और खानाबदोशों के बीच संबंधों का नाजुक संतुलन था। उनका पड़ौस के क्षेत्रों के उन समुदायों से भी दुर्बल लेकिन महत्वपूर्ण सम्बंध थे। इसी प्रकार, उनका समकालीन सभ्यताओं और संस्कृतियों से भी संपर्क बना हुआ था। इसके अतिरिक्त, हमें प्रकृति से संबंध के लिए पारिस्थितिक घटक पर भी विचार करना होगा। संबंध की इन शृंखलाओं की कोई भी कड़ी टूटने से नगरों के ह्रास का पथ प्रशस्त हो सकता था।

9.5 परम्परा बाद में भी जीवित रही

सिंधु-सभ्यता का अध्ययन करने वाले विद्वान अब इसके ह्रास के कारण नहीं खोजते। इसका कारण है कि जिन विद्वानों ने हड़प्पा-सभ्यता का अध्ययन 1960 के दशक तक किया था। उनका मत था कि सभ्यता का अंत अचानक हुआ। इन विद्वानों ने अपना कार्य नगरों, नगर नियोजन और बड़ी संरचनाओं के अध्ययनों पर ही केन्द्रित किया। ऐसी समस्याएं, जैसे हड़प्पा नगरों के समकालीन गांवों से संबध और हड़प्पा-सभ्यता के विभिन्न तत्वों की निरन्तरता अनदेखी कर दी गई। इस प्रकार हड़प्पा-सभ्यता के ह्रास के कारणों के संबंध में वाद-विवाद अधिक से अधिक अमूर्त बनता गया। 1960 के दशक के अन्तिम चरण में जाकर ही मलिक और पौसेल जैस विद्वानों ने अपना ध्यान हड़प्पा परम्परा की निरन्तरता के विभिन्न पहलुओं पर केंद्रित किया। इन अध्ययनों के परिणाम हड़प्पा-सभ्यता के ह्रास के कारणों के संबंध में वाद-विवाद से मुकाबला कहीं अधिक उत्तेजक निकला है। यह सत्य है कि हड़प्पा और मोहनजोदड़ो को उनके निवासी खाली कर गए थे और नगर चरण समाप्त हो गया था। तथापि यदि हम हड़प्पा सभ्यता के सम्पूर्ण भौगोलिक प्रसार के परिप्रेक्ष्य में देखें तो काफी वस्तुएं उसी पुरानी शैली में चलती दिखाई देंगी। पुरातात्विक दृष्टि से कुछ परिवर्तन ध्यान देने योग्य हैं। कुछ बस्तियां तो खाली कर दी गई पर अधिकतर और बस्तियों में रिहाइश जारी रही। तथापि, एकरूप लेखन, मुहर बांट और मिट्टी के बर्तनों की परम्परा समाप्त हो गई। दूर-दराज की बस्तियों के बीच घनिष्ठ अंतःक्रिया सूचक

वस्तुएं नष्ट हो गईं। अन्य शब्दों में नगर केंद्रित अर्थव्यवस्थाओं से संबद्ध कार्यकलाप समाप्त हो गए। इस प्रकार जो परिवर्तन आए वे केवल नगर चरण की समाप्ति के ही सूचक थे। छोटे-छोटे गांव और कस्बे तब भी बने रहे और इन स्थानों की पुरातात्विक खोजों में हड़प्पा-सभ्यता के अनेक तत्व मिले हैं।

सिंध में अधिकतर स्थानों में मृद्भांड परम्परा में कोई अंतर दिखाई नहीं पड़ता। वस्तुतः गुजरात, राजस्थान और हरियाणा क्षेत्र के बाद के कालों में प्रवासी कृषि समुदायों का बहुत बड़ी संख्या में आविर्भाव हुआ। इस प्रकार क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य में नगर चरण के बाद का काल समृद्ध गांवों का काल था। जिसमें नगर चरण के मुकाबले कहीं अधिक गांव थे। यही कारण है कि विद्वान आज सांस्कृतिक परिवर्तन, क्षेत्रीय प्रवयप और बसने और जीविका के तंत्र में संशोधन जैसे विषयों पर चर्चा करते हैं। तथापि कोई भी प्रारम्भिक मध्यकालीन भारत में प्राचीन भारतीय सभ्यता नष्ट होने के बारे में बात नहीं करता जबकि गंगा घाटी के अधिकतर नगरों का ह्रास हुआ था। आइए देखें नगर चरण की समाप्ति के बाद भी किस प्रकार के पुरातात्विक अवशेष विद्यमान थे।

9.5.1 सिंध

सिंध में, आमरी और चान्हुदाड़ों झकर जैसे हड़प्पा कस्बों में लोग ऐसे ही रहते रहे जैसे पहले रहते थे। वे अब भी ईंटों के मकानों में रहते थे पर उन्होंने सुनियोजित विन्यास त्याग दिया था। वे मामूली भिन्न मृद्भांड उपयोग में ला रहे थे जिसे भूकर मृद्भांड कहा जाता था। यह पांडुबतैन थे जिनमें लाल पट्टी थी और काले रंग में चित्रकारी थी। हाल ही के अध्ययनों से पता चला है कि यह "मृद्भांड प्रौढ़ हड़प्पा" मृद्भांड से विर्रासत किए गए थे और इसलिए इसे कोई नई चीज नहीं माना जाना चाहिए। झकर में कुछ विशिष्ट धातु की वस्तुएं मिली हैं जो ईरान के साथ व्यापार संबंधों की सूचक हो सकती हैं और इससे अधिक इस बात की भी संभावना प्रदर्शित करती हैं कि ईरानी अथवा मध्य एशिया प्रभावों वाले प्रवासियों का बड़ी संख्या में आगमन हुआ। दंड विवर, कुल्हाड़ियां, और तांबे की पिनें, जिनके सिरे कुड़लाकार अथवा अलकृत थे, जैसी यहां मिली हैं वैसी ईरानी वस्यिातको में भी मिली हैं। पत्थर अथवा प्रकाशित वस्तु की गोलाकार मुहरें और कांस्य प्रसाधन जार सिंधु के पश्चिम की संस्कृतियों से सम्पर्क के सूचक हैं।

9.5.2 भारत-ईरानी सीमांत प्रदेश

सिंधु नदी के पश्चिम के क्षेत्र-बलूचिस्तान और भारत-ईरानी सीमांत प्रदेश में भी उन लोगों के रहने के प्रमाण मिले हैं जो ठप्पेदार ताम्रमुद्रा और ताम्र दंड विवर कुल्हाड़ियां इस्तेमाल करते थे। शाही टम्प मुंडीगाक, नौ शहरों और पीराक जैसे स्थलों पर लोगों के ईरान से आवागमन और सम्पर्कों के प्रमाण मिले हैं। दुर्भाग्यवश हम बस्तियों का काल निर्धारण अभी तक स्पष्ट रूप से नहीं किया जा सका है।

9.5.3 पंजाब, हरियाणा और राजस्थान

पंजाब, हरियाणा और राजस्थान के क्षेत्रों में ऐसी अनेक बस्तियों की सूचना मिली हैं जहां नगरों के ह्रास के बाद भी लोग उसी पुराने तरीके से रहते आ रहे थे। तथापि, मृद्भांड परम्परा पर हड़प्पा-सभ्यता के प्रभाव धीरे-धीरे क्षीण हो रहे थे और स्थानीय मृद्भांड परम्पराओं ने हड़प्पा मृद्भांड परम्परा का पूरी तरह स्थान ले लिया। इस प्रकार, इन क्षेत्रों में प्रादेशिक परम्पराओं के अक्षुण्ण बने रहने से नगर रूप का ह्रास प्रतिबिम्बत होता है। मीराथल, बाड़ा, रोपड़ और सीसवाल के स्थल सुप्रसिद्ध हैं। बाड़ा और सीसवाल में ईंटों के मकान मिले थे। इनमें से कई स्थलों में गैरिक मृद्भांड मिले हैं। प्राचीन भारत में अनेक प्रारंभिक ऐतिहासिक स्थलों में ऐसे मृद्भांड मिले हैं इसलिए पंजाब, हरियाणा और राजस्थान की ये ग्राम्य संस्कृतियां परवर्ती हड़प्पा परम्परा से संबद्ध हैं और प्रारंभिक भारतीय परम्परा का पूर्व ज्ञान कराती हैं। इन पर परवर्ती हड़प्पा प्रभाव अल्प मात्रा में दिखाई देते हैं। यह केन्द्र भारतीय सभ्यता के बाद के चरण का केन्द्र बिन्दु बना।

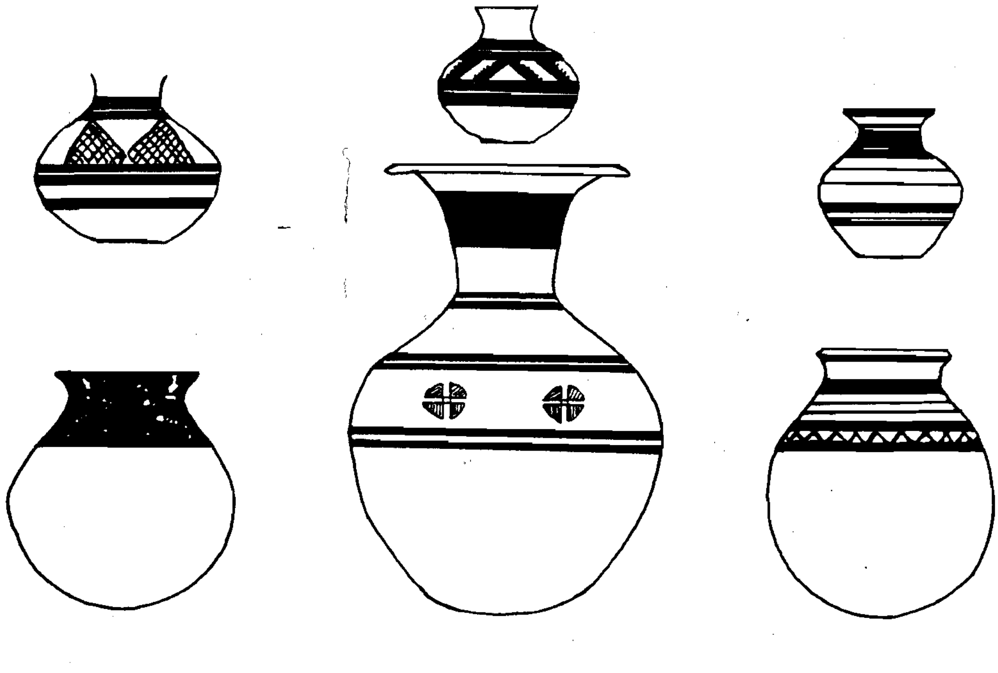

चित्र-19 उत्तर हड़प्पा काल के मिट्टी के बर्तन हरियाणा से

9.5.4 कच्छ और सौराष्ट्र

कच्छ और सौराष्ट्र में नगर चरण का अंत रंगापुर और सोमनाथ जैसे स्थानों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। नगर चरण में भी उनकी हड़प्पा मृद्भांड परम्परा के सह अस्तित्व में स्थानीय मृत्तिका परम्परा थी। यह परम्परा बाद के चरणों में भी बनी रही। रंगापुर जैसे कुछ स्थल बाद के काल में अधिक समृद्ध हो गए प्रतीत होते हैं। वे जिन मृद्भांडों का उपयोग करते थे उन्हें ''चमकीले लाल भांड'' कहा जाता है तथापि लोगों ने दूरस्थ क्षेत्रों से आयातित औजार तथा सिंधु कालीन बाट और लिपी का उपयोग बंद कर दिया। अब वे स्थानीय रूप से उपलब्ध पत्थरों से बने पत्थरों के औज़ार काम में ला रहे थे।

''प्रौढ़ हड़प्पा'' चरण में गुजरात में 13 बस्तियां थी। परवर्ती हड़प्पा चरण में जिसका काल लगभग 2100 ई. पू. है, बस्तियों की संख्या 200 या इससे और अधिक तक पहुंच गई। बस्तियों की संख्या में यह वृद्धि जो जनसंख्या की वृद्धि की द्योतक है, केवल जैविक कारणों से ही नहीं हुई थी। पूर्व आधुनिक समाजों में जनसंख्या कुछ ही पीढ़ियों में इतनी अधिक नहीं बढ़ सकती थी कि 13 बस्तियाँ बढ़कर 200 या और अधिक हो जाएं। इस प्रकार इस बात की निश्चित संभावना है कि इन नई बस्तियों में रहने वाले लोग अन्य क्षेत्रों से आए होंगे। परवर्ती हड़प्पा बस्तियाँ महाराष्ट्र में भी बताई गई हैं जहां उनकी संस्कृति उभरने वाले कृषि समुदायों की संस्कृतियों में विलीन हो गई।

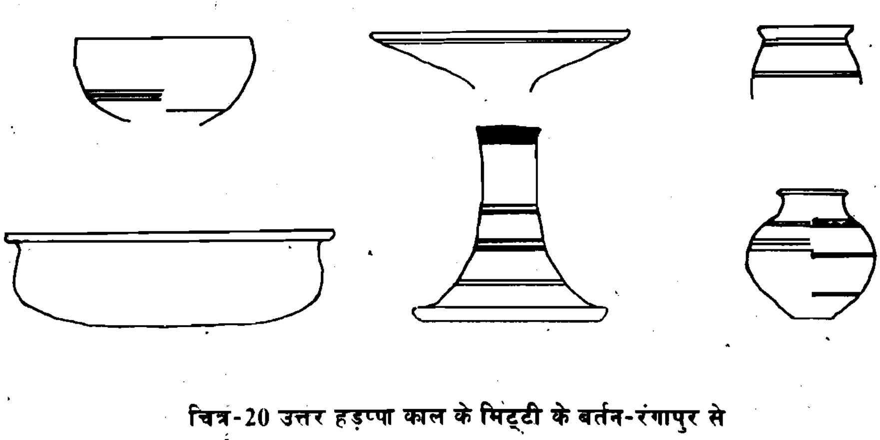

चित्र-20 उत्तर हड़प्पा काल के मिट्टी के बर्तन-रंगापुर से

9.6 हड़प्पा परम्परा का प्रसार

नगरों की आमरप्ति का यह अर्थ नहीं था कि हड़प्पा समुदाय आसपास के कृषि समूहों में विलीन हो गए। तथापि राज्य व्यवस्था और अर्थव्यवस्था में केन्द्रीय निर्णायन कार्य समाप्त हो गया था। जो हड़प्पा समुदाय नगर चरण के बाद भी बने रहे उन्होंने अवश्य ही अपनी पुरानी परम्पराओं को बनाए रखा होगा। इस बात की संभावना है कि हड़प्पा निवासी किसानों ने अपनी पूजा का रूप बनाए रखा होगा। हड़प्पा नगर केन्द्रों के पुरोहित अत्यन्त संगठित शिक्षित परम्परा के अंग थे। साक्षरता समाप्त हो गई थी, तब भी संभावना है, उन्होंने अपनी धार्मिक प्रथाएं बनाए रखीं होंगी। बाद के प्रारंभिक ऐतिहासिक काल के प्रभावी समुदाय ने अपने आप को "आर्य" कहा। ऐसा लगता है कि इन लोगों की अपनी कोई शिक्षित परम्परा नहीं थी। संभवतः हड़प्पा निवासियों के पुरोहित समूह आर्यों के शासक समूहों के साथ घुल-मिल गए। इस प्रकार हड़प्पा कालीन धार्मिक परम्पराओं का ऐतिहासिक भारत में प्रसार हुआ। लोक समुदायों ने दस्तकारी की अपनी परम्पराएं भी बनाए रखी, जो मृद्‌भांड और औजार निर्माण परम्पराओं से स्पष्ट होता है। इस बार फिर जब शिक्षित नागर संस्कृति प्रारंभिक भारत में उदय हुई। इसने लोक संस्कृतियों के मूल तत्व समाविष्ट कर दिए। इससे हड़प्पा परम्परा के प्रसार का अधिक कारगर माध्यम मिला।

ह्रास के सिद्धान्त 2

क्रमिक ह्रास के सिद्धांत

पारिस्थितिक असंतुलन के कारण ह्रास

साक्ष्य

1 यह गणना कि इन अर्ध शुष्क क्षेत्रों में पारिस्थितिक संतुलन इस लिए बिगड़ रहा था, क्योंकि मनुष्यों और मवेशियों की आबादी से वनों, खाद्य और ईंधन के अल्प साधन समाप्त होते जा रहे थे।

2 बनों के नष्ट होने से बाढ़ और सूखों की संख्या में वृद्धि हो रही थी।

3 कस्बों से लोग गुजरात और पूर्व के क्षेत्रों में चले गए।

4 ह्रास की यह प्रक्रिया आसपास की बस्तियों से हुए हमलों और धावों से पूरी हुई।

आलोचना

1 इस क्षेत्र में जमीन आज भी उपजाऊ है। इससे जमीन की शक्ति क्षीण हो जाने की प्राक्कल्पना उचित सिद्ध नहीं होगी।

2 यह प्राक्कल्पना प्रमाणित किए जाने से पहले हड़प्पा कस्बों की जरूरतों की गणना के लिए और अधिक सूचना जरूरी है।

ह्रास नहीं हुआ अथवा निरन्तरता प्राक्कल्पना

पारिस्थितिक तर्क सिंधु घाटी में मनुष्य और प्रकृति के बीच संबंधों पर ही केन्द्रित है। ह्रास को स्पष्ट करने में आई समस्याओं के कारण विद्वानों ने—

क) ह्रास के कारणों की खोज बन्द कर दी।

ख) हड़प्पा-सभ्यता की निरन्तरता को भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में देखा।

ग) स्वीकार किया कि नगरों का ह्रास हुआ और मुहरों, लेखन, मृद्‌भांड जैसी कुछ परम्पराएं समाप्त हो गईं।

9.7 हड़प्पा-सभ्यता के अवशेष

पशुपति (शिव) और मातृ देवी की उपासना और लिंग पूजा हम तक संभवतः हड़प्पा परम्पराओं से पहुँची है। इसी प्रकार पवित्र स्थानों, नदियों या वृक्षों या पवित्र पशुओं की उपासना स्पष्टतः भारत में बाद की ऐतिहासिक सभ्यता में भी जारी रही। कालीबंगन और लोथल में अग्नि पूजा बलि का साक्ष्य भी महत्वपूर्ण है। यह वैदिक धर्म के सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य थे। क्या आर्यों ने यह प्रथाएं हड़प्पा के पुरोहित वर्ग से सीखी थीं? इस प्राक्कल्पना के लिए और अधिक साक्ष्य की आवश्यकता है, पर ऐसा होने की संभावना तो है ही।

मकानों के नक्शे, जल-पूर्ति व्यवस्था और स्नान पर ध्यान जैसे घरेलू जीवन के अनेक पहलू इन बस्तियों में बाद के कालों में भी जारी रहे। भारत की पारम्परिक तोल और मुद्रा की प्रणाली जो इकाई के रूप में सोलह के अनुपात पर आधारित थी, हड़प्पा-सभ्यता काल में भी विद्यमान थी। ये उन्हीं से ली गई प्रतीत होती है। आधुनिक भारत में कुम्हार का चाक बनाने की प्रविधि हड़प्पावासियों द्वारा अपनाई गई प्रविधियों के समान ही है। आधुनिक भारत में इस्तेमाल की जाने वाली बैल गाड़ियाँ और नावें हड़प्पा के नगरों में भी विद्यमान थीं। अतः हम कह सकते हैं कि हड़प्पा-सभ्यता के अनेक तत्व परवर्ती ऐतिहासिक परम्परा में भी जीवित रहे।

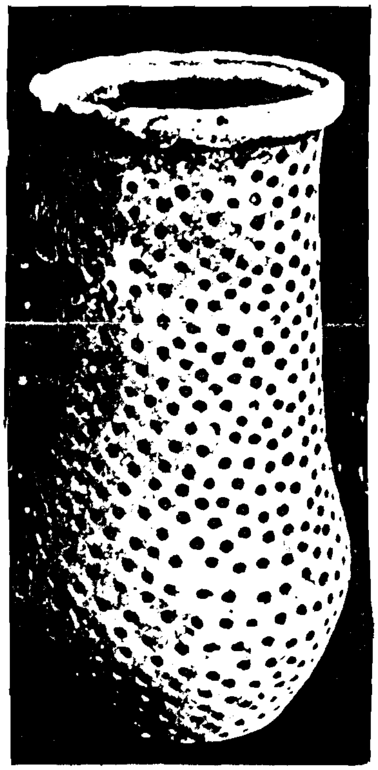

चित्र-21 छिद्रित बर्तन

बोध प्रश्न 2

1 पारिस्थितिक असंतुलन का सिद्धांत स्वीकार करना कठिन है, क्योंकि : (सही उत्तर पर (✓) का निशान लगाएं।
   i) इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि भूमि सिंधु घाटी क्षेत्र में आज भी उपजाऊ बनी हुई है। ( )
   ii) हड़प्पा कस्बों की जरूरतों के संबंध में बताने के लिए हमारे पास पर्याप्त आंकड़े नहीं हैं। ( )
   iii) कस्बों के लोग हड़प्पा में रहते रहें। ( )
   iv) (i) और (ii) दोनों सही हैं। ( )

2 सही विवरण पर (✓) निशान लगाएं।
विद्वान आजकल :
i) हड़प्पा-सभ्यता के ह्रास के नए कारण खोज रहे हैं। ( )
ii) उन्होंने हड़प्पा-सभ्यता के ह्रास के नए कारण खोजना बंद कर दिया है। ( )
iii) इस बात की खोज कर रहे हैं कि परवर्ती बस्तियों में हड़प्पा-सभ्यता का क्या-क्या बचा? ( )
iv) (ii) और (iii) दोनों। ( )

3 हड़प्पा-सभ्यता में क्या-क्या बचा है उसके महत्व का लगभग 50 शब्दों में प्रकाश डालें।

....

....

....

....

....

....

9.8 सारांश

हमने देखा है कि विद्वानों ने हड़प्पा-सभ्यता के आकस्मिक ह्रास के विभिन्न सिद्धांत प्रस्तुत किए हैं। लेकिन इन सभी सिद्धांतों को पर्याप्त साक्ष्य के अभाव में छोड़ना पड़ेगा। धीरे-धीरे विद्वानों ने हड़प्पा-सभ्यता के ह्रास के कारण खोजना बंद कर दिया है। अब हड़प्पा-सभ्यता के परवर्ती चरण को समझने पर ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है। इसका इसलिए अध्ययन किया जा रहा है ताकि हड़प्पा-सभ्यता की वे निरन्तरताएं प्रकाशित की जा सकें जो उस समय के समृद्ध कृषि समुदायों में जीवित रही होंगी। और निस्संदेह हड़प्पा-सभ्यता की कुछ ऐसी विशेषताएं थीं जो ऐतिहासिक चरण में भी चलती रहीं।

9.9 शब्दावली

पारिस्थितिकी : पौधों का पशुओं या मनुष्यों या संस्थाओं का पर्यावरण के संबंध में अध्ययन।

विवर्तनिक उत्थापन : वह प्रक्रिया जिससे पृथ्वी के धरातल के बहुत बड़े क्षेत्र ऊपर उठ जाते हैं।

आर्य : एक जन समूह जो संस्कृत लैटिन और ग्रीक आदि यूरोपीय भाषाएं बोलता था।

दास और दस्यु : ऋग्वेद में उलिखित लोग। आर्यों का उनके सरदारों के साथ संघर्ष रहता था।

गैरिक मृद्भांड : उच्च गंगा मैदानों में पाए जाने वाले मृद्भांड। ये उन तलों पर पाए गए हैं जो प्रारंभिक भारतीय ऐतिहासिक मृद्भांड के आधार हैं।

परवर्ती तल : जिन पुरातात्विक स्थलों की खुदाई की जाती है वे अपने कालों के अनुसार परतों अथवा आवास तलों में विभक्त किए जाते हैं। अतः परवर्ती अथवा सबसे कम पुराना बस्ती तल स्थल के शीर्ष के पास होगा और सबसे पुराना सबसे नीचे की परत पर होगा।

रिहायशी संचय : जिस स्थल की खुदाई हो गई है, उसके प्रत्येक तल पर मृद्भांड आदि के रूप में यह दर्शाने के लिए साक्ष्य होंगे कि उस स्थल पर रिहायश थी। ये संचय रिहायशी संचय कहलाते हैं।

9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 ii)
2 iv)
3 उपभाग 9.3.4 देखें। आपके उत्तर में भौतिक साक्ष्य और लिखित साक्ष्य दोनों शामिल होने चाहिए।

बोध प्रश्न 2

1 iv)
2 iv)
3 भाग 9.7 देखें। आपको अपने उत्तर में यह बताना है कि इससे हड़प्पा परम्परा की निरन्तरता का संकेत कैसे मिलता है।

हड़प्पा-सभ्यता की कुछ मोहरें

इकाई 10 ताम्र पाषाण युग तथा आरंभिक लौह युग-I

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 गेरुए चित्रित बर्तनों की संस्कृति
10.3 ताम्र भंडारों की समस्या
10.4 काले एवं लाल मृद्भांड संस्कृति
10.5 चित्रित घूसर मृद्भांड (Painted Grey Ware) संस्कृति
10.6 उत्तरी काले पॉलिश वाली मृद्भांड (Northern Black Polished Ware) संस्कृति
 10.6.1 भवनों के अवशेष
 10.6.2 बर्तन
 10.6.3 अन्य वस्तुएँ
 10.6.4 गहने
 10.6.5 मिट्टी की मूर्तियां
 10.6.6 जीवन-यापन अर्थव्यवस्था एवं व्यापार
10.7 पश्चिमी, पूर्वी एवं मध्य भारत की ताम्र पाषाण युगीन संस्कृतियाँ
 10.7.1 बर्तन : पहचान के लक्षण
 10.7.2 अर्थव्यवस्था
 10.7.3 घर एवं बस्तियाँ
 10.7.4 अन्य विशेषताएँ
 10.7.5 धर्म एवं विश्वास
 10.7.6 सामाजिक संगठन
10.8 सारांश
10.9 शब्दावली
10.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

खण्ड II में आपने हड़प्पा-सभ्यता के विभिन्न चरणों तथा समाज एवं संस्कृति के विभिन्न पक्षों की जानकारी प्राप्त की। आपने इसके भौगोलिक विस्तार तथा इसके पतन एवं फैलाव के प्रति भी जानकारी प्राप्त की।

इस इकाई में हम उत्तरी, पश्चिमी, मध्य एवं पूर्वी भारत में उत्तर हड़प्पा ताम्र पाषाण सभ्यता के बारे में चर्चा करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न विषयों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे :

- इन संस्कृतियों की भौगोलिक स्थिति तथा यहाँ के लोगों द्वारा स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढालना,
- किस प्रकार के घरों में लोग रहते थे, वे कौन से अन्न उगाते थे और किस प्रकार के औज़ारों का प्रयोग करते थे,
- किस प्रकार के बर्तनों को प्रयोग में लाया जाता था,
- लोगों के क्या धार्मिक विश्वास थे, और
- आरम्भिक लौह युग में कौन-कौन से परिवर्तन आये।

10.1 प्रस्तावना

दूसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व तक भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में विभिन्न क्षेत्रीय संस्कृतियाँ अस्तित्व में आयीं। यह संस्कृतियाँ न तो शहरी थीं और न ही हड़प्पा संस्कृति की तरह थीं बल्कि पत्थर एवं ताँबे के औज़ारों का इस्तेमाल इन संस्कृतियों की अपनी विशिष्टता थी। अतः यह संस्कृतियाँ ताम्र पाषाण संस्कृतियों के नाम से जानी जाती हैं।

ताम्र पाषाण संस्कृतियाँ अपनी भौगोलिक स्थितियों के आधार पर पहचानी जाती हैं। इस प्रकार हम इन्हें निम्नलिखित रूप में वर्गीकृत करते हैं :

- राजस्थान में बानस संस्कृति (बानस थाले में स्थित)
- कायथ संस्कृति (काली सिंध (चम्बल की सहायक नदी) के तट पर स्थित कायथ) जो मध्य भारत (नर्मदा, तापती तथा माही घाटी में) में कई स्थलों पर पाई जाती हैं
- मालवा संस्कृति (मालवा तथा मध्य प्रदेश एवं महाराष्ट्र के अन्य भागों में बिखरी संस्कृति)
- जोर्वे संस्कृति (महाराष्ट्र)।

इन संस्कृतियों से सम्बन्धित स्थलों की खुदाई से हम इनके निम्न पक्षों के बारे में विस्तृत अनुमान लगा सके हैं:

- बस्तियों का फैलाव
- अर्थव्यवस्था का ढाँचा
- शव गृह और शवदाह के तरीके
- धार्मिक विश्वास।

खुदाई स्थलों में इस संस्कृति से सम्बंधित वस्तुओं के साथ-साथ उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, बिहार, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा एवं कर्नाटक के विभिन्न भागों में ताम्र/कांस्य की वस्तुओं के भंडार प्राप्त हुए हैं। चूंकि यह वस्तुएं भंडारों (उपरोक्त राज्यों के 85 स्थानों पर लगभग एक हजार वस्तुएं प्राप्त हुई हैं) के रूप में प्राप्त हुई हैं अतः इन क्षेत्रों के एक भिन्न ताम्र भंडार संस्कृति से सम्बद्ध होने का अनुमान लगाया गया। साईपई (इटावा जिला) उत्तर प्रदेश में ताम्र मत्स्यभाला तथा उसके साथ गेरुए चित्रित बर्तन (OCP) प्राप्त हुए हैं। यद्यपि कुछ अन्य ताम्र वस्तुओं के भंडार स्थलों में भी गेरुए चित्रित बर्तन मिले हैं किन्तु इस ताम्र भंडार का चित्रित बर्तनों के साथ सीधा सम्पर्क नहीं है। चूंकि गंगा-यमुना दोआब में एक सौ से अधिक स्थानों पर ये विशिष्ट प्रकार के बर्तन प्राप्त हुए हैं अतः इन्हें गेरुए चित्रित बर्तनों की संस्कृति से सम्बद्ध माना जाता है। गेरुए चित्रित बर्तनों की संस्कृति के बाद काले एवं लाल मृद्भाण्डों की संस्कृतियां तथा चित्रित घूसर मृद्भाण्डों की संस्कृतियां जो कि विशिष्ट प्रकार के बर्तनों के आधार पर पहचानी जाती हैं, का युग आता है। उत्तर भारत में हरियाणा तथा ऊपरी गंगा घाटी में चित्रित घूसर मृद्भांड के स्थलों की बड़ी संख्या

> इस बिन्दु पर काले एवं लाल मृद्भाण्ड, पॉलिश किए घूसर मृद्भाण्ड तथा उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्ड जैसी शब्दावलियों की व्याख्या आवश्यक है। यह संस्कृतियां बर्तनों की विशिष्ट किस्मों के आधार पर निर्धारित की जाती है क्योंकि बर्तनों की विशिष्ट किस्म उक्त संस्कृति का विशिष्ट लक्षण होती है यद्यपि उक्त संस्कृति के कई अन्य पक्ष भी हो सकते हैं। विशिष्ट मृद्भाण्डों अथवा बर्तनों का प्रयोग किसी विशिष्ट संस्कृति की पहचान अथवा उसे नाम देने के उद्देश्य से किया जाता है। उदाहरणार्थ किसी विशेष क्षेत्र में यदि चित्रित घूसर मृद्भाण्ड पाए जाते हैं तो वहां की संस्कृति को चित्रित घूसर मृद्भाण्डों की संस्कृति कहा जाता है।

मिलती है जिनमें से 30 की अब तक खुदाई हो चुकी है लोहे का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम चित्रित घूसर मृद्भाण्ड संस्कृति में होता है, जो कि उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्डों की संस्कृति के नाम से जानी जाती थी तथा आगे के चरणों में इसका प्रयोग बहुत विस्तृत पाया जाता है। 600 ईसा पूर्व से शहरीकरण का आरंभ दिखाई पड़ता है।

हड़प्पा सभ्यता के पतन के बाद के सांस्कृतिक विकास को समझने के लिए हमें चर्चा उत्तर भारत, विशेषकर गंगा-यमुना दोआब से आरंभ करनी चाहिए।

10.2 गेरुए चित्रित बर्तनों की संस्कृति

1950 में उत्तर प्रदेश में बिसौली (बदायूं जिला) तथा राजपुर परसू (बिजनौर जिला) जो कि दोनों ही ताम्र भंडार क्षेत्र हैं, की परीक्षण दृष्टि से खुदाई में नए किस्म के बर्तन प्राप्त हुए। बर्तन मध्यम स्तर की दानेदार मिट्टी से बनाकर कम तपाए गए हैं। इन्हें नारंगी से लेकर लाल रंग तक के गेरुए जो कि प्रायः घिसने पर धूमिल हो जाता है, रंग से रंगा गया है। इस प्रकार के मृद्भाण्डों से सम्बद्ध क्षेत्र गेरुए चित्रित बर्तनों की संस्कृति वाले क्षेत्र कहलाते हैं। मायापुर (सहारनपुर जिला) से लेकर साईपई (इटावा जिले) तक लगभग 110 स्थल इस विशिष्ट संस्कृति के हैं।

गेरुए चित्रित बर्तनों के क्षेत्र सामान्यतः नदियों के तटों पर मिले हैं। यह क्षेत्र आकार में छोटे हैं तथा कई क्षेत्रों (जैसे बहादराबाद, बिसौली, राजपुर परसू, साईपई) में टीलों की ऊँचाई काफी कम है। इससे इन बस्तियों के जीवन काल अवधि अपेक्षाकृत कम होने की ओर संकेत मिलता है। बस्तियों के बीच की दूरी 5 से 8 किलोमीटर के बीच पायी गयी है। कुछ गेरुए चित्रित बर्तनों के क्षेत्रों (जैसे अम्बखेरी, बहेरिया, बहादराबाद, झिंझाना, लाल किला, अतरंजीखेड़ा, साईपई) की खुदाई से यहां नियमित बस्तियाँ होने के लक्षण नहीं मिले हैं। हस्तिनापुर तथा अहिक्षेत्र में गेरुए चित्रित बर्तनों की संस्कृति तथा इसके बाद आने वाली चित्रित घूसर बर्तनों की संस्कृति के बीच की प्रक्रिया अवरोधित प्रतीत होती है जबकि अतरंजीखेड़ा में गेरुए चित्रित बर्तनों के स्तर के बाद काले एवं लाल मिट्टी के बर्तनों के स्तर आते हैं।

गेरुए चित्रित बर्तनों की संस्कृति के भौतिक अवशेष मुख्य रूप से बर्तन हैं। इनमें जार (भंडारण करने वाले जार सहित), प्याले, गोल आधार वाले प्याले, सुराही, दस्तेवाले बर्तन, छोटे बर्तन, पात्र, टोटी वाले बर्तन आदि शामिल हैं।

अन्य वस्तुओं में, पक्की मिट्टी की चूड़ियाँ, पक्की मिट्टी के मनके तथा इन्द्रगोप, पक्की मिट्टी की जानवरों की मूर्तियां एवं गाड़ी के पहिए जिनके केन्द्र में एक गुमटा है, पत्थर की चक्की एवं मूसल तथा हड्डियों के हरावल प्राप्त हुए। साईपई में गेरुए चित्रित बर्तनों के क्षेत्र में एक ताम्र मत्स्यभाला भी प्राप्त हुआ है।

घरों के ढांचों से सम्बंधित अधिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। पुराना किला से प्राप्त प्रमाणों, जो कि अपर्याप्त हैं, के आधार पर अनुमान लगाया गया है कि फर्श थापी हुई मिट्टी के बनाए जाते थे। घर सरपट एवं उस पर मिट्टी की लिपाई के साथ बनाए जाते थे। ऐसा अनुमान पुराना किला में प्राप्त तपी मिट्टी के प्लास्टर एवं मिट्टी पर सरकड़े एवं बांस के निशानों के आधार पर लगाया गया है।

इस संस्कृति से सम्बंधित अतरंजीखेड़ा से प्राप्त पुरातात्विक-वानस्पतिक अवशेषों से पता चलता है कि इन क्षेत्रों में धान, जौ, दालें तथा घिसारी की फसल उगाई जाती थी। बर्तनों के प्रकारों में समानता के आधार पर कुछ विद्वानों का विचार है कि गेरुए रंगे बर्तन हड़प्पा सभ्यता के अंतिम काल के बिगड़े हुये रूप की तरह के हैं।

गेरुए चित्रित बर्तनों से प्राप्त ताप संदीप्ति परीक्षा के आधार पर यह संस्कृति 2000 ईसा पूर्व से 1500 ईसा के बीच मानी गयी है।

10.3 ताम्र भंडारों की समस्या

ताम्र भंडार संस्कृति से सम्बद्ध प्रथम ताम्र वस्तु (ताम्र मत्स्यभाला) 1822 में ही कानपुर जिले के बिठूर नामक स्थान पर प्राप्त हुई। तब से लेकर अब तक 85 विभिन्न क्षेत्रों में लगभग एक हजार ताम्र वस्तुएं भंडारों में मिली हैं।

विभिन्न राज्यों में ताम्र भंडार क्षेत्र

राज्य	क्षेत्रों की संख्या
हरियाणा	5
राजस्थान	6
उत्तर प्रदेश	33
बिहार	19
पश्चिमी बंगाल	6
उड़ीसा	7
मध्य प्रदेश	8
कर्नाटक	1

यह संभव है कि ऐसे ताम्र भंडार गुजरात और आंध्र प्रदेश में मिले हों परन्तु इनकी विधिवत सूचना उपलब्ध नहीं करायी गयी है।

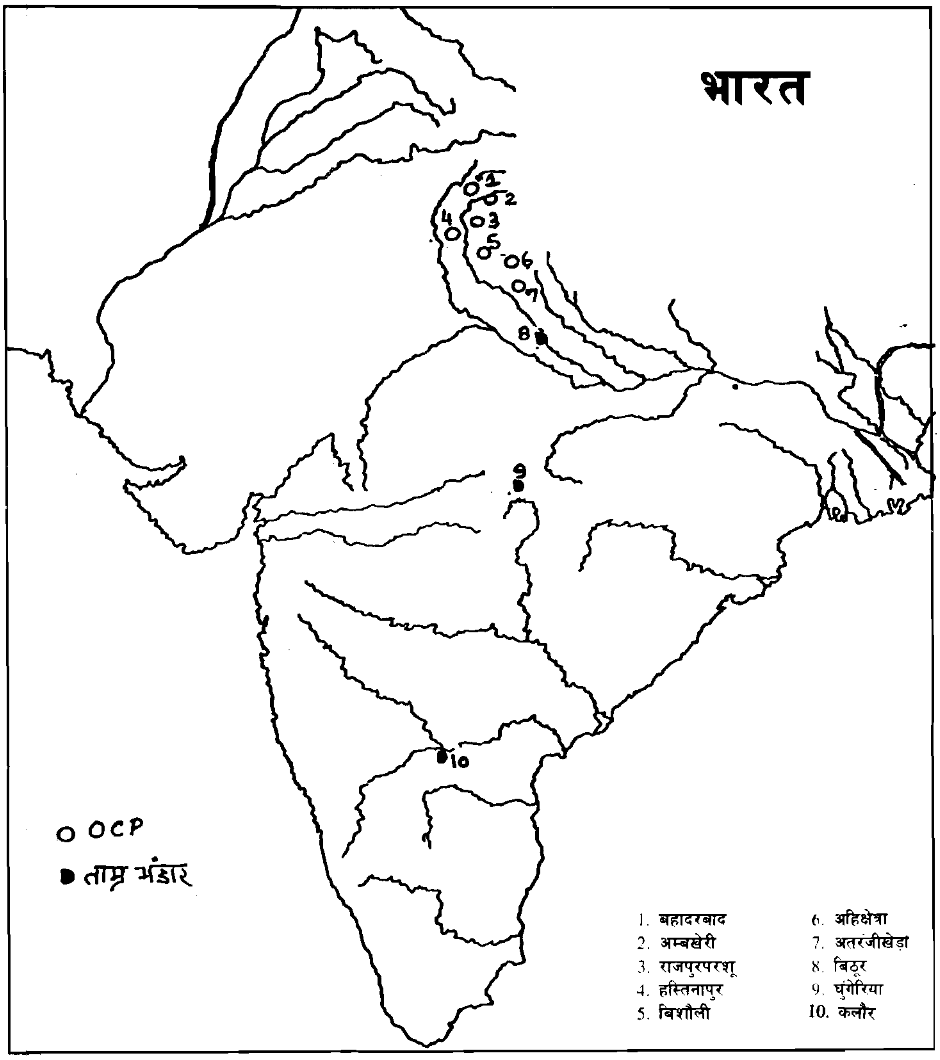

1. गेरुए रंग के मृद्भाण्ड तथा ताम्र वस्तुओं के भंडारों को दर्शाता मानचित्र

मध्य प्रदेश में गुगेरिया को छोड़कर, जहां कि केवल एक भंडार से 424 ताम्र वस्तुएं प्राप्त हुई हैं, भंडारों में ताम्र वस्तुएं पाए जाने की औसत 1 से 47 के बीच है। यह ताम्र भंडार हल चलाते समय, नहर खोदते अथवा सड़क बनाते समय प्रकाश में आए एवं सभी उपलब्धियां संयोगिक रही हैं। केवल साईपई में ही गेरुए चित्रित बर्तनों से सम्बधित क्षेत्र की खुदाई में एक ताम्र मत्स्य भाला प्राप्त हुआ था।

इन ताम्र भण्डारों में निम्न वस्तुयें विशिष्ट हैं

शृंगिका तलवार : शृंगिका तलवार (जिसकी लम्बाई 40 से.मी. से 50 से.मी. के बीच है) में एक फलक तथा एक दस्ता है। दस्ता किसी कीटाणु के शृंगिका की भांति विभक्त है। शृंगिका तलवार के फलक का मध्य वक्र काफी स्पष्ट है।

बेधनी तलवार : इन तलवारों में फलक के बजाए दस्ते पर कांटेदार बेधनी हैं।

मानवकल्प : मानवकल्प विशालकाय मानवरूपी वस्तु है जिनके हाथ मुड़े हुए हैं तथा बाहरी सिरा धारदार है। बाजू सर की अपेक्षा पतले हैं। लम्बाई में 25 से.मी. से 45 से.मी. तथा चौड़ाई में 30 से. मी. से 43 से.मी. के बीच है। इनका वजन 5 किलोग्राम तक है।

(इनके अतिरिक्त अन्य प्रमुख वस्तुयें नीचे दिये गये चित्र में दर्शायी गयी हैं।)

साईपई में गेरुए चित्रित बर्तनों के साथ ताम्र मत्स्यभाले के पाए जाने तथा अन्य गेरुए चित्रित मृद्भाण्ड क्षेत्रों में ताम्र भंडार पाए जाने (यद्यपि यह प्रत्यक्ष पुरातात्विक संबंध पर आधारित नहीं हैं) के आधार पर इन्हें गेरुए चित्रित मिट्टी के बर्तनों की संस्कृति से जोड़ा जा सकता है। इस प्रकार ताम्र भंडारों का काल 2000 ईसा पूर्व से 1500 ईसा पूर्व के बीच रखा जा सकता है।

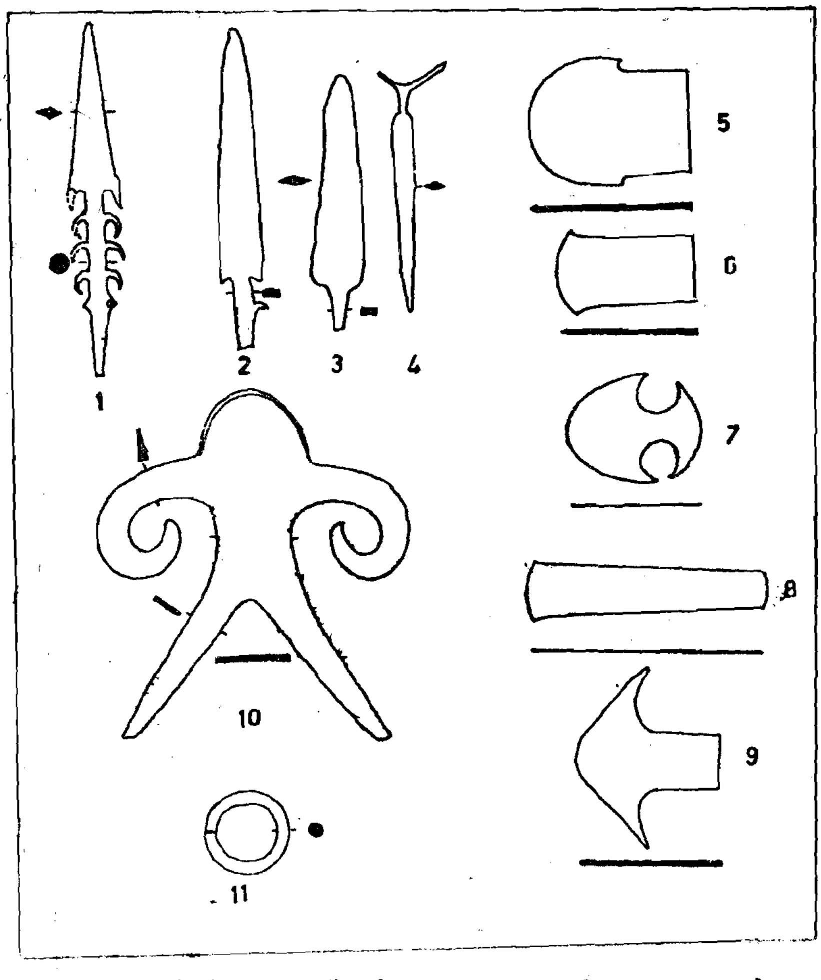

2. तांबे की वस्तुएँ–1. बेधनी तलवार 2. कांटे वाली तलवार 3. तलवार 4. शृंगिका तलवार 5-6. आदिम कुल्हाड़ी 7. दुधारी कुल्हाड़ी 8. पट्टीदार आदिम कुल्हाड़ी 9. स्कंध कुल्हाड़ी 10. मानवकल्प 11. छल्ला

बोध प्रश्न 1

1 गेरुए चित्रित बर्तनों की संस्कृति की मुख्य विशेषताओं पर दस पंक्तिया लिखें

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2 निम्नलिखित में से कौन सा वक्तव्य सही (✓) है और कौन सा गलत (×) है

क) गेरुए चित्रित बर्तन पहाड़ी क्षेत्रों में पाए गए हैं। ( )

ख) गेरुए चित्रित बर्तनों के भौतिक अवशेष मुख्यत: घरों के ढांचे हैं। ( )

ग) ताम्र भंडारों का काल 2500 ई. पू. है। ( )

घ) अधिकतर ताम्र भंडार संयोगिक रूप से प्राप्त हुए हैं। ( )

10.4 काले एवं लाल मृद्भाण्ड संस्कृति

1960 के दशक के आरंभ में अतरंजीखेड़ा में खुदाई के दौरान एक विशिष्ट प्रकार के, गेरुए चित्रित बर्तनों एवं चित्रित घूसर मृद्भाण्डों के स्तरों के बीच के, मृद्भाण्ड प्रकाश में आए। इस स्तर के विशिष्ट बर्तन काले एवं लाल मृद्भाण्ड कहे जाते हैं। जोधपुरा एवं नोह (राजस्थान) से 1970 के दशक में इसी प्रकार के स्तरीय क्रम प्रकाश में आए। किंतु अहिक्षेत्र, हस्तिनापुर एवं आलमगीरपुर में काले एवं लाल मृद्भाण्ड रंगे घूसर मृद्भाण्डों के साथ प्राप्त हुए हैं।

बर्तन

इन बर्तनों के विशिष्ट लक्षण यह हैं कि बर्तनों के अन्दर के भाग तथा बाहर के भाग में किनारा काले रंग तथा शेष बर्तन लाल रंग से चित्रित हैं। ऐसा विश्वास है कि रंग का यह समायोजन बर्तनों को उल्टा करके तपा कर लाया गया है। बर्तन अधिकतर चाक पर बनाये गये हैं, यद्यपि कुछ हाथ से बनाए हुए बर्तन भी हैं। महीन मिट्टी के बने इन बर्तनों की बनावट काफी सुगठित हैं तथा किनारे पतले हैं। काले एवं लाल मृद्भाण्ड राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार तथा पश्चिमी बंगाल में भी पाए गए हैं, किंतु दोआब के काले एवं लाल मृद्भाण्डों पर रंगाई नहीं की गयी है।

अन्य वस्तुएं

अतरंजीखेड़ा में खुदाई के दौरान पत्थर के टुकड़े, पत्तर तथा टुकड़े, स्फटिक, सिक्थस्फटिक, अकीक तथा इन्द्रगोप के मूलभाग, इन्द्रगोप सीप तथा ताम्र, ताम्र का एक चक्र, तथा हड्डी से बनी एक कंघी का एक टुकड़ा प्राप्त हुआ है। पत्थर अथवा धातु के कोई औजार नहीं मिले हैं। जोधपुरा में हड्डी की नुकीली कील मिली है। नोह में आकृति रहित लोहे का टुकड़ा, पक्की मिट्टी का एक मनका तथा एक हड्डी की कील मिली है।

दोआब तथा अन्य क्षेत्रों में काले एवं लाल मृद्भाण्ड

कुछ विद्वान यह मानते हैं कि अतरंजीखेड़ा तथा दक्षिणी राजस्थान में गिलुंद तथा आहर में मिले काले एवं लाल मृद्भाण्डों में स्वरूप, बनावट एवं चमक के आधार पर समानता है। लेकिन इन स्थानों से प्राप्त बर्तनों के आकार और रूपरेखा में भिन्नताएं भी हैं जो निम्न हैं :

- दोआब के (तथा नोह के) काले एवं मिट्टी के लाल बर्तनों की मुख्य विशेषता उनका सादा पृष्ठभाग है जो कि चित्र रहित है। जबकि गिलुंद एवं आहर में मिट्टी के बर्तन काले पृष्ठभाग पर सफेद रंग से चित्रित किए गए हैं।
- इनमें किस्मों का भी अंतर है। आहर के चित्रित काले एवं लाल मिट्टी के बर्तनों में स्पष्ट रूप से कोणिक अवतल किनारे हैं तथा बनावट खुरदुरी है। दोआब के काले एवं लाल मिट्टी के बर्तनों में कोणिक किनारे नहीं हैं तथा बनावट चिकनी है।
- स्वरूप विहीन किनारे तथा अवतल भाग वाली तश्तरियाँ दोआब के काले एवं लाल मिट्टी के बर्तनों में प्रचुर संख्या में मिलती हैं जबकि आहर एवं गिलुंद में ऐसी तश्तरियाँ नहीं प्राप्त हुईं।
- रोटी वाले प्याले तथा स्टैंड वाली तश्तरियाँ आहर एवं गिलुंद में प्राप्त हुईं लेकिन दोआब क्षेत्रों में नहीं प्राप्त हुईं।

यह तथ्य काफी महत्वपूर्ण है कि काले एवं लाल मृद्भाण्ड विभिन्न क्षेत्रों में थोड़ी बहुत भिन्नताओं के साथ काफी बड़े क्षेत्र में फैले पाए गए हैं। यह मृद्भाण्ड उत्तर में रोपड़ से लेकर दक्षिण में आदिचानालूर तथा पश्चिम में आमर तथा लाखबवाल से लेकर पूर्व में पांडु-राजार ढिबी तक प्राप्त हुए हैं। इनका समय परिप्रेक्ष्य भी काफी लम्बा है जो कि 2400 ईसा पूर्व से लेकर ईसवीं युग की आरंभिक शताब्दियों तक फैला हुआ है।

10.5 चित्रित घूसर मृद्भाण्ड संस्कृति

1946 में अहीक्षेत्र में चित्रित घूसर मृद्भाण्डों की खोज के बाद से उत्तरी भारत के विभिन्न क्षेत्रों से ये बड़ी संख्या में प्रकाश में आए हैं। इनमें से 30 स्थानों की खुदाई हुई है। इनमें से मुख्य रोपड़ (पंजाब), भगवानपुरा (हरियाणा), नोह (राजस्थान), आलमगीरपुर, अहिक्षेत्र, हस्तिनापुर, अतरंजीखेड़ा, जखेड़ा, तथा मथुरा (सभी उत्तर प्रदेश) हैं।

काले एवं लाल मृद्भाण्डों के क्षेत्र भारत-गांगेय विभाजन, सतलुज के थाले तथा गंगा के ऊपरी मैदानों में केन्द्रित हैं। एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र की औसत दूरी 10 से 12 कि.मी. की है यद्यपि कुछ क्षेत्र 5 कि.मी. की दूरी पर भी हैं। इन क्षेत्रों की बस्तियां अधिकतर छोटे-छोटे गांव हैं (जिनका क्षेत्रफल 1 से 4 हेक्टेयर के बीच है)। केवल हरियाणा में बुखारी (अम्बाला जिला, हरियाणा) इसका अपवाद है जो कि 96, 193 वर्ग मीटर में फैला हुआ है। आइए, अब हम उन वस्तुओं पर दृष्टि डालें जिन्हें चित्रित घूसर मृद्भाण्ड संस्कृति से संबंधित समझा गया है।

बर्तन

बर्तन चाक पर बनाए गए हैं। मिट्टी काफी चिकनी है तथा बर्तनों का आधार काफी पतला है।

- इनका पृष्ठभाग चिकना है तथा रंग घूसर से लेकर राख के रंग के बीच है।
- इनके बाहर तथा अन्दर के तल दोनों ही काले और काफी गहरे चॉकलेटी रंग में रंगे गए हैं।
- इनकी लगभग 42 किस्में हैं जिसमें सबसे सामान्य किस्म प्याले एवं तश्तरियों की है।

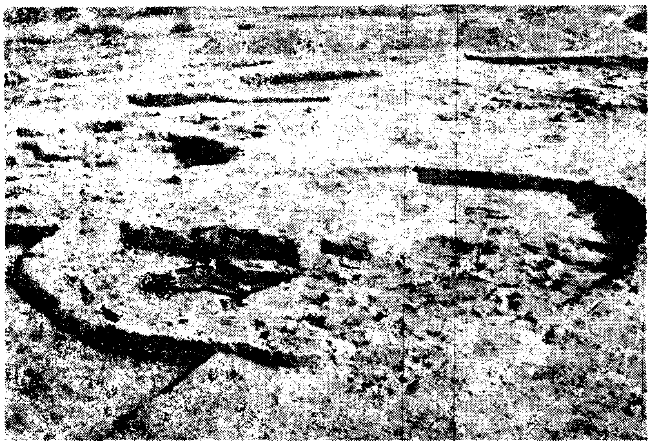

3. गोलाकार झोंपड़ी–जखेड़ा

4. मट्टी की दीवार–जखेड़ा

5. फर्श–जखेड़ा

6. भंडारण–जखेड़ा

7. हंसिया–जखेड़ा

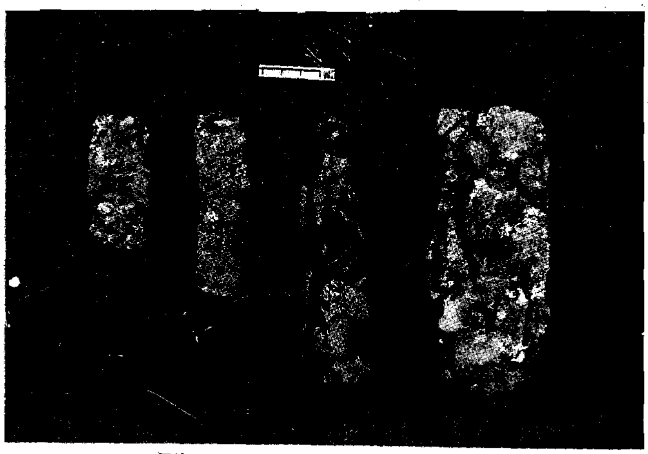

8. कुदालियां–जखेड़ा

9. पंच मार्कड सिक्के

घरों के ढांचे

अहिक्षेत्र, हस्तिनापुर, अतरंजीखेड़ा तथा जखेड़ा की खुदाई के बाद घरों तथा अन्य ढांचों के सरपत एवं मिट्टी से पाथे होने की जानकारी मिलती है। तपाई मिट्टी, मिट्टी की ईंटों, तपाई ईंटों, मिट्टी के चबूतरे तथा मिट्टी के प्लास्टर के साथ-साथ सरकण्डे एवं बांस के निशान पाए जाने के आधार पर यह जानकारी मिलती है।

भगवानपुरा (हरियाणा) क्षेत्र में खुदाई से घरों के ढांचों के भिन्न चरणों की ओर संकेत मिले हैं।

प्रथम चरण में खंभों के गड्ढे घरों के गोलाकार एवं आयताकार होने की ओर संकेत करते हैं। दूसरे चरण में एक घर में 13 कमरे तथा दो कमरों के बीच बरामदा पाया गया है। इस घर में एक आंगन भी है।

अन्य वस्तुएं

खुदाई के दौरान, ताम्र, लोह, कांच तथा हड्डियों की कई प्रकार की वस्तुएं मिली हैं। इनमें कुल्हाड़ियाँ, छेनियाँ, मछली के कांटे तथा बाण के फल मुख्य हैं। बरछे के फल केवल लोहे के हैं। खेती के उपकरणों में जखेड़ा में लोहे की बनी हंसिया और कुदाली प्राप्त हुई हैं। हस्तिनापुर के अतिरिक्त अन्य सभी क्षेत्रों में लोहे की वस्तुएं मिली हैं। केवल अतरंजीखेड़ा से ही 135 वस्तुएं मिली हैं, जिनमें एक भट्टी, सतह पर लोहे का बुरादा तथा दो चिमटे मिले हैं। जोधपुरा में दो भटिटयाँ मिली हैं।

अकीक, सूर्यकांत, इन्द्रगोप, सिक्थस्फटिक, लाजवर्द, कांच तथा हड्डी के मनकों की मालाएं पाई गयी हैं। हस्तिनापुर में दो कांच की चूड़ियाँ तथा जखेड़ा में ताम्र की चूड़ियां मिली हैं।

मिट्टी की वस्तुओं में मानवीय (पुरुष और स्त्री दोनों) तथा पशुओं (बैल और घोड़े) की मूर्तियाँ, चपटी गोलाकृतियाँ (डिस्क), गेंद, कुम्हार की मोहरें आदि पाई गई हैं।

फसलों और पशुओं के अवशेष

केवल हस्तिनापुर और अतरंजीखेड़ा में ही उगाई जाने वाली फसलों के प्रमाण मिलें हैं। हस्तिनापुर में केवल चावल और अतरंजीखेड़ा में गेहूं और जौ के अवशेष मिले हैं। घोड़े, गाय, भैंसों, सुअर, बकरी और हिरन की हड्डियाँ हस्तिनापुर, अल्लापुर और अतरंजीखेड़ा से प्राप्त हुई है। इनमें जंगली और पालतू दोनों प्रकार के पशुओं की हड्डियाँ हैं।

व्यापारिक तरीके तथा संबंध

विभिन्न प्रकार के अर्धबहुमूल्य पत्थरों (जैसे अकीक, सूर्यकांत, इन्द्रगोप, सिक्थस्फटिक, लाजवर्द) की मालाएं दोआब के विभिन्न चित्रित घूसर मृद्भाण्ड क्षेत्रों से प्राप्त हुई हैं। जहां तक इन पत्थरों के कच्चे खनिक के रूप में प्राप्त होने का प्रश्न है, इनमें से दोआब में एक भी पत्थर उपलब्ध नहीं है। अकीक एवं सिक्थस्फटिक कश्मीर, गुजरात तथा मध्यप्रदेश में तथा लाजवर्द अफगानिस्तान के बदखशां प्रांत में पाया जाता है। अत: रंगे घूसर मृद्भाण्ड क्षेत्रों के निवासियों ने इन पत्थरों को इन क्षेत्रों से व्यापार के द्वारा अथवा विनिमय के रूप में प्राप्त किया होगा।

उत्तर पश्चिमी भारत के बर्तनों तथा सलेटी मिट्टी के बर्तनों (PGW) में आकार और रूप के आधार पर कुछ समानताएं मिलती हैं विशेषकर लोहे के साथ पाए गए सलेटी बर्तनों का घूसर मृद्भाण्ड संस्कृति से सम्बन्ध दिखलाई देता है।

बोध प्रश्न 2

1 काले एवं लाल मिट्टी के बर्तनों की मुख्य विशेषताएं क्या हैं? विभिन्न क्षेत्रों में पाए गए काले एवं लाल मिट्टी के बर्तनों की क्षेत्रीय भिन्नता पर दस पक्तियाँ लिखें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2 किन आधारों पर यह कहा जा सकता है कि चित्रित घूसर मृद्भाण्डों के क्षेत्रों में रहने वाले लोगों का अन्य क्षेत्रों के साथ सम्पर्क था? पांच पंक्तियों में लिखें।

....

....

....

....

....

10.6 उत्तरी काले पॉलिश वाली मृद्भाण्ड संस्कृति

पूर्व संस्कृतियों की भांति ही उत्तरी काले पॉलिश वाली मृद्भाण्ड संस्कृति की पहचान इसके विशिष्ट बर्तनों के आधार पर की जाती है। यह मृद्भाण्ड सर्वप्रथम 1930 में तक्षिला में मिले। इन मृद्भाण्डों की काली चमक के कारण इनके खोजने वालों ने उस समय इन्हें ग्रीक काले मृद्भाण्ड समझा। तब से लेकर अब तक उत्तर पश्चिम में तक्षिला तथा उदग्राम से लेकर पूर्वी बंगाल में तालमुक एवं दक्षिण में अमरावती (आंध्र प्रदेश) तक लगभग 1500 उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्डों के क्षेत्रों की पहचान की जा सकी है जिसमें से 74 क्षेत्रों की खुदाई हो चुकी है।

उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्डों के खुदाई किए गए मुख्य क्षेत्र

क्षेत्र के नाम	राज्य जिनमें क्षेत्र स्थित हैं
रोपर	पंजाब
राजा कर्नका किला	हरियाणा
जोधपुरा/नोह	उत्तरी राजस्थान
अहिक्षेत्र/हस्तिनापुर/अतरंजीखेड़ा/कोशाम्बी/श्रावस्ती	उत्तर प्रदेश
वैशाली/पाटलिपुत्र/सोनपुर	बिहार
चन्द्रकेतुगढ़	पश्चिमी बंगाल

खुदाईयों से पता चलता है कि :

- कई क्षेत्रों में उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्डों का उदय चित्रित घूसर मृद्भाण्डों स्तरों के उपरांत हुआ।
- कई स्थानों पर उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्ड काले एवं लाल मृद्भाण्डों के उपरांत मिलते हैं तथा लाल धारी वाले मृद्भाण्ड उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्डों के बाद मिलते हैं।

इस किस्म के बर्तनों तथा अन्य वस्तुओं का विभिन्न कालों से संबंधित होने के आधार पर ऐसा माना गया है कि उत्तरी काले पॉलिश किए बर्तनों की संस्कृति के दो भिन्न चरण रेखांकित किए जा सकते हैं।

चरण I

यह चरण 'प्रिडिफेंस' चरण भी कहा जाता है। इस चरण की विशेषता उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्डों की प्रचुरता तथा इनके साथ काले एवं लाल मृद्भाण्डों व चित्रित घूसर मृद्भाण्डों के अवशेषों का भी पाया जाना है। यद्यपि यह अवशेष कम मात्रा में ही मिले हैं।

इस चरण में पंच मार्कड सिक्के तथा तपाई गई ईंटों के मकान नहीं थे जिसका अर्थ उच्च स्तरीय विकास का होना है। इसका प्रतिनिधित्व अतरंजीखेड़ा, श्रावस्ती तथा प्रहलादपुर करते हैं।

चरण II

इस चरण में काले एवं लाल मृद्भाण्ड तथा चित्रित घूसर मृद्भाण्डों के बर्तनों के नमूने नहीं मिलते हैं। उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्ड न तो अच्छी कोटि के हैं (इनकी बनावट मोटी है) और इनकी संख्या भी कम है। पंच मार्कड़ सिक्के तथा तपाई गई ईंटें इस चरण में पहली बार सामने आती हैं। इस चरण का प्रतिनिधित्व हस्तिनापुर, अतरंजीखेड़ा, श्रावस्ती II और प्रहलादपुर करते हैं।

उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्डों तथा चित्रित घूसर मृद्भाण्डों के बीच समानता को देखते हुए कुछ विद्वानों ने मत प्रकट किया है कि चित्रित घूसर मृद्भाण्ड उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्डों का परिष्कृत रूप हैं तथा दोनों के बीच भिन्नता केवल ऊपरी तौर पर है।

चित्रित घूसर मृद्भाण्डों, काले एवं लाल मृद्भाण्डों तथा उत्तरी काले पॉलिश किये मृद्भाण्डों के रासायनिक विश्लेषण से इस तथ्य की पुष्टि भी की जा चुकी है।

चूंकि उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्डों की पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं बिहार में बहुतायत है अतः संभव है इनका उद्भव इसी क्षेत्र में हुआ हो। बाद के दिनों में यह गंगा के मैदानों के परे फैल गए होंगे जिसका कारण बौद्ध भिक्षुओं तथा व्यापारियों की गतिविधियाँ हैं।

10.6.1 भवनों के अवशेष

हस्तिनापुर, अतरंजीखेड़ा तथा कौशाम्बी में खुदाई से यह स्पष्ट हो गया है कि इस काल के दौरान मकान बनाने का कार्य बड़े पैमाने पर शुरू हो गया था और शहरों का बनना आरंभ हो चुका था।

कौशाम्बी में बस्तियों के स्वरूप के प्रमाण काफी स्पष्ट रूप में उपलब्ध हुए हैं। इसी स्थान पर ईंटों के फर्श वाले रास्ते और गलियाँ मिली हैं। एक सड़क जो पहली बार लगभग 600 ईसा पूर्व में बनाई गयी थी उसकी कई बार मरम्मत की गयी (इसकी चौड़ाई 5.5 मीटर से 2.5 मीटर के बीच रही) और 300 ईसवीं तक प्रयोग में रही। घरों के ढांचे तपाई ईंटों के होते थे। खंभों के गड्ढों एवं दरवाजे के बाजू के लिए बने कोष्ठों से इमारतों में लकड़ी के प्रयोग के प्रमाण भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। घरों की छतें खपरैल लगा कर ढकी जाती थी। कमरे वर्गाकार तथा आयताकार होते थे।

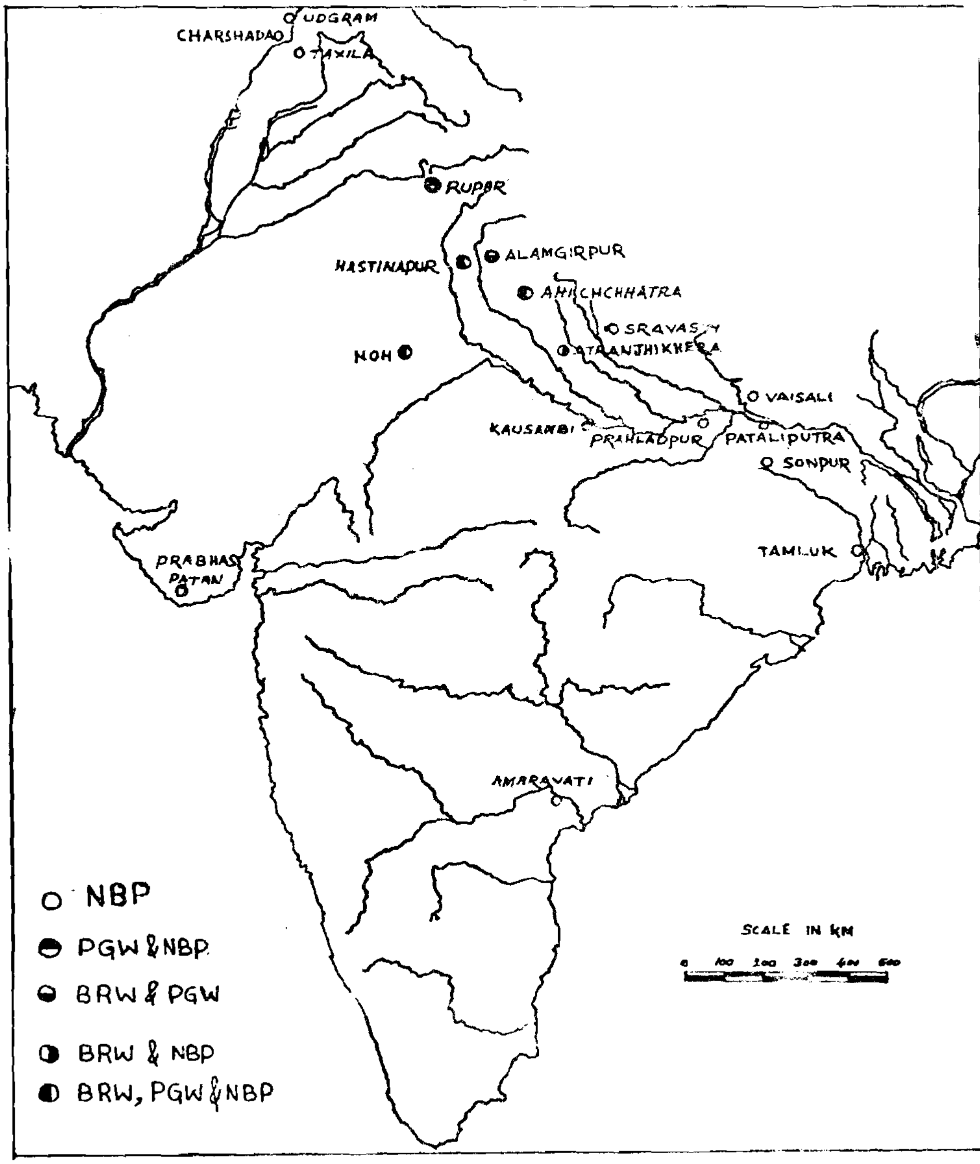

10. बी.आर.डब्लू., पी. जी डब्लू तथा एन. बी पी. बर्तनों के स्थलों को दर्शाता मानचित्र

इन सभी प्रमाणों से पता चलता है कि इमारतों की बनावट काफी योजनाबद्ध तरीके से होती थी। हस्तिनापुर की खुदाई के साथ, जहाँ नालियों की विस्तृत व्यवस्था पायी गयी है, इस तथ्य की और भी पुष्टि हो जाती है। कुछ बस्तियाँ मिट्टी और ईंट की दीवारों के द्वारा किलेबन्द की गयी थीं और इस किलेबन्दी के चारों ओर खाइयाँ बना दी गयी थीं। कौशाम्बी में किले की दीवार के साथ जगह-जगह पर चौकीदारों के कमरे, बुर्ज तथा दरवांजे बने पाए गए हैं।

इस बिंदु पर एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि क्या इन ढांचों से इस काल के सामाजिक अथवा राजनैतिक जीवन के प्रति कोई जानकारी मिलती है? ऐसा अवश्य है। उदाहरण के लिए :

- किलेबन्दी से आक्रमणों के विरुद्ध सुरक्षा उपायों तथा राजनैतिक तनावों पर प्रकाश पड़ता है।
- नालियों की व्यवस्था से न केवल लोगों में स्वास्थ्य के प्रति जागरुकता की जानकारी मिलती है बल्कि इस दिशा में इन लोगों द्वारा की गयी प्रगति की भी जानकारी मिलती है।
- यह पता चलता है कि बड़ी इमारत बनाने और किलेबन्दी करने के लिये बड़ी संख्या में कामगरों की आवश्यकता रही होगी तथा इन लोगों से काम लेने के लिए अधिकारी और सत्तावर्ग भी रहे होंगे।

10.6.2 बर्तन

उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्डों की मुख्य विशेषता इसका चमकदार ऊपरी भाग है। चाक पर बनाए गए इन बर्तनों के लिए मिट्टी अच्छी तरह गूंथ कर तैयार की गयी है। कुछ बर्तनों का तल 1.5 मिलीमीटर तक पतला है। चमकदार काले ऊपरी भाग के अतिरिक्त, उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्ड सुनहरे, रुपहले, सफेद, गुलाबी, इस्पाती नीले, चाकलेटी तथा भूरे रंग में भी पाए गए हैं। कुछ क्षेत्रों (जैसे—रोपर, सोनपुर) से रिपिट लगे बर्तनों (टूटे हुए टुकड़ों को जोड़कर बनाए गए) से पता चलता है उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्ड कितने मूल्यवान थे। इन मृद्भाण्डों तथा साथ-साथ अन्य बर्तनों की उपलब्धता से संकेत मिलता है कि उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्ड बहुत कीमती होते थे और सभी के पास नहीं होते थे। यह इस तथ्य की ओर इशारा करता है कि इस काल में समाज असमान वर्गों में विभाजित था। यद्यपि उत्तरी काले मृद्भाण्ड सामान्यतः रंगे नहीं जाते थे लेकिन कुछ चित्रित मृद्भाण्डों के टुकड़े भी मिले हैं। मृद्भाण्ड पीले तथा हल्के सिंदूरी रंग से चित्रित किए जाते थे। इनकी सामान्य डिजाइनों में सादी पट्टियाँ, लहरदार रेखाएँ, बिंदियाँ, संकेंद्री गोले,

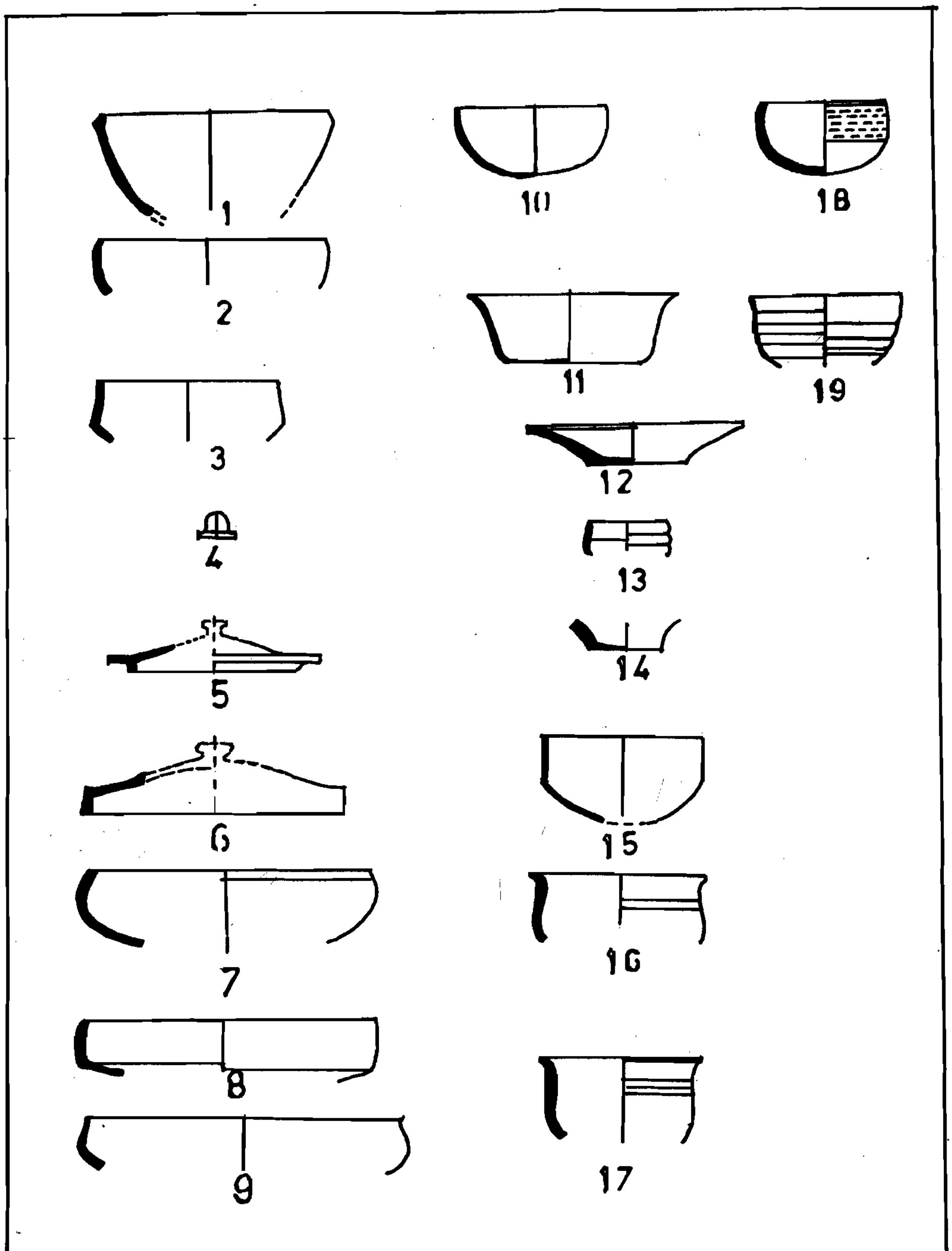

11. उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्ड

प्रतिच्छेदी गोले, अर्धवृत्त, चाप तथा फंदों की आकृतियाँ पाई गयी हैं। सबसे सामान्य बर्तन की किस्म प्याले तथा विभिन्न प्रकार की तश्तरियाँ हैं।

10.6.3 अन्य वस्तुएँ

उत्तरी पॉलिश किए मृद्भाण्डों के क्षेत्रों से ताम्र, लोहे, सोने, चाँदी, पत्थर, कांच तथा हड्डी के बने विभिन्न प्रकार के औजार, हथियार, गहने तथा अन्य वस्तुएं प्राप्त हुई हैं। इन उपलब्धियों से इस काल की तकनीकी प्रगति की ओर संकेत मिलता है। बौद्ध साहित्य, जोकि कई प्रकार की कलाओं और शिल्पों का उल्लेख करता है, से इस तथ्य की और भी पुष्टि हो जाती है। जातक कथाओं में लकड़ी, धातु, पत्थर, बहुमूल्य तथा अर्धबहुमूल्य पत्थर, हाथी दाँत, कपड़े आदि के कामगरों के लगभग 18 समूहों का उल्लेख मिलता है।

कई क्षेत्रों से प्राप्त ताम्र वस्तुओं में छेनियाँ, चाकू, बेधक, पिनें, सुइयाँ, सुरमें की सलाइयां, काटने का औज़ार, जोड़ चूड़ी, चरखियाँ तथा चूड़ियाँ मुख्य हैं।

लोहे की वस्तुओं की न केवल इस संस्कृति में प्रधानता है बल्कि रंगे धूसर मृद्भाण्ड युग की तुलना में इनमें काफी विविधता भी है। केवल कौशाम्बी से ही 800 ईसा पूर्व

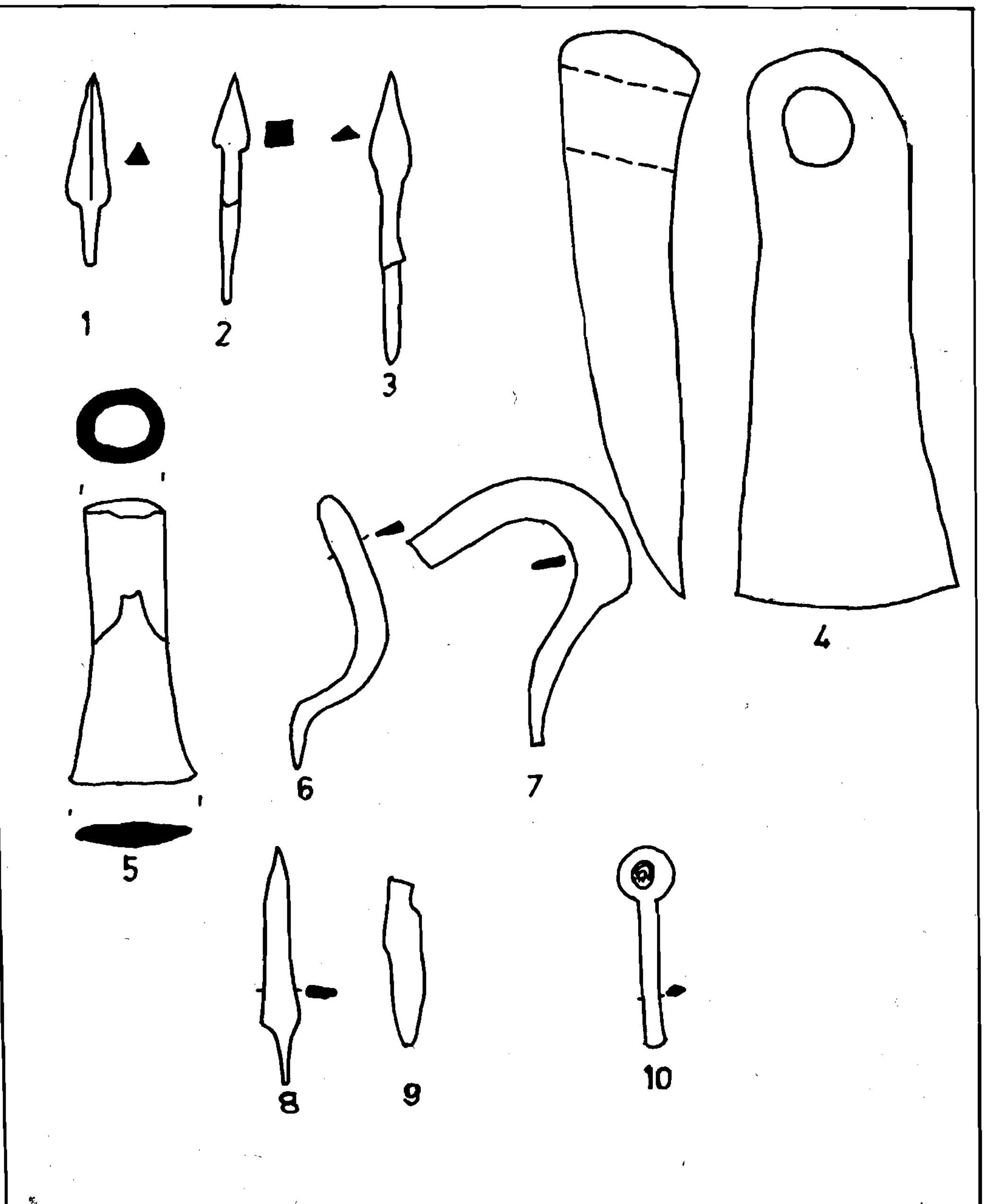

12. लोहे के औज़ार, 1-3. तीर के फलक, 4. बसूला, 5. कुदाली 6-7. हँसिया, 8. छुरा 9. छेनी 10. कल्छुली

से 550 ईसवीं के बीच की 1,115 लोहे की वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। इन वस्तुओं में मुख्य हैं :

अ) खेती के उपकरण जैसे : कुदालें और हंसिया, तथा शिल्पकारों के औजार जैसे कुल्हाडियां, बसूला, छेनियां तथा पेच दंड।

ब) हथियार जैसे : तीर के फल, बरछे व भाले के फल।

स) अन्य वस्तुएँ जैसे : चाकू, विभिन्न प्रकार के दस्ते, कांटे, कीलें, रिपिट, जोड़ पट्टी, अंगूठियाँ तथा छोटी घंटियाँ।

चाँदी के पंच मार्कड सिक्के उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्ड संस्कृति के मध्य चरण से मिलना आरंभ होते हैं। इसका अर्थ वस्तु विनिमय अर्थव्यवस्था से धातु मुद्रा आधारित अर्थव्यवस्था की ओर संभावी बदलाव है।

10.6.4 गहने

अर्ध बहुमूल्य पत्थरों, कांच, चिकनी मिट्टी, ताम्र पत्तियों तथा हड्डियों की मालाएं सबसे अधिक सामान्य थीं। इनकी आकृति सामान्यतः, वृत्ताकार, गोलाकार, द्विकोणीय, बेलनाकार, ढोलाकार तथा चौकोर होती थी। कुछ मालाएं निक्षारित भी हैं। कौशाम्बी IB (300 ईसा पूर्व) से एकमात्र सोने की माला प्राप्त हुई है।

अन्य गहनों में पक्की मिट्टी, रंगीन चमकाई मिट्टी, कांच, सीप, पत्थर एवं ताम्र की चूड़ियाँ थीं। ताम्र, लोहे, सींग, तथा भूरी मिट्टी की अंगूठियाँ, चिकनी मिट्टी, अकीक तथा इन्द्रगोप के झुमके भी पाए गए हैं। इन सभी वस्तुओं से हमें निम्नलिखित जानकारी मिलती है:

- समाज में गहनों का इस्तेमाल,
- गहने बनाने वाले विशेषज्ञ शिल्पकारों का मौजूद होना,
- गहने बनाने की तकनीक की जानकारी के स्तर, तथा
- विभिन्न अर्धबहुमूल्य पत्थरों की उपलब्धता के लिए अन्य क्षेत्रों के साथ व्यापार अथवा विनिमय गतिविधियाँ।

10.6.5 मिट्टी की मूर्तियाँ

मिट्टी की मूर्तियों में मानवीय तथा पशुओं की मूर्तियाँ तथा अन्य वस्तुएँ शामिल हैं। मानवीय मूर्तियाँ अधिकतर ढाल कर बनाई गयी हैं। पुरुषों की मूर्तियाँ, कुछ को छोड़कर जिनके सिरों पर पहनावा है, सामान्यतः सादी है। महिलाओं की मूर्तियाँ सर के पहनावों, कान के गहनों, हार, कमर के लटकों से सुसज्जित हैं।

पशुओं की मूर्तियाँ यद्यपि हाथ से गढ़ी गयी हैं लेकिन उनकी बनावट काफी अच्छी है। इनमें घोड़े, बैल, मेढ़े तथा हाथियों की मूर्तियाँ हैं।

मिट्टी की अन्य वस्तुएं खिलौनों की गाड़ियाँ, साधारण तथा पशुओं के सर वाले खिलौने, डिस्क, गेंद तथा कुम्हार की मुहरें हैं। इसी संस्कृति के अगले चरण में मुहरें जिन पर ब्रह्मी लिपि में लिखावट मौजूद है, भी पायी गई हैं। इन तथ्यों से इन क्षेत्रों के निवासियों के संबंध में काफी जानकारी मिलती है। उदाहरण के लिए खिलौने की गाड़ी से हमें पता चलता है कि यह लोग वाहन के साधन के रूप में गाड़ियों का प्रयोग करते थे।

10.6.6 जीवनयापन अर्थव्यवस्था तथा व्यापार

पुरातात्विक वानास्पतिक अवशेषों से संकेत मिलता है कि इन क्षेत्रों में धान, गेहूं, जौ, बाजरा, मटर, तथा काला चना उगाया जाता था। कुछ क्षेत्रों से मिले पशुओं के अवशेषों से लोगों के गाय, बैलों, भेड़, बकरियों, सुअरों तथा मछलियों पर निर्भर होने की जानकारी मिलती है।

विभिन्न क्षेत्रों में सामान्य रूप से पाई गई विविध प्रकार की मालाएँ व्यापारिक

गतिविधियों की ओर संकेत करती हैं। इसी आधार पर अनुमान लगाया गया है कि तक्षिला, हस्तिनापुर, अहिक्षेत्र, श्रावस्ती तथा कौशाम्बी के बीच, 600 ईसा पूर्व से 200 ईसा पूर्व के दौरान व्यापारिक संबंध रहे होंगे। बौद्ध साहित्य में व्यापार समूहों तथा ऊंटों, घोड़ों, खच्चरों, बैलों तथा भैंसों के कारवां के संबंध में उल्लेखों से इस विचार की पुष्टि होती है। छठवीं तथा चौथी शताब्दी ईसा पूर्व के बीच भारत, बेबीलोनिया, सीरिया तथा सुमेर (मध्य एशिया) के बीच व्यापार होता था। निर्यात की मुख्य वस्तुएँ कपड़े, मसाले तथा सम्भवतः लोहे और इस्पात के बने सामान थे। अर्थशास्त्र के अध्ययन से प्रतीत होता है कि राज्य न केवल व्यापार पर नियंत्रण रखता था बल्कि सोने, ताम्र, लोहे, सीसा, टिन, चाँदी, हीरे, जवाहरात तथा अन्य बहुमूल्य पत्थरों के उद्योग पर भी उसका प्रभुत्व था।

बोध प्रश्न 3

1 उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्डों की संस्कृति को यह नाम कहाँ से मिला? तीन पंक्तियों में लिखें।

....

....

....

2 निम्नलिखित में से कौन सा वक्तव्य सही (✓) है और कौन सा गलत (×) है, निशान लगाएं।

क) उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्ड विलासिता की वस्तु थे। ( )

ख) विद्वानों का मत है कि उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्ड संस्कृति के चार चरण थे। ( )

ग) साहित्यिक प्रमाण पुरातत्व शास्त्रियों के इस मत की पुष्टि करते हैं कि इस काल में व्यापारिक गतिविधियाँ होती थीं। ( )

घ) उत्तरी काले पॉलिश मृद्भाण्ड संस्कृति की बस्तियों में किलेबन्दी नहीं होती थी। ( )

10.7 पश्चिमी, पूर्वी एवं मध्य भारत की ताम्र पाषाण युगीन संस्कृतियाँ

पश्चिमी पूर्वी एवं मध्य भारत में दूसरी एवं प्रथम सहस्त्राब्दी ईसा पूर्व के दौरान कई स्थानीय ताम्र पाषाण आरंभिक खेतिहर संस्कृतियाँ मौजूद थीं। यह संस्कृतियाँ मूलतः ग्रामीण बस्तियाँ हैं तथा उनमें कई तत्व समान हैं। इन संस्कृतियों के विशिष्ट लक्षण निम्नलिखित हैं:

- चित्रित बर्तन जो मुख्यतः लाल पर काले रंगे हुए हैं, तथा
- सिलिकामय पत्थर के ब्लेड तथा पत्तरों का अत्यधिक विकसित उद्योग।

ताम्र की जानकारी इस समय थी लेकिन चूंकि यह धातु प्रचुर मात्रा में नहीं थी, अतः इसका इस्तेमाल सीमित पैमाने पर होता था। बस्तियों की संरचना गोल एवं आयताकार झोंपड़ियों से होती थी। कई स्थानों पर पूतलीय आवास के भी प्रमाण मिले हैं। अर्थव्यवस्था खेती तथा पशुपालन पर आधारित थी। इन संस्कृतियों के नाम उनके विशिष्ट क्षेत्रों के नाम पर रखे गए हैं।

ताम्र पाषाण युगीन संस्कृतियाँ

संस्कृति का नाम	काल
कायथ	2000-1800 ईसा पूर्व
आहर अथवा बानस	2000-1400 ईसा पूर्व
सवालदा	2000-1800 ईसा पूर्व
मालवा	1700-1200 ईसा पूर्व (मध्य भारत)
	1700-1400 ईसा पूर्व (महाराष्ट्र)
प्रभास	1800-1500 ईसा पूर्व
रंगपुर	1400-700 ईसा पूर्व
चिरान्द	1500-750 ईसा पूर्व

महाराष्ट्र की तापती घाटी में उत्तर हड़प्पा सभ्यता की लगभग 50 गैर नगरीय बस्तियाँ अब तक प्रकाश में आ चुकी हैं (1800-1600 ईसा पूर्व)। दायमाबाद की खुदाई से पता चला है कि उत्तर कालीन हड़प्पा के लोग दक्षिण की ओर प्रवारा घाटी (महाराष्ट्र) की ओर बढ़ गए।

कायथ संस्कृति का नाम कायथ (उज्जैन से 25 कि.मी. पूर्व की ओर), चम्बल नदी की एक उप नदी काली सिंध के तट पर स्थित, क्षेत्र के नाम पर रखा गया है। आहर अथवा बानस संस्कृति का नाम बानस नदी के नाम पर रखा गया है तथा इसका विशिष्ट क्षेत्र आहर है (राजस्थान में उदयपुर)। दक्षिण पूर्व राजस्थान में बानस और बेराच घाटियों में इस संस्कृति की पचास से अधिक बस्तियां पायी गई हैं। सवालदा संस्कृति का नामकरण सवालदा (धूलिया जिला, महाराष्ट्र) बस्ती के नाम पर हुआ है। यद्यपि यह संस्कृति अधिकतर तापती घाटी तक सीमित है लेकिन दायमाबाद से मिले प्रमाणों से इस संस्कृति के प्रवारा घाटी तक पहुंचने के संकेत मिलते हैं। मालवा संस्कृति नर्मदा नदी के तट पर माहेश्वर एवं नवादा टोली (निमार जिला, मध्य प्रदेश) की खुदाई के दौरान प्रकाश में आई। चूंकि इस संस्कृति की अधिकतर बस्तियां मालवा क्षेत्र के अंतर्गत प्रकाश में आईं इसलिए इस संस्कृति का नाम मालवा संस्कृति रखा गया। लगभग 1600 ई. पू. के दौरान मालवा के लोग महाराष्ट्र की तरफ बढ़ना शुरू हो गए और तापती, गोदावरी और भीम घाटियों में इनकी कई बस्तियाँ प्रकाश में आई हैं। महाराष्ट्र में प्रकाश (धुलिया जिला), दायमाबाद (अहमदनगर जिला), इनाम गांव (पुणे जिला) सबसे बड़ी बस्तियाँ थीं। प्रभास और रंगपुर संस्कृतियाँ क्रमशः प्रभास पातन और रंगपुर (गुजरात) क्षेत्र के नामों से जानी जाती हैं। जोर्वे संस्कृति की विशिष्ट बस्ती महाराष्ट्र में स्थित जोर्वे (अहमदनगर जिला) है। प्रकाश, दायमाबाद तथा इनाम गांव में मालवा संस्कृति के बाद जोर्वे संस्कृति विस्तृत रूप में फैली। पाषाण और ताबें का प्रयोग करने वाले कई समूहों की जानकारी पूर्वी भारत में भी मिली है। उत्तरी बिहार में चिरान्द नामक स्थान पर एक प्राचीन ग्रामीण बस्ती के अवशेष मिले हैं। यहाँ लोग मिट्टी से थापे हुए बाँस के घरों में रहते थे। उनका प्रमुख भोजन चावल और मछली था तथा ये लोग जंगली जानवरों का शिकार भी करते थे। यह लोग भी काले व लाल रंग के मिट्टी के बरतनों का प्रयोग करते थे। इसी प्रकार की कुछ बस्तियाँ गोरखपुर के सहगोरा (उ. प्र.) और गया के सोनपुर (बिहार) नामक स्थानों पर भी मिली हैं। यहाँ लोग गेहूँ और जौ की खेती करते थे। बंगाल के बुर्दवान जिले में पंडु-रंजर-ढ़ीबी और मिदनापुर जिले में माहिसदाल नामक स्थानों पर भी इसी तरह की बस्तियों के संकेत मिले हैं। यह सारी बस्तियाँ लगभग 1500 से 750 ईसा पूर्व की प्रतीत होती हैं।

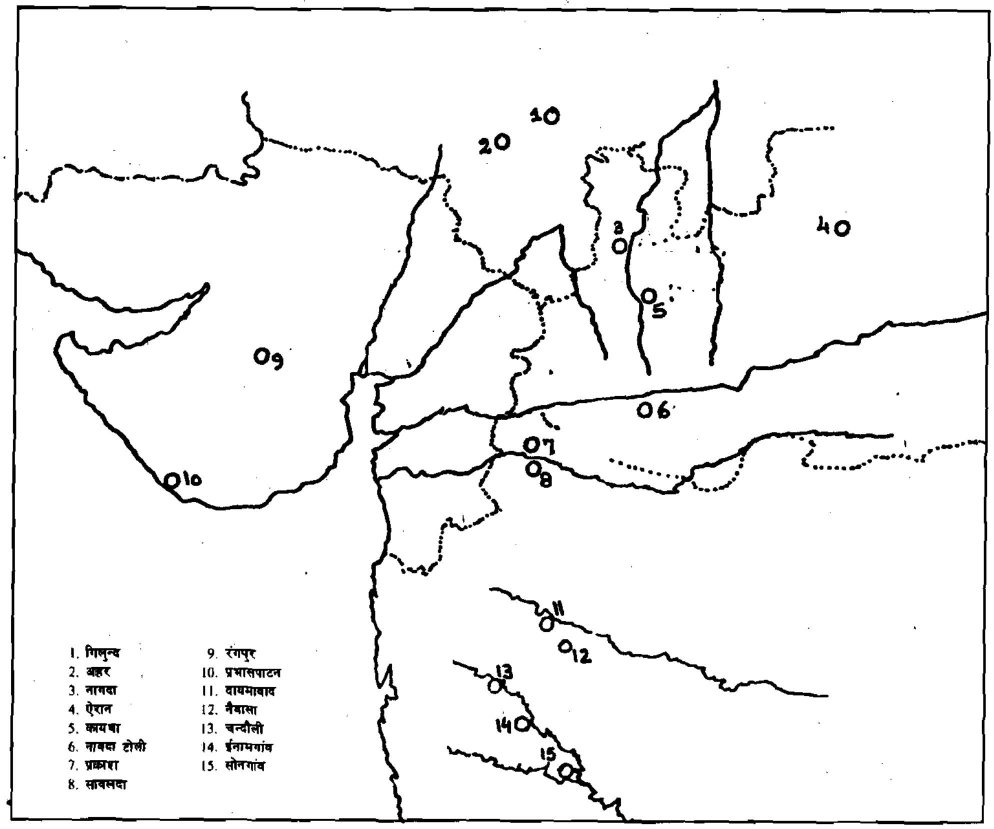

13. पश्चिम तथा मध्य भारत में ताम्र पाषाण युगीन बस्तियां

आइए, इस संस्कृति की विभिन्न विशेषताओं पर दृष्टि डालें।

10.7.1 बर्तन : पहचान के लक्षण

इन ताम्र पाषाण युगीन संस्कृतियों के बर्तनों पर हम संक्षिप्त चर्चा करेंगे। कायथ के मृद्भाण्डों की बनावट की तीन मुख्य विशेषताएँ हैं:

- गहरी भूरी डिजाइन में चित्रित मोटी तथा गहरी लाल धारी वाले मृद्भाण्ड
- लाल रंग में चित्रित हल्के भूरे मृद्भाण्ड (यह मृद्भाण्ड पतले हैं तथा काफी सफाई से गढ़े गए हैं), और
- बगैर धारी वाले खरोंचे गए मृद्भाण्ड। गहरी तथा मोटी लाल धारी वाले अधिकतर बर्तनों का आधार गोल है। यह गोल आधार पूर्व हड़प्पा सोठी मृद्भाण्डों के समरूप है।

सोठी संस्कृति (राजस्थान) घग्गर घाटी (श्रावस्ती) के विभिन्न क्षेत्रों में फैली पायी गयी हैं। यहाँ पाए गए बर्तन कालीबंगन के पूर्व हड़प्पा बर्तनों के समरूप हैं।

आहर के बर्तनों में सात प्रकार के मृद्भाण्ड पाए गए हैं लेकिन इनमें मुख्य सफेद चित्रित काले एवं लाल मृद्भाण्ड हैं। सवालदा संस्कृति की विशेषता यहां के लाल पर काले चित्रित बर्तन हैं जिनको प्राकृतिक प्राणियों जैसे चिड़ियाँ, जानवर तथा मछलियों के चित्र बनाकर सुसज्जित किया गया है। मालवा के मृद्भाण्ड कुछ हद तक खुरदरे हैं

तथा इन पर मोटी हल्की भूरी धारी है जिस पर काले अथवा गहरे भूरे रंग से डिजाइन बनाए गए हैं। प्रभास तथा रंगपुर दोनों के मृद्भाण्ड हड़प्पा के लाल पर काले चित्रित मृद्भाण्ड के समरूप हैं लेकिन चूंकि इनको चमकाया भी गया है, अतः इन्हें चमकदार लाल मृद्भाण्ड कहा जाता है।

जोर्वे मृद्भाण्ड लाल पर काले चित्रित हैं तथा इनकी बनावट समतल, चमकरहित है, एवं इन पर लाल रंग की पुताई की गयी है।

इन विशिष्ट किस्मों के अतिरिक्त इन संस्कृतियों में अन्य मृद्भाण्ड भी मौजूद थे जो कि अधिकतर लाल अथवा घूसर हैं। बर्तन चाक गढ़ित हैं लेकिन हाथ के बनाए हुए बर्तन भी पाए गए हैं।

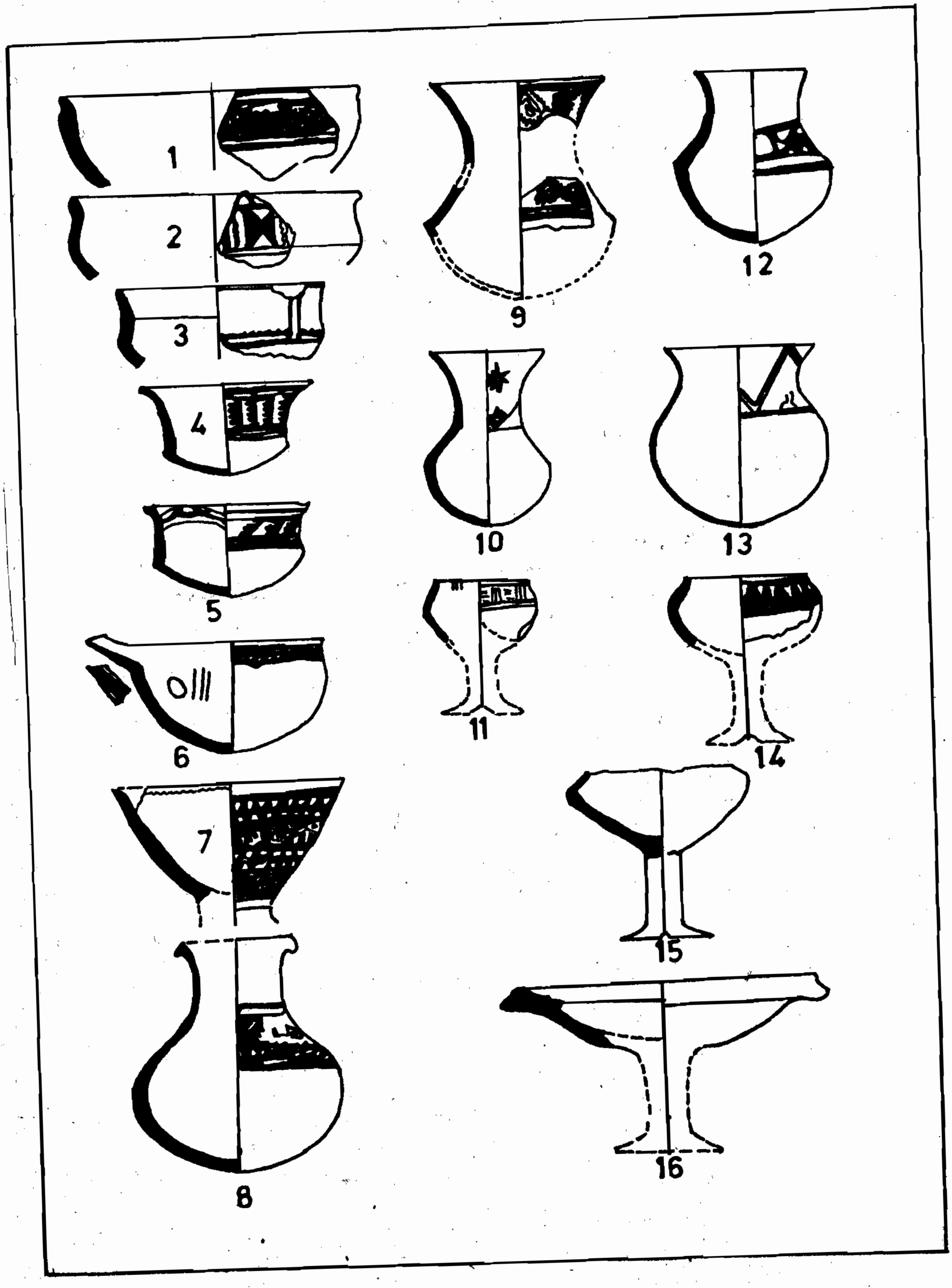

14. मालवा संस्कृति के मृद्भाण्ड

इन संस्कृतियों के सामान्य बर्तन प्याले, अन्दर की ओर धंसती गोल गर्दन वाले गोलाकार मर्तबान, तश्तरियाँ, लोटे आदि। मालवा के बर्तनों के विशिष्ट लक्षण ठोस आधार वाले छोटे-छोटे गिलासों में परिलक्षित होते हैं। जोर्वे संस्कृति के विशिष्ट बर्तन कैटिनेटेड प्याले, चौड़े मुंह वाले टोटीदार जार तथा गोल कलश हैं।

10.7.2 अर्थव्यवस्था

यह ताम्र पाषाण संस्कृतियाँ जिन क्षेत्रों में फैलीं उनका अधिकतर भाग काली कपास उगाने के लिए उपयुक्त मिट्टी वाला क्षेत्र है। यहां का मौसम अर्धखुश्क है तथा वर्षा औसत 400 से 1000 मिलीमीटर के बीच है। इन ताम्र पाषाण युगीन संस्कृतियों की अर्थव्यवस्था खेती तथा पशुपालन पर आधारित थी। कुछ क्षेत्रों में जंगली जानवरों तथा मछली आदि जैसे अन्य भोजन स्रोतों पर निर्भरता के प्रमाण मिले हैं।

फसलें

कुछ क्षेत्रों से खुदाई में प्राप्त बीजों के कार्बनयुक्त अवशेषों से यहां के कृषक समुदायों द्वारा विभिन्न प्रकार की फसलें उगाने के प्रमाण मिलते हैं। मुख्य फसलें–जौ, गेहूं, धान, बाजरा, ज्वार, मसूर, फलियां, मटर, काला चना, तथा मूंग थीं। अन्य पेड़ जिनके फलों का उपयोग किया जाता था वे थे–जामुन, बहेड़ा, जंगली खजूर, बेर आदि।

इस काल में जौं मुख्य अन्न था। इनामगांव से प्राप्त प्रमाणों से क्रमिक रूप में फसल उगाने, गर्मी तथा सर्दी की फसलों की कटाई तथा कृत्रिम सिंचाई की परंपरा का पता चलता है। आरंभिक जोर्वे युग (1400-1000 ईसा पूर्व) में इनामगांव में नहर द्वारा (200 मीटर लम्बी, 4 मीटर चौड़ी तथा 3.5 मीटर गहरी) बाढ़ के पानी की दिशा परिवर्तन के लिए एक विशाल बांध (240 मीटर लम्बा तथा 2.40 मीटर चौड़ा) बनाया गया था।

काली कपास उगाने के लिए उपयुक्त जमीन की जुताई के संकेत इनामगांव के समीप ही वालकी में मिले बैल के कंधे की हड्डी से बने अर्द (हल के फल का आरंभिक रूप) से मिलते हैं।

पशु

खुदाई से यहां पालतू तथा जंगली दोनों प्रकार के जानवरों के प्रमाण मिले हैं।

1 ताम्र पाषाण युग के दौरान पालतू पशुओं में गाय-भैंस, भेड़, बकरी, कुत्ता, सुअर तथा घोड़े मुख्य थे। गाय-भैंसों तथा भेड़-बकरियों की हड्डियाँ यहां के अधिकांश क्षेत्र में अपेक्षाकृत अधिक मिली हैं। हड्डियों पर चोट पड़ने तथा कटने के निशानों से पता चलता है कि यह पशु भोजन की दृष्टि से काटे गए होंगे। इन हड्डियों की आयु निर्धारण से संकेत मिलता है कि इन पशुओं को कम आयु (तीन महीने से लेकर 3 वर्ष के बीच) में ही काटा गया होगा।

2 जंगली जानवरों में मृग, चार सींगों वाले हिरन, नीलगाय, बारहसिंगा, सांबर, चीतल, जंगली भैंस तथा गैंडे थे।

कुछ क्षेत्रों में जलमुर्गियों, समुद्री कछुआ तथा चूहों की भी हड्डियां मिली हैं। इनामगांव में समुद्री मछलियों की भी हड्डियाँ मिली हैं। यह मछलियाँ कल्याण अथवा हमद खाड़ी बंदरगाहों जो कि इनामगांव के समीपतम 200 कि.मी. पश्चिम की ओर स्थित थे से प्राप्त की गयी होगी।

पालतू तथा जंगली दोनों ही प्रकार के पशुओं की झुलसी हड्डियों के प्राप्त होने से पता चलता है कि इन पशुओं का मांस खुली आग में पकाया जाता था।

10.7.3 घर एवं बस्तियाँ

आइए, अब हम इन संस्कृतियों की गृह-निर्माण परपंराओं को संक्षिप्त रूप में विश्लेषित करें। मिट्टी की दीवारों तथा छप्पर की छतों वाले आयताकार एवं गोलाकार घर इन संस्कृतियों में सामान्य थे, यद्यपि विभिन्न क्षेत्रों में घर के आकारों में भिन्नता थी।

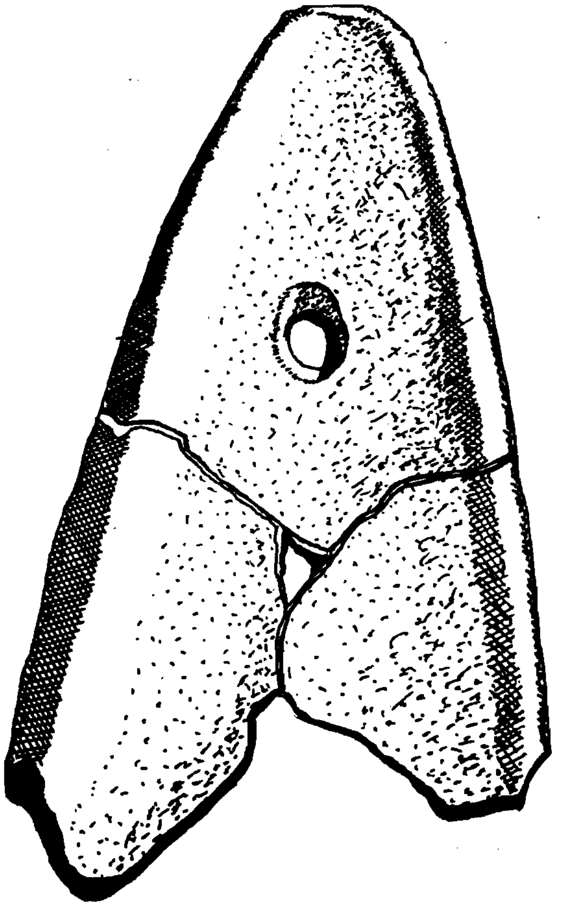

15. बालंकी से प्राप्त हड्डी का आर्द

1 सवालदा संस्कृति में अधिकतर घर आयताकार तथा एक कमरों वाले थे लेकिन कुछ घरों में दो अथवा तीन कमरे भी थे। आहर के लोग पलमा पत्थरों की सिलो पर आधारित घर बनाते थे। इन्हीं सिलो पर मिट्टी अथवा मिट्टी की ईंटों की दीवारें बनाई जाती थीं तथा उन्हें स्फटिक की रोड़ी से सजाया जाता था। फर्श तपाई मिट्टी अथवा मिट्टी में नदी के कंकड़ मिलाकर तैयार किया जाता था।

2 आहर के घरों का आकार 7 मीटर × 5 मीटर अथवा 3 मीटर × 3 मीटर होता था। यहाँ मिले सबसे बड़े घरों का आकार 10 मीटर से भी अधिक लम्बा है। बड़े घरों में विभाजन दीवारें, चूल्हे तथा रसोई में चक्कियाँ होती थीं।

3 मालवा की बस्तियाँ, जैसी कि नवादाटोली, प्रकाश, दायमाबाद तथा इनामगांव में मिली हैं, काफी बड़ी थीं। इनामगांव से मिले प्रमाणों से संकेत मिलते हैं कि बस्तियाँ बनाने का काम योजनाबद्ध तरीके से होता था। इनामगांव में मिले लगभग 20 घरों में से अधिकतर पूर्व पश्चिम दिशा में नियोजित किए गए हैं। यद्यपि यह घर एक दूसरे से काफी निकट बनाए गए हैं लेकिन इनके बीच लगभग 1-2 मीटर की दूरी अवश्य रखी गयी है जो संभवतः गली के रूप में इस्तेमाल की जाती रही होगी। इनामगांव में मिले इन घरों का आकार काफी बड़ा (7 मीटर × 5 मीटर) और आयताकार है। इनमें विभाजन करती हुई दीवारें मौजूद हैं। घरों की दीवारें मिट्टी की बनी हैं तथा काफी नीची हैं एवं इनकी छतें ढलवां हैं। घरों के अन्दर आग जलाने के गोलाकार गड्ढे हैं जिनके किनारे दीवारों के रूप में ऊपर की ओर उठे हैं, जिससे आग पर नियंत्रण रखा जा सके। नवादाटोली के घरों में रसोई के अन्दर एक मुंह अथवा दो मुंह वाले चूल्हे होते थे। अनाज का भंडारण गहरे बने अन्न भंडारण गड्ढों (एक मीटर व्यास तथा एक मीटर गहरे) में होता था। घरों के अन्दर मिट्टी के गोल चबूतरे (1.5 मीटर व्यास के) सभवतः अनाज के टोकरों को रखने के काम आते होंगे।

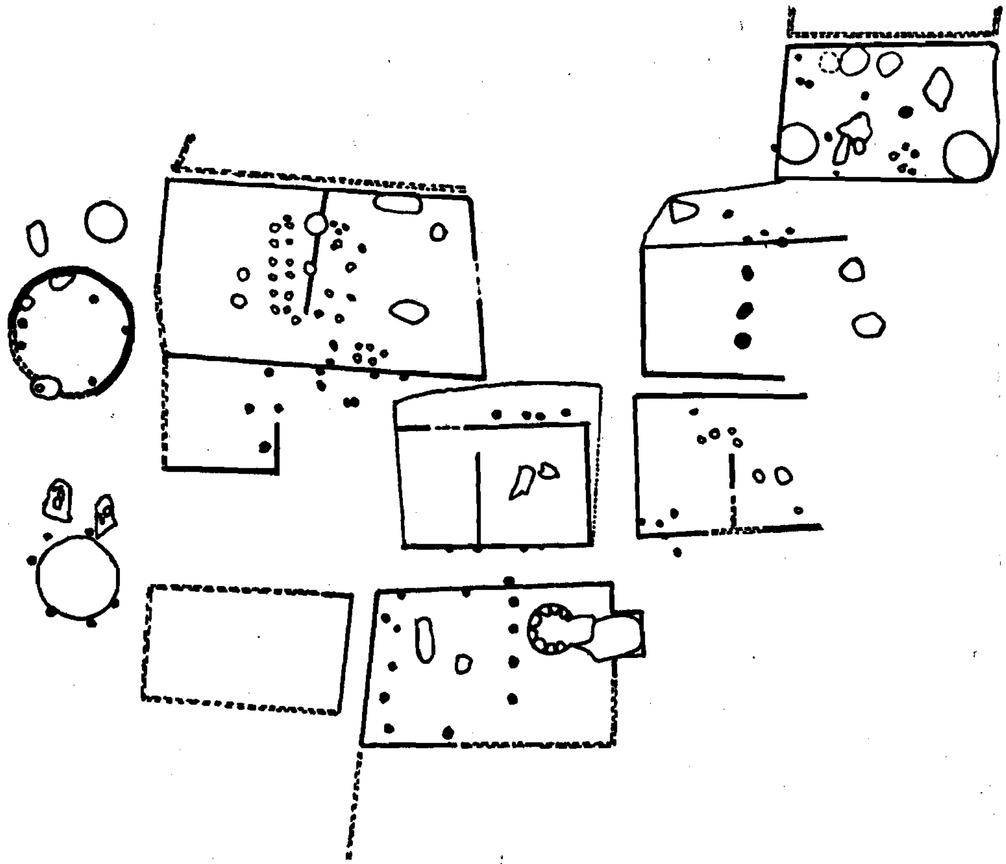

चित्र 16. मालवा संस्कृति के अंतर्गत इनामगांव में गृह-निर्माण योजना

4 जोर्वे संस्कृति (जिसके अब 200 से अधिक क्षेत्र प्रकाश में आ चुके हैं और इनमें से अधिकतर को एक से चार हैक्टेयर के बीच के गावों में श्रेणीबद्ध किया जा सकता है) की मुख्य विशेषता यहां के प्रत्येक क्षेत्र में एक बड़े केन्द्रीय क्षेत्र का पाया जाना है। यह केन्द्र प्रकाश, दायमाबाद तथा इनामगांव है जो कि क्रमशः तापती, गोदावरी तथा भीमा की घाटियों में हैं। दयमाबाद जोर्वे बस्तियों में सबसे बड़ी बस्ती थी जो लगभग 30 हैक्टेयर में फैली थी जबकि प्रकाश एवं इनामगांव पांच-पांच हैक्टेयर में फैले थे।

5) इनामगांव में जोर्वे (पूर्वकालीन एवं उत्तर दोनों) की बस्ती की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि दस्तकारों, जैसे कुम्हार, सुनार, हाथीदांत के शिल्पकार आदि के घर मुख्य निवास क्षेत्र की पश्चिमी सीमा की ओर होते थे जबकि समृद्ध किसान केन्द्रीय भाग में रहते थे। दस्तकारों के घरों का आकार समृद्ध किसानों के घरों की अपेक्षा छोटा होता था। घर बनाने के स्थान तथा आकार के आधार पर इस समाज में दस्तकारों के निचले सामाजिक स्तर की जानकारी मिलती है।

कुछ ताम्र पाषाण बस्तियों के चारों ओर किलाबंदी भी की जाती थी। उदाहरण के लिए, मालवा संस्कृति की एरान तथा नगदा (मध्य प्रदेश) तथा इनामगांव (जोर्वे युग) में पत्थर के रोड़ों की बुर्ज युक्त मिट्टी की दीवार तथा बस्ती के चारों ओर खुदे हुए गड्ढे मिले हैं।

इनामगांव में घरों की बनावट में पूर्वकालीन जोर्वे युग (1400-1000 ईसा पूर्व) के घरों तथा उत्तरकालीन जोर्वे युग (1000-700 ईसा पूर्व) के घरों में भिन्नता दिखाई देती है।

पूर्व कालीन जोर्वे घरों के ढांचे आयताकार होते थे, इनकी मिट्टी की दीवारें नीची (लगभग 30 सेंटीमीटर ऊंची) होती थीं तथा चारों ओर सरपत एवं मिट्टी से बने ढांचे होते थे। यह घर पक्तियों में बनाए जाते थे तथा दिशा लगभग पूर्व से पश्चिमी की ओर होती थी, इन घरों के बीच में लगभग 1.5 मीटर चौड़ा खुला स्थान भी होता था जोकि संभवतः गली अथवा सड़क का काम देता था। इसके विपरीत उत्तर कालीन जोर्वे के घर यहां की निर्धनता का चित्रण करते हैं। बड़ी-बड़ी आयताकार झोपड़ियाँ इस युग में नहीं दिखाई देतीं। इनकी जगह मिट्टी की छोटी दीवारों वाली गोल झोपड़ियाँ बनाई जाती थीं। अन्न

भण्डार गड्ढों की जगह चार पत्थरों पर रखे चौपाए भंडारण जार का उपयोग होता था।

तमाम प्रमाणों से संकेत मिलते हैं कि पूर्व कालीन जोर्वे से उत्तर कालीन जोर्वे में इस प्रकार का परिवर्तन वर्षा की दर में कमी आने के परिणामस्वरूप खेती का पतन होने के कारण हुआ। पश्चिमी एवं मध्य भारत में खोजबीन से पता चलता है कि दूसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व के अंतिम चरण में इस क्षेत्र में मौसम में भारी परिवर्तन आने के कारण पूरा क्षेत्र खुश्क होने लगा जिसके परिणामस्वरूप लोगों को बाध्य होकर अर्ध खानाबदोश जीवन की ओर लौटना पड़ा। यह निष्कर्ष विभिन्न स्तरों से प्राप्त पशुओं की हड्डियों की प्रतिशत मात्रा के आधार पर निकाला गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जोर्वे युग में जलवायु में शुष्कता बढ़ने के कारण कृषि का ह्रास हुआ जिससे कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था भेड़-बकरी पशुपालन अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो गई।

10.7.4 अन्य विशेषताएं

यह सभी संस्कृतियां पत्थर के ब्लेड्रों, पत्तरों के उद्योग, जो कि सिक्थस्फटिक, चकमकी, सूर्यकांत तथा अकीक जैसे सिलिकामय पत्थरों पर आधारित थे, द्वारा रेखांकित होती हैं। औजारों में समानांतर किनारे वाले फलक, कुण्ठित किनारे वाले फलक, दंतुर फलक, चाकू, नवचन्द्राकार, तिकोने तथा समलंबाकार औजार पाए गए हैं। इन फलकों वाले औजारों में कुछ की धार पर चमक है, जिसका अर्थ यह हुआ कि यह औजार फसल की कटाई के काम में इस्तेमाल किए जाते थे।

पॉलिश की गयी पत्थर की कुल्हाड़ियाँ भी जो कि विशिष्ट रूप से कर्नाटक, आंध्र के नव पाषाण-ताम्र पाषाण युगीन संस्कृतियों में सम्बद्ध हैं, कुछ क्षेत्रों में प्राप्त हुई हैं यद्यपि उनकी संख्या अधिक नहीं है।

ताम्र वस्तुओं में चपटी कुल्हाडियाँ अथवा काटने की उतल धार वाली कुठारें, तीर के फल, बरछों के फल, छेनियाँ, मछलियों के कांटे, मध्य पंशुका वाली तलवार, फलक, चूड़ियाँ, अंगूठियाँ तथा मालाएँ हैं। कायथ में मिली वस्तुओं में एक बर्तन में ताम्र की 28 चूड़ियाँ मिली हैं। कुल्हाड़ियों जैसी कुछ वस्तुएं गढ़ी जाती थीं जबकि अन्य वस्तुएं हथौड़ों से पीट कर निरुपित की जाती थी।

गहनों में सबसे अधिक इन्द्रगोप, सूर्यकांत, सिक्थस्फटिक, अकीक, सीप आदि के मनके पाये गये हैं। कायथ संस्कृति से सम्बद्ध एक बर्तन में सेलखड़ी के 40,000 छोटे-छोटे मनकों की एक कण्ठी मिली है। इनामगांव में सोने तथा हाथी दांत के मनके, सोने की एक कुंडलित आकार वाली कान की बाली तथा ताम्र की पहुंची प्राप्त हुई है।

इनमें से अधिकतर क्षेत्रों में मिट्टी की बनी वस्तुएं प्रचुर मात्रा में मिली हैं। यह वस्तुएं मानवीय एवं पशुओं की मूर्तियों के रूप में हैं। पारंपरिक शैली के मिट्टी के सांड (जो कि अधिकतर छोटे आकार के हैं) कायथ के ताम्र पाषाण स्तर से मिले हैं। इनमें कुछ में स्पष्ट ककुद हैं, कुछ की सीगें पीछे की ओर मुड़ी हुई हैं तथा कुछ की सीगें आगे की ओर समतलीय रूप में निकली हुई हैं। इन ताम्र पाषाण क्षेत्रों के अधिकतर क्षेत्रों में मिट्टी के बने सांडों के पाए जाने से यह पता चलता है कि सांड पूजनीय पशु था। यद्यपि इनके खिलौनों के रूप में इस्तेमाल की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता।

दायमाबाद भंडार

एक संयोगिक उपलब्धि के रूप में दायमाबाद में टीले के ऊपर (इसके नीचे जोर्वे युग का 1.2 मीटर संग्रह है) चार वस्तुएं मिली हैं। यह सभी वस्तुएं ठोस ढली हैं तथा इनका वजन 60 कि. ग्रा. से ऊपर है।

1 **हाथी**—यह सबसे भारी है (ऊंचाई 25 सें.मी. तथा लम्बाई 27 सें.मी.) तथा ताम्र के आधार पर, जिसके नीचे धुरियाँ समाने के लिए चार कोष्ठ हैं, खड़ा है।

2 **गेंडा**—यह कुछ छोटा है तथा यह भी एक आधार पर खड़ा है। कोष्ठों में ताम्र की दो ठोस धुरियां तथा गढ़े हुए पहिए लगे हैं। गेंडा कुछ उसी प्रकार का है जैसा कि सिंधु की मुहरों पर बना है।

3 **सवार सहित दो पहियों वाला रथ**—रथ एक लम्बे ध्रुव के सहारे जुआ युक्त बैलों से, जो कि दो ताम्र की ढली दो पट्टियों पर खड़े हैं, जुड़ा हुआ है। लेकिन इसमें पहियों के लिए कोष्ठ नहीं है। रथ में एक दंड है, जिसे दो समानांतर दंड संभाले हुए हैं। इस दंड पर सवार खड़ा है। इस कृति जैसा अन्य कोई उदाहरण नहीं है।

4 **भैंस**—इस कृति में भी दो पहिए एवं घुरी मौजूद है। इस कृति जैसी ही भैंस की मिट्टी एवं ताम्र अथवा कांस्य दोनों की ही मूर्तियां मोहनजोदड़ो से भी प्राप्त हुई हैं।

दायमाबाद के भंडार की ताम्र की तुलना खुदाई में मिली अन्य ताम्र वस्तुओं से की जा सकती है। इस धातु के स्पेक्ट्रोमेटरिक विश्लेषण से पता चलता है कि इसमें टिन अथवा कोई अन्य धातु की मिलावट नहीं की गयी थी। एक मत के अनुसार, दायमाबाद के भंडार का काल उत्तर कालीन हड़प्पा काल (1600-1300 ईसा पूर्व) है। एक अन्य मत के अनुसार, तकनीक के आधार पर इनका काल कल्लूर भंडारों वाला काल हो सकता है।

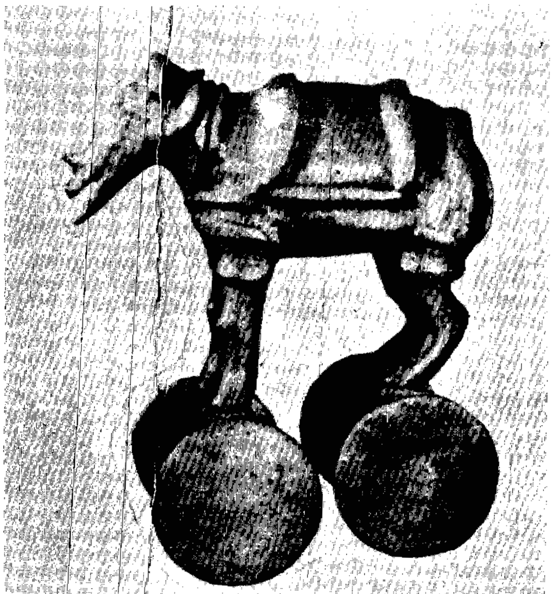

17. ताम्बे का गैंडा (दायमाबाद)

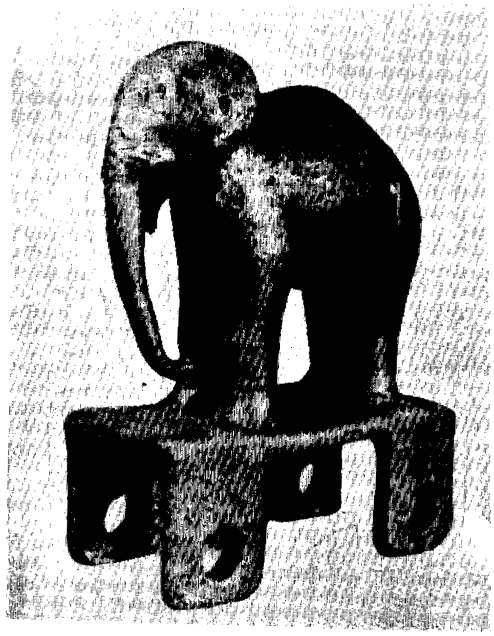

18. ताम्र हाथी—दायमाबाद

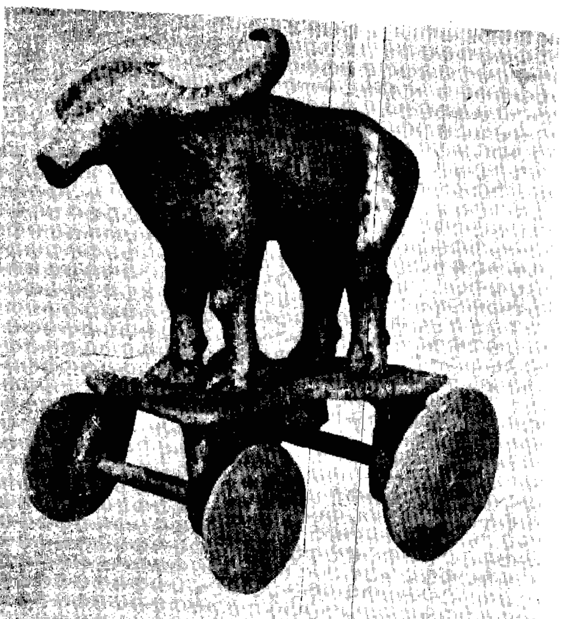

19. ताम्र भैंसा—दायमाबाद

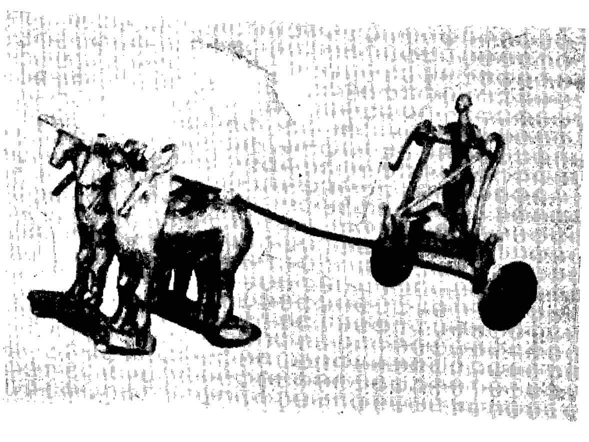

20. सवार सहित दो पहियों वाला रथ

10.7.5 धर्म एवं विश्वास

खुदाई से प्राप्त जानकारियों से लोगों के धार्मिक विश्वासों एवं रीतियों पर भी प्रकाश पड़ता है।

1 **देवियां**: ताम्र पाषाण समुदाय के लोगों के देवियों में विश्वास तथा उनकी पूजा के प्रमाण नारी प्रतिमाओं (जो तपाए तथा गैर तपाए दोनों रूपों में मौजूद थीं) के पाए जाने से प्राप्त होते हैं। इन प्रतिमाओं में कुछ के सर हैं और कुछ के नहीं हैं। बस्तियों के निचले तलों में नेवासा (दूसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व के मध्य में) में शीर्ष रहित बड़े आकार की एक नारी प्रतिमा मिली है जो कि बगैर किसी विशिष्ट शारीरिक लक्षणों की है। इनामगांव में भी इसी प्रकार की मिट्टी की प्रतिमाएं मिली हैं जिनमें स्तनों के अतिरिक्त अन्य शारीरिक लक्षण नहीं हैं।

इनामगांव में एक आरंभिक जोर्वे घर (1300 ईसा पूर्व) की खुदाई से देवी पूजा के प्रमाण मिले हैं। यहां पर एक कोने में फर्श के नीचे दबा अंडाकार मिट्टी का पात्र ढक्कन सहित मिला है। इस पात्र के अन्दर एक नारी प्रतिमा मिली है जिसके स्तन बड़े एवं लटके हुए हैं। साथ एक सांड की मूर्ति भी मिली है।

इनामगांव से मिले प्रमाण तथा सभी नारी प्रतिमाओं से उर्वरता की देवी की पूजा के संकेत मिलते हैं। यह प्रतिमाएं (विशेषकर शीर्ष रहित प्रतिमाएं), एक मतानुसार, सकम्भारी देवी (पूर्व ऐतिहासिक युग) जो कि कृषि उर्वरता की देवी थी तथा सूखे से छुटकारा पाने के लिए पूजी जाती थी, की प्रतीत होती है।

2 **देवता**: ताम्र पाषाण बस्तियों में पुरुष प्रतिमाएं काफी कम हैं। ऐसा मत है कि इनामगांव में उत्तर जोर्वे तलों (1000-700 ईसा पूर्व) में मिली दो मिट्टी की पुरुष प्रतिमाएं (जिनमें एक तपाई गयी है तथा दूसरी गैर तपाई है) देवताओं की प्रतिमाएं होगीं। इसी संदर्भ में मालवा काल (1600 ईसा पूर्व) का एक चित्रित जार धार्मिक महत्व का माना गया है। इस बर्तन में दो भाग हैं। ऊपरी भाग में एक चित्र बना है, जिसमें एक मानवीय आकृति टहनियों का वस्त्र पहने हुए एक शेर पर आवृत है और उसके चारों ओर कुछ निश्चित शैली में ढले हुए पशु जैसे सांड, हिरन तथा मोर आदि खड़े हैं। निचले भाग में छलांग लगाते चीते अथवा तेंदुए हैं और यह भी निश्चित शैली में ढले हुए हैं। अच्छी तरह चित्रित करके सजायी गयी तश्तरी भी सम्भवतः कर्मकाण्डीय प्रयोगों के लिए होगी। इसी प्रकार दायमाबाद से प्राप्त ठोस ताम्र हाथी और भैंस की प्रतिमाएं आदि भी संभवतः धार्मिक महत्व रखते होंगे।

3 **मृतकों को दफनाने की प्रथा**: मृतकों को दफ़न कर के विन्यास करना एक सामान्य रीति थी। वयस्क तथा बच्चे दोनों ही उत्तर-दक्षिण क्रम में दफनाए जाते थे। सर उत्तर की ओर होता था तथा पैर दक्षिण की ओर। वयस्क अधिकतर लिटा कर दफनाए जाते थे जबकि बच्चे कलशों में दफनाए जाते थे। यह कलश कभी एक और अधिकतर दो होते थे जिनका मुंह जोड़ कर उन्हें गड्ढे में लिटा दिया जाता। वयस्क और बच्चे दोनों ही गढ्ढों में दफनाए जाते थे जो घर के फर्श में खोदे जाते थे और कभी-कभी घर के आंगन में भी खोदे जाते थे। इस संदर्भ में रुचिकर तथ्य यह है कि जोर्वे युग में वयस्क मृतकों के टखनों के नीचे का पैर काट दिया जाता था। मृतकों को घर के अहाते में दफनाने तथा टखने के नीचे का भाग काट देने की प्रथा सभवतः इस विश्वास की ओर संकेत करती है कि ऐसा करने से मृतक भूत नहीं बनेंगे जो कि दुष्ट हो सकते हैं।

विभिन्न स्थानों पर वयस्क शवाधान में शव के साथ कुछ वस्तुएं भी रखी जाती थीं जो कि समान्यतः दो और कभी-कभी दो से अधिक पात्र होते थे। उत्तर जोर्वे युग के एक शवाधान में पंद्रह पात्र रखे मिले हैं। मृतकों को उनके गहनों के साथ दफनाना भी सामान्य था। उत्तर जोर्वे युग के एक शवाधान में मनुष्य के अस्थिपंजर की गर्दन के निकट एक ताम्र का गहना प्राप्त हुआ है। इसी युग में दो कलशों में दफनाए गए एक बच्चे के साथ ताम्र का गहना प्राप्त हुआ। इसी युग में दो कलशों में दफनाए गए एक

बच्चे के साथ ताम्र एवं लाल इंद्रगोप के मनकों की क्रम में गुथी बारह मनकों की एक कण्ठी मिली है।

इनामगांव से प्राप्त जानकारी से जोर्वे युग में कुछ असामान्य शवाधान के तरीकों का भी पता चला है। यहां पर एक चार पायों वाला कलश, जो कि गैर तपाई मिट्टी का बना है और इसका दक्षिणी भाग मानवीय शरीर की तरह है, प्राप्त हुआ है। इस कलश (इसकी ऊंचाई 80 सें.मी.. तथा चौड़ाई 50 सें.मी.. है) का मुख चौड़ा और स्वरूप विहीन है और इसमें एक 30 से 40 वर्ष की आयु के पुरुष का ढांचा मिला है। यह ढांचा बैठने की मुद्रा में रखा मिला है। इसके टखने नहीं काटे गए हैं। कब्र की वस्तुओं में एक टोटीदार पात्र, जिस पर एक नाव, जिसके लम्बे चप्पू हैं का चित्र बना है, रखा मिला है। इस नाव के चित्र से आज हिन्दुओं के उस विश्वास का स्मरण आता है जिसमें वे मानते हैं कि मृतक की आत्मा को नाव में जलसागर पार करना होता है और तभी वह स्वर्ग पहुंचती है। इस प्रकार के भव्य शवाधान का गौरव प्राप्त करने वाला व्यक्ति सभवतः

- समाज में उच्च स्तर का व्यक्ति रहा होगा, अथवा
- बस्ती का प्रधान शासक रहा होगा, अथवा
- किसी ऐसे सामाजिक समूह का सदस्य होगा जिनके शवाधान का तरीका भिन्न था।

10.7.6 सामाजिक संगठन

ताम्र पाषाण संस्कृति के क्षेत्रों में पाये गये विभिन्न स्थलों के फैलाव के अध्ययन से यह लगता है कि स्थल दो प्रकार के थे, एक वह जो क्षेत्रीय केन्द्रों का प्रतिनिधित्व करते थे तथा दूसरे गांवों की बस्तियों का। यह अन्तर अथवा स्तरीकरण ताम्र पाषाण काल में किसी प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था के मौजूद होने की ओर संकेत करता है। इससे यह भी संकेत मिलता है कि ताम्र पाषाण सामाजिक संगठन श्रेणीबद्ध था। इसके साथ-साथ विभिन्न क्षेत्रों में मिली सुरक्षा दीवारों, खाइयों, अनाज के गोदाम, बांध तथा नहरों (जो कि इनामगांव में काफी स्पष्ट हैं) आदि सार्वजनिक व्यवस्थाओं को समग्र रूप में देखने से किसी न किसी प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था के विद्यमान होने के विचार को और भी बल मिलता है।

उत्तर हड़प्पा में हुए विकास के विस्तृत संदर्भ में देखने पर ताम्र पाषाण संस्कृतियाँ हड़प्पा संस्कृति के प्रभाव को आंशिक रूप में दर्शाती हैं। तथापि इन संस्कृतियों में अपने विशिष्ट क्षेत्रीय प्रभाव मौजूद हैं और एक दूसरे के साथ व्यापारिक संपर्क तथा सांस्कृतिक संबंध के प्रमाण मौजूद हैं।

धातु का इस्तेमाल करने वाले यह खेतिहर समुदाय दूसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व के आसपास फैले और प्रथम सहस्राब्दी ईसा के लगभग अदृश्य हो गए (केवल उत्तर कालीन जोर्वे 700 ईसा पूर्व तक विद्यमान रहा)। इस पतन का एक संभावी कारण (जो कि इन ताम्र पाषाण क्षेत्रों की मिट्टी के नमूनों के विश्लेषण के आधार पर व्यक्त किया गया है) बढ़ती हुई खुश्की तथा मौसम की विपरीत परिस्थितियाँ हैं। गोदावरी, तापती तथा अन्य घाटियों की कई बस्तियाँ निर्जन हो गयीं और पाँच अथवा छः शताब्दियों के अंतराल के बाद पांचवी/चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में शहरीकरण के साथ फिर से बसीं।

बोध प्रश्न 4

1 निम्नलिखित में से कौन सा वक्तव्य सही (✓) है अथवा कौन सा गलत (×) है।

क) पश्चिमी एवं मध्य भारत की ताम्र पाषाण संस्कृतियां शहरी बस्तियों पर आधारित थीं। (   )

ख) खुदाई में मिले कार्बनयुक्त बीज इन (ताम्र पाषाण) लोगों द्वारा उगाई जाने वाली विभिन्न प्रकार की फसलों के द्योतक हैं। (   )

ग) इनामगांव में मिले दस्तकारों के छोटे आकार के घर सामाजिक विभिन्नता की ओर संकेत करते हैं। (   )

घ) देवी की पूजा के कोई प्रमाण नहीं मिले हैं। ( )

ड.) कुछ क्षेत्रों में दफनाने के लिए कलशों का प्रयोग किया जाता था। ( )

2 मालवा बस्तियों की क्या विशेषताएं हैं। दस पंक्तियों में लिखें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3 दायमाबाद के भंडार की विशेषताओं पर पांच पंक्तियाँ लिखें।

....

....

....

....

....

10.8 सारांश

लगभग 2000 ई.पू. तक भारत के विभिन्न भागों में खेतिहर समुदाय स्थापित हो चुके थे। यह खेतिहर समुदाय ताम्बे और पत्थर के बने औजारों का प्रयोग करते थे। उत्तर भारत में यह समुदाय विभिन्न प्रकार के मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करते थे। विशेषकर गेरुए रंग वाले मिट्टी के बर्तन (OCP) तथा काले व लाल रंग वाले मिट्टी के बर्तन (BRW)। विभिन्न प्रकार के ताम्बे के औजार भी प्राप्त हुये हैं। मध्य भारत तथा महाराष्ट्र के काली मिट्टी वाले क्षेत्रों की खुदाई से कायथ, मालवा और जोर्वे संस्कृतियों की उपस्थिति का पता चलता है। लगभग 750 ई. पू. तक बहुत से खेतिहर समुदायों ने लोहे का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। ताम्र पाषाण समुदायों में मिट्टी के बर्तनों के प्रयोग में बहुत भिन्नता दिखायी देती है। लौह युग के धूसर रंग वाले मृद्भाण्ड तथा उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्ड बहुत विस्तृत क्षेत्र में प्रयोग किये जाते थे। उत्तरी काले पॉलिश मिट्टी के बर्तन लगभग पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में प्रयोग किये जाते थे। इस काल में विभिन्न समुदायों के बीच आदान-प्रदान और एक दूसरे पर प्रभाव डालने की प्रक्रिया बढ़ी। इसी काल में शहरी सभ्यता का भी प्रारम्भ हुआ। विभिन्न संस्कृतियों के खुदाई स्थलों से प्राप्त वस्तुएं बस्तियों की बनावट, व्यापारिक संबंध, औजारों की किस्मों, आभूषणों और धार्मिक विश्वासों के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं।

10.9 शब्दावली

पुरातात्विक वानस्पति : पुरातात्विक खुदाई से प्राप्त पेड़-पौधों के अवशेषों का अध्ययन।

अर्थशास्त्र : एक ऐतिहासिक ग्रन्थ जो परम्परागत रूप से चंद्रगुप्त के (चौथी-तीसरी शती ई. पू.) मंत्री कौटिल्य द्वारा रचित माना जाता है।

ब्राह्मी लिपि : भारत की प्राचीनतम ज्ञात लिपि। सम्राट अशोक के शिलालेख अधिकांशतया इसी लिपि में लिखे गये हैं। भारत की अधिकांश आधुनिक लिपियाँ जैसे—तमिल, देवनागरी आदि, इसी से ली गई हैं।

ताम्र पाषाण युगीन समूह : वह समूह अथवा समुदाय जो तांबे और पत्थर के औजारों का प्रयोग करते हैं।

जातक कथाएं : गौतम बुद्ध के पूर्व जन्मों से संबंधित कथाएं।

पंचमार्कड सिक्के : तांबे और चांदी के सिक्के जो पाँचवीं, छठी शताब्दी ईसा पूर्व से प्रयोग हुए। यह भारत के प्राचीनतम ज्ञात सिक्के हैं।

ताप संदीप्ति परीक्षा: चीनी मिट्टी के बर्तनों के निर्माण की तिथि ज्ञात करने की एक वैज्ञानिक पद्धति।

मृदभाण्ड : इसका प्रयोग मिट्टी के बर्तनों के लिये किया गया है। दोनों ही शब्दों का प्रयोग इसलिये किया गया है ताकि आप इस शब्द से परिचित हो सकें क्योंकि अधिकांश प्राचीन इतिहास की पुस्तकों में मिट्टी के बर्तनों के लिये इस शब्द का प्रयोग हुआ है।

10.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 आपके उत्तर में बर्तनों के प्रकार, इनकी विशेषताएं, भवनों की बनावट, फसल और इस संस्कृति का प्रभाव क्षेत्र सम्मिलित होना चाहिये। देखें भाग 10.2

2 क) × ख) × ग) × घ) ✓

बोध प्रश्न 2

1 आपके उत्तर में निम्न बातें शामिल होनी चाहिएं। मिट्टी के बर्तनों का रंग, इनको बनाने की पद्धति, तथा विभिन्न क्षेत्रों के काले व लाल रंग के बर्तनों के अंतर जैसे कि दोआब के काले व लाल रंग के बर्तन सादे हैं जबकि गिलुन्द तथा आहर के काले व लाल बर्तन रंगे हुये हैं। देखें भाग 10.4

2 यहाँ अर्द्ध बहुमूल्य (Semi precious) रत्नों के पाये जाने का उदाहरण ले सकते हैं। चूंकि यह रत्न यहाँ नहीं पाये जाते अतः व्यापार द्वारा आये होंगे। देखें भाग 10.5

बोध प्रश्न 3

1 उत्तरी काले पॉलिश किए बर्तनों की संस्कृति को यह नाम उन विशिष्ट बर्तनों के कारण मिला जो इस काल से जुड़े हुये हैं। देखें भाग 10.6

2 क) ✓ ख) × ग) × घ) ×

बोध प्रश्न 4

1 क) × ख) ✓ ग) ✓ घ) ✓ ङ) ✓

2 ये काफी बड़ी बस्तियाँ हैं जो योजनाबद्ध तरीके से बनायी गयी हैं। आप इनकी योजना और अन्य विशेषताएं जैसे—अण्डाकार अग्निकुण्ड तथा जमीन के नीचे बनी अनाज की खत्तियों आदि की चर्चा करें। देखें उपभाग 10.7.3

3 इसकी खोज संयोगवश हुई। यहाँ प्राप्त वस्तुओं और उनकी विशेषताओं के बारे में बताएं। देखें उपभाग 10.7.4

इकाई 11 ताम्र पाषाण युग तथा आरंभिक लौह युग-II

इकाई की रूप रेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 आरंभिक कृषक बस्तियाँ
11.2.1 सांस्कृतिक चरण
11.2.2 जीवन निर्वाह वाली अर्थव्यवस्था
11.2.3 भौतिक संस्कृति
11.2.4 दाह संस्कार के तरीके
11.3 नवपाषाण युगीन धरातल की उपलब्धियाँ
11.4 दक्षिण भारत में लौह युग
11.4.1 महापाषाण युगीन संस्कृतियाँ
11.4.2 महापाषाण युगीन संस्कृतियों की उत्पत्ति
11.4.3 भौतिक संस्कृति
11.4.4 जीवन निर्वाह वाली अर्थव्यवस्था
11.5 सारांश
11.6 शब्दावली
11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

इस इकाई में दक्षिण भारत के आरंभिक कृषक समुदायों तथा उसके बाद के लौह युग का विवरण दिया गया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न विषयों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे:

- दक्षिणी भारत की प्रारम्भिक कृषि संस्कृति के क्रमिक चरण तथा उनकी बुनियादी विशेषताएँ,
- इन संस्कृतियों की बस्तियों, अर्थव्यवस्था तथा अन्य पक्षों का स्वरूप,
- इस क्षेत्र में प्रारम्भिक लौह युग की विशिष्टताएँ।

11.1 प्रस्तावना

अब तक आप मानव जाति के आखेटन संग्रहण अवस्था से स्थायी कृषिगत् समुदाय की अवस्था में विकास से भली-भाँति परिचित हो चुके होंगे। आपने हड़प्पा सभ्यता तथा उससे सम्बद्ध विभिन्न पक्षों की भी जानकारी प्राप्त की है। तदुपरांत, पिछली इकाई में आपने यह भी देखा कि हड़प्पा सभ्यता के पतन के पश्चात् किस प्रकार द्वितीय सहस्राब्दी ईसा पूर्व से लेकर प्रथम सहस्राब्दी ईसा पूर्व के समय के दौरान विभिन्न संस्कृतियों का उदय हुआ। इस इकाई में इसी काल के दौरान दक्षिण भारत में हुए विकासों पर प्रकाश डाला जाएगा। इस इकाई में अध्ययन के केन्द्र बिन्दु इस काल की भौतिक संस्कृति, बस्तियों के स्वरूप में आए परिवर्तन तथा सामाजिक संगठन होंगे।

11.2 आरंभिक कृषक बस्तियाँ

दक्षिण भारत में आरंभिक कृषक समुदायों की बस्तियाँ तीसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व में अचानक अस्तित्व में आती है। आखेटन संग्रहण अर्थव्यवस्था से खाद्योत्पादन अर्थव्यवस्था की ओर क्रमबद्ध विकास (जैसा कि पश्चिमी एशिया में हुआ) के कोई प्रमाण नहीं मिले। इन क्षेत्रों से मिलने वाले प्रमाण इस दिशा की ओर संकेत करते हैं कि गोदावरी, कृष्णा, तुंगभद्र, पेनेरु तथा कावेरी नदियों के निकट खेती तथा जानवरों के लिए उपयुक्त क्षेत्रों का एक प्रकार से उपनिवेशीकरण हो गया था। अधिकतर स्थानों पर यह बस्तियां अर्धअसर कम वर्षा वाले तथा चिकनी मिट्टी के बालू वाले क्षेत्रों में फैली हुई थी। ये क्षेत्र खुश्क खेती तथा चरवाही (गाय, बैल तथा भेड़, बकरी) के लिये उपयुक्त थे। इन बस्तियों की विशिष्टताएँ निम्नलिखित हैं:

1 स्थिर ग्रामीण बस्तियाँ जिनके घर तथा अन्य भवन अर्धस्थायी और स्थायी दोनों ही प्रकार के थे। स्थायी इमारतों में सरपत से बने ढांचों पर लिपायी की जाती थी।

2 पत्थरों की कुल्हाड़ियाँ (भूरी चट्टानों जैसे सख्त पत्थरों से बनी) जो कि घिसाई तथा चमका कर बनायी जाती थी। इस तकनीक के कारण आरंभिक कृषक संस्कृतियों के पत्थर के औजारों के उद्योग को चमकाई हुई पत्थर की कुल्हाड़ियों का उद्योग कहा जाता है।

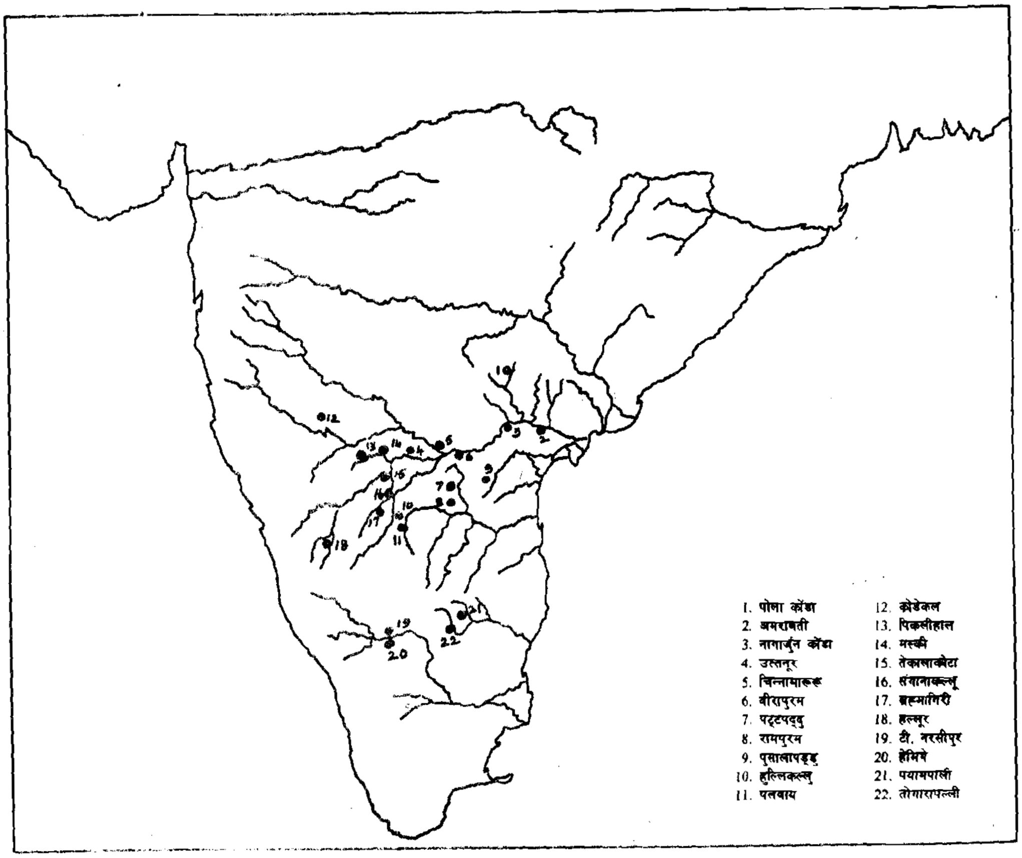

चित्र 21. दक्षिण भारत में प्रमुख नवपाषाण तथा ताम्र पाषाण बस्तियाँ

3 चकमकी, सूर्यकांत, सिक्थस्फटिक तथा अफीक जैसे पत्थरों से बनाए गए लम्बे एवं पतले फलक। इन औजारों में काटने की धार चमकाई गयी प्रतीत होती है जिससे पता चलता है कि यह औजार फसल काटने के लिए प्रयोग किए जाते थे।

4 आरंभिक चरणों में हाथ से बनाए गए बर्तन तथा बाद के चरणों में चाक पर बनाए जाने वाले बर्तन।

5 ज्वार बाजरे की खेती तथा गाय बैल एवं भेड़ बकरियों के पालन पर आधारित अर्थव्यवस्था। इस प्रकार यह अर्थव्यवस्था मूलतः कृषि पशुपालन पर आधारित है।

6 भोजन की आवश्यकताएँ जंगली जानवरों से पूरी की जाती थीं।

11.2.1 सांस्कृतिक चरण

उपरोक्त प्रमाणों के आधार पर हम दक्षिण भारत में आरंभिक कृषक समुदाय के विकास के मोटे तौर पर तीन चरण इंगित कर सकते हैं।

चरण I

इन खेतिहर समुदायों की प्राचीनतम बस्तियाँ प्रथम चरण का प्रतिनिधित्व करती हैं। यह बस्तियाँ पहाड़ियों के शिखरों अथवा पहाड़ियों के निकट समतल स्थानों अथवा दो या दो से अधिक पहाड़ियों के बीच की घाटियों में बनी थीं। इस चरण की भौतिक संस्कृति चमकाई हुई पत्थर की कुल्हाड़ियों का उद्योग, फलक, फलक युक्त औजार तथा हाथों से गढ़े बर्तनों पर आधारित थी।

बर्तनों में धूसर अथवा सलेटी रंग के मिट्टी के बर्तनों की अधिकता है। चमकाए हुए चिकनी मिट्टी के लाल अथवा काली धारी वाले बर्तन कम संख्या में हैं यह बर्तन अक्सर बैंगनी रंग से अलंकृत किए जाते थे। यह प्राचीनतम बस्तियाँ राख के टीलों से संबंधित थी जिनमें से कुछ में खुदाई की गई हैं। उनमें प्रमुख हैं—उतनूर, कूपयाल, कोडेकाल, पालावाय, पिकलीहाल मस्की, यह स्थल इन कृषक पशुपालक समुदाय की बस्तियों के प्रथम चरण के विशिष्ट उदाहरण हैं। रेडियोकार्बन तिथियों के आधार पर इस चरण का काल 2500-1800 ईसा पूर्व रखा जा सकता है।

चरण II

इस चरण में भी प्रथम चरण की बस्तियों की यथास्थिति बनी रहती है। अभी भी बस्तियाँ पहाड़ियों के शिखर पर अथवा पहाड़ियों से जुड़े समतल स्थान पर बसती थीं। तथापि कुछ महत्वपूर्ण प्रगति अवश्य दिखायी देती है। बस्तियों में गोलाकार झोंपड़ियाँ लकड़ी के ढांचे पर सरपत लगाकर बनाई जाती थी और उस पर लिपाई होती थी तथा फर्श मिट्टी के गारे से तैयार किया जाता था। नर्गाजुन कोंडा (तटीय आंध्र में) में मिले कुछ बड़े गड्ढे जोकि गोलाकार, चौकोर, तथा अनियमित हैं। यह गड्ढे अर्धभूतलीय आवासी के रूप में देखे जाते हैं। भूतलीय आवासी पद्धति परयामपाली एवं वीरापुरम में मिलती है। इस चरण में नए प्रकार के बर्तन बनाने की परंपरा आरंभ होती है जैसे टोंटी वाले तथा छिद्रित बर्तन। इस प्रकार के बर्तनों के प्राप्त होने से इस क्षेत्र के उत्तरी क्षेत्रों के साथ संबंध की ओर संकेत मिलता है क्योंकि इसी प्रकार के बर्तन उत्तरी क्षेत्रों में भी प्राप्त हुए हैं। इस चरण में बर्तनों के बाह्य तल के खुरदरे करने की तकनीक आरंभिक हड़प्पा युग की तकनीक अपनाए जाने का प्रतीक है। इस चरण में चमकाई हुई पत्थर की कुल्हाड़ियों एवं फलकों के उद्योग का प्रसार हुआ। ताम्र एवं कांस्य की वस्तुएं प्रथमतः इसी चरण में मिलती हैं जिनकी संख्या चरण की समाप्ति तक काफी बढ़ जाती है। कुछ स्थल जहां चरण II की बस्तियाँ प्राप्त हुई हैं वे हैं, पिकलीहाल, ब्रह्मागिरी, संगानाकालू, तेकालाकोटा, हल्लूर तथा टी. नारसीपुर, रेडियो कार्बन तिथियों के अनुसार इस चरण का काल 1800-1500 ईसा पूर्व निश्चित किया जा सकता है।

चरण III

इस चरण की महत्वपूर्ण प्रगति ताम्र तथा कांस्य के औजारों में वृद्धि है। यह वृद्धि तेकाला कोटा, हल्लूर, पिकलीहाल, संगानाकालू, ब्रह्मागिरी तथा पययामपाली में देखने

को मिलती हैं। पत्थर की कुल्हाड़ियों एवं फलकों का उद्योग यथावत बना रहता है। बर्तनों में सख्त पार्श्व वाले सलेटी एवं धूसर बर्तनों का उपयोग काफी सामान्य प्रतीत होता है।

एक अन्य प्रकार के मृद्भाण्ड, जो कि चाक से बनाए गए हैं, बैंगनी रंग से रंगे गए तथा बगैर चमकाए गए रूप में मिलते हैं। यह बर्तन महाराष्ट्र के ताम्र पाषाण युगीन जार्वे बर्तनों से मिलते-जुलते हैं। इस आधार पर इस चरण का काल 1400-1550 ईसा पूर्व रखा जा सकता है।

यह तीनों चरण दक्षिण भारत में आरंभिक खेतिहर पशुपालक बस्तियों के उदय एवं विस्तार को दिखाते हैं। चरण I से चरण III के बीच व्यवसायों में निरंतरता दिखाई देती है (जैसा कि कई स्थलों पर खुदाई से प्रमाण मिले हैं) और अर्थव्यवस्था में कोई विशेष परिवर्तन नजर नहीं आता। अंतर केवल इतना है कि चरण I में ताम्र एवं कांस्य के औजार नहीं मिलते। चूंकि चरण II तथा चरण III के व्यवसायों में इन धातु औजारों का प्रथमतः प्रयोग किया गया अतः इन्हें नवपाषाण–ताम्र पाषाण युगीन कहा जाता है।

बस्तियों के फैलाव से पता चलता है कि निचली पहाड़ियों के निकट मुख्य जल स्रोतों से हट कर किंतु नदियों से निकट के स्थलों को प्राथमिकता दी जाती थी तथा गर्म काली मिट्टी वाली भूमि लाल तथा काली मिट्टी वाली बलुई उपजाऊ भूमि, बलुई उपजाऊ भूरी भूमि तथा डेल्टा की बाढ़ की मिट्टी वाले क्षेत्रों को प्राथमिकता दी जाती थी। जहाँ यह बस्तियाँ मौजूद थीं वहां आज एक वर्ष में औसत वर्षा दर 600-1200 मिली मीटर है। यह स्थान सामान्यतः दीवारनुमा पहाड़ियों पर प्राकृतिक रूप से उभरे जगहों पर पाए जाते हैं तथा निवास स्थल पहाड़ियों के शिखर पर अथवा पहाड़ियों के एकदम नीचे होता है।

11.2.2 जीवन निर्वाह वाली अर्थव्यवस्था

प्राकृतिक दृष्टि से स्थलों के चुनाव में ऐसे क्षेत्रों को प्राथमिकता दी जाती थी जो ढलान वाले क्षेत्र हों जिससे कि सिंचाई की सुविधा स्वतः बनी रहे। तथापि ऐसे भी स्थल पाए गए हैं जहां नहर द्वारा सिंचाई करके पानी का उपयोग किया जा सकता था जैसे कृष्णा नदी के तट पर वीरपुरम, तुंगभद्र के तट पर हल्लूर, कावेरी तथा कपिल के संगम पर टी. नरसीपुर तथा कृष्णा के निकट बाढ़ की मिट्टी वाले क्षेत्र।

उपलब्ध पुरातत्व वानस्पतिक प्रमाणों से पता चलता है कि मुख्य फसलें बाजरा एवं दालें थी। रामापुरम् में हाल में ही बाजरे की विभिन्न किस्में जैसे ज्वार, चना, उड़द, मूंग, फलियाँ तथा जौ पायी गयी हैं।

जानवरों के संदर्भ में नवपाषाण तथा ताम्र पाषाण युग के स्थलों से खुदाई में प्राप्त सभी अवशेष पालतू एवं जंगली दोनों ही प्रकार के जानवरों के अस्तित्व की ओर संकेत करते हैं।

पालतू जानवरों में गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी, सुअर, कुत्ते तथा मुर्गी शामिल हैं। बैल लगभग हर स्थान पर पाए गए हैं, जिससे इन समुदायों की अर्थव्यवस्था में इनके महत्व की ओर संकेत मिलता है। उदाहरण के लिए, वीरपुरम् के जानवरों के अवशेष जिन पर गहन अध्ययन किया गया है।यहाँ गाय, बैलों की संख्या कुल पालतू जानवरों की संख्या का 48.68% है जबकि भेड़/बकरी केवल 5.4% पाए गए हैं। यदि कृष्णा के दाहिने तट पर, जोकि सिंचाई वाली खेती के लिए अत्यंत उपयुक्त स्थान हैं, यह स्थिति थी तो अपेक्षाकृत ऊपरी स्थानों पर बैलों का महत्व निश्चित रूप से और अधिक रहा होगा। चूंकि इन समुदायों की अर्थव्यवस्था खेती तथा पशुपालन (गाय, बैल अधिक तथा भेड़/बकरी कम) पर आधारित थी, इसलिये इस व्यवस्था को खेतिहर पशुपालक अर्थव्यवस्था कहा जा सकता है।

इन पालतू जीवों के साथ-साथ इन बस्तियों से जंगली जानवरों के भी अवशेष मिले हैं। यह जानवर साही, नीलगाय, चिकारा, काले हिरन, सांबर और चीतल हैं। इससे यह पता चलता है कि भोजन में मांस की आवश्यकताएं जंगली जानवरों से भी पूरी होती थी।

11.2.3 भौतिक संस्कृति

इस युग की भौतिक संस्कृति बर्तनों, पत्थर के औजारों, ताम्र/कांस्य की वस्तुओं तथा अन्य वस्तुओं पर आधारित थी।

1 **बर्तन** : चरण I (2500 से 1800 ई.पू.) के बर्तन मुख्यतः हाथ से बनाए गए सलेटी अथवा मटमैले भूरे होते थे। सलेटी बर्तनों की विशेषता बर्तनों को पकाने के बाद उन पर लाल गेरू से रंगाई करना थी। रूचिकर तथ्य यह है कि इन बर्तनों में से कुछ ऐसे हैं जिनके पाए खोखले तथा वृत्ताकार हैं जो कि हड़प्पा पूर्व आमरी तथा काली बंगन में मिले बर्तनों की किस्मों से मिलते-जुलते हैं। चरण I से संबंधित मृद्भाण्ड की एक अन्य किस्म में चमकाए हुए काले एवं लाल बाह्य भाग वाले बर्तन जो बैंगनी रंग से रंगे जाते थे, मिलते हैं।

चरण II (1800-1500 ई. पू.) में चमकाए हुए काली एवं लालधारी वाले बर्तनों का चलन समाप्त हो जाता है और एक अन्य किस्म सामने आती है। यह किस्म छिद्रित तथा टोटी वाले बर्तनों की है। मृद्भाण्ड तैयार करने में बाहरी भाग को खुरदरा बनाने की तकनीक अपनाई जाती थी जोकि हड़प्पा पूर्व बलूचिस्तान के इलाकों में सामान्य थी।

चरण III (1400-1050 ई. पू.) में जो नए मृद्भाण्ड चलन में आए वे हैं :

अ) सख्त ऊपरी भाग वाले सलेटी एवं धूसर मृद्भाण्ड।
ब) चाक से बनाए गए बैंगनी रंग से रंगे बगैर चमकाए मृद्भाण्ड।

यह दूसरी किस्म के बर्तन महाराष्ट्र के जोर्वे किस्म से मिलते-जुलते हैं जो कि दक्षिणी दकन तथा उत्तरी दकन के बीच सांस्कृतिक संबंधों की ओर संकेत करता है। बर्तनों की किस्मों में विभिन्न प्रकार के प्याले (उडेंलने के लिए विशिष्ट मुख वाले प्याले, टोंटी वाले प्याले, दस्ता लगे हुए तथा खोखले पाए वाले प्याले) जार, स्टैंड युक्त डोगें तथा छिद्रित एवं टोंटी वाले बर्तन मिलते हैं।

2 **पत्थर के औजार तथा हड्डियों की शिल्पकृति**: पत्थर के फलकों के उद्योग में लम्बे, पतले, समानांतर दिशा वाले फलक, जिनमें से कुछ अतिरिक्त शिल्प कार्य के द्वारा अन्य रूप ले लेते थे, मिले हैं। अतिरिक्त शिल्प वाले इन रूपों में चांदनुमा फलक, 90 अंश के दो कोण बनाते फलक त्रिकोणीय फलक तथा आरी वाले फलक शामिल हैं। सामानांतर दिशा वाले कुछ फलकों में काटने की धार के पास कांच लगा पाया गया है जिसके कारण इन फलकों का फसल की कटाई में इस्तेमाल किया जाता था। कई पत्थर के औजारों पर पॉलिश की गई प्रतीत होती है। पॉलिश की गयी अथवा पत्थर की कुल्हाड़ी के उद्योग की सबसे सामान्य किस्म त्रिकोणीय कुल्हाड़ी है जिसका एक सिरा अंडाकार तथा दूसरा नुकीला है। अन्य किस्में हैं—बसुला, फाल, छेनी, रंदा तथा नुकीले औजार (जिन्हें कुदाल कहा गया है)

इनके अतिरिक्त पत्थर के अन्य औजार हैं—हथौड़े, गोफने के पत्थर, पीसने वाले पत्थर, घिसाई के पत्थर तथा हस्तचलित चक्की। हस्तचलित चक्की खाद्य अनाज तैयार करने के काम आती थी।

हड्डियों के शिल्पकृति में शिल्पकृत हड्डियाँ, सींगें तथा प्रायः शाखायुक्त सींगें एवं सीप मिली हैं। सबसे सामान्य शिल्पकृति नुकीले छेनी के उपकरणों का है, एक स्थान पर (पालावय) बैलों के कंधे की हड्डी को घिसकर तैयार की गयी हड्डी की कुल्हाड़ी भी प्राप्त हुई है।

3 **धातु की वस्तुएँ**: जैसा कि पीछे देखा गया है, ताम्र एवं कांस्य औजार चरण II में प्रकट होते हैं और चरण III तक उनकी संख्या में काफी बढ़ोतरी हो जाती हैं। इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण सीधी कुल्हाड़ियाँ तथा छेनियाँ हैं जो मालवा एवं महाराष्ट्र की पद्धति का अवशेष हैं। अन्य रूचिकर उपलब्धि कल्लूर में मिली श्रृंगिका तलवार है जिस पर (इकाई 10 में) ताम्र भंडारों के संदर्भ में चर्चा की गयी है।

विभिन्न स्थानों पर प्राप्त हुई ताम्र/कांस्य की अन्य वस्तुएं चूड़ियाँ, लच्छेदार कान की

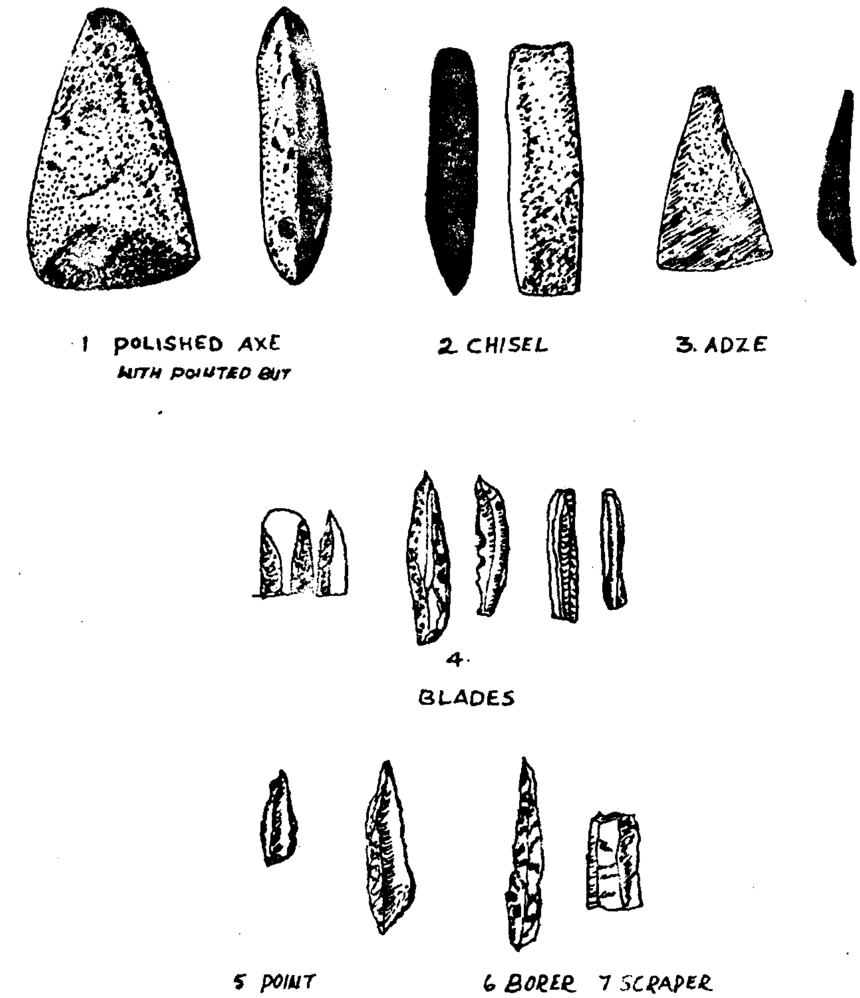

चित्र 22. दक्षिण भारत में नवपाषाण युगीन पालिश किये गये पत्थर के औज़ार 1. नुकीले दस्ते वाली पालिशदार कुल्हाड़ी 2. छेनी 3. बसूला 4. ब्लेड 5. नुकीले औज़ार 6. बेधक 7. खुर्चनी

बालियाँ तथा सुरमें की सलाईयाँ हैं, हल्लूर से एक मछली पकड़ने का कांटा भी मिला है। तेकालोकोटा में एक लच्छेदार कान की सोने की बाली भी मिली है।

4 **मनके एवं मिट्टी की प्रतिमाएँ:** कुछ स्थानों पर अर्ध बहुमूल्य पत्थरों के मनके प्राप्त हुए हैं। उदाहरण के लिए, नागार्जुन कोंडा में लुगदी एवं स्टीटाइट पत्थर की चपटी गोलाकार मनकों की मालाएँ, मिट्टी की प्रतिमाएँ, जो कि हड़प्पा के उभरी हुई पीठ वाले बैलों की हैं पिकलीहाल जैसे कुछ स्थलों से प्राप्त हुई हैं।

इन्हें यदि कुपगाल, मस्की, पिकलीहाल आदि बस्तियों से प्राप्त बैलों के चित्रों के संदर्भ में देखा जाए तो इन संस्कृतियों में बैलों के महत्व की ओर संकेत मिलता है। इन चित्रों में बैलों को समूह में प्रसन्न मुद्रा में दर्शाया गया है तथा उभरी पीठ वाले सांड एवं लम्बे सीगों वाले बैलों को चित्रित किया गया है। कुछ बैलों की पीठें अलंकृत की गयी दर्शायी गयी हैं।

11.2.4 दाह संस्कार के तरीके

सामान्यतः शव घर के अन्दर दफनाए जाते थे, वयस्क दाह संस्कार में और शिशु कलशों में दफनाए जाते थे। तेकालाकोटा में खुदाई से (चरण III में) शवों को विभिन्न बर्तनों के साथ दफनाने के प्रमाण मिले हैं जो कि महाराष्ट्र में जोर्वे दाह संस्कार के अनुरूप था। नागार्जुन कोंडा में नवपाषाण युगीन कब्रिस्तान की पहचान की गयी है। कब्रों में शवों के साथ टोटी वाले बर्तनों सहित कुछ अन्य बर्तन तथा कुछ स्थानों पर पत्थर के फलक एवं कुल्हाड़ियाँ भी दफनाई जाती थीं।

11.3 नवपाषाण युगीन धरातल की उपलब्धियाँ

बस्तियों के अतिरिक्त पॉलिश की गयी पत्थर की कुल्हाड़ियाँ जंगली इलाकों के निर्जन स्थानों पर, जहां लोग कभी-कभी इकट्ठे होते होंगे मिली हैं। दक्षिण भारत में इस प्रकार के कई स्थान मिले हैं, बहुधा ऐसे स्थानों के निकट बस्तियाँ भी होती थी। यह वस्तुस्थिति किस तथ्य की और संकेत करती हैं? संभवतः यह स्थान गतिविधि केन्द्रों के रूप में प्रयोग होते होंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि औजारों (जैसी पेड़ काटने की कुल्हाड़ियों) के इस्तेमाल को देखते हुए यह चयनित स्थल पहाड़ी जंगली क्षेत्रों को साफ करके खुश्क खेती योग्य बनाने के लिए चुने गए होंगे।

तमिलनाडु के जंगली पहाड़ी क्षेत्र जैसे—स्लेवॉरी, जवाड़ी तथा तीरुमलाई पहाड़ी क्षेत्रों में इस प्रकार की नवपाषाण युगीन पत्थर की कुल्हाड़ियाँ पाया जाना सामान्य है। पश्चिमी तटों के दक्षिणी विस्तार के जंगली ढलानों से लेकर के निचले तमिल मैदानों तक नवपाषाण युगीन कुल्हाड़ियों का समानरूप से पाया जाना, झूम खेती (shifting cultivation) के तरीकों जो कि अभी कुछ समय पूर्व तक पश्चिमी तटों के दक्षिणी भाग में प्रचलित थे, के प्रचलन का द्योतक हैं।

दक्षिण भारतीय नवपाषाण युग में भी राख के टीले मिलते हैं जो कि भीम-कृष्णा तुंगभद्र दोआब के अर्ध ऊसर भागों तक फैले हुए हैं। 60 से अधिक राख के टीले खोजे जा चुके हैं और इनमें से कुछ काफी बड़े हैं। पुरातत्वशास्त्रियों के अनुसार, राख के यह टीले नवपाषाण युगीन समुदायों द्वारा गाय के गोबर को जलाने के कारण बने। उनके कथनानुसार, ये वे स्थान थे जो कि गाय बैलों के बांड़ों के रूप में प्रयोग किए जाते थे जहां गोबर इकट्ठा किया जाता था। रेमंड अलचिन ने उतनूर (राख का एक टीला) की खुदाई से प्राप्त प्रमाणों के आधार पर यह परिणाम निकाला कि राख के टीले नवपाषाण युगीन लोगों के जानवरों के जंगली पड़ाव थे तथा गोबर का जलाया जाना संभवतः कर्मकांडी महत्व रखता था।

जैसा कि पहले कहा गया है कि दक्षिण भारत में शिकारी संग्रहकर्ता अर्थव्यवस्था से ग्रामीण खेतिहर समुदाय की ओर विकास को प्रमाणित करने के कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। जैसा कि हमने देखा कि इन क्षेत्रों में तीसरी सहस्राब्दि ईसा पूर्व के लगभग मध्य में अचानक ग्रामीण बस्तियाँ अस्तित्व में आ गयी। यह खेतिहर बस्तियाँ कैसे अस्तित्व में आयी?

कुछ पुरातत्वशास्त्रियों के अनुसार, धूसर मृद्भाण्ड उत्तर-पूर्वी ईरान में हिसार, तुरंग तेप तथा शाह तेप स्थलों पर प्राप्त हुए मृद्भाण्ड से मिलते-जुलते हैं और लाल एवं काले रंगे हुए बर्तन बलूचिस्तान तथा हड़प्पा पद्धति के पूर्व हड़प्पा बर्तनों के समरूप हैं। इन समानताओं तथा कुछ अन्य विशिष्टताओं के आधार पर इन पुरातत्व शास्त्रियों ने माना है कि दक्षिण भारतीय नवपाषाण युगीन संस्कृतियों का संभवतः कुछ भारत ईरान सीमांती क्षेत्रों के साथ संबंध रहा होगा।

बोध प्रश्न 1

1 निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़ें और उनके सामने सही (✓) अथवा गलत (X) का चिह्न लगाएं।

i) दक्षिण भारत की भौतिक संस्कृति को विभिन्न चरणों में विभाजित करना संभव नहीं है। ( )

ii) पालतू जानवरों में गाय, बैल दक्षिण भारतीय आरंभिक कृषक समुदायों की अर्थव्यवस्था में काफी महत्वपूर्ण थे। ( )

iii) शिशु तथा वयस्कों दोनों के दाह संस्कार के तरीके एक जैसे थे। ( )

iv) किसी भी खुदाई से हड्डी निर्मित उपकरणों के पाए जाने के प्रमाण नहीं मिले हैं। ( )

2 दक्षिण भारत के आरंभिक कृषक समुदायों के सांस्कृतिक चरणों पर दस पंक्तियाँ लिखें।

3 क्या दक्षिण भारतीय कृषक समुदाय की अर्थव्यवस्था को खेतिहर पशुपालक अर्थव्यवस्था कहा जा सकता है?

4 विभिन्न स्थानों पर मिले राख के टीलों से क्या संकेत मिलते हैं? पाँच पक्तियाँ लिखें।

11.4 दक्षिण भारत में लौह युग

दक्षिणी भारत में लोहे का प्रयोग लगभग 1100 ईसा पूर्व के आस-पास आरंभ हुआ। समय का यह अनुमान हल्लूर में प्राप्त वस्तुओं के रेड़ियो कार्बन विश्लेषण के आधार

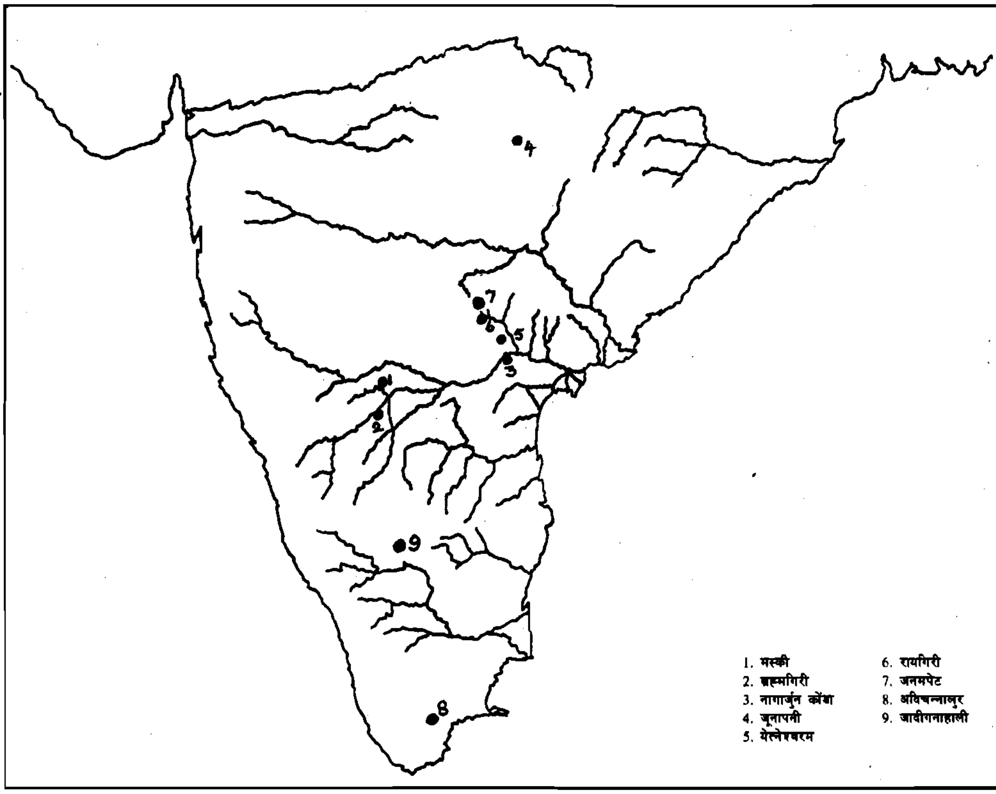

चित्र 23. दक्षिण भारत के महत्वपूर्ण लौह युगीन स्थल

पर लगाया गया है। तथापि कुछ अन्य स्थानों पर, जिनकी पीछे चर्चा की जा चुकी हैं, नवपाषाण युगीन तथा ताम्र पाषाण युगीन संस्कृतियाँ लौह युग तक अपना अस्तित्व बनाए रहती हैं। उत्तरी दकन (महाराष्ट्र) में भी कई ताम्र पाषाण युगीन बस्तियाँ लौह युग में भी बनी रही। दक्षिणी दकन के ब्रह्मगिरी, पिकलीहाल, संगानाकालू, मस्की, हल्लूर, पयमवाली आदि में भी ऐसी ही स्थिति थी।

दक्षिण भारत में लौह युग का प्राचीनतम चरण पिकलीहाल तथा हल्लूर की खुदाई और संभवतः ब्रह्मगिरी के शव दफनाने व गड्ढों के आधार पर निश्चित किया गया है। इन शवाधान के गड्ढों में पहली बार लोहे की वस्तुएँ काले एवं लाल मृद्भाण्ड तथा फीके रंगे भूरे एवं लाल मृद्भाण्ड प्राप्त हुए। कुछ हद तक फीके रंगे भूरे एवं लाल मृद्भाण्ड जार्वे मृद्भाण्डों के समरूप हैं। इसी प्रकार के प्रमाण टेकवाड़ा (महाराष्ट्र) से भी प्राप्त हुए हैं। कुछ बस्तियों में पत्थर की कुल्हाड़ियाँ एवं फलक प्रयोग में बने रहें।

इसके बाद के चरण की विशेषता घिसकर चमकाए बगैर रंगे काले एवं लाल मृद्भाण्डों तथा लाल एवं काले मृद्भाण्डों की बहुतायता है।

11.4.1 महापाषाण युगीन संस्कृतियाँ

दक्षिण भारत से लौह युग के विषय में अधिकांश जानकारी महापाषाण कालीन कब्रों की खुदाई से मिलती हैं। महापाषाण से तात्पर्य उस काल से है, जब मृतकों को आबादी क्षेत्र से दूर कब्रिस्तानों में पत्थरों के बीच दफनाया जाता था। दक्षिण भारत में इस प्रकार के दफनाने की परंपरा लौह युग के साथ आरम्भ हुई। महापाषाण कालीन दफन करने के इस तरह की जानकारी बड़ी संख्या में निम्न स्थानों जैसे—महाराष्ट्र (नागपुर के पास), कर्नाटक (मस्की), आंध्रप्रदेश (नागार्जुन कोंडा), तमिलनाडु (अदिचनाल्लुर) तथा केरल में पायी गयी हैं।

महापाषाण कालीन शवों के दफनाने में कई तरीके देखने में आते हैं। कभी-कभी मृतकों की हड्डियाँ बड़े कलशों में जमा करके गड्ढे में दफनाई जाती थीं। इस गड्ढे के ऊपर पत्थरों से घेरा बनाया जाता था या केवल एक पत्थर से ढक दिया जाता था कभी-कभी दोनों ही चीजें की जाती थी, कलश और गड्ढों में कुछ वस्तुएं भी रखी जाती थीं। कुछ जगह शवों को पकाई हुई मिट्टी की शवपेटिकाओं में भी रखा गया

है। कुछ ऐसे भी उदाहरण देखने में आते हैं, जहाँ मृतक दफनाने के गड्ढ़े पत्थरों से बनाये गये हैं। ग्रेनाइट पत्थर की पट्टिकाओं से बने ताबूतनुमा कब्रों में भी शवों को दफनाने के उदाहरण मिलते हैं। केरल में पत्थर की चट्टानों में शव दफनाने के कुछ उदाहरण मिले हैं। कुछ जगह पत्थर को सीधा गाढ़ कर आयताकार या वर्गाकार छेदों में भी शव दफनाये गये हैं।

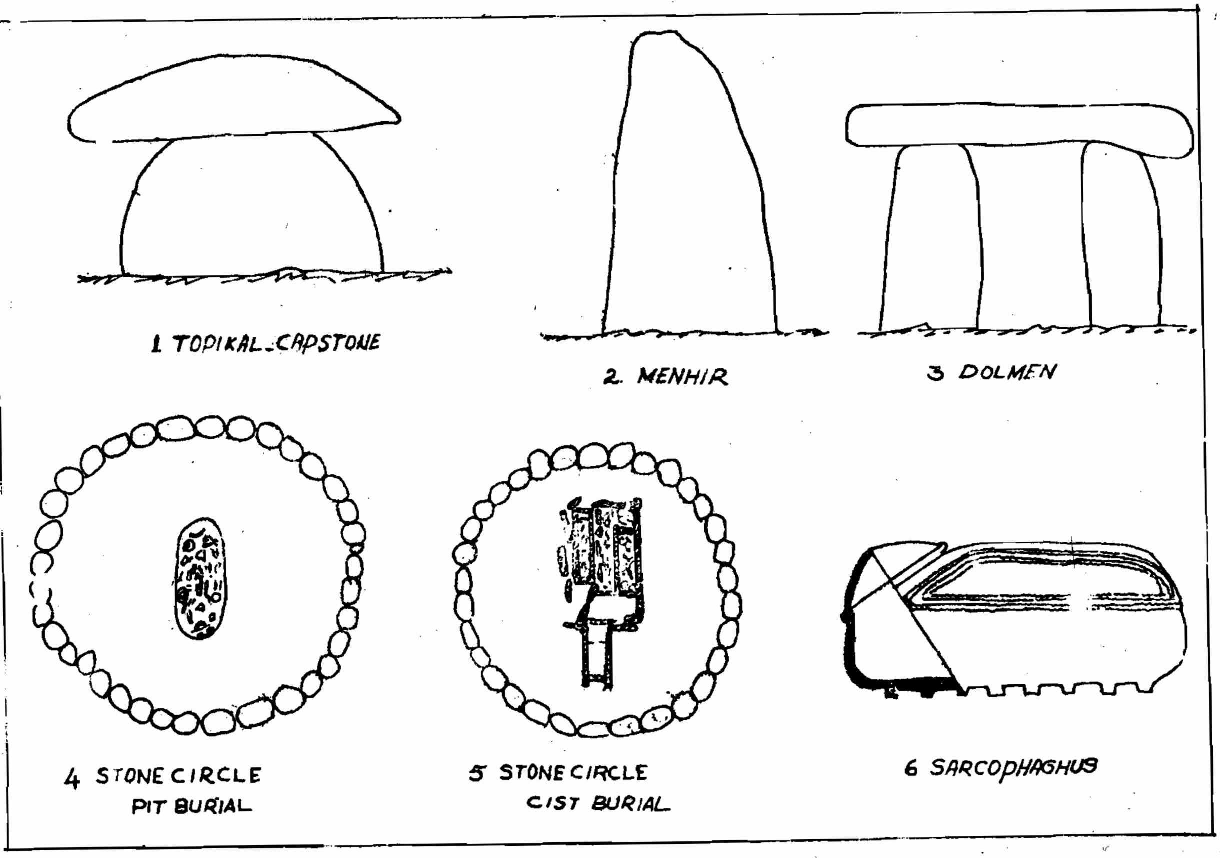

चित्र 24. महापाषाण काल में मृतकों को दफनाये जाने के तरीके 1 से 3 पत्थर से ढकी विभिन्न प्रकार की कब्रें 4. पत्थर के घेरे में गड्ढे वाली कब्र 5. पत्थर के घेरे में पथरीले ताबूत वाली कब्र 6. मिट्टी की शवपेटिका वाली कब्र

11.4.2 महापाषाण युगीन संस्कृतियों की उत्पत्ति

महापाषाण कालीन संस्कृति का प्रारम्भ दूसरी सहस्राब्दी ई.पू. के अंत और प्रथम सहस्राब्दी ई. पू. के प्रारम्भ में हुआ, बाद की कई शताब्दियों तक यह परम्परा जारी रही। कुछ विद्वानों का मत है कि महापाषाण युग के लोग एक ही सांस्कृतिक समूह के नहीं थे तथा दक्षिण भारतीय कब्रों पर कई क्षेत्रों के प्रभाव के कारण यह कब्रें कई संस्कृतियों का मिश्रण प्रतीत होती हैं। प्रथमतः महापाषाण युग के कुछ शवाधान मध्य एशिया, ईरान अथवा काकेशस क्षेत्र के अवशेष हैं और हिन्द-यूरोपीय भाषाएँ बोलने वाले इन क्षेत्रों के लोगों ने ऐसी परम्परा की शुरुआत की होगी। इसके अतिरिक्त कुछ शवाधानों में दकन के स्थानीय नवपाषाण युगीन ताम्र पाषाण युगीन शवाधान के तरीके अपनाये गए प्रतीत होते हैं।

कुछ विद्वानों ने महापाषाण स्थलों को आर्यों अथवा द्रविड़ों के अवशेषों के रूप में माना है। परन्तु इस विचार को स्वीकार करना सम्भव नहीं है, यह तथ्य लगभग निश्चित है कि यह कब्र स्थल एक ऐसी स्थिति में अस्तित्व में आये जब उत्तर व दक्षिण भारत के विभिन्न समुदायों में मेल-जोल की प्रक्रिया काफी अधिक थी जैसी कि पहले चर्चा की गई इन क्षेत्रों में खेतिहर पशुपालक समुदाय लोहे के प्रयोग से काफी पहले से मौजूद थे। इन समुदायों की मृतकों को दफनाने की बहुत सी रस्में लौह युग तक जारी रहीं, मिट्टी के पात्रों में शवों को दफनाने की परम्परा ताम्र पाषाण युगीन इनामगांव में प्रचलित थी। महापाषाणीय दफनाने के बहुत से तरीके सम्भवतया स्थानीय सांस्कृतिक परम्पराओं से लिए गये थे। कब्रों से प्राप्त बहुत सी वस्तुएं भारत के उत्तर-पश्चिम में स्थित क्षेत्रों के साथ संबधों की ओर संकेत करती हैं। कुछ विशेष प्रकार के बर्तन जैसे

कि पायों वाले प्याले जो इन कब्रों में पाये गये हैं बहुत कुछ उन प्यालों की तरह हैं जो भारत के उत्तर-पश्चिम में और ईरान में इससे भी पुरानी कब्रों में मिले हैं। इसी तरह घोड़ों की हड्डियाँ और घोड़ों के प्रयोग से संबंधित अन्य वस्तुओं का यहाँ मिलना इस ओर संकेत करता है कि घुड़सवारी करने वाले लोग इस क्षेत्र में पहुँच गये थे। निश्चित ही घोड़े मध्य एशिया से लाये गये होंगे क्योंकि भारत में जंगली घोड़े भी नहीं पाये जाते थे। घोड़ों के दफनाने का उदाहरण, नागपुर के निकट जुनापनी से प्राप्त होता है, मस्की और पिकलीहाल से प्राप्त शिला चित्रों में बहुत से घुड़सवार धातु की कुल्हाड़ियाँ ले जाते दिखाये गए हैं। यह सब तथ्य इन क्षेत्रों को भारत के उत्तर-पश्चिम में रहने वाले समुदायों के साथ संबंधों पर प्रकाश डालते हैं। अतः लौह युग के मृतकों के अंतिम संस्कार के तरीके आंतरिक और विदेशी रस्मों का मिश्रण दर्शाते हैं।

11.4.3 भौतिक संस्कृति

पूर्व की भांति ही लौह युग की भौतिक संस्कृति लोहे तथा अन्य धातु की वस्तुओं के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट किस्म के बर्तनों के आधार पर रेखांकित होती है।

1 **बर्तन**: कब्रों की खुदाई से प्राप्त बर्तन काले एवं लाल मृद्भाण्ड हैं। विशिष्ट बर्तनों में छिछली तश्तरी, प्याले, गहरे प्याले जो कि गोल आधार वाले तथा कोन के आकार वाले हैं जिनके ऊपर दस्ता अथवा घुंडी वाले ढक्कन थे, बर्तन रखने के गोलाकार स्टैंड तथा गोल आधार वाले पानी के बड़े मटके हैं।

2 **लोहे तथा अन्य धातुओं की वस्तुएँ**: महापाषाण युग के सभी स्थलों, विदर्भ (मध्य भारत) में नागपुर के समीप जूनापनी से लेकर दक्षिण में आदिचानालूर तक लगभग 1500 कि.मी. के क्षेत्र में लोहे की वस्तुएं समान रूप से पायी गयी हैं। लोहे की विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ : चपटी लोहे की कुल्हाड़ियाँ जिसमें पकड़ने के लिए लोहे का दस्ता होता था, उभरे हुए चपटे किनारे के विभिन्न फावड़े, बेलचे, खुरची, कुदालें, हँसिए, फरसे, फान, सब्बल, बरछे, छुरे, छेनी अथवा बसुले, तिपाइयाँ बर्तन के स्टैड, तश्तरियाँ, लटकाने वाले लैम्प, कटारें, तलवारें (जिनमें से कुछ के दस्तों में कांस्य के आभूषण जड़ें हैं) तीर के फल तथा बरछे के फल जिनके पात्र खोखले हैं, विशेष अवसरों के लिए सीप जड़ी कुल्हाड़ियाँ, लोहे के त्रिशूल आदि हैं। इन औजारों के अतिरिक्त कुछ विशेष प्रकार की वस्तुएँ भी प्राप्त हुई हैं। जैसे घोड़े के सामान जिनमें लगाम का लोहे का वह हिस्सा जो घोड़े के मुंह में होता है तथा फंदे के आकार वाले किनारों वाली दो छड़ें (जो कि जूनापानी से प्राप्त हुई हैं), फंदे के आकार वाली नाक तथा मुँह पर लगाने वाली छड़ें (जो कि सनूर से प्राप्त हुई हैं) आदि। धातु की अन्य वस्तुओं में सबसे अधिक संख्या में ताम्र एवं कास्य की घंटियाँ पाई गयी हैं जो कि घोड़े अथवा गाय, बैलों की घंटियों के रूप में इस्तेमाल की जाती रही होंगी, सोने अथवा अर्ध बहुमूल्य पत्थरों के मनके भी इन स्थानों से मिले हैं।

11.4.4 जीवन निर्वाह वाली अर्थव्यवस्था

खुदाई में लौह युग की बस्तियाँ काफी कम संख्या में प्राप्त हुई हैं अतः दक्षिण भारतीय महापाषाण युग के निर्माताओं की अर्थव्यवस्था की स्पष्ट स्थिति का अनुमान लगाना कठिन है। कुछ स्थानों पर भेड़/बकरी तथा गाय, बैलों के अवशेष तथा बाजरा और दालें प्राप्त हुई हैं।

कब्रों की खुदाई से प्राप्त कब्रों में रखी जाने वाली लोहे की वस्तुओं की समरूपता इन वस्तुओं की विशेषता है। नागपुर के निकट जूनापानी से लेकर दक्षिण में आदिचानालूर तक एक ही प्रकार की लोहे की वस्तुओं का पाया जाना लोहे का काम करने वाले कारीगरों के काफी हद तक संगठित होने की संभावना को सिद्ध करता है। एक विद्वान के अनुसार, तमिलनाडु एवं कर्नाटक में यह मध्यपाषाण युगीन लोग कच्चे लोहे की खानों का पता लगाने तथा विभिन्न लोहे की वस्तुएँ तैयार करने में दक्ष थे, वे अन्य वस्तुओं के साथ लोहे की चीजों का व्यापार भी करते थे तथा धीरे-धीरे सामुदायिक जीवन के रूप में गांवों में बस गए। लेकिन एक अन्य विद्वान का मत है कि यह समूह खानाबदोश पशुपालक समूह थे जो

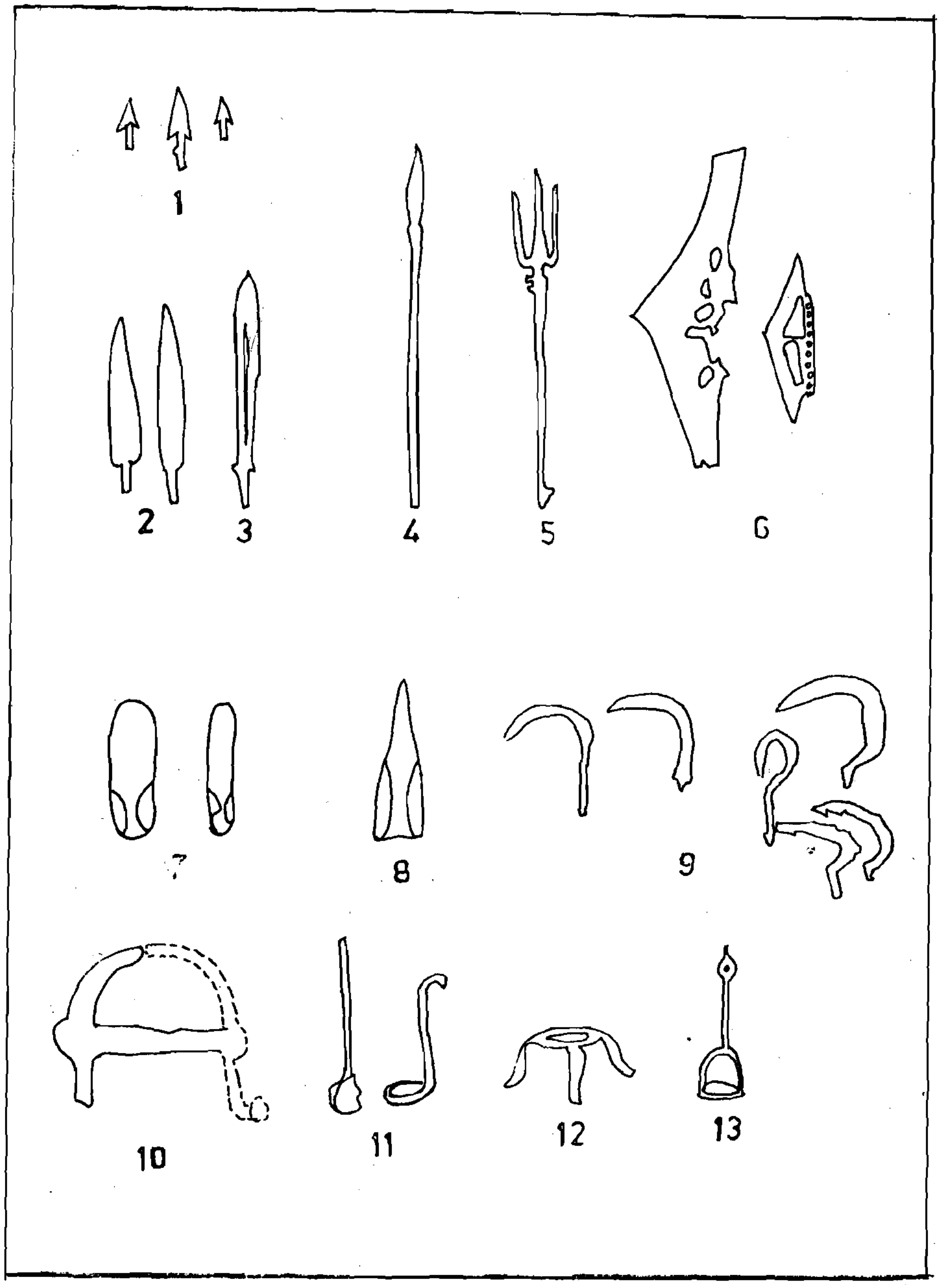

चित्र 25. दक्षिण भारत की महापाषाण युगीन कब्रों से प्राप्त लोहे के औज़ार 1. तीर के फलक 2. छुरे 3. तलवार 4. भाले के फलक 5. त्रिशूल 6. खड्ग 7. कुदाली 8. हल का फाल 9. हँसिया 10. रकाब नुमा वस्तु 11. कल्छी 12. तिपाई 13. लैम्प

कि भेड़/बकरी पालने पर अधिक निर्भर थे। महापाषाणीय स्थलों के पास जो बस्तियाँ पाई गई हैं उनमें पुरातात्विक अवशेष बहुत कम संख्या में मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ के लोग किसी एक स्थान पर बहुत कम समय तक रहते थे। ऐसा भी संभव है कि लोहे की जानकारी होने के बाद यह लोग नये क्षेत्रों में बस गये। इस प्रकार यहाँ कुछ लोग तो घुमक्कड़ पशुपालकों का जीवन व्यतीत करते रहे जबकि कुछ लोग नये क्षेत्रों को बसाकर स्थायी जीवन पद्धति पर चलने लगे जहाँ भी नई बस्तियाँ पुरानी बस्तियों की परम्परा में बसी लोग अपने पुराने तरीकों से ही रहते रहे, लोहे के औजारों के प्रयोग से यह लोग ग्रेनाइट पत्थर का उपयोग भी कब्रों के लिए कर सके। यही वह खेतिहर पशुपालक समुदाय हैं जिन्होंने ईसा बाद की प्रारंभिक शताब्दियों के ऐतिहासिक चरण में प्रवेश किया, इनका प्रारंभिक विवरण हमें संगम साहित्य में मिलता था। कुछ कब्रों में रोमन सिक्के मिले हैं जिनसे ऐसा आभास होता है कि यह एक बड़े क्षेत्र में व्यापारिक गतिविधियों में भाग ले रहे थे।

बोध प्रश्न 2

1 दक्षिण भारत में लौह युग के विषय में लगभग 100 शब्दों में लिखें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2 दक्षिण भारतीय महापाषाण युग के निर्माताओं की अर्थव्यवस्था पर पांच पंक्तियाँ लिखें।

....

....

....

....

....

11.5 सारांश

ईसा पूर्व तीसरी सहस्राब्दी में दक्षिण भारत में खेतिहर समुदायों का उदय हुआ। इसी काल में बड़ी संख्या में घुमक्कड़ पशुपालक समुदायों का भी उदय हुआ। खेतिहर वर्ग अधिकांशतया: चना, जौ, और कई किस्मों का बाजरा उगाया करते थे, पशुपालक समुदाय भेड़, बकरी तथा गाय, बैल आदि पालते थे। लगभग दूसरी सहस्राब्दी ई.पू. के प्रारम्भिक काल में इन समुदायों ने तांबे और कांस्य के औजारों का प्रयोग आरम्भ किया। इन लोगों के कांस्य के बहुत से औजार उत्तर पश्चिमी भारत के औजारों से मिलते-जुलते हैं। दूसरी सहस्राब्दी ई.पू. के अंत तक इस क्षेत्र में लोहे का प्रयोग भी होने लगा। इसी काल में महापाषाणीय दफनाने के तरीके भी शुरू हुए। इसने बस्तियों की योजना को भी प्रभावित किया क्योंकि इन समुदायों ने अपने मृतकों को बस्तियों के अलग हट कर दफन करना शुरू किया। परन्तु खेतिहर उन्हीं फसलों को उगाते रहे और पशुपालक भी पुरानी जीवन पद्धति पर चलते रहे। लेखन की परम्परा शुरू होने पर धीरे-धीरे विकास के इस चरण का विलय दक्षिण भारत के इतिहास में हो गया।

11.6 शब्दावली

शुष्क कृषि : खेती की ऐसी पद्धति जिसमें ऊपर भूमि की हमेशा गुडाई की जाती है, जिससे थोड़ी वर्षा के पानी का लाभ पौधों को मिलता है और पानी को जल्दी भाप बनने से रोकता है शुष्क देशों में यह पद्धति अधिक अपनाई जाती है।

जोर्वे बर्तन : द्वितीय सहस्राब्दी ई. पू. के लाल रंगे हुये मिट्टी के बर्तन जो सबसे पहले महाराष्ट्र में जोर्वे नामक स्थान पर मिले।

आर्य : वह समुदाय जो इंडो यूरोपी (Indo European) भाषाएँ बोलते थे और जिन्होंने वेदों की संरचना की।

दक्षिण : वह लोग जो दक्षिण की भाषाएं बोलते थे।

11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 i) (×)
  ii) (✓)
  iii) (×)
  iv) (✓)

2 देखें उपभाग 11.2.1

3 चूंकि अर्थव्यवस्था खेती तथा पशुपालन दोनों पर ही आधारित थी, अतः इसे पशुपालन अर्थव्यवस्था कहा जा सकता है।

4 आपके उत्तर में निम्न तथ्य होने चाहिए :
यह टीले मूलतः गाय, बैलों के बाड़े थे जहां गोबर इकट्ठा होता था; टीले गोबर जलाए जाने के कारण बने तथा गोबर जलना संभवतः नवपाषाण युगीन समुदायों के कर्मकांड का एक अंग था। भाग 11.3 भी देखें।

बोध प्रश्न 2

1 देखें उपभाग 11.4.1 एक चरण को दूसरे चरण से भिन्न करने वाली विशेषताएं लिखें।

2 देखें उपभाग 11.4.3

इकाई 12 प्रारम्भिक वैदिक समाज

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 स्रोत
12.2.1 साहित्यिक स्रोत
12.2.2 पुरातात्विक साक्ष्य
12.3 आर्यों का आक्रमण : कल्पित या वास्तविक
12.4 अर्थव्यवस्था
12.5 समाज
12.6 राजनैतिक व्यवस्था
12.7 धर्म
12.8 सारांश
12.9 शब्दावली
12.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- उन अनेक स्रोतों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे, जिनसे हम प्रारम्भिक वैदिक काल के विषय में जान सकते हैं,
- इन स्रोतों के माध्यम से भारतीय-आर्यों के व्यापक स्तर पर स्थानांतरण के सिद्धांत का परीक्षण कर सकेंगे, और
- प्रारम्भिक वैदिक काल की अर्थव्यवस्था, समाज, राजनीति एवं धर्म की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

इकाई 10 और 11 में आपने देखा कि लगभग 2000-1000 ई. पू. में भारत के विभिन्न क्षेत्रों में सांस्कृतिक रूप से असमान विकास वाली सभ्यताएं पायी जाती थीं। ये सभ्यताएं अनिवार्यतः कृषि-पशुपालन पर आधारित थीं और चूँकि इन सभ्यताओं ने सिवाय हड़प्पा सभ्यता के कोई लिखित प्रमाण नहीं छोड़ा है, अतः इनके बारे में केवल पुरातात्विक अवशेषों से ही जानकारी मिलती है। इस और अगली इकाई में हम धार्मिक अभिलेखों के उस विशाल भण्डार का अवलोकन करेंगे, जिसे भारत का प्राचीनतम् साहित्यिक प्रमाण माना जाता है। इस प्रमाण की पुष्टि हम पुरातात्विक साक्ष्यों द्वारा यथासम्भव करेंगे। ऋग्वेद को प्राप्य मंत्रों का प्राचीनतम् संग्रह माना जाता है अतः हम पहले ऋग्वेद का ही अध्ययन करेंगे ताकि आरम्भिक वैदिक काल के विषय में जानकारी मिले। इसके बाद अन्य वेदों और उनसे सम्बद्ध साहित्य का अध्ययन करेंगे। इस प्रकार के अध्ययन के दो लाभ हैं।

आर्यों को वेदों का रचयिता माना जाता है और साथ ही यह बहुत समय तक समझा गया कि भारतीय उपमहाद्वीप में संस्कृति के विकास में आर्यों की प्रमुख भूमिका रही। ऋग्वेद की सामग्री के सूक्ष्म परीक्षण से यह नहीं लगता कि उस समय की भौतिक सभ्यता बहुत

विकसित थी। बल्कि इसके विपरीत भारतीय सभ्यता की तमाम विशिष्ट भौतिक विशेषताएं ऐसी हैं जो भारत के विभिन्न भागों में पायी गयी ऐसी पुरातात्विक संस्कृतियों में मौजूद थीं जिनका वैदिक काल से कोई संबंध नहीं था।

दूसरा, ऋग्वेद और उसके बाद के वेदों और सम्बद्ध साहित्य से प्राप्त सामग्री की तुलना करने से यह पता चलता है कि वैदिक समाज के अंदर भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए थे। तात्पर्य यह है कि कोई ऐसा सुनिश्चित सांस्कृतिक ढाँचा नहीं था जिसे वैदिक संस्कृति या आर्य संस्कृति कहा जा सके। ऋग्वेद के प्रमाण सप्त सिन्धु अर्थात् सात नदियों की भूमि वाले भौगोलिक क्षेत्र से सम्बद्ध हैं। यह क्षेत्र पंजाब और निकटवर्ती हरियाणा का है। किन्तु ऋग्वेद के भूगोल में गोमती के मैदान, दक्षिणी अफगानिस्तान और दक्षिणी जम्मू कश्मीर भी सम्मिलित हैं।

प्रारंभिक व्याख्याओं के अनुसार, भारतीय आर्यों के स्थानांतरण का सिद्धांत इस तथ्य पर आधारित है कि वे पश्चिम एशिया से भारतीय उप-महाद्वीप में आये। ये प्रवासी "वेदों" के रचयिता माने जाते हैं इसलिये इनको वैदिक जन कहा गया है। इस ऐतिहासिक व्याख्या के अनुसार, आर्य कई झुडों या चरणों में भारत आये। आर्यों को एक भाषाई समूह जो कि यूरोपीय भाषाओं को बोलने वाला था समझा गया है। परम्परागत इतिहासकारों एवं पुरातत्ववेत्ताओं द्वारा उनको गैर आर्य हड़प्पावासियों से भिन्न प्रकार का माना गया है।

तथापि प्रारम्भिक वैदिक समाज की टीका करने के लिये यह देखना लाभदायक होगा कि, साहित्यिक रचनाओं और पुरातात्विक साक्ष्यों में पूरकता है या नहीं। यदि ये दोनों प्रकार के स्रोत एक ही काल और क्षेत्र से सम्बद्ध हों तो इन्हें मिला कर आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक जीवन के बारे में अधिक विस्तृत जानकारी और विचार मिल सकते हैं। आइए, हम इन स्रोतों का अवलोकन करें।

12.2 स्रोत

प्रारम्भिक वैदिक समाज के अध्ययन के लिये मुख्यतः हमारे पास दो प्रकार के स्रोत हैं– साहित्यिक तथा पुरातात्विक। आइए, पहले हम साहित्यिक स्रोतों का अध्ययन करें।

12.2.1 साहित्यिक स्रोत

साहित्यिक स्रोत के रूप में हमारे पास चार वैदिक ग्रंथ हैं–

- ऋग्वेद
- सामवेद
- यजुर्वेद, और
- अथर्ववेद।

इनमें ऋग्वेद सबसे प्राचीन रचना है।
"वेद" शब्द को संस्कृत के "विद से लिया गया है जिसका भावार्थ है "ज्ञान होना"।

"वेदों" में प्रार्थनाओं और श्लोकों का संकलन है और इनकी रचना बहुत से कवियों तथा महाऋषियों के परिवारों ने देवताओं के सम्मान में की। इन चारों वेदों को "संहिता" भी माना जाता है क्योंकि ये उस समय की मौखिक परम्परा के प्रतीक हैं। चूंकि श्लोक का तात्पर्य था उसका पाठ करना, उसको कंठस्थ करना तथा मौखिक रूप से उसको स्थान्तरित कर देना अतः जिस समय इनको संकलित किया गया उस समय इनको लिखा नहीं गया। इसी कारणवश किसी भी संहिता के रचना काल को पूर्ण निश्चय के साथ नहीं बताया जा सकता। वास्तव में प्रत्येक संहिता कई शताब्दियों के दौर में हुए संकलन का प्रतिनिधित्व करती है। इन चारों संहिताओं में वर्णित विषय वस्तु के आधार पर विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि ऋग्वेद की रचना लगभग 1500 ई. पू. से 1000 ई. पू. के मध्य में हुई होगी। और इसी समय को प्रारम्भिक वैदिक काल भी कहा जाता है।

ऋग्वेद संहिता में 10 सर्ग या मंडलों का संकलन है। दूसरे तथा सातवें को सबसे पहले की रचना माना गया है और यह विशेषकर प्रारम्भिक वैदिक काल से संबंधित है। ऐसा समझा जाता है कि एक, आठ, नौ एवं दस मंडलों को संहिता में बाद के काल में जोड़ा गया।

विद्वानों का मत है कि ऋग्वेद और ईरान के प्राचीनतम ग्रंथ अवेस्ता जो ऋग्वेद से भी पहले की रचना है, में समान भाषा का प्रयोग हुआ है। इन भाषाई समानताओं के आधार पर तथा कालक्रम में अवेस्ता को ऋग्वेद का अग्रगामी बताते हुए विद्वानों ने अपने मत व्यक्त किये हैं–

1) इन दोनों ग्रंथों में वर्णित लोग एक समान बहु-भाषा समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं और उनका स्थानातंरण पश्चिम एशिया एवं ईरान से भारतीय उप-महाद्वीप की ओर हुआ। ये लोग "आर्य" कहलाये।
2) आर्यों का मूल स्थान एक ही था जहां से वे विभिन्न समूहों में यूरोप एवं पूर्व की ओर स्थानांतरित हुए।

तथापि, आर्यों के उत्पत्ति-स्थल के विषय में वाद-विवाद की वैधता अब समाप्त हो चुकी है क्योंकि समान जातीय पहचान की अवधारणा को गलत साबित किया जा सकता है। परंतु एक समान भाषाओं की अवधारणा के आधार पर इतिहासकार आर्यों के स्थानांतरण के सिद्धांत पर विश्वास करते हैं और कुछ इतिहासकार इस पर विशेष जोर देते हैं।

12.2.2 पुरातात्विक साक्ष्य

पिछले 40 वर्षों में सिंधु व घग्गर नदियों के किनारे, पंजाब, उत्तर प्रदेश, तथा उत्तरी राजस्थान में उत्खनन के द्वारा इन क्षेत्रों से हड़प्पा काल के बाद के अन्नत ताम्र पाषाण संस्कृति के अवशेषों को खोद निकाला गया है। इनका समय 1700 ई. पू. से 600 ई. पू. के मध्य का है। आपने इकाई 10 में इस बारे में पढ़ा है। आपने देखा है कि इन ताम्र पाषाण संस्कृतियों को उत्तर हड़प्पा, ओ.सी.पी. (गेरु रंग के मृद्भांड), बी.आर.डब्लू. (काले और लाल मृद्भांड) और पी.जी. डब्लू. (स्लेटी मृद्भांड) के नामों से (अपनी विशेषताओं के कारण) पुकारा जाता है।

तथापि, हमें यह याद रखना चाहिये कि मिट्टी के बर्तन (मृद्भांड) बनाने वाली शैली उस समय के लोगों की सम्पूर्ण संस्कृति का प्रतीक नहीं है। विभिन्न प्रकार के मृद्भांड निर्मित करने की शैलियों का अनिवार्यतः यह अर्थ कदाचित् नहीं है कि इन बर्तनों का प्रयोग करने वाले लोगों में भी अन्तर था। विश्लेषण किसी सांस्कृतिक संग्रह के एक विशेष लक्षण को ही परिभाषित करता है, इससे अधिक नहीं। कुछ विद्वानों ने वैदिक साहित्य और उत्तर-पश्चिमी तथा उत्तरी भारत में प्राप्त इन संस्कृतियों के संकेतों का तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया है।

12.3 आर्यों का आक्रमण–कल्पित या वास्तविक

क्या आर्यों का आक्रमण एक कल्पना मात्र थी या वास्तविकता? अब हमें यह देखना है कि किस सीमा तक पुरातात्विक साक्ष्य इस प्रश्न का उत्तर जानने में हमारी मदद कर सकते हैं। पुरातात्विक विद्वानों ने बहुत सी उत्तर-हड़प्पा संस्कृतियों को आर्यों से जोड़ने का प्रयास किया है। स्लेटी बर्तनों की संस्कृति को बार-बार आर्यों की शिल्पकारिता के साथ जोड़ा जाता है और इसको लगभग 900 ई.पू. से 500 ई. पू. के मध्य का माना गया। उनका तर्क उन अनुमानों पर आधारित है जिनको इतिहासकारों ने साहित्यिक रचनाओं के विश्लेषण के द्वारा निकाला था। तथापि, ऋग्वेद एवं अवेस्ता के बीच पाई जाने वाली भाषागत समानता का अनुसरण करते हुए, पुरातत्वविदों ने, बर्तनों की किस्म, मिट्टी के बर्तनों पर चित्रण और तांबे आदि की वस्तुओं के बीच समानता दिखा कर उत्तर-हड़प्पा तथा पश्चिम एशिया/ईरानी ताम्र पाषाण संग्रह के मध्य समानता के चिन्ह खोजने की चेष्टा की है। इस प्रकार की अतिरंजित समानताओं ने इतिहासकारों के इस निष्कर्ष को बढ़ावा दिया है कि

आर्य उन लोगों का समूह था जिन्होंने पश्चिम एशिया से भारत की ओर स्थानांतरण किया था। इस प्रकार साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों को एक दूसरे का पूरक बना कर स्थानांतरण के सिद्धांत की वैधता को पुष्ट किया गया।

ऋग्वेद तथा अवेस्ता के मध्य भाषागत समानताओं को लेकर कोई विवाद नहीं है। परंतु इस प्रकार की समानता ये नहीं दर्शाती कि विशाल स्तर पर लोग भारतीय उपमहाद्वीप में स्थानांतरित हुए। दूसरा ये कि भारत में ताम्र पाषाण शिल्प अवशेषों और पश्चिम एशिया में पाए गए शिल्प अवशेषों के बीच समानता कम ही पायी जाती है। यह भी विशाल स्तर पर लोगों के स्थानांतरण को नहीं दिखाता। "आर्य" अवधारणा की जैसा कि पहले कहा गया, मृद्भांड की किसी एक शैली के आधार पर पहचान नहीं की जा सकती और न ही इसका नस्लीय या जातीय आधार पर अब कोई महत्व है। "आर्य" एक खोखली अवधारणा है जो लोगों के बीच भाषागर्त समानता से संबंधित है। इस विषय में आपको उत्खनन द्वारा प्रस्तुत किये गये निम्नलिखित निष्कर्षों का ध्यान रखना चाहिए।

1 प्रारम्भिक विद्वानों का विश्वास था कि इंडो-आर्य हड़प्पा सभ्यता के पतन का कारण थे। उन्होंने हड़प्पा के नगरों तथा शहरों का सर्वनाश किया। उन्होंने ऋग्वेद के उस श्लोकों को उद्धृत किया जिसमें इंद्र को घर-मकान नष्ट करने वाला बताया गया है लेकिन पुरातात्विक साक्ष्य इस तथ्य की पुष्टि नहीं करते कि हड़प्पा कालीन सभ्यता का पतन इसलिए हुआ कि उस पर किसी बाहरी शक्ति ने कोई व्यापक आक्रमण किया था। खंड 2 की इकाई 9 देखें)।

2 चित्रित धूसर मृद्भांड (पी.जी.डब्लू.–स्लेटी बर्तन) के प्रयोग करने वालों को आर्यों से जोड़ने के प्रयासों को पुरातात्विक साक्ष्य भी प्रमाणित नहीं करते। अगर मृद्भांड संस्कृतियां आर्यों के विषय में सूचित करती हैं तो उनके आक्रमण की अवधारणा को मस्तिष्क में रखते हुए ये मृद्भांड बहावलपुर तथा पंजाब में भी मिलने चाहिए क्योंकि आर्यों के स्थानांतरण का रास्ता भी यही था। लेकिन, हमें यह एक विशेष भौगोलिक क्षेत्र जैसे हरियाणा, ऊपरी गंगा के थाल और पूर्वी राजस्थान में प्राप्त होते हैं।

3 दोनों संस्कृतियों में समय के अंतर के विषय में भी सोचा गया जिसका तात्पर्य यह लगाया गया कि उत्तर हड़प्पा और हड़प्पा काल के बाद की ताम्र पाषाण कालीन सभ्यता के बीच एक अंतराल था। परंतु भगवानपुर, दधेरी, हरियाणा और माडा में की गई हाल की खुदाइयों से पाया गया कि उत्तर हड़प्पा और स्लेटी बर्तनों (पी.जी.डब्लू.) की संस्कृति के अवशेषों को बिना किसी रूकावट के एक साथ पाया गया है। इस प्रकार "आक्रमण" की अवधारणा को भी खुदाइयों के आधार पर सिद्ध नहीं किया जा सकता।

4 1750 ई.पू. के बाद नगर एवं शहर, साधारण बनावटी औजार जैसे मोहरें, तोल-माप के साधन आदि जो व्यापार एवं नगरीकरण से संबंधित थे, लुप्त हो गये। प्रारम्भिक काल का ग्रामीण ढांचा ई. पू. द्वितीय तथा पहली सहस्राब्दी ई.पू. में भी स्थिर बना रहा। पुरातात्विक खोजों के द्वारा खोजी गई उत्तर हड़प्पा काल के बाद की वस्तुओं जैसे मिट्टी के बर्तन, धातु के औज़ार तथा अन्य वस्तुएं वास्तव में भारत की ताम्र पाषाण कालीन संस्कृति की क्षेत्रीय विभिन्नता दिखाती हैं।

इस प्रकार ईसा पूर्व दूसरी और पहली सहस्राब्दी के पुरातात्विक प्रमाणों ने वैदिक आर्यों के विषय में आजकल प्रचलित दृष्टिकोण को परिवर्तित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। प्रथमतः, पुरातत्व में ऐसा कोई वास्तविक प्रमाण नहीं मिला है, जिससे यह सिद्ध हो कि 1500 ई.पू. के आस-पास मध्य या पश्चिमी एशिया से भारतीय उपमहाद्वीप में बड़े पैमाने पर लोगों का स्थानान्तरण हुआ। दूसरा, इस बात का कोई पुरातात्विक प्रमाण नहीं मिला है कि आर्यों ने हड़प्पा की सभ्यता का विनाश करके एक नयी भारतीय सभ्यता की स्थापना की। वस्तुतः, यद्यपि ऋग्वेद में बार-बार विभिन्न दलों के बीच संघर्ष और लड़ाइयों का वर्णन आया है, किंतु आर्यों और अनार्यों तथा उनकी संस्कृतियों के बीच कथित मुठभेड़ों का कोई भी विवरण पुरातत्व में नहीं मिलता।

फिर भी चूंकि ऋग्वेद धार्मिक श्लोकों का प्राचीनतम उपलब्ध संग्रह है अतः इसका

ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में महत्वपूर्ण स्थान है। इन श्लोकों (स्तोत्रों) से उस प्रारम्भिक समाज के विभिन्न पहलुओं के विषय में ऐसी जानकारियां मिलती हैं जो पुरातात्विक प्रमाणों से नहीं मिल सकती। उनसे हमें उस समय की अर्थव्यवस्था, सामाजिक संगठन, राजपरम्परा और राजनैतिक संगठन, धार्मिक और ब्रह्माडिकीय विश्वासों आदि के बारे में जानकारी मिलती है। इनमें से अधिकांश जानकारी परिवर्तिकालीन भारतीय समाज को समझने में सहायक सिद्ध होती है। अतः अब हम यह देखेंगे कि ऋग्वेद से प्रारम्भिक वैदिक समाज के बारे में क्या जानकारी मिलती है।

बोध प्रश्न 1

1 चार वेद क्या हैं? प्रारम्भिक काल से कौन सा वेद विशेषकर संबंधित है?

....

....

....

....

....

....

....

2 क्या आर्यों के आक्रमण की अवधारणा पुरातात्विक उत्खनन के प्रकाश में स्वीकार्य है? पुरातत्वाविदों की व्याख्याओं को 100 शब्दों में दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3 प्रत्येक का उत्तर|हां|या''नहीं'' में दीजिये।

i) प्रारम्भिक वैदिक काल का हमारा ज्ञान केवल साहित्यिक साक्ष्यों पर आधारित है। ( )

ii) वेद अनिवार्य रूप से देवताओं को समर्पित प्रार्थनाओं एवं श्लोकों का संकलन है। ( )

iii) अवेस्ता ईरानियों का सबसे प्राचीन ग्रंथ है। ( )

iv) ऋग्वेद एवं अवेस्ता के बीच भाषागत समानताएं आर्यों के भारतीय उपमहाद्वीप में स्थानांतरण की अवधारणा को वैधता प्रदान करने के लिये पर्याप्त आधार है। ( )

12.4 अर्थव्यवस्था

प्रारंभिक वैदिक समाज पशुपालन पर आधारित था, पशुओं को पालना ही मुख्य पेशा था। एक चरवाही समाज कृषि उत्पादों की तुलना में पशुधन पर अधिक निर्भर करता है। पशु चराने के काम आजीविका का साधन है और इसको वे लोग अपनाते हैं जो ऐसे क्षेत्रों में रहते हैं जहां पर बड़े स्तर पर खेती-बाड़ी का कार्य सम्भव नहीं जिसके कारण पर्यावरण संबंधी और कुछ सीमा तक सांस्कृतिक विवशताएं हैं।

प्रारम्भिक वैदिक काल में पशुपालन के महत्व का ऋग्वेद साक्ष्यों में काफी बड़े स्तर पर वर्णन हुआ है। ऋग्वेद में बहुत सी भाषागत अभिव्यक्तियां गाय (गौ) से जुड़ी हैं। पालतू पशु सम्पन्नता के प्रधान प्रतीक थे और एक सम्पन्न आदमी जो पालतु पशुओं का स्वामी होता था "गोमत" कहलाता था। इस काल में संघर्ष एवं लड़ाइयों के लिये जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता था, वे थे गविष्टि, गवेश्ना, गवयत आदि। पहले शब्द का अर्थ है गाय की खोज करना और ये शब्द यह स्पष्ट करते हैं कि इन पालतू पशुओं पर अधिकार समुदायों के मध्य असंतोष का आधार होता था तथा कभी-कभी इसको लेकर कबीलों के बीच संघर्ष एवं युद्ध छिड़ जाते थे। ऋग्वेद में पानि शब्द का प्रयोग हुआ है, जो वैदिक जनों के शत्रु थे तथा वे आर्यों के धन विशेषकर गायों को पर्वतों एवं जंगलों में छिपा लेते थे। इन पशुओं को छुड़ाने के लिये वैदिक देवता इंद्र की पूजा की जाती थी। यह संदर्भ यह भी बताता है कि पशुओं का अपहरण सामान्य बात थी। राजा या मुखिया को "गौपति" कहा जाता था, जो गायों की रक्षा करता था। ऋग्वेद में "गोधुली" शब्द का प्रयोग समय को मापने के लिये हुआ है, दूरी को गवयुती नाम दिया गया है, पुत्री को दुहिता कहा गया है क्योंकि वह दूध दूहन का काम करती थी, तथा जो लोग अपनी गायों के साथ एक ही गोष्ट में रहते थे उनको उसी गोत्र का माना जाने लगा। ये सारे शब्द गौ से बने हुये हैं और इससे लगता है कि ऋग्वेदकालीन जीवन में महत्वपूर्ण कार्य गौ-पालन था। चरागाह, गौशाला, दुग्ध उत्पादन और पालतू जानवर के साहित्यिक संदर्भ श्लोकों एवं प्रार्थनाओं में पाये गये हैं।

ऋग्वेद में पशुपालन से संबंधित अनगिनत भाषागत साक्ष्यों की तुलना में कृषि गतिविधियों से जुड़े संदर्भ बहुत ही कम मिलते हैं। अधिकतर कृषि संदर्भ बाद के काल से संबंधित हैं। "यव" या जौ के अतिरिक्त अन्य किसी अनाज का वर्णन नहीं किया गया है। प्रारम्भिक वैदिक काल के लोग लौह तकनीकी का प्रयोग नहीं करते थे। यद्यपि उनको तांबे की जानकारी थी, परन्तु ये औज़ार लोहे के औज़ार की तुलना में कम उपयोगी थे। पत्थर के औजारों (कुल्हाड़ी) का प्रयोग किया जाता था और इसका वृतांत ऋग्वेद में हुआ है। आग का प्रयोग जंगल जलाने के लिये किया जा रहा था और परिवर्तित खेती का प्रयोग प्रारम्भ हो गया था। इस क्षेत्र में वर्षा कम होती तथा ऋग्वेद में वर्णित नदियां सतलुज, सिंधु, घग्गर और रवि आदि के बहाव में जल्दी-जल्दी परिवर्तन होता रहता था। उच्च स्तर की सिंचाई प्रणाली के बिना, जिसका विकास इस काल में नहीं हुआ था, नदियों के किनारों की कछारी (जलोढ़) भूमि की सिंचाई स्थायी तौर पर नहीं की जा सकती थी। इस प्रकार ग्रंथों में वर्णित हंसिया, कुदाल और कुल्हाड़ी का प्रयोग शायद जंगलों को काटकर साफ करने या परिवर्तित खेती के लिए किया गया।

पशुचारण एवं परिवर्तित खेती के साक्ष्यों से स्पष्ट है कि लोग खानाबदोश या अर्ध-खानाबदोश की स्थिति में पशु झुंडों को लेकर कुछ निश्चित समय के लिये अपने पशुओं को चराने के लिये घूमते थे। साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों से स्पष्ट है कि लोग कृषि पर आधारित स्थायी जीवन नहीं बिता रहे थे। आबादी के गतिशील चरित्र के बारे में, "विश" शब्द से भी समझा जा सकता है जिसका तात्पर्य बस्ती था। पुनर (विश), उपा (विश) और प्रा जैसे प्रत्ययों के लगातार प्रयोगों से बस्तियों के उपविभाजन का बोध होता है और जिनका तात्पर्य है पास बसना (एक बस्ती के), पुनः प्रवेश करना (एक बस्ती में) या वापस आना (एक बस्ती को)।

भेंट विनिमय एवं पुनर्वितरण की समाज में महत्वपूर्ण आर्थिक भूमिका थी। कबीलाई-संघर्ष

के कारण पराजित या अधिन समूहों द्वारा विजित सरदारों को बलि के रूप में नजराना या अदायगी देनी पड़ती थी। विजयी कबीले के अन्य सदस्यों को युद्ध में बल-पूर्वक प्राप्त किये गये एवं लूट-पाट के सामान का भाग या हिस्सा मिलता था। उत्सव के अवसरों पर कबीले का मुखिया अपने कबीले के सदस्यों को भोज कराता था तथा उनको उपहार देता था। इसका आयोजन सम्मान प्राप्त करने के लिये किया जाता था। इस काल में व्यापार एवं व्यवसाय की हालत कमजोर थी। भू-स्वामित्व के आधार पर व्यक्तिगत संपत्ति का कोई सिद्धांत नहीं था। भूमि का अधिग्रहण व्यावसायिक आधार पर था।

12.5 समाज

प्रारम्भिक वैदिक समाज कबीलाई समाज था तथा वह जातीय एवं पारिवारिक संबंधों पर आधारित था। समाज जाति के आधार पर विभाजित नहीं था और विभिन्न व्यावसायिक गुट अर्थात् मुखिया, पुरोहित, कारीगर आदि एक ही जन समुदाय के हिस्से थे। कबीले के लिये 'जन' शब्द के दस राजाओं के संदर्भ मिलते हैं। जनों के पारस्परिक संघर्ष सामान्य थे, जैसे "दाशराज्ञ युद्ध" का वर्णन ऋग्वेद में हुआ है और इसी वर्णन से हमें कुछ जनों के नाम प्राप्त होते हैं जैसे भरत, पुरु, यदु, द्रुहयु अनू और तुरवासू। ये जनों के युद्ध जैसा कि पहले भी कहा गया है पशुओं के अपरहय एवं पशुओं की चोरी को लेकर होते रहते थे। जन का मुखिया "राजा" या "गोपति" होता था। वह युद्ध में नेता तथा जन का रक्षक था। उसका पद अन्य व्यावसायिक समूहों की भांति ही पैतृक नहीं था बल्कि उसका जन के सदस्यों में से चुनाव होना था। योद्धा को "राजनय" कहा जाता था। बहुत से कुटम्ब (विश) मिलकर एक जन, (कबीला) बनता था। विश एक गांव या ग्राम में बस जाते थे। कुल या परिवार समाज की प्राथमिक इकाई था और "कुलप" अर्थात् परिवार का सबसे बड़ा पुरुष परिवार का मुखिया था जो परिवार की रक्षा करता था।

कबीला (जन), कबीलाई इकाई (विश), गांव (ग्राम), परिवार (कुल), परिवार का मुखिया (कुलप)।

समाज, पितृसत्तात्मक था। पुत्र की प्राप्ति लोगों की सामान्य इच्छा थी। पुरुष को महत्व दिया जाता था और इसका पता उन श्लोकों से लगता है जिनको पुत्र प्राप्ति के लिये लगातार प्रार्थना में प्रयोग किया जाता था। यद्यपि पूरा समाज पितृसत्तात्मक था, फिर भी समाज में महिलाओं का भी काफी महत्व था। वे शिक्षित थीं और वे सभाओं में भी भाग लेती थी। कुछ ऐसी महिलाओं के भी दृष्टांत मिले हैं जिन्होंने श्लोकों का संकलन किया। उनको अपना जीवन साथी चुनने का अधिकार था और वे देर से विवाह कर सकती थीं। इन सबके बावजूद महिलाओं को पिताओं, भ्राताओं और पतियों पर सदैव निर्भर रहना पड़ता था। शिक्षा का मौखिक रूप से आदान-प्रदान किया जाता था, परंतु शिक्षा की परम्परा इस काल में अधिक लोकप्रिय नहीं थी।

ऋग्वेद के रचनाकारों में स्वयं को अन्य मानव समुदायों, जिन्हें उन्होंने दास और दस्यू कहा, से पृथक् रखा। दासों को काला, मोटे होठों वाला, चपटी नाक वाला, लिंग पूजक और अशिष्ट भाषा वाला कहकर वर्णन किया गया है। वे सुरक्षित दीवारें बना कर रहते थे और प्रचुर पशुधन के स्वामी थे। हमें एक अन्य वर्ग, पाणि, के विषय में जानकारी मिलती है जो धन और पशुओं के स्वामी थे। कालांतर में पाणि शब्द व्यापारियों और धन संपत्ति से जुड़ गया। इन समुदायों में आपसी झगड़े और मैत्रियां होते रहते थे और उन्हें विभिन्न जातियों या भाषाई वर्गों के रूप में नहीं बाटाँ जा सकता। उदाहरणतः ऋग्वेद का सबसे प्रमुख नेता सुदास था जिसने "10 राजाओं" की लड़ाई में भरत कुल का नेतृत्व किया था। उसके नाम के अंत में प्रयुक्त दास शब्द से लगता है कि उसका दासों से कुछ संबंध था। एक ही क्षेत्र में कई समुदायों की उपस्थिति के कारण ही सम्भवतः वर्ण व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ।

विभिन्न व्यावसायिक समूहों जैसे कि कपड़ा बुनने वाले, लोहार, बढ़ई, चर्मकार, रथ बनाने

वाले, पुजारी आदि का वर्णन हुआ है। सारथी का समाज में विशेष स्थान था। ऋग्वेद में भिखारियों मजदूरी पर काम करने वालों या मजदूरी का कोई दृष्टांत नहीं मिलता। परन्तु समाज में आर्थिक असमानता थी और हमें ऐसे संदर्भ मिलते हैं जिनके अनुसार कुछ धनी लोग रथों, पालतू पशुओं (गाय-बैलों) आदि के स्वामी थे और दूत वस्तुओं को भेंट या उपहार में देते थे।

बोध प्रश्न 2

1 आप "पशुपालक समाज" से क्या समझते हैं? पशुपालन प्रारंभिक वैदिक लोगों का प्रधान व्यावसायिक कार्य क्यों था?

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2 प्रारम्भिक वैदिक समान में पशु का क्या महत्व था? 50 शब्दों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

3 प्रारम्भिक वैदिक समाज की पांच महत्वपूर्ण विशेषताओं का वर्णन कीजिए। पांच वाक्यों में लिखिये।

....

....

....

....

....

....

....

4 उचित शब्द से रिक्त स्थानों को भरिये।

i) प्रारम्भिक वैदिक समाज में राजा या मुखिया को (गोमत/गोपती) कहा जाता था।
ii) इस काल में समय-समय पर होने वाले कबीलों के युद्ध एवं संघर्षों का मुख्य कारण (गायों/भूमि) पर अधिकार करना था।
iii) (यव/चावल) के अतिरिक्त किसी अन्य अनाज का ऋग्वेद में वर्णन नहीं है।
iv) आधारभूत सामाजिक इकाई (कुल/विश) था।
v) प्रारम्भिक वैदिक समाज (बहुविवाह/एकपत्निक) पर आधारित था।

12.6 राजनैतिक व्यवस्था

कबीलाई राज्य व्यवस्था पूर्णतः समानतावादी नहीं थी। ऋग्वेद में दोहरा सामाजिक विभाजन मिलता है, जिसको दो वंशीय समूहों के रूप में देखा गया है—प्रथम "राजनय" या वे जो युद्ध करते थे तथा जिन्होंने उच्चवंशीय परम्परा प्राप्त की, और शेष कबीले के साधारण सदस्य या विश जिन्होंने छोटीवंशीय परम्परा प्राप्त की। यद्यपि सामाजिक क्रम में किसी गुट ने विशिष्ट स्थान नहीं पाया था, परंतु लगातार कबीलों के पारस्परिक संघर्षों एवं युद्धों ने सामाजिक विभाजन की रचना की। चरागाहों, पशुओं की बढ़ती आवश्यकता और लोगों तथा बस्तियों की सुरक्षा आदि के कारण आंतरिक एवं बाह्य कबीलाई संघर्षों में वृद्धि हुई।

युद्ध में योद्धासमूह की सहायता के लिये "कबीले" विशाल स्तर पर यज्ञ या बलि का आयोजन करते थे। इन यज्ञों में पुजारी या पुरोहित जनसमुदाय तथा देवताओं के बीच मध्यस्थ का कार्य करते थे। वह देवताओं की स्तुति करता था जिससे कि देवताओं का आशीर्वाद कबीले के मुखिया को युद्धों में सफलता पाने के लिये मिल जाये। प्रारम्भ में, सारा जन समुदाय इन यज्ञों में समानता के आधार पर भागीदारी करता था। बड़े स्तर पर इन यज्ञों के समय धन, खाने आदि का वितरण किया जाता और जन समुदाय के प्रत्येक सदस्य को बराबर हिस्सा मिलता था। लेकिन संघर्षों एवं युद्धों में वृद्धि होने के कारण यज्ञ या बलि का महत्व बढ़ गया और पुरोहित ने समाज में एक विशेष दर्जा हासिल कर लिया। इस काल के अंतिम भाग में, वे राजाओं या मुखियाओं से प्राप्त होने वाले उपहारों का बड़ा हिस्सा पाने लगे, और इस प्रकार जन के अन्य सदस्यों की तुलना में उनको विशेष स्थान प्राप्त हुआ।

युद्ध आदि होने के कारण राजा के पद का भी विशेष महत्व हो गया और उच्च तथा छोटी वंशीय परम्पराओं के बीच विभाजन अधिक स्पष्ट होने लगा। ये राजनैतिक असमानताएँ किस समय दिखायी पड़ी इसको स्पष्ट रूप से बता पाना कठिन है परंतु हमें याद रखना चाहिये कि ऋग्वेद के 10वें सर्ग में "पुरुष सूक्त" का वर्णन है और उत्तर वैदिक काल के ग्रंथों में हमें उन उच्च राजनय समूहों के वर्णन मिलते हैं, जो क्षत्रिय का स्तर ग्रहण कर रहे थे तथा जो स्वयं में एक अलग जाति थी। ये परिवर्तन 1000 ई. पू. के बाद हुए। इसका तात्पर्य यह कदाचित् नहीं है कि जिस काल का हम अध्ययन कर रहे हैं वह अपरिवर्तनीय था वास्तव में यह परिवर्तन धीमी गति से हो रहा था लेकिन यह एक मुश्किल सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था की ओर बढ़ रहा था जिसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति "उत्तर वैदिक काल" में हुई (इकाई 13 को देखें)।

ऋग्वेद में कबीलाई सभाओं के लिये गण, विदाया, सभा और समिति जैसे शब्दों का वर्णन है। यह निश्चित नहीं हैं कि इनकी कार्यप्रणाली वास्तव में इस काल में क्या थी। "सभा" कबीले के चुनिंदा सदस्यों की परिषद और "समिति" सम्पूर्ण कबीले की परिषद होती होगी। इन सभाओं का कार्य सरकारी एवं प्रशासनिक दायित्वों को पूरा करना था और यही अपने जन समुदाय के किसी एक सदस्य को राजा निर्वाचित करने का भी कार्य करती थी। इस प्रकार वे योद्धाओं की शक्ति पर नियंत्रण रखते थे। जैसा हम पहले ही बता चुके हैं कि यद्यपि हम प्रारम्भिक वैदिक व्यवस्था में अच्छी प्रकार से परिभाषित राजनैतिक श्रेणीबद्धता नहीं पाते हैं फिर भी परिवर्तनों के इस काल में सामाजिक राजनैतिक श्रेणीबद्धता को जन्म दिया और जो "उत्तर वैदिक काल" में जातीय व्यवस्था के रूप में परिलक्षित हुई। उत्तरवैदिक कालीन समाज कबीलाई मूल्यों एवं नियमों से शासित होता था जिसके कारण मोटे तौर पर वर्ग विभेदीकरण नहीं हुआ।

12.7 धर्म

वैदिक लोगों के धार्मिक विचार ऋग्वेद के श्लोकों में स्पष्ट दिखाई देते हैं। वे चतुर्दिक

प्राकृतिक शक्तियों (जैसे वायु, जल, वर्षा, बादल, आग आदि) जिन पर वे नियंत्रण नहीं कर सकते थे और उन पर दैवी शक्ति का आरोपण करके, मानव के रूपों में, जिनमें अधिकतर पुलिंग थे, उपासना करते थे। बहुत कम देवियों की अराधना होती थी। इस तरह से धर्म पैतृसत्तात्मक समाज को दर्शाता है और वह प्रारम्भिक जीववाद था।

इंद्र शक्ति का देवता था और उसकी उपासना शत्रुओं का नाश करने के लिए होती थी। वह बादलों का देवता था और वर्षा करने वाला था तथा उससे समय-समय पर वर्षा के लिये कहा जाता था। उसको पराजित नहीं किया जा सकता था। बादल एवं वर्षा (प्राकृतिक नियति) शक्ति से सम्बंधित थे जिसको पुरुष के रूप में मानवीयकरण किया गया तथा जिसका प्रतिनिधित्व इंद्र देवता करता था। गण का मुखिया जो युद्ध में सबसे आगे रहता था उसका प्रतिनिधित्व भी इंद्र के चरित्र में मिलता है। अग्नि आग का देवता था और इंद्र के बाद उसका महत्व था। उसको पृथ्वी एवं स्वर्ग के बीच मध्यस्थ माना जाता था अर्थात् देवताओं और मनुष्यों के बीच। वह परिवार के चूल्हे का अधिकारी था, और उसकी उपस्थिति में ही विवाह सम्पन्न होते थे। आग गंदगी एवं जीवाणुओं को नष्ट करती है इसलिये अग्नि को पवित्र माना जाता है। प्रारम्भिक समाज में अग्नि के महत्व को यज्ञ या बलि से भी संबंधित किया जा सकता है जो आहूतियां अग्नि को समर्पित की जाती थी उनसे ऐसा माना गया कि वे धुंएं के रूप में देवताओं तक पहुंचायी जाती थी।

वरुण को जल का देवता माना जाता था और वह विश्व की प्राकृतिक व्यवस्था का रक्षक था।

यम मृत्यु का देवता था और उसका प्रारम्भिक वैदिक समान में विशेष महत्व था।

दूसरे अन्य बहुत से देवता थे जैसे सूर्य, सोम (जो एक पेय भी था), सावित्री, रुद्र आदि और अनेक प्रकार के दिव्य देहधारी देवता थे जैसे गंधर्व, अप्सरा, मरुत तथा जिनको सम्बोधित करते हुए ऋग्वेद में प्रार्थना एवं श्लोक लिखे गये हैं।

वैदिक धर्म बलि देय था। बलि या यज्ञों को निम्न कार्यों को सम्पन्न करने के लिये किया जाता था :

- देवताओं की उपासना करने,
- मनोरथ पूरा करने के लिये युद्ध में विजय,
- पशुओं, पुत्रों आदि की प्राप्ति के लिये।

हमें कुछ ऐसे श्लोक मिले हैं जिनको बलि के औजारों में शक्ति संचयन के लिये समर्पित किया गया जैसे कि बलि वेदी सोम के पौधे को पीसने वाले पत्थरों, ओखली, युद्ध के हथियारों, एवं नगाड़ों आदि। श्लोकों एवं प्रार्थनाओं को इन बलि यज्ञों के अवसरों पर गाया जाता था और सामान्यतः पुरोहित ही इन यज्ञों को सम्पन्न करते थे। प्रारम्भिक वैदिक काल में बलि यज्ञों का बहुत महत्व हो गया जिसके परिणामस्वरूप, पुरोहितों का महत्व भी बढ़ने लगा। बलिदान अनुष्ठानों के कारण गणित एवं पशु शरीर संरचना ज्ञान के विकास में भी वृद्धि हुई। बलिदान वाले क्षेत्र में बहुत सी वस्तुओं को उचित स्थिति में स्थापित करने के लिये प्रारम्भिक गणित की आवश्यकता गणना करने के लिये पड़ती थी। बलिदान बारबार होने के कारण पशुओं के शरीर का ज्ञान भी बढ़ा। वैदिक लोगों का विश्वास था कि जगत् का उद्भव एक विशाल ब्रह्मांडी यज्ञ से हुआ और यज्ञों के समुचित सम्पादन से ही उसका प्रतिपालन हो रहा है। धर्म काल्पनिक-अनुष्ठान पर आधारित नहीं था बल्कि इसके द्वारा बलिदान व श्लोकों के माध्यम से देवताओं से सीधे सम्पर्क स्थापित करने पर बल दिया गया था। आत्मिक उत्थान करने के लिये देवताओं की उपासना नहीं की जाती थी और न ही निराकार दार्शनिक अवधारणा के लिये। अपितु इनकी उपासना भौतिक उपलब्धियों के हेतु की जाती थी।

बलि पर आधारित धर्म पशु-पालक (चरवाहें) लोगों का धर्म है। इस समाज में पशु की बलि सामान्य बात है। जब पशु बूढ़ा हो जाए, जब वह न दूध दे सकता है और न मांस, न प्रजनन के लिये ही उपयुक्त रह जाता है, अर्थात् जो पशु आर्थिक लाभ के नहीं होते उनको मारकर उनके मालिकों का बोझ हल्का कर दिया जाता है। इस तरह से पशुबलि बूढ़े

जानवरों को नष्ट करने का एक तरीका है और इसका समाज में एक महत्वपूर्ण योगदान है। लेकिन कृषि प्रधान समाज में, पुराने पशुओं का उपयोग खेती-बाड़ी में किया जाता है और वे हल आदि खींचने के काम आते हैं तथा इसीलिये खेती-बाड़ी वाले समुदाय जानवरों के नष्ट होने के काम को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। इस प्रकार वैदिक धर्म पैतृकसत्तात्मक पशुपालक समाज को उजागर करता है और वह दृष्टिकोण में भौतिकतावादी था।

बोध प्रश्न 3

1 प्रारम्भिक वैदिक राजनैतिक व्यवस्था में राजन की क्या स्थिति थी? पांच वाक्यों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

2 प्रारम्भिक वैदिक लोगों के धर्म की प्रकृति का वर्णन पांच वाक्यों में कीजिये।

....

....

....

....

....

3 निम्नलिखित कथनों को पढ़िये और सही (✓) या गलत (×) के निशान लगाओ।

i) पुरोहित या पुजारी का समाज में कोई विशेष स्थान नहीं था। ( )

ii) "सभा" और "समिति" को राजा के चुनाव में कोई अधिकार नहीं था। ( )

iii) प्रारम्भिक वैदिक समाज में, शक्ति का देवता, इंद्र सबसे अधिक महत्वपूर्ण था। ( )

iv) देवताओं की पूजा लोगों के आत्मिक उत्थान के लिये होती थी। ( )

v) धर्म मायावी अनुष्ठान के सिद्धांत पर आधारित नहीं था। ( )

12.8 सारांश

आपने इस इकाई में उन साहित्यिक व पुरातात्विक स्रोतों के बारे में जानकारी प्राप्त की जो उत्तर वैदिक समाज के पुनर्निर्माण में हमारी सहायता करते हैं। पुरातात्विक साक्ष्यों के प्रकाश में "आर्यों" के वृहत पैमाने पर स्थानातरण की अवधारणा को स्वीकार करना कठिन है।

प्रारम्भिक वैदिक अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से पशुपालन की थी और गाय संपत्ति की सबसे महत्वपूर्ण प्रतीक थी। प्रारंभिक वैदिक लोगों के जीवन में खेती का स्थान गौण था।

प्रारम्भिक वैदिक समाज कबीलाई और मुख्यतः समानतावादी था। कुटुम्ब और परिवार के संबंधों ने समाज का आधार निर्मित किया था और परिवार समाज की आधारभूत इकाई था। व्यवसाय पर आधारित सामाजिक विभाजन प्रारम्भ हो चुका था परंतु उस समय जातिगत विभाजन नहीं था।

प्रारम्भिक राजनैतिक व्यवस्था में जन के मुखिया या राजा और पुजारी या पुरोहित के महत्वपूर्ण स्थान थे। अनेकों गण सभाओं में से "सभा" व "समिति" प्रशासन में विशेष योगदान करती थीं। यद्‌यपि प्रारंभिक वैदिक व्यवस्था में स्पष्ट रूप से परिभाषित कोई राजनैतिक पदानुक्रम नहीं था फिर भी कबीले की राजनैतिक व्यवस्था पूर्णतः समतावादी नहीं थी।

प्रारम्भिक वैदिक लोगों ने प्राकृतिक शक्तियों जैसे वायु, जल, वर्षा आदि को मूलरूप दिया और उनकी देवता की तरह पूजा करते थे। वे देवता की उपासना किसी अमूर्त दार्शनिक अवधारणा के कारण नहीं बल्कि भौतिक लाभों के लिये करते थे। वैदिक धर्म में बलिदान या यज्ञ का महत्व बढ़ रहा था।

यह विशेष रूप से स्मरणीय है कि यह समाज स्थिर नहीं बल्कि गतिशील था। इन पांच सौ वर्षों के दौरान (1500 ई. पू. से 1000 ई. पू.) समाज का लगातार विकास हो रहा था और आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में नये-नये तत्व सामाजिक संरचना को रूपांतरित कर रहे थे।

12.9 शब्दावली

शिल्पकृति : मानव द्वारा निर्मित वस्तुएं जैसे पुरातात्विक रुचि का कोई मामूली औजार या हथियार।

कुटुम्ब : कबीलाई समुदायों में पाया जाने वाला बड़ा परिवार समूह।

नातेदारी : खून का संबंध।

जीववाद : आत्मा के लिये प्राकृतिक वस्तुओं और क्रियाओं को श्रेय देना।

खानाबदोश : ऐसे कबीले का सदस्य जो एक स्थान से दूसरे स्थान तक भटकता हो तथा जिसका कोई स्थाई घर न हो।

पितृसत्तात्मक : पुरुष प्रधान परिवार या कबीला।

अर्ध-स्थायीत्व : ऐसे लोग जो स्थायी रूप से एक स्थान पर न बसे हों और दूसरी नयी बस्ती की खोज में घूमते हों।

परिवर्ती खेती : एक भूमि का कुछ समय के लिये खेती-बाड़ी हेतु प्रयोग करके इसको छोड़ देना तथा नयी भूमि का प्रयोग करना।

स्तर विन्यास (Stratigraphy) : भूमि की वे परतें जिनको खुदाई करके निकाला गया हो। इन परतों की खुदाई के कार्य का आधार भूमि की किस्मों पर निर्भर करता है या उत्खनन में प्राप्त होने वाली विभिन्न शिल्पकृतियों पर।

12.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 ऋग, साम, यजुर, अथर्व। ऋग्वेद प्रारंभिक वैदिक काल से संबधित हैं।

2 पुरातात्विक स्रोत आर्यों के आक्रमण या स्थानांतरण की अवधारणा का समर्थन नहीं करते। आर्यों के द्वारा हड़प्पा की सभ्यता का सर्वनाश करने की अवधारणा के विरोध में पुरातत्वविदों के तर्क, ताम्र पाषाण काल एवं उत्तर हड़प्पा संस्कृतियों के बीच पाई जाने वाली सांस्कृतिक असंगति, अपने उत्तर में लिखिये। देखिए 12.3

3 i) नहीं
   ii) हां

iii) हां
iv) नहीं

बोध प्रश्न 2

1 ऐसा समाज जो प्रधानतः पालतू पशुओं रूपी सम्पदा पर निर्भर हो क्योंकि बड़े स्तर पर खेती-बाड़ी पर्यावरण और सांस्कृतिक विवशताओं के कारण सम्भव नहीं थी। देखिये भाग 12.4

2 प्रारंभिक वैदिक समाज में पालतू पशु संपत्ति का प्रमुख स्रोत थे। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में आपको गाय या पालतू पशुओं के महत्व पर लिखना होगा।
देखिए भाग 12.4

3 आपको अपने उत्तर में लिखना चाहिये कि यह एक कबीलाई समाज था, समाज पितृसत्तात्मक था, परिवार समाज की मूल इकाई थी, जाति विभाजन वहां पर नहीं था आदि। देखिये भाग 12.5

4. i) गोपति
ii) पालतू पशु (मवेशी)
iii) यव
iv) कुल
v) एक पत्नीत्व

बोध प्रश्न 3

1 आपको अपने उत्तर में लिखना चाहिये कि राजा कबीले का मुखिया था, बार-बार होने वाले युद्धों ने उसको महत्वपूर्ण बनाया, वह कबीले का रक्षक था, उसका पद सदैव पैतृक नहीं होता था, आदि। देखिये भाग 12.6

2 वैदिक लोग अनेक प्राकृतिक शक्तियों की उपासना देवता के रूप में करते थे, बलिदान पर बल देते थे परंतु मायावी-अनुष्ठान के सिद्धांत पर नहीं, धर्म भौतिक उपलब्धियों पर आधारित था आदि। देखिये भाग 12.7

3 i) ×
ii) ×
iii) ✓
iv) ×
v) ✓

इकाई 13 उत्तर वैदिक युग में परिवर्तन

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 स्रोत
- 13.2.1 साहित्य स्रोत
- 13.2.2 पुरातात्विक स्रोत

13.3 लौह तकनीकी एवं इसका प्रभाव
13.4 अर्थव्यवस्था का स्वरूप
- 13.4.1 पशुपालक जीवन के महत्व में कमी
- 13.4.2 अनुष्ठानों में परिवर्तन
- 13.4.3 भूमि का बढ़ता महत्व

13.5 राजनीति और समाज
- 13.5.1 राजनीति
- 13.5.2 समाज

13.6 धर्म
- 13.6.1 पुरोहितवाद
- 13.6.2 उत्तर वैदिक काल के देवता
- 13.6.3 लोक परम्परा

13.7 सारांश
13.8 शब्दावली
13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने पर आप यह जान पाएंगे कि:

- उत्तर वैदिक समाज के अध्ययन के लिये कौन-कौन से स्रोत उपलब्ध हैं,
- उत्तर वैदिक काल की सामाजिक राजनैतिक, आर्थिक एवं धार्मिक व्यवस्था में किस प्रकार परिवर्तन हुए, और
- नव धातु या लोहे के प्रचलन से तकनीकी परिवर्तन के आर्थिक एवं सामाजिक आयाम क्या थे?

13.1 प्रस्तावना

आप जिस समय का अध्ययन करने जा रहे हैं वह 1000 ई. पू. से 600 ई.पू. के मध्य का समय है। इस युग में वैदिक कबीले "सप्र सिन्धव" क्षेत्र में गंगा की उपरी घाटी तथा उसके आस-पास के क्षेत्र में फैल गये थे। क्षेत्रीय परिवर्तन के इस काल में आर्यों की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक व्यवस्था में कई परिवर्तन आये। इस इकाई में हम इन परिवर्तनों के महत्वपूर्ण बिन्दुओं की चर्चा करेंगे।

13.2 स्रोत

इस युग का अध्ययन करने के लिये हमारे पास साहित्यिक तथा पुरातात्विक दोनों ही प्रकार के स्रोत उपलब्ध हैं।

13.2.1 साहित्यिक स्रोत

ऋग्वेद संहिता में बाद में जोड़े गये 10 मंडल तथा साम, यजुर एवं अथर्वेद संहिता इस काल के मुख्य साहित्यिक स्रोत हैं। सामवेद संहिता प्रार्थना तथा श्लोकों की पुस्तक है जो ऋग्वेद से है। इनको उपासना एवं धार्मिक अनुष्ठानों के अवसरों पर स्पष्ट तथा लयबद्ध गाने के लिये संकलित किया गया।

- यजुर्वेद यज्ञ संबंधी अनुष्ठानों को स्पष्ट करता है और इसमें स्तुतिगीतों का भी संग्रह है। इस संहिता में संकलित अनुष्ठानिक एवं स्तुतिगीत उस युग की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति पर भी प्रकाश डालते हैं।
- अथर्वेद उस काल की लोक परम्पराओं का संकलन है तथा वह लोकप्रिय धर्म का प्रतिनिधित्व करता है। सामान्य जनता की सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों को जानने का यह एक अच्छा उत्तर वैदिक कालीन स्रोत है।

इन ग्रंथों के बाद कुछ अन्य ग्रंथ सामने आते हैं। इन ग्रंथों को हम ब्राह्मण ग्रंथ कहते हैं। ब्राह्मण ग्रंथ वैदिक संहिताओं पर टीका टिप्पणियां हैं। यह अनुष्ठानों के सामाजिक एवं धार्मिक पक्षों को भी उजागर करते हैं और उनसे उत्तर वैदिक समाज की भी जानकारी मिलती है।

संस्कृत में लिखे गये रामायण तथा महाभारत दोनों महाकाव्यों में प्रारम्भिक भारतीय समाज के बारे में काफी जानकारी मिलती है। तब भी भारतीय इतिहास के किसी भी काल को महाकाव्यों का काल कहना बहुत उपयुक्त नहीं होगा। इतिहासकारों का मत है कि इन महाकाव्यों में जो जानकारी मिलती है वह अधिकांशतया उत्तर वैदिक काल से संबंधित है। इस काल का प्रमुख केन्द्र बिन्दु ऊपरी गंगा और मध्य गंगा घाटियाँ हैं। थोड़ा बहुत अन्य क्षेत्रों का भी विवरण है। महाकाव्यों के अनुसार भी अधिकांश महत्वपूर्ण घटनायें इसी क्षेत्र में घटी। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इन महाकाव्यों में जिन कहानियों का वर्णन है उनको ऐतिहासिक घटनायें मानने का हमारे पास कोई सबूत नहीं है। साथ ही यह जानना भी जरूरी है कि इन महाकाव्यों को अपने वर्तमान रूप में पहुँचने में कई सौ साल लग गये इसलिये इन महाकाव्यों में विभिन्न प्रकार के समाजों के दर्शन होते हैं।

13.2.2 पुरातात्विक स्रोत

साहित्यिक स्रोत स्थान-स्थान पर पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा और राजस्थान के क्षेत्रों की चर्चा करते हैं। उत्तर वैदिक काल का समय लगभग 1000 ई. पू. से 600 ई. पू. तक का है। समकालीन ग्रंथों में बहुत से समुदायों तथा सांस्कृतिक समूहों के बारे में जानकारी मिलती है। परन्तु विशेष प्रकार के मिट्टी के बर्तन किसी विशेष प्रजाति अथवा समूह से सम्बद्ध नहीं किये जा सकते। इसी क्षेत्र में लगभग इसी काल में कुछ खेतिहर समूह भी फले-फूले। ये खेतिहर समूह एक विशेष प्रकार के मिट्टी के बर्तन प्रयोग करते थे जिन्हें रंगे हुए धूसर मृदभाण्ड (PGW) कहा जाता है। यह बर्तन और अन्य पुरातात्विक अवशेष उत्तर वैदिक काल की भौतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हैं।

अब तक ऊपरी गंगाघाटी में 700 से अधिक चित्रित धूसर मृदभांड के स्थलों की खुदाई की गई है ये बाहवलपुर, धामर नदी के सूखे क्षेत्रों, सिन्धु व गंगा के तराई वाले क्षेत्रों तथा गंगा यमुना दोआब में फैले हुए हैं। इन स्थलों की पूर्वी सीमा गंगा के उत्तरी पश्चिमी मैदान तथा सरस्वती नदी (जो अब राजस्थान के मरुस्थल में विलीन हो चुकी है) तक फैली है। अतरंजीखेड़ा, अछिछत्र, नूह, हस्तिनापुर, कुरुक्षेत्र, भगवानपुर, तथा जखेड़ा चित्रित धूसर मृद्भांड संस्कृति के मुख्य स्थल हैं।

2000 ई. पू. से 1400 ई. पू. की दक्षिणी राजस्थान की बांस संस्कृति का विस्तार संभवतः गंगा घाटी में 800 ई. पू. तक हो चुका था। इस तरह काले एवं लाल मृद्‌भांडों का प्रयोग करने वाले लोगों को भी उत्तर वैदिक संस्कृति के साथ जोड़ा जा सकता है वैदिक साहित्य के अनुसार आर्यों का प्रसार पूर्व दिशा की ओर हुआ परन्तु पुरातात्विक स्रोत "वैदिक आर्यों" के पूर्व दिशा में फैलने को सिद्ध नहीं करते। पुरातात्विक साक्ष्य, पूर्व दिशा में फैलने वाली किसी भी संस्कृति के साक्ष्य नहीं हैं। इस प्रकार साहित्यिक व पुरातात्विक ऐतिहासिक स्रोतों में एक बड़ी दूरी दिखाई पड़ती है। हालांकि साहित्यिक स्रोतों से इंगित उत्तर वैदिक समाज और पुरातात्विक साक्ष्यों से इंगित समाज दोनों में लोहे के प्रयोग का आरम्भ पता चलता है।

चित्रित धूसर मृदभांड क्षेत्रों में लोहे की चीजें सामान्यता प्रचलित थी। अतरंजीखेड़ा, नूह एवं जोधपुर से प्राप्त वस्तुओं की कार्बन 14 की पद्धति से निकाली गई तिथियाँ बताती हैं कि इस धातु का गंगा के मैदानों में 1000 ई. पू. से 800 ई. पू. के बीच प्रचलन शुरू हो गया था। लोहे को उत्तर प्रदेश, हिमाचल, पंजाब तथा बाद में दक्षिण बिहार से इकट्ठा किया जाने लगा। ऋग्वेद में वर्णित आयस शब्द लोहे के अर्थ में हो सकता है परन्तु पुरातात्विक खोजों के आधार पर लोहे का प्रयोग उत्तर वैदिक काल में मिलता है। साहित्यिक स्रोत इस की पुष्टि करते हैं। यजुर्वेद में "आयस" को "श्याम आयस" लिखा गया है तथा ब्राह्मण ग्रंथों में लोहे को "कृष्ण आयस" के नाम से पुकारा गया है।

किन्तु हाल ही के उत्खनन से पता लगता है कि दक्षिण भारत के महापाषाणी लोग लोहे के प्रयोग से अच्छी तरह से परिचित थे। इसलिये अब हम प्रवासी आर्यों को भारत में लोहे का प्रयोग प्रारम्भ करने का श्रेय नहीं दे सकते।

13.3 लौह तकनीकी तथा इसका प्रभाव

यहाँ पर प्रश्न यह उठता है क्या लोहे की जानकारी ने इस समय की धातु तकनीकी में कोई विकास किया? इसी प्रकार आप यह भी जानना चाहेंगे कि नई तकनीकी के प्रचलन से समाज की भौतिक परिस्थितियों में किस प्रकार के परिवर्तन हुए?

उत्तर वैदिक काल के ऐतिहासिक साक्ष्यों से यह धारणा बनती है कि घुमक्कड़ पशुपालक समाज एक स्थायी समाज में परिवर्तित हो रहा था। यह पहले भी बताया जा चुका है कि स्थायी रूप से खेती करने के लिये वनों एवं गंगा के दोआब को साफ करने के लिये लोहे की कुल्हाड़ी का प्रयोग किया गया। ऐसा समझा जाता है कि लोहे के नोक वाले हल एवं कुदाल ने कृषि यन्त्रों की क्षमता को बढ़ाया जिससे कृषि के कार्यों का फैलाब हुआ। इसलिये विद्वानों का मत है कि लोहे के प्रयोग ने कृषि अर्थव्यवस्था को और विकसित करने में विशेष योगदान दिया। फिर भी, इस तथ्य से हम भली प्रकार परिचित हैं कि उत्तर वैदिक काल कृषि तथा लोहे के प्रयोग में पूर्णतः विकसित नहीं था। बिहार से लोहे के खनन का कार्य बड़े स्तर पर नहीं किया जाता था तथा लोहा पिघलाने की विधि भी अति प्राचीन थी।

खुदाई से जो चीजें उपलब्ध हुई हैं उनमें मुख्य रूप से नुकीले लोहे के तीर, नुकीले भाले आदि हथियार हैं, इन में अधिक चीजें अहिच्छत्र की खुदाई से प्राप्त हुई हैं। उत्खनन से हंसिया, कुदाल व कुल्हाड़ी बहुत कम संख्या में प्राप्त हुई हैं। जखेड़ा से हल का एक फाल प्राप्त हुआ है जो शायद इस युग के अंत का है। इस प्रकार उत्खनन से ऐसा लगता है कि लोहे का प्रयोग केवल हथियार बनाने तक ही सीमित था। लोहे के प्रयोग ने पहली सहस्राब्दी ई.पू. के उत्तरार्ध तक कृषि तकनीकी को तब तक प्रभावित नहीं किया जब तक गंगा घाटी की दलदली तथा अन्य वनों को खेती के लिये साफ नहीं कर लिया गया। उत्तर वैदिक काल में गंगा दोआब के ऊपरी जंगलों को जलाकर साफ किया गया। महाभारत में वर्णित है कि खांडव नाम के जंगल को जलाकर इन्द्रप्रस्थ नगर को बसाया गया था। लोहे के नुकीले हथियारों तथा घोड़े वाले रथों ने सैनिक कार्यों में मुख्य भूमिका अदा की एवं इस युग में सैनिक कार्यों में इनका खूब प्रयोग होने लगा था जिसकी चर्चा महाभारत में विस्तृत

रूप से हुई है। लेकिन जीविकोपार्जन के कार्यों में लोहे का विशेष प्रयोग शुरू नहीं हुआ था।

बोध प्रश्न 1

1 सही वाक्य पर (✓) का निशान लगाओ:
   i) हम निश्चित तौर पर कह सकते हैं कि वैदिक समाज का फैलाव पूर्व दिशा की ओर हुआ। ( )
   ii) यह कहना असम्भव है कि वैदिक समाज का प्रसार पूर्व दिशा की ओर हुआ। ( )
   iii) हम अनुमान कर सकते हैं कि वैदिक समाज का प्रसार पूर्व दिशा की ओर हुआ। ( )
   iv) उपरोक्त में कोई भी नहीं। ( )

2 अथर्वेद के द्वारा :
   i) हम उत्तर वैदिक काल की लोक परम्परों को समझ सकते हैं। ( )
   ii) हम उत्तर वैदिक काल की अभिजात वर्ग की परम्पराओं को समझ सकते हैं। ( )
   iii) हम सामान्य जनता की सामाजिक व धार्मिक परिस्थितियों को जान सकते हैं। ( )
   iv) दोनों (i) और (iii) ( )

3 उत्तर वैदिक काल में :
   i) लोहे का मुख्य रूप से कृषि के लिये प्रयोग किया गया। ( )
   ii) लोहे का मुख्य रूप से युद्ध के हथियारों के लिये प्रयोग किया गया। ( )
   iii) लौह तकनीकी वहां पर बिल्कुल नहीं थी। ( )
   iv) स्टील का प्रयोग किया जाता था। ( )

4 उत्तर वैदिक काल में लोहे के प्रयोग के प्रभाव पर 50 शब्द लिखें :

....

....

....

....

....

....

13.4 अर्थव्यवस्था

गंगा यमुना दोआब एवं मध्य गंगा घाटी में उर्वरक भूमि के विशाल मैदानों की उपलब्धता से उत्तर वैदिक काल में कृषि का विकास सम्भव हुआ तथा इस क्षेत्र में प्रथम शताब्दी ई.पू. में, धीरे-धीरे स्थायित्व कायम हो सका। उत्तर वैदिक साहित्य में ऐसे संकेत मिलते हैं कि पशुपालन का महत्व बना रहा। इसी के साथ-साथ कृषि पर आधारित स्थायी जीवन प्रणाली का भी प्रारम्भ हो चुका था। दोनों तरह के साहित्यिक व पुरातात्विक स्रोत यह बताते हैं कि लोग खाने में चावल का प्रयोग करने लगे थे। चित्रित धूसर मृदभांड तथा बांस संस्कृति के खुदाई किये गये स्थलों से चावल के काले पड़े हुए दाने मिले हैं। वैदिक साहित्य में चावल के लिये व्रीही, तन्दूला तथा सलि जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है यह लगता है कि इस समय फसल चक्र का प्रयोग होने लगा था तथा जौं व चावल की खेती की जाने लगी थी। इस काल में खेती की अच्छी पैदावार तथा आर्थिक सम्पन्नता के लिये राजसुय यज्ञ में दूध, घी व पशुओं के साथ-साथ अनाज भी चढ़ाया जाने लगा। अथर्वेद में ऐसी 12 बलियों का वर्णन है

जिससे कि भौतिक लाभ की प्राप्ति होती थी तथा इसी के साथ ब्राह्मणों को गाय, बछड़े, सांड, सोना, पके चावल, छप्पर वाले घर तथा अच्छी पैदावार देने वाले खेतों को उपहार के रूप में दिया जाने लगा। उपहार में दी जाने वाली ये वस्तुएं इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण है कि कृषि तथा कृषि पर आधारित स्थायी जीवन का महत्व बढ़ रहा था। उत्तर वैदिक काल के साहित्य में वर्णन है कि 8, 12, व 20 बैल तक हल को जोतते थे। यहाँ पर बैलों की संख्या का वर्णन प्रतीक के रूप में हुआ है। परन्तु इस सन्दर्भ से यह स्पष्ट है कि खेती करने के लिये हल बैल का प्रयोग खूब होने लगा था।

13.4.1 पशुपालक जीवन के महत्व में कमी

पशुपालन का कार्य अब जीवन यापन का मुख्य साधन नहीं था जैसा कि यह प्रारम्भिक वैदिक काल में था। इस काल में मिश्रित कृषि व्यवस्था का प्रचलन था जिसमें खेती तथा पशुपालन दोनों का संयुक्त रूप से प्रयोग था। कृषि श्रम प्रधान नहीं थी। जिन जगहों की खुदाई से चावल प्राप्त हुआ है वे स्थान दोआब के पूर्वक क्षेत्रों में स्थित हैं। रोपाई के द्वारा धान पैदा करने का तरीका अभी शुरू नहीं हुआ था।

मिश्रित कृषि व्यवस्था के कारण खेती पर आधारित स्थायी जीवन का उदय हुआ। धूसर मृद्भांड संस्कृतिक अवशेष 2 से 3 मीटर की गहराई पर हैं जिससे यह पता लगता है कि लोग एक ही स्थान पर लम्बे समय तक रहते थे। भगवानपुर तथा जखेड़ा की खुदाइयों से स्पष्ट हैं कि टहनियों, दूब व लकड़ी से बनी गोल झोंपड़ियों का स्थान मिट्टी के परकोटे से बने अधिक टिकाऊ घरों ने ले लिया था इन टिकाऊ घरों के बनाने में प्रयोग की गई सामग्री से स्पष्ट है कि अब उत्तर वैदिक काल के लोग कृषि पर आधारित स्थायी जीवन शैली को अपना रहे थे।

13.4.2 अनुष्ठानों में परिवर्तन

प्रारम्भिक वैदिक काल में पूर्ण समुदाय को लाभ पहुँचाने के लिये अनुष्ठान किये जाते थे, देवताओं की पूजा दूसरे समुदायों पर विजय पाने, पशु प्राप्त करने अथवा पुत्र लाभ के लिये की जाती थी। यह अनुष्ठान और पूजा ऐसे अवसर होते थे जब मुखिया या समुदाय के प्रमुख धन भी बांटते थे। उत्तर वैदिक काल में अनुष्ठानों का उद्देश्य बिलकुल बदल गया। अब अनुष्ठान बहुत जटिल हो गये जो कई सालों तक चलते रहते थे। इसलिये अब केवल धनी लोग यह अनुष्ठान कर सकते थे। सामूहिकता की भावना में कमी आ गई बलि देने के पीछे प्रमुख उद्देश्य समुदाय पर नियंत्रण प्राप्त करना हो गया। अब पूरे समुदाय को उपहार नहीं दिये जाते थे। मुखिया केवल ब्राह्मणों को उपहार देता था जो उसके लिये हवन अथवा बलि आदि के अनुष्ठान करते थे। अनुष्ठान अत्यधिक जटिल हो गये केवल अत्यन्त निपुण ब्राह्मण ही उन्हें कर सकते थे। क्योंकि ऐसा विश्वास था कि एक मामूली गलती भी अनुष्ठान करने वाले का विनाश कर देगी। ऐसा भी विश्वास था कि बलि देने से मुखिया या समुदाय के प्रमुख महामानव ही शक्ति प्राप्त कर के समुदाय में उच्च स्थान प्राप्त करते हैं। इस कार्य के लिये मुखिया अपनी साधन सम्पत्ति का एक बड़ा भाग ब्राह्मण पुरोहित को देता था। इस प्रकार अनुष्ठान मुखिया के लिये भौतिक और आध्यात्मिक प्रभुत्ता स्थापित करने का साधन बन गये।

13.4.3 भूमि का बढ़ता महत्व

जमीन की जुताई पारिवारिक श्रम तथा घरेलू नौकरों और दासों की मदद से की जाती थी। इस युग में, पहले भूमि का स्वामित्व पूरे समुदाय या विश के पास होता था परन्तु धीरे-धीरे भूमि पर परिवार का स्वामित्व हुआ इससे परिवार का प्रमुख या गृहपति धनी हो गया। वैश्य (जो मूलतः विश से बना था) समाज में उत्पादक वर्ग था। क्षत्रिय तथा ब्राह्मण उत्पादन के कार्यों में सीधी हिस्सेदारी नहीं लेते थे और इनके जीवन यापन के लिये खाद्यानों व सम्पत्ति का उत्पादन वैश्य ही करते थे। वैश्य जो भूमिकर या अन्य खाद्य सामग्री क्षत्रियों को देते थे उसके बदले में क्षत्रिय उनकी भूमि की रक्षा करते थे। ब्राह्मणों को वैश्य जो दान दक्षिणा देते थे उसके बदले में ब्राह्मण उनके जीवन में नैतिक उत्थान के लिये कार्य करते थे। विश-वैश्य इस घरेलू अर्थव्यवस्था के मुख्य आधार थे। जीवन निर्वाह

करने वाले खाद्य पदार्थ क्षत्रिय व ब्राह्मणों के बीच क्रमशः भूमिकर और दान दक्षिणा में बंट जाते थे। भूमि को बेचने या क्रय करने की कोई प्रथा नहीं थी। पृथ्वी द्वारा भवाना विश्वकर्मा नाम के एक शासक की इस बात के लिये निंदा की गई कि उसने भूमि का अनुदान देने की कोशिश की। इस संदर्भ से यह स्पष्ट है कि भूमि पर सामुदायिक स्वामित्व का सिद्धांत माना जाता था तथा विश की भी भूमि में भागीदारी थी।

13.5 राजनीति और समाज

पशुपालन से मिश्रित कृषि की ओर संक्रमण का उत्तर वैदिक राजनीति तथा समाज के चरित्र पर व्यापक प्रभाव पड़ा। परिवर्तन की मुख्य धारायें थीं–

- प्रारम्भिक वैदिक समाज की काबीलाई संस्था का स्थान क्षेत्रीय पहचान ने ले लिया तथा इसके फलस्वरूप मुखिया की प्रकृति में भी परिवर्तन हुआ।
- सामाजिक ढांचा जो प्रारम्भिक वैदिक काल में कबीलाई सबंधों पर आधारित समानतावादी था अब काफी जटिल हो गया यह समाज असमानता पर आधारित था एक कबीला कई समूहों में बंट गया समाज में कुछ समूह उच्च समझे जाते थे ओर कुछ निम्न।

13.5.1 राजनीति

ऋग्वैदिक काल में जन का प्रयोग जनता या कबीले के लिये किया जाता था। लेकिन अब जनपद का प्रयोग अस्तित्व में आया जनपद का तात्पर्य उस स्थान से था जहाँ पर कबीला बस गया था। उतर वैदिक काल के साहित्य में "राष्ट्र" शब्द का प्रयोग होने लगा था परन्तु इस शब्द को अभी तक उस अर्थ में परिभाषित नहीं किया गया था जिससे यह एक निश्चित, क्षेत्र का घोतक हो।

कौरव (कुरु) कबीले का उदय वैदिक काल के दो बड़े कबीलों भरत तथा पुरु के संयुक्त होने पर हुआ था इनका अधिकार गंगा/यमुना दोआब के ऊपरी भू-भाग पर था इसी प्रकार पांचाल कबीला उन लोगों को कहा गया जिनका अधिकतर प्रभाव दोआब के मध्य भू-भाग पर था और "पांचाल देश" के नाम से जाना जाता था। इन दोनों उदाहरणों से स्पष्ट है कि अब कबीले की पहचान क्षेत्रीय पहचान में बदल गई थी यह भी कहा जाता है कि कुरु तथा पांचाल कबीलों का एक दूसरे में विलय हो जाने के कारण उनका अधिकार गंगा-यमुना दोआब के ऊपरी तथा मध्य भू-भाग पर हो गया था। इस प्रकार "जन" तथा क्षेत्र के सम्बन्धों में परिवर्तन और क्षेत्र के नियंत्रण ने छठी शताब्दि ई. पू. तक महाजनपद तथा जनपद के गठन में सहायता की।

कबीलों के मुखिया और योद्धा

जब कबीले किसी क्षेत्र विशेष से सम्बधिंत हो गये और उस क्षेत्र के रूप में जाने जाने लगे तो कबीलों के मुखिया के पद एवं कार्य शैली में भी परिवर्तन हुआ। राजा या मुखिया अब केवल पशुओं की लूट में सम्मिलित नहीं होता था बल्कि वह उस क्षेत्र का रक्षक बन गया था जिसमें उसके कबीले के लोग रहते थे। राजन्य जो ऋग्वैदिक काल से अभिजात्य समझा जाता था अब वह क्षेत्रीय वर्ग में बदल गया। "क्षत्रिय" शब्द का साहित्यिक अर्थ है राज्य या क्षेत्र पर अधिकार होना। क्षत्रिय वर्ग का मुख्य कार्य था अपने कबीले के लोगों तथा उस क्षेत्र की रक्षा करना जिसमें वे बस गये थे। विश या जनता को क्षत्रियों को एक कर देना होता था जिसके बदले में क्षत्रीय जनता की रक्षा करते थे और विश धीरे-धीरे क्षत्रिय वर्ग के सहायक बन गये। भूमिकर तथा बलि अब इच्छानुसार देने वाले उपहार नहीं थे बल्कि अब नियमित कर व नजराना देने वाली प्रथाओं का उदय हुआ।

कबीलाई सभाएं

क्षत्रिय तथा योद्धा वर्ग की स्थिति में परिवर्तन के कारण गण या कबिलाई सभाओं के चरित्र

में भी परिवर्तन हुआ। समिति की अपेक्षा सभायें इस समय अधिक शक्तिशाली हो गई।

सभा राजा को उसके कर्त्तव्य निर्वाह में सहायता करती थी राजा या मुख्यिा का पद जन्म पर आधारित नहीं था परन्तु राजा का चुनाव केवल क्षत्रिय वर्ग के मध्य से ही होता था।

राजा की वैधता

पैतृक उतराधिकार के स्पष्ट सिद्धांतों के अभाव में राजा के लिये राजतिलक के समय होने वाले अनुष्ठानों का महत्व और भी बढ़ गया था। इसी के माध्यम से वह अपने प्रभुत्व के लिये आम लोगों की सहमति प्राप्त करता था इसीलिये राजसूय, अश्वमेध तथा वाजपेय जैसे यज्ञों का आयोजन विशाल स्तर पर किया जाने लगा था। ऋग्वैदिक काल में अश्वमेध यज्ञ का आयोजन छोटे स्तर पर ही होता था। लेकिन इस काल में इसका आयोजन दूसरे स्थानों पर अधिकार करने तथा दूसरे स्थानों पर शासक की वैधता स्थापित करने के लिए किया जाता था। दूसरे यज्ञों द्वारा राजा के स्वस्थ होने की कामना की जाती थी और राजा की वैधता, उसकी संप्रभुता व शक्ति को स्थापित करने के लिये इन तीनों यज्ञों का आयोजन किया जाता था। उदाहरण के लिये राजसूय यज्ञ के बाद आयोजक राजा (सम्राट) घोषित किया जाता था। बाद के काल में भी जब नये राज्य या राजा बनते थे तब भी इनका महत्व बना रहा। राजाओं द्वारा इनका उपयोग अपनी सत्ता को धार्मिक वैधता प्रदान करने के लिये हुआ।

साधनों, आर्थिक उत्पादन एवं वितरण के द्वारा राजा क्षेत्रीय एकता को प्राप्त करता था जिससे कि उसका स्तर मात्र लुटेरे या केवल युद्धों के नेता से कुछ अधिक हो जाता था। तब भी, वह एक संम्प्रभुता सम्पन्न शासक नहीं था। उसका चुनाव होता था तथा वह अपने कबीले के प्रति उतरदायी था। वह दूसरे ऐसे राजाओं की नियुक्ति भी नहीं कर सकता था जो उसके कार्यों में उसकी सहायता करते वे स्वयं में अधिकार सम्पन्न मुखिया थे। यह काफी महत्वपूर्ण है कि इस समय में क्षत्रिय वंश का स्तर अधिक ऊंचा हो गया था, इसका कारण क्षेत्रीय पहचान के सिद्धांत की स्थापना है। इस प्रकार क्षेत्र के भौतिक आधार ने राजा को शासन करने की शक्ति दी।

कबीलाई संघर्ष

कबीले के आन्तरिक व बाह्य संघर्ष की प्रकृति में भी परिवर्तन हुए। अब लड़ाईयाँ पालतू पशुओं के छुटपुट झगड़े नहीं रह गई थी, बल्कि भूमि पर आधिपात्य स्थापित करना इन झगड़ों का मुख्य तत्व था। क्षेत्र को बढ़ाने की आवश्यकता का सम्बन्ध कबीले की बढ़ती हुई जनसंख्या से था। लोहे के हथियार और घोड़ों द्वारा चलने वाले रथों ने युद्धों के कौशल को बढ़ावा दिया। महाभारत में कबीले के आन्तरिक युद्ध को (कौरव और पांडव समुदायों के) दिखाया है।

पुरोहित

राजन्य क्षत्रिय के बढ़ते हुये महत्व ने ब्राह्मण के महत्व को भी बढ़ा दिया क्योंकि वे अनुष्ठानों द्वारा राजा के पद को वैधता प्रदान करते थे। ऐसे अवसर पर दान-दक्षिणा द्वारा धन सम्पत्ति का बाँटा जाना मुख्य रूप से क्षत्रिय यजमान द्वारा ब्राह्मण, पुरोहित को देना था बड़े स्तर पर पवित्र अनुष्ठान करना यह दिखाता है कि राजा अपने को पद पर बहुत सुरक्षित नहीं पाता था और शासन करने की अपनी योग्यता ऐसे अनुष्ठानों द्वारा दिखाना चाहता है। बाद के काल में राज्य के पुरोहित का दर्जा देवताओं के समतुल्य हो गया, यह समझा जाता था कि देवताओं को प्रसन्न करने के लिये यज्ञ की आवश्यकता है इसी प्रकार राज्य पुरोहित अथवा ब्राह्मण दान से प्रसन्न होता है। इस प्रकार धन सम्पति का बटवारा मुख्यता शासक और पुरोहित दो उच्च वर्गों में था और राजनैतिक शक्ति क्षत्रिय के अधिकार में आ रही थी।

13.5.2 समाज

हम विश या जन की घटती हुई स्थिति और क्षत्रिय की बढ़ती हुई हैसियत के बारे में पहले ही पढ़ चुके हैं। समाज की रचना अब असमानता पर आधारित थी। एक स्रोत के अनुसार चार वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र की उत्पत्ति ब्रह्माण्ड के रचयिता प्रजापति के शरीर से हुई। ''आदिकालीन मनुष्य का स्रोत'' नाम श्लोक ऋग्वेद के उत्तरार्द्ध

में है। यह श्लोक पहली बार चार वर्णों की उत्पत्ति के बारे में बताता है।
"जब मनुष्य को विभाजित किया गया उसे कितने भागों में बाँटा गया? उसका मुख क्या था, उसके हाथ क्या थे, उसकी जंघा क्या थी और उसके पाँव क्या कह गये?

ब्राह्मण उसका मुख था
क्षत्रिय उसके हाथ से बनाये गये
उसकी जंघा से वैश्य बने
उसके पाँव से शूद्र उत्पन्न हुये"

इन स्रोतों में प्रतीकात्मक रूप से यह दिखाया गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र समाज के अंग हैं। हालांकि यह अंग समान स्तर के नहीं हैं। ब्राह्मण, की तुलना सिर या मुख से की गई है तबकि शूद्र की तुलना पाँव से। ब्राह्मण सर्वोच्च समझे गये क्योंकि ऐसा माना गया कि समाज देवताओं से सम्पर्क केवल उनके द्वारा ही स्थापित कर सकता था जब कि शूद्र निम्न कार्य करता था और इस श्रेणी में वह दास भी रखे गये जो युद्ध में पकड़े जाते थे।

वर्ण की अवधारणा

वर्ण की अवधारणा की निम्नलिखित विशेषतायें हैं:

क) जन्म के आधार पर सामाजिक स्तर।
ख) वर्णों का श्रेणीबद्ध तरीके से गठन (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) जिसमें ब्राह्मण समाज में सबसे उच्च और शूद्र सबसे निम्न स्थान पर थे।
ग) सगोत्र विवाह एवं अनुष्ठानों की पवित्रता के नियम।

वर्ण व्यवस्था को आगे धर्म से या सार्वभौमिक नियम की अवधारणा से प्रतिबद्ध किया गया है और वर्ण धर्म की स्थापना सामाजिक नियम रूप में इसलिये की गई जिससे कि समाज को व्यवस्थित ढंग से चलाया जा सके। लेकिन उत्तर वैदिक समाज में वर्ण धर्म का पूर्णतः विकास नहीं हो पाया था।

> इस समय में समाज का विभाजन व्यवसाय के आधार पर था और समाज में अभी काफी लचीलापन था जिसमें किसी का व्यवसाय जन्म पर आधारित नहीं होता था।

वैदिक काल के बाद के काल में भी वर्ण धर्म प्रत्येक समूह के अनुष्ठानिक महत्व मात्र की ओर संकेत करता था। वर्ण व्यवस्था में गैर क्षत्रिय लोग भी क्षत्रिय हो सकते थे और शासक भी (उदाहरण के लिये नंद और मौर्य) न ही ब्राह्मणों को राजनैतिक सर्वोच्चता स्थापित करने से वंचित किया गया (जैसे कि शुंगराजा) (आप इसके विषय में खण्ड 5 में पढ़ेंगे)।

इस प्रकार वर्ण व्यवस्था के सिद्धांत को व्यवहारिक स्तर पर वैदिक काल के बाद भी कठोरता के साथ कभी भी लागू नहीं किया जा सका।

ऐसा समझा जाता है कि उत्तर वैदिक काल में भौगोलिक केन्द्र परिवर्तन के साथ वैदिक लोगों का सामना बहुत से गैर वैदिक कबीलों के साथ हुआ इनके साथ लम्बे आदान-प्रदान के बाद एक मिला-जुला समाज अस्तित्व में आया। कम से कम अथर्वेद में कई गैर वैदिक धार्मिक परम्पराओं का चित्रण है जिसे पुरोहितों द्वारा स्वीकार किया गया था। यहाँ पर विवाह के कठोर नियमों को लागू करने का उद्देश्य सगोत्र विवाह के द्वारा कबीले की पवित्रता को बनाये रखना था। क्षत्रियों तथा ब्राह्मणों का महत्व समाज में बढ़ जाने के कारण उनके लिये यह अनिवार्य हो गया कि अन्य लोगों की तुलना में वे स्पष्टतः अपनी सर्वोच्चता कायम रखें। उत्तर वैदिक काल में फिर भी वर्णों की अवधारणा अपनी प्रकृति में बनावटी थी। उदाहरणतः अस्पृश्यता की अवधारणा अनुपस्थित थी।

गोत्र

इस समय में गोत्र (साहित्यक अर्थ गौशाला) संस्था का भी उदय हुआ। कबीलाई सगोत्र विवाह (कबीले के अन्दर विवाह) के विरुद्ध लोग असगोत्रीय विवाह (कबीले के बाहर

विवाह) करते थे। गोत्र ने एक समान पूर्वज के वंशक्रम को महत्व दिया और इसी कारण एक ही गोत्र के लड़के लड़कियों का आपस में विवाह नहीं होता था।

परिवार

इस काल में पितृसतात्मक परिवार अच्छी प्रकार से स्थापित था तथा गृहपति को एक विशेष स्थान प्राप्त था। घरेलू अर्थव्यवस्था के विशिष्टता प्राप्त कर लेने से गृहपति की स्थिति महत्वपूर्ण हो गयी। भूमि पर स्वामित्व का अधिकार परम्परागत प्रयोग के आधार पर था तथा भूमि के सामुदायिक स्वामित्व को भी सुरक्षित रखा गया। गृहपति धनी थे और अनुष्ठान में उनका मुख्य कार्य यज्ञमान (जो बलि करने की आज्ञा देता हो) का था। उन्होंने धन उपहारों के द्वारा प्राप्त नहीं किया था। परन्तु उन्होंने इसको अपने विशेष प्रयासों से उत्पादित किया। यज्ञों का सम्पन्न कराना उनका कार्य था जिससे कि उनको विशेष दर्जा मिलता और उनके धन में से कुछ भाग ब्राह्मणों को भी जाता था। कुछ महिलाओं को दार्शनिक का दर्जा प्राप्त हुआ था तथा रानियाँ राजतिलक के अनुष्ठानों के अवसर पर पुरुषों के साथ उपस्थित रहती, फिर भी महिलाओं को पुरुषों का सहायक ही समझा जाता और नीति निर्धारण में उनका कोई योगदान नहीं होता था।

जीवन के तीन आधार

तीन आश्रम, अर्थात् जीवन को तीन भागों में विभाजित किया गया। यह निम्न प्रकार थे।

ब्रह्मचर्य (विद्यार्थी जीवन) : गृहस्थाश्रम (घरेलू जीवन), वान प्रस्थाश्रम (घरेलू जीवन का परित्याग कर के वन में निवास करना), संभवतः चतुर्थ, सन्यासी (अनिवार्य रूप से संसारिक जीवन को छोड़ देना) था जिसके विषय में हमें उपनिषदों के लिखने के समय तक कोई जानकारी नहीं मिलती। उत्तर वैदिक काल में सन्यासी या तपस्वी व्यक्तिगत स्तर पर होते थे परन्तु इन्होंने वैदिक काल के बाद की सामाजिक व्यवस्था का सक्रिय या निष्क्रिय तरीके से विरोध किया।

पाठगत प्रश्न 2

1 निम्नलिखित में से सही कथन पर (✓) का निशान लगायें। उत्तर वैदिक काल में :

- i) पशुपालन जीवनयापन का मुख्य साधन कहा जा सकता है ( )
- ii) मिश्रित कृषि व्यवस्था जिसमें खेती तथा पशुपालन सम्मिलित थे, जीवन यांपन का मुख्य साधन थी ( )
- iii) केवल श्रम प्रधान खेती की जाती थी ( )
- iv) उद्योग मुख्य कार्य था। ( )

2 उत्तर वैदिक काल में :

- i) संगठित समाज के लिये केवल कबीला ही आधार था ( )
- ii) भूमि अधिक महत्वपूर्ण हो गई तथा भूमि पर कबीलाई स्वामित्व धीरे-धीरे पारिवारिक स्वामित्व में परिवर्तित हो गया ( )
- iii) भूमि का स्वामित्व कबीले से बाहर था ( )
- iv) इनमे से कोई भी नहीं। ( )

3 उत्तर वैदिक काल में:

- i) समिति की अपेक्षा सभा अधिक महत्वपूर्ण हो गई ( )
- ii) समिति सभा से अधिक महत्वपूर्ण हो गई ( )
- iii) सभा तथा समिति दोनों के महत्व में गिरावट आई ( )
- iv) उपरोक्त से कोई भी नहीं। ( )

4 उत्तर वैदिक कालीन लोगों ने:

- i) स्वयं अपने गोत्र के अंदर विवाह करने शुरू किये ( )
- ii) अपने गोत्र से बाहर विवाह किये ( )
- iii) स्वयं अपने गोत्र के अंदर विवाह करने या न करने की परवाह नहीं की ( )
- iv) उपरोक्त में से कोई नहीं। ( )

5 उत्तर वैदिक काल में पारिवारिक जीवन क्या था? पचास शब्दों में उत्तर दें:

....

....

....

....

....

....

13.6 धर्म

इस समय के ग्रंथ दो विभिन्न धार्मिक परम्पराओं की ओर इशारा करते हैं :

- वैदिक जिसका वर्णन साम और यजुर्वेद संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रंथों में हुआ है, और
- गैर वैदिक या शायद लोक परम्परा जिसको विस्तृत रूप से अथर्वेद में संकलित किया गया।

वास्तव में, अथर्वेद में वर्णित धार्मिक परम्परा से साफ पता लगता है कि यह विभिन्न संस्कृतियों और वैदिक धार्मिक व्यवस्था में प्रचलित मान्यताओं का मिला जुला रूप है। यजुर्वेद संहिता और ब्राह्मण ग्रंथों में इस काल के बलिदान विषयक धर्म का संकलन है। इस युग में बलियों का बड़ा महत्व हो गया था तथा उन्होंने सार्वजनिक व व्यक्तिगत विशेषता प्राप्त भी कर ली। सार्वजनिक बलि अर्थात् राजसूय, वाजपेय व अश्वमेध यज्ञों का आयोजन विशाल स्तर पर होने लगा जिसमें पूरा समुदाय भाग लेता है। इन आहुति (बलि) यज्ञों के कुछ अनुष्ठानों में फलादत पूजा के तत्व भी दिखाई देते हैं। उदाहरणार्थ, अश्वमेध यज्ञ में इस बात की आवश्यकता होती थी कि पटरानी बलि के घोड़े के पास रहती थी यहाँ पर रानी पृथ्वी का प्रतीक मानी जाती थी और इस अनुष्ठान के विषय में ऐसा सोचा जाता था कि इससे राजा की सम्पन्नता बढ़ती थी। राजसूय एवं वाजपेय यज्ञों के समय अनेक कृषि अनुष्ठान किये जाते। पृथ्वी के नियमित रूप से तरुण व उर्वरक होने जैसे विषयों के लिये भी यज्ञों का आयोजन किया जाता था।

13.6.1 पुरोहितवाद

उत्तर वैदिक ग्रंथ अनुष्ठानों के सुसम्पादन को स्पष्ट करते हैं तथा जो जटिल थे उनको सम्पन्न करने के लिये ऐसे व्यवसायिक लोगों की आवश्यकता थी जो उनके आयोजनों की कला में निपुण हों। बलि यज्ञों को सम्पन्न करने के लिए विधि या नियमों को रचा गया वैदिक बलि यज्ञों का यह तात्पर्य नहीं था कि खाद्य सामग्री को अग्नि की भेंट चढ़ाकर साधारण तरीके से उनको सम्पन्न किया जा सके। भेंट चढ़ाने एवं बलि आदि देने के तरीकों में संरक्षक या यजमान की आवश्यकता के अनुसार अन्तर किया जाता। अब बलि यज्ञों को अदृश्य प्रतीक से सम्पन्न किया जाता और प्रत्येक अनुष्ठान को किसी अदृश्य शक्ति के द्वारा सम्पन्न किया जाने लगा। पुरोहितवाद की एक नयी पद्धति का उदय हुआ क्योंकि इन यज्ञों के सम्पादन में बहुत सी जटिलतायें आ गई थी फिर चाहे वह सार्वजनिक यज्ञ हो या व्यक्तिगत इस प्रकार यज्ञोपासना करने के लिये पुजारियों का एक वर्ग विशेषज्ञ हो गया। यहाँ तक कि एक ही यज्ञ के दौरान उसके विभिन्न चरण पूरे करने के लिये अलग-अलग पुरोहितों की आवश्यकता होती थी।

13.6.2 उत्तर वैदिक काल के देवता

प्रारम्भिक वैदिक काल के दो महत्वपूर्ण देवता इन्द्र तथा अग्नि का महत्व कम हो गया। प्रजापति या स्रष्टा अधिक महत्वपूर्ण हो गया। यह इस तथ्य का भी प्रतीक है कि कृषक

समाज में स्रष्टा की काल्पनिक रचनाओं का कितना महत्व है। रुद्र जो ऋग्वेद में एक छोटा देवता था, अब एक महत्वपूर्ण देवता हो गया तथा विष्णु को भी सृष्टि का रचयिता तथा रक्षक समझा जाने लगा। पूषण जो पहले पालतू पशुओं की रक्षा करता था अब शूद्रों का देवता हो गया। देवताओं की स्थिति में होने वाले परिवर्तन इस तथ्य के प्रतीक हैं कि घुमक्कड़ कबीलों के स्थायी रूप से बसने पर उनके चरित्र में भी किस प्रकार परिवर्तन हुआ। प्रारम्भिक वैदिक देवता जो प्राकृतिक विशेषताओं के प्रतीक थे इनके गुणों को धीरे-धीरे त्याग दिया गया और प्राकृतिक तत्वों को देवता के रूप में देखना जटिल हो गया। उत्तर वैदिक काल के श्लोकों में वर्णित होने वाले विशेष देवता में प्राकृतिक तत्व को ढूंढ पाना कोई सरल कार्य न था।

13.6.3 लोक परम्परा

अथर्वेद लोक परम्पराओं से सम्बन्धित सूचनाओं का विशाल भण्डार है इनका सार तत्व वैदिक बलि विषयक धर्म से अधिक उग्र है और यह मायावी धर्म से सम्बन्धित है इस वेद की विषय वस्तु मानव जीवन के प्रत्येक हिस्से का वर्णन करती है। इसके सुक्त निम्न बातों का वर्णन करते हैं :

- रोग का प्रतिकार
- स्वास्थ्य के लिये प्रार्थना
- घर तथा सन्तान की सम्पन्नता के लिये मन्त्र
- पालतू पशु और खेत
- सौहार्दता बनाने के लिये मन्त्र
- प्रेम और विवाह या बातचीत तक सीमित विरोध तथा ईर्ष्या आदि से सम्बन्धित मन्त्र।

इस प्रकार इसमें उस समय में व्याप्त अन्धविश्वास तथा विश्वासों का संकलन है। अथर्व शब्द एक मायावी सूत्र की ओर इशारा करता है और अथर्व पुरोहित इस धर्म की औपचारिकता पूरी करते थे। वैदिक देवतों की स्तुति की जाती थी लेकिन जिस कारण से उनकी स्तुति की जाती थी वे कारण बहुत छोटे तथा व्यक्तिगत होते थे। बहुत सारे देवता राक्षस, तथा पिशाच (कुछ अपकारी और परोपकारी) सब की स्तुति की जाती थी इसका उद्देश्य सौभाग्य प्राप्त करने एवं मित्रों का लाभ अथवा दुश्मनों का सर्वनाश करने के लिये होता था। बहुत से मन्त्र और स्तुतियां परिवार से सम्बंधित थी और आम आदमी के दैनिक जीवन के नजदीक थी। उदाहरण के लिये, इन्द्र को, घर को लूटने वालों, नागों तथा असुरों को मारने वाला कहा गया है। ऐसा विश्वास किया गया कि अस्विन कृषि रक्षा करते तथा चूहों को मारते। सावित्री को उस जगह पर रखा जाता था जहां पर नया घर बन सके। पूषण की पूजा सौहार्द प्राप्त करने तथा बच्चों के सुरक्षित जन्म के लिये जाती थी जबकि सूर्य भूत-प्रेत को भगाता था।

इस युग के अंत में ब्राह्मणों के विरुद्ध एक कड़ी प्रतिक्रिया हुई। यज्ञों में जटिलता आने का परिणाम यह हुआ कि दर्शन में एक नये सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ जिसका मूर्तरूप उपनिषदों में दिखायी दिया इन्होंने अनुष्ठानिक कार्यक्रमों व बलि के रूप में किये जाने वाले निरर्थक खर्च का विरोध किया तथा आत्मिक ज्ञान पर बल दिया। इस प्रकार धर्म के भौतिक आधार का बहिष्कार कर दिया गया और धर्म को दर्शन विषय तक उठाया गया। उपनिषदों ने आत्म की परिवर्तन विहीनता एंव अमरत्व पर जोर दिया। इस प्रकार से वे राजनीतिक स्थिरता तथा एकता पर जोर देते दिखायी पड़ते हैं क्योंकि यह वह समय है जबकि जनपदों एवं महाजनपदों अर्थात् गणतन्त्र व राजशाही का उदय हो रहा था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रारम्भिक वैदिक तथा उत्तर वैदिक काल के बीच में धार्मिक मतों तथा कार्यक्रमों में एक महान् परिवर्तन हो चुका था। यह परिवर्तन अंशतः पशुपालन से कृषि की ओर बदलाव से संबधित था। ये धार्मिक परिस्थितियां उस काल की उन बदलती हुई सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का प्रतीक थे जो पूर्व वैदिक से उत्तर वैदिक काल में आये।

बोध प्रश्न 3

1 उत्तर वैदिक काल में : (निम्नलिखित में सही कथन पर (✓) का निशान लगाओ)।

i) सार्वजनिक एवं घरेलू बलि यज्ञ बड़े महत्वपूर्ण हो गये ( )

ii) बलि यज्ञ की कोई भूमिका नहीं थी ( )

iii) बलि यज्ञों का महत्व हो गया क्योंकि पुरोहित एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने को आ गये ( )

iv) दोनों (i) और (iii) सही हैं ( )

2 यह कहा जा सकता है कि :

i) महत्वपूर्ण उत्तर वैदिक एवं प्रारम्भिक वैदिक देवता एक समान थे ( )

ii) महत्वपूर्ण उत्तर वैदिक एवं प्रारम्भिक वैदिक देवता अलग अलग थे ( )

iii) घुमक्कड़ से स्थायी तौर पर बसने के साथ सामाजिक चरित्र में आये परिवर्तन का उत्तर वैदिक देवता मूर्तरूप थे ( )

iv) दोनों (ii) और (iii) सही हैं ( )

3 उत्तर वैदिक काल के देवताओं की स्थिति में परिवर्तन क्या इंगित करते हैं (50 शब्दों में उत्तर दें)।

....

....

....

....

....

13.7 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपने जाना :

- कि उत्तर वैदिक समाज पशुपालन शैली से एक स्थायी कृषि समाज में परिवर्तित हो रहा था परन्तु लोहा कृषि में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा नहीं कर सका था। लोहे के औजारों ने आगे चलकर ही इस क्षेत्र में भूमिका अदा की।
- कि इस प्रक्रिया में ठीक तरीके से परिभाषित राजनैतिक संस्था की स्थापना हुई, आचार संहिताओं को लिखा गया और एक विशेष सामाजिक विभाजन का उदय हुआ।
- कि वैदिक धर्म और इस काल की लोक परम्परा में, अपनी पहिचान बनाये रखते हुए भी, मेल-मिलाप बढ़ रहा था।
- कि इस परिवर्तन की प्रक्रिया में प्रारम्भिक वैदिक काल के रुद्र जैसे छोटे देवता अधिक महत्व पूर्ण हो गये जब कि पहले के महत्वपूर्ण इन्द्र जैसे देवताओं का महत्व कम हो गया, और
- इस युग के साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों को एक साथ मिलाकर पढ़ना चाहिये जिससे कि उस समय के समाज का पूर्ण चित्र सामने आ सके।

13.8 शब्दावली

दोहरी फसल : एक ही खेत में एक समय दो या दो से अधिक फसल पैदा करना।

सगोत्र विवाह : एक ही कबीले, जाति व गोत्र आदि के अन्दर विवाह।

असगोत्र विवाह : जाति, गोत्र आदि से बाहर विवाह।

फलादत उत्सर्ण (पूजा) : अनुष्ठान/धार्मिक कार्य जिसमें मानव जन्म या जन्म की प्रक्रिया पर जोर दिया जाये।

भेंट अर्थव्यवस्था : ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें इसको तथा इसकी संस्थाओं को बनाये रखने में उपहार अथवा भेंट विशेष योगदान करते हों।

श्रम प्रधान : वह कार्य जिसमें तकनीकी के स्थान पर मानव श्रम अधिक योगदान करे।

स्थायी रूप से बसना : ठहराव या एक ही स्थान पर रहना।

विभाजन : तहों में विभाजन, सामाजिक विभाजन का तात्पर्य है कि समाज में धन, जाति आदि के आधार पर विभाजन होना।

जीवन यापन गतिविधि : आर्थिक रूप से जीवित रहने के लिये कार्य, इसमें मिश्रित खेती आती है।

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 (iv)
2 (iv)
3 (ii)
4 भाग 13.3 को देखें (आप अपने उत्तर में यह बतायें कि क्या लोहा युद्ध के लिये महत्वपूर्ण हो गया था या रोजमर्रा उपयोग के लिये और क्यों?)

बोध प्रश्न 2

1 (ii)
2 (ii)
3 (i)
4 (ii)
5 उपभाग 13.5.2 को देखें (आपको अपने उत्तर में परिवार के महत्व, गृहपति के महत्व तथा महिला की परिवार में स्थिति के बारे में बताना चाहिये)।

बोध प्रश्न 3

1 (iv)
2 (iv)
3 उपभाग 13.6.2 को देखें (आप अपने उत्तर में बतायें कि क्या नये देवता एक नये समाज की ओर इशारा करते थे?)।

इस खण्ड के लिये उपयोगी पुस्तकें

शिव शंकर मिश्र—**प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास।**

ए.एल. बाशम—**अदभुत भारत**

डी.डी. कोशांबी—**प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता**

Allchin, Raymond and Bridget, *Rise of Civilization in India and Pakistan,* Delhi, 1983.

इकाई 14 जनपद और महाजनपद

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 वैदिक युग तथा छठी शताब्दी ईसा पूर्व
14.3 हमारी जानकारी के स्रोत
14.4 बस्तियों के प्रकार-I : जनपद
14.5 नए समूहों का उदय
 14.5.1 गहपति
 14.5.2 व्यापारी
 14.5.3 शासक और शासित
14.6 बस्तियों के प्रकार- II : महाजनपद
 14.6.1 जीवक की कथा
 14.6.2 गांव
 14.6.3 कस्बे और शहर
14.7 सोलह महाजनपद
14.8 सारांश
14.9 शब्दावली
14.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

14.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- छठी शताब्दी ईसा पूर्व के समाज तथा उससे पूर्व के समाज के अंतर को समझ सकेंगे,
- छठी शताब्दी ईसा पूर्व के दौरान समाज में नये समूहों के उदय के संदर्भ में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे, तथा
- विभिन्न मुख्य जनपदों तथा महाजनपदों के विषय में जान सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

आपने देखा होगा कि आपके आस-पास के लोग एक ही भाषा बोलते हैं। यही नहीं, पूरा क्षेत्र एक ही प्रकार के त्योहार मनाता है तथा उनकी शादी-ब्याह की रीतियाँ भी एक जैसी होती हैं। उनके खान-पान की आदतें भी लगभग समान ही होती हैं। सांस्कृतिक एकरूपता रखने वाले क्षेत्र कैसे अस्तित्व में आए ? इस प्रक्रिया का आरंभ जनपदों के उदय से ही हो गया था। जनपदों के उदय के साथ ही भारतीय भूगोल का जन्म भी माना जा सकता है। आपको ध्यान होगा कि वैदिक समाज पर चर्चा करते हुए हमने विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्रों पर बहस नहीं की थी। इसका कारण यह था कि लोग किसी विशेष क्षेत्र से जुड़े हुए नहीं थे। किसानों की बस्तियां कायम होने के साथ बस्तियों के निवासी आस-पास के क्षेत्र से भावनात्मक रूप में जुड़ गए। उन्होंने इन क्षेत्रों की नदियों, पक्षियों एवं पशुओं तथा फलों को देखा। यही नहीं, इसी समय उन्होंने किसी विशेष भौगोलिक क्षेत्र को अपना मानना शुरू किया। यह भौगोलिक क्षेत्र अन्य समुदायों के क्षेत्रों (जनपदों) से पृथक थे जो कि इन क्षेत्रों से मित्रता अथवा शत्रुता का भाव रख सकते थे। आंतरिक रूप से संबद्ध तथा बाह्य जगत से अलग होने की विशेषता

वाले यह जनपद प्राचीन भारत के आरंभिक विकास का आधार बने। ये इकाइयां अथवा जनपद समान भाषा, रीति-रिवाज़ों एवं धारणाओं के विकास के केन्द्र बन गए।

14.2 वैदिक युग तथा छठी शताब्दी ईसा पूर्व

जनपदों के विषय में चर्चा करते समय हमें जनपदों के उदय से संबंधित अनेक वस्तुओं का उल्लेख करना होता है। चूंकि जनपद छठी शताब्दी ईसा पूर्व तक अस्तित्व में आ चुके थे, अत: हम कह सकते हैं कि जिन क्षेत्रों में यह जनपद अस्तित्व में आए, वहां काफी बड़े परिवर्तन मूर्त रूप में प्रकट हुए। जिन क्षेत्रों में लोग जनपदों में रहते थे वहां गांव, कस्बे और शहर हुआ करते थे। आपको ध्यान होगा कि जब हमने आरंभिक वैदिक तथा उत्तर वैदिक काल की चर्चा की थी तो हमने गांव कस्बे और शहर जैसी इकाइयों में लोगों के रहने का उल्लेख नहीं किया था, यद्यपि वे सामान्य बस्तियों में निवास करते थे। यही वह समय है, जबकि राजे-रजवाड़े इतिहास में पर्दापण करते हैं। इसी समय ही गहन दार्शनिक विचारों का उदय हुआ। बौद्ध मत, जैन मत और कई अन्य असनातनी सम्प्रदाय इसी समय उभरे। भिक्षु, रजवाड़े तथा व्यापारी इतिहास के पन्नों पर फैल गए। इस प्रकार, जिस युग (लगभग छठी शताब्दी ईसा पूर्व से चौथी शताब्दी ईसा पूर्व) का हम अध्ययन करेंगे वह कई अर्थों में हमारे समक्ष भारतीय समाज में (उस युग के बाद जिसका हमने खंड 3 में अध्ययन किया) हुए निरंतर परिवर्तनों को प्रकाश में लाएगा।

14.3 हमारी जानकारी के स्रोत

हमें जनपदों और महाजनपदों के विषय में जानकारी कुछ वैदिक तथा बौद्ध साहित्य से प्राप्त होती है। ब्राह्मण स्रोत एक वैदिक ग्रंथ का उल्लेख करते हैं जिसमें वैदिक अनुष्ठान के तरीकों का उल्लेख है। इसी प्रकार दार्शनिक समस्याओं को रेखांकित करने वाले उपनिषदों को भी वैदिक साहित्य का अंग माना जाता है। यह ग्रंथ 800 ईसा पूर्व के बाद से लिखे जाते रहे हैं। इनमें कई जनपदों और महाजनपदों का उल्लेख है जिससे हमें खेतिहर समुदायों की बस्तियों के विषय में विविध जानकारी प्राप्त होती है। इस युग के विषय में जानकारी का एक अन्य स्रोत बौद्धों द्वारा रचित साहित्य है। संघ के नियमों को रेखांकित करने वाली विनय पिटक, बुद्ध के उपदेशों का संग्रह सुत्त पिटक तथा अलौकिक समस्याओं का उल्लेख करने वाली अभिधम्म पिटक हमें इस युग के उपदेशक राजकुमारों, धनी एवं निर्धनों तथा गांवों एवं कस्बों के विषय में जानकारी देते हैं। बुद्ध के पूर्व जन्मों के विषय में बताने वाली जातक कथाएं सुत्त पिटक का अंग है। वे हमें उस समय के समाज की स्पष्ट जानकारी देते हैं।

इन ग्रंथों में विभिन्न क्षेत्रों तथा भौगोलिक विभाजनों के स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि इस युग के प्रति हमारी जानकारी में पुरातत्वशास्त्री भी काफी योगदान करते हैं। उन्होंने अहिक्षेत्र, हस्तिनापुर, कोशाम्बी, उज्जैन, श्रावस्ती, वैशाली तथा अन्य कई स्थलों की खुदाई की है जिनका इन ग्रंथों में उल्लेख है। उन्होंने यहां के लोगों द्वारा प्रयोग की जाने वाली वस्तुओं, घरों, इमारतों, कस्बों आदि के अवशेष प्राप्त किए हैं। उदाहरण के लिए इस युग की पुरातात्विक उपलब्धियों से पता चलता है कि इस युग के लोग उत्तरी काले पालिश किए मृदभांड कहे जाने वाले उत्कृष्ट बर्तनों का उपयोग करते थे, जिसका उल्लेख खंड 3 में किया जा चुका है। पूर्वकालीन बस्तियों में लोग या तो लोहे के इस्तेमाल से अनभिज्ञ थे अथवा इसे विशेष अवसरों पर ही इस्तेमाल करते थे। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में लोगों ने लोहे का इस्तेमाल बड़े पैमाने पर करना आरंभ किया। सम्पन्न खेतिहर बस्तियां और कस्बे भी खुदाई के दौरान पाए गए हैं। इस प्रकार पुरातात्विक एवं साहित्यिक स्रोतों की मिली-जुली जानकारी से हमें छठी शताब्दी ई. पू. तथा चौथी शताब्दी ई. पू. के बीच के भारतीय समाज की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त हो जाती है।

14.4 बस्तियों के प्रकार-I : जनपद

समकालीन ग्रंथों से सुव्यवस्थित भौगोलिक क्षेत्रों में समाज तथा अर्थव्यवस्था में हो रहे परिवर्तनों की ओर संकेत मिलता है। इस समय के साहित्य में बस्तियों की विभिन्न इकाइयों का उल्लेख मिलता है। इनमें महाजनपद, जनपद, नगर, निगम, ग्राम आदि मुख्य हैं। आइए, हम पहले जनपदों के विषय में जानकारी प्राप्त करें।

जनपद, जिसका शाब्दिक अर्थ है "जहां लोग अपने पैर रखते हैं", इस युग के ग्रंथों में अक्सर उल्लेखित है। आपको जन का अर्थ याद होगा। वैदिक समाज में इसका अर्थ होता था "एक कुल के सदस्य"। आरंभिक वैदिक समाज में जन के सदस्य पशु-पालक समूह होते थे जोकि चारागाहों की तलाश में विचरण किया करते थे। लेकिन उत्तरकालीन वैदिकचरण में जन सदस्यों ने खेती करना आरंभ किया और स्थायी रूप से बसने लगे। यह खेतिहर बस्तियां जनपद कहलाती थीं। आरंभिक चरणों में इन बस्तियों का नाम क्षेत्रों में बसे प्रभुत्ववान क्षत्रिय वंशों के नाम पर रखा जाता था। उदाहरण के लिए दिल्ली एवं ऊपरी उत्तर प्रदेश कुरू एवं पांचाल जनपद कहे जाते थे, जो प्रभुत्ववान क्षत्रिय वंशों के नाम थे। उनके एक स्थान पर बस जाने पर खेती का विस्तार, विशेषकर लोहे की कुल्हाड़ियों एवं हल के फलों के इस्तेमाल द्वारा, आरंभ हो जाता था। इन लोहे के औजारों से पूर्व-शताब्दियों के किसानों के ताम्र एवं पत्थर की कुल्हाड़ियों की अपेक्षा एक अधिक सुविधा से जंगलों की सफाई की जा सकती थी तथा खुदाई अधिक गहरी हो सकती थी। मध्य गांगेय घाटी, जोकि इलाहाबाद के पूर्व की ओर का क्षेत्र है, धान की फसल के लिए उपयुक्त थी। धान की प्रति एकड़ की उपज की दर गेहूं की तुलना में कहीं अधिक है। इसके कारण धीरे-धीरे खेती एवं जनसंख्या में बढ़ोत्तरी अवश्यंभावी थी। वंशों के मुखियाओं के पास एक-दूसरे से युद्ध के दौरान सुरक्षा तथा लूट-पाट के लिए काफी कुछ था। अब पशु धन के अतिरिक्त खेतिहर उत्पादन भारी मात्रा में मौजूद था। बलि समारोहों को भव्य रूप देने के उद्देश्य से भी लूट-खसोट की उनकी इच्छाएं तीव्र होने लगीं थीं। कृषि विस्तार, युद्ध तथा विजयों की प्रक्रिया में वैदिक जनजातियां एक दूसरे के तथा अनार्य जनसंख्या के सम्पर्क में आईं। इसके कारण विस्तृत क्षेत्रीय इकाइयों का गठन आरंभ हो गया। उदाहरण के लिए पांचाल पांच छोटी-छोटी जनजातियों के विलय का प्रतिनिधित्व करते थे। कुछ जनपद छठी शताब्दी ईसा पूर्व तक आते-आते महाजनपदों के रूप में विकसित हो गए। यह जनपदों की आंतरिक सामाजिक-राजनैतिक संरचना में होने वाले निरंतर परिवर्तनों का परिणाम था। इनमें से एक मुख्य परिवर्तन खेतिहर समुदायों का फैलाव था। इसकी जानकारी इस तथ्य से प्राप्त होती है कि समकालीन ग्रंथों में खेतिहर ज़मीन को महत्वपूर्ण सम्पत्ति बताया गया है। इन ग्रंथों में चावलों की किस्मों पर उतने ही विस्तार से व्याख्या की गई है, जितने विस्तार से वैदिक ग्रंथों में गाय की किस्मों पर की गई है। आइए अब हम इन परिवर्तनों की ओर दृष्टिपात करें।

14.5 नए समूहों का उदय

एक अत्यंत महत्वपूर्ण परिवर्तन समाज में नई श्रेणियों एवं समूहों का उदय था। आइए इसे विस्तार से देखें।

14.5.1 गहपति

गहपति भूसम्पन्न पारिवारिक इकाई का मालिक होता था। कहा जाता है कि एक ब्राह्मण गहपति के पास इतनी ज़मीन थी कि उसे ज़मीन की जुताई के लिए पांच सौ हलों की आवश्यकता होती थी। उत्तर वैदिक समाज में "विस" खेतिहर गतिविधियां सम्पन्न करता था। भूमि कुल की सामूहिक सम्पत्ति होती थी। खेतिहर समाज के उदय से [illegible] का महत्वपूर्ण हिस्सा बन गई। क्षत्रिय एवं ब्राह्मणों के शासक कुलों ने इसे अपने नियंत्रण में कर लिया। इन समूहों से गहपति का उदय हुआ जो कि सामूहिक मिलकियत के बिखराव और

बड़े व्यक्तिगत भूस्वामी के उदय का प्रतीक था। गहपति अपनी ज़मीन पर फसल उगाने का काम दास, कर्मकार तथा शूद्रों द्वारा करवाते थे। युद्ध के दौरान बंदी बनाए गए लोग दास बना लिए जाते थे। जनजातियों के गरीब सदस्य भी मज़दूर (कर्मकार) बन जाते थे। आश्रित मज़दूरों का प्रयोग एक ऐसे वंचित वर्ग के उदय का सूचक था जिसका श्रम अतिरिक्त खाद्य उत्पादन के लिए उपयोग किया जाता था। खेतिहर उत्पादन शूद्र अथवा दास को न मिलकर गहपति को मिलता था।

14.5.2 व्यापारी

एक महत्वपूर्ण व्यापारी वर्ग का उदय संभवत: गहपति वर्ग से ही हुआ। उत्पादनों को बेचकर इन्होंने कुछ धन इकट्ठा कर लिया, जिसे व्यापार के लिए इस्तेमाल किया गया। बौद्ध स्रोतों में व्यापारियों के लिए एक शब्द, जिसका बार-बार प्रयोग किया गया है, वह "सेठी" है जिसका अर्थ "जिसके पास सर्वोत्तम हो" है। इससे यह सिद्ध होता है कि धन का लेन-देन करने वाले व्यक्तियों को समाज में काफी प्रतिष्ठा एवं शक्ति प्राप्त हो गई थी। ब्राह्मणों के ग्रंथों में सामान्यत: व्यापारियों एवं वैश्यों, जोकि व्यापारी वर्ग था, को उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया है। छठी शताब्दी तक व्यापार एवं वाणिज्य आर्थिक गतिविधियों का एक स्वतंत्र क्षेत्र बन चुका था। व्यापारी शहरों में रहते थे। इनके उदय को इस काल में कस्बों एवं शहरों के उदय से जोड़ा जा सकता है। यह व्यापारी काफी विस्तृत क्षेत्र में अपना व्यापार फैलाए हुए थे। विभिन्न प्रदेशों में व्यापार फैलाकर इन्होंने यह संभावना तैयार कर दी, कि राजा व्यापारियों द्वारा घूमे गए क्षेत्रों को अपने नियंत्रण में करने का प्रयास करें। इस प्रकार छठी शताब्दी तक किसानों एवं व्यापारियों का एक मुक्त वर्ग अस्तित्व में आ गया था। इन्होंने पूर्व स्थिति के विपरीत, स्वयं को कुल के अन्य सदस्यों के साथ अधिशेष खाद्य अथवा धन बांटे जाने की बाध्यता से मुक्त कर लिया। इस काल में खेती में प्रयुक्त होने वाले मवेशियों, भूमि तथा उसके उत्पादन के रूप में निजी सम्पत्ति एक शक्तिशाली आर्थिक वास्तविकता बन गई।

14.5.3 शासक एवं शासित

सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में विकास के साथ-साथ महाजनपदों के राजनैतिक स्वरूप में भी परिवर्तन हुए। पूर्व काल में राजा शब्द का प्रयोग कुल के मुखिया के लिए होता था। उदाहरण के लिए, राम जिनकी किवदंतियां इस युग से जोड़ी जाती हैं, बहुधा रघुकुल के राजा कहे जाते हैं जिसका अर्थ है वह व्यक्ति जो रघु कुल अथवा वंश पर शासन करता हो। इसी प्रकार, युधिष्ठिर कुरू राजा कहे जाते हैं। वे अपने वंशों पर शासन करते थे, किन्तु किसी क्षेत्र पर शासन की संकल्पना अभी तक नहीं उभरी थी। जातियों अथवा नातेदारों से कर वसूली सामान्यत: स्वैच्छिक आधार पर सम्पन्न होती थी। राजा एक उदार पिता-तुल्य व्यक्ति समझा जाता था, जिसका कर्तव्य वंश की सम्पन्नता सुनिश्चित करना था। उसके पास स्वतंत्र कर वसूली की व्यवस्था अथवा सेना नहीं होती थी। इसके विपरीत, छठी शताब्दी ईसा पूर्व के स्रोतों में राजाओं का उल्लेख राजा के विशिष्ट क्षेत्र में शासन करने, नियमित कर वसूली की व्यवस्था तथा सेना होने के साथ होता है। किसानों (कृसक) जो राजा को कर देते थे तथा एक सेना का उल्लेख भी मिलता है। अब किसान तथा सेना किसी भी रूप में राजा के संगोत्र नहीं होते थे। अब राजा तथा प्रजा के बीच भिन्नता स्पष्ट हो चुकी थी। प्रजा में गैर-वंशी समूह भी होते थे। सेना के मौजूद होने का अर्थ स्थानीय किसानों पर बलपूर्वक नियंत्रण तथा पड़ोसी राजाओं एवं जनता से निरंतर झगड़े होते रहना था। पूर्वकालीन मवेशियों के लिए छापामारी के स्थान पर अब संगठित धावे बोलकर क्षेत्रों को हड़प लेना तथा किसानों एवं व्यापारियों से बलपूर्वक कर वसूल करना आरंभ हो चुका था। कर वसूली के लिए नियुक्त कर्मचारियों का उल्लेख बार-बार मिलता है। खेतिहर उत्पादन से भाग वसूली के लिए भगदुघ नाम से एक कर्मचारी होता था। खेतिहर भूमि के सर्वेक्षण के लिए राजुगाहक नाम से एक अन्य कर्मचारी होने का उल्लेख मिलता है। जातकों में राजा के अनाज गोदाम में भेजने के लिए राजकर्मियों द्वारा अनाज तोलने का उल्लेख मौजूद है। अधिकतर स्थानों पर महाजनपदों का नामकरण क्षत्रिय कुल के नाम के आधार पर नहीं होता था। उदाहरण के लिए कौशल, मगध, आवंती तथा वत्स किसी क्षत्रिय वंश के नाम पर आधारित नहीं हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि छठी शताब्दी ईसा पूर्व तक एक नए प्रकार की राजनैतिक व्यवस्था पनप चुकी थी। पहले जनजाति का मुखिया शत्रु क्षेत्रों पर आक्रमण करके लूट का माल अपने साथियों में बांट लेता था, लेकिन अब इसके स्थान पर एक राजा आसीन था जिसके पास जाति स्वामिभक्ति से अप्रभावित एक सेना थी। सेना को वेतन किसानों से वसूले गए राजस्व द्वारा दिया जाता था। वैदिक मुखियाओं की गौरव एवं बलिदान की इच्छा ने उन्हें वंश परम्परा से काट दिया। जनजातियां सुदूर क्षेत्र में युद्ध नहीं कर सकती थी तथा सेना की आवश्यकता हेतु नियमित कर देना उनके लिए मान्य न होता। राजा के लिए गौरव तथा शक्ति की दृष्टि से यह सब कुछ आवश्यक था। राजा की शक्ति जनजाति के अपने साथियों के बीच धन के बटवारे पर आधारित नहीं थी। अब राजा की शक्ति संबद्ध वंश समूहों को तोड़ने तथा धनोत्पादन में सक्षम व्यक्तियों एवं समूहों को मान्यता देने पर आधारित थी। इस धन का कुछ हिस्सा कर स्वरूप उत्पादनकर्ता से ले लिया जाता था। वंश आधारित समाज में, जहां कि हर व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का सम्बन्धी समझा जाता था, इस प्रकार मुखिया द्वारा मनमाने ढंग से धन ले लेना स्वीकार न किया जाता। मुखिया के स्थान पर आसीन राजा किसानों एवं व्यापारियों से कर वसूल करता था तथा उन्हें आंतरिक एवं बाह्य हमलों के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करता था।

बोध प्रश्न 1

1) छठी शताब्दी ईसा पूर्व की भौतिक संस्कृति के विषय में इतिहासकारों ने किस प्रकार पुरातात्विक तथा साहित्यिक प्रमाणों को संयोजित किया है ? पाँच पंक्तियों में लिखिए।

....
....
....
....
....

2) इस युग में उभरने वाले प्रत्येक नए समूह पर दो पंक्तियां लिखें।

....
....
....
....
....
....

3) निम्नलिखित कथनों को पढ़िए और उनके सामने सही (✓) अथवा गलत (×) का चिन्ह लगाइए:

   i) छठी शताब्दी ईसा पूर्व के लोग लोहे के इस्तेमाल से अनभिज्ञ थे।

   ii) समकालीन ग्रंथों के अनुसार उस काल के समाज में महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हो रहे थे।

   iii) जनपद मूलत: खेतिहर बस्तियां थी, जिनका नामकरण उक्त क्षेत्र के क्षत्रिय वंशों के नाम पर होता था।

   iv) कुछ महाजनपद शीघ्र जनपद के रूप में विकसित हो गए।

14.6 बस्तियों के प्रकार-II : महाजनपद

नई राजनैतिक-भौगोलिक इकाइयां, जिनमें गहपति, व्यापारी तथा शासक एवं शासित के बीच संबंध के नए प्रतिमान दिखाई पड़े, महाजनपद कहलाए। महाजनपद का तात्पर्य मगध, कौशल

आदि ऐसे विशाल जनपदों से था जिनपर शक्तिशाली राजा अथवा अभिजात वर्ग राज करते थे। दरअसल छठी शताब्दी ईसा पूर्व में कई महाजनपद पूर्व काल में स्वायत्त जनपदों को मिलाकर बने। उदाहरण के लिए कौशल महाजनपद में साक्य, काशी तथा मगध महाजनपद में इसके साम्राज्य बनने से भी पहले अंग, वाजी आदि जनपद शामिल हो चुके थे। समकालीन बौद्ध ग्रंथों में नए समाज का प्रतिबिंबन जीवक कथाओं में देखा जा सकता है। इतिहासकार इन कथाओं को उस युग के मानवों की आशाओं, अभिलाषाओं, संघर्षों तथा सामाजिक माहौल को समझने के लिए पढ़ते हैं।

14.6.1 जीवक की कथा

प्रसिद्ध वैध जीवक की कथा हमें बुद्ध के समय से प्राप्त होती है। राजगृह (पटना के निकट राजगीर) शहर में अभय नामक राजकुमार रहता था। उसने सड़क पर एक परित्यक्त शिशु देखा। वह उसे घर ले आया और दाई को बच्चे की देखभाल करने का आदेश दिया। बच्चे का नाम जीवक पड़ा।

जब जीवक बड़ा हुआ तो उसने सोचा कि जीविका के लिए उसे क्या करना चाहिए। उसने वैद्य बनने का निर्णय लिया। उन दिनों तक्षशिला शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र हुआ करता था। जीवक ने आयुर्वेद सीखने के लिए वहां जाने का निर्णय लिया।

जीवक तक्षशिला में सात वर्षों तक रहा। वहां उसने प्रसिद्ध आयुर्वेदविद् की देख-रेख में गहन अध्ययन किया। शिक्षा के अन्त में उसके गुरु ने उसकी परीक्षा लेनी चाही। उसने जीवक से कहा कि वह तक्षशिला के चारों ओर घूमकर कुछ ऐसी जड़ी-बूटियां लाए जोकि दवाओं के किसी काम की न हो। जीवक ने जाकर बड़ी सावधानी-पूर्वक ऐसी जड़ी-बूटियां ढूंढनी शुरू की, जोकि दवाओं की दृष्टि से बेकार हो। उसके वापस आने पर उसके गुरु ने उससे पूछा, "तुम्हें कितनी जड़ी-बूटियां मिलीं ?" जीवक ने कहा "श्रीमान मुझे एक भी ऐसी जड़ी-बूटी नहीं मिली जो किसी औषधि के काम न आ सके।" गुरु अति प्रसन्न हुए और कहा कि उसकी शिक्षा अब पूरी हो गई।

जीवक राजगृह की ओर चल पड़ा। अभी वह आधे रास्ते तक ही पहुंचा था कि उसका सारा धन समाप्त हो गया। वह काम खोजने में लग गया। उसे पता चला कि एक धनी व्यापारी की पत्नी काफी बीमार है। जीवक ने उसे ठीक कर दिया। व्यापारी ने जीवक को काफी सारा धन दिया। इस प्रकार जीवक राजगृह पहुंचा। राजगृह में राजा बिम्बसार का निजी वैद्य बन गया। बिम्बसार जीवक की विद्या से इतना प्रभावित हुआ कि वह जीवक को बुद्ध के इलाज के लिए भेजने लगा। इस प्रकार जीवक बुद्ध के संपर्क में आया। उसने बौद्ध भिक्षुओं को काफी भेंट दी।

अब आप इस कथा-सार की आरंभिक वैदिक समाज के घटनाक्रम से तुलना कीजिए। मवेशी पालने, बलि चढ़ाने तथा पुरोहितों का कहीं उल्लेख नहीं है। कहानी विकसित शहरी बस्तियों की ओर संकेत करती है तथा कथा के मुख्य पात्र हैं एक बच्चा जोकि वैद्य बनना पसंद करता है, व्यापारी (श्रष्ठिन), एक राजा (बिम्बसार) तथा नए दर्शन का प्रवक्ता बुद्ध। आप भौगोलिक क्षेत्र पर दृष्टि डाले तो पाएंगे कि आरंभिक वैदिक आर्य चारागाहों की तलाश में पंजाब के मैदानों में भटक रहे थे। जीवक बिहार से लेकर उत्तर-पश्चिमी पंजाब की सीमा तक यात्रा करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि आयुर्वेद विद्या सीखने के लिए उसने दो हज़ार किलोमीटर से अधिक रास्ता तय किया। नई बस्तियां, नए व्यवसाय तथा नए मार्ग परिवर्तित ऐतिहासिक परिस्थिति के प्रतिमान हैं।

जीवक बस्तियों की एक नई व्यवस्था, शहर में रहा। शहर सम्पन्न गांवों के आधार पर उदित हुए। गांव महाजनपदों के सामाजिक-राजनैतिक संगठन की मूल इकाई थे। अत: आइए अब हम छठी शताब्दी ईसा पूर्व के गांवों पर एक दृष्टि डालें।

14.4.2 गांव

महाजनपदों में मूल बस्तियों की इकाइयां गांव थी (जोकि पाली एवं प्राकृत में संस्कृति के ग्राम शब्द का समानार्थी है और इसका अर्थ भी गांव है)। आपको आरंभिक वैदिक युग के ग्राम याद

होंगे। यह ग्राम लोगों की चलती-फिरती इकाइयां होती थीं और जब दो गांव आस-पास पहुंच जाते थे तो संग्राम (जिसका शाब्दिक अर्थ गांवों का एक दूसरे के पास आना है) अथवा युद्ध होता था। चलती-फिरती इकाइयां होने के कारण जब दो शत्रुता रखने वाले ग्राम मिलते थे तो एक-दूसरे के मवेशी छीनने के प्रयास करते थे। छठी शताब्दी ईसा पूर्व के गांव ऐसी मानवीय बस्तियां थी, जहां के लोग खेती करते थे। (यह पशुपालन से खेतिहर समुदाय में परिवर्तन की ओर संकेत करता है) गांव छोटे और बड़े, दोनों ही प्रकार के होते थे जहां एक परिवार भी बस सकता था और कई परिवार एक साथ भी। ऐसा प्रतीत होता है कि परिवार एक ही गोत्र से जुड़े होते थे और सारा गांव एक-दूसरे से नातेदारी से जुड़ा होता था। किन्तु बड़े पैमाने पर ज़मीन रखने वाले परिवारों के उदय तथा उनके दास, कर्मकार तथा पोरिस रखने के साथ ही गैर-सगोत्री गांव अस्तित्व में आए। भूस्वामित्व एवं विभिन्न प्रकार के काश्तकारी अधिकार के भी उल्लेख मिलते हैं। कसक तथा क्षेत्रिका शब्दों का प्रयोग शूद्र जाति के आम किसानों के लिए होता था। ग्राम नेता गामिणी कहे जाते थे। सिपाहियों, हाथियों तथा अश्व प्रशिक्षकों एवं मंच प्रबंधकों को भी गामिणी कहा जाता था। शिल्प में विशेषज्ञता में वृद्धि के प्रमाण गांव के पशु-पालकों, लोहारों तथा लकड़हारों के उल्लेखों से प्राप्त होते हैं। कृषि के अतिरिक्त अन्य कलाओं में गांवों द्वारा विशिष्ट कौशल प्राप्त करना बढ़ते हुए व्यापार तथा सम्पन्न अर्थव्यवस्था का सूचक है। इसका कारण यह है कि जो ग्रामीण स्वयं अन्न नहीं उगाते थे, वे अन्य ग्रामीणों से अन्न प्राप्त करते रहे होंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि वस्तुओं का परस्पर विनिमय जन-साधारण के आर्थिक जीवन का अभिन्न अंग बन चुका था। कलाओं में उनकी विशिष्ट दक्षता से भी इस दिशा में संकेत मिलता है कि उन शिल्पकारों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की काफी मांग रही होगी।

14.6.3 कस्बे और शहर

इस काल में नई प्रकार की बस्तियों के रूप में राजाओं तथा व्यापारियों द्वारा नियंत्रित किन्तु विजातीय जनसंख्या वाले कस्बों एवं शहरों का उदय हुआ। यह इकाइयां पुर, निगम तथा नगर के रूप में अलग-अलग प्रकार से उल्लेखित की जाती रही हैं। इन बस्तियों के बीच अंतर स्पष्ट नहीं है। यह कस्बे और शहर गांवों की अपेक्षा काफी बड़े हुआ करते थे। समकालीन साहित्य में अयोध्या तथा वाराणसी जैसे शहरों का उल्लेख मिलता है, जिनका क्षेत्रफल तीस वर्ग किलोमीटर से पचास वर्ग किलोमीटर के बीच बताया गया है। यह तथ्य बढ़ा-चढ़ाकर बताए गए हैं क्योंकि इन शहरों की खुदाई से इस काल में साधारण बस्तियां होने की जानकारी मिलती है। किसी भी काल में यह क्षेत्रफल पांच वर्ग किलोमीटर से अधिक नहीं था। इतिहास के इस चरण का उत्तर काले पॉलिश किए मृद्‌भांड (NBPW) जैसे उत्कृष्ट बर्तनों का इस्तेमाल करने वाली इन बस्तियों से है। इन बस्तियों में व्यापार तथा जनसंख्या में निरंतर वृद्धि होती रही। कोशाम्बी, उज्जैनी, राजघाट (वाराणसी) तथा राजगीर शहरों के चारों ओर सख्त किलेबंदी के प्रमाण मिले हैं। साहित्य में मिले उल्लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि शहरों का उदय शक्ति के केन्द्र तथा महाजनपद पर नियंत्रण के रूप में परिलक्षित हुआ। राजा शहरों से शासन करते थे। नवोदित व्यापारी वर्ग, विशेषकर सिक्के का प्रयोग आरंभ होने के बाद इन्हीं केन्द्रों में रहकर व्यापार नियंत्रित करते थे।

बोध प्रश्न 2

1) यदि आप इतिहासकार होते तो आप जीवक कथा से क्या निष्कर्ष निकालते ? लगभग सौ शब्दों में लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) शहरों के संबंध में साहित्यिक प्रमाणों से प्राप्त जानकारी को पुरातात्विक प्रमाण कैसे सुधारते हैं ? पाँच पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

14.7 सोलह महाजनपद

पिछले उप-भाग में हमने छठी शताब्दी में विद्यमान बस्तियों की मूल इकाइयों के साहित्यिक तथा पुरातात्विक प्रमाणों पर चर्चा की। अब हम प्राचीन साहित्य में सोलह महाजनपदों के उल्लेखों की चर्चा करेंगे। बौद्ध ग्रंथों में बुद्ध के समय में सोलह महाजनपदों के मौजूद होने के उल्लेख मिलते हैं। बौद्ध ग्रंथों में जहां भी बुद्ध का उल्लेख आता है वहां बार-बार इन महाजनपदों की मुख्य बस्तियों का भी उल्लेख मिलता है। इतिहासकारों में बुद्ध के जीवन-काल की तिथियों के प्रति अभी भी मतभेद हैं। तथापि, यह माना जाता है कि बुद्ध छठी तथा पांचवी शताब्दी ईसा पूर्व की दोनों शताब्दियों के कुछ भाग में जीवित थे। इसीलिए बौद्ध ग्रंथों में बुद्ध के जीवनकाल के उल्लेखों को इस युग के समाज के प्रतिबिंबन के उद्देश्य से देखा जाता है। इन उल्लेखों से हमें भारत के विभिन्न क्षेत्रों की राजनैतिक एवं आर्थिक दशा पर काफी जानकारी प्राप्त होती है। यह महाजनपद हज़ारों गांव और कुछ शहरों के विलय का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह सोलह महाजनपद उत्तरी-पश्चिमी पाकिस्तान से लेकर पूर्वी बिहार तक तथा हिमालय के तराई क्षेत्रों से दक्षिण में गोदावरी नदी तक फैले हुए थे।

बौद्ध ग्रंथ अंगुत्तर निकाय जोकि सुत्त पिटक का एक भाग है, बुद्ध के समय निम्नलिखित महाजनपद होने का उल्लेख करता है:

1) काशी	7) चेदि	12) सुरसेन
2) कोशल	8) वत्स	13) अस्सक
3) अंग	9) कुरू	14) अवंति
4) मगध	10) पांचाल	15) गांधार
5) वज्जि	11) मत्स्य	16) कंबोज
6) मल्ल		

एक अन्य बौद्ध स्रोत, महावस्तु में सोलह महाजनपदों की ऐसी ही सूची मिलती है। लेकिन इसमें गांधार तथा कंबोज, जोकि उत्तर-पूर्व में स्थित थे, का नाम नहीं है। इनके स्थान पर पंजाब में सिबी तथा मध्य भारत में दर्शन के नाम जोड़े गए हैं। इसी प्रकार जैन ग्रंथ भगवती सूत्र सोलह महाजनपदों की भिन्न सूची का उल्लेख करता है जिसमें वंग तथा मलय शामिल हैं। सोलह की संख्या पारंपरिक प्रतीत होती है तथा सूची में भिन्नता का कारण यह है कि बौद्ध और जैनों ने अपने-अपने महत्व के क्षेत्रों को सूची में शामिल किया होगा। सूचियों से पता चलता है कि मध्य गांगेय घाटी धीरे-धीरे केन्द्रीयता प्राप्त कर रही थी क्योंकि अधिकतर महाजनपद इन्हीं क्षेत्रों में स्थित थे। आइए इन महाजनपदों के इतिहास एवं भूगोल पर एक दृष्टि डालें।

1) काशी

सोलह महाजनपदों में से काशी आरंभ में सबसे शक्तिशाली महाजनपद प्रतीत होता है। आज के वाराणसी जिले में तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में स्थित इस महाजनपद की राजधानी वाराणसी को, जो गंगा तथा गोमती के संगम पर स्थित है, भारत का सबसे मुख्य शहर

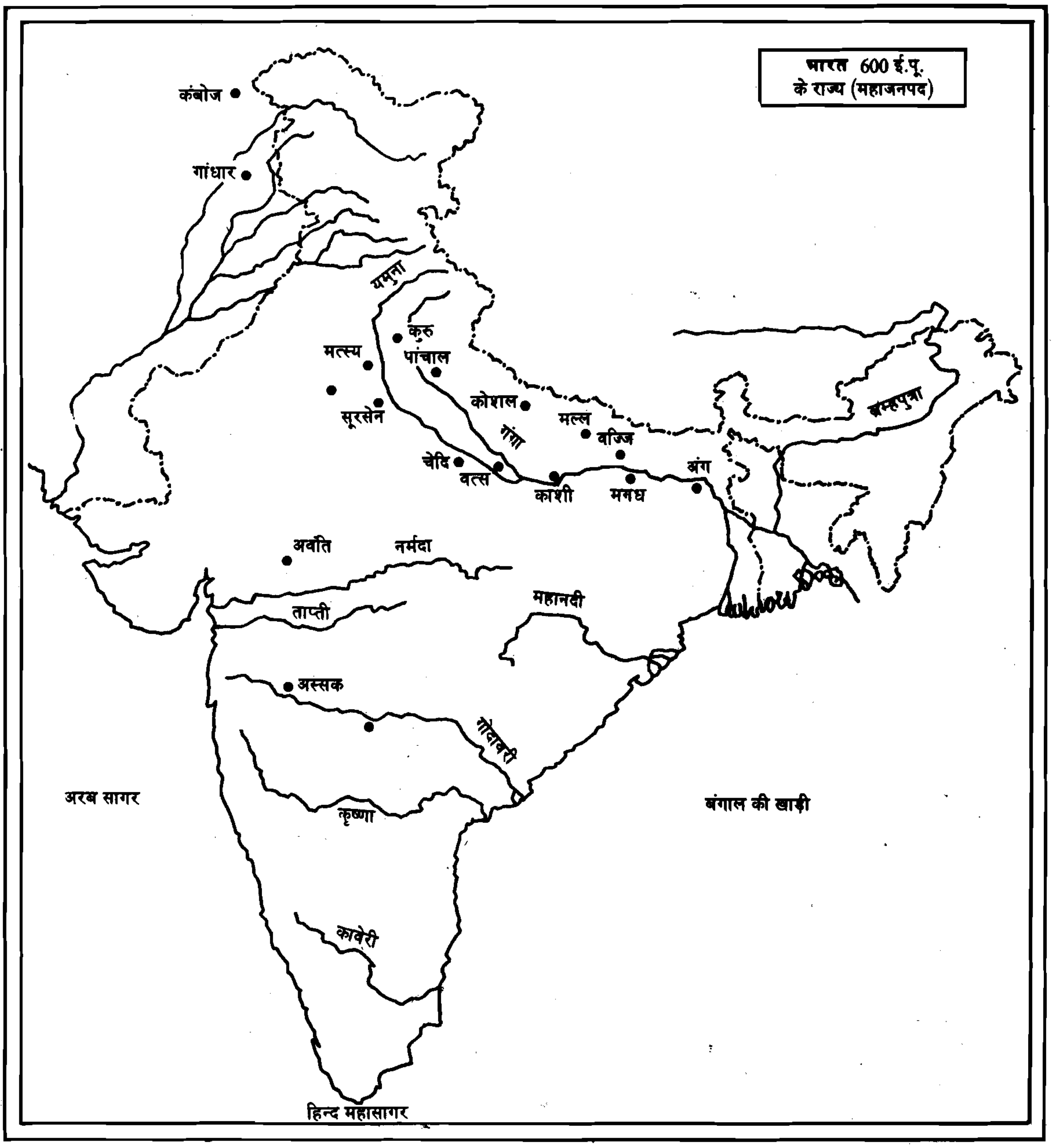

मानचित्र 1 महाजनपद

बताया गया है। यहां की भूमि अत्यधिक उपजाऊ थी। काशी सूती कपड़ों तथा घोड़ों के बाज़ार के लिए विख्यात था। बनारस के रूप में पहचाने गए राजघाट स्थान की खुदाई में छठी शताब्दी ईसा पूर्व में शहरीकरण के कोई प्रभावपूर्ण प्रमाण नहीं मिले हैं। एक मुख्य नगर के रूप में इसका उदय 450 ईसा पूर्व के आस-पास हुआ होगा। फिर भी बौद्ध भिक्षुओं के गेरूए वस्त्र जिन्हें संस्कृत में काशय कहा जाता था, काशी में बनाए जाते थे। इससे बुद्ध के समय में काशी के कपड़ा उत्पादक केन्द्र और बाज़ार के रूप में उदित होने का संकेत मिलता है। काशी के कई राजाओं द्वारा कौशल एवं अन्य राज्यों पर विजय प्राप्त करने के उल्लेख मिलते हैं। रुचिकर प्रसंग यह है कि राम की कहानी का प्रचीनतम वृतांत "दशरथ जातक" दशरथ, राम

आदि को अयोध्या के बजाए काशी का राजा उल्लिखित करता है। जैन सम्प्रदाय के तेइसवें गुरु पार्श्व के पिता (तीर्थकर) को बनारस का राजा बताया गया है। बुद्ध ने अपना पहला उपदेश बनारस के निकट सारनाथ में दिया। इस प्रकार, प्राचीन भारत के तीनों मुख्य धर्म अपना सम्बन्ध बनारस से जोड़ते हैं। लेकिन बुद्ध के काल तक कोशल ने काशी महाजनपद पर कब्ज़ा कर लिया था और काशी मगध एवं कोशल के बीच युद्ध का कारण बना हुआ था।

2) कोशल

कोशल महाजनपद पश्चिम में गोमती से घिरा हुआ था। इसके पूर्व में सदानिरा नदी बहती थी, जो इसे विदेह जनपद से अलग करती थी। इसके उत्तर में नेपाल की पहाड़ियां तथा दक्षिण में स्यानदिका नदी बहती थी। साहित्यिक प्रमाण बताते हैं कि कोशल का उदय कई छोटी-छोटी इकाइयों एवं वंशों के सामंजस्य से हुआ। उदाहरण के लिए हम जानते हैं कि कपिलवस्तु के शाक्य कौशल के नियंत्रण में थे। मज्झिम निकाय में बुद्ध स्वयं को कोशल का निवासी बताते हैं। इसके साथ ही यह भी माना जाता है कि कोशल के राजा विदुधान ने साक्यों को नष्ट कर दिया था। जिसका अर्थ यह हुआ कि साक्य वंश कोशल के नाममात्र नियंत्रण में था। नवोदित राजतंत्र ने केन्द्रीकृत नियंत्रण स्थापित करके साक्यों की स्वायत्तता नष्ट कर दी थी। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में मगध के शासकों में जिन राजाओं का उल्लेख है वे हिरण्यनाभ, महाकोशल, प्रसेनजित तथा सुद्धोदन है। इन राजाओं के बारे में अयोध्या, साकेत, कपिलवस्तु अथवा श्रावस्ती से शासन करने का अनुमान है। संभवत: छठी शताब्दी ईसा पूर्व के आरंभ में कोशल का नियंत्रण कई छोटे-छोटे कबीलायी सरदारों के हाथ में था जो छोटे-छोटे कस्बों में शासन करते थे। छठी शताब्दी ईसा पूर्व के अंतिम वर्षों में प्रसेनजित तथा विदुधान जैसे राजाओं ने सभी अन्य कबीलाई सरदारों को अपने नियंत्रण में कर लिया। वे श्रावस्ती से शासन करते थे। इस प्रकार तीन बड़े शहरों — अयोध्या, साकेत तथा श्रावस्ती — को अपने नियंत्रण में लेकर कोशल एक सम्पन्न राज्य हो गया। कोशल ने काशी तथा उसके क्षेत्र पर भी कब्जा कर लिया। कोशल के राजा ब्राह्मणवाद तथा बौद्ध मत, दोनों को प्रोत्साहन देते थे। राजा प्रसेनजित बुद्ध का समकालीन तथा मित्र था। परवर्ती चरण में कोशल उदीयमान मगध साम्राज्य का सबसे कट्टर शत्रु बन गया।

3) अंग

अंग में दक्षिण बिहार के भागलपुर तथा मुंगेर ज़िले शामिल थे। संभव है कि इसका विस्तार उत्तर की ओर कोसी नदी तक हुआ हो और इसमें पुर्णिया ज़िले के कुछ भाग भी जुड़ गए हों। यह मगध के पूर्व तथा राजमहल पहाड़ियों के पश्चिम में स्थित था। अंग की राजधानी चम्पा थी। यह गंगा तथा चम्पा नदी के संगम पर स्थित थी। चम्पा छठी शताब्दी ईसा पूर्व के छ: महान नगरों में से एक था। यह अपने व्यापार एवं वाणिज्य के लिए विख्यात था तथा व्यापारी यहां से सुदूर पूर्व गंगा पार करके जाते थे। छठी शताब्दी ईसा पूर्व के मध्य में अंग को मगध ने हड़प लिया। भागलपुर के निकट चम्पा में खुदाई के दौरान उत्तरी काले पॉलिश (NBPW) किए मृद्भांड भारी मात्रा में मिले हैं।

4) मगध

मगध दक्षिणी बिहार में पटना तथा गया के निकटवर्ती क्षेत्रों में स्थित था। इसके उत्तर तथा पश्चिम में क्रमश: सोन तथा गंगा नदियां थीं। पूर्व में यह छोटा नागपुर के पठार तक फैला हुआ था। इसके पूर्व की ओर चम्पा नदी बहती थी, जो इसे अंग से अलग करती थी। इसकी राजधानी गिरिव्रज अथवा राजगृह कहलाती थी। राजगृह पांच पहाड़ियों से घिरा अभेद्य शहर था। राजगृह की दीवारें भारत के इतिहास में किलेबंदी का प्राचीनतम उदाहरण है। पांचवी शताब्दी ईसा पूर्व के आस-पास राजधानी पाटलिपुत्र स्थानांतरित कर दी गई। इन पर आरंभिक मगध राजाओं की शक्ति की छाप है। ब्राह्मणीय ग्रंथों में मगध की जनता को मिश्रित तथा हीन श्रेणी का बताया गया है। इसका कारण संभवत: यह है कि पूर्व ऐतिहासिक युग में यहां के निवासी वर्ण व्यवस्था तथा ब्राह्मणीय अनुष्ठान के अनुयायी नहीं थे। इसके विपरीत, इस क्षेत्र में बौद्ध मत का काफी महत्व था। बुद्ध को ज्ञान की प्राप्ति इसी क्षेत्र में हुई। राजगृह बुद्ध के प्रिय पड़ाव स्थलों में से एक था। मगध के राजा बिम्बिसार तथा अजातशत्रु उनके मित्र तथा शिष्य थे। तराई चावल की खेती के लिए उपयुक्त उपजाऊ खेतिहर ज़मीन, दक्षिणी बिहार में

कच्चे लोहे के भंडारों पर नियंत्रण तथा अपेक्षाकृत खुली सामाजिक व्यवस्था की पृष्ठभूमि में मगध उत्तरकालीन इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण राज्य के रूप में प्रकट होता है। गंगा, गंडक तथा सोन नदी के व्यापार मार्गों पर इसके नियंत्रण के कारण इसे काफी राजस्व प्राप्त हो जाता था। कहा जाता है कि मगध के राजा बिम्बिसार ने 80,000 गांवों के गामिनियों की एक सभा बुलाई थी। हो सकता है कि संख्या बढ़ा-चढ़ाकर बताई गई हो, लेकिन इससे यह पता लगता है कि बिम्बिसार के प्रशासन में गांव संगठन की इकाई के रूप में उभर आए थे। गामिनी उसके नातेदार नहीं बल्कि गांवों के मुखिया तथा प्रतिनिधि थे। इस प्रकार उसकी शक्ति उसके संबंधियों की कृपा पर आधारित नहीं थी। अजातशत्रु ने सिंहासन पर कब्ज़ा करके उसे यातना देकर मार डाला। वज्जि तथा वैशाली पर मगध के नियंत्रण का विस्तार होने के साथ एक साम्राज्य के रूप में मगध की सम्पन्नता बढ़ती गई। इसकी परिणति चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में मौर्य साम्राज्य के रूप में हुई।

5) वज्जि

बिहार के वैशाली ज़िले के आस-पास बसा वज्जि (जिसका शाब्दिक अर्थ पशु-पालक समुदाय है) गंगा के उत्तर में स्थित था। यह महाजनपद उत्तर में नेपाल की पहाड़ियों तक फैला हुआ था। गंडक नदी इसे कोशल से अलग करती थी। पूर्व उल्लेखित महाजनपदों के विपरीत वज्जियों का राजनैतिक संगठन भिन्न था। समकालीन ग्रंथों में उन्हें गणसंघ कहा जाता था जिसकी व्याख्या गणतंत्र या कुलतंत्रीय राज्य के रूप में की गई है। इस युग के गणसंघ किसी एक सर्वशक्तिमान राजा द्वारा शासन का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे बल्कि यह शासन क्षत्रिय सरदारों द्वारा संयुक्त रूप से होता था। यह शासक वर्ग, जिसके सदस्य राजा कहे जाते थे, अब गैर-क्षत्रिय समूहों से पृथक हो गए।

वज्जि आठ कबीलों के संगठन का प्रतीक थे, जिनमें विदेह, लिच्छवी, ज्ञात्रक मुख्य हैं। विदेहों की राजधानी मिथिला थी। इसे नेपाल का आधुनिक जनकपुर माना जाता है। यद्यपि रामायण में इसे राजा जनक के साथ जोड़ा गया है, बौद्ध स्रोतों में इसे कबीलायी परंपरा से जोड़ा गया है।

प्राचीन भारतीय गणसंघों में सर्वाधिक विख्यात, लिच्छवियों की राजधानी वैशाली थी। वैशाली के एक विशाल एवं सम्पन्न शहर होने का अनुमान है। एक अन्य कबीले के रूप में ज्ञात्रक वैशाली के उपनगरों की बस्तियों में रहते थे। इसी कबीले में जैन गुरु महावीर का जन्म हुआ। संगठन के अन्य समुदाय उग्र, भोग, कौरव तथा ऐक्ष्वाक थे। वैशाली संभवत: पूरे संगठन का केन्द्र था। वे अपने मामले आपसी सभाओं में तय करते थे। एक जातक कथा के अनुसार वज्जियों पर अनेक वंशों के सरदार शासन करते थे। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में यह महाजनपद एक महत्वपूर्ण शक्ति बना हुआ था। लेकिन इनके पास न तो सेना थी और न ही इनके पास कृषि राजस्व प्राप्त करने की कोई व्यवस्था थी। माना जाता है कि मगध के राजा अजातशत्रु ने इस संगठन को नष्ट कर दिया था। अपने मंत्री वस्सकार की सहायता से उसने वंश के सरदारों में बैर का बीज बोया और उसके बाद लिच्छिवियों पर आक्रमण कर दिया।

6) मल्ल

प्राचीन ग्रंथों में उल्लेखित मल्ल एक अन्य क्षत्रिय वंश थे। इस वंश की विभिन्न शाखाएं थीं, जिनमें से दो का मूल स्थान पावा तथा कुशीनगर था। कुशीनगर उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में कसिया क्षेत्र को माना गया है। पावा के क्षेत्र के संबंध में विद्वानों में मतभेद हैं। मल्ल का क्षेत्र साक्य क्षेत्र के दक्षिण पूर्व तथा पूर्व की ओर स्थित था। अनुमान है कि मल्लों पर पांच हज़ार कबीलायी सरदारों का शासन रहा होगा। बुद्ध की मृत्यु कुशीनगर के निकट हुई और मल्लों ने ही उनका अंतिम संस्कार किया।

7) चेदि

चेदि क्षेत्र आधुनिक बुंदेलखंड के पूर्वी भागों के आस-पास था। संभव है इसका विस्तार मालवा पठार तक हो गया हो। कृष्ण का प्रसिद्ध शत्रु शिशुपाल चेदियों का शासक था। महाभारत के अनुसार, चेदि चंबल के पार मत्स्य, बनारस के काशियों तथा सोन नदी की घाटी में करूषों के निकट सम्पर्क में थे। इसकी राजधानी सोथीवती (सुक्तिमति) संभवत: उत्तर प्रदेश के बांदा ज़िले में स्थित थी। इस क्षेत्र के अन्य मुख्य नगर सहजाति एवं त्रिपुरी थे।

8) वत्स

वत्स, जिसकी राजधानी कोशाम्बी थी, छठी शताब्दी ईसा पूर्व का सबसे शक्तिशाली केन्द्र था। इलाहाबाद के निकट यमुना के तट पर बसा कोशाम्बी आधुनिक कोसम के रूप में जाना जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि वत्स आधुनिक इलाहाबाद के आस-पास बसे होंगे। पुराणों के अनुसार, पांडवों के वंशज निचक्षु ने हस्तिनापुर की बाढ़ में बह जाने के बाद अपनी राजधानी कोशाम्बी में बना ली। नाटककार भास ने अपने नाटकों के द्वारा वत्सों के एक राजा, उदयन को अमर बना दिया। यह नाटक उदयन तथा अवंति की राजकुमारी वासवदत्ता के बीच प्रेम संबंध की कहानी पर आधारित है। इनमें मगध, वत्स और अवंती जैसे शक्तिशाली राज्यों के बीच टकराव का भी उल्लेख मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन संघर्षों में वत्स की पराजय हुई क्योंकि बाद के ग्रंथों में वत्स को अधिक महत्व नहीं दिया गया।

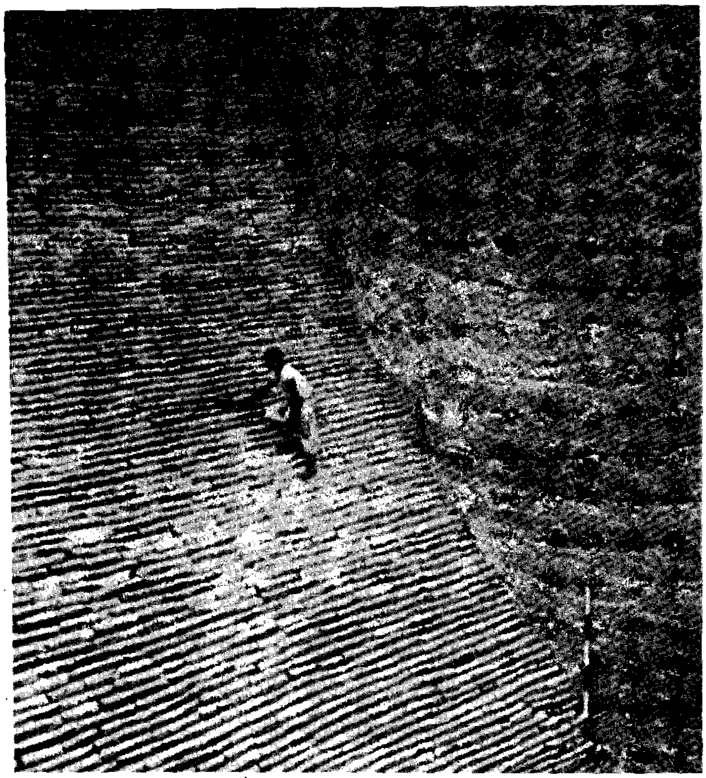

चित्र 1 पक्की ईंटों की किलेबन्दी (कोसाम्बि)

9) कुरू

ऐसा विश्वास है कि कुरू के राजा युधिष्ठिर के परिवार से संबंध रखते थे। वे दिल्ली-मेरठ के आस-पास स्थित थे। अर्थशास्त्र तथा अन्य ग्रंथों में उन्हें राजशब्दोपजिविनह अर्थात् राजा की पदवी रखने वालों की संज्ञा दी गई है। इससे कबीलायी वंशों की विसरित संरचना की ओर संकेत मिलता है। क्षेत्र में इनके सम्पूर्ण एकाधिकार की अनुपस्थिति के प्रमाण इसी क्षेत्र में कई राजनैतिक केन्द्रों के उल्लेख से भी मिलते हैं। हस्तिनापुर, इन्द्रप्रस्थ, इशुकर में से प्रत्येक कुरूओं की राजधानी के रूप में उल्लेखित किए गए हैं। इनमें से प्रत्येक का अपना शासक था।

हम कुरुओं के विषय में महाकाव्य महाभारत के द्वारा परिचित हैं। यह पाण्डवों तथा कौरवों के बीच उत्तराधिकार के युद्ध की गाथा है। प्रेम, युद्ध, षडयंत्र, घृणा तथा मानवीय अस्तित्व के बृहत दार्शनिक मुद्दों पर अपने उत्कृष्ट विवरणों के कारण यह महाकाव्य पीढ़ियों से भारतीय जन-साधारण को रोमांचित करता रहा है। इतिहासकार इस महाकाव्य को घटनाओं के वास्तविक विवरण के बजाय एक साहित्यिक महाकाव्य के रूप में देखते हैं। बड़े पैमाने पर युद्ध महाजनपदों के उदय के बाद ही आरंभ हुए। इससे पूर्व के चरण में यह केवल मवेशी हांक ले जाने तक सीमित था। महाभारत में यूनानियों का भी उल्लेख है जोकि भारत के सम्पर्क में

पांचवी शताब्दी ईसा पूर्व के बाद ही आए। अत: यूनानियों के साथ युद्ध की संभावना केवल प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में ही हो सकती थी।

संभवत: महाभारत की कहानी दो क्षत्रिय वंशों के आपसी युद्ध की कहानी है, जोकि भाटों की गायन परंपरा का एक हिस्सा बन गयी। आरंभिक ऐतिहासिक युग की शुरुआत के साथ महाजनपदों में आपस में सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक सम्पर्क बढ़ा। भाटों तथा ब्राह्मणों ने भारत के प्रत्येक क्षेत्र को महाभारत की कथा में शामिल कर लिया। इससे राजे-रजवाड़े यह सोचकर गर्व का अनुभव कर सकते थे कि उनके पूर्वज महाभारत युद्ध में लड़े थे। इस प्रकार यह महाकाव्य ब्राह्मणीय धार्मिक व्यवस्था के विस्तार का साधन बन गया। इसका प्रमाण इस तथ्य से मिलता है कि महाभारत के प्राक्कथन में कहा गया है कि 24,000 छन्द वाला एक पूर्व मूल पाठ अभी भी सामयिक है, जबकि वर्तमान महाकाव्य में एक लाख छन्द हैं।

10) पांचाल

पांचाल महाजनपद रूहेलखंड तथा मध्य दोआब के कुछ भागों (मोटे तौर पर बरेली, पीलीभीत, बदायूँ, बुलंदशहर, अलीगढ़ आदि) पर स्थित था। प्राचीन ग्रंथों में पंचालों के दो वंशों: उत्तर पांचाल तथा दक्षिणी पांचाल, जिन्हें भगीरथी नदी पृथक करती थी, का उल्लेख मिलता है। उत्तरी पांचालों की राजधानी उत्तर प्रदेश के बरेली ज़िले में अहिक्षत्र में स्थित थी। दक्षिणी पांचालों की राजधानी कांपिल्य थी। संभवत: वे कुरुओं से निकट संपर्क रखते थे। यद्यपि एक या दो पांचाल शासकों का उल्लेख मिलता है, लेकिन हमारे पास उनके विषय में बहुत कम जानकारी है। वे भी संघ कहे जाते थे। छठी शताब्दी तक वे लुप्त हो चुके थे।

11) मत्स्य

मत्स्य राजस्थान के जयपुर-भरतपुर-अलवर क्षेत्र में स्थित थे। उनकी राजधानी विराट नगर थी, जोकि पांडवों के छिपने के स्थान के रूप में विख्यात है। यह क्षेत्र पशु-पालन के लिए उपयुक्त था। इसीलिए महाभारत कथा में जब कौरवों ने विराट पर आक्रमण किया तो वे मवेशियों को हांक कर ले गए। स्वाभाविक है कि स्थायी कृषि पर आधारित शक्तियों से मत्स्य मुकाबला न कर सके। मगध साम्राज्य ने इसे अपने साम्राज्य में मिला लिया। अशोक के कुछ सर्वाधिक विख्यात आदेश-पत्र प्राचीन विराट, बैरात (ज़िला जयपुर) में पाए गए हैं।

12) सुरसेन

सुरसेनों की राजधानी यमुना तट पर मथुरा में थी। महाभारत और पुराण में मथुरा के शासक वंश को यदु कहा गया है। यादव वंश कई छोटे-छोटे वंशों जैसे अंधक, वृष्णि, महाभोज आदि में बंटा हुआ था। इनकी राज व्यवस्था भी संघ व्यवस्था थी। महाकाव्यीय नायक कृष्ण इन्हीं शासक परिवारों से संबंधित है। मथुरा दो विख्यात प्राचीन भारतीय व्यापार मार्ग — उत्तर पथ तथा दक्षिण पथ के बीच में स्थित था। इसका कारण यह था कि मथुरा स्थायी कृषि वाले गांगेय मैदानों और विकीर्ण जनसंख्या वाले चारागाहों, जो मालवा पठार तक पहुंचते थे, के अंतर्वती क्षेत्रों के बीच स्थित था। इसीलिए मथुरा एक महत्वपूर्ण नगर बन गया। लेकिन खंडित राजनैतिक संरचना तथा प्राकृतिक विभिन्नताओं के कारण इस क्षेत्र के शासक इसे शक्तिशाली राज्य न बना सके।

13) अस्सक

अस्सक महाराष्ट्र में आधुनिक पैठान के निकट गोदावरी के तट पर फैले हुए थे। पैठान को अस्सकों की राजधानी, प्राचीन प्रतिष्ठान माना जाता है। दक्षिण पथ प्रतिष्ठान को उत्तरी शहरों से जोड़ता था। अस्सकों के राजाओं के अस्पष्ट उल्लेख अवश्य मिलते हैं। किन्तु अभी तक हमारे पास इस क्षेत्र की जानकारी काफी सीमित है।

14) अवंति

अवंति छठी शताब्दी ईसा पूर्व के सबसे शक्तिशाली महाजनपदों में से एक था। इस राज्य का मुख्य क्षेत्र मोटे तौर पर मध्य प्रदेश के उज्जैन ज़िले से लेकर नर्मदा नदी तक फैला हुआ था। इस राज्य में एक अन्य महत्वपूर्ण नगर महिस्मति था जिसे अक्सर इसकी राजधानी के रूप में

माना जाता है। अवंति क्षेत्र में कई छोटे बड़े कस्बों का उल्लेख मिलता है। पुराणों में अवंति की आधारशिला रखने का श्रेय यदुओं के हैहय वंश को दिया गया है। कृषि के लिए उपजाऊ भूमि पर स्थित होने तथा दक्षिणी ओर होने वाले व्यापार पर नियंत्रण होने के फलस्वरूप यदुओं ने यहां एक केन्द्रीकृत राज्य की स्थापना कर ली। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में एक शक्तिशाली राजा प्रद्योत अवंति का शासक था। संभवत: उसने वत्स पर विजय प्राप्त की थी। यही नहीं, अजातशत्रु भी उससे भय खाता था।

15) गांधार

गांधार भारत के उत्तर पश्चिम में काबुल और रावलपिंडी के मध्य का क्षेत्र था। संभव है कि इसमें कश्मीर का भी कुछ भाग रहा हो। यद्यपि वैदिक युग में यह एक महत्वपूर्ण क्षेत्र था, किन्तु ब्राह्मणीय और बौद्ध परंपरा के उत्तरकालीन चरणों में इसके महत्व में कमी आयी। इसकी राजधानी तक्षशिला एक महत्वपूर्ण शहर था, जहां सभी जनपदों के लोग शिक्षा तथा व्यापार के उद्देश्य से जाते थे। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में गांधार पर पुक्कसती नामक राजा शासन कर रहा था। वह बिम्बिसार का मित्र था। छठी शताब्दी ईसा पूर्व के उत्तरार्ध में गांधार पर फारस ने विजय प्राप्त कर ली। आधुनिक तक्षशिला की खुदाई से पता चलता है कि इस स्थान पर 1000 ईसा पूर्व में ही लोग बस चुके थे और बाद के दिनों में नगरों का उदय हुआ। छठी शताब्दी ईसा पूर्व तक आते-आते गांगेय घाटी के शहरों के समरूप यहां भी एक शहर का उदय हुआ।

16) कंबोज

कंबोज गांधार के निकट, संभवत: आज के पुंच क्षेत्र में स्थित था। सातवीं शताब्दी ईसा पूर्व में ही कंबोजों को ब्राह्मणीय ग्रंथों में असभ्य लोगों की संज्ञा दी गई थी। अर्थशास्त्र में इन्हें वर्त्सशास्त्रपजीविन संघ, अर्थात् कृषकों, चरवाहों, व्यापारियों तथा योद्धाओं का संगठन कहा गया है।

बोध प्रश्न 3

1) शासकों को उनसे संबंधित महाजनपद्रों के क्रम में रखिए:

i) अजातशत्रु	अ) कोशल
ii) प्रद्योत	ब) मगध
iii) उदयन	स) अवंति
iv) प्रसेनजित	द) वत्स

2) महाजनपदों को उनसे संबंधित राजधानी के क्रम में रखिए:

i) काशी	अ) वैशाली
ii) अंग	ब) वाराणसी
iii) वज्जि	स) कोशाम्बी
iv) वत्स	द) चम्पा

14.8 सारांश

हमने छठी शताब्दी ईसा पूर्व के भारत में विद्यमान राजनैतिक परिस्थितियों की समीक्षा की। नए सामाजिक-राजनैतिक विकासों से गुज़र रहे क्षेत्रों के रूप में उदित हुए महाजनपद विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्रों में स्थित थे। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि ये सात महाजनपद — अंग, मगध, वज्जि, मल्ल, काशी, कोशल तथा वत्स-मध्य गांगेय घाटी में स्थित थे। यह चावल

उत्पादन का क्षेत्र है, जबकि ऊपरी गांगेय घाटी गेंहू उत्पादक क्षेत्र है। ऐसा महसूस किया गया है कि भारत में परंपरागत कृषि प्रणाली में चावल की उपज गेंहू की उपज से अधिक रही है। चावल उत्पादक क्षेत्रों में जनसंख्या का घनत्व भी अधिक रहा है। इसके अतिरिक्त मगध जैसे महाजनपदों के पास धातु जैसे महत्वपूर्ण साधन भी मौजूद थे। इन तथ्यों को मध्य गांगेय घाटी के राजनैतिक-आर्थिक शक्ति के केन्द्र बनने का कारण माना जा सकता है। इस क्षेत्र में कई महाजनपदों के एक-दूसरे के निकटस्थ होने से यह भी संभावना बराबर बनी रहती थी कि कोई महत्वाकांक्षी शासक सम्पन्न पड़ोसी क्षेत्र को हड़पने का प्रयास कर सकता था। साथ ही पड़ोसी क्षेत्र पर नियंत्रण बनाए रखना भी आसान था। पंजाब और मालवा के महाजनपदों के शासकों को सम्पन्न क्षेत्रों में पहुंचने के पूर्व रिक्त भौगोलिक क्षेत्रों को पार करना पड़ा होगा। इस प्रकार मध्य गांगेय घाटी के शासकों को अपनी शक्ति सुदृढ़ बनाने में सपाट मैदानी भूमाग तथा घनी बस्तियों ने भी काफी सहायता की। फिर यह स्वाभाविक ही है कि इस क्षेत्र की शक्ति, मगध, बाद के काल में सबसे शक्तिशाली साम्राज्य के रूप में उभरा।

14.9 शब्दावली

असनातनी सम्प्रदाय — छठी शताब्दी ईसा पूर्व के दौरान उभरा धार्मिक आंदोलन जिसने वैदिक धर्म को चुनौती दी।

शहरी बस्तियां — वे स्थान जहां की काफी बड़ी जनसंख्या खाद्योत्पादन न करके अन्य गतिविधियों से जुड़ी होती हैं।

पाली — मगध तथा कौशल के क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा। बौद्ध साहित्य इसी भाषा में रचा गया है।

प्राकृत — अशोक के काल में मगध में बोली जाने वाली भाषा। ऐतिहासिक भारत में प्रथम लिखित सामग्री इसी भाषा में मिली है।

पोरिस — बौद्ध साहित्य में नीची जाति के लिए प्रयोग किया जाने वाला एक शब्द।

14.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आप अपने उत्तर में यह दर्शाइए कि विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्रों के प्रति साहित्यिक उल्लेख किस प्रकार पुरातत्वशास्त्रियों को उस युग के नगरों की खुदाई में सहायता करते हैं।

   भाग 14.3 देखिए।

2) भाग 14.5 देखिए।

3) i) × ii) ×
   iii) ✓ iv) ×

बोध प्रश्न 2

1) एक इतिहासकार के रूप में आपको:
   अ) व्यापारियों तथा असनातनी सम्प्रदायों जैसे नए समूहों के उदय,
   ब) नई बस्तियों के उदय; तथा
   स) जन-साधारण द्वारा की गई लम्बी यात्राओं का उल्लेख करना चाहिए।

2) उपभाग 14.6.3 में दिए गए उदाहरण को देखिए।

बोध प्रश्न 3

1) i) ब)
   ii) स)
   iii) द)
   iv) अ)

2) i) ब)
   ii) द)
   iii) अ)
   iv) स)

इकाई 15 नगरीय केन्द्रों का उदय

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 नगर केन्द्र क्या है ?
15.3 छठी शताब्दी ई. पू. की पृष्ठभूमि
15.4 छठी शताब्दी ई. पू. के नगर
- 15.4.1 साहित्य में नगरों तथा कस्बों के प्रकार
- 15.4.2 प्राचीन भारत में नगर की छवि
- 15.4.3 नगर का भ्रमण
- 15.4.4 विनिमय की वस्तुएँ

15.5 पुरातात्विक साक्ष्यों के अनुसार नगर
15.6 सारांश
15.7 शब्दावली
15.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

15.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- एक शहर के वास्तविक अर्थ तथा ग्रामीण केन्द्रों से इसकी भिन्नता को समझ सकेंगे,
- उन मुख्य कारणों को जान सकेंगे जिनसे छठी शताब्दी ई. पू. के दौरान नगरीकरण हुआ,
- यह जानकारी प्राप्त कर सकेंगे कि उस समय किस प्रकार के नगर अस्तित्व में थे, और
- छठी शताब्दी ई. पू. में नगरीय जीवन की बहुत-सी विशेषताओं को समझ सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

छठी शताब्दी ई. पू. से प्रारम्भ होने वाले काल में भारतवर्ष में दूसरी बार नगरों का उदय हुआ। यह नगरीकरण इस दृष्टि से महत्वपूर्ण था कि काफी लम्बे समय तक यह नगरीय व्यवस्था रही और इसी काल में साहित्य की लेखन परम्पराओं का प्रारम्भ हुआ। जैन तथा हिन्दू धर्म के कई मतों में इस परम्परा का समावेश हुआ है तथा उपरोक्त धार्मिक वर्गों के लोग इस काल से अपने धर्मों की स्थापना का काल मानते हैं। तत्कालीन साहित्य में राजग्रह, श्रावस्ती, काशी आदि नगरों के बहुत से उद्धरण मिलते हैं। बुद्ध एवं महावीर ने अधिकांशतया नगर के लोगों को ही सम्बोधित किया।

सिंधु घाटी के नगरों की समाप्ति के पश्चात् खेतिहर और घुमक्कड़ समुदाय भारत के मैदानों में बस गए। साधारण घरों वाली छोटी ग्रामीण बस्तियां हर तरफ देखी जा सकती थी। यह सब राजाओं और व्यापारियों के प्रभुत्व और बाज़ार स्थलों के कोलाहल एवं कलकल से मुक्त थीं। आपने राजा हरिश्चन्द्र का नाम तो सुना ही होगा जो अपनी सत्यनिष्ठा तथा वचनबद्धता के लिए प्रसिद्ध हैं। हम यहां पर उनकी प्रारंभिक कहानी का वर्णन कर रहे हैं जिसको ऐतरय ब्राह्मण ग्रंथ से लिया गया है। इस ग्रंथ का समय मोटे तौर पर आठवीं सदी से नवीं सदी ई. पू. के बीच का माना जा सकता है।

कहानी इस प्रकार चलती है, — राजा हरिश्चन्द्र के कोई पुत्र नहीं था। वह भगवान वरूण के पास गए और प्रार्थना की, "अगर मेरे पुत्र की उत्पत्ति हो तो उसकी बलि मैं आपको दूंगा।"

उनके यहां रोहित नाम के पुत्र का जन्म हुआ। वरूण ने उसकी बलि की मांग की। राजा ने बहुत से बहाने बनाये और बलि को टालते रहे। जब रोहित बड़ा हुआ तो हरिश्चन्द्र ने उसको बतलाया, "ओ मेरे प्रिय पुत्र, वरूण भगवान ने तुमको मुझे प्रदान किया है। इसलिए उनको मैं तुम्हारी बलि दूंगा।" "नहीं", उसने कहा और अपना धनुष लेकर वह जंगल को चला गया और एक वर्ष तक वह जंगल में घूमता रहा।

वरूण क्रोधित हो गया और हरिश्चन्द्र को दण्डित करने के लिए जलोदर रोग का अभिशाप दे दिया। रोहित ने जब यह सुना तो उसने जंगल से गांव वापस जाने का निश्चय किया। उसने छ: बार गांव को वापस आने का प्रयास किया परन्तु इन्द्र ने उस पर दबाव डालकर उसको हर बार जंगल वापस जाने के लिए बाध्य किया।

सातवें वर्ष उसने सुनहसेप नाम के ब्राह्मण लड़के को उसके पिता से सौ सिक्कों में खरीद लिया। इसके पश्चात् वह हरिश्चन्द्र के गांव वापस लौट आया जहां पर सुनहसेप की भगवान वरूण के लिए बलि दी जाने वाली थी। जब सुनहसेप की बलि दी जाने वाली थी तो उसने कुछ मन्त्रों का उच्चारण किया जिससे वरूण अति प्रसन्न हुए और उसको बचा लिया गया। राजा का जलोदर रोग भी समाप्त हो गया। नगरीकरण के इतिहासकार के लिए इस कहानी का यह महत्व है कि राजा हरिश्चन्द्र किसी नगर में नहीं रहते थे, न किसी छोटे कस्बे में बल्कि वह एक ऐसे गांव में रहते थे जो जंगल के समीप था। छठी शताब्दी ई. पू. आते-आते इस सब में काफी परिवर्तन हुआ। आप इकाई- 14 में पहले ही पढ़ चुके हैं कि राजशाही महाजनपदों के राजा एवं गण-संघों के क्षत्रिय मुखिया कोशाम्बी, चम्पा, श्रावस्ती, राजगृह और वैशाली जैसे नगरों में रहते थे। इस समय तक केवल बड़े नगर ही अस्तित्व में नहीं आए थे, किन्तु कृषि पर आधारित गांव के साथ-साथ बाज़ार केन्द्र, छोटे कस्बे, बड़े कस्बे और अन्य प्रकार की बस्तियां भी अस्तित्व में आ चुकी थी।

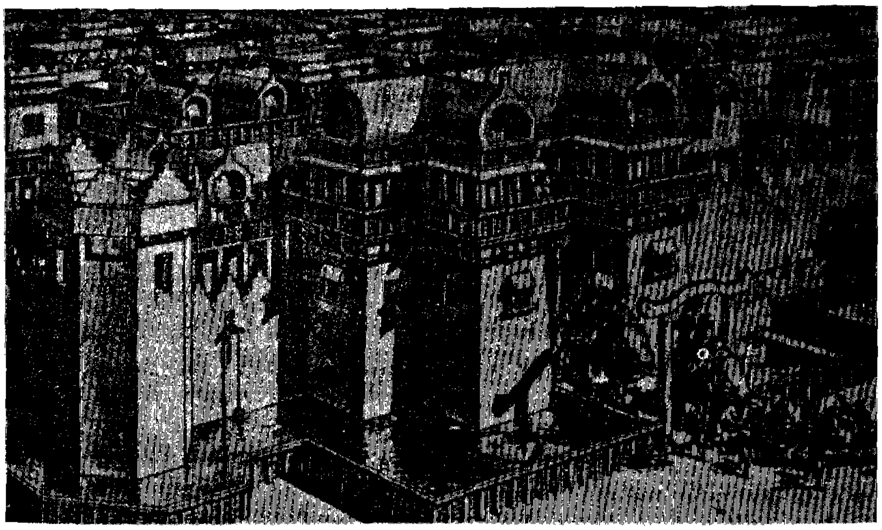

चित्र 2 प्राचीन भारत के नगर की चित्रकार की परिकल्पना

15.2 नगर केन्द्र क्या है ?

नगर केन्द्र को परिभाषित करने का प्रयास बहुत से विद्वानों ने किया है। वैसे तो किसी नगर केन्द्र को परिभाषित करना काफी सरल कार्य लगता है। लेकिन जब हम यह काम शुरू करते हैं तो यह प्रश्न काफी जटिल हो जाता है। जैसा कि कुछ विद्वानों का विश्वास है कि घनी आबादी होना नगर केन्द्र का एक लक्षण है। तथापि हम देखते हैं कि कुछ भारतीय आधुनिक गांवों की आबादी आस्ट्रेलिया के कुछ नगरों से भी अधिक है। इसी प्रकार, कुछ विद्वानों का तर्क है कि नगर केन्द्रों का आकार गांवों से बड़ा होता है। फिर भी, नगरों के आकार स्तर को निश्चित करना कठिन है। हम जानते हैं कि आधुनिक गांवों का आकार हड़प्पाकालीन

कालीबंगन जैसे नगरों से काफी अधिक है। इस प्रकार,-लोगों की संख्या या बस्ती के आकार को नगर या गांव केन्द्र को परिभाषित करने के लिए विश्वसनीय आधार नहीं माना जा सकता है। इसलिए उन कार्यों की विशेषताओं की पहचान करना महत्वपूर्ण है जिनको वे पूरा कर रहे हैं। गांव में अधिकतर लोग खाद्य उत्पादन के काम में लगे हुए होते हैं। इसलिए गांवों की सामाजिक व्यवस्था पर किसानों व खेतों की प्रधानता होती है। दूसरी ओर, नगरों में शासनकर्त्ताओं या पुजारियों या व्यापारियों की प्रधानता होती है। यह संभव है कि नगर में भी बहुत से लोग कृषि से संबंधित कार्यों में संलग्न हो। परन्तु नगर को परिभाषित करने के लिए कृषि के अतिरिक्त गतिविधियों का होना आवश्यक है।

हम उदाहरणार्थ बनारस को लेते हैं जो भारत के जीवित प्राचीनतम नगरों में से एक है। इसकी प्रसिद्दि अच्छी किस्म का चावल उत्पादन करने के कारण नहीं परन्तु एक बहुत महत्वपूर्ण तीर्थ केन्द्र होने के कारण है। बनारस सम्पूर्ण भारत के तीर्थ यात्रियों को आकर्षित करता था। ये तीर्थ यात्री मन्दिर में देवी देवताओं पर विभिन्न प्रकार के उपहार चढ़ाते थे। इस तरह से जो लोग मंदिरों के स्वामी थे वे सारे देश से आने वाले तीर्थ यात्रियों के संसाधनों को प्राप्त करने में सक्षम थे। नगर केन्द्र की दूसरी विशेषता यह है कि अपने साथ-साथ यह अपने प्रभाव क्षेत्र के अंतर्गत आने वाली अधिकतर जनसंख्या के संबंध में भी काम करता है। इस प्रकार नगर अपनी भौतिक सीमा के बाहर रहने वाले लोगों को भी प्रशासनिक, आर्थिक और धार्मिक सेवाएं उपलब्ध करा सकता है। प्रभाव क्षेत्र की जनसंख्या के साथ यह सम्बद्धता नगर केन्द्र के लिए लाभदायक है। इसका अर्थ यह है कि शहर के निवासी प्रभाव क्षेत्र में रहने वाले लोगों के संसाधनों का प्रयोग करने में सक्षम हैं। इस कार्य को वस्तु कर या नज़राना वसूल करके किया जा सकता है। नगर में रहने वाला व्यापारी धातुओं, खनिजों और विलासिता की वस्तुओं की आपूर्ति को नियंत्रित करके ग्रामीण क्षेत्रों के संसाधनों के एक हिस्से को हड़प करने में (विनियोग करने में) सक्षम है। इसका तात्पर्य यह है कि शहरों में रहने वाले राजाओं, पुजारियों तथा व्यापारी वर्गों के पास साधारण आदमी की तुलना में अधिक धन है। ये वर्ग अपने धन का उपयोग अधिक धन, सम्मान एवं ताकत प्राप्त करने में करते हैं। अब, प्रत्येक समाज में धनी व ताकतवर लोगों के दिखावट के अपने-अपने तरीके होते हैं। कुछ समाजों में सम्पन्न लोग बड़े-बड़े महल बनाते हैं तो कुछ सुन्दर मन्दिर बनाते हैं और कुछ महाबलि यज्ञों का आयोजन करते हैं। अन्य लोगों की रुचि मूल्यवान धातुओं व पत्थरों को रखने में होती है।

राजाओं, पुजारियों और व्यापारियों तथा किसानों के अलावा नगरों में दस्तकार और कारीगर भी रहते हैं जो नगर के लिए विलासिता की चीज़ों एवं शहर से बाहर के लोगों के लिए आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। इन कारीगरों को शहर के सम्पन्न लोगों की भांति विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होते। उदाहरण के लिए, व्यापारी और प्रशासक काफी धनी हो सकते हैं परन्तु लुहार, राजगीर या बढ़ई गरीब ही होंगे। इस प्रकार, धनी और गरीब, दोनों की उपस्थिति नगर की एक विशेषता है।

> हम कह सकते हैं कि नगर उन स्थलों को कहा जा सकता है जहां पर आबादी का महत्वपूर्ण वर्ग खाद्य उत्पादन के अतिरिक्त अन्य दूसरी गतिविधियों में संलग्न है।

इस प्रकार की विभिन्न सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों के कारण उन लोगों में उचित तालमेल करने में कठिनाई होती है जो लोग इन गतिविधियों में व्यस्त हैं। उदाहरण के लिए, लुहार को किसान से अनाज की आवश्यकता होगी या व्यापारी को अपना माल एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र को ले जाने में लुटेरों से सुरक्षा की आवश्यकता होगी। ऐसी स्थिति में जहां प्रत्येक समूह दूसरे समूह के बिना जीवित नहीं रह सकता वहां उनकी गतिविधियों में तालमेल रखने के लिए एक केन्द्रीकृत संगठन की आवश्यकता होती है। गरीब व धनी के बीच शत्रुता पर नियंत्रण करने की आवश्यकता और नगर के उपभोग के लिए कृषि उत्पाद को गतिशील बनाने की आवश्यकता ने केन्द्रीकृत शक्ति की उत्पत्ति की संभावनाओं को पैदा किया। केन्द्रीकृत निर्णय लेने वाले गुटों की उत्पत्ति लगभग उसी समय हुई जब शक्ति पर एकाधिकार रखने

वाले गुटों की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार की सामाजिक संरचना में यह तथ्य निहित है कि एक प्रकार का राज्य समाज अस्तित्व में आया।

> इस तरह कारीगरों, धनी व गरीब लोगों और प्रशासन की उपस्थिति शहरी समाज की विशेषता है।

15.3 छठी शताब्दी ई. पू. की पृष्ठभूमि

इससे पूर्व की इकाई में हमने प्राचीन भारत में महाजनपदों और केन्द्रकृत राजनीतिक प्रणालियों के उद्‌भव के विषय में बताया था। हम देख चुके हैं कि एक समय में ब्राह्मणों का एक जाति वर्ग (सूचि) में कैसे उद्‌भव हुआ और जो अनुष्ठानिक कार्य के विशेषज्ञ हो गये। फिर क्षत्रिय योद्धाओं और भू-स्वामियों का वर्ग आया जिसने क्रमिक रूप से किसानों तथा व्यापारियों पर कर लगाना प्रारम्भ किया। उत्तर वैदिक काल में सरदारों ने बलि अनुष्ठानों के अवसर पर अपनी सम्पत्ति को खर्च करना और वितरित करना प्रारम्भ कर दिया। अधिक से अधिक विशाल से विशाल स्तर पर बलि यज्ञों के आयोजन करने से सदस्यों के बीच प्रतियोगिता होने लगी जिससे कि वे अधिक से अधिक लूट, कर व नज़राना प्राप्त करने लगे। इस व्यवस्थित कृषक समाज में कृषि उत्पाद और पालतू पशु सम्पत्ति के सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रतीक थे। विशेष कर, कृषि उत्पाद इस प्रकार की सम्पत्ति थी जिसको साल दर साल जुताई की भूमि को बढ़ाकर और अधिक उत्पादन करने वाले कृषि के तरीकों को अपनाकर प्राप्त किया जा सकता था। शासकों की अधिक से अधिक धन की लालसा ने अधिक से अधिक भूमि पर खेती करने तथा चरवाहों एवं चारा खोजकर लाने वालों को बसने के लिए बाध्य किया। पुरातात्विक साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि बहुत-सी कृषि बस्तियां 6वीं शताब्दी ई. पू. से 7वीं ई. पू. के बीच अस्तित्व में आयीं। मध्य गंगा घाटी में बढ़ते हुए लोहे के औजारों का प्रयोग तथा रोपाई द्वारा की खेती ऐसे दो कारक थे जिनसे कृषि उत्पादन में वृद्धि करने में काफी मदद मिली।

लोहे का प्रयोग और रोपाई द्वारा खेती

1000 ई. पू. के आस-पास भारतीयों ने लोहे को पिघलाने की कला को सीख लिया था। आगे आने वाली तीन या चार शताब्दियों में लोहे का प्रयोग बढ़ता गया। इसलिए उज्जैन, श्रावस्ती और हस्तिनापुर से बड़ी संख्या में लोहे के उपकरण एवं औजार प्राप्त हुए हैं। विशेषकर लोहे के हथियारों का प्रयोग काफी बड़े स्तर पर होने लगा था। जिसके कारणवश क्षत्रियों तथा किसानों की शक्ति में वृद्धि हुई। क्षत्रिय वर्गों ने लोहे के हथियारों की सहायता से किसानों से अधिक धन को वसूल किया। लोहे के हथियारों ने उनकी युद्ध, विजय और लूट-पाट की भूख को और बढ़ाया।

लोहे के प्रयोग का अर्थव्यवस्था पर भी प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। लोहे की कुल्हाड़ी से जंगलों को साफ किया जा सका और लोहे की फाल वाले हल से कृषि कार्यों को करने में सुविधा हुई। यह मध्य गंगा घाटी में (इलाहाबाद और भागलपुर के मध्य का क्षेत्र) काफी उपयोगी था जहां पर रोपाई द्वारा धान की खेती की जाती थी। धान की रोपाई को भी इस काल में सीख लिया गया था। यह सर्वविदित तथ्य है कि तराई चावल की खेती वाले क्षेत्र में पैदावार गेंहू या मोटे अनाजों की परम्परागत कृषि से पर्याप्त मात्रा में अधिक थी। चावल उत्पादक मध्य गंगा घाटी में, गेंहू उत्पादक ऊपरी गंगा घाटी की तुलना में अधिक अनाज का उत्पादन होता था। प्रारंभिक बौद्ध साहित्य में चावल व खेतों की किस्म का बार-बार वर्णन हुआ है। यह व्यापक स्तर पर चावल की खेती की ओर निर्णायक परिवर्तन को स्पष्ट करता है। अधिक खाद्य उत्पादन के कारण जनसंख्या के बढ़ने में सहायता मिली, जिसकी अभिव्यक्ति उस समय के प्राप्त हुए पुरातात्विक साक्ष्यों में भी होती है। अधिक अन्न उत्पादन ने यह संभावना बनाई कि ऐसे सामाजिक समूह अस्तित्व में आये जो खाद्यान्न उत्पादन में लिप्त नहीं थे।

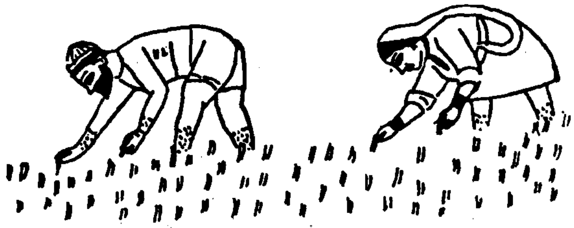

चित्र 3 रोपाई द्वारा धान की खेती

वैदिक बलि यज्ञों से तात्पर्य था कि सरदारों के द्वारा जो अतिरिक्त उत्पाद एकत्रित किया जाता था वह यज्ञों के आयोजन के समय उपहारों के रूप में चला जाता था। मध्य गंगा घाटी क्षेत्र में आयोजित होने वाले अनुष्ठानों व बलि यज्ञों का स्वरूप ऊपरी गंगा घाटी क्षेत्र में आयोजित होने वाले अनुष्ठानों व बलि यज्ञों से भिन्न था। जिसका अर्थ था कि जिस अतिरिक्त उत्पादन को सरदारों द्वारा एकत्रित किया जाता था वह बलि यज्ञों के अवसर पर खर्च नहीं होता था। जिन बढ़ते हुए समूहों का इस अतिरिक्त धन पर नियंत्रण था वे ही नवोदित राज्यों के शासक वर्ग बन गए और इसी धन की आधारशिला पर छठी शताब्दी ई. पू. के नगरों की उत्पत्ति हुई।

बोध प्रश्न 1

1) सही उत्तरों पर निशान लगाइए:
नगरीकरण के इतिहासकारों के लिए हरिश्चन्द्र की कहानी का महत्व निहित है:

क) पुत्र रोहित की अवज्ञा में

ख) सुनेहसेप की खरीदारी में

ग) राजा हरिश्चन्द्र के शहर में नहीं बल्कि गांव में रहने के तथ्य में

घ) भगवान वरूण तथा इन्द्र द्वारा खेली गई विभिन्न भूमिकाओं में

2) निम्नलिखित कथनों को पढ़िए और सही (✓) या गलत (×) का निशान लगाइए:

i) आबादी की संख्या और बस्ती के आकार के आधार पर ग्रामीण केन्द्र से अलग नगर केन्द्र की पहचान की जा सकती है।

ii) लोहे के औजारों के बढ़ते प्रयोग ने कृषि उत्पादन को बढ़ाने में मदद की।

iii) चावल उत्पादक मध्य गंगा-घाटी की तुलना में गेंहू उत्पादक ऊपरी गंगा घाटी अधिक खाद्य अनाजों का उत्पादन करती थी।

iv) लोहे के हथियारों के निर्माण से शासक वर्गों की ताकत में वृद्धि हुई।

15.4 छठी शताब्दी ई. पू. के नगर

छठी शताब्दी ई. पू. के नगरों के विषय में हमारी सूचना बहुत से स्रोतों पर आधारित है क्योंकि यह वह समय है जब प्राचीन भारत में इतिहास लिखने की परम्परा का श्रीगणेश हुआ। ब्राह्मणिक, बौद्ध एवं जैन साहित्य में उस समय की परिस्थितियों का वर्णन हुआ है। इस काल

के बहुत से नगरों और गांवों के उत्खनन से प्राप्त विवरण हमारी जानकारी को और पुष्ट करते हैं।

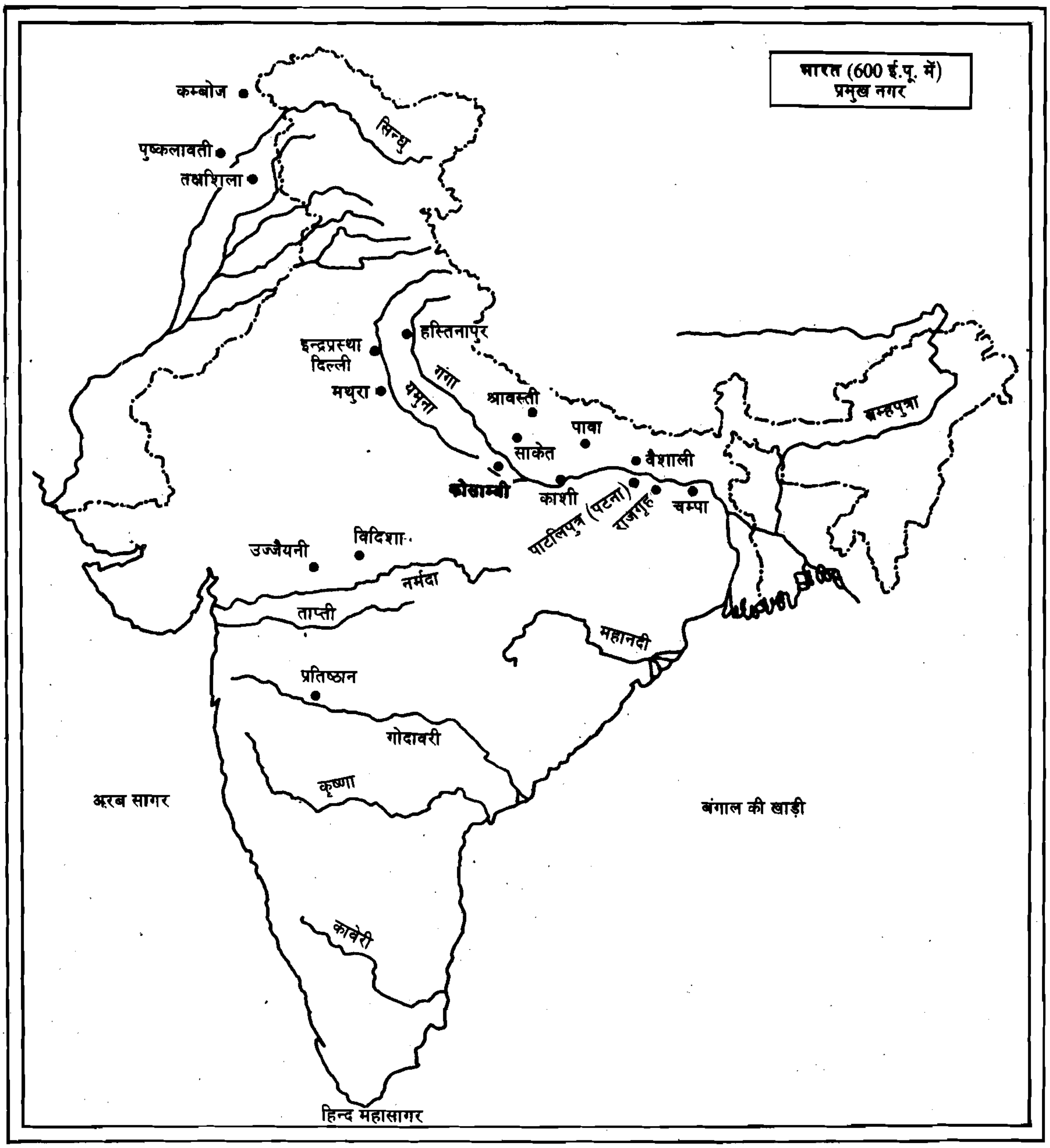

मानचित्र 2 प्रमुख नगर

15.4.1 साहित्य में नगरों और कस्बों के प्रकार

प्राचीन भारतीय साहित्य में शहरों के प्रतीक रूप में पुर, दुर्ग, निगम, नगर आदि शब्दों का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग हुआ है। अब हम यह देखेंगे कि प्राचीन भारतीय इनको किस प्रकार से परिभाषित करते थे।

पुर — पुर शब्द का प्रयोग प्रारंभिक वैदिक साहित्य में भी हुआ। यहां इनका उल्लेख किलेबंद बस्तियों, अस्थायी शरण स्थलों या पालतू पशुओं के बाड़ों के संदर्भ में हुआ है। बाद में इस शब्द का प्रयोग राजा के निवास स्थान और परिजनों के निवास स्थान या गण संघों के शासक वर्ग के परिवार जनों के निवास स्थल के लिए होता है। धीरे-धीरे घेरे-बंदी के अर्थ में इसका प्रचलन कम होने लगा और इसका तात्पर्य शहर या नगर से लगाया जाने लगा।

दुर्ग — यह एक और शब्द है जिसका प्रयोग राजा की घेरे-बन्द राजधानी के लिए होता था। इस घेरेबंदी के कारण नगर केन्द्र की सुरक्षा होती थी और यह आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों से अलग हो जाता था, घेरेबंदी के कारण शासक वर्गों के लिए नगर में रहने वाले लोगों के कार्यकलाप को नियंत्रित करना सरल था।

निगम — एक कस्बे के प्रतीक के रूप में इस शब्द का पाली साहित्य में खूब वर्णन हुआ है। संभवत: इसका ऐसे स्थल से आशय है जहां पर व्यापारी वर्ग के द्वारा चीजों की बिक्री एवं खरीदारी की जाती थी। वास्तव में कुछ विद्वानों का विश्वास है कि इन निगमों का विकास उन गांवों से हुआ जो बर्तन, लकड़ी के सामान तथा नमक का निर्माण करने में विशेषज्ञ थे। ये निगम बज़ार वाले कस्बे थे, इस तथ्य की सत्यता इस बात से भी सिद्ध होती है कि बाद के काल के पाए गए सिक्के दर्शाते हैं कि ये निगम में बनाए गए हैं। कभी-कभी साहित्यिक ग्रंथों में नगरों में "निगम" शब्द का प्रयोग उस स्थल के लिए हुआ है जहां पर दस्तकार और कारीगर रहते और काम करते थे।

नगर — साहित्य में कस्बे या शहर के लिए प्रयोग होने वाला यह सबसे अधिक सामान्य शब्द है। इस शब्द का प्रथम बार प्रयोग तैत्रिरिया अरण्येक में हुआ। यह ग्रंथ सातवीं शताब्दी ई. पू. से छठी शताब्दी ई. पू. के समय में रचा गया। एक अन्य शब्द महानगर का प्रयोग नगरों के लिए हुआ है। ये केन्द्र पुर के राजनैतिक कार्य – कार्यकलाप तथा निगम के व्यापारिक कार्यकलाप का समन्वित रूप थे। इन शहरों में राजाओं, व्यापारियों तथा प्रचारकों का निवास था। बौद्ध साहित्य में 6 महानगरों का संदर्भ आता है। इनमें से अधिकतर मध्य गंगा घाटी में स्थित थे। ये राजगृह, चम्पा, काशी, श्रावस्ती, साकेत और कोशाम्बी थे। पाटन, स्थानीय आदि दूसरे शब्द हैं जिनको कस्बे व नगर के लिए प्रयोग किया गया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि पुर व दुर्ग सबसे पुराने ऐसे शब्द हैं जिनको भारतीय साहित्य में कस्बे या नगर के प्रतीक के रूप में प्रयोग किया गया है। शेष शब्दों का प्रयोग बाद के काल में हुआ। यह हमारे लिए महत्वपूर्ण है कि इन दोनों शब्दों का प्रयोग बस्तियों की घेरेबंदी के लिए किया गया है। इसका यह भी तात्पर्य हो सकता है कि राजा और उसके समर्थक घेरेबंद बस्तियों में रहते थे। वे आसपास की बस्तियों से टैक्स वसूल करते थे। उनकी धन संचय व विलासिता की वस्तुओं को एकत्रित करने की क्षमता के कारण व्यापार का फैलाव संभव हो सका। इन किलेबंद बस्तियों की बदौलत विभिन्न सामाजिक समूहों में संबंधों की व्यवस्था का विकास हुआ। अंतत: इसके कारणवश नगरों का उद्भव हुआ। इस विचार के समर्थन में यह तथ्य भी है कि ब्राह्मणिक परम्परा के अनुसार अनेक नगरों की आधारशिला विशेष राजाओं द्वारा रखी गई। जैसे कि कुसम्बा नाम से जाने वाले राजा ने कोशाम्बी नाम के नगर को बसाया। इसी प्रकार हस्तिन ने हस्तिनापुर को बसाया और श्रावास्ता ने श्रावस्ती की आधारशिला रखी। बौद्ध साहित्य में नगरों का संबंध मुनियों, पेड़-पौधों व जानवरों से है। उदाहरण के लिए, कपिलवस्तु को यह नाम कपि मुनि के नाम पर दिया गया। कहा जाता है कि कोशाम्बी को यह नाम उस क्षेत्र में कुशम्ब नाम के वृक्षों के उगने के बाद दिया गया। परन्तु राजाओं द्वारा शहरों की स्थापना की परम्परा ही अधिक महत्वपूर्ण है। ऐसा कहा जाता है कि पांडवों ने इन्द्रप्रस्थ नाम के नगर को बसाया। ऐसा प्रतीत होता है कि रामायण के काल में भी शासक परिवार के राजकुमारों ने अनेक नगरों को बसाया।

आगामी काल में राजनैतिक केन्द्रों में से कुछ काफी बड़े व्यापारिक केन्द्र बन गए। जल्दी ही, ऐसे नगर जो केवल राजनैतिक केन्द्र थे, राजनैतिक तथा वाणिज्य केन्द्रों की छायामात्र हो गए। जैसे कि राजधानी हस्तिनापुर ने कभी भी ऐसी सम्पन्नता को प्राप्त नहीं किया, जैसी कि काशी या कौशाम्बी को प्राप्त थी। जब दूर-दराज के स्थलों से व्यापार काफी बढ़ जाता था तो राजनैतिक लोग व्यापारियों पर टैक्स लगाकर अपने खजाने को सम्पन्न करते थे। कम से कम दो उदाहरण ऐसे हैं जिनमें राजनैतिक राजधानियाँ उन स्थानों में परिवर्तित की गई जो

महत्वपूर्ण व्यापार मार्गों पर स्थित थे। कोशल राज्य की राजधानी को अयोध्या से श्रावस्ती ले जाया गया और मगध राज्य की राजधानी को राजगृह के स्थान पर पाटलिपुत्र को बनाया गया। यह व्यापारिक व्यवस्था के उद्भव के महत्व को स्पष्ट करता है जो प्राचीन उत्तर पथ के उस हिस्से में फैला हुआ था जो हिमालय की तलहटी और बाद में तक्षशिला को राजगृह से जोड़ता था। इसी प्रकार, पाटलिपुत्र ऐसी जगह पर स्थित था जहां से वह गंगा नदी से गुज़रने वाले व्यापारिक रास्ते का लाभ उठा सकता था। राजाओं तथा व्यापारियों द्वारा दिया जाने वाला संरक्षण ऐसा कारण था जिससे कि प्राचीन भारत में नगरों का विकास हुआ। इस काल का साहित्य व्यापारियों के काफिलों के वर्णन से भरा पड़ा है, जो दूर स्थलों पर व्यापार के लिए जाते थे। धनी व्यापारी भी राजाओं के साथ-साथ महात्मा बुद्ध के मुख्य अनुयायी थे।

15.4.2 प्राचीन भारत में नगर की छवि

निम्नलिखित विवरण कुछ बाद के काल के बौद्ध और ब्राह्मणिक साहित्यिक ग्रंथों में आये संदर्भों पर आधारित है। दिव्यावदान और अपस्ताम्बर धर्म-सूत्र जैसी पुस्तकें हमें उस समय के नगरों के विषय में जानकारी उपलब्ध कराती हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य नगरों की आदर्श छवि प्रस्तुत करता है। रामायण में वर्णित अयोध्या या बौद्ध ग्रंथों में वर्णित वैशाली बिल्कुल आदर्श लगेंगे। अगर उनके विवरण का गहराई से अध्ययन किया जाए तो आदर्श रूप में नगरों का वर्णन बिल्कुल शतरंज के बोर्ड की भांति किया गया है। ऐसी सड़कें थी जिनके नाम बहुत से दस्तकारों के नाम पर थे। नगरों की घेरेबंदी सुरक्षित दीवारों तथा खाइयों द्वारा की गई थी। चौड़ी सड़कें, रंगीन पताकाओं से सुसज्जित ऊंचे भवन, व्यस्त बाज़ार, फूलों वाले बाग, कमलों व हंसों के साथ पानी से भरे तालाब इस विवरण में आते हैं। पुरुषों की अच्छी वेश-भूषा तथा नाचती व गाती सुन्दर महिलाएँ शहर का चित्रण पूरा करती हैं। आदर्श शहरों का यह असीमित विवरण हमें ऐसा अपर्याप्त विचार देता है जिसके आधार पर प्राचीन भारत के शहरों की वास्तविक स्थिति का बोध नहीं होता। अन्य बिखरे हुए सन्दर्भों की मदद से नगरों के विषय में हम एक अधिक उचित राय बना सकते हैं।

15.4.3 नगर का भ्रमण

ऐसा प्रतीत होता है कि नदियों के लम्बे मार्गों के किनारों अथवा लम्बे स्थल मार्गों के संगम पर नगरों का विकास हुआ। जब आप शहर की सड़कों से गुजरेंगे तब आप क्या पायेंगे? समकालीन ग्रन्थ नगरों की जीवन्त छवि प्रस्तुत करते हैं। घोड़ों की टापों से उड़ती धूल के अम्बार और व्यापारियों के काफिले जिनको पवित्र ब्राह्मण बहुत कृपा की दृष्टि से देखते थे। दुकानों के आसपास लोगों की भीड़ चिल्ला-चिल्लाकर खाने की चीजें जैसे कि आम, कटहल, केले, मिसरी, पके चावल आदि की बिक्री करती थी। सस्ते आभूषण, शंख वाले कंगन तथा फूलों को बेचने वाली महिलाओं का कोलाहल एवं कलकल की आवाजें हवा में तैरती रहती थी। अगर किसी को शराब की ज़रूरत हो तो फिर बहुत से किस्म की शराब की दुकानें मिल जायेंगी। घरों का निर्माण अक्सर मिट्टी व लकड़ी से होता था तथा उसकी खपरैल वाली छत होती थी। इस प्रकार के घरों को गंगा के मैदान के गांवों में आज भी देखा जा सकता है। कुछ मामलों में घरों का निर्माण पत्थर और पक्की ईटों से भी किया जाता था। महिलाओं को झरोखों से झांकते हुए देखा जा सकता था। कभी-कभी कोई वेश्याओं के दर्शन भी कर सकता था। अगर कोई जुआ खेलने का शौकीन था तो उसके लिए इसकी भी व्यवस्था थी। राजा और उसकी सेना के हाथियों व रथों पर सवार जुलूसों को सड़कों पर निकलते हुए देखा जा सकता था। शहर के कुछ भागों में सेना को धनुर्विद्या को सीखते हुए, हाथियों को परीक्षण देते हुए और युद्ध कला में कौशलता को बढ़ाते हुए देखा जा सकता था। गेरूवे व सफेद वस्त्रों को धारण किए साधुओं के झुंड के झुंड नगर में घूमते हुए देखे जा सकते थे और कभी-कभी ये साधु नग्न अवस्था में भी घूमते रहते थे। ये घुमक्कड़ सन्यासी इसी समय में उदित विभिन्न सम्प्रदायों से संबंधित थे और इनको जो उपवन या बाग दिए गए थे उनमें रहते हुए इनको विभिन्न धार्मिक सवालों पर उपदेश देते हुए देखा जा सकता था। श्रोताओं की सभा में विभिन्नता होती थी। कभी-कभी यह सभा केवल धनी व्यापारियों और राजकुमारों की होती थी और कभी-कभी उन लोगों की होती जो समाज के निर्धनतम वर्ग से आते थे। धनी लोग इन सन्यासियों को खुल कर धन देते थे। उपवनों एवं धार्मिक स्थलों पर इन सन्यासियों का पूर्ण अधिकार होता था और ये भी नगर के जीवन का एक अंग थे।

15.4.4 विनिमय की वस्तुएँ

बाज़ारों में उपयोगी वस्तुओं की बिक्री एवं खरीदारी बड़े पैमाने पर होती थी। लोगों को लोहे, तांबे, टिन व चांदी आदि धातुओं के बने उपकरणों तथा औजारों को खरीदते हुए देखा जा सकता था। नमक के उपार्जन तथा बेचने के विशेषज्ञ व्यापारियों के गुटों को सड़क के उस टुकड़े पर, जो उनको दे दिया गया था, देखा जा सकता था। काशी के सूती कपड़ों की ओर खरीदने वालों की काफी बड़ी संख्या आकर्षित होती थी। उत्तर-पश्चिम गंधार प्रदेश से आने वाले ऊनी कम्बलों को केवल धनी लोग खरीदते थे। सिन्ध और कम्बोज से आयात होने वाले घोड़ों की भी बिक्री की जाती थी। यहां पर उन दिनों केवल समाज के उच्च धनी लोग खरीदार होते थे। शंख से बनी चूड़ियां, सोने से बने सुन्दर आभूषण, कंघियाँ, हाथी दांत से निर्मित आभूषण और कीमती पत्थरों की बहुत अधिक मांग कुलीन वर्ग में थी।

समकालीन स्त्रोत इस ओर भी संकेत करते हैं कि प्रत्येक सामान को अलग सड़क पर बेचा जाता था। जो उसका उत्पादन करते थे या उसको लाते थे वही बेचते भी थे। विभिन्न प्रकार के सामानों को बेचने की कोई दुकान नहीं थी। विभिन्न प्रकार के व्यापारी होते थे, जैसे कि दुकानदार (अयानिका), खुदरा (क्रय-विक्रय) और धन विनियोक्ता (सेठी-गहपति)। धनी लोग सिक्के का उपयोग भी करते थे। चांदी का सिक्का सतमन अधिकतम मूल्य का था। उसके बाद कर्षपण का महत्व था। तांबे के माशाल और ककणि कम मूल्य के सिक्के थे।

नगरों की इस चमक-दमक के बीच गरीब लोगों का वह वर्ग था जिसके विषय में कुछ भी नहीं कहा गया है। एक बौद्ध जातक कथा में वर्णन है कि एक व्यापारी की बेटी के द्वारा एक चण्डाल (जो लोग जाति व्यवस्था से बाहर थे) को देखने पर प्रदूषण के डर से उसकी आंखों को धोया गया। नगरों के उदय के साथ-साथ धोबियों, मेहतरों, भिखारियों तथा भंगियों का वर्ग भी अस्तित्व में आया। भंगियों और शवों को दफनाने वालों की सेवाएं शहरों के लिए आवश्यक थीं। फिर भी ये लोग समाज के सबसे निर्धन तथा अधिकार-विहीन लोग थे। जाति व्यवस्था से बहिष्कृत ये लोग नगरों के बाहर अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार की किसी आशा के बिना रहते थे। सामुदायिक समाज के पतन और शासकों द्वारा उत्पादन पर बढ़ती हुई मांगों के कारण भिखारियों के गुटों की संख्या बढ़ी। एक कहानी में बताया गया है कि दिन में राजा के कारिन्दे गांव को लूटते थे और रात को लुटेरे।

15.5 पुरातात्विक साक्ष्यों के अनुसार नगर

हमें जो साहित्यिक साक्ष्य उपलब्ध हैं उनमें आगामी शताब्दियों में बहुत से परिवर्तन हुए और उनमें कुछ न कुछ जोड़ा गया। हमें जो लिखित ग्रंथ उपलब्ध हैं वे एक हज़ार वर्ष से भी कम पुराने हैं। इसलिए इन ग्रंथों में से प्रारंभिक काल के इतिहास के विवरण को बाद के काल के विवरण को अलग करना कठिन है। जो सूचनायें हमें उत्खनन से उपलब्ध विवरणों से प्राप्त हुई हैं वे इस काल के नगरों के विषय में कुछ अधिक ठोस आधार प्रदान करती हैं। क्योंकि पुरातात्विक आंकड़ों को अधिक निश्चितता के साथ कालबद्ध किया जा सकता है। यह भी है कि साहित्यिक विवरणों में नगरों की ऐश्वर्यता एवं चमक-दमक को बढ़ा-चढ़ाकर लिखा गया है। उत्खनन से प्राप्त सामग्री में इस प्रकार की पक्षता नहीं होती है। अब हमें यह देखना है कि उत्खनन से प्राप्त विवरण से किस प्रकार की सूचना प्राप्त हुई है।

700 ई. पू. के लगभग, अयोध्या, कोशाम्बी और श्रावस्ती जैसी छोटी बस्तियां अस्तित्व में आईं। इन बस्तियों में रहने वाले लोग विभिन्न प्रकार की मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करते थे। छठी शताब्दी ई. पू. के आसपास इस सारे क्षेत्र के निवासी इस शैली के मृदभांडों के साथ-साथ एक विशेष प्रकार के चमकदार परत वाले मृदभांडों का उपयोग करने लगे। इस प्रकार के मृदभांड को उत्तरी काली पॉलिश वाले मृदभांड (NBPW) कहते हैं। यह उच्च किस्म के मृदभांड इस बात का प्रमाण हैं कि छठी शताब्दी ई. पू. में गंगा घाटी के नगरों में व्यापक सांस्कृतिक समरूपता थी। शायद इन मृदभांडों का कुछ ही स्थलों पर निर्माण होता था और दूसरे स्थलों को इसका व्यापारियों के द्वारा निर्यात किया जाता था। पुरातात्विक स्थलों पर जो

दूसरी वस्तु प्रकट होनी प्रारम्भ होती है वह इस काल के सिक्के हैं। प्राचीन भारत में इस काल में प्रथम बार सिक्कों का प्रयोग होना शुरू हुआ। चांदी और तांबे से सिक्कों का निर्माण होता था और इन सिक्कों को सामान्यत: पंच चिन्ह वाले सिक्के कहा जाता है। इन पर एक ओर विभिन्न प्रकार के प्रतीकों को बनाया गया है प्रारम्भ में इन सिक्कों को संभवत: व्यापारियों ने जारी किया। सिक्कों की प्रणाली के लागू हो जाने के कारण संगठित व्यापार को बढ़ावा मिला। उत्खनन वाले स्थलों पर तांबे-लोहे के मिश्रित इस काल के पंच चिन्ह वाले कुछ ऐसे सिक्के प्राप्त हुए हैं जिन पर कुछ नहीं लिखा है। वस्तु विनिमय व्यवस्था में दो व्यक्ति अपने उत्पाद के माध्यम से विनिमय करते हैं। मानों कि किसी व्यक्ति के पास गाय है जिसके विनिमय से वह भूसा खरीदना चाहता है और एक ऐसा व्यक्ति है जिसके पास भूसा है लेकिन वह भूसे के बदले चावल खरीदना चाहता है। अत: इस मामले में वस्तु विनिमय को लागू नहीं किया जा सकता। जबकि सिक्के खरीदने और बेचने के लिए एक निश्चित मूल्य माने जाते थे। कोई भी वस्तु खरीदने के लिए गाय ले जाने की अपेक्षा सिक्कों को ले जाना भी अधिक सरल था। धन प्रणाली के लागू हो जाने के कारण अन्तत: महाजन वर्ग का उद्भव हुआ।

इस समय की बड़ी बस्तियों में घर बनाने के लिए पक्की ईटों का प्रयोग होने लगा था। घरों से निकले गंदे पानी के लिये गढ़े बनाये जाते थे जिनमें पकी मिट्टी के बड़े पात्र रखे जाते थे। यह एक नियोजित तरीके की ओर संकेत करते हैं। इससे पहले काल में लोग कच्ची ईटों से निर्मित झोपड़ियों में रहते थे। बड़े आकार की बस्तियों के भी प्रमाण प्राप्त हुए हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि आबादी का घनत्व बढ़ रहा था। कुछ स्थानों से नाली तथा मल स्थलों के भी प्रमाण मिले हैं।

चित्र 4 पंच चिन्ह वाले सिक्के

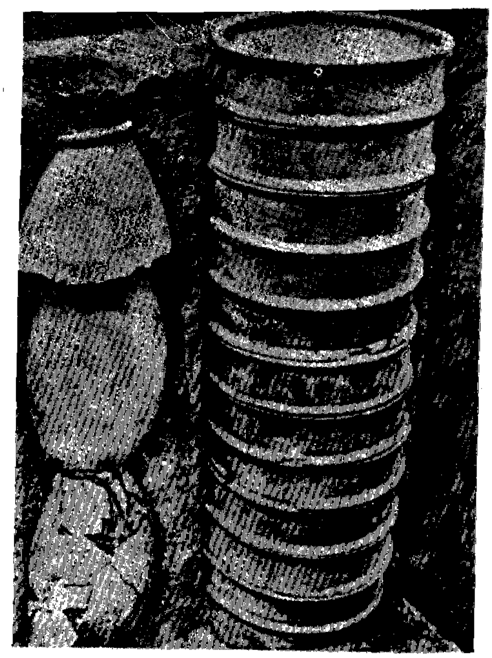

चित्र 5 प्राचीन नगरों से प्राप्त पानी सोखने के गढ़े

उत्खनन से जो सामग्री मिली है उससे स्पष्ट है कि इस काल के लिए साहित्य में नगरों से संबंधित जो विवरण है उसको काफी बढ़ा-चढ़ाकर दिया गया है या फिर वह बाद के समय के नगरों के लिए है। नगरों के विषय में प्राप्त प्रमाणों से सिद्ध नहीं होता कि किसी भी नगर को योजनाबद्ध तरीके से बसाया गया था, जबकि साहित्यिक विवरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल के नगरों को योजनाबद्ध तरीके से बसाया गया था। तक्षशिला शहर के विशाल स्तर पर किए गए उत्खनन से स्पष्ट होता है कि इस नगर को शायद आठवीं-सातवीं शताब्दी ई. पू. में बसाया गया था। योजनाबद्ध नगर बसाने का काम दूसरी शताब्दी ई. पू. में ही अस्तित्व में आया। इसी तरह साहित्य में बार-बार वर्णन आया है

कि अयोध्या और वैशाली जैसे नगरों का क्षेत्रफल 30 से 50 वर्ग किलोमीटर था। लेकिन उत्खनन से पता चलता है कि इनमें से कोई भी नगर 4 से 5 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल से अधिक नहीं था। इसी प्रकार, विशाल महलों एवं चौड़ी सड़कों का वर्णन भी अतिरंजित मालूम होता है। कोशाम्बी के महल की संरचना के अतिरिक्त छठी शताब्दी ई. पू. के अन्य किसी भी महल की संरचना का विवरण नहीं मिलता। अधिकतर घर सामान्य झोंपड़ियों की भांति थे। इस काल का कोई भी ऐतिहासिक भवन नहीं मिलता है। प्रारंभिक काल के अनेक नगरों जैसे कि उज्जैन, कोशाम्बी, राजगृह आदि की किलेबंदी की गई थी। ऐसा लगता है कि युद्ध के भय से किलेबंदी की जाती थी। नगरों की किलेबंदी से यह भी लगता है कि इसके द्वारा नगरीय जनता का आबादी के शेष भाग से स्पष्ट विभाजन हो जाता था। इससे जनता पर राजा सरलता के साथ नियंत्रण कर सकता था। इसके द्वारा साहित्य में वर्णित उस तथ्य की भी पुष्टि होती है जिसमें पुर का तात्पर्य बस्ती की किलेबंदी से था और जो प्राचीन भारत में प्रारंभिक नगरीय बस्तियों के रूप थे।

अब ऐसा विश्वास किया जाता है कि विशाल महलों के साथ सम्पन्न नगर मौर्य काल के दौरान अस्तित्व में आये। हमें जो साहित्य उपलब्ध है उससे ऐसा मालूम पड़ता है कि मौर्य काल के नगरों को स्तर मानकर उससे पूर्व के काल के नगरों का वर्णन किया गया है।

बोध प्रश्न 2

1) समकालीन साहित्य में वर्णित नगरों पर दस पंक्तियाँ लिखिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) पुरातात्विक साक्ष्य नगरों के विषय में क्या बताते हैं ? दस पंक्तियाँ लिखिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

3) निम्नलिखित कथनो को पढ़कर सही (✓) या गलत (×) का चिन्ह लगाइए:

i) जैसे वृक्षों के नाम पर नगरों का नामकरण होता था उसी प्रकार राजाओं के नाम पर भी नगरों के नामकरण की परम्परा थी।

ii) प्राचीन ग्रंथों से नगरों का पूर्णतया सही विवरण प्राप्त नहीं होता है।

iii) नगरों के अस्तित्व में आने से भिखारियों, भंगियों और अन्य दरिद्र लोगों के गुट समाप्त हो गए।

iv) सिक्कों की प्रणाली लागू हो जाने से वस्तु विनिमय समाप्त हुआ तथा संगठित व्यापार सुगम हुआ।

15.6 सारांश

इस इकाई में आपने छठी शताब्दी ई. पू. में नगरों के उद्‌भव के विषय में पढ़ा। नगर की उत्पत्ति दो निर्णायक प्रक्रियाओं का परिणाम थी जिसमें प्रथम है मनुष्य का प्रकृति के साथ रिश्ता अर्थात लोहे का उपयोग और धान की रोपाई की तकनीक की जानकारी हो जाना जिसके कारण गंगा घाटी के क्षेत्र में लोगों ने कृषि पैदावार बढ़ाने में सफलता प्राप्त कर ली। दूसरी प्रक्रिया थी, छठी शताब्दी ई. पू. में समाज की आंतरिक संरचना में परिवर्तन होना। इसका तात्पर्य यह था कि शासक जातियां जैसे कि क्षत्रिय और ब्राह्मण, व्यापारिक वर्ग के साथ मिलकर अतिरिक्त खाद्य उत्पादन और अन्य सामाजिक उत्पाद पर अधिकार प्राप्त कर लेते थे। जिन स्थानों पर धनी व ताकतवर लोग रहते थे, उनको शहर या नगर कहा जाता था। यह निश्चित है कि इन लोगों की उपस्थिति का अर्थ था कि उन स्थानों पर बड़ी संख्या में गरीब लोगों की उपस्थिति होना। इसी कारणवश कुछ विद्वानों का मत है कि बौद्ध धर्म की उत्पत्ति इस नगरीय दरिद्रता के कारण हुई थी। प्राचीन भारतीय साहित्य में नगरों को पुर, पाटन व नगर जैसे विभिन्न शब्दों के रूप में वर्णित किया गया है। फिर भी साहित्य में नगरों के शान-शौकत एवं आकार के लिए जो विवरण मिलता है, वह अतिरंजित प्रतीत होता है। प्राचीन नगर स्थलों की खुदाई से भी लगता है कि यह साहित्यिक विवरण अतिरंजित हैं।

15.7 शब्दावली

भीतरी प्रदेश — वह क्षेत्र जो शहर के प्रभाव क्षेत्र के अंतर्गत आता है और दोनों एक दूसरे पर निर्भर होते हैं।

टैक्स (कर) — वह धन जिसको शासक, व्यक्तियों या गुटों से शक्ति के बल पर स्थायी आधार पर प्राप्त करते हैं।

नज़राना — परतंत्रता का बोध कराने के लिए कभी-कभी दिया जाने वाला कर।

राज्य-समाज — ऐसा समाज जिसमें शासक और शासित, अमीर और गरीब की उपस्थिति हो।

रोपाई द्वारा खेती — इस विधि के अनुसार, धान के पौधे को एक जगह पर उगाया जाता है और वहां से उखाड़ कर उसको पानी भरे खेतों में लगा दिया जाता है, जहां पर वह बढ़ता है और फसल देता है। चावल की शुष्क खेती में बीज खेतों में बिखरा कर बोये जाते हैं। रोपाई द्वारा धान की खेती से उपज अधिक होती है।

15.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) ग

2) i) ×　　　ii) ✓
iii) ×　　　iv) ✓

3) आपको अपने उत्तर में निम्नलिखित मुख्य-मुख्य बातें बतानी चाहिए:

गैर कृषक आबादी का प्रभुत्व, नगर के पास के बड़े क्षेत्र के साथ सम्बन्ध से लाभ उठाना, धार्मिक, प्रशासनिक एवं आर्थिक गतिविधियों को नियंत्रित करने का केन्द्र, धन और स्तरों में व्यापक अंतर और केन्द्रीकृत प्रशासनिक इकाई का अस्तित्व। भाग 15.2 को देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) आपको अपने उत्तर में बहुत से शब्दों की व्याख्या करनी चाहिए (जैसे कि पुर, दुर्ग, निगम, नगर) इनका प्रयोग साहित्य में किया गया है और इनके अन्तर भी बताइए। भाग 15.4 देखिए।

2) आपको नये प्रकार की मिट्टी के बर्तनों के दृष्टांत देने चाहिए (उत्तर वाली पॉलिश वाले बर्तन)। सिक्कों का प्रारंभ, और घरों के लिए पक्की ईटों का उपयोग। यह भी बताइए कि साहित्य में किस प्रकार से नगरों का चित्रण बढ़ा-चढ़ाकर किया गया है और उसको पुरातात्विक साक्ष्य ने कैसे शुद्ध किया है। देखिए भाग 15.5

3) i) ✓　　　ii) ✓
iii) ×　　　iv) ✓

इकाई 16 समाज और अर्थव्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 हमारी जानकारी के स्रोत
16.3 समाज
- 16.3.1 क्षत्रिय
- 16.3.2 ब्राह्मण
- 16.3.3 वैश्य और गहपति
- 16.3.4 शुद्र
- 16.3.5 घुमक्कड़ सन्यासी
- 16.3.6 स्त्रियों की दशा

16.4 अर्थव्यवस्था
- 16.4.1 खाद्य उत्पादक अर्थव्यवस्था के विकास के कारण
- 16.4.2 ग्रामीण अर्थव्यवस्था
- 16.4.3 शहरी अर्थव्यवस्था
- 16.4.4 शहरी व्यवसाय
- 16.4.5 व्यापार और व्यापारिक मार्ग

16.5 सारांश
16.6 शब्दावली
16.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

16.0 उद्देश्य

इस इकाई में मुख्य रूप से उन सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों का विवरण किया गया है जिन्होंने इस काल में ठोस रूप ग्रहण किया।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस काल के समाज और अर्थव्यवस्था के विषय में निम्न बातें समझ सकेंगे:

- समाज के मुख्य अंग, सामाजिक व्यवस्था और शुद्रों के ऊपर लगाए गए नियंत्रण,
- खाद्य उत्पादक अर्थव्यवस्था के विकास के प्रमाण एवं कारक तत्व,
- ग्रामीण एवं शहरी अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएं, और
- इस काल की मुख्य दस्तकारियां तथा व्यवसाय और व्यापार की प्रकृति एवं व्यापारिक मार्ग।

16.1 प्रस्तावना

इससे पहले कि हम छठी सदी ई. पू. के चौथी सदी ई. पू. तक होने वाले सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों के मुख्य आयामों के विषय में विस्तृत रूप से चर्चा करें, यह अनिवार्य है कि प्रस्तावना के रूप में उन बिन्दुओं का संक्षेप में विवरण करें जिनके विषय में पिछली इकाइयों में आप पढ़ चुके हैं।

प्रथम, ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर वैदिक काल में कृषि अर्थव्यवस्था के ठोस आधार ग्रहण करने के साथ-साथ नये भौगोलिक क्षेत्र अर्थात् ऊपरी और मध्य गंगा घाटी क्षेत्र की ओर वैदिक कालीन संस्कृति का फैलाव हो गया था। दूसरे, समाज में शासकों और एक ऐसे वर्ग का उदय होना था जो स्वयं किसी प्रकार का उत्पादन नहीं करता था, बल्कि समाज के अन्य वर्गों द्वारा किए गए उत्पादन का उपभोग करता था। समाज में असमानता को संस्थागत रूप दे दिया गया। संस्थागत असमानता का तात्पर्य राज्य और उसकी व्यवस्था की स्थापना होना था। इसी के साथ समाज को चार वर्णों में विभाजित करने वाले सिद्धान्त का और अधिक कड़ा होना था क्योंकि वर्ण सिद्धान्त ने यह स्पष्ट किया कि समाज के विभिन्न वर्ग किस प्रकार अपने कर्तव्यों को पूरा कर सकते थे।

16.2 हमारी जानकारी के स्रोत

हमारे पास ऐसे विभिन्न प्रकार के साहित्यिक ग्रंथ हैं जो छठी सदी ई. पू. से चौथी सदी ई. पू. तक के समाज एवं अर्थव्यवस्था के विषय में जानकारी उपलब्ध कराते हैं। ऐसे बहुत से ब्राह्मणिक ग्रंथ हैं जो दिन-प्रतिदिन के संस्कारों एवं अनुष्ठानों को सम्पन्न करने के तरीके लोगों को बताते हैं। उनको गृह-सूत्र, श्रोत सूत्र और धर्म सूत्र कहा जाता है। इनमें से कुछ ग्रंथ जैसे कि अपस्ताम्बा ग्रंथ इस काल से संबंधित है। पाणिनी की व्याकरण में इस समय के बहुत से सम्प्रदायों के संक्षिप्त संदर्भ मिलते हैं। फिर भी, इस काल की सूचना के लिए हमारे लिए बौद्ध धर्म से संबंधित ग्रंथ प्राथमिक स्रोत हैं। इनको पाली भाषा में लिखा गया है। प्रारंभिक बौद्ध धार्मिक ग्रंथों को छठी सदी ई. पू. से चौथी सदी ई. पू. के मध्य में लिखा गया।

उत्तरी काली पॉलिश वाले मृद्‌भांडों से संबंधित पुरातात्विक स्थलों का अध्ययन इस काल के समाज की काफी जानकारी प्रदान करते हैं।

16.3 समाज

छठी सदी ई. पू. का समाज एक ऐसा समाज था जो अति-महत्वपूर्ण परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था। समाज में प्रचारक, राजकुमार और व्यापारी हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। यह वह काल था जबकि ऐतिहासिक भारत में प्रथम बार नगर अस्तित्व में आते हैं (इसके विषय में आप इकाई 15 में पढ़ चुके हैं)। यह वह समय भी था जब पढ़ाई-लिखाई की परम्परा का प्रारंभ हुआ। इस काल के अंत तक समाज में लेखन की कला को जान लिया गया था। प्राचीन भारत की प्रारंभिक लिपि को ब्राहमी लिपि कहा जाता है। लिखने की जानकारी ने बड़े स्तर पर ज्ञान का विस्तार किया। इससे पहले समाज में ग्रहण किए गए ज्ञान को कंठस्थ कराके एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाया जाता था। जिसमें यह संभावना बनी रहती थी कि कुछ समय बाद कुछ तथ्यों को भुला दिया जाएगा या परिवर्तित कर दिया जाएगा। लिखाई की कला की जानकारी प्राप्त हो जाने का तात्पर्य था कि ज्ञान को बिना तोड़-मरोड़े संग्रहित किया जा सकता था। इस तथ्य ने परिवर्तन की चेतना को और प्रबल बनाया क्योंकि सामाजिक व्यवस्था तथा विश्वासों में समय के परिवर्तन निहित थे। जब एक बार चीजों को लिख दिया गया तो बाद के काल में विचारों एवं विश्वासों में होने वाले परिवर्तन लोगों को साफ दिखाई दिए और पता चल सका कि परिवर्तन कब और क्यों हुए। आइये, अब समाज के उन वर्गों के विषय में पढ़ें, जिनको परिवर्तन के प्रवाह ने प्रभावित किया।

16.3.1 क्षत्रिय

तत्कालीन साहित्य में क्षत्रिय लोग समाज के सबसे अधिक महत्वपूर्ण और शक्तिशाली वर्ग के रूप में प्रकट होते दिखाई पड़ते हैं। बुद्ध और महावीर समाज के इसी समूह से संबंधित थे। ब्राह्मणिक ग्रंथों में क्षत्रियों की समानता योद्धा जाति के साथ की गई है। वर्ण व्यवस्था के

अंतर्गत क्षत्रियों का दूसरे स्तर की जाति के रूप में स्थान है। उनको समाज का शासक वर्ग माना जाता था। किन्तु, बौद्ध साहित्य में क्षत्रियों का दूसरा ही चित्र प्रस्तुत किया गया है। उनके विवाह के नियम दृढ़ एवं कठोर नहीं थे, जो किसी जाति की एक विशेषता होती है। उनको वैशाली एवं कपिलवस्तु जैसे गण संघों के शासक वर्गों का पूर्वज बताया गया है। उनको शाक्य, लिच्छवि, मल्ल आदि कहा गया। ये ऐसे सामाजिक समूह थे जो संयुक्त रूप से भूमि के स्वामी थे। उनकी भूमि पर खेती का कार्य गुलामों एवं मज़दूरों द्वारा किया जाता था जिनको दास तथा कर्मकार कहा जाता था। ऐसा लगता है कि वे ब्राह्मणिक अनुष्ठानों को भी नहीं करते थे। बौद्ध साहित्य में गण संघ के केवल दो सामाजिक समूहों के विषय में ही लिखा गया है और वे उच्च जाति एवं छोटी जाति हैं। इन गण संघों के क्षेत्र में समाज का विभाजन ब्राह्मणिक जातीय व्यवस्था के अनुसार चार भागों में होने के स्थान पर, केवल दोहरा था। ब्राह्मण और शूद्र इस विभाजन में नहीं थे। इन क्षत्रिय जातियों में बहुत-सी वैवाहिक प्रथाओं का प्रचलन था, जिसमें चचेरे भाई-बहन का आपस में विवाह भी सम्मिलित है। विवाह किसके साथ करें या किसके साथ न करें, इसके लिए वे बड़े सजग थे। ऐसा समझा जाता है कि शाक्य लोग इसी कारण समाप्त हो गए। एक कहानी के अनुसार प्रसनजित नामक कौशल के राजा ने किसी शाक्य लड़की से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। शाक्य लोग इस प्रस्ताव की अवहेलना न कर सके। इसलिए उन्होंने एक शाक्य दास लड़की को कौशल नरेश के पास भेज दिया और जिसके साथ राजा ने विवाह कर लिया। इस कन्या से उत्पन्न होने वाली सन्तान राजसिंहासन की उत्तराधिकारी होती। जिस समय राजा को शाक्यों की इस चालाकी का पता लगा तो उसने क्रोध में उनको नष्ट कर दिया। यद्यपि कौशल का राजा और शाक्य दोनों क्षत्रिय थे, परन्तु उनके बीच वैवाहिक संबंधों की प्रथा नहीं थी। इससे संकेत मिलता है कि जिस रूप में हम जाति व्यवस्था को समझते हैं क्षत्रिय उस रूप में जाति नहीं थे। क्षत्रिय लोग अपने स्तर एवं वंशावली के लिए बड़ा अभिमान करते थे। शाक्य, लिच्छवि, मल्ल और इसी प्रकार के अन्य गण अपनी सभाओं में भाग लेने के अधिकार को पूर्ण सजगता के साथ सुरक्षित रखते थे परन्तु इन स्थानों पर अन्य लोगों को भाग लेने की आज्ञा नहीं देते थे। ये सभाएं उनके समाज की अधिकतर सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के विषय में निर्णय करती थीं। वे न तो भूमि-कर देते थे और न ही उनके पास संगठित सेना होती थी। युद्ध के समय पूरा समाज हथियार लेकर युद्ध करता था।

कौसल, काशी आदि के राजाओं का कई स्त्रोतों में क्षत्रिय के रूप में विवरण आता है। ब्राह्मणिक ग्रंथों से भिन्न बौद्ध साहित्यिक ग्रंथ चार वर्णीय जातीय संरचना में क्षत्रियों को प्रथम स्तर पर रखते हैं। एक प्रवचन में महात्मा बुद्ध कहते हैं —"अगर क्षत्रिय सबसे निम्न स्तर तक पतित हो जाता है, वह तब भी सबसे अच्छा है और उसकी तुलना में ब्राह्मण निम्न है।" कुछ क्षत्रियों को विद्वान अध्यापकों एवं विचारकों की श्रेणी में रखा गया है इस प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि क्षत्रियों के विषय में ब्राह्मणों की योद्धा जाति की अवधारणा को केवल ऊपरी व मध्य गंगा घाटी के कुछ राजतंत्र परिवारों के विषय में लागू किया जा सकता था। वे विभिन्न प्रकार के कार्यों को करते थे, जैसे कि धर्म प्रचारक का कार्य, व्यापार एवं खेती की देख-भाल करने के कार्य आदि। विशेषकर पूर्वी भारत में क्षत्रियों का अस्तित्व जाति के रूप में नहीं था। बल्कि वहां पर विभिन्न सामाजिक समूह स्वयं को क्षत्रिय कहते थे।

16.3.2 ब्राह्मण

समकालीन साहित्य में ब्राह्मणों के विषय में जो संदर्भ मिलते हैं उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि वे एक जाति समूह के रूप में थे। जो कोई ब्राह्मण परिवार में जन्म लेता, वह सदैव ब्राह्मण ही रहता। वह अपना व्यापार परिवर्तित कर सकता है, परन्तु वह सदैव ब्राह्मण ही रहता। ब्राह्मणिक ग्रंथों में उनको विशेषाधिकार दिया गया है कि वे ईश्वर व आदमी के बीच मध्यस्थता का काम करते हैं। बलि यज्ञों को सम्पूर्ण करने के लिए पूर्ण अधिकार उनके पास थे। यह गुट इस चेतना से ग्रस्त था कि वे ही सर्वश्रेष्ठ जाति के थे। वे ऐसे नियमों का पालन करते थे, जिससे कि अपवित्र भोजन एवं निवास स्थान से बचा जा सके। तत्कालीन ब्राह्मण ग्रंथ शतपथ ब्राह्मण में ब्राह्मणों के चार लक्षणों का उल्लेख है। ब्राह्मण कुल, उचित आचरण और व्यवहार, प्रसिद्दि की प्राप्ति और मनुष्य को शिक्षित करना। ऐसा होने के कारण वे कुछ विशेषाधिकारों का उपभोग करते थे। उनका सम्मान किया जाता था, उनको भेंट दी जाती थी

और उन्हें मृत्यु दण्ड नहीं दिया जा सकता था। बहुत से ब्राह्मणों ने सन्यासी एवं शिक्षक का जीवन व्यतीत किया। बौद्ध ग्रंथ सामान्यत: ब्राह्मण वर्ग के आलोचक हैं। इन्होंने इस कारण भी उनकी आलोचना की कि वे धार्मिक नैतिक जीवन से विमुख हो गए थे। उन्होंने आडम्बरपूर्ण अनुष्ठानों तथा ब्राह्मणों के लालचीपन की भी आलोचना की। बहुत से ब्राह्मणों ने बौद्ध धर्म को स्वीकार किया। इसलिए ऐसा पाया गया था कि महात्मा बुद्ध के प्रारंभिक अनुयायियों में सबसे अधिक संख्या ब्राह्मणों की थी। किन्तु पाली साहित्य में ऐसे विवरण भी हैं जिनसे पता लगता है कि ब्राह्मणों ने भी अन्य व्यापारों को अपनाया। दस ब्राह्मण जातक में एक कहानी का विवरण है जो हमें ब्राह्मणों के प्रति बौद्ध लोगों का दृष्टिकोण बताती है। कहानी इस प्रकार है, "प्राचीन काल में कुरू राज्य की राजधानी इन्द्रपट्ट थी और कुरू परिवार का राजा युधिटथिल था। उसको सांसारिक एवं आध्यात्मिक मामलों पर सलाह देने के लिए उसका एक मंत्री विधुर था ······· "। उसको बैठने के लिए स्थान देते हुए राजा ने कहा, "विधुर एक ऐसा ब्राह्मण खोजो जो सदाचारी एवं विद्वान हो, वह इन्द्रीय सुख का परित्याग कर चुका हो, उसको मैं उपहार भेंट करूंगा, उपहार, ओ मित्र, वह जहां भी हो उसकी खोज करो, उसको जो भी दिया जाएगा, उससे अति आनन्द की प्राप्ति होगी"।

"ऐ राजन, ऐसे ब्राह्मणों को खोज पाना अति कठिन है, जो सदाचारी एवं विद्वान हो, जो इन्द्रीय सुखों का परित्याग कर, आपके द्वारा दिए गए उपहारों से आनन्द ले सकें"।

"ऐ राजन, ब्राह्मणों के दस वर्ग हैं, वे विभिन्न प्रकार के हैं। उनको गुणों एवं वर्गीकरण के आधार पर इस प्रकार पाया जाता है, वे जड़ी-बुटियों को एकत्रित करते हैं, स्नान करते और श्लोकों का उच्चारण करते रहते हैं। ऐ राजन, वे स्वयं को ब्राह्मण कहते हुए भी एक चिकित्सक की भांति कार्य करते हैं, आप उनको जाते हैं। ऐ महान राजा। आप जिस प्रकार के ब्राह्मण चाहते हैं, उनको कैसे खोजा जाए।"

"कुरू कुल के राजा ने उत्तर दिया, वे विचरण करते रहते हैं" "वे छोटी घंटियां लिए आपके समक्ष आते हैं, जिससे वे अपना सन्देश देते हैं, और वे नौकरों की भांति चार पहियों की गाड़ियों को भी खींचना जानते हैं ········"

"वे एक जल का बर्तन और घुमावदार बेंत लेकर चलते हैं, राजाओं की पीठ पीछे वे विलक्षण लोगों की भांति गांव और देश के नगरों में विचरण करते हुए कहते हैं, अगर हमको कुछ न दिया गया तो हम गांव या जंगल को नहीं छोड़ेंगे। वे टैक्स इकट्ठा करने वालों के अनुरूप हैं ········।"

"शरीर पर लंबे बालों व लंबे नाखूनों के साथ, गंदे दांत, गंदे बाल, धूल और गंदगी से लथपथ, वे भिखारियों की भांति घूमते हैं। वे लकड़ी काटने वालों के अनुरूप हैं ········।"

"वे आंवला, आम और कटहल आदि फलों, मिस्री, सुगंधित वस्तुएं, शहद, उबटन और विभिन्न प्रकार की विक्रय-सामग्रियों को बेचते हैं। ऐ महाराज, वे व्यापारी के अनुरूप हैं ········।"

"वे खेती व व्यापार, दोनों करते हैं, वे बकरियों एवं भेड़ों को पालते हैं, उनके बच्चों को धन के लिए बेचते हैं, वे बेटी और बेटों के विवाहों का आयोजन करते हैं। वे अम्बाथ और वेस्स के अनुरूप हैं ········।"

"कुछ पुरोहित बाहर से लाये हुए भोजन का सेवन करते हैं, बहुत से लोग उनसे पूछते हैं (शकुन के लिए), वे पशुओं को बधिया करते हैं और शकुन के चिन्हों को तैयार करते हैं। वहां पर भेड़ों को काटा जाता है (पुरोहितों के घरों में), वे भैंस, सुअर एवं बकरी काटने वालों के अनुरूप हैं ········।"

"तलवार को हथियार के रूप में धारण किए और चमकती कुल्हाड़ी को हाथ में लिए, वे वेस्स की सड़क (व्यापार वाली सड़क) पर खड़े रहते हैं, वे काफिलों का नेतृत्व करते चलते हैं (उबड़-खाबड़ सड़कों पर से)। वे गायों के झुंड एवं निषादों के अनुरूप हैं ········।"

"वे जंगल में झोंपड़ियों के घर बनाते हैं, वे ऐसे जालों को निर्मित करते हैं जिनसे हिरणों, बिल्लियों, छिपकलियों, मछलियों और कछुओं का वे वध करते हैं। वे शिकारी हैं ········।"

"राजा के पलंग के नीचे ही वे धन के लिए झूठ बोलते हैं, सोमरस की प्रस्तुति तैयार के बाद ही वे स्नान करते हैं। स्नान कराने वालों के अनुरूप ही हैं ....।"
(व्यक्तियों तथा स्थानों के नाम और उच्चारण मूल स्रोत पर आधारित हैं।)

यह कहानी ब्राह्मणों के द्वारा किए जाने वाले विभिन्न कार्यकलापों का चित्रण प्रस्तुत करती है। यह हमें समकालीन समाज में होने वाले विभिन्न व्यवसायों की भी एक झलक प्रदान करती है। वे अपने व्यवसायों में परिवर्तन करने के बावजूद भी अकाट्य रूप से ब्राह्मण समझे जाते थे। वे अपनी जातीय पहचान को नहीं खोते थे। ऐसे विवरण मिलते हैं जिनके अनुसार विद्वान ब्राह्मण अद्वितीय थे। ऐसे भी विवरण हैं, जिनके अनुसार ब्राह्मण कृषक थे, जो अपनी खेती स्वयं करते थे या गुलामों तथा नौकरों की मदद से कराते थे। किन्तु, उनकी मुख्य पहचान एक दिव्य जाति के रूप में पहले ही स्थापित हो चुकी थी।

16.3.3 वैश्य और गहपति

ब्राह्मणिक वर्ण व्यवस्था में वैश्य अनुष्ठानिक क्रम में तीसरे स्थान की जाति थे। उनका मुख्य कार्य पशुओं को पालना, कृषि करना तथा व्यापार करना था। दूसरी ओर, बौद्ध साहित्य में गहपति शब्द का प्रयोग प्रचुरता के साथ किया गया है। गहपति का शाब्दिक अर्थ है कि घर का स्वामी। यह समुदाय भूमि का स्वामी था और ये परिवार श्रम, दासों और नौकरों के श्रम से अपनी भूमि पर खेती करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी उत्पत्ति वैदिक साहित्य में वर्णित राजनय और विश् गुटों से हुई थी। उनकी उत्पत्ति सम्पत्ति पर परिवार एवं व्यक्तिगत स्वामित्व के उद्भव की ओर संकेत करती है। इससे पहले के काल में सम्पत्ति पर सम्पूर्ण कबीले का संयुक्त स्वामित्व था। बौद्ध साहित्य में गहपति शब्द के अतिरिक्त अनेकों प्रकार के व्यवसायों और व्यापारियों का विवरण मिलता है, जिसका वर्गीकरण ब्राह्मणिक ग्रंथों में वैश्यों के रूप में किया गया। उनमें से प्रत्येक अपने कुटुम्बीय समूह से निकटता से संबंधित था और अंतर्जातीय विवाह नहीं करते थे। उनकी पहचान को उनके द्वारा किए जाने वाले व्यवसायों एवं उनकी स्थानीय भौगोलिकता के आधार पर ही निर्धारित किया जाता था। परन्तु ब्राह्मणिक ग्रंथों में जिस प्रकार से वैश्य जाति का चित्रण किया गया है, उस रूप में यह जाति कभी भी विद्यमान नहीं थी। इसकी अपेक्षा बहुत से समूह जातियों के रूप में बन गए। अब हम उन समूहों का अध्ययन करेंगे।

जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि गहपति भू-स्वामियों के एक मुख्य वर्ग के रूप में थे, विशेष रूप से ध्यान देने की बात यह है कि यह गण संघों में बहुत कम मिलते हैं क्योंकि वहां पर भूमि का स्वामित्व क्षत्रिय वंशावलियों के पास था। इनका विवरण प्रचुरता के साथ मध्य गंगा घाटी के राजतंत्रों में मिलता है। वे कृषि संसाधनों का मुख्य उपभोग करने वाले थे और राजाओं के लिए लगान के स्रोत थे। गहपतियों में वे धनी लोग भी सम्मिलित थे जो बढ़ईगिरी, दवाई आदि के व्यवसायों से जुड़े थे। पाली ग्रंथों में एक दूसरे शब्द कुटुम्बिका का प्रयोग परिवार (कुटुम्ब) के स्वामी के पर्यायवाची शब्द के रूप में किया गया है। उनको धनी भू-स्वामी, साहूकार या अनाज का व्यापार करते हुए दिखाया गया है।

यह धनी भू-स्वामियों का ही वर्ग था जिससे कि कुछ धनी व्यापारियों का विकास हुआ। गहपतियों का विवरण व्यापारिक नगरों में भी किया गया है। सम्पत्ति पर व्यक्तिगत स्वामित्व और ब्राह्मणवाद के कमज़ोर प्रभाव के कारण गहपतियों ने अपनी सम्पत्ति का उपभोग व्यापार में किया। पश्चिमी गंगा घाटी में इस सम्पत्ति का उपभोग बलि यज्ञों के लिए किया जाता होगा। भू-स्वामी और व्यापार की इस तरह की दो शाखाएं हो जाने से सेठी वर्ग की उत्पत्ति हुई। सेठी का शाब्दिक अर्थ है "वह व्यक्ति जिसके पास सर्वश्रेष्ठ है" सेठी-गहपति का अर्थ था बहुत धनी व्यापारी या साहूकार जिसके राजा से निकट के संबंध थे। अनाथपिण्डिका, जिसने श्रावस्ती में बुद्ध को जेतावन दिया ऐसा ही अमीर सेठी था। बनारस के एक सेठी का विवरण मिलता है जो व्यापार करता था और उसके पास 500 गाड़ियों का काफिला था। सिक्कों के प्रचलन के साथ उनका साहूकारी का पेशा ज़ोर-शोर से चला। समकालीन साहित्य में शातामना, कर्षपण आदि नाम के सिक्कों का विवरण मिलता है। पुरातात्विक खुदाई से भी पता चलता है कि उस समय सिक्के प्रचलन में आ चुके थे। दूर-दराज के क्षेत्रों के साथ व्यापार के भी विवरण मिलते हैं।

चित्र 6 छठी शताब्दि ई. पू. के सिक्के

बड़े व्यापारियों और भू-स्वामियों के अतिरिक्त छोटे व्यापारियों का भी विवरण मिलता है। इनमें फुटकर दुकानदार, व्यापारी, फेरी करके बर्तन बेचने वाले, बढ़ई, हाथी दांत की वस्तुएं बनाने वाले, माला बनाने वाले और धातु का काम करने वाले आदि शामिल हैं। इन लोगों ने अपने व्यावसायिक संघ बना लिए थे। परिवार के सदस्यों के अतिरिक्त कोई और वह व्यवसाय नहीं कर सकता था। कार्यों का यह स्थानीय विभाजन और व्यवसायों की निश्चित परिवार में सीमित रहने की परम्परा ने इन्हें व्यवसायिक श्रेणियों या शिल्पी संघों का रूप दिया। इन संघों का एक मुखिया होता था जो उनके हितों की देखभाल करता था। राजा का यह कर्तव्य समझा जाता था कि वह श्रेणी संघों के नियमों को स्वीकार करे और उनकी रक्षा करे। श्रेणी संघों का संगठित रूप यह बताता है कि व्यापार और उद्योग काफी विकसित थे। इससे यह भी पता चलता है कि व्यवसायों पर आधारित कुछ समूह अस्तित्व में आ गए थे और अपने व्यवसायों से ही पहचाने जाते थे। यह समूह एक जाति की ही भांति थे। समूहों के अंदर ही विवाह संबंध किए जाते थे। समूह के नियम भी नहीं बदले जा सकते थे।

16.3.4 शूद्र

ब्राह्मणिक व्यवस्था में शूद्र सबसे निम्न स्तर पर समझे जाते थे। अन्य तीनों वर्णों की सेवा करना ही उनका कर्तव्य था। ब्राह्मणिक ग्रंथों के अलावा अन्य ग्रंथ बहुत से ऐसे गरीब और दलित समूहों की चर्चा करते हैं जो शूद्र कहे जाते थे। पाली साहित्य में बहुधा दास और कामगार (मज़दूरी पाने वाले) लोगों का विवरण आता है। दलित शब्द का प्रयोग ऐसे लोगों के लिए होता है जो बहुत गरीब थे और जिनके पास खाने के लिए या तन ढंकने के लिए कुछ नहीं होता था। इस तरह पहली बार हमें विलासिता में रहने वाले धनी और अत्यंत गरीब, दोनों के बारे में विवरण मिलता है। समाज के कुछ समूहों का अत्यंत गरीब होना तथा शूद्र वर्ण के अस्तित्व में आने का कारण शायद यह था कि समाज के धनी और शक्तिशाली वर्ग ने भूमि और अन्य संसाधनों पर अधिकार कर लिया था। सभी तरह के संसाधनों के अभाव में शूद्र वर्ग के लोग दूसरों की सेवा और धनी लोगों की भूमि पर काम करने के लिए मजबूर थे। सामान्यत: कारीगर और दस्तकार भी शूद्रों की श्रेणी में मान लिए जाते थे। अधिकतर धर्मसूत्र शूद्रों के विभिन्न समूहों के उदय के लिए संकीर्ण जाति की परिकल्पना को उत्तरदायी मानते

हैं। इस संकल्पना के अनुसार अगर कोई अंतर्जातीय विवाह करेगा तो उसके वंशज निम्न जाति के होंगे। कर्मकाण्डों के लिये यह लोग सामाजिक व आर्थिक स्तर में किसानों, दासों और कारीगरों की तरह थे। वैदिक समाज के कुटुम्बीय संबंधों के अंत से यह वर्ण सबसे अधिक हानि में रहा।

समकालीन साहित्य में दासुद्धा का काफी विवरण मिलता है। यह ऐसे दास थे, जिनकी कोई वैधता नहीं थी। शूद्र मजदूर अधिकांशतया युद्धबंदी होते थे अथवा ऐसे लोग थे जो ऋण वापस नहीं कर पाते थे। धनी लोगों की भूमि पर उनसे जबरदस्ती काम कराया जाता था। ग्रामीण क्षेत्रों में दास, कर्मकार तथा कसक (कृषक) मज़दूरों के प्रमुख स्रोत थे। नगरों के अस्तित्व में आने से अमीर और गरीब के बीच की खाई और बढ़ गई।

उपरोक्त समूहों के अतिरिक्त बुद्ध के काल की सामाजिक श्रेणियों की सूची बहुत लम्बी है। घुमक्कड़ नाचने और गाने वाले, जो एक गांव से दूसरे गांव घूमते फिरते थे, अपनी कला का प्रदर्शन करते थे। इनके अतिरिक्त करतब और हाथ की सफाई दिखाने वाले, मसखरे, हाथी के करतब दिखाने वाले, सूत्रधार, सैनिक, लेखक, धनुर्धारी, शिकारी और नाई आदि कुछ ऐसे सामाजिक समूह हैं जिनके विषय में हमें जानकारी मिलती है। इनको समकालीन जातीय श्रेणियों में रख पाना कठिन है। शायद यह वर्ण व्यवस्था के बाहर थे। इनमें से अधिकतर कृषि पर आधारित नये समाज के प्रभाव क्षेत्र से बाहर थे। सामान्यत: उन्हें घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। कभी-कभी यह समूह विद्रोह भी करते थे। जातक कथाओं में युद्धों के विवरण भरे पड़े हैं।

गरीब शूद्रों के शहर के बाहर निवास करने का विवरण मिलता है। इसका सीधा प्रभाव यह पड़ा कि छुआछूत अस्तित्व में आया। चाण्डाल अलग गांवों में रहते थे। उन्हें अत्यधिक अछूत माना जाता था। यहां तक कि एक सेठी की लड़की को चाण्डाल देखने पर अपनी आंखे धोनी पड़ी। इसी प्रकार एक ब्राह्मण इस बात से चिन्तित था कि चाण्डाल के शरीर को छूने वाली हवा अगर उसे छू गई तो वह (ब्राह्मण) अपवित्र हो जाएगा। चाण्डाल लोग केवल मरे हुए आदमी के शरीर से उतारे वस्त्र पहन सकते थे और टूटे हुए बर्तनों में खाना खा सकते थे। पुक्कुस, निषाद और वेन इसी प्रकार के अन्य घृणित समूहों में आते थे। राजा के शासक के रूप में रहने का समर्थन यह कहकर किया जाता था कि वह लूटमार करने वालों कबीलाइयों से जन-मानस की रक्षा करता था। यह वह पिछड़े हुए कबीले थे जो जंगलों में रहते थे और वहां से खदेड़े जाते थे। वे या तो दास बन जाते थे या डाकू। समकालीन साहित्य में डाकुओं के गांवों का भी वर्णन आता है।

16.3.5 घुमक्कड़ सन्यासी

इस काल का एक प्रमुख समूह परिव्राजक और श्रमण का था। यह वह लोग थे जिन्होंने अपने घर त्याग दिए थे। यह लोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते थे और जीवन के अर्थ, समाज और आध्यात्मिकता पर चर्चा करते थे। महावीर और बुद्ध इसी प्रकार के लोगों में थे।

16.3.6 स्त्रियों की दशा

छठी शताब्दि ईसा पूर्व के समाज और अर्थव्यवस्था के परिवर्तनों ने स्त्रियों की स्थिति को भी प्रभावित किया। चूंकि पिता की सम्पत्ति पर पुत्र को अधिकार प्राप्त होता था इसलिए व्याभिचार रोकने पर बहुत जोर दिया जाता था। समकालीन साहित्य में स्थान-स्थान पर कहा गया है कि राजा के दो प्रमुख कर्तव्य हैं — सम्पत्ति और परिवार की मर्यादा का उल्लंघन करने वालों को दंड देना। निरीह दास की भांति रहने वाली पत्नी को आदर्श पत्नी कहा जाता था। परन्तु यह बात मुख्यत: अमीर लोगों की पत्नियों पर लागू होती थीं। उनके लिए पत्नी वैध सन्तान को जन्म देने का साधन मात्र थी। परन्तु साथ ही ऐसी महिलाओं की संख्या भी बहुत बड़ी थी जो अपने स्वामी और स्वामिनियों की सेवा करने में सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर देती थीं। महिलाओं को आदमियों की तुलना में हेय दृष्टि से देखा जाता था। उन्हें किसी भी सामान्य सभा में बैठने के योग्य नहीं समझा जाता था। स्त्रियों को हमेशा पिता, भाई अथवा पुत्र के नियंत्रण में रहना होता था। संघ (बौद्ध) में भी उन्हें पुरुषों से नीचा समझा जाता था।

बोध प्रश्न 1

1) दस ब्राह्मण जातक की कथा से आप किस प्रकार का निष्कर्ष निकाल सकते हैं ? पांच पंक्तियों में अपना उत्तर लिखिए।

....
....
....
....
....

2) ब्राह्मणों और क्षत्रियों में क्या असमानताएं हैं ?

....
....
....
....
....

3) बुद्ध के काल में शूद्रों की पतनशील दशा का वर्णन कीजिए।

....
....
....
....
....
....

16.4 अर्थव्यवस्था

हमने देखा कि राज्य तंत्र की स्थापना और समाज में श्रेणीबद्धता, दोनों प्रक्रियाएं पहली सहस्राब्दि ई. पू. के मध्य तक काफी महत्वपूर्ण स्थान ले चुकी थी। यह दोनों प्रक्रियाएं, जो आपस में संबंधित थी, इसलिए अस्तित्व में आई क्योंकि नई कृषि व्यवस्था कृषकों को जीवन यापन के साधन प्रदान कर सकी। साथ ही यह समाज के उस वर्ग को भी, जो सीधे कृषि से जुड़ा हुआ नहीं था, यह साधन उपलब्ध करा सकी। छठी-पांचवी शताब्दि ई. पू. की आर्थिक दशा पर प्रकाश डालने वाले साहित्यिक और पुरातात्विक स्रोत उस काल के बड़े हुए कृषि उत्पादन को पुष्ट करते हैं (इन स्रोतों का उल्लेख इकाई-17 में किया गया है)। इसके अतिरिक्त:

1) पूर्णतया दान-दक्षिणा पर आधारित मठ-व्यवस्थाओं का विकास भी अधिक कृषि उत्पादन को दर्शाता है।

2) अगर कृषि उत्पादन इतना न होता कि समाज के अन्य वर्गों की खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति न कर पाता तो सोलह महाजनपद, उनके महत्वपूर्ण नगर और स्थायी सेनाओं का अस्तित्व संभव नहीं होता।

3) साथ ही इस काल में ऐसे प्रमुख नगर बन चुके थे जो व्यापार मार्गों पर स्थित थे तथा जिनमें विविध प्रकार के उच्च स्तर के व्यवसाय थे। नदी घाटियों के विशाल मैदानी क्षेत्रों में ऐसे नगरों का होना भी कृषि द्वारा अधिक खाद्य उत्पादन का सबूत है।

आइए, इस काल के आर्थिक जीवन के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं पर दृष्टि डालें।

16.4.1 खाद्य उत्पादक अर्थव्यवस्था के विकास के कारण

आइए पहले यह देखें कि इस बढ़े हुए कृषक और खाद्य उत्पादन के लिए कौन से तत्व उत्तरदायी थे। समकालीन स्रोतों का अध्ययन निम्न कारकों को दर्शाता है:

1) छठी शताब्दि ई. पू. के बाद के काल में लोहे के औज़ारों ने गंगा के मैदानों में जंगलों को साफ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस क्षेत्र के बड़े भूभाग में धान, गेंहू, जौ और बाजरे की खेती होती थी।

2) बौद्ध लोग पशुओं की रक्षा पर बहुत बल देते थे। सुत्तनिपत के अनुसार पशुओं को नहीं मारना चाहिए क्योंकि वह अनाज प्रदान करते हैं। इस प्रकार, कृषि कार्यों के लिए पशुओं की रक्षा करने पर बल दिया जाता था।

3) उत्तर वैदिक काल की तुलना में बुद्ध के काल में अधिक अनाज के उत्पादन का एक कारण रोपाई द्वारा धान की पैदावार करना था।

4) धान अथवा चावल का उत्पादन करने वाली अर्थव्यवस्था की कमी की पूर्ति के लिए पशु-पालन और शिकार किया जाता था। यह उनकी अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख साधन और जीवन यापन का स्रोत था। अनेकों पुरातात्विक स्थलों से मवेशी, भेड़, बकरी, घोड़े और सुअर की हड्डियां बड़ी मात्रा में प्राप्त हुई हैं। पशुओं का उपयोग केवल हल चलाने और सामान ढोने के लिए ही नहीं होता था, बल्कि समाज का एक वर्ग संभवत: मासांहारी भी था।

चित्र 7 कृषि में प्रयोग होने वाले औज़ार

16.4.2 ग्रामीण अर्थव्यवस्था

शहरों के आस पास की उपजाऊ भूमि की अधिक उपज के कारण व्यवसाय भी विकसित हुए। भरण पोषण पर आधारित अर्थव्यवस्था का बाज़ार की अर्थव्यवस्था में संक्रमण हो रहा था। सिक्कों के प्रचलन ने इस प्रक्रिया में बहुत योगदान किया। इसने अधिक गतिशीलता तथा व्यवसायों और व्यापार को विकास प्रदान किया तथा एक बड़े क्षेत्र में आर्थिक गतिविधियों को बढ़ाया। इस सबका परिणाम यह हुआ कि एक जटिल ग्रामीण और शहरी अर्थव्यवस्था का विकास हुआ।

बहुत से समकालीन साहित्यिक स्रोतों से यह जानकारी मिलती है कि बहुत से ग्रामीण केन्द्रों की अर्थव्यवस्था का अपना एक रूप था। विभिन्न ग्रामीण समुदायों के भूमि पर अधिकारों का विवरण मिलता है। पाली साहित्य में तीन प्रकार के गांवों का विवरण मिलता है:

1) ऐसे गांव जिनमें विभिन्न जातियों व समुदायों के लोग रहते थे। इस प्रकार के गांव अधिक थे।

2) अर्द्ध-शहरी गांव एक प्रकार के व्यावसायिक केन्द्र थे। यह अन्य गांवों के लिए एक बाज़ार का काम करते थे और शहरों तथा ग्रामीण क्षेत्रों के बीच सम्पर्क के रूप में कार्य करते थे।

3) जंगलों की सीमाओं पर स्थित गांव भी थे, जिनमें शिकारी तथा बहेलिये (चिड़ियां पकड़ने वाले) रहते थे। यह बहुत सरल जीवन व्यतीत करते थे।

घनी जनसंख्या वाले क्षेत्रों की अतिरिक्त जनसंख्या द्वारा नई बस्तियों की स्थापना से ग्रामीण अर्थव्यवस्था विकसित हुई। नष्ट हो रहे गांवों को फिर से बसाने ने भी इस अर्थव्यवस्था का विकास किया। नये स्थानों पर बसने के लिए राज्य द्वारा पशु, बीज, धन और सिंचाई के साधन प्रदान कराए जाते थे। इन लोगों को करों में छूट और अन्य सुविधाएं भी दी जाती थीं। अवकाश प्राप्त अधिकारियों और पुरोहितों को भी नये क्षेत्रों में भूमि प्रदान की जाती थी। इन क्षेत्रों की भूमि को बेचना, गिरवी रखना और उत्तराधिकार में देना मना था। चरागाहों पर सबका समान अधिकार था। इन गांवों की अपनी स्वतंत्र अर्थव्यवस्था थी। ग्रामीण क्षेत्रों का प्रमुख व्यवसाय खेती करना था। गांवों की अतिरिक्त उपज शहरों में पहुंचती थी तथा शहर आवश्यकता की अन्य वस्तुएं गांवों तक पहुंचाते थे।

खेती के प्रमुख व्यवसाय होने के साथ-साथ पशु-पालन, खेती से संबंधित छोटे कारीगर उत्पादन, जंगल और स्थानीय आवश्यकता के लिए पशुओं की आपूर्ति ग्रामीण अर्थव्यवस्था की अन्य विशेषताएं थीं।

16.4.3 शहरी अर्थव्यवस्था

शहरी अर्थव्यवस्था पर उन व्यापारियों तथा कारीगरों का प्रभाव था जो एक विस्तृत क्षेत्र के लिए वस्तुओं का भारी मात्रा में उत्पादन और विनिमय करते थे। शहरी अर्थव्यवस्था के विकास के लिए निम्न चीज़ें आवश्यक थीं।

- अतिरिक्त अन्न उत्पादन (जिसकी पूर्ति पास के गांवों से होती थी)
- विशिष्ट कारीगर उत्पादन
- व्यापारिक विनिमय के केन्द्र
- धातु मुद्रा का प्रचलन
- कानून और व्यवस्था स्थापित करने वाली राजनैतिक व्यवस्था
- पढ़ा-लिखा सामाजिक वर्ग।

शहरी अर्थव्यवस्था मुख्यत: दो कारकों पर निर्भर थी:

i) ऐसा औद्योगिक उत्पादन, जिसमें बहुत प्रकार के व्यवसायी और कारीगर लगे हुए थे।

ii) शहर का आंतरिक तथा अन्य शहरों के साथ व्यापार।

हम प्रत्येक का अलग-अलग अध्ययन करेंगे।

चित्र 8 प्राचीन शहर के बाज़ार की चित्रकार की परिकल्पना

16.4.4 शहरी व्यवसाय

शहरी व्यवसायों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है। पहले वह जो उत्पादन की किसी न किसी प्रक्रिया से जुड़े थे और दूसरे वह जिनका किसी प्रकार के उत्पादन से कोई संबंध नहीं था। द्वितीय वर्ग मुख्यत: प्रशासनिक अधिकारियों का था और इसका अर्थव्यवस्था पर कोई सीधा प्रभाव नहीं पड़ता था। यह सेवाओं की श्रेणी में आता था। व्यापारी वर्ग भी इस श्रेणी में आता था, परन्तु वह वस्तुओं के वितरण और विनिमय द्वारा अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था। उत्तरी भारत में अनेक स्थलों की खुदाई से प्राप्त मिट्टी के बर्तन (विशेषकर उत्तरी काली पॉलिश वाले), पकाई गई मिट्टी की मानव व पशु आकृतियां और खेल तथा मनोरंजन की वस्तुएं, हड्डी और हाथी दांत की वस्तुएं; सिक्के, पत्थर व शीशे की वस्तुएँ, मनके, तांबे और लोहे की वस्तुएं आदि अनेक प्रकार के कारीगर उत्पादन के साक्षी हैं। यह कारीगर उत्पादन निम्न वर्गों में बांटे जा सकते हैं:

1) मिट्टी के बर्तन बनाना, जिनमें पकाई गई मिट्टी की मानव व पशु आकृतियां और ईटें सम्मिलित हैं।
2) बढ़ईगिरी और लकड़ी की वस्तुओं का निर्माण
3) धातु कला
4) पत्थर तराशने की कला
5) कांच निर्माण कला
6) हड्डियों और हाथी दांत की वस्तुओं की कला
7) अन्य मिश्रित प्रकार के उद्योगों में माला बनाना, तीर व धनुष बनाना, कंघी, टोकरियां, इत्र, तेल व वाद्य यंत्र थे।

16.4.5 व्यापार तथा व्यापारिक मार्ग

विशिष्ट कारीगर उत्पादन के साथ व्यापार का विकास भी जुड़ा हुआ है। उस काल में देश के अंदर और विदेशों से व्यापार काफी फल-फूल रहा था। अनेक व्यापारी अनेकों वस्तुओं के व्यापार से समृद्ध हो रहे थे। सिल्क, मलमल. हथियार, सुगंधित द्रव्य, हाथी दांत, हाथी दांत

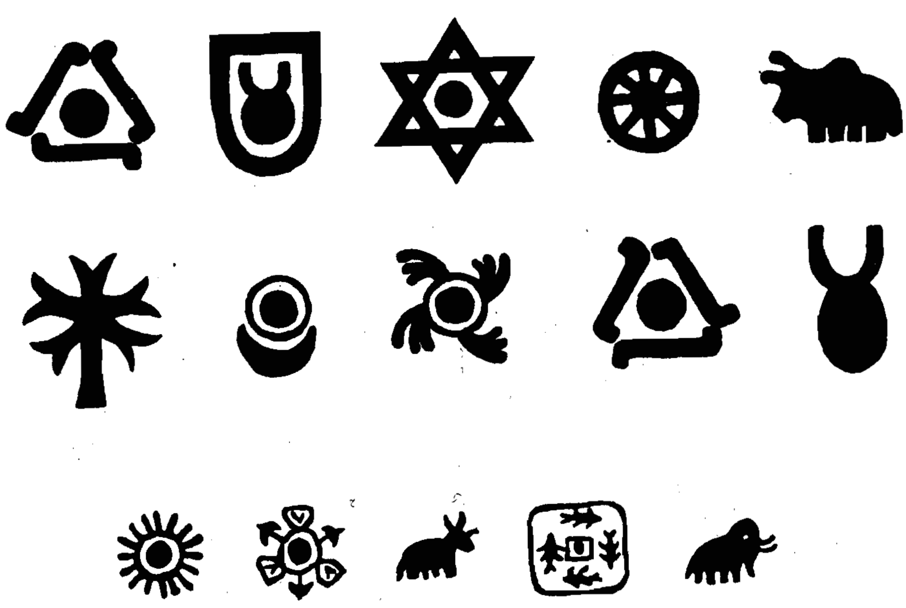

चित्र 9 सिक्कों पर बने हुये चिन्ह

की वस्तुएं तथा जेवरात आदि थे। यह व्यापारी पूरे देश में नदी मार्गों से यात्रा करते थे और पूर्व में ताम्लुक और पश्चिम में भड़ौच से समुद्री यात्राओं से विदेशों में श्रीलंका और बर्मा तक जाते थे। देश के अंदर यह लोग कुछ निश्चित मार्गों का प्रयोग करते थे। इनमें से एक मार्ग श्रावस्ती से प्रतिस्थान (आधुनिक पैथन जो महाराष्ट्र में है) तक था, दूसरा मार्ग श्रावस्ती को राजगृह से जोड़ता था, तीसरा मार्ग हिमालय की तलहटी से घूमता हुआ तक्षशिला को श्रावस्ती से जोड़ता था, चौथा प्रमुख मार्ग काशी को पश्चिमी तटों से मिलाता था। नगर ही दूरस्थ व्यापार के प्रमुख केन्द्र थे। क्योंकि यह उत्पादन और वितरण के प्रमुख केन्द्र थे और अधिक सुरक्षित थे।

वस्तु-विनिमय के साथ-साथ अब विनिमय के नये तरीके सामने आ रहे थे। अब वस्तुओं के क्रय-विक्रय के लिए कहपण (कर्षापण) नामक सिक्का प्रचलन में आ गया था। यह चांदी और तांबे का सिक्का था जिस पर व्यापारी अथवा शिल्पी संघ की छाप रहती थी, जो इन सिक्कों के मानदंड का प्रतीक थी। बैंकों की परिकल्पना भी नहीं थी। अतिरिक्त धन से तो सोने के ज़ेवर आदि खरीदे जाते थे या इस धन को बर्तनों में रखकर ज़मीन में दबा कर रखा जाता था या किसी मित्र के पास सुरक्षित रख देते थे।

बोध प्रश्न 2

1) वह कौन-से प्रमुख कारक थे, जिन्होंने कृषि के विकास को प्रभावित किया ?

....
....
....
....
....
....
....

2) ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास किस प्रकार हुआ ?

....
....
....
....
....
....
....

3) इस इकाई के अध्ययन काल के प्रमुख व्यापार मार्ग कौन-कौन से थे ?

....
....
....
....
....

16.5 सारांश

इस इकाई में आपने जो अध्ययन किया वह अधिकतर प्रारम्भिक पाली ग्रंथों और उत्तरी काली

पालिश वाले बर्तनों के काल के पुरातात्विक स्त्रोतों के आधार पर लिखा गया है। इसी काल में राज्य के गठन और सामाजिक श्रेणीबद्धता की प्रक्रिया अस्तित्व में आई और पहली सहस्त्राब्दि ई. पू. के मध्य तक इसने काफी महत्व प्राप्त कर लिया। समाज में चारों वर्णों, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के सामाजिक कार्य कलापों पर नये सिरे से बल दिया गया उत्तर वैदिक काल अथवा सलेटी रंग के मृदभाण्डों की संस्कृति, जिसमें ब्राह्मण और क्षत्रिय मुख्य भूमिका निभाते थे, में कई परिवर्तन हुये। यह परिवर्तन विशेष कर व्यापारी या वैश्य वर्गों के कारण थे, जिन्होंने बढ़ते व्यापार से काफी धन कमा लिया था। शूद्रों पर तरह-तरह के नियंत्रण लगाये जा रहे हैं। खाद्यान्न का उत्पादन काफी बढ़ गया था। उत्पादन में वृद्धि के प्रमुख कारण लोहे के औज़ारों का प्रयोग, रोपाई द्वारा धान की खेती तथा धार्मिक आधार पर पशुओं की रक्षा करना था। सामान्य भरण पोषण पर आधारित अर्थव्यवस्था का स्थान अब बाजार अर्थव्यवस्था ने ले लिया था। व्यापार तथा धातु के सिक्कों के प्रचलन ने शहरी अर्थव्यवस्था का विकास किया। जहाँ एक ओर ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार पशु पालन और भूमि, वन और पशु पालन से सम्बन्धित साधारण कारीगर उत्पादन था दूसरी ओर शहरी अर्थव्यवस्था पर बड़े वर्गों का प्रभुत्व था। इससे व्यापार और व्यापारिक मार्गों का विस्तार हुआ और एक जटिल ग्रामीण व शहरी अर्थव्यवस्था का विकास हुआ।

16.6 शब्दावली

वेस्स — पाली भाषा में "वैश्य" के लिये प्रयोग किया जाने वाला शब्द।

जेतावन — बुद्ध को एक व्यापारी द्वारा दान में दी गई वाटिका।

पुक्कुस, निषाद, वेन — तीन अछूत जातियाँ।

सुत्तनिपत्त —एक बौद्ध ग्रंथ।

जातक कथाएँ — बुद्ध के पिछले जन्मों से जुड़ी हुई कहानियों का संग्रह।

दस ब्राह्मण जातक — जातक कथाओं की एक पुस्तक का नाम।

16.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) उपभाग 16.3.2 देखें। अपने उत्तर में आप को यह बताना चाहिए कि जातक के अनुसार कैसे ब्राह्मणों को अपना व्यवसाय चुनने की छूट थी और वे कौन-कौन से धन्धों में लगे थे।

2) उपभाग 16.3.1 देखें। आपके उत्तर में दोनों समूहों की वह भूमिका सम्मिलित होनी चाहिए जो समकालीन साहित्य में मिलती हैं इनके द्वारा किये जाने वाले विभिन्न क्रिया कलापों पर भी ध्यान दीजिये।

3) देखें उपभाग 16.3.4 आपको अपने उत्तर में यह दिखाना चाहिए कि किस प्रकार शक्तिशाली वर्गों द्वारा भूमि पर अधिकार, ऋणबद्धता, कानूनी अधिकार का अभाव, उच्च वर्ण के लोगों के जन्म की पवित्रता और शूद्रों के जन्म की अपवित्रता आदि शूद्रों की गिरती हुई दशा के लिये उत्तरदायी थे।

बोध प्रश्न 2

1) उपभाग 16.4.1 देखें। आप के उत्तर में बढ़े हुये कृषि उत्पादन के लिये उत्तरदायी तत्वों जैसे लौहे के औज़ारों का प्रयोग कृषि के लिये पशुधन की रक्षा और रोपाई द्वारा धान की

खेती आदि तथ्य सम्मिलित होने चाहिए।

2) उपभाग 16.4.2 देखें। आप अपने उत्तर में यह दिखायें कि नई बस्तियों की स्थापना से ग्रामीण अर्थव्यवस्था का किस प्रकार विकास हुआ।

3) उपभाग 16.4.5 देखें। आप अपने उत्तर में तमलूक और भड़ोच से बर्मा और श्री लंका के मार्गों की चर्चा करें साथ ही देश के चार आन्तरिक प्रमुख मार्गों — श्रावस्ती से प्रतिस्थान, श्रावस्ती से राजगृह, तक्षिला से श्रावस्ती और काशी से पश्चिमी घाटों तक के विषय में भी लिखें।

इकाई 17 बौद्ध धर्म, जैन धर्म तथा अन्य धार्मिक विचार

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य
17.1 प्रस्तावना
17.2 नये धार्मिक विचारों का उद्‌भव
17.3 गौतम बुद्ध और बौद्ध धर्म की उत्पत्ति
17.4 बुद्ध के उपदेश
17.5 बौद्ध धर्म का विकास
17.5.1 बौद्ध धर्म का विस्तार
17.5.2 बौद्ध संघ (संस्था के रूप में)
17.5.3 बौद्ध मत की सभायें
17.6 जैन धर्म की उत्पत्ति
17.6.1 पार्श्वनाथ
17.6.2 महावीर
17.7 महावीर के उपदेश
17.8 जैन धर्म का विकास
17.8.1 जैन धर्म का विस्तार
17.8.2 जैन सभा
17.8.3 विभिन्न सम्प्रदाय
17.9 अन्य अनीश्वरवादी विचार
17.9.1 आजीवक
17.9.2 अन्य विचार
17.10 नये धार्मिक आंदोलनों का प्रभाव
17.11 सारांश
17.12 शब्दावली
17.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

17.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप यह जान पाएंगे:

- कि छठी शताब्दी ई. पू. में नये धार्मिक विचारों के उदय की पृष्ठभूमि क्या थी,
- कि बौद्ध मत एवं जैन मतों का उद्‌भव और विकास कैसे हुआ,
- कि इन धर्मों के मुख्य सिद्धान्त क्या थे,
- कि इन धर्मों का समकालीन समाज पर क्या प्रभाव पड़ा,
- कि छठी शताब्दी ई. पू. में प्रचलित अन्य अनीश्वरवादी विचार क्या थे, और
- इन धार्मिक आंदोलनों का महत्व क्या था।

17.1 प्रस्तावना

भारतीय इतिहास में छठी शताब्दी ई. पू. का बड़ा महत्व है क्योंकि यह काल नये धर्मों के विकास से सम्बद्ध है। हम पाते हैं कि इस काल में ब्राह्मणों के अनुष्ठानिक रूढ़िवादी विचारों का विरोध बढ़ रहा था। फलत: बहुत सारे अनीश्वरवादी धार्मिक आंदोलनों का उद्‌भव हुआ। इनमें से बौद्ध मत एवं जैन मत संगठित तथा लोकप्रिय धर्मों के रूप में विकसित हुए। इस इकाई में इन नये धार्मिक विचारों के उद्‌भव और महत्व को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

इस इकाई में सबसे पहले, अनीश्वरवादी विचारों के उद्‌भव तथा फैलाव के लिए उत्तरदायी कारणों को विश्लेषित किया गया है। फिर यह बताया गया है कि बुद्ध तथा महावीर ने किस प्रकार से मानव के दु:ख का समाधान खोजने के लिए अपने तरीके से प्रयास किए। दोनों धर्मों के उद्‌भव के कारणों में समानता है, वहीं पर दोनों धर्मों के कुछ सिद्धांत भी समान हैं। परन्तु कुछ मूल सिद्धान्तों में भिन्नता भी है। इन्हीं मुद्दों पर इस इकाई में विवेचन किया गया है।

इस इकाई में छठी शताब्दी ई. पू. में उभरे अन्य अनीश्वरवादी विचारों के विषय में भी बताया गया है। अन्त में इस तथ्य का विवेचन किया गया है कि इन नये धार्मिक आंदोलनों का तात्कालिक आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ा।

17.2 नये धार्मिक विचारों का उद्‌भव

नये धार्मिक विचारों का उद्‌भव उस युग की प्रचलित सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के अंतर्गत निहित था। अब हम उन आधारभूत कारणों का विवेचन करेंगे जिन्होंने इनके उद्‌भव में भूमिका अदा की।

इस काल के नए समाज के संदर्भ में वैदिक धर्म पद्धति

i) जटिल तथा अर्थ-विहीन हो गयी थी। बलि एवं अनुष्ठान अक्सर बड़े पैमाने पर आयोजित किए जाने लगे। बड़े समुदायों के बिखरने के साथ-साथ इनके आयोजनों में लोगों की भागीदारी कम हो गई और समाज के कई समूहों के लिए अर्थहीन हो गई।

ii) बलि-यज्ञों तथा अनुष्ठानों के बढ़ते महत्व ने समाज में ब्राह्मण समुदाय के प्रभुत्व को स्थापित किया। वे पुजारी तथा अध्यापक, दोनों का कार्य करते थे और धार्मिक अनुष्ठानों के आयोजन पर अपने एकाधिकार के कारण वे चार वर्णों में विभाजित समाज में अपने को सर्वश्रेष्ठ मानते थे।

iii) समकालीन आर्थिक-राजनीतिक परिस्थितियों ने भी नए सामाजिक समुदायों के उद्‌भव में मदद की। ये समुदाय आर्थिक रूप से सम्पन्न थे। शहर में रहने वाले व्यापारियों तथा अमीर खेतिहर समुदायों के पास प्रचुर सम्पत्ति थी। क्षत्रिय समुदाय, चाहे वे राजतंत्र में हों चाहे गणतंत्र में, के हाथ में अब पहले से अधिक राजनीतिक शक्ति थी। ये सामाजिक समुदाय उस सामाजिक व्यवस्था का विरोध कर रहे थे, जो ब्राह्मणों ने वंश के आधार पर निर्धारित की थी। बौद्ध मत तथा जैन मत ने जन्म के आधार पर सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा को कोई महत्व नहीं दिया जिसके कारण वैश्य इन सम्प्रदायों की ओर आकर्षित हुए। इसी तरह से ब्राह्मणों के प्रभुत्व से क्षत्रिय समुदाय अर्थात् शासक वर्ग भी नाराज था। संक्षेप में, समाज में ब्राह्मण की सर्वोच्चता ने असंतोष उत्पन्न किया और इसी ने नवीन धार्मिक विचारों के उदय में सामाजिक सहयोग प्रदान किया। यह ध्यान देने योग्य बात है कि दोनों बुद्ध तथा महावीर क्षत्रिय समुदाय से थे। मगर जटिल सामाजिक समस्याओं से जूझते हुए वे जन्म द्वारा निर्धारित सीमाओं को पार कर गए। जब हम यह जानने की कोशिश करते हैं कि उस समय के समाज में इनके विचार कितने लोकप्रिय हुए

तो हम पाते हैं कि राजाओं, बड़े व्या""रियों, अमीर गृहस्थों, ब्राह्मणों तथा वेश्याओं ने भी इनके विचारों के प्रति उत्साह दिखाया।

प्रचलित धार्मिक सम्प्रदायों की आलोचना करने वालों में बुद्ध एवं महावीर ही पहले नहीं थे। इनसे पहले दूसरे धार्मिक उपदेशकों जैसे कपि, मखल्लि, गोसाल, अजिता केशंकबलिन और पकुध कात्यापन ने वैदिक धर्म में सुधार के लिए उसकी बुराइयों को उजागर किया था। उन्होंने भी ईश्वर एवं जीवन के विषय में नवीन चिन्तन प्रस्तुत किए। नये दर्शनों को भी प्रचारित किया गया। परन्तु बुद्ध और महावीर ने नये वैकल्पिक धर्मों की व्यवस्था को प्रस्तुत किया।

यह वह पृष्ठभूमि थी जिसमें छठी शताब्दी ई. पू. में नवीन धार्मिक व्यवस्थाओं की उत्पत्ति और स्थापना हुई। इन सभी नवीन धार्मिक सम्प्रदायों में बौद्ध सम्प्रदाय तथा जैन सम्प्रदाय सबसे अधिक लोकप्रिय और अच्छी तरह से संगठित थे। अब हम बौद्ध मत और जैन मत के उद्‌भव तथा विकास का अलग-अलग विवेचन करेंगे।

17.3 गौतम बुद्ध और बौद्ध धर्म की उत्पत्ति

बौद्ध मत की स्थापना गौतम बुद्ध ने की थी। उनके मां-बाप ने उनका नाम सिद्धार्थ रखा था। उनके पिता शुद्धोधन शाक्यगण के मुखिया थे तथा उनकी मां का नाम माया था जो कोलियागण की राजकुमारी थी। उनका जन्म नेपाल की तराई में स्थित लुम्बिनी (आधुनिक रुमिन्दी) नामक स्थान पर हुआ था। यह जानकारी हमें अशोक के एक स्तम्भ लेख के द्वारा मिलती है। बुद्ध की वास्तविक जन्म तिथि वाद-विवाद का विषय है परन्तु अधिकतर विद्वानों द्वारा इसको लगभग 566 ई. पू. माना गया है।

यद्यपि उनका जीवन शाही ठाठ-बाट में व्यतीत हो रहा था लेकिन यह गौतम के मस्तिष्क को आकर्षित करने में असफल रहा। पारम्परिक स्रोतों के अनुसार, एक बूढ़े आदमी, एक बीमार व्यक्ति, एक मृत शरीर तथा एक सन्यासी को देखकर उन्हें बहुत दु:ख हुआ। मानव जीवन के दुखों ने गौतम पर गहरा प्रभाव डाला।

मानवता को दुखों से मुक्त कराने की खोज में उन्होंने 29 वर्ष की आयु में अपने घर, पत्नी तथा बेटे का परित्याग कर दिया। गौतम ने सन्यासी की भांति घूम-घूमकर छ: वर्ष व्यतीत किए। उन्होंने वैशाली के अलारा कालमा से ध्यान करने और उपनिषदों की शिक्षा प्राप्त की। उनकी यह शिक्षा गौतम को अन्तिम मुक्ति के लिए राह न दिखा सकी, तो उन्होंने पांच ब्राह्मण सन्यासियों के साथ उनका भी परित्याग कर दिया।

उन्होंने कठोर संयम को अपनाया और सत्य को प्राप्त करने के लिए विभिन्न कठोर यातनाएं सहन कीं। अन्तत: इसको त्याग करके वे उरूवेला (आधुनिक बोध गया के पास निरंजना नदी के किनारे) गये और एक पीपल के वृक्ष (बौद्ध वृक्ष) के नीचे ध्यान मग्न हो गये। अन्तत: अपनी समाधि के उनचासवें दिन उन्हें "सर्वोच्च ज्ञान" की प्राप्ति हुई। तब से उनको "बुद्ध" (ज्ञानी पुरुष) या "तथागत" (वह जो सत्य को प्राप्त करे) कहा जाने लगा।

यहां से प्रस्थान करके वे सारनाथ के मृगदाव वाराणसी के पास पहुंचे और वहां पर उन्होंने अपना धर्मोपदेश दिया जिसको "धर्मचक्र प्रवर्तन" (धर्म के चक्र को घुमाना) के नाम से जाना जाता है।

अश्वजित, उपालि, मोगाललना, श्रेयपुत्र और आनन्द — ये बुद्ध के पहले पांच शिष्य थे। बुद्ध ने बौद्ध संघ का सूत्रपात किया। उन्होंने अपने अधिकतर धर्मोपदेश श्रावस्ती में दिए। श्रावस्ती का धनीं व्यापारी अनथापिण्डिका बुद्ध का शिष्य हो गया और उसने बौद्ध मत के लिए उदार दान दिया। जल्द ही उन्होंने अपने धर्म प्रवचन के प्रचार के लिये बहुत से स्थानों का भ्रमण करना शुरू कर दिया। वे सारनाथ, मथुरा, राजगिर, गया और पाटलिपुत्र गये। बिम्बिसार, अजातशत्रु (मगध), प्रसेनजीत (कोसल) और उदायन (कौशाम्बी) के राजाओं ने उनके सिद्धान्तों

चित्र 10 बुद्ध का जन्म

को स्वीकार किया तथा वे सत्र बुद्ध के शिष्य हो गये। वे कपिलवस्तु भी गये और उन्होंने अपनी धाय माता व बेटे राहुल को भी अपने सम्प्रदाय में परिवर्तित कर लिया।

मलल गुण की राजधानी कुसि नगर (उत्तर प्रदेश के जिले देवरिया में स्थित कसया) में 80 वर्ष की आयु में (486 ई. पू.) बुद्ध की मृत्यु हो गई। आइए अब बुद्ध की उन शिक्षाओं का विवेचन करें जिन्होंने उस समय के धार्मिक विचारों को नवीन शिक्षा प्रदान की।

17.4 बुद्ध के उपदेश

बुद्ध के मूलभूत उपदेश निम्नलिखित में संकलित हैं:

क) चार पवित्र सत्य, और

ख) अष्टांगिक मार्ग

क) निम्नलिखित चार पवित्र सत्य हैं:

i) संसार दु:खों से परिपूर्ण है।

ii) सारे दु:खों का कोई न कोई कारण है। इच्छा, अज्ञान और मोह मुख्यत: दु:ख के कारण हैं।

iii) इच्छाओं का अन्त मुक्ति का मार्ग है।

iv) मुक्ति (दु:खों से छुटकारा पाना) अष्टांगिक मार्ग द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

ख) अष्टांगिक मार्ग में निम्नलिखित सिद्धान्त समाहित हैं:

i) **सम्यक् दृष्टि:** इसका अर्थ है इच्छा के कारण ही इस संसार में दु:ख व्याप्त हैं। इच्छा का परित्याग ही मुक्ति का मार्ग है।

ii) **सम्यक् संकल्प:** यह लिप्सा और विलासिता से छुटकारा दिलाता है। इसका उद्देश्य मानवता को प्यार करना और दूसरों को प्रसन्न रखना है।

iii) **सम्यक् वाचन** अर्थात् सदैव सच बोलना,

iv) **सम्यक् कर्म:** इसका तात्पर्य है स्वार्थ रहित कार्य करना।

v) **सम्यक् जीविका:** अर्थात् आदमी को ईमानदारी से अर्जित साधनों द्वारा जीवन-यापन करना चाहिए।

vi) **सम्यक् प्रयास:** इससे तात्पर्य है कि किसी को भी बुरे विचारों से छुटकारा पाने के लिए इन्द्रियों पर नियंत्रण होना चाहिए। कोई भी मानसिक अभ्यास के द्वारा अपनी इच्छाओं एवं मोह को नष्ट कर सकता है।

vii) **सम्यक् स्मृति:** इसका अर्थ है कि शरीर नश्वर है और सत्य का ध्यान करने से ही सांसारिक बुराइयों से छुटकारा पाया जा सकता है।

viii) **सम्यक् समाधि:** इसका अनुसरण करने से शान्ति प्राप्त होगी। ध्यान से ही वास्तविक सत्य प्राप्त किया जा सकता है।

बौद्ध मत ने कर्म के सिद्धान्त पर बल दिया। वर्तमान का निर्णय भूतकाल के कार्य करते हैं। किसी व्यक्ति की इस जीवन और अगले जीवन की दशा उसके कर्मों पर निर्भर करती है।

प्रत्येक व्यक्ति अपने भाग्य का निर्माता है। अपने कर्मों को भोगने के लिए हम बार-बार जन्म लेते हैं। अगर कोई व्यक्ति किसी भी तरह का पाप नहीं करता है तो उसका पुनर्जन्म नहीं होगा। इस प्रकार बुद्ध के उपदेशों का अनिवार्य तत्व या सार "कर्म-दर्शन" है।

बुद्ध ने निर्वाण का प्रचार किया। उनके अनुसार यही प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का अन्तिम उद्देश्य है। इसका तात्पर्य है सभी इच्छाओं से छुटकारा, दु:खों का अन्त जिससे अन्तत: पुनर्जन्म से मुक्ति मिलती है। इच्छाओं की समाप्ति की प्रक्रिया के द्वारा कोई भी "निर्वाण" पा सकता है। इसलिए, बुद्ध ने उपदेश दिया कि इच्छा को समाप्त करना ही वास्तविक समस्या है। पूजा और बलि इच्छा को समाप्त नहीं कर सकेंगे। इस प्रकार, वैदिक धर्म में होने वाले अनुष्ठानों एवं यज्ञों के विपरीत बुद्ध ने व्यक्तिगत नैतिकता पर बल दिया।

बुद्ध ने न ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकारा और न ही नकारा। वह व्यक्ति और उसके कार्यों के विषय में अधिक चिन्तित थे। बौद्ध मत ने आत्मा के अस्तित्व को भी स्वीकार नहीं किया।

इनके अतिरिक्त बुद्ध ने अन्य पक्षों पर भी बल दिया:

- बुद्ध ने प्रेम की भावना पर बल दिया। अहिंसा का अनुसरण करके प्रेम को सभी प्राणी मात्र पर अभिव्यक्त किया जा सकता है। यद्यपि अहिंसा के सिद्धांत को बौद्ध मत में अच्छी तरह से समझा गया था, परन्तु इसको इतना महत्व नहीं दिया गया जितना कि जैन मत में।
- व्यक्ति को मध्य मार्ग का अनुसरण करना चाहिये। कठोर सन्यास एवं उसी प्रकार विलासी जीवन से बचना चाहिये।
- महात्मा बुद्ध की शिक्षा ने उस समय के ब्राह्मणवादी विचारों के सामने एक गम्भीर चुनौती प्रस्तुत की।

i) बुद्ध के उदार व लोकतांत्रिक विचारों ने सभी समुदायों के लोगों को तेजी से आकर्षित किया। जाति व्यवस्था और पुजारियों की सर्वोच्चता पर बुद्ध के द्वारा किये गये हमलों का समाज की नीची जाति के लोगों ने स्वागत किया। सभी जाति तथा लिंग के लोग बौद्ध

सम्प्रदाय को अपना सकते थे। बौद्ध मत के अनुसार व्यक्ति की मुक्ति उसके अच्छे कार्यों के द्वारा ही सम्भव है। इसलिये, "निर्वाण" अर्थात् जीवन के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये किसी पुजारी या मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं रह जाती थी।

ii) बुद्ध ने वेदों की सर्वोच्चता के सिद्धान्त तथा पशु-बलि का विरोध किया। उन्होंने अर्थ-विहीन तथा व्यर्थ अनुष्ठानों का बहिष्कार किया। उन्होंने कहा कि देवताओं को बलि देने से पापों को नहीं धोया जा सकता और न ही किसी पुजारी के पूजा करने से किसी पापी को लाभ होता है। इस प्रकार बुद्ध ने सामाजिक समानता के सिद्धान्तों पर बल दिया।

बौद्ध मत का थोड़े ही समय में एक संगठित धर्म के रूप में उद्‌भव हुआ और बुद्ध के उपदेशों को संग्रहीत कर लिया गया।

बौद्ध धर्म के इस संग्रहीत साहित्य (उपदेशों का संग्रह-पिटक) को तीन भागों में बाँटा गया है:

i) सुत्त-पिटक में पांच निकाय हैं जिनमें धार्मिक सम्भाषण तथा बुद्ध के संवाद संकलित हैं। पांचवें निकाय में जातक कथायें (बुद्ध के जन्म से सम्बद्ध कहानियाँ) हैं।

ii) विनय पिटक में भिक्षुओं के अनुशासन से संबंधित नियम हैं।

iii) अभिधम्म-पिटक में बुद्ध के दार्शनिक विचारों का विवरण है। इसकी प्रश्न-उत्तर के रूप में लिया गया है।

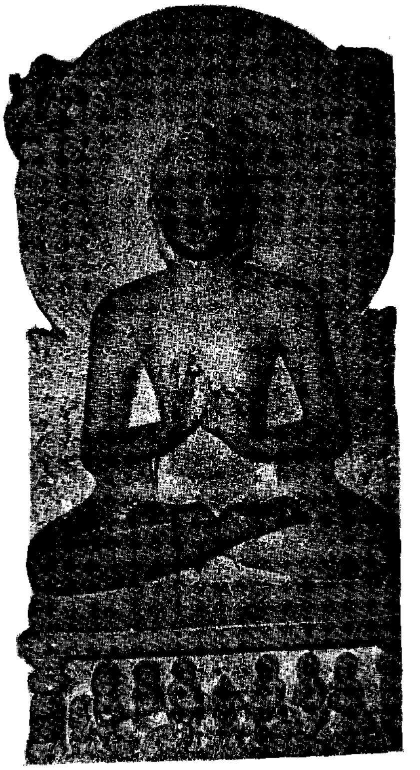

चित्र 11 उपदेश देते हुये बुद्ध (गुप्त काल)

17.5 बौद्ध मत का विकास

अब हम उन कारणों पर प्रकाश डालेंगे जिन्होंने बौद्ध मत के विकास में योगदान दिया और इसको एक लोकप्रिय धर्म बनाया।

17.5.1 बौद्ध मत का विस्तार

इसके संस्थापक के जीवन काल में ही बड़ी संख्या में लोगों ने बौद्ध मत को स्वीकार कर लिया था। उदाहरण के लिए, मगध, कोसल, और कौशाम्बी की जनता ने बौद्ध मत को स्वीकार किया। शाक्य, वज्जि और मल्ल जनपदों की जनता ने भी इसका अनुसरण किया। अशोक एवं कनिष्क ने बौद्ध मत को राज्य धर्म बनाया और यह मध्य एशिया, पश्चिम एशिया और श्रीलंका में फैल गया।

बौद्ध मत जनता के बड़े हिस्सों में लोकप्रिय होने के निम्नलिखित कारण थे:

- व्यावहारिक नैतिकता पर बल देना, मानव जाति की समस्याओं का सहज स्वीकृत समाधान और साधारण दर्शन ने जनता को बौद्ध मत की ओर आकर्षित किया।
- बौद्ध धर्म में संकलित सामाजिक समानता के विचारों के कारण साधारण जनता ने बौद्ध मत को स्वीकार किया।
- अनाथपिण्डिका जैसे व्यापारी और आम्रपाली जैसी देवदासी ने इस मत को स्वीकार किया क्योंकि उन्होंने इस धर्म में उचित सम्मान प्राप्त किया।
- विचारों को व्यक्त करने के लिए लोकप्रिय भाषा पाली के प्रयोग ने भी धर्म के विस्तार में मदद दी। संस्कृत का प्रयोग करने के कारण ब्राह्मण धर्म सीमा में बंध गया था क्योंकि वह जन-भाषा नहीं थी।
- राजाओं के द्वारा संरक्षण प्रदान किये जाने के कारण बौद्ध धर्म का विस्तार तेजी के साथ हुआ। उदाहरण के लिए ऐसी धारणा है कि अशोक ने अपने पुत्र महेन्द्र तथा पुत्री संगमित्रा को श्रीलंका में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए भेजा। उसने बहुत से बौद्ध विहारों को स्थापित किया और संघ के लिए उदार भाव से दान आदि भी दिया।

- बौद्ध मत को प्रभावशाली ढंग से फैलाने में संघ की संस्था ने संगठित रूप से योगदान दिया।

17.5.2 बौद्ध-संघ (संस्था के रूप में)

संघ बौद्ध मत की धार्मिक व्यवस्था थी। यह अच्छी प्रकार से संगठित एवं शक्तिशाली संस्था थी और इसने बौद्ध मत को लोकप्रिय बनाया। 15 वर्ष से अधिक आयु वाले सभी नागरिकों के लिए इसकी सदस्यता खुली थी चाहे वे किसी भी जाति के हों। अपराधी, कुष्ठ रोगी तथा संक्रामक रोग से पीड़ित लोगों को संघ की सदस्यता नहीं दी जाती थी। प्रारम्भ में गौतम बुद्ध महिलाओं को संघ का सदस्य बनाने के पक्ष में नहीं थे। लेकिन उनके मुख्य शिष्य आनन्द एवं उनकी धाय मां महाप्रजापति गौतमी के लगातार निवेदन करने पर उन्होंने उनको संघ में प्रवेश दिया।

भिक्षुओं को प्रवेश लेने पर विधिपूर्वक अपना मुंडन कराना एवं पीले या गेरूए रंग का लिबास पहनना पड़ता था। भिक्षुओं से आशा की जाती थी कि वे नित्य बौद्ध मत के प्रचार के लिए जायेंगे और भिक्षा प्राप्त करेंगे। वर्षा ऋतु के चार महीनों में वे एक निश्चित बिस्तर लगाने तथा समाधि करते थे। इसको आश्रय या "वशा" कहा जाता था। संघ लोगों को शिक्षा देने का भी काम करता था। ब्राह्मणवाद के विपरीत बौद्ध मत में समाज के सभी लोग शिक्षा ग्रहण कर सकते थे। स्वाभाविक रूप से जिन लोगों को ब्राह्मणों ने शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार से वंचित कर दिया था उनको बौद्ध मत में शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हो गया और इस प्रकार शिक्षा समाज के काफी तबकों में फैल गई।

संघ का संचालन जनतांत्रिक सिद्धान्तों के अनुसार होता था और अपने सदस्यों को अनुशासित करने की शक्ति भी इसी में निहित थी। यहां पर भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों के लिए एक आचार-संहिता थी और वे इसका पालन करते थे। गलती करने वाले सदस्य को संघ दंडित कर सकता था।

17.5.3 बौद्ध मत की सभायें

अनुश्रुतियों के अनुसार बुद्ध की मृत्यु के थोड़े समय बाद 483 ई. पू. में राजगृह के पास सप्तपर्णि गुफा में बौद्ध मत की प्रथम सभा हुई। इस सभा की अध्यक्षता महाकस्यप ने की। बुद्ध की शिक्षा को पिटकों में विभाजित किया गया, जिनके नाम इस प्रकार हैं:

क) विनय-पिटक, और

ख) सुत्त-पिटक।

विनय-पिटक की रचना उपाली के नेतृत्व में की गई और सुत्त-पिटक की रचना आनन्द के नेतृत्व में की गई।

दूसरी सभा का आयोजन 483 ई. पू. में वैशाली में हुआ। पाटलिपुत्र तथा वैशाली के भिक्षुओं ने कुछ नियमों का निर्धारण किया परन्तु इन नियमों को कौशाम्बी व अवन्ति के भिक्षुओं के द्वारा बुद्ध की शिक्षा के प्रतिकूल घोषित कर दिया गया। दोनों विरोधी गुटों के बीच कोई भी समझौता कराने में सभा असफल रही। बौद्ध धर्म का विभाजन स्थायी तौर पर दो बौद्ध सम्प्रदायों-स्थविरवादी व महासांधिक में हो गया। पहले सम्प्रदाय ने विनय-पिटक में वर्णित रूढ़िवादी विचारों को अपनाया और दूसरे ने नये नियमों का समर्थन किया और फिर उनमें परिवर्तन किए।

तीसरी सभा का आयोजन अशोक के शासनकाल में मोग्गालिपुत्तत्स्सि की अध्यक्षता में पाटलिपुत्र में किया गया। इस सभा में सिद्धान्तों की दार्शनिक विवेचना को संकलित किया गया तथा इसको अभिधम्म-पिटक के नाम से जाना जाता है। इस सभा में बौद्धमत को असंतुष्टों एवं नये परिवर्तनों से मुक्त कराने का प्रयास किया गया। 60,000 "पथभ्रष्ट" भिक्षुओं को बौद्ध मत से इस सभा द्वारा निष्कासित कर दिया गया। सप्त उपदेशों के साहित्य को परिभाषित किया गया तथा आधिकारिक तौर पर विघ्न पैदा करने वाली प्रवृत्तियों से भी निबटा गया।

चौथी सभा का आयोजन काश्मीर में कनिष्क के शासन काल में हुआ। इस सभा में उत्तरी भारत के हीनयान सम्प्रदाय को मानने वाले एकत्रित हुए। तीन पिटकों पर तीन टीकाओं (भाष्यों) का संकलन इस सभा द्वारा किया गया। इसने उन विवादग्रस्त मतभेद वाले प्रश्नों का निबटारा किया जो श्रावस्तीवासियों एवं काश्मीर तथा गन्धार के प्रचारकों के मध्य उत्पन्न हो गये थे।

17.5.4 बौद्ध धर्म के सम्प्रदाय

वैशाली में आयोजित दूसरी सभा में बौद्ध धर्म का निम्न दो सम्प्रदायों में विभाजन हुआ:

क) स्थविरवादी

ख) महासांघिक

स्थविरवादी धीरे-धीरे ग्यारह सम्प्रदायों और महासांधिक सात सम्प्रदायों में बंट गए। ये अठठारह सम्प्रदाय "हीनयान" मत में संगठित हुए।

- स्थविरवादी कठोर भिक्षुक जीवन और मूल निर्देशित कड़े अनुशासित नियमों का अनुसरण करते थे।
- वह समूह जिसने संशोधित नियमों को माना, वह महासांधिक कहलाया।

महायान सम्प्रदाय का विकास चौथी बौद्ध सभा के बाद हुआ। हीनयान सम्प्रदाय जो बुद्ध की रूढ़िवादी शिक्षा में विश्वास करता था, का जिस गुट ने विरोध किया और जिन्होंने नये विचारों को स्वीकार किया, वे लोग महायान सम्प्रदाय के समर्थक कहलाये। उन्होंने बुद्ध की प्रतिमा बनायी और ईश्वर की भांति उसकी पूजा की। प्रथम सदी ई. कनिष्क के शासन काल में कुछ सैद्धांतिक परिवर्तन किए गए।

बोध प्रश्न 1

1) "निर्वाण" एवं "कर्म" के बौद्धवादी दर्शन की विवेचना पांच पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

2) बौद्ध धर्म के विकास के लिए उत्तरदायी कारण क्या थे ? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

3) निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) या गलत (×) का निशान लगाइए:

   i) बढ़ते व्यापार एवं वाणिज्य ने अनीश्वरवादी विचारों के उद्‌भव में मदद की।

   ii) बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश बोध गया में दिया।

   iii) बुद्ध ने कठोर सन्यासी जीवन का प्रचार किया।

   iv) बुद्ध पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करते थे।

   v) बुद्ध ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करते थे।

17.6 जैन धर्म की उत्पत्ति

जैन श्रुतियों के अनुसार, जैन धर्म की उत्पत्ति एवं विकास के लिये 24 तीर्थांकर उत्तरदायी थे। इनमें से पहले बाईस की ऐतिहासिकता संदिग्ध है। परन्तु अन्तिम दो तीर्थांकर पार्श्वनाथ और महावीर की ऐतिहासिकता को बौद्ध ग्रंथों ने प्रमाणित किया है।

17.6.1 पार्श्वनाथ

जैन श्रुतियों के अनुसार तेइसवें तीर्थांकर पार्श्वनाथ बनारस के राजा अश्वसेन एवं रानी वामा के पुत्र थे। उन्होंने 30 वर्ष की आयु में सिंहासन का परित्याग कर दिया और वे सन्यासी हो गए। 84 दिन की तपस्या के उपरान्त उनको ज्ञान की प्राप्ति हुई। उनकी मृत्यु महावीर से लगभग 250 वर्ष पहले सौ वर्ष की आयु में हुई। पार्श्वनाथ "पदार्थ" की अनन्तता में विश्वास करते थे। वह अपने पीछे अपने समर्थकों की काफी बड़ी संख्या छोड़ गए। पार्श्वनाथ के शिष्य सफेद वस्त्रों को धारण करते थे।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि महावीर से पूर्व भी किसी न किसी रूप में जैन धर्म का अस्तित्व था।

17.6.2 महावीर

चौबीसवें तीर्थांकर वर्धमान महावीर थे। उनका जन्म कुण्डग्राम (बासूकुण्ड), वैशाली के पास (ज़िला मुजफफरपुर, बिहार) में 540 ई. पू. में क्षत्रिय परिवार में हुआ था। उनके पिता सिद्धार्थ ज्ञात्रक क्षत्रिय गण के मुखिया थे। उनकी माता लिच्छिवि राजकुमारी थी, जिसका नाम त्रिशला था। वर्धमान ने अच्छी शिक्षा प्राप्त की और उनका विवाह यशोदा के साथ हुआ। उससे उनके एक पुत्री थी।

30 वर्ष की आयु में महावीर ने अपने घर का परित्याग किया और वह सन्यासी हो गये।

पहले उन्होंने एक वस्त्र धारण किया और फिर उसका भी तेरह मास के उपरान्त परित्याग कर दिया तथा बाद में वे "नग्न भिक्षु" की भांति भ्रमण करने लगे। घोर तपस्या करते हुए 12 वर्ष तक एक सन्यासी का जीवन व्यतीत किया।

अपनी तपस्या के 13वें वर्ष में, 42 वर्ष की आयु में, उनको "सर्वोच्च ज्ञान" (केवालिन्) की प्राप्ति हुई। बाद में उनकी प्रसिद्धि "महावीर (सर्वोच्च यौद्धा)" या "जिन" (विजयी) के नामों से हुई। उनको "निग्रंथ" (बन्धनों से मुक्त) के नाम से भी जाना जाता था।

अगले 30 वर्षों तक वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करते रहे और कोसल, मगध तथा अन्य पूर्वी क्षेत्रों में अपने विचारों का प्रचार किया। वह एक वर्ष में आठ माह विचरण करते थे और वर्षा ऋतु के चार माह पूर्वी भारत के किसी प्रसिद्ध नगर में व्यतीत करते। वह अक्सर बिम्बिसार तथा अजातशत्रु के दरबारों में भी जाते थे। उनकी मृत्यु 72 वर्ष की आयु में पटना के समीप पावा नामक स्थान पर 486 ई. पू. में हुई।

17.7 महावीर की शिक्षायें

महावीर ने पार्श्वनाथ द्वारा प्रतिपादित किए गए धार्मिक विचारों को ही अधिकतर स्वीकार किया। तब भी उन्होंने उसमें कुछ संशोधन किया और कुछ जोड़ा।

पार्श्वनाथ ने निम्नलिखित चार सिद्धांतों का प्रचार किया था:

क) सत्य

ख) अहिंसा

चित्र 12 जैन तीर्थंकर (गुप्त काल)

ग) किसी प्रकार की कोई सम्पत्ति न रखना

घ) गिरी हुई या पड़ी हुई सम्पत्ति को ग्रहण न करना। इसी में महावीर ने "ब्रह्मचर्य व्रत का पालन" करना भी जोड़ दिया।

महावीर का विश्वास था कि आत्मा (जीव) व पदार्थ (अजीव) अस्तित्व के दो मूलभूत तत्व हैं। उनके अनुसार, पूर्व जन्मों की इच्छाओं के कारण आत्मा दासत्व की स्थिति में है। लगातार प्रयासों के माध्यम से आत्मा की मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। यही आत्मा की अन्तिम मुक्ति या मोक्ष है। यह मुक्त आत्मा "पवित्र आत्मा" हो जाती है।

जैन धर्म के अनुसार, मानव अपने भाग्य का स्वयं रचयिता है और वह पवित्र, सदाचारी एवं आत्म-त्यागी जीवन का अनुसरण करके ही मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। निम्नलिखित तीन सिद्धान्तों (तीन गुणव्रत) का अनुसरण करके मोक्ष (निर्वाण) प्राप्त किया जा सकता है:

i) उचित विश्वास

ii) उचित ज्ञान, और

iii) उचित कार्य।

"निर्वाण" या आध्यात्मिकता की सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त करने के लिए उन्होंने घोर वैराग्य और कठोर तपस्या पर ज़ोर दिया। उनका विश्वास था कि सृष्टि की रचना किसी सर्वोच्च शक्ति के द्वारा नहीं की गयी। उत्थान-पतन के अनादि नियम के अनुसार, सृष्टि कार्य करती है।

उसका विचार था कि सभी चेतन या अचेतन वस्तुओं में आत्मा का वास है। उसका विश्वास था कि उनका किसी भी प्रकार से अपकार करने पर वे दु:ख महसूस करते हैं।

उन्होंने वेदों के प्रभुत्व का तिरस्कार किया और वैदिक अनुष्ठानों तथा ब्राह्मणों की सर्वोच्चता का भी विरोध किया।

गृहस्थों एवं भिक्षुओं, दोनों के लिए आचार-संहिता को अनुसरणीय बताया। बुरे कर्मों से बचने के लिए एक गृहस्थ को निम्नलिखित पांच व्रतों का पालन करना चाहिए:

i) परोपकारी होना,

ii) चोरी न करना,

iii) व्याभिचार से बचना,

iv) सत्य वचन, और

v) आवश्यकता से अधिक धन संग्रह न करना।

उन्होंने यह भी निर्देशित किया कि प्रत्येक गृहस्थ को जरूरतमंदों को प्रत्येक दिन पका हुआ भोजन खिलाना चाहिए।

उन्होंने प्रचारित किया कि छोटे पुजारियों को कृषि कार्य नहीं करना चाहिए क्योंकि इस कार्य में पेड़-पौधे एवं जन्तुओं का अन्त होता है।

एक भिक्षु को कठोर नियमों का पालन करना पड़ता था। उसको सभी सांसारिक चीज़ों का परित्याग करना होता। उसको अपने सिर के प्रत्येक बाल को उखाड़ना होता था। वह केवल दिन के समय ही चल सकता था जिससे कि किसी भी प्रकार के जीव हत्या न हो या उनको कोई भी हानि न पहुंचे। उसको स्वयं को इस प्रकार से साधना करनी होती थी कि अपनी ज्ञानेन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण कर सके। जैन धर्म का विश्वास था कि मोक्ष प्राप्ति के लिए एक भिक्षु का जीवन अनिवार्य था और एक गृहस्थ इसको प्राप्त नहीं कर सकता था।

अनुश्रुतियों के अनुसार महावीर द्वारा शिक्षित किए गए मूल सिद्धान्तों को 14 ग्रंथों में संकलित किया गया था तथा जिनको "पर्वों" के नाम से जाना जाता है। पाटलिपुत्र की प्रथम सभा में स्थूलभद्र ने जैन धर्म को 12 "अंगों" में विभाजित किया। इसको श्वेताम्बर सम्प्रदाय ने स्वीकार किया। परन्तु दिगम्बर सम्प्रदाय के लोगों ने यह कहकर इसे मानने से इंकार कर दिया कि सभी पुराने धर्म ग्रन्थ खो चुके हैं। दूसरी सभा का आयोजन वल्लभि में हुआ और इसमें उपंगों के नाम से नयी श्रुतियों को जोड़ा गया।

12 अंगों में आचारंग सूत्र और भगवती सूत्र सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। पहले में उन नियमों का वर्णन है जिनका जैन भिक्षुओं को अनुसरण करना चाहिए, दूसरे में जैन धर्म के सिद्धान्तों का विशद रूप से वर्णन किया गया है।

17.8 जैन धर्म का विकास

महावीर की शिक्षा जनता के बीच बड़ी लोकप्रिय हुई और समाज के विभिन्न तबके इसकी ओर आकर्षित हुए। बौद्ध धर्म की भांति, जैन धर्म में भी समय-समय पर परिवर्तन होते रहे। अब हम देखेंगे कि इस धर्म के विस्तार में किन कारकों ने योगदान दिया और क्या विकास हुए।

17.8.1 जैन धर्म का विस्तार

महावीर के 11 शिष्य थे जिनको गन्धर्व या सम्प्रदायों का प्रमुख कहा जाता था। आर्य सुधर्मा अकेला ऐसा गन्धर्व था जो महावीर की मृत्यु के पश्चात् भी जीवित रहा और जो जैन धर्म का प्रथम "थेरा" या मुख्य उपदेशक हुआ। उसकी मृत्यु महावीर की मृत्यु के 20 वर्ष पश्चात् हुई। राजा नन्द के काल में जैन धर्म के संचालन का कार्य दो "थेरों" (आचार्यों) द्वारा किया जाता था:

i) सम्भूताविजय, और

ii) भद्रबाहु।

छठे थेरा (आचार्य) भद्रबाहु, मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के समकालीन थे।

धीरे-धीरे महावीर के समर्थक सारे देश में फैल गए। जैन धर्म को शाही संरक्षण की कृपा भी रही। जैन अनुश्रुतियों के अनुसार, अजातशत्रु का उत्तराधिकारी उदयन, जैन धर्म का अनुयायी था। सिकन्दर के भारत पर आक्रमण के समय जैन भिक्षुओं को सिन्धु नदी के किनारे भी पाया गया था। चन्द्रगुप्त मौर्य जैन धर्म का अनुयायी था और उसने भद्रबाहु के साथ दक्षिण की ओर प्रवास किया तथा जैन धर्म का प्रचार किया। पहली सदी ई. में मथुरा एवं उज्जैन जैन धर्म के प्रधान केन्द्र बन गए।

बौद्ध धर्म की तुलना में जैन धर्म की सफलता शानदार थी। इसकी सफलता का एक मुख्य कारण था कि महावीर एवं उसके अनुयायियों ने संस्कृत के स्थान पर लोकप्रिय भाषा (प्राकृत, धार्मिक साहित्य को अर्ध-मगधी में लिखा गया) का प्रयोग किया। जनता के लिए सरल एवं घरेलू निर्देशों ने लोगों को आकर्षित किया। जैन धर्म को राजाओं के द्वारा संरक्षण दिये जाने के कारण भी लोगों के मस्तिष्क में इसका स्थान बना।

17.8.2 जैन सभायें

चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन की समाप्ति के समीप दक्षिण बिहार में भयंकर अकाल पड़ा। यह 12 वर्षों तक चला। भद्रबाहु और उनके शिष्यों ने कर्नाटक राज्य में श्रावण बेल गोल की ओर विस्थापन किया। अन्य जैन मुनि स्थूलबाहुभद्र के नेतृत्व में मगध में ही रह गये। उन्होंने पाटलिपुत्र में 300 ई. पू. के आस-पास सभा का आयोजन किया। इस सभा में महावीर की पवित्र शिक्षाओं को 12 अंगों में विभाजित किया गया।

दूसरी जैन सभा का आयोजन 512 ई. में गुजरात में वल्लभी नामक स्थान पर देवर्धिमणी क्षमा श्रमण की अध्यक्षता में किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य धार्मिक शास्त्रों को एकत्र एवं उनको पुन: क्रम: से संकलित करना था। किन्तु प्रथम सभा में संकलित बारहवां अंग इस समय खो गया था। शेष बचे हुए अंगों को अर्धमगधी में लिखा गया।

17.8.3 सम्प्रदाय

जैन धर्म में फूट पड़ने का समय लगभग 300 ई. पू. माना जाता है। महावीर के समय में ही एक वस्त्र धारण करने को लेकर मतभेद स्पष्ट होने लगे थे। श्रावणबेलगोल से मगध वापस लौटने के बाद भद्रबाहु के अनुयायियों ने इस निर्णय को मानने से इन्कार कर दिया कि 14 पर्व खो गये थे। मगध में ठहरने वालों तथा प्रस्थान करने वालों में मतभेद बढ़ते ही गये। मगध में ठहरने वाले सफेद वस्त्रों को धारण करने के अभ्यस्त हो चुके थे और वे महावीर की शिक्षाओं से दूर होने लगे जबकि पहले वाले नग्न अवस्था में रहते और कठोरता से महावीर की शिक्षाओं का अनुसरण करते। जैन धर्म का प्रथम विभाजन दिगम्बर (नग्न रहने वालों) और श्वेताम्बर (सफेद वस्त्र धारण करने वालों) के बीच हुआ। अगली शताब्दियों में पुन: दोनों सम्प्रदायो में कई विभाजन हुए। इनमें महत्वपूर्ण वह सम्प्रदाय था जिसने मूर्ति-पूजा को त्याग दिया और ग्रंथों की पूजा करने लगे। वे श्वेताम्बर सम्प्रदाय में "तेरापन्थी" कहलाये और दिगम्बर सम्प्रदाय में समयास कहलाये। यह सम्प्रदाय छठी ईसवी में अस्तित्व में आया।

17.9 अन्य अनिश्वरवादी विचार

इस काल में वैदिक धर्म से भिन्न दूसरे अन्य विचार भी प्रचलित थे। बाद में यह छोटे सम्प्रदायों के रूप में सामने आये। उनमें आजीवक सम्प्रदाय के अनुयाइयों की संख्या काफी अधिक थी और वे भली प्रकार से संगठित थे।

17.9.1 आजीवक

आजीवकों के विषय में कहा जाता है कि वे शूद्र सन्यासी थे। ऐसा कहा जाता है कि इस सम्प्रदाय का संस्थापक नन्द वंश था और जिसका अनुसरण किससंकिक्षा के द्वारा किया गया। तीसरा इस धर्म का मुख्य प्रवर्तक मक्खालिपुत्र गोसाल था, जिसने इस सम्प्रदाय को लोकप्रिय बनाया। उसने "कर्म" की अवधारणा को नकारा और तर्क दिया कि मनुष्य नियति के अधीन है। आजीवक विश्वास करते थे कि किसी व्यक्ति के विचार एवं कार्य पहले ही निश्चित हो जाते हैं (जन्म से पूर्व निश्चित होना)। वे विश्वास नहीं करते थे कि मानव के दु:खों का कोई विशेष कारण है या फिर इन दु:खों से मुक्ति मिल सकती है। वे मानव के प्रयासों में भी विश्वास नहीं करते थे और उनका विचार था कि सभी प्राणी मात्र अपने भाग्य के समक्ष असहाय हैं। गोसाल ने कहा कि सभी को दु:खों से होकर गुजरना पड़ता है और इसका अन्त निश्चित चक्र को पूरा करने पर ही होगा। कोई भी मानव प्रयास समय की परिधि को न कम कर सकता है और न बढ़ा सकता है। गोसाल के अनुयायी कोसल की राजधानी श्रावस्ती के चारों ओर केन्द्रित हो गये और वहीं पर वह प्रचार करते थे। महावीर से 16 वर्ष पूर्व गोसाल की मृत्यु हो गई।

17.9.2 अन्य विचार

चार्वाक सम्प्रदाय के लोग पूर्ण भौतिकवादी थे। उनका विचार था कि मनुष्य मिट्टी का बना है और मिट्टी में मिल जाएगा। इसलिए मानव जीवन का उद्देश्य भौतिक सुख का भोग करना होना चाहिए। पुराण कस्यप ने अक्रिय या सांख्य दर्शन का प्रचार किया। वह एक ब्राह्मण शिक्षक था और उसका मुख्य सिद्धान्त था कि कार्य गुण या दोष का निर्धारण नहीं करता। उसके अनुसार, अगर कोई आदमी सृष्टि के सभी जीव-जन्तुओं का वध कर दे तब भी वह किसी पाप का भागीदार नहीं होगा। इसी भांति वह कोई पुण्य नहीं प्राप्त करेगा चाहे वह कितने भी अच्छे कार्य करे यहां तक कि वह गंगा के किनारे भी खड़ा रहे। इसी प्रकार, आत्म-नियंत्रण, दानता और सत्यवादिता उसके लिए कोई भी गुण प्राप्त करने में सहायक नहीं होगी। अजित के शकम्बलिन ने भी प्रचारित किया कि मृत्यु के साथ प्रत्येक वस्तु समाप्त हो जाती है और मृत्यु के बाद आगे कोई जीवन नहीं होता। वह इस बात में कोई विश्वास नहीं करता था कि कोई अच्छा या बुरा कार्य करता है या किसी के अधिकार में उच्च तथा आलौकिक शक्तियां हैं। इस सम्प्रदाय के अनुसार, सांसारिक सुखों को भोगने में कोई बुराई नहीं है और वध करने में भी कोई पाप नहीं है। याकूध कात्यासायन ने अशाश्वतवाद के सिद्धान्तों का प्रवर्तन किया। इसके अनुसार, सात तत्व हैं जो स्थिर हैं और जो किसी भी प्रकार से दु:ख या सुख में योगदान नहीं करते। शरीर अन्तत: इन सात तत्वों में विलीन हो जाता है।

17.10 नवीन धार्मिक आंदोलनों का प्रभाव

नये धार्मिक विचारों के प्रादुर्भाव एवं विकास ने समकालीन सामाजिक जीवन में कुछ विशेष परिवर्तन किए। उनमें कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन निम्नलिखित हैं:

i) इस काल में सामाजिक समानता के विचार को लोकप्रिय किया गया। बौद्ध मतालम्बियों तथा जैनियों ने जाति-व्यवस्था को कोई महत्व नहीं दिया। उन्होंने विभिन्न जातियों के लोगों को अपने धर्म में स्वीकृत किया। युगों से समाज में ब्राह्मणों के स्थापित प्रभुत्व को यह एक महान चुनौती थी। बौद्ध व्यवस्था में महिलाओं को स्वीकार करने का समाज पर

एक विशेष प्रभाव हुआ क्योंकि इस कार्य ने महिलाओं को पुरुषों के समान स्थान समाज में प्रदान किया।

ii) ब्राह्मणिक साहित्य में व्यवसाय करने वाले लोगों को छोटा स्थान दिया गया था। समुद्र यात्रा की भी निन्दा की गई थी। लेकिन बौद्ध धर्म और जैन धर्म ने जाति व्यवस्था को कोई महत्व नहीं दिया और न ही समुद्र यात्रा को गलत समझा। इसलिए इन नये धर्मों ने व्यापारिक समुदाय को काफी उत्साहित किया। इससे भी अधिक इन दोनों धर्मों के द्वारा "कर्म" की अवधारणा पर भविष्य के जीवन के लिए बल देना अप्रत्यक्ष रूप से व्यापारी समुदाय की गतिविधियों के लिए अनुकूल था।

iii) नये धर्मों ने प्राकृत, पाली और अर्ध-मगधी जैसी भाषाओं को महत्व दिया। बौद्ध एवं जैन दर्शनों की इन भाषाओं में विवेचना की गई और बाद में धार्मिक पुस्तकों को स्थानीय भाषाओं में लिखा गया। इसने स्थानीय भाषाओं के साहित्य के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। जैनियों ने अपने धार्मिक उपदेशों को अर्ध-मगधी भाषा में लिखकर प्रथम बार साहित्य को मिश्रित भाषा में लिखने का स्वरूप प्रदान किया।

बोध प्रश्न 2

1) जैन धर्म के मूलभूत सिद्धान्त क्या हैं ? 100 शब्दों में उत्तर लिखिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) आजीवक कौन हैं ? उनके विचार क्या हैं ? पांच पंक्तियों में उत्तर लिखिए।

....
....
....
....
....

3) निम्न कथनों में कौन-सा कथन सही (✓) है और कौन-सा गलत (×), निशान लगाइए:

i) पार्श्वनाथ के चार सिद्धान्तों के साथ महावीर ने ब्रह्मचर्य का सिद्धान्त जोड़ा।

ii) महावीर सर्वोच्च रचयिता में विश्वास नहीं करते थे।

iii) "निर्वाण" की अवधारणा बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म में एक ही है।

iv) महावीर के सिद्धान्तों के मूल ग्रंथों को "पर्व" के नाम से जाना जाता है।

v) अनीश्वरवादी सम्प्रदायों के प्रादुर्भाव के कारण स्थानीय भाषाओं के साहित्य के विकास में हुआ।

17.11 सारांश

इस इकाई में आपने छठी शताब्दी ई. पू. मे उत्तरी भारत में नवीन धार्मिक विचारों के उद्‌भव और स्थापित होने के विषय में पढ़ा। समकालीन सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं ने इन नवीन धार्मिक विचारों के प्रादुर्भाव में विशेष योगदान किया। इनमें से बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म लोगों में बड़े लोकप्रिय हुए। आपसी मतभेद होने के बावजूद भी दोनों धर्मों ने मानवता, नैतिक जीवन, "कर्म" और "अहिंसा" पर ज़ोर दिया। जाति-व्यवस्था, ब्राह्मणिक प्रभुत्व, पशु-बलि और ईश्वर के विचार के दोनों ही कठोर आलोचक थे। स्थापित वैदिक धर्म के लिए यह सीधी चुनौती थी। इसके अतिरिक्त अन्य अनीश्वरवादी सम्प्रदायों जैसे आजीवक और उनके विचारों के विषय में भी आपने जाना। इन सबके कारण लोगों के दृष्टिकोण में एक विशेष परिवर्तन हुआ और परिणामत: उन्होंने युगों लम्बी ब्राह्मणिक धर्म की सर्वोच्चता के प्रभुत्व पर प्रश्न लगाना प्रारम्भ कर दिया।

17.12 शब्दावली

अहिंसा: किसी को न मारना और न ही हिंसा करना।

अनीश्वरवादी: जो ईश्वर में विश्वास न रखे।

भौतिकवाद: भौतिक वस्तुओं पर अधिक बल देना।

पिटक: बौद्ध धर्म के धार्मिक ग्रंथ।

पर्व: जैनियों के धार्मिक ग्रंथ।

सम्प्रदाय: मत एवं विश्वास के आधार पर लोगों या गुटों का एकीकरण।

तीर्थाकर: जैन धर्म के वे विद्वान या गुरु, जो सर्वोच्च ज्ञान रखते हैं।

17.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपको यहां लिखना है कि बुद्ध का "निर्वाण" व "कर्म" से क्या तात्पर्य था। देखिए भाग 17.4
2) आपको अपने उत्तर में बौद्ध धर्म के व्यावहारिक पक्ष, इसका सामाजिक समानता पर बल, लोकप्रिय भाषा आदि को सम्मिलित करना चाहिए। देखिए उपभाग 17.5.1
3) i) ✓
   ii) ✗
   iii) ✗
   iv) ✓
   v) ✗

बोध प्रश्न 2

1) आपको पांच सिद्धान्तों अर्थात् सत्य, अहिंसा, कोई सम्पत्ति नहीं रखना, कुछ ग्रहण न करना, ब्रह्मचर्य का विवेचन करना — बताना है और फिर उचित विश्वास, उचित ज्ञान, और उचित कार्य जैसे सिद्धान्तों का अनुसरण करके कोई कैसे निर्वाण प्राप्त कर सकता है, का भी विवेचन देना है। देखिए भाग 17.7

2) नन्द वंश ने जिस सम्प्रदाय की स्थापना की, उसको शुद्ध सन्यासियों का सम्प्रदाय कहा जाता है। उनका विश्वास था कि आदमी प्रकृति के नियमों के नियंत्रण में है। देखिए भाग 17.10.1

3) i) ✓ ii) ✓ iii) × iv) ✓ v) ✓

इस खंड के लिये कुछ उपयोगी पुस्तकें

Ghosh A, *The City in Early Historical India,* Simla, 1973.

Sharma, R.S, *Material Cultures and Social Formations in Ancient India,* New Delhi, 1983

Wagle, N, **Society at the Time of Buddha,** Bombay, 1966.

बाशम, ए. एल, **अद्भुत भारत**, आगरा

थापर, रोमिला, **भारत का इतिहास**

कोशाम्बी, डी. डी., **प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता**

इकाई 18 मगध साम्राज्य का विस्तार

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रस्तावना
18.2 मगध की भौगोलिक स्थिति
18.3 स्रोतों पर एक नजर
18.4 मौर्यों से पहले मगध का राजनीतिक इतिहास
18.5 "साम्राज्य" की धारणा
18.5.1 "साम्राज्य" संबंधी आधुनिक दृष्टिकोण
18.5.2 चक्रवर्ती-क्षेत्र संबंधी भारतीय धारणा
18.6 मौर्य शासन का उद्भव
18.7 अशोक मौर्य
18.7.1 कलिंग युद्ध
18.7.2 अशोक की मृत्यु के समय मगध
18.8 सारांश
18.9 शब्दावली
18.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

18.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम संक्षेप में मगध साम्राज्य के राज्य-क्षेत्र के विस्तार की चर्चा करने जा रहे हैं। इससे आपको यह समझने में मदद मिलेगी कि मगध एक "साम्राज्य" के रूप में क्यों और कैसे विकसित हुआ। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- मगध और उसके आस-पास के क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति को पहचान सकेंगे और इसके सामरिक महत्व को समझ सकेंगे;
- उन स्रोतों का उल्लेख कर सकेंगे, जिनकी सहायता इतिहासकार इस काल के इतिहास-लेखन के लिए लेते हैं;
- मौर्य शासन पूर्व मगध के दो शताब्दियों के राजनीतिक इतिहास का संक्षेप में वर्णन कर सकेंगे;
- इतिहास के आरंभिक कालों के संदर्भ में "साम्राज्य" की धारणा को समझ सकेंगे;
- मौर्य शासन की स्थापना में सहायक प्रमुख घटनाओं को रेखांकित कर सकेंगे;
- चंद्रगुप्त और बिंदुसार जैसे आरंभिक मौर्य शासकों और उनके राज्य-विस्तार संबंधी कार्यकलापों की जानकारी दे सकेंगे;
- अशोक मौर्य के राज्यारोहण और राज्याभिषेक के संदर्भ को स्पष्ट कर सकेंगे और कलिंग युद्ध का महत्व बता सकेंगे; और
- यह जान सकेंगे कि अशोक की मृत्यु के समय मगध "साम्राज्य" की सीमाएं क्या थीं।

18.1 प्रस्तावना

इकाई 15 में आप **जनपद** और **महाजनपद** से परिचित हो चुके हैं। इनकी जानकारी हमें आरंभिक बौद्ध और जैन ग्रंथों में मिलती है। ये जनपद और महाजनपद विंध्य के उत्तर में स्थित थे। इनका काल ई.पू. प्रथम सहस्राब्दी के उत्तरार्द्ध में पड़ता है। इस इकाई में हम एक महत्वपूर्ण महाजनपद मगध के विकास पर विस्तार से चर्चा करने जा रहे हैं। पिछले दो सौ वर्षों से इतिहासकारों का ध्यान मगध की ओर जाता रहा है। इसका महत्वपूर्ण कारण यह है कि यह जाने-माने मौर्य साम्राज्य का केन्द्र-बिन्दु था।

इस इकाई में हम केवल मौर्य शासकों द्वारा मगध के क्षेत्रीय विस्तार पर प्रकाश नहीं डाल रहे हैं बल्कि आधुनिक काल से पहले की ''साम्राज्य'' संबंधी धारणा पर भी विचार कर रहे हैं। यह विचार हम दो स्तरों पर करेंगे—(i) ''साम्राज्य'' शब्द के अनेक अर्थ, जिसमें केवल विशाल क्षेत्रीय विस्तार ही शामिल नहीं है, और (ii) राज्य तथा साम्राज्य संबंधी आरंभिक भारतीय धारणा।

इन बिंदुओं पर विचार करने से विभिन्न विद्वानों द्वारा मगध साम्राज्य (खासकर मौर्य शासकों के अधीन) की प्रकृति के विश्लेषण को समझने में मदद मिलेगी।

इस इकाई में पाँचवीं शताब्दी ई.पू. से तीसरी शताब्दी ई.पू. के बीच हुई राजनीतिक गतिविधियों का भी अवलोकन किया जाएगा।

छठी शताब्दी ई.पू. से ही मगध राज्य का विस्तार शुरू हो गया था, हालांकि नंदों और मौर्यों के अधीन इसमें तेजी आई। विभिन्न भागों में अशोक के अभिलेखों की उपस्थिति से यह संकेत मिलता है कि सुदूर पूरब और दक्षिण के क्षेत्रों को छोड़कर भारतीय उपमहाद्वीप का अधिकांश भाग मगध संप्रभुता के अधीन था। मगध के क्षेत्रीय विस्तार पर विस्तार से चर्चा करने के बाद हम इस तथ्य पर भी विचार करेंगे कि मगध साम्राज्य की बनावट और संरचना में इतनी विविधता थी और इसका फैलाव इतना व्यापक था कि प्रत्यक्षतः राजनीतिक नियंत्रण रखना संभवतः बहुत कठिन था। इससे शायद यह समझने में सहायता मिलेगी कि क्यों अशोक ने समाज में व्याप्त तनाव को कम करने के लिए **''धम्म''** का सहारा लिया। इसकी विस्तार से चर्चा इकाई 21 में की गई है।

18.2 मगध की भौगोलिक स्थिति

खंड 4 की इकाई 14 में हमने मगध राज्य की चर्चा **सोलह महाजनपदों** के एक महत्वपूर्ण **महाजनपद** के रूप में की थी।

ये महाजनपद गंगा घाटी के बड़े भू-भाग में फैले हुए थे; कुछ इसके उत्तर-पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम में भी स्थित थे। हालांकि चार में से तीन महत्वपूर्ण राज्य (कोशल, वज्जि गणराज्य और मगध) मध्य गंगा घाटी में स्थित थे, चौथा शक्तिशाली राज्य अवंती पश्चिमी मालवा में था। मगध के पूरब में अंग, उत्तर में वज्जि गणराज्य, पश्चिम में काशी और सुदूर पश्चिम में कोशल राज्य था।

मगध वर्तमान बिहार राज्य के पटना, गया, नालंदा और शाहाबाद के कुछ हिस्सों में फैला हुआ था। भौगोलिक दृष्टि से मगध जहां स्थित था, वहां की मिट्टी जलोढ़ और उपजाऊ थी। विशेष बात यह है कि मगध की आरंभिक राजधानी राजगृह, नदी से दूर दक्षिण क्षेत्र में स्थित थी। इसका कारण संभवतः इसकी सामरिक भौगोलिक स्थिति हो सकती है; दूसरी बात यह कि इस इलाके में लौह खनिज पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध था। इसके अतिरिक्त यहां तांबा भी सुलभ था और इसके आस-पास दक्षिण बिहार के जंगल भी थे। इन्हीं सब कारणों से मगध के शासकों ने गंगा घाटी के उपजाऊ क्षेत्र को छोड़कर अपोक्षाकृत वीरान इलाका चुना। बाद में मगध की राजधानी पाटलिपुत्र हो गई, जिसका मूल नाम पाटलिग्राम था। यह गंगा, गंडक, सोन और पुनपुन जैसी नदियों के मुहाने पर बसा था। मौर्यों ने पाटलिपुत्र को मगध की राजधानी बनाया। इससे **उत्तरपथ** पर मगध का पूर्ण नियंत्रण हो गया। यह पथ गंगा के उत्तर में था और हिमालय की तलहटी तक जाता था। मगध ने विभिन्न राज्यों से सम्पर्क स्थापित करने में नदी-मार्ग का उपयोग किया और भारी सामान लाने ले जाने के लिए सुगम यातायात उपलब्ध हो सका। इस प्रकार, अपने समकालीन शक्तिशाली राज्यों की अपेक्षा मगध को कुछ प्राकृतिक लाभ प्राप्त हुए। मगध के दक्षिण पश्चिम में अवंती, इसके उत्तर-पश्चिम में कोशल और इसके उत्तर में वज्जि गणराज्य छठी शताब्दी ई.पू. में मगध के समान ही शक्तिशाली थे।

हाल के शोधों से यह स्पष्ट है कि लोहे की सुलभ प्राप्ति ने दो राज्यों-मगध और अवंती के विकास में भरपूर योगदान दिया। इससे न केवल हथियार बनाने में सहायता मिली, बल्कि कृषि के औजार भी बनाने में सुविधा हुई। इससे कृषि अर्थव्यवस्था का विकास हुआ, अधिशेष उत्पादन हुआ और राज्य को कर के रूप में यह अधिशेष प्राप्त हुआ। इससे उन्हें अपने क्षेत्रीय आधार के विस्तार और विकास में सहायता मिली। यह ध्यान देने योग्य बात है कि कुछ समय तक अवंती मगध के लिए सबसे बड़ा खतरा था और पूर्वी मध्य प्रदेश में स्थित लोहे की खानें भी उसकी पहुँच से दूर नहीं थीं।

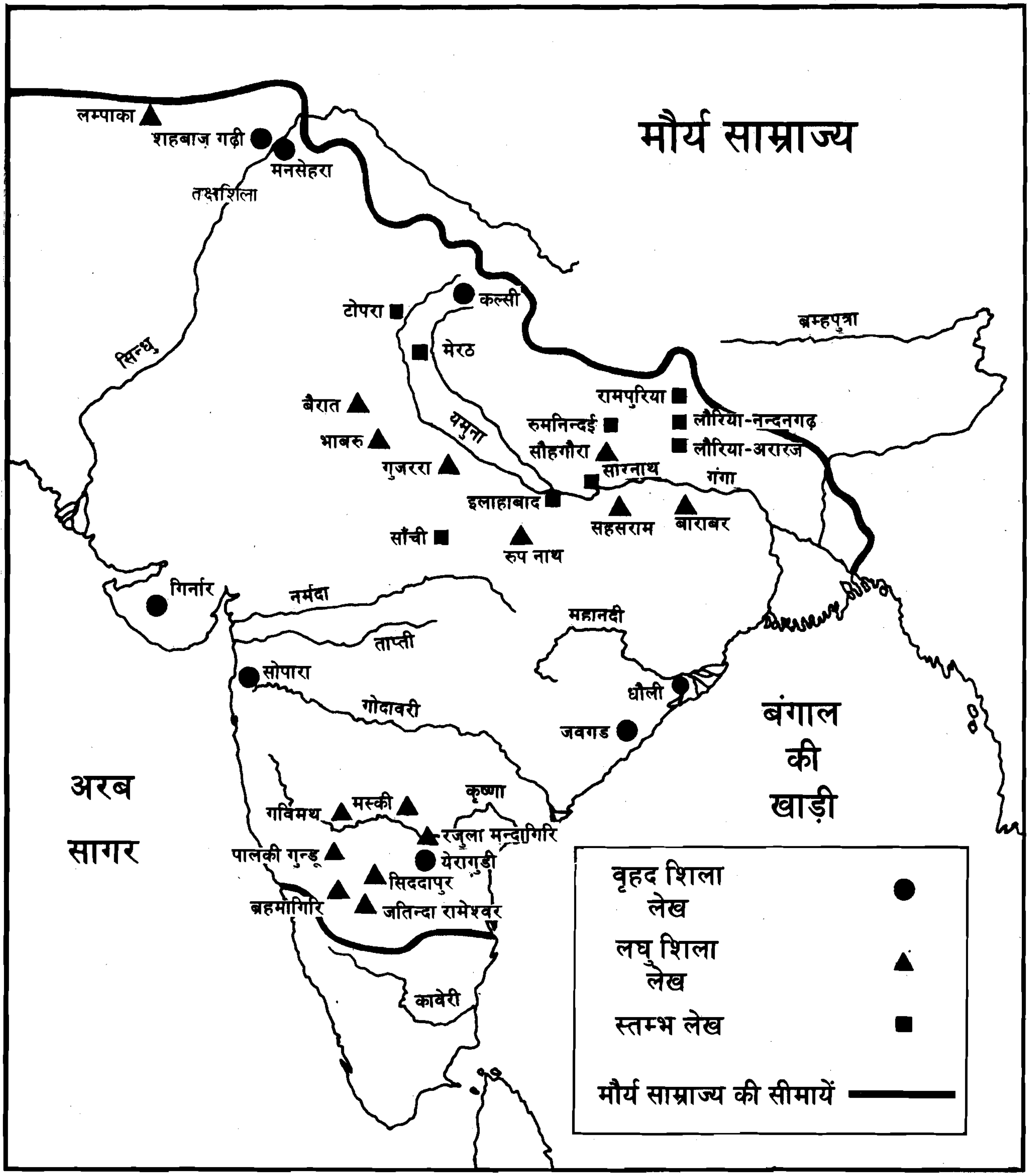
मौर्य साम्राज्य
लम्पाका
शहबाज़ गढ़ी
मनसेहरा
तक्षशिला
सिन्धु
टोपरा
कल्सी
मेरठ
ब्रम्हपुत्रा
बैरात
भाबरु
गुजररा
यमुना
रामपुरिया
रुमनिन्दई
लौरिया-नन्दनगढ़
सौहगौरा
लौरिया-अरारज
सारनाथ
गंगा
इलाहाबाद
सहसराम
बाराबर
साँची
रुप नाथ
गिर्नार
नर्मदा
महानदी
ताप्ती
सोपारा
गोदावरी
धौली
जवगड
बंगाल
की
खाड़ी
अरब
सागर
कृष्णा
गविमथ
मस्की
रजुला मन्दागिरि
पालकी गुन्डू
येरागुडी
सिददापुर
ब्रहमगिरि
जतिन्दा रामेश्वर
कावेरी
वृहद शिला लेख
लघु शिला लेख
स्तम्भ लेख
मौर्य साम्राज्य की सीमायें

18.3 स्रोतों पर एक नज़र

आरम्भिक बौद्ध और जैन साहित्य में मध्य गंगा के मैदान, जहां मगध स्थित था, की घटनाओं और परम्पराओं का काफी उल्लेख किया गया है। बौद्ध परम्परा का कुछ साहित्य त्रिपिटकों और जातकों में संगृहीत है। जैन परम्परा के दो ग्रंथ—अकरना सूत्र और सूत्र क्रितना—अन्य ग्रन्थों से पुंराने माने जाते हैं हालांकि ये सभी ग्रंथ छठी शताब्दी ई.पू. के बाद विभिन्न चरणों में लिखे और संगृहीत किए गए हैं। जैन और बौद्ध परम्परा के ग्रन्थ आरंभिक राजनीतिक गतिविधियों को बाद में संगृहीत हुये ब्राह्मण ग्रन्थों (जैसे ''पुराण'') से अधिक प्रामाणिक रूप में और सीधे तौर पर प्रस्तुत करते हैं। पुराणों में गुप्तकाल तक के शाही राजवंशों का इतिहास प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है। **महावंस** और **दीपवंस** प्रमुख परवर्ती बौद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ हैं, जिनका संग्रहण श्रीलंका में हुआ। ये ग्रंथ अशोक के शासनकाल के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। इसके अतिरिक्त, दीव्यावदान, भारत के बाहर तिब्बत और चीनी बौद्ध स्रोतों में सुरक्षित एक महत्वपूर्ण बौद्ध ग्रंथ है। परन्तु इन स्रोतों का उपयोग काफी सावधानी से करना चाहिए क्योंकि उनकी रचना भारत से बाहर बौद्ध धर्म के प्रचार के संदर्भ में हुई थी।

विदेशी स्रोतों से प्राप्त सूचनाएं अपेक्षाकृत अधिक प्रासंगिक और लगभग समकालीन हैं। इनमें यूनानी और लैटिन के ''क्लासिकल ग्रंथों'' से प्राप्त सूचनाएं उल्लेखनीय हैं। यह उन लोगों का लिखा यात्रावृतांत है, जिन्होंने उस समय भारत का भ्रमण किया। इनमें मेगस्थनीज काफी चर्चित और जाना-पहचाना नाम है, जो चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में भारत आया था और वह राजा के दरबार में भी गया था। मेगस्थनीज का वृतांत हमें प्रथम शताब्दी ई.पू. के स्ट्रैबो और डेपोडोरस तथा द्वितीय शताब्दी ई.पू. के एरियन के यूनानी ग्रंथों के द्वारा मिलता है। छठी शताब्दी ई.पू. से चौथी शताब्दी ई.पू. तक उत्तर-पश्चिमी भारत विदेशी शासकों के अधीन था। अतः अकेमेमी (ईरानी) शासन और बाद में सिकन्दर के आक्रमण के विषय मे जानकारी हमें फारसी अभिलेखों और डेपोडोरस की रचना जैसे यूनानी स्रोतों से मिलती है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र की खोज 1905 ई. में हुई। यह मौर्य काल से संबंधित महत्वपूर्ण स्रोत माना जाता है। हाल ही में, अर्थशास्त्र के लेखन-काल के संबंध में नए विचार सामने आए हैं, जिनके अनुसार इस ग्रंथ का लेखन पूर्ण रूप से मौर्य काल में नहीं हुआ था। सांख्यिकीय गणना के आधार पर यह मान्यता सामने आई है कि **अर्थशास्त्र** के कुछ अध्यायों का लेखन काल ईसा बाद की प्रथम दो शताब्दियों में हुआ होगा। इसके बावजूद कई अन्य विद्वान इस ग्रन्थ के अधिकांश हिस्से को मौर्य काल का लेखन मानते हैं। उनकी मान्यता है कि मूल ग्रन्थ चंद्रगुप्त के मंत्री, कौटिल्य द्वारा लिखा गया था; बाद के वर्षों में अन्य विद्वानों ने इसकी टिप्पणी लिखी और सम्पादन किया।

अभिलेख और सिक्के मौर्य काल की जानकारी के अन्य महत्वपूर्ण स्रोत हैं, जो प्राचीन भारत में मौर्य काल की महत्ता पर प्रकाश डालते हैं। हालांकि इस काल के सिक्कों पर राजा का नाम अंकित नहीं है और उन्हें पंच मार्क्ड सिक्के कहा जाता है क्योंकि उन पर कई प्रकार के चिह्न अंकित होते थे। हालांकि इस प्रकार पंच मार्क्ड सिक्के लगभग पांचवीं शताब्दी ई.पू. से ही मिलने लगते हैं, परन्तु मौर्य काल के पंच मार्क्ड सिक्के इस दृष्टि से महत्वपूर्ण थे कि वे शायद एक केन्द्रीय प्राधिकरण द्वारा जारी किए जाते थे क्योंकि उनके चिह्नों में एकरूपता है। सिक्कों के अलावा अन्य अभिलेखीय सामग्री, खासकर अशोक मौर्य के शासन के संदर्भ में महत्वपूर्ण सूचनाएं देते हैं और यह अपने आप में एक विशेष बात है। अशोक के चौदह वृहत शिलालेख, सात लघु शिलालेख, सात स्तम्भ लेख और अन्य अभिलेख पूरे भारतीय उपमहाद्वीप के महत्वपूर्ण नगरों और व्यापार मार्गों पर पाए जाते हैं। ये अभिलेख अशोक के शासन के अंतिम चरण में मौर्य साम्राज्य के विस्तार के साक्षात प्रमाण हैं।

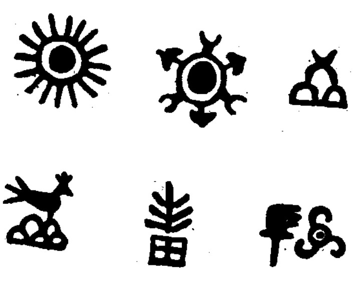

चित्र-1 पंच मार्क्ड सिक्कों पर बने प्रतीक चिह्न

हाल के वर्षों में, पुरातात्विक जानकारी एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में सामने आई है और इससे गंगा घाटी की भौतिक संस्कृति के महत्वपूर्ण तथ्य सामने आए हैं। खंड 4 की इकाई 15 में पुरातात्विक उपलब्धियों और सामग्रियों पर प्रकाश डाला जा चुका है। हम जानते हैं कि उत्तरी काली पालिश किए बर्तनों के काल के पुरातात्विक साक्ष्य उस समय से सम्बद्ध है जब शहरों और नगरों का उदय हुआ। पुरातात्विक साक्ष्य इस तथ्य को सामने लाते हैं कि मौर्य काल में लोगों के भौतिक जीवन में और भी परिवर्तन आए। पुरातत्व की सहायता से ही हम यह भी जान पाते हैं कि भौतिक संस्कृति के कई तत्व गंगा घाटी से बाहर फैलने लगे और वे मौर्य शासन से संबंधित माने जाने लगे।

बोध प्रश्न 1

1) सही उत्तर के सामने √ का चिह्न लगाइए।
   मगध निम्नलिखित **तीन** राज्यों से घिरा था :

   क) अवंती, कोशल, अंग

   ख) अंग, कोशल, वज्जि गणराज्य

   ग) अंग, वज्जि गणराज्य, काशी

   घ) अवंती, काशी, कोशल

2) पांच पंक्तियों में उन महत्वपूर्ण स्रोतों का उल्लेख कीजिए, जिनसे मगध के इतिहास की पुनर्रचना में सहायता मिली है।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

3) उन तीन महत्वपूर्ण कारकों का उल्लेख कीजिए, जिनसे मगध राज्य के विकास में सहायता मिली।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

4) सही और गलत कथनों के आगे क्रमशः √ और × का निशान लगाइए :

   क) मौर्य काल से पहले के काल के लिए अभिलेख सबसे महत्वपूर्ण स्रोत हैं। ( )

   ख) मौर्य पंच मार्क्ड सिक्कों में चांदी की एकरूपता है। ( )

   ग) उत्तरपथ एक ऐसा रास्ता था, जो गंगा के किनारे-किनारे जाता था। ( )

   घ) पाटलिपुत्र गंगा के दक्षिण में बसा था। ( )

   ङ) भारत के बारे में मेगस्थनीज का कथन बाद के लेखकों की रचनाओं में संगृहीत है। ( )

18.4 मौर्यों से पहले मगध का राजनीतिक इतिहास

ई.पू. छठी-पांचवीं शताब्दी के दौरान बिम्बिसार के नेतृत्व में मगध मध्य गंगा के मैदान के प्रमुख दावेदार के रूप में तेजी से उभरा। बिम्बिसार बुद्ध का समकालीन था। बिम्बिसार मगध का प्रथम महत्वपूर्ण शासक माना जाता है। राजनीतिक दूरदर्शिता का परिचय देते हुए उसने कोशल के राजघराने से वैवाहिक संबंध स्थापित किया। इस शादी में उसे काशी का एक जिला दहेज के रूप में मिला। गांधार के राज्य के साथ उसका

संबंध सौहार्दपूर्ण था। इन कूटनीतिक संबंधों को मगध की शक्ति का प्रतीक माना जा सकता है। मगध के उत्तर में अंग राज्य था, जिसकी राजधानी चम्पा एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र थी। चम्पा एक महत्वपूर्ण नदी-बंदरगाह था। कहा जाता है कि बिम्बिसार के आधिपत्य में 80,000 गांव थे। परम्परागत सूत्रों से पता चलता है कि अजातशत्रु ने अपने पिता बिम्बिसार को बंदी बना लिया था और वह (बिम्बिसार) भूख से तड़प-तड़प कर मर गया था। ऐसा माना जाता है कि यह घटना ई.पू. 492 के आसपास घटी होगी।

आंतरिक समस्याओं और गद्दी पर अजातशत्रु के बैठने से मगध के निर्यात में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। नये मगध के राजा ने आक्रामक नीति अपनाई और अपने राज्य क्षेत्र का विस्तार किया। उसने काशी पर अधिकार कर लिया और अपने मामा, कोशल के नरेश से सौहार्द का संबंध समाप्त कर उन पर आक्रमण कर दिया। गंगा के दक्षिण तक फैला हुआ वज्जि गणराज्य अजातशत्रु के आक्रमण का अगला निशाना बना। वज्जि संघ के साथ युद्ध का सिलसिला लगभग सोलह वर्षों तक चलता रहा। अंत में अजातशत्रु वहां आंतरिक कलह पैदा कर धोखे से उसे पराजित करने में सफल हुआ। अपने शक्तिशाली शत्रु अवंती पर आक्रमण की पूरी तैयारी अजातशत्रु ने कर ली थी परन्तु आक्रमण किन्हीं कारणों से सम्पन्न न हो सका। फिर भी, उसके शासनकाल में काशी और वैशाली (वज्जि महाजनपद की राजधानी) मगध के अधीन आ चुके थे। इस प्रकार मगध गांगेय प्रदेश में सबसे शक्तिशाली राज्य माना जाने लगा।

यह माना जाता है कि अजातशत्रु ने 492 से 460 ई.पू. तक राज्य किया। उदयन (460-444 ई.पू.) उसका उत्तराधिकारी था। उदयन के राज्यकाल में मगध का क्षेत्र हिमालय के उत्तर से लेकर छोटा नागपुर की पहाड़ियों के दक्षिण तक फैला हुआ था। यह कहा जाता है कि उसने गंगा और सोन के मुहाने पर एक किला बनवाया था। उदयन के शासन काल में राज्य क्षेत्र काफी विस्तृत था, परन्तु वह इन पर कुशल शासन करने में असक्षम था। उदयन के बाद चार शासक एक के बाद एक गद्दी पर बैठे, परन्तु वे अयोग्य सिद्ध हुए। ऐसा माना जाता है कि अंतिम राजा को मगध की जनता ने राज सिंहासन से उतार दिया। 413 ई.पू. में बनारस के राज्यपाल शिशुनाग को राजा नियुक्त किया गया। शिशुनाग वंश ने थोड़े समय तक राज्य किया और महापद्मनन्द ने राज्य पर अधिकार कर नंद वंश की शुरुआत की।

326 ई.पू. में उत्तरी-पश्चिमी भारत पर सिकन्दर के समय मगध और लगभग सम्पूर्ण गंगा के मैदान में नन्द वंश का शासन था। यहीं से भारतीय इतिहास का ऐतिहासिक काल शुरू होता है। इस कारण नन्दों को कभी-कभी भारत का प्रथम साम्राज्य-निर्माता कहा जाता है। उन्हें केवल मगध का राज्य विरासत में मिला था और उसके बाद उन्होंने उसकी सीमा का और विस्तार किया।

परवर्ती पुराण ग्रन्थों में महापद्मनन्द का उल्लेख **क्षत्रियों** के विनाशकर्त्ता के रूप में हुआ है। यह भी कहा गया है कि उसने समकालीन सभी राजघरानों से शक्ति छीन ली। यूनानी ग्रन्थ नंद साम्राज्य की शक्ति का उल्लेख करते हुए बताते हैं कि नंदों के पास विशाल सेना थी, जिसमें 20,000 घुड़सवार, 2,00,000 पैदल सैनिक, 2,000 रथ और 3,000 हाथी थे। इस बात के भी संकेत मिले हैं कि नंदों के संबध दक्कन और दक्षिण भारत से भी थे। राजा खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख में इस बात का संकेत है कि कलिंग (आधुनिक उड़ीसा) के कुछ हिस्सों पर नंद वंश का अधिकार था। राजा खारवेल का शासन काल प्रथम शताब्दी ई.पू. के मध्य में था।

दक्षिण कर्नाटक प्रदेश के कुछ बाद के अभिलेखों से भी पता चलता है कि नंद वंश के नेतृत्व में दक्कन के कुछ हिस्से पर मगध का अधिकार था। अधिकांश इतिहासकारों का यह मानना है कि महापद्मनंद के शासन काल के अंतिम चरण में मगध साम्राज्य के विस्तार और सुदृढ़ीकरण का पहला चरण समाप्त हो गया। सिकन्दर के आक्रमण का हवाला देते हुए यूनानी ग्रंथ उल्लेख करते हैं कि इस समय उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र छोटे-छोटे राज्य वंशों के बीच विभक्त था। यह भी स्पष्ट है कि मगध राज्य और यूनानी विजेता के बीच कोई युद्ध नहीं हुआ।

321 ई.पू. में नंद वंश का पतन हो गया। इस दौरान नौ नंद राजाओं ने शासन किया और यह कहा जाता है कि अपने शासन के अंतिम दिनों में वे काफी अलोकप्रिय हो गए थे। चंद्रगुप्त मौर्य ने इस स्थिति का फायदा उठाया और मगध के सिंहासन पर अधिकार जमा लिया। इन सभी परिवर्तनों के बावजूद मगध गंगा घाटी का सर्वशक्तिमान राज्य बना रहा। मगध की भौगोलिक स्थिति उसकी सफलता के कारणों में प्रमुख है। इसके अतिरिक्त लोहा उन्हें सहज सुलभ था और प्रमुख स्थल और जल व्यापार मार्ग पर उनका नियंत्रण था। इस इकाई के अगले भाग में हम "साम्राज्य" के रूप में मगध का मूल्यांकन करने के साथ-साथ मौर्य शासन की भी चर्चा करेंगे।

18.5 "साम्राज्य" की धारणा

मौर्य साम्राज्य पर विचार करने से पूर्व आइए, समझ लें कि "साम्राज्य" का अर्थ क्या है। यह जानकारी आवश्यक है, क्योंकि अक्सर हम मनमाने ढंग से सभी प्रकार के (छोटे या बड़े) राज्यों को साम्राज्य कह बैठते हैं। इसके अलावा, हम कभी-कभी यह भी सोचने लगते हैं कि प्राचीन, मध्ययुगीन और आधुनिक साम्राज्य अपनी प्रकृति में समान थे। यह स्पष्ट है कि आधुनिक युग में ब्रिटिश साम्राज्य की प्रकृति या मध्यकाल के केन्द्रीय एशियाई मंगोल साम्राज्य की प्रकृति और मौर्य साम्राज्य की प्रकृति में एकरूपता नहीं हो सकती है। इतिहास के विभिन्न कालों में विकसित साम्राज्यों में महत्वपूर्ण अंतर हैं। अतः प्राचीन काल के साम्राज्य का अध्ययन करने से पूर्व साम्राज्य के अनिवार्य तत्वों को समझना आवश्यक है।

18.5.1 "साम्राज्य" संबंधी आधुनिक दृष्टिकोण

आम तौर पर यह समझा जाता है कि "साम्राज्य" एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था है, जिसमें एक केन्द्रीय सत्ता का अधिकार विषमजातीय संस्कृति वाले विशाल भू-भाग पर होता है। इस परिभाषा के अनुसार केन्द्रीय सत्ता किसी राजा या राजा के प्रतिनिधि या किसी राजनीतिक संस्था के हाथ में होती है जो विभिन्न राज्य क्षेत्रों को एक साथ बांधकर नियंत्रित रखता है; यह "इम्पेरियल" लैटिन शब्द "इम्पेरियम" से बना है। यह केन्द्र में शक्ति के सापेक्ष केन्द्रीयकरण की ओर इशारा करता है। केन्द्र राज्य-क्षेत्र में शामिल इकाइयों पर नियंत्रण रखता है, क्रमशः जिनकी समान राजनीतिक पहचान बन जाती है। साधारणतया प्राचीन काल के इतिहास में रोमन साम्राज्य को मानक माना जाता है जिससे सभी प्राचीनकालीन साम्राज्यों, जिसमें मौर्य साम्राज्य भी शामिल है, की तुलना की जाती है।

इस परिभाषा को उन राज्य-राष्ट्रों से जोड़कर नहीं देखा जाना चाहिए, जिनमें से कुछ ने आधुनिक युग में बृहद् साम्राज्यों का निर्माण किया। आरंभिक साम्राज्यों में केन्द्रीय शक्ति का आधार राजा का आकर्षक व्यक्तित्व और उसका शौर्य था। इसके अतिरिक्त, परम्परा से प्राप्त मान्यताएं भी राजा की शक्ति को मज़बूत बनाती थीं।

यह आम धारणा है कि मौर्यों का मगध साम्राज्य एक केंद्रीकृत नौकरशाही साम्राज्य था। इस प्रकार के साम्राज्य विश्व के दूसरे भागों में भी विद्यमान थे।

केंद्रीकृत नौकरशाही साम्राज्य आम तौर पर सैन्य बल और व्यक्तिगत पराक्रम की सहायता से निर्मित होते हैं। इस प्रकार के साम्राज्य के निर्माण के पीछे अक्सर लोगों का असंतोष, विक्षोभ और विरोध होता था। साम्राज्य के संस्थापक लोगों को शांति और व्यवस्था का आश्वासन देते थे। इस प्रकार के साम्राज्य के दुश्मनों की संख्या पर्याप्त होती थी, क्योंकि साम्राज्य की स्थापना में कुछ लोगों को बलपूर्वक हटाया जाता था और परम्परा से आ रही कुछ मान्यताएं टूटती थीं। नये राज्य-क्षेत्रों में विस्तारनीति के कारण दुश्मनी पैदा होती थी। इसलिए शासक वैवाहिक और कूटनीतिक गतिविधियों की सहायता से अपने मित्र बनाते थे।

राजनीतिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए ऐसे साम्राज्य एकीकृत केंद्रीकृत राज्य तंत्र विकसित करते थे, जिसमें निर्णय के एकाधिकार पर बल दिया जाता था। इसके कारण पुरानी परम्परागत या स्थानीय कबीलाई सत्ता समाप्त हो गई और उसका स्थान केंद्रीकृत राज्य तंत्र ने ले लिया। प्रायः ऐसा माना जाता है कि इन साम्राज्यों की सफलता में भौगोलिक-राजनीतिक कारकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस प्रकार के साम्राज्यों के निर्माण में आर्थिक संसाधनों को प्राप्त करके उपयोग में लाना आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त, मानव शक्ति की बहुलता भी साम्राज्य निर्माण में सहायक सिद्ध होती है।

ये साम्राज्य सक्रिय राजनीतिक समर्थन के लिए आम तौर पर शहरी, आर्थिक, सांस्कृतिक और व्यावसायिक समुदायों पर निर्भर होते थे और किसानों तथा शहरी निम्न वर्ग में इन्हें निष्क्रिय रूप में समर्थन मिलता था। प्रशासनिक निकायों के कुशल संचालन के लिए उच्च वर्ग से अधिकारियों का चयन होता था। इस प्रकार, प्रशासन शोषण का एक प्रमुख जरिया बन जाता था। दूसरे शब्दों में, आरंभिक साम्राज्यों में, सामाजिक असमानता अपनी चरम सीमा पर थी, जिसमें विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग और क्षेत्र दूसरों द्वारा उत्पादित संसाधनों पर अपना अधिकार जमाए रखता था।

18.5.2 चक्रवर्ती-क्षेत्र संबंधी भारतीय धारणा

मौर्यों के अधीन मगध साम्राज्य या दूसरे शब्दों में प्राचीन भारत के किसी भी अन्य "साम्राज्य" को समझने के लिए यह जानकारी उपयोगी हो सकती है कि प्राचीन साहित्य में आदर्श सम्राट का मानदण्ड क्या था।

संस्कृत में सम्राट को ''चक्रवर्ती'' और उसके राज्य-क्षेत्र को ''चक्रवर्ती क्षेत्र'' कहा गया है। हालांकि आरंभिक ब्राह्मण ग्रन्थों में राजा द्वारा सम्पन्न ''अश्वमेध'' और ''राजसूय'' जैसे बलि-यज्ञों की चर्चा है, परन्तु ''चक्रवर्ती-क्षेत्र'' की स्पष्ट चर्चा **अर्थशास्त्र** में की गई है। इसके अनुसार, ''चक्रवर्ती क्षेत्र'' में उत्तर से लेकर दक्षिण तक हिमालय से लेकर समुद्र तक (हिन्द महासागर) और **हजार योजन** का भू-भाग शामिल होता था। इस बात में कोई सन्देह नहीं कि **चक्रवर्ती** परम्परागत विचारों का ही प्रतिबिंबन था, जिसमें भारतीय राजा के प्रभाव-क्षेत्र की चर्चा की गई थी परन्तु शायद अशोक के अलावा कोई भी इस आदर्श की प्राप्ति में सफल नहीं हुआ।

दूसरी तरफ, साहित्यिक और पुरालेखीय स्रोतों में हमेशा बढ़ा-चढ़ाकर सार्वभौमिक विजय की महत्वकांक्षा का ज़िक्र होता रहा है। प्रायः इतिहासकार इन आदर्श कथनों को राजाओं द्वारा प्राप्त वास्तविक विशाल राज्य-क्षेत्रीय अधिकार से जोड़कर देखने लगते हैं; इससे भ्रम पैदा होता है क्योंकि आदर्श को ही यथार्थ समझ लिया जाता है।

अर्थशास्त्र और बहुत से दूसरे ग्रंथों में ऐसे विभिन्न **अंगों** की चर्चा की गई है जिनको मिलाकर एक राष्ट्र बनता है। **अर्थशास्त्र** में सात अंगों की चर्चा की गई है। राजा राष्ट्र का सर्वाधिक शक्तिशाली अंग था। प्राचीन भारतीय राजनीतिक व्यवस्था पर लिखे गए ग्रन्थों में राज्य के सात तत्वों की चर्चा की गई है। इन्हें **सप्तांग** कहा जाता है। ये हैं—**मंत्री, मित्र, कर, सेना, दुर्ग, भूमि या देश । अर्थशास्त्र में शत्रु** को आठवां तत्व माना गया है। अर्थशास्त्र का लेखक कौटिल्य राजा को राज्य का शक्तिशाली अंग बताता हुआ कहता है कि राजा में कुछ विशेष गुण होने चाहिए। आप इकाई 20 में इस बात का अध्ययन करेंगे कि राजा कैसे अपने राज्य और प्रशासन की व्यवस्था करता था।

ऊपर राज्य और साम्राज्य संबंधी जो बातें कही गई हैं, उनके आधार पर कुछ समय तक इतिहासकारों में यह मत कायम रहा कि मौर्यों का राज्य एक निरंकुश राज्य था, जिसमें राजा साम्राज्य के सभी हिस्सों पर केंद्रीकृत प्रशासन के माध्यम से नियंत्रण रखता था। अब इस मत पर प्रश्न-चिह्न लग गया है। इन विचारों की समीक्षा हम आगे करेंगे। हां, एक बात स्पष्ट रूप में कही जा सकती है कि मगध साम्राज्य ने गण समूह जैसे अन्य राजनीतिक संगठनों पर राजतंत्र की वर्चस्वता को स्थापित किया।

बोध प्रश्न 2

1) नीचे दिए कोडों का उपयोग करते हुए सही उत्तर पर निशान लगाइए:
   निम्नलिखित उपायों से मगध के आरंभिक राजाओं ने अपनी स्थिति मजबूत की:

   i) अपनी राजधानी पाटलिपुत्र में स्थानांतरित करके

   ii) अंग की राजधानी चम्पा पर कब्जा करके

   iii) गांधार तक अपनी सीमा का विस्तार करके

   iv) युद्ध और संधि के जरिए पड़ोसी राज्यों का अधिग्रहण करके

   v) अवंती की लोहे की खानों पर कब्जा जमाकर

   कोड

   क) i, ii, iii

   ख) i, iv, v

   ग) ii, iv

   घ) iii, v

2) मगध साम्राज्य के इतिहास में नंद शासन के महत्व पर प्रकाश डालिए। उत्तर पांच पंक्तियों में लिखिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

3) "साम्राज्य" संबंधी विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर मौर्य "साम्राज्य" का मूल्यांकन कीजिए। (अपने उत्तर के संबध में आप अध्ययन केन्द्र के परामर्शदाता से सलाह ले सकते हैं।) उत्तर पांच पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

....

4) सही कथन के आगे √ का और गलत कथन के आगे × का चिह्न लगाइए:

क) मगध साम्राज्य को विजय का साम्राज्य भी कहा जा सकता है।

ख) मगध साम्राज्य को केंद्रीकृत नौकरशाही साम्राज्य कहा जा सकता है।

ग) आरंभिक ग्रंथों में सेना को राज्य का सर्वाधिक प्रमुख अंग माना गया है।

घ) अधिकांश प्राचीन भारतीय राजाओं ने चक्रवर्ती का आदर्श प्राप्त कर लिया था।

ड.) **अर्थशास्त्र** में राजा से यह अपेक्षा की गई है कि उसमें विशेष गुण हों।

18.6 मौर्य शासन का उद्भव

डी.डी. कौशाम्बी का यह मानना है कि सिकन्दर के उत्तर, पश्चिम पर आक्रमण का तात्कालिक और अप्रत्याशित परिणाम यह हुआ कि इसने सम्पूर्ण देश पर मौर्यों की विजय का रास्ता प्रशस्त कर दिया। उनका तर्क है कि इससे पंजाब के गणराज्य कमजोर हो गए और चन्द्रगुप्त के नेतृत्व में मगध की सेना को पूरे पंजाब पर विजय हासिल करने में किसी विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। गंगा घाटी के अधिकांश भाग पर मगध का पहले से ही अधिकार था। प्राचीन ग्रंथ इस बात का हवाला देते हैं कि चन्द्रगुप्त सिकन्दर से मिला था और उसने सिकन्दर को मगध पर आक्रमण करने की सलाह दी थी, जो उस समय अलोकप्रिय नंदों के अधीन था। हालांकि इस तथ्य की जांच करना कठिन कार्य है, परन्तु भारतीय और अन्य "क्लासिकल स्रोत" इस बात का हवाला देते हैं कि सिकंदर के वापस जाने से एक रिक्तता का माहौल कायम हो गया और इसके बाद चन्द्रगुप्त के लिए यूनानी दुर्गों पर अधिकार जमाना कठिन कार्य नहीं रहा। इसके बावजूद यह स्पष्ट नहीं है कि चन्द्रगुप्त ने यह कार्य गद्दी प्राप्त करने के बाद किया या उससे पहले ही उसने इन इलाकों पर अधिकार जमा लिया था। कुछ विद्वान उसके राज्यारोहण का वर्ष 324 ई.पू. मानते हैं परन्तु अब 321 ई.पू. का समय सर्वमान्य है।

भारतीय परम्परागत स्रोत इस बात का हवाला देते हैं कि चन्द्रगुप्त ने कौटिल्य ब्राह्मण, जो चाणक्य या विष्णुगुप्त के नाम से भी जाना जाता था, की सहायता से मगध का राज सिंहासन प्राप्त किया था। छठी शताब्दी ई. में लिखे नाटक में भी यह कहा गया है कि 25 वर्ष की आयु में जिस समय चन्द्रगुप्त ने नंद वंश को अपदस्थ किया था, उस समय चन्द्रगुप्त एक कमज़ोर शासक था और वास्तविक सत्ता चाणक्य के हाथ में थी। **अर्थशास्त्र** के लेखक चाणक्य के बारे में बताया जाता है कि वह न केवल युद्ध के राजनीतिक सिद्धांतों का ज्ञाता था वल्कि वह साम्राज्य को ध्वस्त होने से वचाने के लिए उपयुक्त राज्य और समाज के गठन के विषय में भी अच्छी जानकारी रखता था।

हालांकि चंद्रगुप्त के शासन के आरंभिक वर्षों के वहुत कम तथ्य प्रकाश में आए हैं, परन्तु अधिकांश इतिहासकार इस वात से सहमत हैं कि मौर्य परिवार का संवंध किसी निम्न जाति या कवीले से था। कुछ तथ्य इस वात का संकेत करते हैं कि चन्द्रगुप्त अंतिम नंद राजा और निम्न जाति की स्त्री मुरा का पुत्र था, इसी से उस परिवार का नाम मौर्य पड़ गया। वौद्ध स्रोतों के अनुसार वह पिप्लिवन के मोरिया वंश के परिवार का सदस्य था। इन स्रोतों के अनुसार वह चन्द्रगुप्त का संवंध उस शाक्य कवीले से था, जिसमें वुद्ध का जन्म हुआ था। इस कथन के अनुसार मौर्य नाम उसी कवीले के नाम से उद्भूत हुआ है। अप्रत्यक्ष रूप से इसका अर्थ यह है कि चन्द्रगुप्त एक पुराने सरदार का वंशज था और इस प्रकार उसका संवंध किसी न किसी प्रकार क्षत्रिय कुल से था। पुराणों में नंद वंश और मौर्य राजवंश में कोई संवंध नहीं वताया गया है, परन्तु वे

भी मौर्यो को शूद्र का दर्जा देते हैं। हालांकि ब्राह्मण ग्रंथों की यह समझ उस आरंभिक मगध के समाज पर आधारित थी, जिसमें अनैतिकता का बोलबाला था और जाति संकर मिश्रित थी। "क्लासिकल ग्रंथों" में भी अंतिम नंद राजा और चंद्रगुप्त (सैंड्राकोटस के रूप में) का उल्लेख है, परन्तु वे इन दोनों राज्य वंशों में किसी संबंध की बात नहीं करते। यह भी कहा गया है कि चन्द्रगुप्त के नाम में "गुप्त" लगा होना और अशोक द्वारा अपनी बेटी की शादी विदिशा के व्यापारी से करना, इस तथ्य को पुष्ट करता है कि मौर्यों का संबंध वैश्य जाति से था।

हालांकि मौर्यो की जाति के संबंध में स्थिति अस्पष्ट है, परन्तु यह उल्लेखनीय है कि इस राजवंश के अधिकांश महत्वपूर्ण राजाओं ने अपने जीवन के अंतिम प्रहर में असनातनिय धर्मों को ही अपनाया। दूसरी तरफ इस तथ्य को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि चंद्रगुप्त के परामर्शदाता और प्रेरक शक्ति के रूप में ब्राह्मण कौटिल्य ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। **पुराणों** में तो यहां तक कहा गया है कि चाणक्य ने चंद्रगुप्त को राजा नियुक्त किया था। ऐसा कहा जा सकता है कि मौर्यो ने उस समाज में सत्ता प्राप्त की, जो कभी भी रूढ़िवादी नहीं था। उत्तर-पश्चिम में विदेशियों के साथ काफी सम्पर्क बना रहा। रूढ़िवादी ब्राह्मण परम्परा में मगध को हमेशा नीची दृष्टि से देखा गया है। मगध बुद्ध और महावीर के विचारों से भी काफी प्रभावित था। इस प्रकार, एक सामाजिक और राजनीतिक अव्यवस्था के बीच चंद्रगुप्त मगध का सिंहासन प्राप्त करने में सफल हुआ।

आरंभिक मौर्य—चंद्रगुप्त और बिन्दुसार

बहुत से इतिहासकार मौर्य राज्य के क्षेत्रीय विस्तार के कारण ही उसे साम्राज्य का दर्जा देते हैं। इनके विचार से साम्राज्य निर्माण में चंद्रगुप्त की भूमिका काफी महत्वपूर्ण थी क्योंकि उसने उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में विदेशी आक्रमणकारियों की बाढ़ को रोका और पश्चिमी तथा दक्षिणी भारत में स्थानीय राजाओं को कुचल दिया। इन सैनिक कार्रवाइयों का ठीक-ठीक और सीधा ब्यौरा कहीं नहीं मिलता है। अतः केवल मगध के परवर्ती शासकों से संबंधित स्रोतों में उसकी विजयों संबंधी यत्र-तत्र बिखरी सूचनाओं पर ही निर्भर रहना पडता है।

भारतीय और "क्लासिकल स्रोत" इस बात का हवाला देते हैं कि चंद्रगुप्त ने नंद वंश के अंतिम राजा को अपदस्थ कर राजधानी पाटलिपुत्र पर अधिकार जमाया और 321 ई.पू. में मगध के राज सिंहासन पर बैठा। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, चंद्रगुप्त के राजनीतिक उत्थान का संबंध उत्तर-पश्चिम में सिकन्दर के आक्रमण से भी था। 325 ई.पू. से 323 ई.पू. का काल इस दृष्टि से निर्णायक था क्योंकि सिकन्दर के आक्रमण के बाद उत्तर-पश्चिम में नियुक्त उसके सारे सेनापतियों का या तो कत्ल हो चुका था या वे वापस लौट गए थे। चन्द्रगुप्त ने इस स्थिति का फायदा उठाया और इन इलाकों पर अधिकार जमा लिया। यहाँ, इस बात को लेकर विवाद है कि चंद्रगुप्त ने पहले नंदों को उखाड़ फेंका या पहले विदेशियों को हराया। कुछ भी हो, यह कार्य 321 ई.पू. तक सम्पन्न हो चुका था और राज्य के सुदृढ़ीकरण का रास्ता प्रशस्त हो गया था। सैनिक विजय की दृष्टि से चंद्रगुप्त मौर्य की पहली उपलब्धि 305 ई.पू. के आसपास सेल्यूकस निकेटर से युद्ध करना था। सेल्यूकस सिंधु नदी के पश्चिमी प्रदेश पर राज्य करता था। 303 ई.पू. में अंततः लम्बे युद्ध के बाद चंद्रगुप्त की विजय हुई और यूनानी दूत के साथ एक संधि हुई। इस संधि के मुताबिक चंद्रगुप्त ने सेल्यूकस को 500 हाथी दिए, बदले में सेल्यूकस ने चंद्रगुप्त को अफगानिस्तान, बलूचिस्तान और सिंधु का पश्चिमी इलाका दे दिया।

एक वैवाहिक संबंध भी स्थापित हुआ। सेल्यूकस का राजदूत मेगस्थनीज कई वर्षों तक चंद्रगुप्त के दरबार में रहा। यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी, क्योंकि इस प्रकार सिंधु एवं गंगा का मैदान चंद्रगुप्त के नियंत्रण में आ गए और मौर्य साम्राज्य की सीमाएं निर्धारित हो गयीं।

अधिकांश विद्वानों का यह मानना है कि चंद्रगुप्त ने केवल उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र और गंगा के मैदान पर ही अपना प्रभुत्व नहीं स्थापित किया था बल्कि पश्चिमी भारत और दक्कन के क्षेत्रों पर भी उसका नियंत्रण था। केवल आधुनिक केरल, तमिलनाडु और भारत के उत्तर-पश्चिमी इलाके उसके राज्य-क्षेत्र में शामिल नहीं थे। परन्तु इन विजय-अभियानों का विस्तृत ब्यौरा अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। यूनानी लेखकों ने अपने ग्रंथों में केवल इस बात का संकेत किया है कि चंद्रगुप्त मौर्य ने 6,00,000 की अपनी विशाल सेना की सहायता से पूरे भारत को रौंद डाला था। दूसरी शताब्दी ई. के मध्य के रुद्रदमन के जूनागढ़ शिला अभिलेख से पता चलता है कि चंद्रगुप्त ने सुदूर पश्चिम में सौराष्ट्र या कठियावाड़ पर विजय प्राप्त की थी और उसे अपने साम्राज्य में मिला लिया था। इसमें चंद्रगुप्त के राजदूत पुष्यगुप्त का उल्लेख है, जिसने प्रसिद्ध सुदर्शन झील का निर्माण करवाया था। इससे यह भी पता चलता है कि मालवा क्षेत्र भी चंद्रगुप्त के नियंत्रण में था। बाद के स्रोतों से यह भी पता चलता है कि दक्कन के क्षेत्र पर भी उसका अधिकार था। कुछ मध्ययुगीन पुरालेखों में इस बात का उल्लेख है कि चंद्रगुप्त ने कर्नाटक के कुछ हिस्सों को सुरक्षा प्रदान की थी।

संगम ग्रंथों में प्रारंभिक तमिल लेखकों (ईसवी वाद की प्रारंभिक शताब्दियों में) ने "मोरियार" का उल्लेख किया है, यह माना जाता है कि यह मौर्यों का ही उल्लेख है जिनका दक्षिण से संपर्क हुआ था; परन्तु संभवतः यह चंद्रगुप्त के उत्तराधिकारी के शासन का हवाला देता है। अंततः जैन परम्परा से सूचना मिलती है कि अपने अंतिम दिनों में चंद्रगुप्त ने जैन धर्म अपना लिया था। उसने राजसिंहासन त्याग दिया और एक जैन साधु भद्रबाहु के साथ दक्षिण की ओर चला गया। दक्षिण कर्नाटक में स्थित जैनों के तीर्थ स्थान श्रावण-वेलगोला में उसने अपने अंतिम दिन विताए और एक कट्टर जैन की तरह भूखे रहकर धीरे-धीरे प्राण त्याग दिए।

चंद्रगुप्त का पुत्र विन्दुसार 297 ई.पू. में गद्दी पर वैठा। भारतीय और "क्लासिकल स्रोतों" में उसका कम उल्लेख हुआ है। यूनानी विन्दुसार को अमित्रोफ्रेट्स के नाम से पुकारते थे। यूनानी स्रोतों में इस वात का भी उल्लेख है कि विन्दुसार का संवंध सीरिया के सेल्यूसिड वंश के राजा, एंटियोकस प्रथम के साथ था, जिससे उसने मीठी मदिरा, सूखा अंजीर और एक तार्किक (प्राचीन यूनानी दर्शन तथा अलंकार या भाषणशास्त्र का शिक्षक) भेजने का आग्रह किया था।

सोलहवीं शताब्दी में तिव्वत के एक वौद्ध पुजारी तारनाथ ने अपनी रचना में बिंदुसार का युद्ध संबंधी वर्णन लिखा है। कहते हैं उसने पूर्वी और पश्चिमी समुद्रों के वीच का भाग जीत लिया था और सोलह नगरों के राजाओं और सरदारों को हरा दिया था। दक्षिण के प्रारंभिक तमिल कवियों ने भूमि पर मौर्यों के रथों के गरजते हुए चलने का जिक्र किया है। शायद यह बिंदुसार का ही शासनकाल होगा। बहुत से इतिहासकारों का मानना है कि चूंकि अशोक ने केवल कलिंग पर ही विजय प्राप्त की थी, अतः त्रुंगभद्र तक का प्रदेश उसके पूर्व शासकों के काल में ही मगध का अंग वन चुका होगा। इसके आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि विंदुसार ने दक्कन पर अपना नियंत्रण स्थापित किया और मौर्य साम्राज्य को प्रायःद्वीप में सुदूर दक्षिण स्थित मैसूर तक विस्तार किया।

हालांकि विंदुसार को "शत्रु का संहारक" कहा जाता है, उसके शासनकाल का ब्यौरा भी ठीक से नहीं मिलता है। उसके विजय अभियानों का अनुमान केवल अशोक के साम्राज्य के विस्तार को देखकर लगाया जा सकता है क्योंकि अशोक ने केवल कलिंग (उड़ीसा) पर विजय प्राप्त की थी। उसका धार्मिक झुकाव अजीविकों की तरफ था। वौद्ध स्रोतों के अनुसार विंदुसार की मृत्यु 273-272 ई.पू. के आसपास हुई थी। उसकी मृत्यु के वाद उसके पुत्रों के वीच राजसिंहासन के लिए चार वर्षों तक संघर्ष होता रहा। अंततः 269-268 ई.पू. के आसपास अशोक विंदुसार का उत्तराधिकारी वना।

बोध प्रश्न 3

1) सही और गलत कथन के आगे क्रमशः √ और × का चिह्न लगाइए:

   क) चंद्रगुप्त के परामर्श पर सिकंदर ने मगध पर आक्रमण किया। ( )

   ख) नंद और मौर्य परिवार के वीच खून का संबंध था। ( )

   ग) चंद्रगुप्त ने सेल्यूकस निकेटर को पराजित किया। ( )

   घ) चंद्रगुप्त और विंदुसार ने कन्याकुमारी तक का इलाका जीत लिया था। ( )

   ङ) सेल्यूसिड राजा, ऐंटिओकस प्रथम के साथ विंदुसार का सम्पर्क था। ( )

2) मौर्य परिवार की जाति/मूल के संवंध में विभिन्न विचारों का उल्लेख कीजिए। इनमें से कुछ मतों का उल्लेख पांच पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

18.7 अशोक मौर्य

1837 ई. तक अशोक मौर्य के बारे में लोगों को कुछ विशेष मालूम नहीं था। किन्तु 1837 में जेम्स प्रिंसेप ने

ब्राह्मी लिपि में लिखा एक शिलालेख पढ़ा इस शिलालेख में देवतापिय पियदस्सी (देवताओं के प्रिय, प्रियदर्शी) नामक एक राजा का उल्लेख था। इसकी तुलना श्री लंका के इतिवृत्त महावंस में उल्लिखित पियदस्सी से की गई और वस्तुतः तब यह साबित हो सका कि शिलालेख में वर्णित राजा अशोक मौर्य ही था। युद्ध से विमुखता और **धम्म** के सिद्धांतों के आधार पर शासन की स्थापना ने अशोक को विशेष प्रसिद्धि दी है। आगे, हम उसके आरंभिक जीवन की प्रासंगिक घटनाओं, कलिंग युद्ध और उसके शासनकाल में मौर्य साम्राज्य के विस्तार पर चर्चा करेंगे।

18.7.1 कलिंग युद्ध

अपने पिता के शासनकाल में अशोक ने उज्जैन और तक्षशिला में राजदूत के रूप में कार्य किया था। यह बताया जाता है कि उसे तक्षशिला में एक विद्रोह को कुचलने के लिए भेजा गया था। बौद्ध स्रोतों से पता चलता है कि तक्षशिला में सफलता प्राप्त करने के बाद उसे उज्जैन भेजा गया था। यह भी कहा जाता है कि उसके व्यक्तिगत जीवन की घटनाओं, जैसे, विदिशा के व्यापारी की पुत्री से उसका विवाह और उससे महिंद्र और संघमित्र नामक दो संतानों की प्राप्ति, ने भी अशोक को बौद्ध धर्म अपनाने की दिशा में प्रवृत्त किया। उसके आरंभिक जीवन की जानकारी ज्यादातर बौद्ध इतिवृत्तों से होती है। अतः इसकी प्रामाणिकता कुछ संदिग्ध है।

अशोक के राज्यारोहण से संबंधित भी कई किवदंतियां प्रचलित हैं, परन्तु इस तथ्य पर मोटे तौर पर सहमति है कि अशोक युवराज नहीं था। इसलिए सिंहासन प्राप्त करने के लिए उसे अन्य राजकुमारों के साथ संघर्ष करना पड़ा था। बौद्ध स्रोतों में यह बताया गया है कि बौद्ध धर्म अपनाने से पूर्व अशोक एक दुष्ट राजा था। यह निश्चित रूप से बढ़ा-चढ़ाकर कही हुई बात है। इसका उद्देश्य अशोक की बौद्ध धर्म के प्रति निष्ठा को प्रतिष्ठित करना है। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि अशोक के परवर्ती जीवन में बौद्ध धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका रही, परन्तु उसे कट्टर और दुराग्रही बताने वाले कथनों की सही जांच-परख करनी होगी। अशोक के व्यक्तित्व और विचारों का उल्लेख विस्तृत रूप में उसके कई अभिलेखों में हुआ है, जिसमें उसकी सार्वजनिक और राजनीतिक भूमिका पर प्रकाश डाला गया है। उनसे यह भी पता चलता है कि कलिंग युद्ध के बाद अशोक ने बौद्ध धर्म को अपनाया था।

हालांकि अशोक के पूर्वजों ने दक्कन और दक्षिण के प्रदेशों में प्रवेश पा लिया था और शायद कुछ हिस्सों को जीत भी लिया था, परन्तु कलिंग (आधुनिक उड़ीसा) अभी तक अविजित था और उसे मौर्य-साम्राज्य के नियंत्रण के अधीन लाने का कार्य शेष था। इस इलाके का सामरिक महत्व था क्योंकि स्थल और समुद्र, दोनों से दक्षिण भारत को जाने वाले मार्गों पर कलिंग का नियंत्रण था। अशोक ने खुद शिलालेख **XIII** में यह बताया है कि उसके अभिषेक के आठ वर्ष बाद अर्थात् **260** ई.पू. के आसपास कलिंग के साथ युद्ध हुआ था। इस युद्ध में कलिंगवासियों को पूरी तरह कुचल दिया गया और "एक लाख व्यक्ति मारे गए और इससे कई गुना नष्ट हो गए"। अभिलेखों में आगे बताया गया है कि अशोक इस युद्ध में विजयी हुआ, परन्तु युद्ध की विनाशलीला ने सम्राट को शोकाकुल बना दिया और तब उसने अचानक बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। **युद्ध बिजय** का स्थान **धम्म विजय** ने ले लिया। यह नीति व्यक्तिगत और राजकीय, दोनों स्तरों पर अपनाई गई और प्रजा के प्रति सम्राट और उसके अधिकारियों में मूलभूत परिवर्तन आया।

18.7.2 अशोक की मृत्यु के समय मगध

विभिन्न स्थानों पर पाये जाने वाले शिलालेखों और स्तम्भ अभिलेखों, जिनमें अशोक ने अपनी **धम्म** नीति की चर्चा की है, से अशोककालीन मगध साम्राज्य के क्षेत्रीय-विस्तार पर काफी प्रकाश पड़ता है। अशोक के चौदह बृहद शिलालेख, सात स्तम्भ लेख जूनागढ़ के निकट गिरनार में और कुछ लघु शिलालेख प्राप्त हुए हैं। बड़े शिलालेख पेशावर के निकट शाहबाजगढ़ी और मनसहेरा में, देहरादून के निकट कल्सी में, थाना जिले में सोपारा, कठियावाड़ा में, भुवनेश्वर के निकट धौली में और उड़ीसा के गंगम जिले के जोगदा में पाए गए हैं। लघु शिलालेख कर्नाटक के सिद्धपुरा, जतिंग-रामेश्वर और ब्रह्मगिरि स्थानों में मिले हैं। इसके अतिरिक्त अन्य लघु शिलालेख मध्य प्रदेश में जबलपुर के निकट रूपनाथ में, बिहार के सासाराम में, जयपुर के निकट बेरत में और कर्नाटक के मस्की में मिलते हैं। स्तम्भ लेख, जिसमें अशोक के फरमान हैं, दिल्ली में पाया गया है। मूल रूप में इसकी प्राप्ति अम्बाला और मेरठ के निकट टोपरा नामक स्थान से हुई थी। इसके अतिरिक्त, इस प्रकार के अभिलेख उत्तर प्रदेश के कौशाम्बी में लौरिया आराराज, बिहार में लौरिया नन्दनगढ़ और रामपूर्वा, भोपाल के समीप सांची, बनारस के निकट सारनाथ और नेपाल के रूम्मिनदेई नामक स्थानों पर मिले हैं। इन स्थलों को इस इकाई में दिए गए नक्शे में दिखाया गया है। इससे आपको अशोक के शासनकाल में मगध साम्राज्य के क्षेत्रीय विस्तार की सही स्थिति का पता लगेगा। इन अभिलेखों के स्थापन पर गौर करने से यह

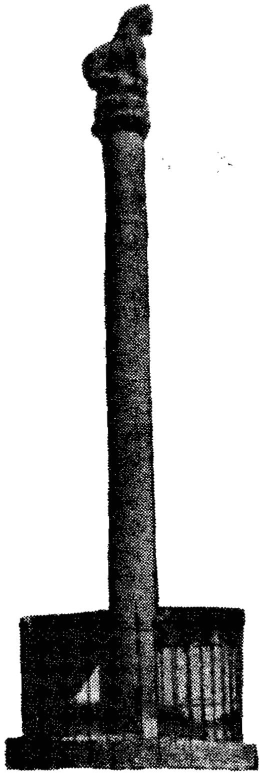

2. लोरिया नंदनगढ़ स्थित अशोक स्तंभ

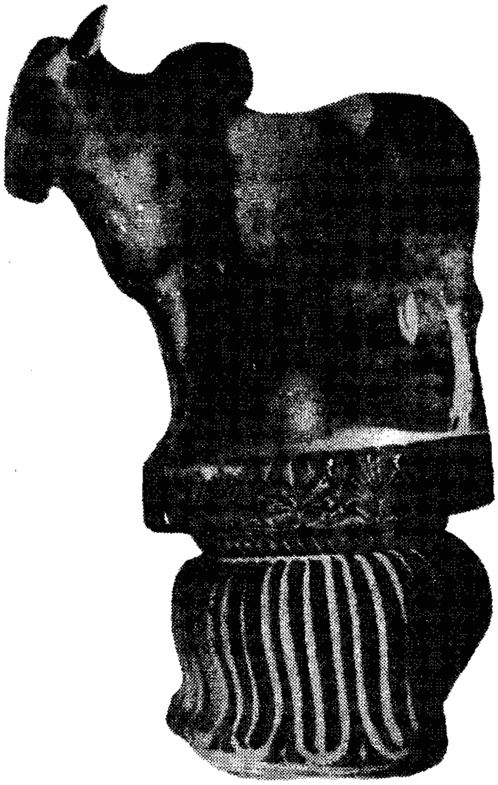

3. रामपुरवा स्तंभ पर स्थित बैल

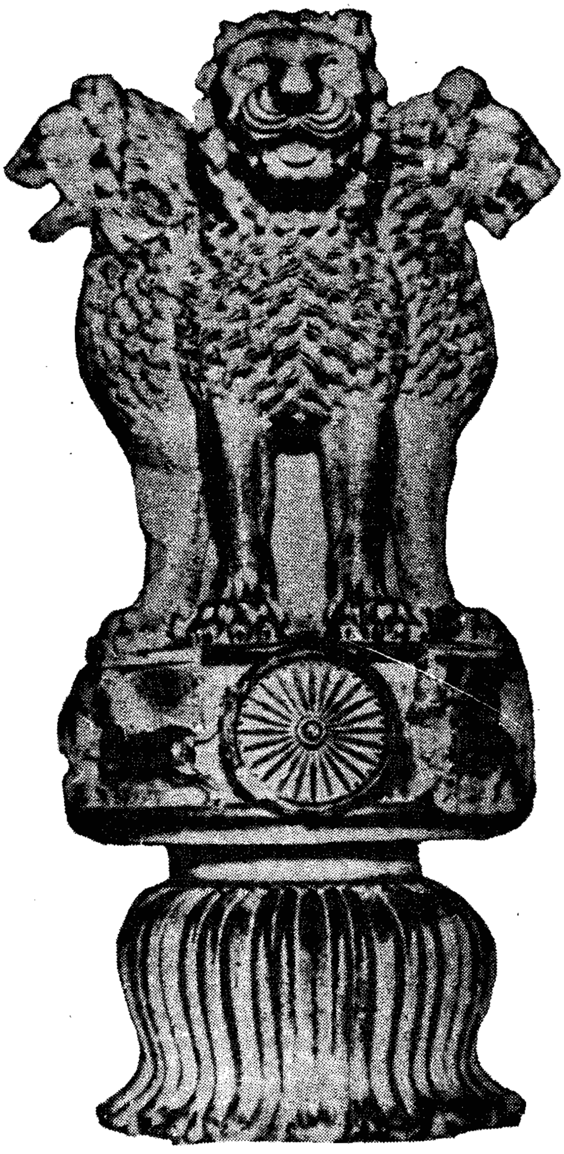

4. सारनाथ स्थित अशोक का शिर्ष स्तंभ

बात भी स्पष्ट हो जाएगी कि प्रयत्नपूर्वक इन्हें महत्वपूर्ण समुद्र और स्थल व्यापारिक मार्गों पर स्थापित किया गया था। इसके आधार पर आधुनिक इतिहासकार इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि इसके पीछे उपमहाद्वीप पर नियंत्रण रखना भी एक उद्देश्य था, परन्तु मूल उद्देश्य कच्चे माल के स्रोत पर अधिकार बनाए रखना था।

ये लेख साम्राज्य की सीमा पर रहने वाले लोगों की भी चर्चा करते हैं, इससे ऊपर वर्णित राज्य की सीमा-रेखा की पुष्टि होती है। दक्षिण में चोल, पांड्या, सत्यपुत्र और केरलपुत्रों का उल्लेख हुआ है, जो मौर्य साम्राज्य की परिधि से बाहर थे। साम्राज्य के भीतर भी लोगों की जाति और संस्कृति में काफी भिन्नता थी। उदाहरण के लिए उत्तर-पश्चिम प्रदेश के कम्बोजों और यवनों का उल्लेख मिलता है। उनकी चर्चा के साथ-साथ भोजों, पितनिकों, आंध्रों और पुलिंदों का भी उल्लेख किया गया है, जो पश्चिमी भारत और दक्कन में बसे हुए थे। मानचित्र पर अशोक के लेखों के फैलाव के अलावा कुछ और तथ्यों से भी उसके साम्राज्य के विस्तार को पता चलता है। विजय से हासिल राज्य क्षेत्र को **विजित** और "शासकीय राज्य-क्षेत्र" को **राजा-विषय** कहा गया था, सीमांत राज्य क्षेत्रों को **प्रत्यन्त** की संज्ञा दी गई है। मगध साम्राज्य की सीमा के बाहर उत्तर-पश्चिम में **सेल्यूसिड** राजा **ऐतिओकस**-द्वितीय का राज्य था, दक्षिण में चोल, पांड्य, केरलपुत्र और सत्यपुत्रों के राज्य तथा श्रीलंका द्वीप भी साम्राज्य की सीमा से बाहर थे। ऐसा प्रतीत होता है कि पूरब में उत्तरी और दक्षिण बंगाल मौर्यो के साम्राज्य का अंग था।

इस प्रकार, अशोक के राज्य-काल में मगध साम्राज्य का क्षेत्रीय विस्तार अपनी चरम सीमा पर था। परन्तु, इसके साथ ही साथ यह प्रयत्न भी चल रहा था कि साम्राज्य के अंदर होने वाले सभी युद्धों को समाप्त कर दिया जाए। अहिंसा की नीति को राज्य-नीति के रूप में अपनाया जाना अपने आप में एक अनूठी घटना थी, क्योंकि भारत के राजनीतिक इतिहास में इसे दोहराया नहीं गया। विभिन्न इतिहासकारों ने बार-बार अशोक को उदार तानाशाह के रूप में चित्रित किया है। यह धारणा **धम्म** के व्यावहारिक पक्ष को नजरअंदाज कर देती है। अशोक ने इसके माध्यम से एक विचार पद्धति का सहारा लेकर विशाल साम्राज्य पर नियंत्रण करने की कोशिश की, जिसके अभाव में शासन करना बहुत मुश्किल था। मौर्यो के अभिलेख कुछ महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्गों और साम्राज्य के सीमांत प्रदेशों से प्राप्त हुए हैं। परन्तु यह सवाल अभी तक अपनी जगह खड़ा है कि वे क्षेत्र जहां अभिलेख पाए गए और वे क्षेत्र जहां अभिलेख नहीं पाए गए हैं, क्या समान रूप से नियंत्रित किए जाते थे। मौर्यो के प्रशासनिक नियंत्रण और **धम्म** की नीति से जुड़े दोनों सवालों पर इकाई 20 और इकाई 21 में विस्तार से चर्चा की जाएगी।

बोध प्रश्न 4

1) पांच-छह पंक्तियों में लिखिए कि अशोक के शासनकाल में युद्ध-नीति क्यों बदल गई?

....

....

....

....

....

....

2) नीचे अशोक से संबंधित कुछ वक्तव्य दिए गए हैं। सही वक्तव्यों का चुनाव कीजिए। सही उत्तर, उसके नीचे दिए गए चार कोड उत्तरों में से एक हैं।

   i) अशोक युवराज और बिंदुसार का उत्तराधिकारी था।

   ii) अपने जीवन के अंतिम दिनों में उसने बौद्ध धर्म अपना लिया।

   iii) किसी प्रदेश को जीत लेने के बाद अशोक के अभिलेख वहां स्थापित कर दिए जाते थे।

   iv) उसने युद्ध विजय के स्थान पर धम्म विजय को अपना लिया।

   v) अशोक के अभिलेखों में उसकी चर्चा देवानांप्पिय पियदस्सी के रूप में की गई है।

   कोड

   क) ii, iv, v

   ख) i, iii, iv

ग) ii, iii, iv

घ) i, iv, v

18.8 सारांश

इस इकाई में हमने प्रथम ऐतिहासिक साम्राज्य से आपको परिचित कराने की कोशिश की है और इसके अध्ययन के लिए एक दिशा प्रदान की है। इसके अतिरिक्त, मगध साम्राज्य के उद्‌भव और क्षेत्रीय विस्तार की भी चर्चा की गई है। हम आशा करते हैं कि इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- मगध की भौगोलिक स्थिति का सामरिक महत्व समझ गए होंगे और इसके उत्थान में सहायक महत्वपूर्ण कारकों से परिचित हो चुके होंगे।
- उन स्रोतों के बारे में जानकारी प्राप्त की जिनकी सहायता से मगध, खासकर मौर्य शासन, के राजनीतिक इतिहास के लेखन में सहायता मिल सकती है।
- मौर्य शासन के उद्‌भव के पूर्व मगध के आरंभिक इतिहास की प्रमुख घटनाओं की जानकारी प्राप्त कर चुके होंगे।
- इतिहास के आरंभिक काल के संदर्भ में "साम्राज्य" की विभिन्न धारणाओं की व्याख्या से साक्षात्कार कर चुके होंगे।
- मौर्य परिवार के मूल और उनके आरंभिक इतिहास का विवरण प्राप्त कर चुके होंगे।
- चंद्रगुप्त मौर्य और बिंदुसार की विस्तार नीति की जानकारी प्राप्त कर चुके होंगे।
- अशोक मौर्य के राज्यारोहण से लेकर कलिंग युद्ध तक की घटनाओं को जान चुके होंगे।
- अशोक की मृत्यु के समय मगध साम्राज्य के विस्तार की सीमाएं जान सके होंगे।

18.9 शब्दावली

अधिशेष : शब्दार्थ : जरूरत पूरी होने के बाद बची सामग्री। आर्थिक संदर्भ में आवश्यकता पूर्ति के बाद बचा हुआ अतिरिक्त उत्पादन।

उत्तरपथः उत्तरी स्थल मार्ग, जो हिमालय की पहाड़ियों तक जाता था।

उदारवादी निरंकुशता : एक अच्छा और उदार राजा, जिसके हाथ में पूर्ण नियंत्रण हो।

चक्रवर्ती क्षेत्र : चक्रवर्ती या एकछत्र सम्राट का अधिकार-क्षेत्र।

"क्लासिकल स्रोत": प्राचीन भारतीय इतिहास जानने के यूनानी स्रोत।

तानाशाही : एक निरंकुश राजा, जिसका प्राधिकार पर कोई अंकुश न हो।

धम्म / धर्म : शाब्दिक अर्थ "सार्वभौम व्यवस्था"; परन्तु अशोक के अभिलेखों में इसका उल्लेख "धर्म निष्ठा" के रूप में हुआ है।

सप्तांगः सात अंग।

सोफिस्टः ग्रीक दर्शन; शाब्दिक अर्थ है छल तर्क में विश्वास रखने वाला दार्शनिक।

18.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) ग)

2) भाग 18.3 देखिए।

3) भाग 18.2 देखिए।

4) क) × ख) √ ग) × घ) × ङ.) √

बोध प्रश्न 2

1) ग)

2) भाग 18.4 का अंतिम अंश देखिए।

3) भाग 18.5 और 18.6 देखिए।

4) क) × ख) √ ग) × घ) × ङ.) √

बोध प्रश्न 3

1) क) × ख) × ग) √ घ) × ङ.) √

2) उपभाग 18.7.1 देखिए।

बोध प्रश्न 4

1) उपभाग 18.8.1 देखिए।

2) क)

इकाई 19 मौर्य साम्राज्य की अर्थव्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य
19.1 प्रस्तावना
19.2 उत्पादन का भौतिक और सामाजिक आधार
19.3 कृषि और भू-राजस्व
- 19.3.1 कृषि अर्थव्यवस्था की सामान्य विशेषताएं
- 19.3.2 भू-राजस्व संगठन

19.4 व्यापार और नगर
- 19.4.1 व्यापारिक संगठन
- 19.4.2 शहरी अर्थव्यवस्था का विकास
- 19.4.3 मौर्यकालीन भारत में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन

19.5 सारांश
19.6 शब्दावली
19.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

19.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य मौर्य इतिहास के एक महत्वपूर्ण पहलू से आपको परिचित कराना है। यह महत्वपूर्ण पहलू है, मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था। मौर्यों के शासनकाल में भारतीय अर्थव्यवस्था के संगठन और स्वरूप में काफी परिवर्तन हुए। हालांकि हम चर्चा के केन्द्र में मौर्यों के मुख्य प्रभाव-क्षेत्र गंगाघाटी को ही रखेंगे, परन्तु इस काल में भारत के अन्य भागों में होने वाले महत्वपूर्ण परिवर्तनों पर भी प्रकाश डाला जाएगा। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- समझ सकेंगे कि साम्राज्य के लिए आवश्यक विभिन्न संसाधनों का उत्पादन कैसे होता था;
- इस काल की खेतिहर अर्थव्यवस्था, कृषि विस्तार और भू-राजस्व जैसे महत्वपूर्ण तत्वों की चर्चा कर सकेंगे;
- यह व्याख्या कर सकेंगे कि व्यापार की व्यवस्था कैसे होती थी और कैसे इसके विस्तार के साथ नए कार्य-क्षेत्र सामने आए;
- नगरों के विकास और नगरीय योजना तथा अर्थव्यवस्था संबंधी अन्य विशेषताएं बता सकेंगे; तथा
- इस काल में हुए तकनीकी विकास पर बहस कर सकेंगे और विश्लेषित कर सकेंगे कि इन परिवर्तनों से किस प्रकार सामाजिक-आर्थिक बदलाव आया।

19.1 प्रस्तावना

इस खंड की इकाई 18 में आपने मौर्य साम्राज्य की व्यवस्था और विस्तार का अध्ययन किया है। इस इकाई में हम आपको मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था से परिचित कराएंगे। खंड 4 में आपने मौर्य-पूर्व अर्थव्यवस्था की प्रकृति का अध्ययन किया होगा। यहां हम मौर्यकाल में होने वाले परिवर्तनों पर ध्यान केंद्रित करेंगे। सबसे पहले हम कृषिक और गैर-कृषिक उत्पादन के भौतिक और सामाजिक आधार पर चर्चा करेंगे। कृषिक अर्थव्यवस्था का अध्ययन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है क्योंकि उस समय खेती में ही सबसे ज्यादा लोग लगे हुए थे। भू-राजस्व के तरीके और उसके संगठन की जानकारी भी आपको दी जाएगी। इसके अतिरिक्त, अन्य आर्थिक गतिविधियों पर कृषिक अर्थव्यवस्था के प्रभाव की भी चर्चा की जाएगी। हस्तशिल्प उत्पादन और वाणिज्यिक गतिविधियों पर विशेष रूप में इसका प्रभाव दिखाई देता है। इन क्षेत्रों में विकास के कारण निम्नलिखित परिवर्तन हुए :

- तकनीक का विकास हुआ;

- मुद्रा का चलन बढ़ा; और
- नगरीय केंद्रों का तेजी से विकास हुआ।

एक महत्वपूर्ण पक्ष, अर्थव्यवस्था और आर्थिक कार्यकलाप में राज्य की भूमिका पर भी विचार किया जाएगा। हम इस बात पर भी ध्यान देंगे कि अर्थव्यवस्था में राज्य किस हद तक हस्तक्षेप करता था? इस हस्तक्षेप से अर्थव्यवस्था के विकास में सहायता मिलती थी या बाधा पडती थी? इस इकाई में ऐसे और इससे संबंधित अनेक प्रश्नों पर विचार किया जाएगा।

19.2 उत्पादन का भौतिक और सामाजिक आधार

आपने खंड 4 में पढ़ा होगा कि प्रथम सहस्राब्दि ई.पू. के उत्तरार्द्ध में खेती के लिए लोहे का उपयोग होने लगा था। इसके परिणामस्वरूप काफी मात्रा में अधिशेष उत्पादन हुआ। इस अधिशेष से न केवल समाज का भौतिक आधार परिवर्तित हुआ, बल्कि नए सामाजिक वर्ग भी सामने आए। यह नया सामाजिक वर्ग मुख्य रूप से नए विकसित हो रहे शहरों में रहने लगा।

यूनानी लेखक एरियन बताता है कि शहर इतने अधिक थे कि उनकी सही संख्या बताना मुश्किल है। इस वक्तव्य से यह आभास होता है कि इस काल में शहरों की संख्या तेजी से बढ़ी होगी। मेगस्थनीज़ ने सुव्यवस्थित और सुगठित नगर प्रशासन की चर्चा की है, इस बात से भी इन नगरीय केंद्रों में बढ़ रही जनसंख्या का संकेत मिलता है। इन शहरों में रहने के नियम बडे कठोर थे। हालांकि इस काल की नगर योजना का कोई ठोस सबूत उत्खनन से प्राप्त नहीं हो सका है और मौर्यकालीन वास्तुकला के अवशेष भी बहुत कम मात्रा मे प्राप्त हुए हैं; परन्तु उत्तर प्रदेश और बिहार में हुए उत्खननों से प्राप्त अवशेषों से पता चलता है कि उस काल में इमारत बनाने के लिए पक्की ईंटों का उपयोग होता था। घर लकड़ियों से बनाए जाते थे। मेगस्थनीज ने मौर्यों की राजधानी पाटलिपुत्र में बने लकड़ी के घरों की चर्चा की है। कुम्हरार (आधुनिक पटना) में हुई खुदाई के दौरान मौर्यकाल के खम्भों वाले विशाल कक्ष के अवशेष प्राप्त हुए हैं। खुदाई के दौरान बहुत सी मौर्यकालीन कड़ियां प्राप्त हुई हैं, जिन्हें लगाकर कुओं से पानी खींचा जाता होगा; इन कड़ियों का उपयोग घरेलू कार्य के लिए होता होगा। बाद के वर्षों में यह तकनीक देश के अन्य भागों में भी फैल गई। कुओं से पानी खींचने के लिए कड़ियों का उपयोग और पकी ईंटों का व्यापक प्रयोग इस काल में हुए भौतिक विकास को प्रमाणित करता है। इससे यह भी पता चलता है कि लकड़ी की प्राप्ति सुलभ थी। पकी ईंटों के उपयोग, उत्तरी काले चमकीले मृद्भांडों की प्राप्ति और अन्य अवशेषों से पता चलता है कि मौर्य साम्राज्य के नगर देश के विभिन्न भागों में स्थित थे। इन मुद्दों पर आगे इस इकाई में विचार किया जाएगा।

गंगा घाटी में शहरों का उदय हुआ, भौतिक समृद्धि बढ़ी, इसका प्रमाण उपरिवर्णित भौतिक अवशेष हैं। इससे यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय तकनीकी आधार काफी मज़बूत था। अतः डी.डी. कौशाम्बी और आर.एस. शर्मा ने जोरदार ढंग से यह तथ्य सामने रखा है कि यह तकनीकी आधार लोहे के अधिक उपयोग के कारण मजबूत हुआ। इकाई 18 में यह बताया जा चुका है कि मगध साम्राज्य के आसपास लोहे की खानें थीं (आज के दक्षिण बिहार के आसपास) और महत्वपूर्ण जल और स्थल मार्ग पर उसका नियंत्रण था। उत्खनन के दौरान विभिन्न प्रकार के लोहे के औज़ार, जैसे मूठ वाली कुल्हाडी, हंसिया और शायद हल का फाल भी प्राप्त हुए हैं। इन औजारों की सहायता से पूर्वी गंगा घाटी के घने जंगलों को काटने में आसानी हुई होगी और कृषि के क्षेत्र में कुशलता भी बढ़ी होगी। दक्षिण बिहार के पूरे लौह-क्षेत्र में लोहे के छोटे-छोटे टुकड़े बिखरे मिले हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि लोहा गलाने की तकनीक बहुत विकसित नहीं थी। इस काल की बहुत-सी स्थानीय भट्टियां प्राप्त हुई हैं, इससे मालूम होता है कि शायद आम आदमी भी लोहे का उत्पादन और उपयोग करता था। अर्थशास्त्र में इस बात का भी जिक्र है कि उस समय लोहा बनाने की उच्च कोटि की विभिन्न तकनीकों की भी जानकारी थी।

परन्तु, गंगा घाटी से लोहे का प्रयोग देश के अन्य भागों तक नहीं फैला। मौर्य पूर्व और मौर्यकालीन अवशेषों से पता चलता है कि भारत के दूसरे हिस्से में भी लोहे के प्रयोग तथा उपलब्धता के प्रमाण अलग से मिले हैं। यह स्पष्ट है कि गंगा घाटी की मिट्टी भारी और दुम्मटी थी। इसलिए जुताई के लिए हल में भारी लोहे की ज़रूरत पड़ती थी। लोहे का उपयोग खेती के लिए किया जाता था, परन्तु यह उपयोग यहीं तक सीमित नहीं था। लोहे के उपयोग पर राज्य का अधिकार था। अर्थशास्त्र में इस बात का जिक्र है कि कुछ खास किस्म के खननों पर राजा का एकाधिकार होना चाहिए। यह सलाह संभवतः इसलिए भी दी गई थी क्योंकि कुछ खास धातुओं का उपयोग सेना के लिए, औज़ार बनाने के लिए किया जाता था।

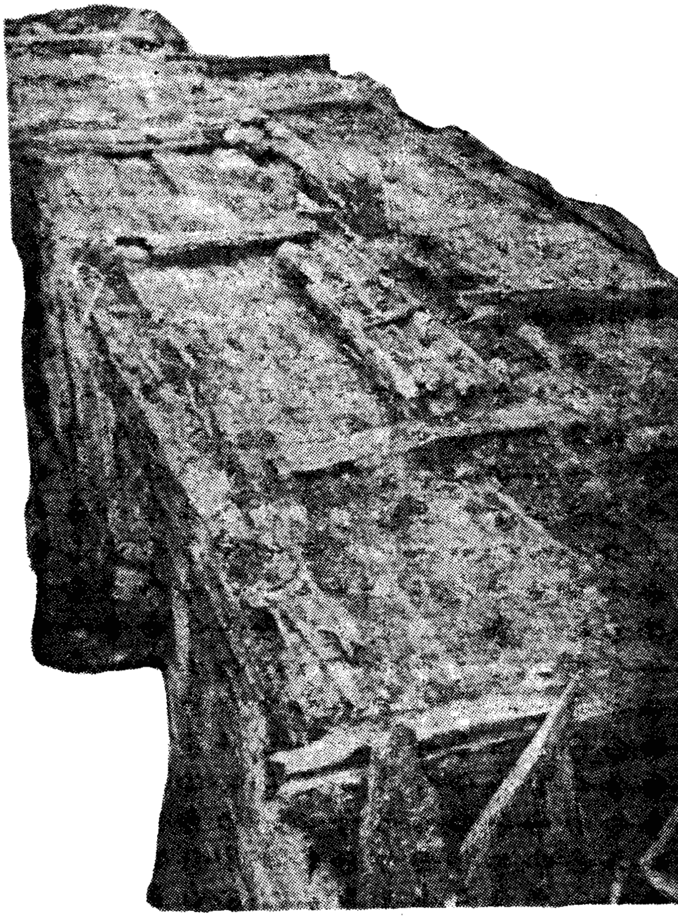

5. पाटलिपुत्र उत्खनन से प्राप्त लकड़ी के महल के अवशेष

विकासशील खेतिहर समुदायों के लिए एक मजबूत तकनीकी आधार की आवश्यकता तो होती है, साथ ही साथ सस्ती श्रम-शक्ति की भी जरूरत होती है ताकि अनाज और अन्य वस्तुओं का उत्पादन किया जा सके। उत्पादन के सामाजिक आधार को जानने के लिए यह समझना जरूरी है कि इस श्रम शक्ति को कैसे संयोजित किया जाता था और इन पर नियंत्रण किस प्रकार रखा जाता था? हम पहले इस बात का जिक्र कर चुके हैं कि गंगा घाटी में नए प्रकार की खेती, खासकर धान की खेती शुरू हुई। धान की खेती में श्रम-शक्ति की ज्यादा जरूरत पड़ती है, खासकर रोपाई और कटाई के समय। किसान को इस समय अपने परिवार के सदस्यों के अलावा अन्य लोगों की भी सहायता लेनी पड़ती है। इस प्रकार की खेती इस काल के दौरान लोकप्रिय हो चुकी थी। हमें इस बात का भी पता चलता है कि इस काल में नई भूमि पर खेती के लिए काफी जोर दिया जाता था। निश्चित रूप से इन नई बस्तियों में श्रम-शक्ति का अभाव रहता होगा। अर्थशास्त्र से पता चलता है कि किस प्रकार राज्य नई बस्तियां बसाने के लिए प्रोत्साहन देता था।

इस संदर्भ में इन इलाकों में शूद्रों को बसाने की बात भी की गई है। वैसे भी खेतिहर मज़दूर अधिकतर शूद्र थे और उनसे ही शारीरिक श्रम का काम लिया जाता था। बहुल जनसंख्या वाले इलाकों या विजित राज्यों से उन्हें इन नई बस्तियों में लाया जाता था। कलिंग युद्ध के बाद लगभग डेढ़ लाख लोगों को नई बस्तियों में खेती के काम में लगाया गया था। अर्थशास्त्र में सलाह दी गई है कि इन बस्तियों में विदेशियों को भी बसाने के लिए प्रेरित करना चाहिए। इसी प्रकार, बढ़ई और व्यापारी जैसे अन्य समुदायों को भी संभवतः बसाया गया होगा। नए इलाकों में बसने वाले शूद्रों को वित्तीय सहायता, पशुधन, बीज, औजार आदि प्रदान करने का प्रावधान था। अनजुती भूमि पर खेती करने के लिए यह एक प्रकार का प्रोत्साहन था। ह्रासोन्मुख और उजड़ी बस्तियों को भी इसी प्रकार आबाद किया गया। खेती की पैदावार बढ़ाने के लिए ऐसा करना जरूरी था।

कई मामलों में ये नई बस्तियां सीधे राजा के नियंत्रण में होती थीं। इस प्रकार की राजकीय भूमि को **सीता भूमि** कहते थे। कभी-कभी यह जमीन गांव के पहले के अधिकारियों को जुताई के लिए दे दी जाती थी। अगर कोई किसान खेती में कोई ढीलापन दिखाता था और उसके कारण उत्पादन में कमी आती थी तो उसे

दूसरी जगह भेज दिया जाता था। ये गांव राजकीय भूमि के हिस्से थे, अतः स्वाभाविक रूप से राजा और उनके अधिकारियों का उनपर सख्त नियंत्रण था।

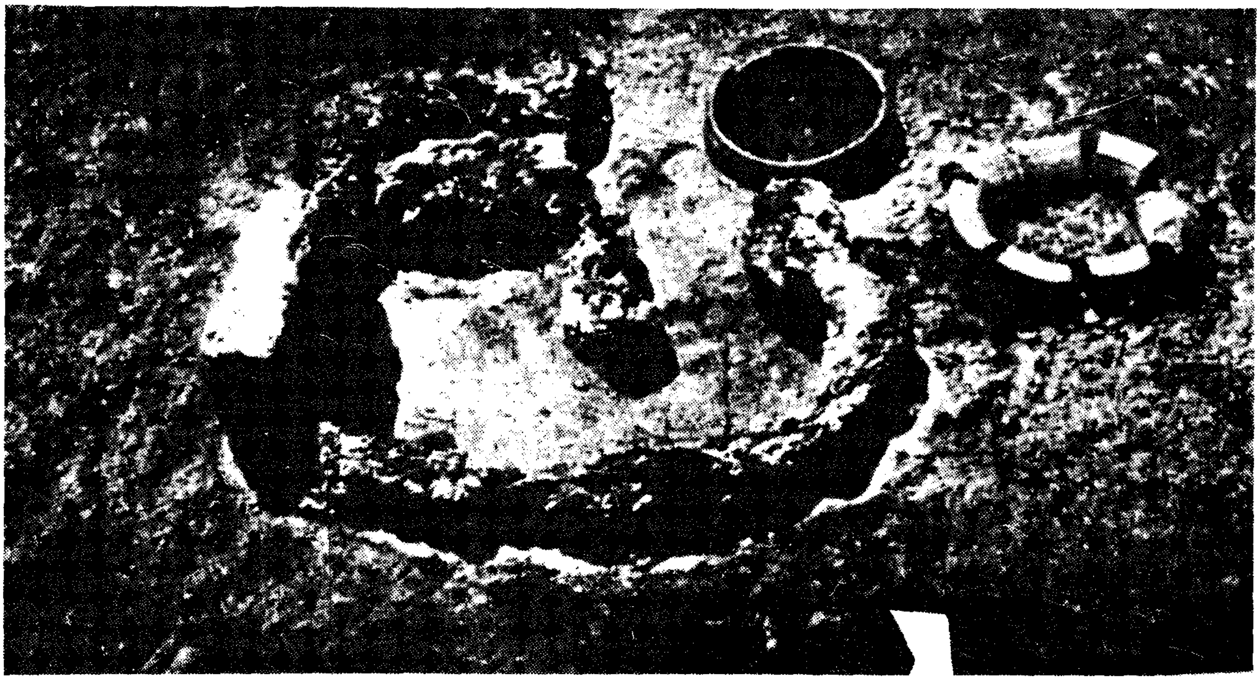

6. लोहार की भट्टी

इस प्रकार, मौर्य काल में खेती का व्यापक विस्तार हुआ। कच्चे माल और मानव-शक्ति पर नियंत्रण और उनके उपयोग के कारण यह विस्तार तेजी से हो सका। इसके बाद अब हम मौर्यों के अधीन सम्पूर्ण भारत, खासकर गंगा घाटी, में हुए भौतिक और आर्थिक विकास का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

बोध प्रश्न 1

1) सही और गलत कथनों के आगे क्रमशः √ और × का निशान लगाइए :

   क) विशाल पैमाने पर खेती करने के लिए शूद्रों को लगाया जाता था। ( )

   ख) लौह तकनीक की सहायता से कृषि के विकास में काफी सहायता मिली। ( )

   ग) मौर्यकालीन भारत में प्रत्येक गांव सीधे राज्य के नियंत्रण में था। ( )

2) मौर्यों के जमाने में गंगा घाटी में होने वाले भौतिक परिवर्तनों का उल्लेख कीजिए (चार पंक्तियों में)।

   ....

   ....

   ....

   ....

3) दो-तीन पंक्तियों में यह बताइए कि लोहे के उपयोग से खेती के स्वरूप में किस प्रकार का परिवर्तन हुआ?

   ....

   ....

   ....

19.3 कृषि और भू-राजस्व

इस भाग में हम कृषीय अर्थव्यवस्था और भू-राजस्व संगठन की सामान्य विशेषताओं पर विचार करेंगे।

19.3.1 कृषि अर्थव्यवस्था की सामान्य विशेषताएं

इस इकाई में पहले हम पढ़ चुके हैं कि अर्थशास्त्र में स्थायी बस्तियां बसाने पर जोर दिया गया है ताकि कृषि अर्थव्यवस्था का विस्तार हो सके। इन बस्तियों से करों, खासकर भूमि-कर, की प्राप्ति होती थी और ये राजकीय आय के स्थायी स्रोत थे। बस्तियां बसाने की इस प्रक्रिया को जनपद निवेश कहा जाता था, परन्तु इसकी ठीक-ठीक प्रक्रिया क्या थी, यह स्पष्ट रूप से मालूम नहीं है। आर.एस. शर्मा के अनुसार यह मान लेना उचित होगा कि इस प्रकार गंगा के मैदान के अधिकांश इलाकों में खेती की जाने लगी और इसके साथ–साथ दूरस्थ इलाकों में भी कृषीय अर्थव्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया जाने लगा होगा।

कृषि के विकास से किसान या जोतदार का महत्व धीरे-धीरे बढ़ने लगा। मेगस्थनीज भारतीय समाज पर टिप्पणी करता हुआ बताता है कि मौर्य समाज सात वर्णों में विभक्त था। इसमें दार्शनिक के बाद किसान का स्थान है, सैनिक तीसरे स्थान पर है। हालांकि उसका भारतीय समाज का विभाजन संबधी दृष्टिकोण बिल्कुल सही नहीं है, परन्तु यह महत्वपूर्ण बात है कि खेती में लगे किसानों की बड़ी संख्या ने उसका ध्यान आकृष्ट किया। यूनानी स्रोत, खासकर इस बात को रेखांकित करते हैं कि खेतिहरों के पास अस्त्र-शस्त्र नहीं होते थे। मेगस्थनीज यह भी बताता है कि युद्ध के दौरान किसानों को क्षति नहीं पहुँचाई जाती थी। परन्तु इस कथन पर विश्वास करना कठिन प्रतीत होता है, क्योंकि कलिंग युद्ध में मरने वालों की जो संख्या अशोक के अभिलेख में बतायी गई है, उसमें काफी कृषक भी शामिल होंगे।

हमने पहले **सीता** या राजकीय भूमि की चर्चा की है। इन इलाकों में निश्चित रूप से स्वामित्व, जोत नीलामी और बिक्री पर राजा और राज्य का लगभग पूर्ण अधिकार था। वस्तुतः, अर्थशास्त्र में सीताध्यक्ष या कृषि निरीक्षक का जिक्र है, जो शायद इन इलाकों में कृषि कार्य का निरीक्षण करता होगा। ये इलाके निश्चित रूप से उपजाऊ होंगे और इनमें काफी उपज होती होगी। इन राजकीय खेतों के उद्‌भव के बारे में कुछ कह पाना मुश्किल है। यह संभव है कि पूर्व-मौर्य काल में ये खेत भूमिधरों के निजी नियंत्रण में रहे होंगे। इन्हीं इलाकों में खेती के लिए राज्य के निरीक्षण में दासों को नियुक्त किया गया होगा। अर्थशास्त्र में विस्तार से तृतीय तकनीक के विकसित ज्ञान का उल्लेख किया गया है; यह भी संभवतः इसी प्रकार के खेतों के संदर्भ में वर्णित है।

मौर्य राज्य के अन्य खेतिहर इलाकों को जनपद राज्य-क्षेत्र कहा जाता था। इन इलाकों में संभवतः निजी तौर पर लोग खेती करते थे। जातक कथाओं में बार-बार गहपति और ग्रामभोजकों की चर्चा आती है। ये भूमिपति थे, जो अपनी जमीन पर खेती करने के लिए मजदूरों की नियुक्ति करते थे। दूसरी तरफ, मजदूरों की स्थिति बहुत दयनीय थी, कहीं-कहीं दासों का भी जिक्र हुआ है। **सीता** और जनपद दोनों तरह के इलाकों में राजा व्यक्तिगत जमीन रख सकता था; परन्तु कहीं भी इसका स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता है। इस तरह, हालांकि सम्पूर्ण भारत के भूमि-स्वामित्व के सभी पहलुओं पर विस्तार से चर्चा नहीं की जा सकती है परन्तु यह कहा जा सकता है कि गंगा घाटी में ही विभिन्न प्रकार की स्वामित्व-प्रणालियां क़ायम थी। इसके कारण स्वाभाविकतः खेती की विभिन्न व्यवस्थाएं और कृषि विकास के कई स्तर सामने आए।

अर्थशास्त्र में विभिन्न प्रकार की कृषि व्यवस्था की चर्चा की गई है, जिनका निरीक्षण अधिकारीगण किया करते थे। इसके अंतर्गत ऐसी भूमि की चर्चा की गई है, जिनपर राज्य अथवा राजा का सीधा नियंत्रण था। इसके अतिरिक्त जमीन और मकान की बिक्री का भी जिक्र किया गया है। इससे पता चलता है कि एक व्यक्ति ज़मीन का मालिक हो सकता था, परन्तु वह उतनी ही ज़मीन अपने अधिकार में रख सकता था, जितनी वह खुद जोत सके।

राज्य-स्वामित्व वाली भूमि में खेती की सफलता का महत्वपूर्ण कारण था राज्य द्वारा सिंचाई की सुविधा प्रदान करना। खेतिहरों की भलाई के लिए जल-आपूर्ति संबंधी कुछ नियम बनाए गए थे। मेगस्थनीज बताता है कि जमीन मापने और खेत में पानी पहुंचाने वाली नालियों का निरीक्षण करने के लिए अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। अर्थशास्त्र में उल्लेख है कि जहां राज्य द्वारा सिंचाई की व्यवस्था की जाती थी, एक नियमित जल-कर वसूल किया जाता था। यह कुल उत्पादन का पांचवां, चौथाई या तिहाई हिस्सा होता था। चूंकि यह कर केवल सिंचित भूमि पर लगाया जाता था, अतः इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि राज्य कम वर्षा वाले क्षेत्र में ही सिंचाई सुविधा उपलब्ध करवाता था ताकि इन इलाकों में सिंचाई की नियमित आपूर्ति से अच्छी फसल प्राप्त की जा सके। चन्द्रगुप्त मौर्य के एक राजपाल पुष्यगुप्त ने गिरनार के निकट सौराष्ट्र में एक बांध बनवाया था, जिससे एक विशाल झील तैयार हो सके। यह **सुदर्शन तड़ग** झील के नाम से जाना जाता है। यह झील काफी प्रसिद्ध है। यह झील आठ सौ वर्षों यानी पांचवीं शताब्दी ई. तक सिंचाई का स्रोत बनी रही।

19.3.2 भू-राजस्व संगठन

यूनानी लेखक बताते हैं कि कुछ गांव कर से मुक्त थे। परन्तु ऐसे गांव अपवाद थे और वस्तुतः ये ऐसे गांव थे, जिनसे सैनिकों की नियुक्ति की जाती थी। यह भी अनुमान लगाया जाता है कि नई भूमि पर खेती को प्रोत्साहित करने के लिए एक सीमित समय के लिए कुछ गांवों को कर से मुक्त रखा जाता होगा।

मौर्य राज्य की आमदनी का स्थायी और अनिवार्य स्रोत भू-राजस्व ही हो सकता था। अतः लोगों से अधिक से अधिक कर वसूलने के लिए भू-राजस्व प्रणाली को सुव्यवस्थित किया गया। सामान्यतः ऐसा माना जाता है कि प्राचीन भारत की कर-व्यवस्था के क्षेत्र में मौर्य शासन एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मौर्य शासक भू-राजस्व के निर्धारण पर विशेष बल देते थे और करों का लेखा-जोखा रखने के लिए अलग से एक विभाग था, जिसका प्रमुख अधिकारी समाहर्ता कहलाता था। कोषाध्यक्ष सन्निधाता के नाम से जाना जाता था। चूंकि राजस्व वस्तु के रूप में भी प्राप्त किया जाता था। अतः इस प्रकार की आय को संग्रहीत करना सन्निधाता का ही कार्य था।

यूनानी लेखकों के अनुसार, किसान कर के रूप में कुल उपज का चौथाई हिस्सा राज्य को देते थे। उनके अनुसार किसान नजराना भी देते थे। भूमि कर (भाग) राजस्व का प्रमुख आधार था। ग्रन्थों में प्राप्त विवरण के अनुसार भाग कुल उपज का छठा हिस्सा होता था। लेकिन ऐसा अनुमान है कि मौर्य काल में यह हिस्सा चौथाई तक पहुंच गया था। अशोक लुम्बिनी शिलालेख में कहता है कि बुद्ध के जन्म स्थल लुम्बिनी की यात्रा के दौरान उसने उस गांव को बलि कर से मुक्त कर दिया गया और भाग कर को घटाकर कुल उपज का आठवां हिस्सा कर दिया। यह ध्यान देने योग्य बात है कि बुद्ध के प्रति अगाध श्रद्धा रखने के बावजूद अशोक ने उस गांव (लुम्बिनी) को पूर्णतया करमुक्त नहीं किया।

भू-राजस्व का एक प्रचलित तरीका था — बटाई। बंटाईदारों को पहले बीज, हल-बैल आदि और खेती के लिए जमीन दी जाती थी। इस मामले में कृषक संभवतः कुल उपज का आधा हिस्सा राज्य को दे देता था।

इन करों के अतिरिक्त किसानों को दूसरे कई प्रकार के नजराने पेश करने पड़ते थे। मौर्यों ने कुछ नये कर शुरू किए और पहले से लगे करों को और भी प्रभावी बनाया। पिंड कर एक प्रकार का रिवाजी कर था, जो किसानों से समय-समय पर लिया जाता था। इस कर का निर्धारण सामूहिक रूप में होता था, जिसमें कई गांव शामिल होते थे। अकसर गांवों को उनके क्षेत्र से गुजरती हुई राजकीय सेना के लिए खाद्य सामग्री की व्यवस्था करनी पड़ती थी। हिरण्य नामक कर के स्वरूप के बारे में ठीक से पता नहीं है, परन्तु संभवतः यह एक प्रकार का नकद कर था क्योंकि हिरण्य का अर्थ सोना होता है। वैदिक काल से चला आ रहा बलि कर मौर्यों के अधीन भी कायम रहा। इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने जिन करों का जिक्र किया है, उनसे कृषकों पर अतिरिक्त भार ही पड़ता होगा। अर्थशास्त्र में इस बात की भी सलाह दी गई है कि यदि इसके बावजूद राज्य को अपनी आवश्यकता पूरी करने के लिए और अधिक करारोपण करना पड़े तो आपात स्थिति के दौरान लागू किए जाने वाले करों की सहायता ले सकता है। इस प्रकार के करों में प्रमुख है युद्ध कर, जिसे प्रणय कहा जाता है। इसका शाब्दिक अर्थ है प्रेम से दिया गया उपहार। इस कर का उल्लेख सबसे पहले पाणिनि ने किया था, परन्तु पहली बार विस्तार से इसका विवरण अर्थशास्त्र में ही मिलता है। यह कुल उपज का एक-तिहाई या एक-चौथाई होता था तथा यह हिस्सा भूमि की उर्वरता पर निर्भर था। इस कर का उल्लेख करते हुए प्रायः इसे स्वेच्छा से दिया जाने वाला कर बताया जाता है, परन्तु यथार्थ में यह निश्चित रूप से अनिवार्य कर हो गया होगा। इसके अतिरिक्त आपातकाल में किसानों को दो फसल उगाने के लिए बाध्य किया जा सकता था। इस बात पर बार-बार बल दिया गया है कि अकाल के समय में इस प्रकार का कदम उठाना जरूरी हो जाता था, क्योंकि इस समय भू-राजस्व की वसूली काफी कम हो जाती होगी।

भू-राजस्व मौर्य अर्थव्यवस्था का आधार था, इसलिए अर्थशास्त्र में राज्य की राजस्व व्यवस्था पर काफी गंभीरता और सावधानीपूर्वक विचार किया गया है। काफी सूझ-बूझ के साथ भूमि की उर्वरता के आधार पर विभिन्न गांवों पर अलग-अलग कर लगाए जाने का प्रावधान रखा गया है। विभिन्न प्रकार के राजस्व वसूल करने वाले और उसका निर्धारण करने वाले अधिकारियों की विशेष रूप से इसमें चर्चा की गई है। अतः यह निष्कर्ष प्रतिपादित किया जा सकता है कि मौर्य काल में करारोपण और वसूली की पद्धति सुदृढ़ थी और राज्य के बड़े हिस्से से अपार राजस्व वसूल किया जाता था। इसी राजस्व के बल पर सरकारी तंत्र और सेना का रख-रखाव संभव हो सका।

बोध प्रश्न 2

1) कॉलम-I में कुछ संस्कृत शब्द दिए गए हैं और कॉलम- II में उनका अर्थ दिया गया है। इनका सही मिलान नीचे दिए गए कोड के माध्यम से कीजिए। सही कोड पर √ का चिह्न लगाइये।

कॉलम-I	**कॉलम-II**
i) जनपद निवेश	क) भूमिधर वर्ग
ii) सीताध्यक्ष	ख) राजकीय भूमि का अधिकारी
iii) गहपति	ग) राजस्व निर्धारक
iv) समाहर्ता	घ) बसने की प्रक्रिया
	ङ) कोषाध्यक्ष

क) I II III IV
ङ ख ग घ

ख) I II III IV
घ ङ क ग

ग) I II III IV
घ ख क ग

घ) I II III IV
ग ख घ क

2) निम्नलिखित में से किस राजस्व की वसूली नकद होती थी (सही उत्तर के सामने √ का चिह्न लगाइए)।

क) कर

ख) भाग

ग) हिरण्य

घ) प्रणय

3) आपात स्थिति में राज्य कौन-कौन से राजस्व संबंधी कदम उठा सकता था?
(पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

....

....

....

....

....

4) मौर्य काल के प्रमुख करों और राजस्व पदाधिकारियों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

19.4 व्यापार और नगर

मगध साम्राज्य में गैर-कृषि अर्थव्यवस्था का विकास दो दिशाओं में हुआ :

i) व्यापार और वाणिज्य का प्रसार

ii) नए नगरों और बाजारों की स्थापना

कृषि-अर्थव्यवस्था ने मौर्य साम्राज्य को (खासकर गंगा घाटी में) एक मजबूत आर्थिक आधार प्रदान किया। परन्तु इस मजबूत आधार को समूचे भारत में प्रसारित करने का कार्य व्यापारिक अर्थव्यवस्था ने किया।

19.4.1 व्यापारिक संगठन

इस काल में व्यापार आकस्मिक रूप से विकसित नहीं हुआ। यह लम्बे आर्थिक परिवर्तन का एक हिस्सा था, जिसकी शुरुआत मौर्य काल से काफी पहले हो चुकी थी। जातक कथाओं में बार-बार ऐसे व्यापारियों के काफिलों का जिक्र आता है जो काफी मात्रा में सामान देश के एक हिस्से से दूसरे हिस्से में पहुँचाते थे। मौर्य शासन द्वारा सुरक्षा प्रदान किए जाने के कारण आंतरिक व्यापार तेजी से फला-फूला। पश्चिमी एशिया और मध्य एशिया को जाने वाले प्रमुख व्यापारिक मार्ग उत्तर पश्चिमी भारत से होकर गुजरते थे। उत्तरी भारत के प्रमुख व्यापारिक मार्ग गंगा नदी के किनारे-किनारे और हिमालय की तलहटी से गुजरते थे। मगध साम्राज्य के प्रमुख केंद्र – राज़गृह और कौशाम्बी (इलाहाबाद के निकट) – इस प्रकार आपस में जुड़े हुए थे। मौर्यों की राजधानी पाटलिपुत्र बड़े महत्वपूर्ण स्थल पर बसा हुआ था, जहां से वह चारों ओर से नदी और स्थल मार्ग से जुड़ा हुआ था उत्तरी मार्ग वैशाली होता हुआ श्रावस्ती और कपिलवस्तु तक जाता था। कपिलवस्तु से यह मार्ग कलसी, हजारा होता हुआ पेशावर तक जाता था। मेगस्थनीज ऐसे मार्ग की भी चर्चा करता है; जो उत्तर-पश्चिमी प्रदेश को पाटलिपुत्र से जोड़ता था। दक्षिण की ओर पाटलिपुत्र एक मार्ग द्वारा मध्य भारत तक और दक्षिण-पूर्व में कलिंग तक जुड़ा हुआ था। यह पूर्वी मार्ग अन्ततः दक्षिण की ओर मुड़ जाता था और आंध्र तथा कर्नाटक तक पहुंचता था। पूर्वी मार्ग का दूसरा हिस्सा गंगा डेल्टा होता हुआ ताम्रलिप्ति तक पहुँचता था, जहाँ से दक्षिण और दक्षिण-पूर्व इलाके तक जाया जा सकता था। कौशाम्बी से पश्चिम की ओर एक रास्ता उज्जैन तक जाता था। यह रास्ता और आगे पश्चिम में गुजरात के समुद्र तट तक नर्मदा के दक्षिण पश्चिम तक जाता था, जिसे **दक्षिणपथ** यानी दक्षिणी रास्ता के नाम से जाना जाता था। पश्चिमी एशिया के देशों का रास्ता तक्षशिला (इस्लामाबाद के निकट) होकर जाता था।

नई बस्तियों के विस्तार से लोगों का आवागमन बढ़ा और इसके परिणामस्वरूप भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न हिस्सों में संचार कायम हुआ। इससे स्वाभाविकतः व्यापार में वृद्धि हुई। राज्य के प्रयत्न से गंगा घाटी के वन काटे गए और इस प्रकार तटों के साफ हो जाने से नदी यातायात में तेजी आई। बिंदुसार और अशोक के शासनकाल में शांति की नीति अपनाई गई और यूनानियों से मित्रतापूर्ण संबंध कायम किया गया इससे विदेशी व्यापार में भी वृद्धि हुई।

व्यापार के अनेक तरीके विकसित थे। यह सहज रूप से उत्पादन के तरीके और इसके संगठन से जुड़ा हुआ था। उत्तर भारत में कारीगर उत्पादन या हस्तशिल्प उद्योग श्रेणियों के आधार पर संगठित था। यह व्यवस्था मौर्य काल के पहले से चली आ रही थी। मौर्यों के अधीन शिल्पियों की संख्या में भी वृद्धि हुई। प्रत्येक श्रेणी नगर के एक भाग में बसी हुई थी जिससे एक श्रेणी के सदस्य एक साथ रह सकते थे और कार्य कर सकते थे। आम तौर पर उनमें पारिवारिक संबंध पाया जाता था। ज्यादातर पुत्र अपने पिता के व्यवसाय को अपनाते थे और इस प्रकार हस्तशिल्प अधिकांशतया वंशानुगत होता था। उस काल के अभिलेखों में इस बात का उल्लेख है कि मौर्य काल के बाद ये श्रेणियां काफी शक्तिशाली हो गयीं। मेगस्थनीज ने भी श्रेणियों की गणना सात जातियों/वर्गों में की है। इस काल की श्रेणियों में प्रमुख थे—विभिन्न प्रकार के धातुकर्मी, बढ़ई, कुम्भकार, चर्मकार, चित्रकार, बुनकर आदि। उत्तरी काली पालिश के बर्तन हस्तशिल्प के उत्तम नमूने हैं। यह बर्तन बनाने का विशेषज्ञतायुक्त हस्तशिल्प था और गंगा घाटी के बाहर कम ही पाया जाता है। इससे पता चलता है कि देश के इस भाग में यह तकनीक विकसित हुई और शायद यह एक विशेष प्रकार की मिट्टी से ही बनाया जा सकता था।

शिल्पियों के समान व्यापारी भी श्रेणियों में विभक्त थे। व्यापारियों का एक समूह किसी खास शिल्पी समुदाय से जुड़ा होता था, जिससे वितरण में सुविधा होती थी। वे भी शहर के किसी खास हिस्से में रहते थे, जो बाद में उनके व्यवसाय से सम्बद्ध हो गया।

यह ध्यान देने की बात है कि मौर्यों के शासनकाल में राज्य प्रशासन ने व्यापार के संगठन पर भी ध्यान दिया। इस प्रकार के प्रशासनिक नियंत्रण से उत्पादन और व्यापार में काफी सुधार हुआ। इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रशासन ने प्रत्यक्षतः श्रेणी संगठन में हस्तक्षेप किया और उसे बदलने की कोशिश की। राज्य का नियंत्रण वस्तुओं के वितरण पर होता था और यहां तक कि राज्य खुद उत्पादक भी बना। दूसरे स्तर पर इसने कुछ शिल्पों को कुछ-कुछ लघु उद्योग के रूप में विकसित किया। इस क्रम में उसने अस्त्र बनाने वाले, जहाज बनाने वाले, पत्थर काटने वाले आदि शिल्पियों को सीधे नियुक्त किया। इन्हें कर नहीं देना पड़ता था क्योंकि ये राज्य को अनिवार्य श्रम सेवा अर्पित करते थे। परन्तु अन्य शिल्पियों जैसे सूत कातने वाले, बुनक तथा खानों आदि में काम करने वालों को कर देना पड़ता था।

व्यापार और वस्तु उत्पादन को व्यवस्थित करने के ये सारे कार्य राज्य नीति का हिस्सा थे। आर्थिक गतिविधियों और राजस्व पर अपनी पकड़ मजबूत बनाए रखने के लिए राज्य को यह नीति अपनानी पड़ी।

मेगस्थनीज ने वाणिज्य अधीक्षक का जिक्र किया है, जो वस्तुओं का मूल्य निर्धारित करता था और बाजार में किसी वस्तु की मात्रा, बहुत अधिक आ जाने की स्थिति में हस्तक्षेप भी करता था। **अर्थशास्त्र** में उसका उल्लेख **पण्याध्यक्ष** के रूप में हुआ है। इसमें कई ऐसे अधिकारियों का जिक्र है, जो विभिन्न आर्थिक गतिविधियों की देख-रेख करते थे। **समस्थाध्यक्ष** बाजार की निगरानी करता था और व्यापारियों पर नियंत्रण रखता था। **पौटवाध्यक्ष** या माप-तौल अधीक्षक माप-तौल के स्तर पर सख्त नियंत्रण रखता था! **नावाध्यक्ष** के अधीन राज्य की नावें रहती थीं, जिनसे यातायात होता था। वह नदी यातायात पर नियंत्रण रखने में सहायता प्रदान करता था और उतराई भी वसूल करता था। सभी व्यापारियों को कर और चुंगी शुल्क देना पड़ता था, यह शुल्क वस्तु के मूल्य के 1/5वां हिस्से से 1/25वें हिस्से तक होता था। इस शुल्क की वसूली का काम **शुल्काध्यक्ष** करता था।

राज्य द्वारा उत्पादित वस्तुओं की देख-रेख दूसरे अधिकारीगण किया करते थे। इस प्रकार की वस्तुओं को **राजपण्य** कहते थे। राज्य उसी वस्तु के उत्पादन में हाथ लगाता था जो उसके काम-काज के लिए अनिवार्य और जिनसे अच्छा राजस्व प्राप्त हो सकता था। कभी-कभी राज्य की वस्तुएं निजी व्यापारियों द्वारा भी वितरित की जा सकती थी, क्योंकि उनकी वितरण-व्यवस्था सुव्यवस्थित थी और काफी दूर तक फैली हुई थीं। इन परिवर्तनों के बावजूद यह कहना गलत नहीं होगा कि अधिकांश शिल्पी या तो निजी तौर पर या श्रेणी-व्यवस्था के अंतर्गत काम करते रहे। ये श्रेणियां इन उत्पादकों के बीच सौहार्द स्थापित करने का काम करती थीं, साथ ही साथ उन पर नियंत्रण भी रखती थीं। यहां तक कि शिल्पी भी श्रेणी में शामिल होना फायदेमंद मानते थे, क्योंकि अकेले काम करने में खर्च अधिक आता था और प्रतियोगिता काफी बढ़ जाती थी। राज्य को भी इन श्रेणियों से कर वसूलने में सुविधा होती थी। अंततः स्थानीय तौर पर केंद्रित होने और एक खास शिल्प में विशेषज्ञता हासिल करने के कारण उस व्यापार विशेष में खूब तरक्की हुई। परन्तु इस काल में श्रेणियां सम्पूर्ण भारत में नहीं फल-फूल रही थीं। खासकर दक्षिण में, मौर्य काल के बाद भी उनका उल्लेख मुश्किल से मिलता है। श्रेणियों के विकास के लिए शहरी वातावरण अधिक उपयुक्त था। अगले भाग में हम इस शहरी वातावरण की चर्चा करेंगे।

19.4.2 शहरी अर्थव्यवस्था का विकास

मौर्य काल से पहले शहरीकरण की जो प्रक्रिया आरंभ हुई थी, मौर्य काल में उसका आगे विकास हुआ। शहर में अधिकांशतः शिल्पी, व्यापारी और सरकारी कर्मचारी रहते थे। शहरी अर्थव्यवस्था का निर्माण सामान के निर्माताओं और व्यापारियों की गतिविधियों पर आधारित होता है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में व्यापारिक लेन-देन भी बढ़ता है। इस काल में यह लेन-देन गंगा घाटी से पश्चिमी और मध्य भारत, दक्कन तथा दक्षिणी भारत तक फैल गया। ग्रामीण बस्तियों के प्रसार और गहपतियों की समृद्धि ने शहरी केंद्रों के और प्रसार के लिए सामाजिक आधार प्रदान किया। कई मामलों में अमीर ग्रामीण परिवारों ने शहरों से सम्पर्क स्थापित किया और व्यापारी-समुदायों को वित्तीय सहायता प्रदान की।

इस इकाई के आरंभ में हमने मौर्य काल के भौतिक अवशेषों का जिक्र यह दिखाने के लिए किया था कि इस काल में शहरी केंद्रों की संख्या में निश्चित रूप से वृद्धि हुई। हालांकि इस वृद्धि को मापना लगभग असंभव है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में **दुर्गनिवेश** या **दुर्गविधान** का जिक्र है। इससे पता चलता है कि शहरों को दीवार से घेरा गया था। यह भी बताया जाता है कि इन शहरों में पुजारी, सैनिक, व्यापारी, शिल्पी और अन्य लोग रहते थे। इस उद्धरण में शहर की रक्षा के बारे में विस्तार से चर्चा की गई है। इसमें उनकी बनावट का भी उल्लेख है। इसका उद्देश्य था — आर्थिक नियंत्रण को सुव्यवस्थित करना। वस्तुतः **अर्थशास्त्र** में शहरों (दुर्गों) को जनपदों के समान राजस्व के स्रोत के रूप में देखा गया है। शहरों से प्राप्त कर से राज्य को अच्छी आमदनी होती थी, अतः मौर्यों ने शहर के उत्थान और प्रशासन पर विशेष ध्यान दिया। एक बात ध्यान देने की है कि केवल दुर्ग या राजधानी में रहने वाली श्रेणियों पर कर लगाए जाने का जिक्र हुआ है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि ग्रामीण इलाकों में रहने वाली श्रेणियां करों से मुक्त थी। इस का कारण यह हो सकता है कि शहर में रहने वाले लोगों को नियंत्रित और व्यवस्थित करना ज्यादा आसान होता है।

मेगस्थनीज ने मौर्यों की राजधानी का विस्तार से वर्णन किया है, इससे यह भी पता चलता है कि शहर का प्रशासन कैसा था और शहरी अर्थव्यवस्था के कौन-से हिस्से राज्य के हित में नियंत्रित किए जाते थे। वह बताता है कि पाटलिपुत्र का प्रशासन तीस अधिकारियों के जिम्मे था, ये अधिकारी छह समितियों में विभक्त थे, प्रत्येक समिति में पांच-पांच सदस्य थे। इन छह समितियों में से चार आर्थिक कार्यकलापों से सम्बद्ध थीं। ये समितियां औद्योगिक उत्पादन, व्यापार और वाणिज्य तथा तैयार माल की सार्वजनिक बिक्री का निरीक्षण करती थीं और बेचे जाने वाले सामान पर कर वसूल करतीं थीं। अन्य दो समितियां विदेशियों के कल्याण

और जन्म तथा मृत्यु के पंजीकरण से सम्बद्ध थीं। आर्थिक गतिविधियों के समुचित विकास की दृष्टि से नगरों में कानून और व्यवस्था संबंधी प्रशासन भी महत्वपूर्ण हो गया।

नगर प्रशासन का यह विवरण मौर्य साम्राज्य के केंद्र में बसे सभी प्रमुख बड़े शहरों पर लागू होता है। पर्याप्त सूचनाओं के अभाव में यह बताना कठिन है कि छोटे शहरों, तटीय शहरों और तीर्थ-स्थलों के प्रशासन का सही स्वरूप क्या था। इससे महत्वपूर्ण बात यह है कि मौर्यों की अर्थव्यवस्था ने शहरों के उदय और समृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। शहरी अर्थव्यवस्था की समृद्धि के लिए लोगों का आवागमन और विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच परस्पर संवाद कायम होना आवश्यक है। और इस काल में ऐसा संभव हुआ क्योंकि साम्राज्य के बड़े शहरों और प्रमुख क्षेत्रों में काफी हद तक राजनीतिक स्थिरता व्याप्त थी।

शहरी अर्थव्यवस्था का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इसमें मुद्रा का चलन बढ़ा और लेन-देन मुद्रा में होने लगा। हालांकि मुद्रा का चलन मौर्यों के जमाने से पहले से चला आ रहा था, परन्तु वाणिज्य के विकास के कारण मौर्य काल में यह आम उपयोग की चीज हो गई। व्यापार में मुद्रा अर्थव्यवस्था की उपयोगिता स्वयंसिद्ध है, परन्तु अर्थव्यवस्था में मुद्रा के बढ़ते हुए महत्व का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि अधिकारियों को भी शायद वेतन नकद ही दिया जाता था। अर्थशास्त्र में इस बात का जिक्र है कि 48,000 पण और 60,000 पण के बीच वार्षिक वेतन देने का प्रावधान था। इस प्रकार की शक्तिशाली नकदी अर्थव्यवस्था को सुचारू ढंग से चलाने के लिए सिक्कों की ढलाई और चांदी तथा तांबे जैसे धातुओं का महत्व बढ़ गया होगा। मौर्यकालीन पंच मार्क्ड चांदी के सिक्के इस बात के प्रमाण हैं कि मौर्यों ने मुद्रा अर्थव्यवस्था को सुव्यवस्थित रूप में लागू किया। ये पंच मार्क्ड सिक्के मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश और बिहार में पाए गए हैं, जो साम्राज्य का केंद्रीय स्थल था।

मार्यों के अधीन शहरी अर्थव्यवस्था पर राज्य का पूरा नियंत्रण था। इस क्रम में राज्य कुछ महत्वपूर्ण कार्यक्षेत्रों को एकाधिकार क्षेत्र में परिणत कर देता था। **अर्थशास्त्र** में खनिज अधीक्षक (**आकराध्यक्ष**) का जिक्र हुआ है जो नई खानों की खोज करना था और पुरानी खानों को फिर से खोलने का प्रयत्न करता था। नमक खनन के क्षेत्र में भी राज्य का एकाधिकार था। विभिन्न प्रकार के धातुओं का उपयोग केवल सिक्का ढालने के लिए ही नहीं होता था, बल्कि उससे अस्त्र भी बनाए जाते थे। इसी कारण अर्थशास्त्र में लौह अधीक्षक (**लोहाध्यक्ष**) का जिक्र हुआ है। सैनिकों के लिए अस्त्र उपलब्ध कराने के अलावा, राज्य कृषि के लिए औजार भी प्रदान करता था। खनन और खनिज पदार्थों के व्यापार पर एकाधिकार से मौर्य साम्राज्य काफी महत्वपूर्ण कच्चे मालों को अपने कब्जे में रख सका। इनके समुचित उपयोग के फलस्वरूप कृषि और कृषि क्षेत्रों में उत्पादन काफी बढ़ा।

एक बार शहरी केंद्रों पर आर्थिक नियंत्रण स्थापित होने और इनके प्रशासन को सुव्यवस्थित करने के बाद, इन शहरों के माध्यम से विभिन्न जनपदों पर नियंत्रण मजबूत किया गया। वाणिज्यक लेन-देन में वृद्धि होने कारण, आदान-प्रदान और व्यापार के केंद्रों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई। अगले उपभाग में हम इस बात पर विचार करेंगे कि किन विभिन्न तरीकों से सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन मौर्यकालीन भारत के विभिन्न हिस्सों तक पहुंचा। अर्थव्यवस्था के दूसरे मामलों के समान ही इन केंद्रों पर मौर्यों का नियंत्रण विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न स्तर का था।

19.4.3 मौर्यकालीन भारत में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन

ऊपर दिए गए विवरण से यह स्पष्ट है कि कृषि, व्यापार और उद्योग पर राज्य का नियंत्रण मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता थी। हम यह भी स्पष्ट कर चुके हैं कि राज्य के निर्वाह के लिए विभिन्न प्रकार के करारोपण आवश्यक थे। मौर्य साम्राज्य को सुव्यवस्थित रूप में चलाने के लिए अपेक्षाकृत अधिक स्रोत की आवश्यकता थी। मगध और उसके आसपास के इलाकों से प्राप्त कर साम्राज्य के कार्यकलापों के लिए पूरे नहीं पड़ते थे। अतः, देश के दूसरे प्रदेशों के स्रोतों पर नियंत्रण स्थापित करने की कोशिश की गई। इसके लिए कलिंग, कर्नाटक के पठार और पश्चिम भारत का उदाहरण लिया जा सकता है, जहां अशोक के अभिलेख पाए जाते हैं। इस प्रकार के सुदूर प्रदेशों की कुछ खास आर्थिक गतिविधियों पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए मौर्य शासक विभित्र पद्धतियां अपनाते थे। यह पद्धति उस प्रदेश से प्राप्त स्रोतों पर आधारित होती थी। उदाहरण स्वरूप कलिंग की विजय से मौर्यों को एक उर्वर कृषि भूमि मिली और उन मार्गों पर नियंत्रण स्थापित हो सका, जो दक्षिण में स्थित खानों तक जाते थे। इसी प्रकार कर्नाटक पर कब्जा जमाने का मूल उद्देश्य सोने और बहुमूल्य रत्नों के स्रोतों पर अधिकार स्थापित करना था।

अब प्रश्न यह उठता है कि जिन इलाकों में मौर्य अभिलेख प्राप्त नहीं हुए हैं, उन इलाकों पर आर्थिक नियंत्रण किस प्रकार का था? रोमिला थापर का विचार है कि ऐसे क्षेत्रों में मौर्यों के राजनीतिक और

आर्थिक नियंत्रण का आकलन मुश्किल है। उत्तरी दक्कन, पंजाब, सिंध और राजस्थान इसी प्रकार के इलाके थे। इनमें से जिन इलाकों में मौर्यों का प्रभाव था, वहां भी बड़े पैमाने पर किसी प्रकार के फेर-बदल का प्रयत्न नहीं किया गया। मौर्यों का मुख्य उद्देश्य स्रोतों का दोहन था और वह इसके लिए क्षेत्र विशेष के प्रभावशाली वर्ग पर निर्भर रहते थे। यह ध्यान देने की बात है कि इस काल में गंगा घाटी के बाहर अधिकांश प्रदेशों में आर्थिक विकास का स्तर एक-सा नहीं था। इस असमान विकास के कारण इन सभी क्षेत्रों मे कोई मूलभूत परिवर्तन लाना और पुनर्रचना करना काफी कठिन काम था।

अर्थशास्त्र और अशोक के अभिलेखों में जनजातियों या कबीलों (अतविक, अरण्यकार) का जिक्र हुआ है, जो साम्राज्य के कई हिस्सों में बसे हुए थे। अन्य इलाकों की तरह इनके इलाके विकसित नहीं थे। कौटिल्य ने राज्य को सुझाव दिया कि इन कबीलों को व्यवस्थित कृषि जीवन की ओर उन्मुख किया जाना चाहिए। उसने अर्थशास्त्र में पूरे एक अध्याय में कबीलाई व्यवस्था को भंग करने और उसके लिए सही और गलत — सभी तरह के तरीके अपनाने की सलाह दी है। अधिक से अधिक भूमि पर खेती करने के लिए आवश्यक था कि पांच से दस परिवारों के एक समूह को एक साथ स्थाई तौर पर बसाया जाए। अशोक इन कबीलों को एक पिता की निगाह से देखता था, परन्तु वह उन्हें एक जगह चेतावनी भी देता है कि अगर उन्होंने महामात्यों के आदेश का पालन न किया तो उन्हें सख्त सजा दी जाएगी। जंगल मे रहने वाले इन कबीलों पर नियंत्रण दो दृष्टियों से महत्वपूर्ण था :

i) पहला, नई खेतिहर बस्तियों की सुरक्षा के लिए यह आवश्यक था कि कबीले उनके आर्थिक विकास में बाधा न पहुंचाएं।

ii) दूसरे, ज्यादातर व्यापार मार्ग कबीलाई क्षेत्रों के बगल से या उनसे होकर गुजरते थे। अतः इन क्षेत्रों पर नियंत्रण आश्यक था।

यह बता पाना तो मुश्किल है कि कितने कबीलाई समूह कृषक बन पाए, परन्तु यह ध्यान देने की बात है कि इस प्रक्रिया को राज्य ने बढ़ावा दिया। भारत के विभिन्न भागों के पुरातात्विक प्रमाण बताते हैं कि बहुत से ऐसे इलाके थे, जो इस युग में पूरी तरह शहरी केंद्र के रूप में विकसित नहीं थे। तीसरी शताब्दी ई.पू. के महापाषाणीय स्थलों, दक्कन और दक्षिण भारत के कई हिस्सों को देखने से पता चलता है कि वहां खेती आरंभिक अवस्था में थी, चरवाहे समुदायों का अस्तित्व था और शिल्प उद्योग की सीमित जानकारी थी।

तीसरी शताब्दी ई.पू. में भारत जैसे विशाल देश में पूर्ण रूप से परिवर्तन लाना संभव भी नहीं था, परन्तु मौर्य शासन के दौरान कुछ भौतिक और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों की शुरुआत हो चुकी थी, जो आगे की शताब्दियों में फलीभूत हुई।

आइए, इन परिवर्तनों पर भी संक्षेप में विचार कर लें। मौर्य साम्राज्य के कई क्षेत्रों जैसे उत्तरी और पश्चिमी बंगाल, कलिंग, दक्कन और इनके दक्षिण प्रदेश में आरंभिक ऐतिहासिक सांस्कृतिक पद्धति की शुरुआत मौर्यकाल या मौर्यकाल के बाद की अवधि से मानी जाती है। इसका अर्थ यह है कि मौर्यकाल और मौर्यकाल के बाद प्रभावकारी मानवीय बस्तियों (जैसे शहरों और नगरों) का विकास हुआ है, जिसमें विभिन्न सामाजिक समूह रहा करते थे। वे सिक्कों का उपयोग करते थे, उनकी एक लिपी थी और काफी मात्रा में वे परिष्कृत वस्तुओं का सेवन करते थे। भौतिक संस्कृति के क्षेत्र में ये परिवर्तन इस बात को स्पष्ट करते हैं कि परिवर्तन केवल तकनीक और भौतिक जीवन में ही नहीं आया बल्कि सामाजिक संगठन और विचारों में भी बदलाव आया। सामाजिक संगठन में अधिक जटिलता आयी। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक समूहों के बीच और अन्ततः एक संस्था के रूप में राज्य में अलगाव पैदा हुआ। मौर्यों के बाद कई क्षेत्रों में स्थानीय राज्य विकसित हुए। यह तथ्य इस बात की ओर संकेत करता है कि मगध साम्राज्य के संपर्क में आने वाले भारत के अनेक हिस्सों में सामाजिक-आर्थिक बदलाव की प्रक्रिया शुरू हुई जो समाज में हो रहे अधिशेष उत्पादन से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई थी।

बोध प्रश्न 3

1) रिक्त स्थान की पूर्ति कोष्ठक में दिए विकल्पों में से कीजिए :

क) अर्थशास्त्र में खनन अधिकारी को .... कहा गया है।

(लोहाध्यक्ष, आकराध्यक्ष)

ख) कौटिल्य ने उच्चतम अधिकारियों का वेतन 48,000 .... बताया है।

(कर्सपण, पण्)

ग) शहर में वाणिज्य की गतिविधियों पर नजर रखना .... का काम था।

(पण्याध्यक्ष/समताध्यक्ष)

घ) राज्य द्वारा उत्पादित वस्तुओं को .... कहा जाता था।

(दुर्गविधान/राज्यपण)

2) मौर्यकालीन भारत के प्रमुख व्यापार मार्गों पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

....

....

....

3) वस्तुओं के उत्पादन और व्यापार में राज्य किस हद तक हस्तक्षेप करता था? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

19.5 सारांश

इस इकाई में हमने मौर्यकालीन भारत में हुए आर्थिक परिवर्तनों के विभिन्न पक्षों पर विचार विमर्श किया। नये शोधों का हवाला देते हुए हमने आपको बताया कि मौर्य भारत के सभी क्षेत्रों पर एक समान आर्थिक नियंत्रण नहीं था। साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों से उनके संबंध अलग-अलग आर्थिक हितों के आधार पर जुड़े हुए थे। साम्राज्य के प्रमुख क्षेत्रों पर उनका नियंत्रण स्वाभाविक रूप से अधिक प्रभावशाली और प्रत्यक्ष था। इस इकाई में आपने निम्नलिखित मुद्दों का अध्ययन किया :

- उत्पादन का भौतिक और सामाजिक आधार जो आर्थिक विकास का आधार था,
- कृषि विकास से प्रधान अवयव और भूमि स्वामित्व की पद्धतियाँ,
- कई प्रकार के भू-राजस्वों के माध्यम से राज्य ने कृषि अधिशेष को कैसे अपने कब्जे में किया,
- व्यापार में हो रहे परिवर्तन, व्यापार में संगठन और आर्थिक क्रियाकलाप के इस क्षेत्र में राज्य का हस्तक्षेप, और
- शहरी अर्थव्यवस्था और तकनीक के विभिन्न पक्ष।

19.6 शब्दावली

गहपति : भूमिधर परिवार का मालिक मुखिया

महापाषाण : साधारण अर्थ में बड़े-बड़े पत्थरों से बनी कब्रों को महापाषाण कहा जाता है। ये महापाषाणी कब्र संस्कृति के विभिन्न कालों का प्रतिनिधित्व करती है, और यहाँ तक कि आज भी भारत के कुछ हिस्सों में महापाषाणी कब्र बनाई जाती हैं। प्रस्तुत खंड के संदर्भ में महापाषाण का संबंध विदर्भ, दक्कन और दक्षिण की संस्कृतियों से है, जहाँ महापाषाणीय सांस्कृतिक चरण के तुरन्त बाद आरंभिक ऐतिहासिक संस्कृति की शुरुआत स्थायी भवन निर्माण, नगरों और शहरों के उदय, लिपि और सिक्कों के उपयोग और राज्यों के उदय के रूप में हुई।

वर्ण : साधारण अर्थ में "जाति" या "वर्ग"। ब्राह्मणों द्वारा समाज चार वर्णों में विभाजित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र।

सन्निधाता : कोषाध्यक्ष

समाहर्ताः भू-राजस्व निर्धारित करने वाला अधिकारी

सीता भूमि : राजा की भूमि या राजा द्वारा प्रत्यक्ष रूप से नियंत्रित भूमि।

19.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) (क) √ (ख) √ (ग) ×

2) इस प्रश्न का उत्तर देते समय तकनीक में हुए परिवर्तन, शहरीकरण के विकास भवन निर्माण में ईंटो का प्रयोग आदि बातों को शामिल कीजिए। देखें भाग 19.2.

3) इसमें आपको लिखना है कि किस प्रकार लोहे के उपयोग से जंगल कटे और खेती का काम तेजी से बढ़ा। देखें भाग 19.2 .

बोध प्रश्न 2

1) ग

2) ग

3) आप इस प्रश्न का उत्तर देते समय प्रणय कर और एक से अधिक फसल उगाने के प्रयत्न का उल्लेख करें। देखें उपभाग 19.3.2.

4) उपभाग 19.3.2 पढ़ें और फिर नाम लिखें।

बोध प्रश्न 3

1) क) आकाराध्यक्ष

   ख) पण

   ग) पण्याध्यक्ष

   घ) राजपण्य

2) गंगा नदी के साथ-साथ जाने वाले मार्ग तथा दक्षिण प्रदेशों से जोड़ने वाले अन्य मार्गों का उल्लेख करें। देखें उपभाग 19.4.1.

3) इस प्रश्न के उत्तर में नई बातें शामिल होनी चाहिए, जैसे मौर्य राज्य द्वारा उत्पादन और वाणिज्य गतिविधियों पर नियंत्रण। वे चार समितियाँ जो अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण रखती थीं। देखें उपभाग 19.4.2 और 19.4.3.

इकाई 20 प्रशासनिक संगठन और अन्य शक्तियों के साथ सम्बन्ध

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य
20.1 प्रस्तावना
20.2 पृष्ठभूमि
20.3 केन्द्रीय प्रशासन
20.3.1 राजा
20.3.2 मंत्रिपरिषद
20.3.3 नागरिक प्रशासन
20.4 केन्द्रीय प्रशासन
20.4.1 सेना
20.4.2 गुप्तचरी
20.4.3 न्याय एवं दंड
20.4.4 राजस्व प्रशासन
20.4.5 सार्वजनिक निर्माण
20.5 प्रशासन की क्षेत्रीय तथा स्थानीय इकाइयां
20.5.1 प्रान्तीय प्रशासन
20.5.2 जनपद तथा ग्रामीण प्रशासन
20.6 अन्य राज्यों से सम्बन्ध
20.7 सारांश
20.8 शब्दावली
20.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

20.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- उस विशाल प्रशासनिक ढांचे को समझ सकेंगे जिसे मगध साम्राज्य ने बनाया,
- इस युग के प्रशासन की विभिन्न इकाइयों, उनके अधिकार और कार्यभार से परिचित हो सकेंगे,
- विभिन्न स्तरों पर प्रशासन करने के ढंग में अन्तर कर सकेंगे,
- सेना गुप्तचरी और वैधानिक प्रणाली का महत्व समझ सकेंगे, और
- अन्य शक्तियों के साथ मौर्यों के सम्बन्ध तथा उनके साथ नीति में जो परिवर्तन आये उन्हें समझ सकेंगे।

20.1 प्रस्तावना

तीसरी शताब्दी ईसवी पूर्व तक मौर्यराज्य, जिसका केन्द्र मगध था सुदृढ़ रूप से संस्थापित हो चुका था। एक विशाल राज्य क्षेत्र के नियंत्रण के लिए उपयुक्त प्रशासनिक संयंत्र भी मौजूद था। उस संयंत्र के अन्तर्गत प्रशासन के विभिन्न स्तर थे। इनमें प्रमुख था साम्राज्य का केंद्रीय प्रशासकीय क्षेत्र मगध, प्रान्तीय केन्द्र, परिधि पर स्थित क्षेत्र, नगर तथा गांव, आदि। राजा के प्रभुत्व को बनाए रखने और उसके आदेश का पालन करने के अलावा प्रशासन के कार्यकलाप में, न्याय, सेना, गुप्तचरी, राजस्व जमा करना, हस्त शिल्प इत्यादि शामिल थे। इस इकाई में इन्ही सब विषयों पर प्रकाश डाला गया है। साहित्यिक स्रोतों में अर्थशास्त्र तथा यूनानियों के वृतान्त और अशोक के समय के शिलालेखों के आधार पर, हम मौर्य प्रशासनिक व्यवस्था का ठीक तरह से अनुमान लगा सकते हैं।

इसके अलावा इस इकाई में हम अन्य समकालीन भारतीय और विदेशी शक्तियों से मौर्यों के सम्बन्ध पर भी

विचार करेंगे। लेकिन इससे पहले उस पृष्ठभूमि को समझना जरूरी है, जिसके कारण मौर्य प्रशासनिक व्यवस्था सामने आयी।

20.2 पृष्ठभूमि

चंद्रगुप्त मौर्य के समय तक मगध का महाजनपद एक शक्तिशाली साम्राज्य का केन्द्र बन चुका था। ईसा पूर्व छठी शताब्दी की स्थिति के विपरीत इसका प्रभाव क्षेत्र, गंगा के मैदान तक ही सीमित नहीं था। दक्षिण के अन्दरूनी क्षेत्रों तथा पूर्वी क्षेत्रों और उत्तर-पूर्व के इलाकों को छोड़ कर लगभग समस्त भारतीय उप महाद्वीप मौर्यों के नियंत्रण में आ चुका था।

इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि इस समय तक :

- अब भी कुछ ऐसी जनजातियां घने जंगलो में रहती थी जो शिकार तथा भोजन संग्रहण द्वारा ही जीवन निर्वाह करती थी
- ऐसे क्षेत्र थे विशेषकर गंगा घाटी में, जहाँ अतिरिक्त कृषि उत्पादन था
- शहरी बस्तियाँ, व्यापार और दस्तकारी उद्योग का केंद्र बन चुकी थीं
- अपनी आमदनी बढ़ाने के उद्देश्य से राज्य अतिरिक्त उत्पादन हासिल करता था

मगध की निरंतर विजय और विस्तार में अनेक कारकों का योगदान था जिन्होंने उसे एक बड़े साम्राज्य का रूप दिया जैसे राज्य द्वारा राजस्व बढ़ाने का प्रयास। इस प्रयास में ऐसी जमीनों पर नियंत्रण किया गया जिससे अतिरिक्त उत्पादन हो सके ताकि राज्य इसे वसूल कर सके; व्यापारियों पर कर लगाना; खान और व्यापार मार्गों पर नियंत्रण इत्यादि। उदाहरण के लिए, अशोक की कलिंग पर विजय, पूर्वी भारत के तटीय व्यापार को अपने नियंत्रण में करने की इच्छा से प्रेरित थी। इसी प्रकार कर्नाटक के इलाके पर कब्जा करने का उद्देश्य कोलार की सोना खानें हो सकती हैं।

अतिरिक्त उत्पादन को हासिल करने, तथा उसके वितरण या व्यय की समस्या ने एक जटिल प्रशासनिक व्यवस्था का होना अनिवार्य बना दिया। यह व्यवस्था विभिन्न स्तरों पर आर्थिक, राजनैतिक, और सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए भी जरूरी थी। अन्य क्षेत्रों पर विजय के लिए एक शक्तिशाली सेना की जरूरत थी, और सेना को संगठित करने तथा उसकी आवश्यकता की पूर्ति के लिए एक कुशल प्रशासन का होना जरूरी था। उसी तरह व्यापारियों से कर या उत्पादकों से अतिरिक्त उत्पादन वसूल करना हो तो एक ऐसा प्रशासनिक ढाँचा चाहिए था जो नियम बनाये और उन्हे लागू भी करें अर्थात् वसूली भी करें। काफी समय से जो पद्धतियां और संस्थाएं विकसित हो रही थीं मौर्य प्रशासन ने उन्हें एक ठोस रूप दिया। मौर्य प्रशासन के कामकाज का ढंग अत्यन्त सुव्यवस्थित था। हम इन्हीं सम्बंधित विषयों पर विचार करेंगे।

मोटे तौर पर प्रशासन की केन्द्रीय, प्रान्तीय और स्थानीय इकाइयां तथा अन्य संबंधित विषयों की भी चर्चा की जाएगी।

20.3 केन्द्रीय प्रशासन

मौर्य साम्राज्य का प्रशासन केन्द्र और प्रान्तीय क्षेत्रों से लेकर गाँव तक अनेक प्रशासनिक इकाइयों में विभाजित था। इन सभी इकाइयों के अपने अलग-अलग प्रशासनिक ढाँचे तो थे, पर यह सभी, एक केन्द्रीय प्राधिकार से नियंत्रित होते थे। केन्द्रीय प्रशासन को निम्नलिखित भागों में बांट सकते हैं:

1) राजा
2) मंत्रिपरिषद
3) नागरिक प्रशासन
4) सेना
5) गुप्तचर विभाग
6) विधि एवं न्याय
7) जन कल्याण

20.3.1 राजा

राजा राज्य का सर्वोच्च अधिकारी था। नीति संबंधी प्रत्येक समस्या को खुद तय करता था तथा महत्वपूर्ण निर्णय भी स्वयं लेता था। अर्थशास्त्र इस बात की साफ तौर पर पुष्टि करता है कि, यदि किसी समस्या के सुलझाने में नीति शास्त्र और राजा के कानून में मतभेद होता था तो राजा का कानून ही मान्य होता था। वास्तव में मौर्य साम्राज्य में एक केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था थी जिसमें राजतंत्र, गणसंघ से कहीं अधिक प्रभावशाली था।

अर्थशास्त्र के अनुसार प्रशासन के प्रत्येक पहलू में राजा का आदेश या विचार ही सर्वोपरि था। इसके अनुसार, प्राचीन शास्त्रों में राज्य से संबंधित जिन सात घटकों (सप्तांग) का वर्णन है, राजा उनका केन्द्र था।

सात अवयव

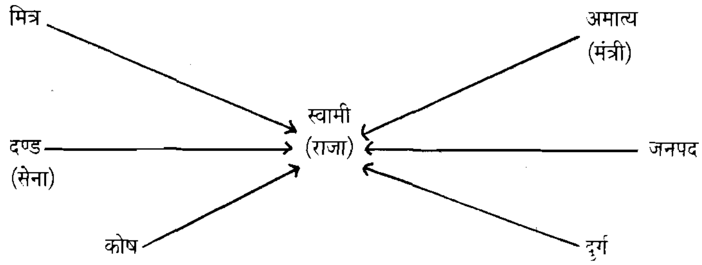

अर्थशास्त्र के अनुसार राजा की केन्द्रीय भूमिका है क्योंकि राजा ही :

- मंत्रियों की नियुक्ति या निष्कासन करता है
- जनता और कोष की रक्षा करता है
- जनता की उन्नति और कल्याण के लिए काम करता है
- दुराचारियों को दंडित करता है
- अपने सद्चरित्र से प्रजा को प्रभावित करता है

हर जनसाधारण राजा नहीं हो सकता। अर्थशास्त्र के अनुसार राजा में कुछ आवश्यक गुण होने चाहिए, जैसे:

- वह उच्च कुल का हो
- छोटे पदाधिकारियों और राजाओं पर प्रभुत्व जमा सके
- बुद्धिमान हो
- सत्यवादी हो
- धर्म का रक्षक हो, इत्यादि।

अर्थशास्त्र के अनुसार राजा को कुछ विशेष क्षेत्रों में अत्यन्त निपुण होना चाहिए, जिससे वह अपना काम भली भांति कर सके। उसे सैनिक शिक्षा प्राप्त होना चाहिए और विभिन्न विभागों जैसे अर्थव्यवस्था (वर्त), लिपि आदि के बारे में पूर्ण ज्ञान हो। अर्थशास्त्र राजा के आचरण और उसके दैनिक कार्यक्रम पर भी प्रकाश डालता है।

राजा के एक निपुण प्रशासक होने के लिए अर्थशास्त्र में तीन बुनियादी शर्तों का वर्णन है:

1) राजा हर समस्या पर बराबर से ध्यान दे
2) उसे सतर्क रहना चाहिए और उचित कार्यवाही करने के लिए तैयार रहना चाहिए
3) उसे अपनी जिम्मेदारी को भली भांति निभाना चाहिए

उसके अलावा उसे हमेशा अपने अधिकारियों और सलाहकारों के सम्पर्क में रहना चाहिए। अशोक के समय के शिलालेखों और मेगस्थनीज के वृतान्त से भी यह मालूम होता है कि राजा ऐसा ही करता था।

अशोक के समय तक मौर्य साम्राज्य भली भांति संगठित हो चुका था। इस दौरान एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि ऐसा विचार आया कि राजा को अपनी प्रजा के प्रति पिता के सामान व्यवहार करना चाहिए। धौली के लेख में अशोक कहता है:

प्रत्येक व्यक्ति मेरी संतान है, और जो कामना मैं अपनी संतान के लिए करता हूँ कि उसे इस संसार में दूसरे में भी, सुख और शांति मिले, वही कामना मैं प्रत्येक व्यक्ति के लिए करता हूँ।

लेकिन इस पैतृक रवैये के साथ-साथ, सम्राट अपने अधिकार के बारे में पूरी तरह सचेत था। इसी शिलालेख में वह तोशाली और सम्पा के अधिकारियों को सम्बोधित करते हुए कहता है:

मैं जो कुछ भी अनुमोदन करू मैं चाहता हूं कि उसे या तो उचित कार्यवाही करके या प्रभावकारी साधनों द्वारा प्राप्त किया जाये—यह मेरा तुम लोगों को निर्देश है।

उसमें कोई संदेह नहीं कि अशोक के प्रशासन का मुख्य उद्देश्य प्रजा का कल्याण था, पर राजनैतिक विशलेषण के दृष्टिकोण से वह एक सम्राट था। रोमिला थापर के अनुसार, देवानापिय (देवताओं का प्रिय) की पदवी धारण करके अशोक ने ईश्वर और राजा के संबंध पर जोर देने का प्रयास किया, और शायद इस हद तक कि पुरोहित को भी एक माध्यम के रूप में शामिल नहीं किया। यह वास्तव में इस बात का संकेत है, कि धार्मिक समस्याओं में भी अब राजा ने अपने अधिकार का प्रयोग करना शुरू कर दिया था (इकाई 21 देखें)

20.3.2 मंत्रिपरिषद

अर्थशास्त्र तथा अशोक के शिलालेख मंत्रिपरिषद का हवाला देते हैं। अर्थशास्त्र के अनुसार "राज्य का कार्य बिना किसी सहायता के नहीं चल सकता। इसके अनुसार रथ केवल एक पहिए से नहीं चलता इसलिए राजा को मंत्रियों की नियुक्ति करनी चाहिये और उनकी सलाह के अनुसार कार्य करना चाहिए" इसी प्रकार गिरनार का अशोक का शिलालेख भी परिषद के कार्य के बारे में बताता है :

- तीसरे शिलालेख से संकेत मिलता है कि मंत्रिमंडल से यह अपेक्षा की जाती थी कि इस पर नजर रखें कि विभिन्न अधिकारी नयी प्रशासनिक नीतियों को लागू कर रहे हैं अथवा नहीं।
- चौथे शिलालेख के अनुसार राजा की अनुपस्थिति में मंत्री उसकी नीतियों पर विचार कर सकते हैं उसमें संशोधन करने की सलाह दे सकते हैं तथा जो भी महत्वपूर्ण समस्या राजा ने उनको सौंपी है उस पर निर्णय ले सकते हैं। पर परिषद को अपने विचारों से राजा को तुरन्त अवगत कराना होगा।

यद्यपि समय-समय पर परिषद के अधिकारों में फेर बदल आता रहा होगा, पर इसकी मुख्य भूमिका एक सलाहकार समिति की ही थी, क्योंकि अंतिम निर्णय लेने का अधिकार राजा का था। मंत्रिपरिषद के सदस्यों की कोई निश्चित संख्या नहीं थी और कौटिल्य के अनुसार, यह आवश्यकता पर निर्भर होना चाहिए। पर उसके विचार में "बड़ी मंत्रिपरिषद राजा के लिए लाभदायक होती है"। उसने इन समस्याओं का भी वर्णन किया है जिन पर राजा को अपने मंत्रियों से सलाह लेनी चाहिए:

- राज्य की परियोजनाओं को किस प्रकार कार्यान्वित किया जाये,
- इन परियोजनाओं के लिए आवश्यक जनशक्ति और पूँजी का अनुमान लगाना,
- उन क्षेत्रों/स्थानों को निर्धारित करना जहाँ पर परियोजनाएं लागू करनी हैं,
- तथा विपदाओं से निपटने के उपाय और हल सोचना।

कौटिल्य के अनुसार मंत्रिपरिषद में बहुमत के फैसले (भवियसित) के आधार पर परियोजनाओं का निर्णय होना चाहिए। पर यदि राजा समझता है कि बहुमत का फैसला लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उचित नहीं है तो उसे स्वयं निर्णय लेना चाहिए। वह स्पष्ट रूप से कहता है "मंत्रियों को यह भली भाँति देखना चाहिए कि राजा के आदेश का पालन हो।"

एक रोचक पहलू जिसका वर्णन अर्थशास्त्र में है, उसका सम्बंध उन योग्यताओं से है जो किसी भी मंत्री की नियुक्ति के लिए जरूरी है, जैसे वह न तो धन का लोभी हो और न ही किसी दबाव में आये। उसे सर्वोपरि शुद्ध अर्थात् सब से पवित्र होना चाहिए। अर्थशास्त्र में मंत्रियों के एक छोटे गुट का भी उल्लेख है जो ऐसी समस्याओं पर सलाह दें, जिनका हल तत्काल चाहिए। इस गुट को आंतरिक परिषद (मित्रगण) कहा गया है।

हमें अर्थशास्त्र में अट्ठारह विभागों का उल्लेख मिलता है। जैसे कर्मन्तिक का संबंध उद्योग की देखभाल से है, अन्तवैपिक का राजा की सुरक्षा से तथा सन्निधाता का राज्यकोष से, इत्यादि।

20.3.3 नागरिक प्रशासन

मेगस्थनीज ने पाटलिपुत्र के प्रशासन का सुस्पष्ट वर्णन किया है। हालांकि, उसका वृतान्त अर्थशास्त्र से भिन्न है, फिर भी इससे हमें इस युग के नागरिक प्रशासन को समझने में काफी मदद मिलती है। इसके अनुसार नागरिक परिषद उपसमितियों में विभाजित थी और प्रत्येक समिति के पाँच सदस्य थे:

1) पहली समिति का काम उद्योग और शिल्प की देखरेख का था जिसमें केन्द्रों का निरीक्षण तथा मजदूरी निर्धारित करना आदि शामिल था।

2) दूसरी समिति विदेशियों की देखभाल, भोजन, आवास और सुरक्षा आदि की व्यवस्था करती थी।

3) तीसरी समिति का काम जन्म और मृत्यु का पंजीकरण करना था।

4) चौथी समिति वाणिज्य और व्यापार के लिये थी। मापतौल का निरीक्षण और बाजार और मण्डी का नियंत्रण उस समिति की जिम्मेदारी थी।

5) पांचवी समिति निर्मित वस्तुओं का निरीक्षण करती थी तथा उनकी बिक्री का प्रबन्ध करती थी, नई तथा इस्तेमाल की गई वस्तुओं को अलग रखा जाता था और उस पर कड़ी दृष्टि रखी जाती थी।

6) छठी समिति का काम बिक्री कर वसूल करना था, जिसकी दर वस्तु के मूल्य की 1/10 थी।

रोचक बात यह है कि अर्थशास्त्र में नागरिक प्रशासन का विस्तृत ब्योरा तो है, पर उन समितियों का वर्णन नहीं है।

फिर भी अर्थशास्त्र की रूपरेखा में मेगस्थनीज द्वारा चर्चित समितियों के लगभग सभी कार्यों का वर्णन है। उदाहरण के लिए उपरोक्त वर्णित चौथी समिति का कार्य अर्थशास्त्र में वर्णित पणअध्यक्ष करता है, कर जमा करने की जिम्मेदारी (छठी समिति) शुल्काध्यक्ष की थी तथा गोप का कार्य जन्म एवं मृत्यु का पंजीकरण करना था। नागरिक प्रशासन का अध्यक्ष नागरिक कहलाता था।

उसकी सहायता के लिए दो अधिकारी थे — गोपा और स्थानिक। उसके अतिरिक्त बहुत से अन्य अधिकारी भी थे जिनके कार्यभार का बहुत विस्तार में वर्णन है।

उदाहरण के लिए :

- बन्धनगराध्यक्ष कारगार की देखरेख करता था
- जनता की सुरक्षा की जिम्मेदारी रक्षी या पुलिस की थी
- कार्यशालाओं, जहाँ वस्तुओं का निर्माण होता था, के कामकाज के लिए बहुत से प्रबन्धक थे, जैसे लौहाध्यक्ष, स्वर्णाध्यक्ष आदि

अर्थशास्त्र में नागरिक प्रशासन की बहुत सी गतिविधियों और उनसे संबंधित नियमों का भी वर्णन है तथा उन नियमों के पालन न करने पर दंड की भी चर्चा है। इसमें सम्मिलित थे:

- स्वच्छता और जलस्रोत
- मिलावट की रोकथाम
- सारायों या यत्रियों के ठहरने के स्थानों की देखरेख
- आग से सतर्कता

कानून लागू करने वाले कानून से ऊपर नहीं थे। उदाहरण के लिए, यदि रक्षिक (पुलिस कर्मचारी) ने नारी के साथ दुर्व्यवहार किया तो उसे अधिक कठोर दंड मिलता था। यदि कोई भी नागरिक नियमों का उल्लंघन करता था तो वह भी दंड का भागी होता था। जैसे, यदि कोई नागरिक कर्फ्यू के दौरान रात के समय घर के बाहर दिखायी देता और यदि उसे कर्फ्यू से छूट प्राप्त नहीं हो तो उसे बड़ा जुर्माना देना होता था इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इस युग में नागरिक प्रशासन विस्तृत और सुनियोजित था।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित में से कौन से कथन सही या गलत हैं √ या × का निशान लगाइये।

   क) मगध के विस्तार में राज्य की आमदनी बढ़ाने की कोशिश का योगदान था ( )

   ख) अर्थशास्त्र के अनुसार राजा के सम्मुख मंत्रिपरिषद का निर्णय अंतिम होता था ( )

ग) प्रजा की ओर राजा का पैतृक रवैया भारतीय राजतंत्र में एक नया अध्याय था। ( )

घ) मेगस्थनीज के वृतान्त में नागरिक प्रशासन की कोई चर्चा नहीं है। ( )

च) कौटिल्य की रूपरेखा के अनुसार राज्य के सात घटकों का केन्द्र राजा था। ( )

2) दस पंक्तियों में राजा और मंत्रिपरिषद के संबंधों की चर्चा करिये।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) रिक्त स्थानों को भरिए :

क) मौर्य प्रशासन का ढांचा .... (सरल/जटिल) था।

ख) देवानमपिय की उपाधि ग्रहण करके अशोक ने राजा और .... (सांसारिक/दिव्य) शक्ति से संवंध (स्थापित/तोड़ने) करने का प्रयास किया।

ग) मेगस्थनीज के अनुसार नगर परिषद (दो/पाँच) सदस्यों की .... (तीन/छह) समितियों में विभाजित थी।

घ) अर्थशास्त्र में विभिन्न अधिकारियों के कार्य का .... (विस्तृत/संक्षिप्त) वर्णन है।

4) आप किस आधार पर कह सकते हैं कि मौर्यकालीन नागरिक प्रशासन सुव्यवस्थित था। लगभग दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

20.4 केन्द्रीय प्रशासन

केन्द्रीय प्रशासन के अन्तर्गत अन्य विभाग भी शामिल थे। फिर भी, कुछ कार्यों को लागू करने की जिम्मेदारी स्थानीय प्रशासनिक इकाइयों की थी, जैसे जन कल्याण सम्बन्धी कार्यक्रम।

20.4.1 सेना

नन्द राजाओं के पास एक शक्तिशाली सेना थी, पर यह बात ध्यान देने की है कि नन्द राजा को परास्त करने के लिए कौटिल्य और चन्द्रगुप्त ने भाड़े के सैनिकों की सेना बनायी थी। इसका संदर्भ, यूनानी और भारतीय, दोनों प्रकार के साहित्यिक स्रोतों में मिलता है। बाद में, चन्द्रगुप्त की सेना काफी संगठित और बड़े आकार की बनाई गई। उदाहरण के लिए प्लीनी (Pliny) के वृतान्त के अनुसार सेना में नौ हजार हाथी, तीस हजार अश्वरोही तथा छह हजार पैदल सैनिक थे, जबकि प्लूटार्क (Plutarch) के अनुसार सेना के छह हजार पैदल हाथी, अस्सी हजार अश्वरोही, दो लाख पैदल सैनिक तथा आठ हजार युद्ध रथ शामिल थे। हो सकता है कि इन वृतान्तों में वास्तविकता को बढ़ा चढ़ा कर पेश किया गया हो। लेकिन सेल्युकस का युद्ध में पीछे हटना, अर्थशास्त्र में सैनिक प्रशासन का विस्तृत वर्णन और अशोक के समय का हिंसात्मक कलिंग युद्ध जैसे प्रमाण इस बात की पुष्टि अवश्य करते हैं कि मौर्य शासन काल में एक विशाल सैनिक संगठन मौजूद था। मेगस्थनीज के अनुसार सेना की विभिन्न शाखायें इस प्रकार थीं :

- पैदल सेना
- घुड़सवार सेना
- हाथी
- रथ
- यातायात और
- नौसेना

प्रत्येक शाखा की देखरेख पाँच सदस्यों की एक समिति करती थी। कौटिल्य चतुरंगबल को (पैदल सेना, अश्वरोही सेना, रथ और हाथी) सेना का मुख्य अंग बताता है प्रत्येक विभाग एक सेनाध्यक्ष के अधीन था। इसके अतिरिक्त, कौटिल्य सेना की चिकित्सा सेवा की भी चर्चा करता है। अधिकारियों और सैनिकों को वेतन नकद मिलता था।

सैनिक अधिकारियों के वेतन

सेनापति	48000 पण
नायक	12000 पण
मुखिया	8000 पण
अध्यक्ष	4000 पण

एक अलग विभाग विभिन्न प्रकार की युद्ध सामग्री और हथियारों के उत्पादन और अनुरक्षण के लिए था, जिसके प्रधान को अयुद्धगाराध्यक्ष कहते थे।

विभिन्न अध्यक्षों के कार्य का भी विस्तृत विवरण मिलता है। जैसे कि, रथाध्यक्ष को रथों के निर्माण का कार्य भी देखना पड़ता था, और हसत्याध्यक्ष की जिम्मेदारी हाथियों की देख रेख थी। अर्थशास्त्र में चयन नीति, युद्ध योजना और नाकाबन्दी आदि की भी चर्चा की गयी है।

इसमें संदेह नहीं है कि राज्य अपनी आमदनी का एक बड़ा भाग सेना के अनुरक्षण पर व्यय करता था, जिसका एक लम्बी अवधि के बाद राज्य कोष पर प्रतिकूल असर पड़ा होगा।

20.4.2 गुप्तचरी

सुसंगठित गुप्तचर विभाग मौर्य प्रशासन का महत्वपूर्ण अंग था जिसके द्वारा आम जनता से लेकर लगभग सारे अधिकारियों पर नजर रखी जाती थी। गुप्तचरों के प्रमुख कार्य इस प्रकार थेः

- मंत्रियों पर नजर रखना
- सरकारी कर्मचारियों की गतिविधियों की खबर रखना
- आम जनता की भावनाओं को जानना
- विदेशी शासकों की गुप्त गतिविधियों का पता लगाना

इन कार्यों के लिए गुप्तचरों को विभिन्न तरह के लोगों की सहायता लेनी पड़ती थी, जैसे रसोइया, नाई इत्यादि। सूचना प्राप्त करने के लिए वे सन्यासी, छात्र आदि का भेष भी धारण करते थे। आवश्यकता होने

पर, महत्वपूर्ण विषयों की सूचना सीधे राजा को ही दी जाती थी। अर्थशास्त्र में सुव्यवस्थित गुप्तचरी की चर्चा की गयी है।

28.4.3 न्याय एवं दंड

सामाजिक और प्रशासनिक व्यवस्था को बनाये रखने तथा राजस्व की भली भाँति वसूली की आवश्यकता को समझते हुए मौर्यों ने एक सुसंगठित विधि व्यवस्था की स्थापना की। अर्थशास्त्र में विभिन्न अपराधों के लिए निर्धारित दंड की नियमावली मिलती है। विवाह और तलाक के कानूनों का उल्लंघन, हत्या, मिलावट, गलत नाप तौल आदि जैसे अनेक अपराधों का वर्णन उस नियमावली में है।

इन अपराधों की जाँच करने के लिए तथा विवाद को विभिन्न स्तरों पर निबटाने के लिए कई प्रकार की अदालतें थीं। अर्थशास्त्र में दो प्रकार के न्यायालयों की चर्चा है:

1) धर्मास्थिय वह न्यायालय जो व्यक्तिगत विवाद हल करते थे।
2) कंटकाशोधन वह न्यायालय थे जो राज्य और व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित मामलों पर विचार करते थे।

उदाहरण के लिए न्यायालय का पहला वर्ग स्त्रीधन (पत्नी का धन) या विवाह संबधी विवादों को हल करता था। दूसरे प्रकार की अदालत मजदूरों के वेतन, उनके आचरण और हत्या आदि समस्याओं से सम्बंधित थीं। उन अदालतों पर विशेष प्रकार के नियंत्रण लागू होते थे। विवादों का विधिवत पंजीकरण होता था और सभी को गवाही देने और बहस करने का अवसर प्राप्त था।

कौटिल्य के अनुसार न्याय संहिता के निम्नलिखित स्रोत थे:

1) धर्म
2) व्यवहार–समकालिक विधि संहिताएं
3) चरित्र–रीतिरिवाज
4) राजशासन–राजसी आदेश

राजा धर्म का रखवाला था, और न्याय का सर्वोच्च अधिकार उसी के पास था। मेगस्थनीस के अनुसार अपराधों की संख्या अधिक नहीं थी। पर जिस प्रकार के दंडों का वर्णन अर्थशास्त्र में मिलता है उससे ऐसा प्रतीत होता है मौर्य समाज कानून के उल्लंघन और अपराधों से बचा हुआ नहीं था। इसीलिए एक कठोर दंड संहिता की आवश्यकता थी पर प्रमाण और गवाह दोनों पर विशेष ध्यान दिया जाता था ''निर्णायकों की एक समिति मुकदमें का फैसला करती थी, पर राजा के दरबार में याचना की व्यवस्था भी थी। यहां पर यह बात भी स्पष्ट हो जानी चाहिए, कि जैसा कि अर्थशास्त्र में उल्लेख है, उसके अनुसार एक ही अपराध के दंड का निर्णय अपराधी की जाति के अनुसार होता था। एक ही प्रकार के अपराध के लिए ब्राह्मण को शूद्र की तुलना में कम दंड मिलता था।

20.4.4 राजस्व प्रशासन

मौर्यकालीन राज्य की आमदनी के अनेक माध्यम थे उसकी चर्चा, इकाई 19 में विस्तार में की गई है कौटिल्य ने उन विभिन्न स्रोतों का वर्णन किया है जिनसे राज्य की आय होती थी। इस विभाग की देखभाल सन्निधाता नामक अधिकारी करता था।

राजस्व के साधन

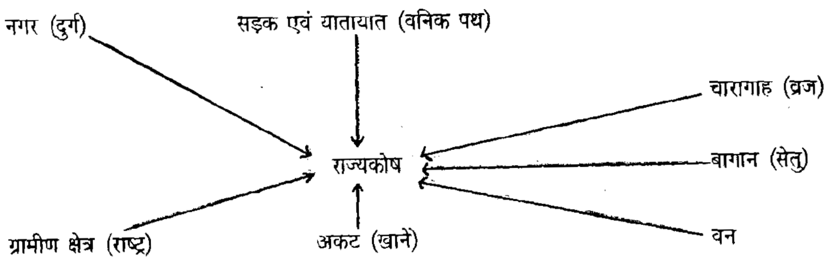

राजस्व के इन स्रोतों से राजस्व वसूलने के अलग-अलग तरीके थे। उदाहरण के लिए:

- नगरों में आमदनी जुर्माना, बिक्री कर (शुल्क) आदि से होती थी। इसके अतिरिक्त शराब की बिक्री पर

भी कर लगाया जाता था, धनवान लोगों के लिए एक प्रकार का आयकर भी था। अर्थशास्त्र में ऐसे 21 प्रकार के करों का वर्णन है जो शहरों में लगाये जाते थे।

- राज्य भूमि से आमदनी, किसानों से लगान, फलोद्यान का कर, नौका शुल्क आदि ग्रामीण क्षेत्रों में राजस्व के मुख्य स्रोत थे।
- समस्त खानें राज्य के नियंत्रण में थी। यह स्थायी रूप से राज्य की आमदनी का जरिया था।
- सड़क या जलमार्ग से यात्रा करने वाले व्यापारियों पर कर लगाया जाता था।
- आयात एवं निर्यात कर, आदि।

कुछ क्षेत्रों में राज्य सम्बंधित व्यक्तियों से सीधे वसूली करता था। जैसे जुआरियों को अपनी जीती हुई रकम का पाँच प्रतिशत राज्य को देना होता था। इसी प्रकार राज्य अधिकारियों द्वारा वस्तुओं के भार की जाँच और उससे सम्बंधित प्रमाण पत्र हासिल करने के लिए व्यापारियों को शुल्क देना पड़ता था। शस्त्र उद्योग और नमक व्यापार को अपने नियंत्रण में लेने के कारण भी राज्य की आय में वृद्धि हुई। आमदनी को बढ़ाने के लिए, राज्य को आपात स्थिति में कर लगाने का अधिकार था। राजस्व को जमा करने और उसके विधिवत नियंत्रण के लिए कई विभाग भी थे। राजस्व का अधिकतर भाग राज्यकोष में जमा होता था तथा उसी से राजा, सेना, प्रशासन, अधिकारियों के वेतन आदि का खर्च पूरा होता था।

राजस्व व्यय

राजा को लगान में छूट देने का अधिकार था। जैसा कि हम जानते हैं कि अशोक ने लुम्बिनी गाँव में "भाग" घटा कर 1/8 कर दिया था, क्योंकि लुम्बिनी बुद्ध का जन्म स्थान था।

20.4.5 सार्वजनिक निर्माण

मौर्य राज्य में जनोपयोगी सेवाओं पर विशेष ध्यान दिया जाता था। मेगस्थनीज के वृतान्त और अर्थशास्त्र दोनों में इस विषय पर चर्चा की गयी है:

1) सिंचाई के साधनों की देखरेख के कार्य में राज्य काफी रुचि लेता था क्योंकि यह आय का एक प्रमुख स्रोत था। मेगस्थनीज ने संबंधित अधिकारियों का भी वर्णन किया है। अर्थशास्त्र में सिंचाई के भिन्न साधन, जैसे पोखर, बांध, नहर आदि की चर्चा की गयी है। पानी के सही उपयोग के लिए नियम भी बनाये गए। जिनका पालन न करना अपराध था। राज्य किसानों को स्वयं बाँध बनाने के लिए प्रोत्साहित करता था और उस कार्य के लिए लगान में छूट भी मिलती थी। रुद्रदमन के शिलालेख (दूसरी शताब्दी ईसवी में लिखा गया) में चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में दर्शन नामक तड़ाग या झील का हवाला मिलता है। इसे पानी की सप्लाई के लिए बनाया गया था।
2) विभिन्न प्रकार के चिकित्सकों के बारे में काफी हवाले मिलते हैं, जिसमें साधारण वैद्य से लेकर मिडवाइफ (गर्भाव्याधि) तक शामिल थे। अशोक के शिलालेखों के माध्यम से यह ज्ञात होता है कि जनसाधारण और मवेशी दोनों के इलाज के लिए सुविधाएं प्राप्त थीं।
3) राज्य, अकाल और बाढ़ जैसी प्राकृतिक विपदाओं के समय भी नागरिकों की सहायता करता था।
4) अर्थशास्त्र के अनुसार राजा को अनाथ तथा बेसहारा बूढ़ी औरतों की देखरेख करनी चाहिए। पर यह कहना मुश्किल है कि यह कहां तक लागू होता था।
5) जन सुविधाओं का एक पहलू था सड़कों की मरम्मत और सराय बनाना।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि राज्य अपनी आमदनी का एक भाग जनसुविधाओं पर व्यय करता था। इस व्यय में, अशोक के काल में बढ़ोत्तरी अवश्य हुई होगी। इसका कारण था, जन कल्याण में अशोक की दिलचस्पी तथा प्रजा की ओर उसका पैतृक रवैया।

20.5 प्रशासन की क्षेत्रीय तथा स्थानीय इकाइयाँ

जैसा कि हम जानते हैं कि मौर्य राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था अत्यधिक केन्द्रीकृत थी और सारे अधिकार राजा के पास थे। लेकिन इतनी प्रशासकीय व्यवस्था सफल नहीं हो सकती थी जब तक कि विभिन्न प्रशासनिक इकाइयाँ क्षेत्रीय तथा स्थानीय स्तर पर न हों। सीमा के बाद मौर्यों ने प्रान्तीय तथा स्थानीय स्तर पर न केवल प्रशासनिक इकाइयाँ बनायी बल्कि उन्हें सुदृढ़ भी किया।

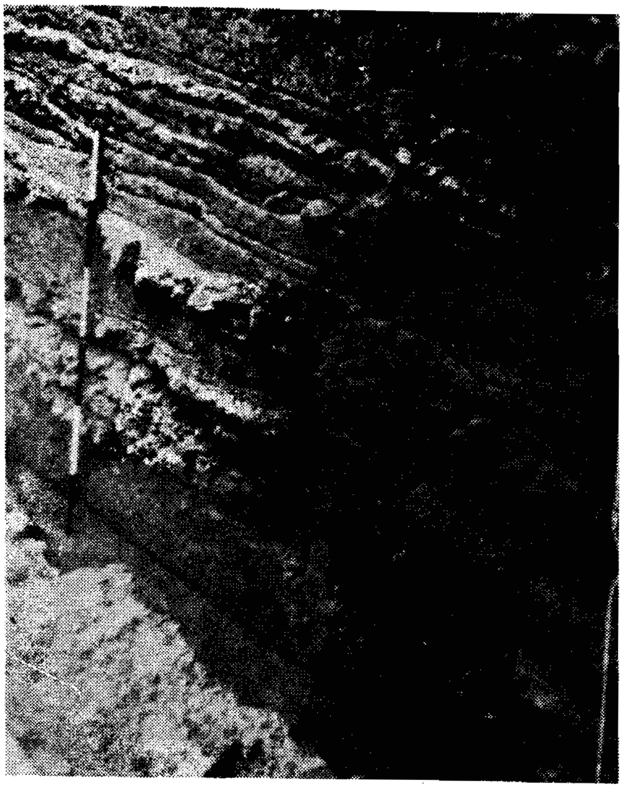

7. उज्जैन के उत्खनन में मिला सड़क का एक भाग

20.5.1 प्रान्तीय प्रशासन

प्रान्तीय प्रशासन का प्रधान कुमार (राजकुमार) होता था, जोकि प्रान्त का गवर्नर या वायसराय भी था, जिस प्रकार कि राजा बनने से पूर्व अशोक उज्जैयनी या तक्षशिला का राजकुमार था। प्रशासन चलाने में महामात्य (जिसे अशोक के समय में महामात्र कहते थे) और एक मंत्रिपरिषद कुमार की सहायता करते थे। अशोक के शिलालेखों में हमें चार प्रान्तीय राजधानियों का उल्लेख मिलता है — पूर्व में तोशाली, पश्चिम में उज्जैन, दक्षिण में स्वर्णागिरि तथा उत्तर में तक्षशिला। प्रान्तों में ऐसे भी क्षेत्र थे, जिनका प्रशासन कुछ ऐसे गवर्नर चलाते थे जिनका चयन स्थानीय आबादी से किया गया था। रुद्रदमन के जूनागढ़ के शिलालेख में तुशस्य का हवाला मिलता है जो अशोक के समय में जूनागढ़ का युवराज था। हालाँकि इसी शिलालेख से हमें यह भी पता चलता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में उस इलाके का प्रतिनिधि (राष्ट्रीय) पुष्यगुप्त नामक एक वैश्य था।

मंत्रिपरिषद का राजा से सीधा सम्पर्क था और वह कुमार की गतिविधियों पर नियंत्रण रखती थी। वरिष्ठ अधिकारी महामात्र कहलाते थे अर्थशास्त्र में उन्हें मंत्री की भाँति समझा गया है, पर अशोक के शिलालेखों में वह ऐसे अधिकारी थे, जो सीमाओ की देखरेख, न्यायिक कार्य आदि करते थे। धम्म महामात्र धर्म से संबंधित समस्याओं को देखते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी नियुक्ति राजा या राजकुमार (वायसराय) कोई भी कर सकता था। उच्च अधिकारियों की दूसरी श्रेणी अमात्य की थी। इस श्रेणी को भी विशेष अधिकार दिए गए थे, क्योंकि अशोक और बिन्दुसार दोनों ही के समय में उन अधिकारियों के मनमाने रवैये के विरोध में तक्षशिला की जनता ने विद्रोह कर दिया था।

20.5.2 जनपद तथा ग्रामीण प्रशासन

इस प्रकार की इकाइयों का प्रशासन नागरिक स्तर पर होता था और उसके संगठन में कई गाँव शामिल होते थे पर साथ ही साथ प्रत्येक गांव की अपनी अलग प्रशासनिक इकाई होती थी। कौटिल्य के अनुसार :

- जनपद के स्तर पर इस युग में जिन अधिकारियों की चर्चा की गयी है इनमें प्रदेष्ट पर जनपद के पूरे कामकाज की जिम्मेदारी थी अन्य अधिकारियों में ''राजक'' और युक्त आते थे। इन अधिकारियों के कार्य इस प्रकार थे।
- भूमि सर्वेक्षण एवं मूल्याकन
- दौरा एवं निरीक्षण

- राजस्व जमा करना
- कानून और व्यवस्था को बनाये रखना इत्यादि

आवश्यकता पड़ने पर राजा इन अधिकारियों से सीधा सम्पर्क भी स्थापित करता था। उदाहरण के लिए चौथे स्तम्भ लेख में अशोक राजक को यह स्वतंत्र अधिकार देता है कि वह जन कल्याण के संबंध में उसके निर्देशों को लागू करे। इसने उन्हें कुछ ऐसे अधिकार दिए जो उनके पास अब तक नहीं थे। युक्त छोटे दर्जे का अधिकारी था जिसका कार्य अन्य दोनों श्रेणियों की सहायता मात्र था।

प्रत्येक श्रेणी के अधिकारियों के प्रभाव पर नियंत्रण और सन्तुलन भी राजा रखता था। अशोक के शिलालेख ग्रामीण स्तरीय प्रशासन पर कोई प्रकाश नहीं डालते। पर उस प्रकार की इकाई की चर्चा अर्थशास्त्र में अवश्य मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस स्तर के अधिकारी स्थानीय लोग ही थे। उन्हें ग्रामिक कहा जाता था। इस तरह की इकाइयों का ढांचा स्थानीय परिस्थितियों पर निर्भर करता होगा। पर हमें गोप और स्थानिक के नाम से अधिकारियों की दो श्रेणियाँ मिलती हैं जो जनपद और गांव के स्तर की प्रशासनिक इकाइयों के बीच मध्यस्थता का काम करती थीं। उनके कार्य थे,

- गांव की सीमा निर्धारित करना
- जमीन के विभिन्न प्रकार के उपयोग का हिसाब करना
- प्रत्येक की आय और व्यय को दर्ज करना
- कर, राजस्व और जमीन का हिसाब रखना

इन अधिकारियों के होते हुए भी, गाँव के स्तर पर प्रशासन चलाने और अपनी समस्याओं सुलझाने के लिए ग्रामवासियों को स्वतंत्रता थी।

यह स्पष्ट है कि मौर्य शासन प्रशासन के सभी स्तरों पर अधिकारियों की एक बड़ी संख्या की नियुक्ति करता था। उस सम्बंध में एक बात विशेष रूप से ध्यान देने की है, कि अधिकारियों को वेतन नकद मिलता था। सेनापति को 48000 पण, सिपाही को 500 पण तथा मजदूर को 60 पण मिलने का हवाला मिलता है इसके कारण राज्य कोष पर बहुत दबाव था। मुद्रा से संचालित अर्थव्यवस्था प्रबल थी। इससे इस बात की पुष्टि अवश्य होती है कि अर्थशास्त्र में राजस्व जमा करने के विविध तरीकों पर — लगान से जुए तक— इतना ध्यान क्यों दिया गया है।

बोध प्रश्न 2

1) निम्न कथनों में से कौन से सही (√) हैं और कौन गलत (×) निशान लगाइए।

   क) मौर्य राज्य में सेना के अनुरक्षण पर बहुत अधिक धन व्यय किया जाता था। ( )

   ख) मौर्यों के पास गुप्तचरी की कोई व्यवस्था नहीं थी। ( )

   ग) इस काल में न्यायालय को भली भाँति चलाने के लिए विशेष नियमों का पालन करना पड़ता था। ( )

   घ) राजा के पास राजस्व में छूट देने का कोई अधिकार नहीं था। ( )

   च) राज्य जन कल्याण पर धन व्यय करता था। ( )

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।

   i) प्रान्तीय प्रशासन का प्रधान .... (कुमार/अगत्य)होता था।

   ii) संगरक्षण में .... (पचास/दस) गांव थे।

   iii) ग्राम के स्तर पर न्यायिक अधिकार .... (प्रदेष्ट/ग्रामिक) के पास थे।

   iv) राज्य द्वारा खानों के नियंत्रण के फलस्वरूप राजस्व में..................... (वृद्धि/कमी) हुई।

3) दस पंक्तियों में मौर्य शासन के राजस्व के स्रोत तथा व्यय की चर्चा कीजिए।

....

....

....

....
....
....
....
....
....
....

4) पाँच पंक्तियों में ग्राम प्रशासन की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

....
....
....
....
....
....

20.6 अन्य राज्यों से सम्बंध

चन्द्रगुप्त के शासन काल से लेकर मौर्य साम्राज्य के विलय तक, मौर्यों के विदेशी संम्बंधों के निश्चित रूप से दो चरण थे।

1) साम्राज्य के विस्तार का चरण
2) अन्य राज्यों से सम्बंधों को मजबूत करने का चरण

अनेक स्रोत मौर्यों के विदेश सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हैं। उदाहरणस्वरूप अशोक के शिलालेखों में भी समकालीन विदेशी शासकों का वर्णन मिलता है।

पहले चरण में, उत्तर तथा उत्तर पश्चिम क्षेत्र से यूनानी ठिकानों को परास्त करने तथा व्यापार के मार्ग हासिल करने की नीति अपनाई गई। इकाई 18 में, चन्द्रगुप्त और सेल्यूकस के बीच मुठभेड़ के विषय में आप पढ़ चुके हैं। इस मुठभेड़ के बाद से ऐसा लगता है, कि मौर्यों को इस सीमा पर किसी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। मध्य भारत के विलय के बाद मौर्यों का दक्षिण पथ पर नियंत्रण हो गया, और साथ ही साथ मौर्य, प्रायद्वीप के अन्दर तक दाखिल हो गए। यह कहा जा सकता है कि विस्तार का पहला चरण खत्म हो गया है। यह स्पष्ट है कि इस चरण में विदेश नीति अत्यन्त आक्रामक थी। युद्ध और दमन के द्वारा ही विरोधी या शत्रु राज्यों को वश में किया जा सका।

साम्राज्य के विस्तार के पश्चात्, मौर्यों ने, न केवल पड़ोसी राज्यों से बल्कि दूर-दूर के देशों से मित्रता के सम्बन्ध मजबूत किए। यह बात ध्यान देने की है कि अन्य देशों से मित्रता के सम्बन्ध भौगोलिक निकटता और कूटनीतिक तथा व्यापारिक आवश्यकता पर आधारित थे।

बिन्दुसार के समय में पश्चिमी देशों से सम्पर्क स्थापित हो चुका था और नियमित रूप से एक दूसरे को संदेश भी भेजे जाते थे। स्ट्रेबो (**Strabo**) के वृतान्त के अनुसार मौर्य दरबार में मेगस्थनीज का उत्तराधिकारी डेमीकोस था। अथेन्यूज के उस वृतान्त से भी मैत्रीपूर्ण सम्बंधों का हवाला मिलता है, जिसमें भारतीय शासक ने अंजीर, मदिरा तथा दार्शनिकों के भेजने का अनुरोध किया। तेरहवें शिलालेख में अशोक ने पाँच शासकों का हवाला दिया है।

- अनितयोक (सीरिया का, अनटियोकस द्वितीय)
- तुरमय (मिस्र का, प्टोलमी द्वितीय)
- एनिकिनी (मेसीडोना का एन्टीगोनस)

- एलिरू सन्ट्ररो (एपीरस का एलेकजेन्डर)
- मक (सायरिन का मगस)

इन शासकों का उल्लेख धम्म विजय के संदर्भ में किया गया है तथा यह भी संकेत मिलता है, कि धम्म का संदेश लेकर उन शासकों के पास दूत भेज गये थे इन धर्मदूतों ने मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाए, क्योंकि शिलालेख में इन क्षेत्रों में धम्म विजय या महान विजय का उल्लेख है। यहाँ पर यह बात भी ध्यान देने की है, कि इस समय तक पश्चिमी देशों से व्यापार नियमित रूप से शुरू हो चुका था तथा जिस प्रकार का आदान-प्रदान हो रहा था उसने सभ्यता और संस्कृति को विशेष रूप से प्रभावित किया। कला तथा वास्तुकला की नवीन शैलियों का भी जन्म हुआ। खंड 6 में इस विषय पर अधिक जानकारी दी जाएगी।

दक्षिण के राज्यों से भी, मौर्यों के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण थे। इन क्षेत्रों में चोल,पांडय केरल पुत्र तथा सत्यपुत्र जैसे स्वतंत्र राज्य थे। अशोक का कोई भी शिलालेख इन क्षेत्रों में अब तक प्राप्त नहीं हुआ है। पर तेरहवें शिलालेख में उन क्षेत्रों में धम्म विजय के विवरण से ही मौर्यों के इन राज्यों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की पुष्टि होती है।

धम्म की नीति के कारण लंका भी एक अन्य पड़ोसी मित्र देश बन गया।

इस प्रकार से अन्य राजाओं के साथ मौर्यो के सम्वन्ध में हम एक विशेष परिवर्तन देखते हैं। विस्तार और दमन की नीति का स्थान मित्रता और नैतिक विजय बिना किसी सैनिक शक्ति के प्रयोग के प्राप्त करने की नीति ने लिया। पर यह परिवर्तन मात्र इसलिए नहीं आया कि मौर्य साम्राज्य बहुत ही विशाल हो गया था। इस परिवर्तन का सम्बंध मुख्य रूप से अशोक की सकारात्मक नीतियों से भी था। अशोक ने धम्म की व्यवहारिकता को सिर्फ अपनी प्रजा तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि इसका विस्तार राज्य नीति से सम्बंधित विषयों तक भी किया। उसने धम्म का प्रयोग समकालीन शक्तियों के साथ सम्बंध बढ़ाने के लिए किया।

बोध प्रश्न 3

1) अन्य राज्यों से मौर्यों के सम्बन्धों के विभिन्न चरणों का उल्लेख करें। उत्तर दस पंक्तियों में दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) तेरहवें शिलालेख में जिन यवन शासकों की चर्चा है, उनके नाम बताइये।

....
....
....
....
....
....

20.7 सारांश

इस इकाई में हमने पढ़ा कि मौर्य प्रशासनिक ढांचा, केन्द्रीय स्तर पर अत्यन्त सुसंगठित था। सभी अधिकार राजा के पास थे, पर मंत्रिपरिषद उसकी सहायता करता था। प्रत्येक अधिकारी के अधिकार और कार्य भली भांति बंटे हुए थे।

अर्थशास्त्र में मंत्रियों की आवश्यक योग्यताओं का भी उल्लेख है। राज्य द्वारा जन सुविधाओं पर ध्यान देना तथा विशेषकर अशोक के शासन काल में राजा का पैतृक रवैया अपना लेना एक अनोखा परिवर्तन था।

राज्य अतिरिक्त उत्पादन पर न केवल विशेष ध्यान देता बल्कि सफलतापूर्वक अधिशेष वसूल करने का भी उचित प्रबन्ध करता था। प्रान्त, जनपद और गाँव के स्तर पर प्रशासनिक इकाइयां इस जिम्मेदारी को सम्भालती थीं। कर व्यवस्था ठीक रूप से नियंत्रित थी। सेना तथा राज्य अधिकारियों के वेतन पर बहुत अधिक धन व्यय किया जाता था। मौर्य प्रशासनिक व्यवस्था पहले से प्रचलित व्यवस्था पर ही आधारित थी, पर अनेक परिवर्तन किए गए जिससे कि साम्राज्य सुदृढ़ हो।

मौर्यों के विदेश सम्बन्धों के दो चरण थे, प्रथम समाज के विस्तार से सम्बंधित तथा दूसरा मित्रता की नीति से प्रभावित था। जब विस्तार अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया तो मौर्यों ने मैत्रीपूर्ण रवैये से सम्बन्ध मजबूत किए।

20.8 शब्दावली

धम्म विजय : इस विचार का प्रतिपादन अशोक द्वारा हुआ। इस विचार के अनुसार ऐसी विजय के सिद्धान्त पर बल दिया गया जो अहिंसा और शान्ति के विचारों के आधार पर प्राप्त की जाए।

अमात्य : मौर्य साम्राज्य के मंत्री।

देवानम पिय : देवताओं का प्रिय। अशोक ने अपने लिये यह उपाधि धारण की।

आन्तवेषिक : यह अधिकारी सम्राट की व्यक्तिगत सुरक्षा का प्रबंध करता था।

20.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) क) √
   ख) ×
   ग) √
   घ) ×
   च) √

2) आपके उत्तर में इस बात का उल्लेख होना चाहिए कि परिषद के क्या अधिकार थे और राजा किस प्रकार उन पर रोक लगाता था। परिषद की भूमिका केवल सलाह देने तक ही सीमित थी और राजा उसकी सलाह मानने को बाध्य नहीं था। उपभाग 20.3.2 देखिए।

3) क) जटिल
   ख) दिव्य, स्थापित
   ग) पाँच, छह
   घ) विस्तार से

4) आपका उत्तर मेगस्थनीज के वृतान्त तथा अर्थशास्त्र से उसकी तुलना पर आधारित होना चाहिए। उपभाग 20.3.3 देखें।

बोध प्रश्न 2

क) √

ख) ×

ग) √

घ) ×

च) √

2) i) कुमार

ii) दस

iii) ग्रमिक

iv) वृद्धि

3) अपना उत्तर उपभाग 20.4.4 पर आधारित करें

4) गांव के प्रशासन के स्वतंत्र पहलू तथा इस स्तर के अधिकारियों के बारे में बताइये। भाग 20.2 देखिए।

बोध प्रश्न 3

1) विस्तार और सम्बन्धों को मजबूत करने के लिए दोनों चरणों की चर्चा कीजिए। उपभाग 20.5.2 देखिए।

2) अपने उत्तर में निम्न शासक सम्मिलित करें

i) सीरिया का अनिटयोकस II

ii) मिस्र का प्टोलिमी II

iii) मेसीडोन का एन्टीगोनस

iv) एपीरस का एलेकजेन्डर

v) सायरिन का मगस

इकाई 21 अशोक की धम्म नीति

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य
21.1 प्रस्तावना
21.2 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
 21.2.1 सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि
 21.2.2 धार्मिक परिस्थितियां
 21.2.3 राज्य व्यवस्था
21.3 अभिलेखों का विस्तार
21.4 धम्म—कारण
21.5 धम्म के तत्व
21.6 अशोक की धम्म नीति और मौर्य राज्य
21.7 धम्म—व्याख्यायें
21.8 सारांश
21.9 शब्दावली
21.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

21.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप सम्राट अशोक द्वारा प्रतिपादित धम्म की नीति के विषय में अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़कर आप:

- यह समझ सकेंगे कि धम्म नीति के प्रतिपादन की ऐसिहासिक पृष्ठिभूमि क्या थी,
- यह जान सकेंगे कि अशोक के अभिलेख में धम्म किस तरह से मुख्य रूप में सामने आता है,
- अशोक की धम्म नीति का सार क्या था जो उसके कल्याण कार्यों तथा पैतृक व्यवहार में दिखाई देता है और उसके स्वयं के वर्णन से परिलक्षित होता है,
- एक व्यक्ति के रूप में, एक बौद्ध मत के अनुयायी के रूप में तथा राज्यगत् नीति का प्रतिपादन करने वाले अशोक के अनेक रूपों में अंतर कर सकेंगे, और
- अपनी धम्म नीति के प्रतिपादन के लिए अशोक द्वारा अपनाए गए विभिन्न साधनों जैसे धम्म महामात्रों की भूमिका की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

21.1 प्रस्तावना

अशोक मौर्य 269 ईसा पूर्व के लगभग मौर्य सिंहासन पर आसीन हुआ। अनेक इतिहासकार उसे प्राचीन विश्व का महानतम् सम्राट मानते हैं। उसकी धम्म नीति विद्वानों के बीच निरंतर चर्चा का विषय रही है। धम्म शब्द संस्कृत के शब्द धर्म का प्राकृत रूप है। धम्म को विभिन्न अर्थों जैसे धर्मपरायणता, नैतिक जीवन, सदाचार आदि के रूप में व्याख्यायित किया गया है।

किन्तु अशोक द्वारा प्रयुक्त धम्म को समझने को लिये सबसे अच्छा तरीका यह है कि उसके अभिलेखों को पढ़ा जाए। यह अभिलेख मुख्य रूप से इसलिये लिखे गये थे कि सारे साम्राज्य में लोगों को धम्म के सिद्धांतों के बारे में समझाया जाये। इसीलिये अधिकांश अभिलेखों में धम्म के विषय में कुछ-कुछ अवश्य कहा गया है। उनमें यह भी कहा गया है कि अशोक यह चाहता था कि उसकी प्रजा धम्म का पालन अवश्य करे और यह भी कि राज्य के कार्यकलाप धम्म के सिद्धांतों के अनुरूप चले। धम्म के सिद्धांतों को सबके लिये सुलभ और बोधगम्य बनाने के लिये उसने अभिलेखों और शिला-लेखों को सारे राज्य में महत्वपूर्ण स्थानों पर लगवाया। धम्म के संदेशवाहकों को साम्राज्य के बाहर भी भेजा। यह स्पष्ट समझ लेना चाहिये कि धम्म से किसी विशेष धार्मिक विश्वास या व्यवहार का तात्पर्य नहीं है, अतः धम्म (या इसके संस्कृत पर्याय धर्म) का अनुवाद धर्म

नहीं मानना चाहिये। साथ ही धम्म मनमाने तौर पर बनाया हुआ शाही सिद्धांत भी नहीं था। धम्म का संबंध मोटे रूप से सामाजिक व्यवहार और क्रियाओं से था। अशोक के धम्म में उस समय के भी प्रचलित विविध सामाजिक नियमों का मिश्रण किया गया था। अशोक ने धम्म का क्यों और कैसे प्रवर्तन किया और इससे उसका क्या तात्पर्य था, यह जानने के लिए उस समय की विशेषताओं को समझना होगा और बौद्ध, ब्राह्मण और अन्य ग्रन्थों को समझना होगा जिनमें सामाजिक व्यवहार के नियमों का वर्णन है।

21.2 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

धम्म नीति के विभिन्न पक्षों तथा इसके प्रतिपादन के कारणों को समझने के लिए हमें आवश्यक रूप से उस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करना होगा जिसके कारण अशोक को यह नीति अस्तित्व में लानी पड़ी। अगले तीन भागों में हम ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की चर्चा करेंगे।

21.2.1 सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि

जैसा कि कहा जा चुका है कि मौर्य काल में समाज के आर्थिक ढांचे में काफी परिवर्तन आए। लोहे के प्रयोग से अतिरिक्त उत्पादन की प्रक्रिया आरम्भ हुई। इस प्रकार सरल ग्रामीण अर्थव्यवस्था से एक ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें शहरों तथा नगरों की महत्वपूर्ण भूमिका थी की ओर संक्रमण हुआ। यह सामान्य रूप से कहा जाता है कि उत्तरी काली पॉलिश किए मृद्‌भांड इस युग की भौतिक सम्पन्नता का प्रतीक है। पंच मार्कड चांदी के सिक्के, तथा अन्य प्रकार के सिक्कों का प्रयोग, व्यापार मार्गों को राज्य द्वारा सुरक्षा प्रदान किया जाना तथा शहरी केन्द्रों का उदय अर्थव्यवस्था में ऐसे संरचनात्मक परिवर्तन की ओर संकेत करते हैं जिनके लिए समाज में सामंजस्य की आवश्यकता थी। व्यापारी वर्ग इस समय तक समाज में अपना स्थान बना चुका था। शहरी संस्कृति के उदय के साथ ही समाज के संगठन में लचीलापन अनिवार्य बन गया। कृषि उपयोग में लाए जाने वाले बहिर्वर्ती क्षेत्रों की जन जातियों एवं अन्य लोगों के समाज की मुख्य धारा में विलय से भी समस्याएं खड़ी हुई। चार वर्गों पर आधारित ब्राह्मणीय सामाजिक व्यवस्था को और अधिक कठोर बनाकर व्यापारी वर्ग को वर्णव्यवस्था में उच्च स्तर देना नहीं चाहता था। ब्राह्मण वर्ग की इस कठोरता से सामाजिक विभाजन का संकट और गहरा हो गया। निम्न वर्ग विभिन्न असनातनी सम्प्रदायों की ओर आकृष्ट होने लगे जिसके कारण सामाजिक तनाव उत्पन्न होने लगा। ऐसी ही विषम परिस्थिति में सम्राट अशोक ने 269 ईसा पूर्व में राज्य का दायित्व ग्रहण किया।

21.2.2 धार्मिक परिस्थितियां

उत्तर वैदिक काल के दौरान समाज पर ब्राह्मणों की जो पकड़ मजबूत हुई थी, उसे अब निरंतर आघात पहुंच रहा था। पुजारियों की सुविधाओं, वर्णव्यवस्था की कठोरता तथा व्यापक कर्मकांडों के प्रचलन पर अब प्रश्न उठने लगे थे। चार वर्णों का सबसे निम्न वर्ण नए सम्प्रदाय की ओर आकृष्ट होने लगा। वैश्य जो कि किसी तरह उच्च श्रेणी में सम्मिलित कर लिए गए थे, ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों की तुलना में तुच्छ समझे जाते थे। व्यापारी वर्ग द्वारा ब्राह्मणवाद का विरोध समाज के अन्य संप्रदायों के लिए प्रेरणास्रोत बन रहा था।

बौद्ध मत ब्राह्मणवाद के सनातनी दृष्टिकोण के विरुद्ध विच्छेदकारी संप्रदाय के रूप में आरंभ हुआ। इसके आधारभूत सिद्धांत का बल कष्टों पर था तथा इसने मध्य मार्ग अपनाने पर बल दिया। यह मत नैतिक सिद्धांतों पर आधारित था। बौद्ध मत ने ब्राह्मणों के प्रभुत्व को नकारा और बलि तथा कर्मकाण्डों का विरोध किया। इस प्रकार इस मत ने निम्न वर्गो तथा उदीयमान सामाजिक वर्गों को अपनी ओर आकृष्ट किया। बौद्ध मत द्वारा सामाजिक संबंधों में मानवीय दृष्टिकोण का प्रचार निर्धन वर्गों को अपनी ओर और भी आकृष्ट करने लगा।

21.2.3 राज्य व्यवस्था

आप पढ चुके हैं कि छठी शताब्दी ई.पू. में महाजनपदों के उद्‌भव के साथ भारत के अनेक भागों में राज्य व्यवस्था की शुरुआत हुई। इसका अर्थ यह हुआ कि समाज के एक छोटे से तबके के पास शक्ति का संकेन्द्रण हुआ। इस शक्ति का वे समाज के अन्य तबकों पर अनेक तरीकों तथा कारणों से प्रयोग करते थे। कुछ ऐसे राजतंत्र थे जिनमें राजा सर्वशक्तिमान था तथा ऐसे गणसंघ थे जिनमें शासन का नियंत्रण वंशानुगत क्षत्रियों या कुछ समुदायों के पास था। जिस समय अशोक सिंहासन पर बैठा, दो सौ साल पुरानी राज्य व्यवस्था काफी विस्तृत और जटिल हो चुकी थी। इस व्यवस्था की प्रमुख विशेषतायें निम्न थीं:

- एक क्षेत्र विशेष (मगध) का राजनैतिक प्रभुत्व उस विशाल क्षेत्र पर स्थापित हो चुका था जिसमें पहले कई राज्य, गणसंघ तथा ऐसे भाग थे जहां किसी प्रकार की संगठित राज्य व्यवस्था नहीं थी।
- इस विशाल क्षेत्र में कई प्रकार के भौगोलिक क्षेत्र, सांस्कृतिक क्षेत्र तथा विभिन्न प्रकार के धर्म, विचार और परम्परायें थीं।

राज्य व्यवस्था की जटिलता के कारण सम्राट को ऐसी सृजनात्मक नीति का निर्माण करना जरूरी था जिसके अंतर्गत एक बड़े साम्राज्य, जिसमें अर्थव्यवस्था तथा धर्मों की अनेकरूपता थी, में सैन्य शक्ति के कम से कम प्रयोग की आवश्यकता थी। इस पर नियंत्रण केवल सेना के बल पर नहीं हो सकता था। इसका अत्यंत उपयुक्त विकल्प एक ऐसी नीति का प्रचार एवं प्रसार था जो कि सैद्धांतिक आधार रखती हो तथा समाज के सभी वर्गों पर प्रभाव डाल सकती हो। धम्म नीति इसी दिशा में एक प्रयास था।

21.3 अभिलेखों का विस्तार

अशोक ने धम्म की नीति के प्रसार के लिए शिलालेखों/अभिलेखों का माध्यम अपनाया। इस खंड की इकाई 18 में दिए गए मानचित्र को देखें। मानचित्र में आपको विभिन्न स्थानों पर फैले : अशोक के भिन्न-भिन्न प्रकार के अभिलेख मिलेंगे। जैसे वृहद शिला लेख, लघु शिला, स्तम्भ लेख आदि दिखाई देंगे।

अशोक ने धम्म नीति के बारे में अपने विचार इन स्तम्भों / शिलाओं पर इस आशय से खुदवाए कि विभिन्न स्थानों पर लोग उन्हें पढ़ें। अशोक इस माध्यम से अपनी जनता से सीधा सम्पर्क स्थापित करना चाहता था। यह अभिलेख उसके शासन काल के विभिन्न वर्षों में लिखे गए। इन अभिलेखों में व्यक्त किए गए सिद्धांतों के अध्ययन से अशोक के धम्म के प्रमुख तत्वों के विषय में पता चलता है।

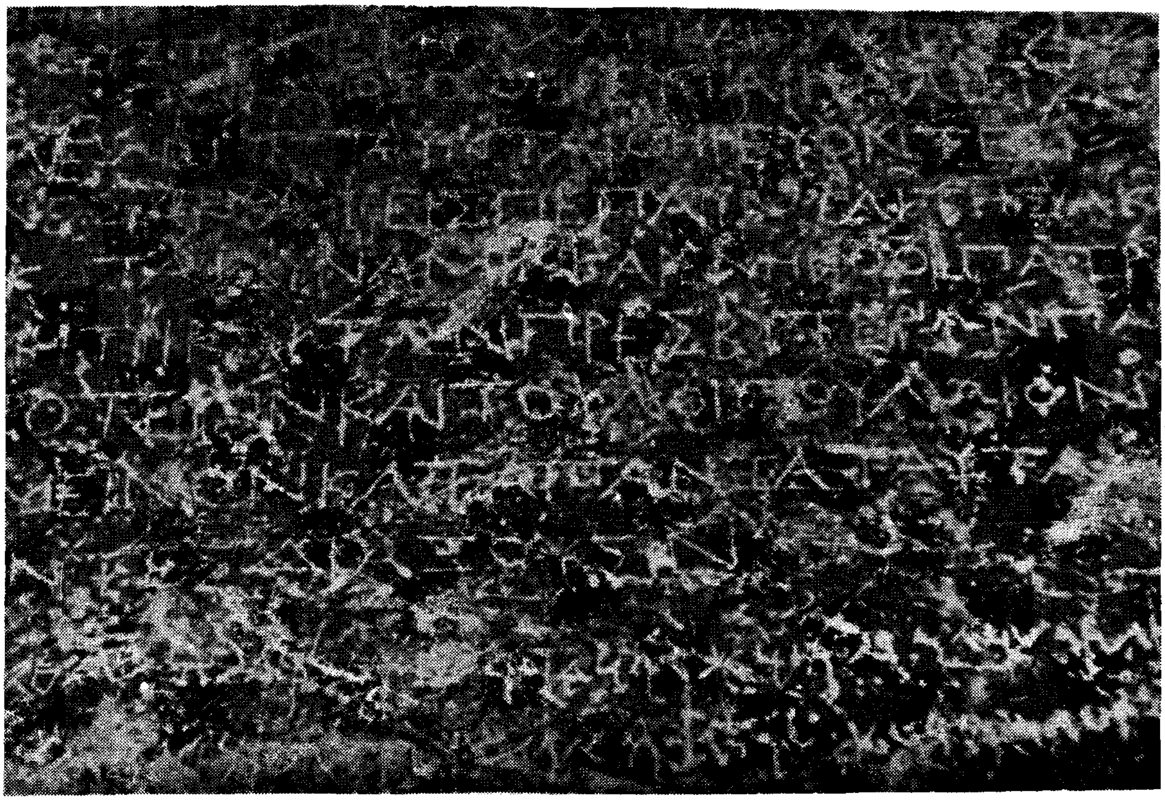

8. कन्धार स्थित अशोक का अभिलेख

अभिलेखों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है। थोड़े से अभिलेखों से यह पता चलता है कि राजा बौद्ध मत का अनुयायी था और ये अभिलेख बौद्ध संप्रदाय अथवा संघों को संबोधित करते हुए लिखे गए थे। इन अभिलेखों में बौद्ध मत से अशोक की व्यक्तिगत सम्बद्धता की घोषणा है। इनमें वह बौद्ध मत में अपनी व्यक्तिगत श्रद्धा अभिव्यक्त करता है। इनमें से एक अभिलेख में वह बौद्ध ग्रन्थों जिनका नाम इन अभिलेखों में दिया गया है की चर्चा करता है और सभी बौद्धों को उनसे परिचित होने का आह्वान करता है।

अभिलेखों की अन्य श्रेणियां वृहद शिला लेख तथा लघु शिला लेख के नाम से जानी जाती है जो कि चट्टानों पर खोदी गई हैं तथा स्तम्भ लेखों के लिए विशेष रूप से स्तम्भ खड़े किए गए थे।

यह सभी ऐसे स्थानों पर स्थापित हैं जहां बड़ी संख्या में लोगों के इकट्ठा होने की संभावना हो सकती थी। अतः जैसा कि कहा जा चुका है, यह लेख जन-साधारण के लिए घोषणा कहे जा सकते हैं। इनमें धम्म नीति की व्याख्या की गई है। हमें अशोक की धम्म नीति जिसमें सामाजिक उत्तरदायित्व की बात कही गई है तथा अशोक की बौद्ध धर्म में व्यक्तिगत आस्था में अंतर करना चाहिए। कुछ समय पूर्व तक इतिहासकारों के बीच अशोक की धम्म नीति तथा बौद्ध मत के अनुयायी के रूप में अशोक को बिना अंतर किए एक ही संदर्भ में रखकर अध्ययन करने की प्रवृत्ति रही है। अभिलेखों के सूक्ष्म अध्ययन से पता चलता है कि एक ओर जहां अशोक बौद्ध मत में अपनी पूरी आस्था रखता था वहीं दूसरी ओर वह धम्म नीति के द्वारा समाज के विभिन्न वर्गों के बीच सामाजिक उत्तरदायित्व तथा सहिष्णुता के महत्व का आदेश भी दे रहा था।

इस इकाई के आगे के भागों में हम इसका अध्ययन करेंगे।

21.4 धम्म—कारण

धम्म नीति की पृष्ठभूमि में निहित कारणों का अध्ययन करने के अंतर्गत हमने इसी इकाई में इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की चर्चा की है। हमने पढ़ा कि धम्म नीति इन समस्याओं के समाधान का एक महत्वपूर्ण प्रयास था, जिनसे इस युग का जटिल समाज जूझ रहा था। यह नीति अशोक के दिमाग की उपज थी तथा समाज के अंतर्गत व्याप्त सामाजिक तनावों के समाधान के प्रति उसका प्रयास था। अशोक के निजी विश्वास तथा साम्राज्य के समक्ष खड़ी समस्याओं के समाधान के विषय में उसके विचार धम्म नीति के प्रतिपादन का कारण बने।

अतः आवश्यक है कि हम उस सामाजिक माहौल को समझें जिसके अंतर्गत अशोक पला, बढ़ा तथा जिसका प्रभाव उसके जीवन के बाद के वर्षों पर दिखाई देता है।

मौर्य राजा उदारवादी दृष्टिकोण रखते थे। चंद्रगुप्त अपने जीवन के उत्तरकाल में जैन मत का अनुयायी हो गया तथा बिंदुसार अजीविका मत में विश्वास रखता था। स्वयं अशोक ने अपने निजी जीवन में बौद्ध मत स्वीकार किया, तथापि उसने अपनी जनता पर बौद्ध मत थोपने का प्रयास कभी नहीं किया। धम्म नीति के तत्वों का अध्ययन करने से पूर्व परिस्थितियों पर नजर डालें जिन्होंने ऐसी नीति को जन्म दिया।

- 269 ईसा पूर्व में जब अशोक राजसिंहासन पर आसीन हुआ तब मौर्य साम्राज्य व्यवस्था जटिल स्वरूप ले चुकी थी। साम्राज्यिक व्यवस्था अपने में विभिन्न संस्कृतियों, विश्वासों और सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्थाओं को आत्मसात कर चुकी थी। अशोक के समक्ष दो ही विकल्प थे। एक ओर यह ढांचे को बल प्रयोग द्वारा स्थिर रख सकता था, जिस पर अत्यधिक व्यय की आवश्यकता थी अथवा दूसरी ओर वह ऐसे नैतिक मूल्य प्रस्तुत करे जो कि सभी को स्वीकार्य हो तथा सभी सामाजिक वर्गों एवं धार्मिक विश्वासों के बीच अपना स्थान बना लें। अशोक ने यह विकल्प धम्म नीति में ढूंढा।
- अशोक उन तनावों से पूरी तरह परिचित था जो जैन, बौद्ध तथा अजीविका जैसे असनातनी सम्प्रदायों के उदय के कारण समाज में आ गये थे। यह सभी किसी न किसी रूप में ब्राह्मणवाद के विरोधी थे और इनके समर्थकों की संख्या बढ़ रही थी। परंतु अब भी ब्राह्मण समाज पर अपना नियंत्रण बनाये हुये थे इन परिस्थितियों में किसी न किसी रूप में वैमनस्य का होना अवश्यंभावी था। ऐसी दशा में परस्पर सौहार्द और विश्वास का वातावरण बनाना आवश्यक था।
- साम्राज्य के कुछ भाग ऐसे भी थे जहां न तो ब्राह्मणवाद का प्रभुत्व था न ही असनातनी सम्प्रदायों का। अशोक स्वयं यवनों के प्रदेश का जिक्र करता है जहां न तो ब्राह्मण और ना ही श्रमण संस्कृति प्रचलन में थी। इसके अतिरिक्त साम्राज्य के कई जन-जातीय या आदिवासी क्षेत्रों में भी ब्राह्मणवाद या असनातनी सम्प्रदायों का प्रभाव नहीं था। इन सारी विभिन्नताओं के बीच साम्राज्य के अस्तित्व और परस्पर सौहार्द को बनाये रखने के लिए समाज की समस्याओं के प्रति एक समरूपी समझ और व्यवहार की आवश्यकता थी।

बोध प्रश्न 1

1) धम्म नीति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की संक्षिप्त चर्चा करें। आपका उत्तर 15 पंक्तियों से अधिक न हों।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) निम्न वक्तव्यों के सामने सही (√) अथवा (×) का चिह्न लगाएं :

1) अशोक ने धम्म नीति के प्रसार के लिए स्तम्भ लेखों/शिलालेखों का माध्यम अपनाया। ( )

2) अशोक धम्म नीति के द्वारा बौद्ध मत का प्रचार करना चाहता था। ( )

3) स्तम्भ लेख विशेष रूप से बनाए गए स्तम्भों पर उत्कीर्ण किए गए थे। ( )

3) धम्म नीति किन सामाजिक तनावों के समाधान की ओर लक्षित थी? पांच पंक्तियों में लिखें।

....

....

....

....

....

21.5 धम्म के तत्व

धम्म के सिद्धांत इस प्रकार से प्रतिपादित किए गए थे कि वे सभी समुदायों और धार्मिक संप्रदाय के व्यक्तियों को स्वीकार्य हो। धम्म को औपचारिक रूप में व्याख्यायित अथवा संरचनाबद्ध नहीं किया गया था। इसमें सहिष्णुता तथा सामान्य आचरण का आदेश दिया गया है। धम्म ने दुहरी सहिष्णुता की बात की है। इसमें जनसामान्य के मध्य आत्मसहिष्णुता तथा विभिन्न विचारों एवं आस्थाओं के बीच सहिष्णुता का आह्वान किया गया है। इसमें दासों एवं नौकरों के प्रति सहानुभूति, बड़ों का आदर, तथा जरूरतमंदों, ब्राह्मण व श्रमण सभी के प्रति उदारता आदि पर भी बल दिया गया है। अशोक ने सभी धार्मिक संप्रदायों के बीच सहिष्णुता का आह्वान किया।

धम्म नीति में अहिंसा पर भी बल दिया गया है। अहिंसा को व्यवहारिक स्वरूप युद्ध एवं विजय अभियान का परित्याग करके दिया जाना था। अहिंसा का पालन पशुओं की हत्या पर नियंत्रण करके भी किया जाता था। अहिंसा का अर्थ पूर्ण अहिंसा नहीं था। अशोक यह समझता था कि अपनी राजनैतिक शक्ति के प्रदर्शन के बिना जंगली आदिम जातियों पर नियंत्रण नहीं रखा जा सकता था।

धम्म नीति में कुछ कल्याणकारी कार्य जैसे — वृक्षारोपण, कुएं खोदना आदि की भी चर्चा की गई है। अशोक ने धर्मानुष्ठानों तथा बलि चढ़ाने को अर्थहीन कहकर उस पर प्रहार किया। धम्म महामात्रा के नाम से कुछ

अधिकारी भी धम्म की नीति के विभिन्न पक्षों को लागू करने तथा उनका प्रचार करने के लिए नियुक्त किए गए। अशोक ने समाज के विभिन्न वर्गों के बीच अपना संदेश पहुंचाने के लिए इन धम्म महामात्रों पर भारी दायित्व डाला। किंतु धीरे-धीरे यह धम्म महामात्र समूह धम्म के पुरोहितों के रूप मे परिवर्तित हो गये। इन्हें अत्यधिक अधिकार प्राप्त थे। फलतः शीघ्र ही यह समूह राजनीति में हस्तक्षेप करने लगा।

धम्म के इन सभी पक्षों को और अधिक स्पष्ट रूप में देखने के लिए हम कुछ निर्देशों की विषय वस्तु के आधार पर देखेंगे कि यह नीति किस प्रकार कालक्रमिक रूप में विकसित हुई।

वृहद् शिलालेख 1

पहले शिलालेख में पशु हत्या तथा उत्सव समारोहों (समाजिक) पर प्रतिबंध लगाया गया था।

वृहद् शिलालेख 2

इसमें समाज कल्याण से संबंधित कुछ कार्य बताए गए हैं जो कि धम्म के कार्यों में निहित हैं। इसमें मनुष्यों एवं पशुओं के लिए चिकित्सा, मार्ग निर्माण, कुआं खोदने तथा वृक्षारोपण का उल्लेख मिलता है!

वृहद् शिलालेख 3

इसके द्वारा ब्राह्मणों तथा श्रवणों के प्रति उदारता को एक विशेष गुण बताया गया है। साथ ही माता-पिता का सम्मान करना, सोच-समझकर धन को खर्च करना और बचाना भी अच्छे गुण कहे गए हैं।

वृहद् शिलालेख 4

इसमें धम्म नीति से संबंधित अत्यंत महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किए गए हैं। इसमें कहा गया है कि धम्म की नीति के द्वारा अनैतिकता तथा ब्राह्मणों एवं श्रमणों के प्रति निरादर की प्रवृत्ति, हिंसा, मित्रों और रिश्तेदारों के साथ अशोभनीय व्यवहार तथा इसी प्रकार के अन्य-गलत कार्यों पर नियंत्रण लगा है। पशु हत्या भी काफी हद तक रोकी जा सकी है।

वृहद् शिलालेख 5

पांचवें शिलालेख में पहली बार अशोक के शासन के दसवें वर्ष में धम्म महामात्रों की नियुक्ति के बारे में चर्चा की गई है। यह विशिष्ट अधिकारी राजा द्वारा सभी संप्रदायों, धर्मों के हितों की रक्षा तथा धम्म नीति को समाज के कोने-कोने में पहुँचाने के लिए नियुक्त किए गए थे। धम्म नीति के क्रियान्वयन का दायित्व इन्हीं पर था।

वृहद् शिलालेख 6

इसमें धम्म महामात्रों के लिए आदेश लिखे गए हैं। उनसे कहा गया है कि वे राजा के समक्ष किसी भी समय सूचनाएं ला सकते हैं, चाहे, राजा किसी महत्वपूर्ण कार्य में व्यस्त क्यों न हो! इस शिलालेख के दूसरे भाग में सजग एवं सक्रिय प्रशासन तथा सुचारू व्यापार का उल्लेख मिलता है।

वृहद् शिलालेख 7

इसमें सभी संप्रदायों के बीच सहिष्णुता का आह्वान है। इस शिलालेख से संकेत मिलता है कि संप्रदायों के बीच काफी तनाव विद्यमान था और संभवतः एक-दूसरे के प्रति विरोध खुलकर प्रकट होता था। यह आह्वान एकता बनाये रखने की विस्तृत नीति का ही एक अंश है।

वृहद् शिलालेख 8

इसमें कहा गया है कि सम्राट द्वारा धम्म यात्राएं आयोजित होंगी। सम्राट की आखेटन गतिविधियां अब त्याग दी गयीं। धम्म यात्राओं ने सम्राट को अपने साम्राज्य के विभिन्न भागों में जनता के विभिन्न वर्गों के सम्पर्क करने का अवसर प्रदान किया।

वृहद् शिलालेख 9

इस शिलालेख में जन्म, बीमारी, विवाह आदि के उपरांत तथा यात्रा के पूर्व होने वाले समारोहों की निंदा की गयी है। पत्नियों तथा माताओं द्वारा समारोह मनाने पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इसके स्थान पर अशोक धम्म पर बल देता है और समारोहों की व्यर्थता की बात कहता है।

बृहद् शिलालेख 10

इसमें ख्याति एवं गौरव की निंदा तथा धम्म नीति की श्रेष्ठता पर विचार प्रकट किए गए हैं।

बृहद् शिलालेख 11

इसमें भी धम्म नीति की व्याख्या की गयी है। इसमें बड़ों का आदर, पशु हत्याएं न करने, तथा मित्रों के प्रति उदारता पर बल दिया गया है।

बृहद् शिलालेख 12

इस शिलालेख में पुनः संप्रदायों के बीच सहिष्णुता का निवेदन किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि राजा विभिन्न संप्रदायों के बीच टकरावों से चिंतित था और सौहार्द बनाये रखने के लिए निवेदन करता है।

बृहद् शिलालेख 13

यह शिलालेख अशोक की धम्म नीति को समझने में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमें युद्ध के स्थान पर धम्म द्वारा विजय प्राप्त करने का आह्वान है। प्रथम शिलालेख से आरंभ होने वाली विचार प्रक्रिया का यह तार्किक चरमबिन्दु है। विजय से संभवतः आशय देश की सीमाओं पर नियंत्रण की अपेक्षा पूरे देश द्वारा धम्म नीति अपनाने के महत्व से है। अशोक के शब्दों में "आठ वर्षों तक तपस्या के उपरांत देवताओं के प्रिय सम्राट पियदासी ने कलिंग पर विजय प्राप्त की। एक लाख पचास हजार लोग निर्वासित हुए, एक लाख हताहत हुए तथा इससे कहीं अधिक संख्या में लोग तबाह हुए। कलिंग विजय के उपरांत देवताओं के प्रिय (राजा पियदासी) ने धम्म का पालन किया, उसी की कामना की और धम्म की शिक्षा दी। देवताओं के प्रिय ने कलिंग विजय के उपरान्त बहुत पछतावा किया क्योंकि किसी स्वतंत्र देश पर जब विजय प्राप्त की जाती है तो उसमें होने वाली हत्याएं, मृत्यु तथा जन निर्वासन देवताओं के प्रिय को अत्यधिक पीड़ा पहुँचाते हैं और उसके मस्तिष्क पर बोझ बने रहते हैं। देवताओं के प्रिय के लिए और भी अधिक कष्ट वहां के निवासियों को देखकर होता है चाहे वे ब्राह्मण हों, श्रमण हों अथवा किसी अन्य संप्रदाय के हों अथवा गृहस्वामी हो जो स्वयं से श्रेष्ठ लोगों, माता-पिता तथा गुरु के प्रति आज्ञाकारी होते हैं, मित्रों, परिचितों, संबंधियों दासों तथा नौकरों के साथ अच्छा व्यवहार करते हैं तथा अहिंसा, हत्या तथा अपने प्रियों से अलगाव के कष्ट झेलते हैं। वे भी जो सौभाग्यवश बच गए तथा वे जिनके अंदर प्रेम की भावना (युद्ध की बर्बरता के प्रभाव से) कम नहीं हुई है, अपने मित्रों, परिचितों, साथियों तथा संबंधियों के दुर्भाग्य के भागीदार बनते हैं। सभी मानवों के कष्ट में यह भागीदारी देवताओं के प्रिय के मस्तिष्क पर बोझ बनती है। यूनानियों के देश के अतिरिक्त कोई ऐसा स्थान नहीं है जहां ब्राह्मणों तथा श्रमणों की धर्मव्यवस्था विद्यमान न हो तथा ऐसा कोई स्थान नहीं है जहां लोग किसी न किसी संप्रदाय के अनुयायी न हों। आज यदि कलिंग विजय की प्रतिक्रिया में हताहत, मृत अथवा निर्वासित लोगों की संख्या का सौंवा अथवा हजारवां भाग भी उसी प्रकार के कष्टों का सामना करता है तो यह देवताओं के प्रिय के मस्तिष्क पर बोझ बनेगा। ....धम्म का यह अभिलेख इस पर खोदा गया है कि मेरे कोई पुत्र अथवा प्रपौत्र नई विजयें प्राप्त करने की न सोचें तथा जो विजय उन्हें प्राप्त हों उनसे धैर्य तथा हल्के-फुल्के दंड के साथ संतुष्ट हो जाए। वे धम्म द्वारा विजयी होने को ही वास्तविक विजय समझें तथा धम्म में प्रसन्नता ही उनके लिए परम प्रसन्नता हो क्योंकि धम्म इस संसार में तथा इसके उपरांत दोनों ही स्थान के लिए मूल्यवान है।

यह अशोक के युद्ध के विरुद्ध विचार हैं। इनमें युद्ध की त्रासदी का विस्तृत वर्णन किया गया है और इससे संकेत मिलता है कि वह युद्ध का विरोधी क्यों बन गया? प्राचीन युग की यह अनोखी घटना है क्योंकि उस समय कोई ऐसा शासक नहीं था जो युद्ध का विरोध कर सका हो। इस युद्ध के बांद अशोक ने धम्म नीति अपनायी।

21.6 अशोक की धम्म नीति और मौर्य राज्य

अशोक की धम्म नीति केवल गूढ़ वाक्यों पर ही समाप्त नहीं होती थी। उसने इसे राज्यगत नीति के रूप में अपनाने का भरसक प्रयास भी किया। उसने घोषणा की "सभी जन मेरे बच्चे हैं" तथा "मैं जो भी कार्य करता हूँ वह केवल उस ऋण को उतारने का प्रयास है तो सभी जीवों का मुझ पर है"। यह सर्वथा नया तथा शासन व्यवस्था का उत्साहवर्धक आदर्श था। अर्थशास्त्र के अनुसार राजा पर किसी का ऋण नहीं होता। उसका एकमात्र कार्य राज्य पर सक्षम शासन करना है।

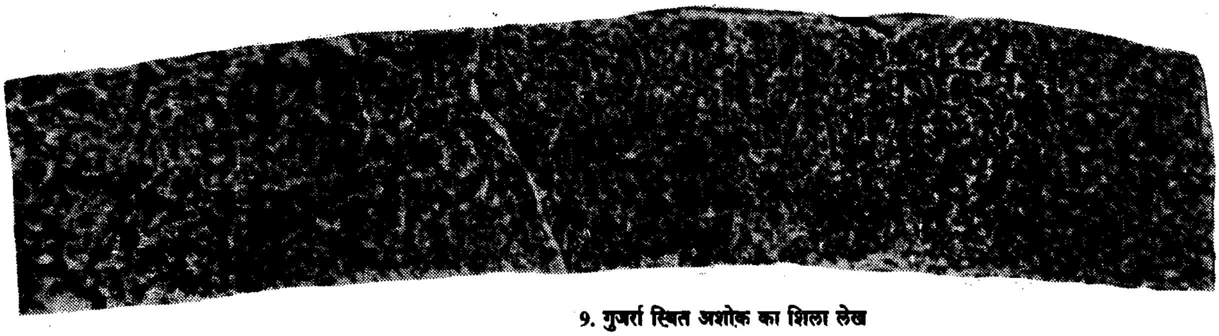

9. गुजर्रा स्थित अशोक का शिला लेख

अशोक ने युद्ध तथा हिंसात्मक विजयों की निंदा की तथा पशुओं की अधिक हत्या पर प्रतिबंध लगा दिया। स्वयं अशोक ने राजपरिवार में मांस खाने की परंपरा लगभग समाप्त करके शाकाहार का उदाहरण प्रस्तुत किया। चूंकि वह, प्रेम एवं विश्वास द्वारा विश्व विजय प्राप्त करना चाहता था, इसलिए उसने धम्म के प्रचार के लिए दल भेजे। इस प्रकार के दल मिश्र, यूनान, श्रीलंका आदि दूरस्थ स्थानों पर भेजे गए। धम्म के प्रचार में जन-कल्याण के कई कार्य सम्मिलित थे। मनुष्यों एवं पशुओं के लिए चिकित्सालय साम्राज्य के अंदर तथा साम्राज्य के बाहर दोनों ही स्थानों पर बनाए गए। छायादार कुंज, कुएं, फल के बगीचे, विश्रामगृह आदि बनाए गए। इस प्रकार के कल्याणकारी कार्य अर्थशास्त्र में वर्णित राजाओं की तुलना में, जो कि अधिक राजस्व प्राप्त करने की संभावना के बिना एक पैसा भी खर्च नहीं करते थे, मूल रूप से भिन्न मार्ग थे। अशोक ने व्यर्थ बलि चढ़ाने की परंपरा तथा ऐसे समारोह जिनके कारण व्यय, अनुशासनहीनता तथा अंधविश्वास पैदा होता था, पर प्रतिबंध लगा दिया। इन नीतियों के कार्यान्वयन के लिए उसने धम्म महामात्रों की नियुक्तियां की। इन धम्म महामात्रों का एक कार्य यह भी था कि वे इसका ध्यान रखें कि सभी संप्रदाय के लोगों के साथ उचित व्यवहार हो रहा है। उन्हें बन्दियों के कल्याण के प्रति विशिष्ट दायित्व सौंपा गया था। बहुत सारे बंदी जो कि कारावास की अवधि समाप्त होने के पश्चात् बेड़ियों में रखें गए थे, उन्हें मुक्त करने का आदेश था। मृत्यु दंड प्राप्त बन्दियों को तीन दिन का जीवनदान दिए जाने का आदेश था। स्वयं अशोक ने धम्म यात्राएं आरंभ की। वह तथा उसके साथ के उच्च अधिकारी धम्म के प्रचार तथा जनता के साथ सीधा संपर्क बनाने के लिए देश भ्रमण पर निकले। अपनी इसी नीति के कारण अशोक को कर्न (**Kern**) जैसे आधुनिक लेखक ने राजा की पोशाक में भिक्षु कहा है।

21.7 धम्म—व्याख्यायें

अशोक की धम्म की नीति विद्वानों के बीच वाद-विवाद का विषय रही है। कुछ विद्वानों के अनुसार अशोक बौद्ध मत पक्षपाती था। वे उसकी धम्म नीति और बौद्ध मत को एकरूपी मानते हैं।

ऐसा भी विचार व्यक्त किया गया है कि अशोक मौलिक बौद्ध विचारों को धम्म के रूप में परिभाषित कर रहा था तथा बाद में कुछ नये धार्मिक तत्वों के साथ इन्हें बौद्ध मत का रूप दे दिया गया। इस प्रकार के विचारों का आधार बौद्ध वृतांत है। ऐसा विश्वास है कि कलिंग युद्ध एक ऐसा नाटकीय मोड़ था जिसने युद्ध में मृत्यु एवं विनाश के लिए पछतावे के कारण अशोक को भारत तथा विदेशों में बौद्ध मत का अनुयायी बना दिया। बौद्ध वृतांतों में भी अशोक को भारत तथा विदेशों में बौद्ध मत के प्रचार का श्रेय दिया गया है। अशोक के विरुद्ध पक्षपात का आरोप लगाना ठीक नहीं है। इस बात के दो अत्यंत महत्वपूर्ण प्रमाण हैं कि अशोक ने राजा के रूप में, बौद्ध धर्म के प्रति अन्य धर्मों की तुलना में पक्षपात नहीं किया।

1) अशोक द्वारा धम्म महामात्रों का एक विभाग बनाना इस तथ्य को पूर्णतः प्रमाणित करता है कि अशोक किसी धर्म विशेष का पक्षपाती नहीं था। यदि ऐसा होता तो इस विभाग की आवश्यकता ही न पड़ती क्योंकि वह धम्म के प्रचार के लिए संघों के संगठन का उपयोग कर सकता था।

2) शिला-लेखों के ध्यानपूर्वक अध्ययन से पता चलता है कि अशोक सभी धार्मिक संप्रदायों के बीच सहिष्णुता एवं आदर का भाव फैलाना चाहता था तथा धम्म महामात्रों का दायित्व था कि वे ब्राह्मणों एवं श्रमणों के लिए कार्य करें।

इन दो बातों से पता चलता है कि धम्म की नीति अधर्म का प्रचार नहीं थी अपितु विभिन्न धार्मिक स्रोतों से ग्रहण किए गए विश्वासों की एक पूरी व्यवस्था है।

इतिहासकारों के बीच अशोक धम्म के प्रचार के परिणामों पर भी चर्चा होती रही है। कुछ इतिहासकारों का विचार है कि अशोक द्वारा बलि चढ़ाने पर प्रतिबंध लगाने तथा बौद्ध मत का पक्षपात करने से ब्राह्मणों में विपरीत प्रतिक्रिया हुई। परिणामतः मौर्य साम्राज्य के पतन का मार्ग प्रशस्त हुआ। अन्य इतिहासकार मानते हैं कि युद्धों पर रोक तथा अहिंसा पर बल देने के कारण साम्राज्य की सैन्य शक्ति दुर्बल हो गयी। परिणामतः अशोक की मृत्यु के बाद मौर्य साम्राज्य का पतन हो गया।

रोमिला थापर ने स्पष्ट किया है कि अशोक की धम्म की नीति न केवल मूलभूत मानवीयता की अद्‌भुत दस्तावेज है बल्कि उस समय की सामाजिक-राजनैतिक आवश्यकताओं का उपयुक्त समाधान भी प्रस्तुत करती है। यह ब्राह्मण विरोध नीति नहीं थी जिसका प्रमाण यह है कि सभी धम्म अभिलेखों में ब्राह्मण तथा श्रमणों के प्रति आदर का भाव अनिवार्य रूप से उल्लेखित हैं। अहिंसा पर उसके बल देने का तात्पर्य यह नहीं था कि उसने राज्य की सुरक्षा की आवश्यकताओं के प्रति आंखें मूंद ली थीं। फलतः वह आदिवासी समूहों को चेतावनी भी देता है कि यद्यपि वह बल प्रयोग से घृणा करता है परंतु यदि वे समस्याएं उत्पन्न करना बंद नहीं करते हैं तो शक्ति का प्रयोग करने पर बाध्य होना पड़ेगा। अशोक ने जब युद्ध करना बंद किया तब तक पूरा भारतीय उप-महाद्वीप उसके नियंत्रण में था। दक्षिण में वह चोल तथा पांड्य आदि जन-जातियों से मित्रता बनाए हुए था। श्रीलंका उसका प्रशंसक तथा सहयोगी था। अतः अशोक ने युद्ध का विरोध उसी समय किया जबकि उसका साम्राज्य अपनी प्राकृतिक सीमाओं को छू चुका था। जातीय विविधता एवं धार्मिक विभिन्नता तथा वर्गीय आधार पर विभाजित समाज में सहिष्णुता का आह्वान बुद्धिमत्ता का कार्य था। अशोक का साम्राज्य विविध समूहों का एक समग्रीकृत रूप था। इस साम्राज्य में किसान, खानाबदोश, चरवाहे, आखेट जीवी तथा यूनानी कम्बोज, भोज एवं अनेक प्रकार की परम्पराओं के अनुयायी सैकड़ों समूह थे। ऐसी परिस्थिति में सहिष्णुता की बात करना युग की आवश्यकता थी। अशोक ने संकीर्ण सांस्कृतिक परम्परा के स्थान पर व्यापक नैतिक सिद्धांतों की स्थापना करनी चाही। अशोक की धम्म की नीति उसकी मृत्यु के बाद आगे न चल सकी। वैसे भी यह नीति सफल नहीं रही थी फिर भी हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अशोक किसी नये धर्म की स्थापना नहीं कर रहा था। वह केवल समाज के अन्दर मानवतावादी और नैतिक सिद्धांतों की स्थापना करना चाहता था। मोटे तौर पर यह मानवतावादी सिद्धांत भारतीय परंपरा का अंग बन चुके हैं।

बोध प्रश्न 2

1) अशोक की धम्म नीति के सिद्धांत लगभग दस पंक्तियों में लिखिए :

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) दिए गए मानचित्र में निम्न शिला-लेखों के स्थल दिखाइए :

i) ब्रह्मगिरि ii) धौली iii) गिरनार
iv) कल्सी v) गुजर्रा vi) इलाहाबाद

3) धम्म की नीति समझने में तेरहवें शिला-लेख का क्या महत्व है? दस पंक्तियों में लिखिये।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

4) निम्न वक्तव्यों में कौन से सही (√) हैं और कौन से गलत (×)?

   i) पांचवे शिलालेख ने धम्म महामात्रों की संस्था के प्रारंभ होने की सूचना दी। ( )

   ii) धम्म नीति का उद्देश्य नए धर्म की स्थापना करना था। ( )

   iii) धम्म ने पूर्ण अहिंसा का आदेश दिया। ( )

21.8 सारांश

धम्म की नीति के विषय में हमारी जानकारी के स्रोत अशोक के अभिलेख हैं। अशोक ने अपनी धम्म की नीति के अंतर्गत अहिंसा, सहिष्णुता, तथा सामाजिक दायित्व का उपदेश दिया। उसने इन सिद्धान्तों का पालन अपनी प्रशासनिक नीति में भी किया। धम्म एवं बौद्ध मत को एकरूपी नहीं मानना चाहिए। धम्म विभिन्न धार्मिक परम्पराओं से लिए गए सिद्धांतों का मिश्रण था। इसका क्रियान्वयन साम्राज्य को एकसूत्र में बांधने के उद्देश्य से किया गया था।

21.9 शब्दावली

व्यापारी वर्ग : उत्पादन प्रक्रिया से जुड़े लोगों से भिन्न समाज का वह वर्ग जो व्यापार तथा विनिमय की गतिविधियों से जुड़ा था।

धम्म यात्राएं : अशोक के पूर्वज शिकार और आनंद मनाने के लिए विहार यात्राएं करते थे। बोध गया से लौटने के बाद अशोक ने विहार यात्राएं बंद करके धम्म यात्रा आरम्भ की क्योंकि इन धम्म यात्राओं में उसे धम्म का प्रवचन करने और प्रजा के विभिन्न वर्गों से सीधा सम्बंध स्थापित करने का अवसर मिलता था।

उदारवादी : जो विभिन्न विचारों और दर्शनों को मुक्त रूप से अपनाता हो।

अनुसम्पन : वृहद् शिलालेख 3 में अनुसम्पन (निरीक्षण यात्राओं) का वर्णन है जिनमें कुछ श्रेणियों के राज्य कर्मचारी पांच-पांच वर्ष पर निकलते थे और जिनमें धम्म का प्रवर्तन और सरकारी काम-काज किया जाता था।

21.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 21.2 और उपभाग 21.2.1 से 21.2.3 देखें। आपके उत्तर में नयी सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों का वर्णन होना चाहिये जिनके कारण राज्यों को एक नया नैतिक सिद्धांत अपनाना पड़ा।

2) i) √ ii) × iii) √

3) भाग 21.4 देखें। आपके उत्तर में उन विभिन्न सामाजिक शक्तियों का वर्णन होना चाहिये जिन्हें एक साम्राज्य मिलाकर रखता है।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 21.5 देखें।

2) भाग 21.5 देखें। अपने उत्तर में यह बताइये कि इस शिलालेख से कैसे अशोक की विचारधारा की पराकाष्ठा के बारे में जाना जा सकता है।

3) i) √ ii) × iii) ×

इकाई 22 साम्राज्य का विघटन

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य
22.1 प्रस्तावना
22.2 अशोक के उत्तराधिकारी
22.3 विघटन के अन्य राजनीतिक कारण
22.4 अशोक और उसकी नीतियां
22.5 आर्थिक समस्याएं
22.6 स्थानीय राजनीति का विकास
22.6.1 बड़े राज्य
22.6.2 स्थानीय राज्य
22.7 सारांश
22.8 शब्दावली
22.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

22.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को जान सकेंगे:

- साम्राज्य के विघटन के लिए अशोक के उत्तराधिकारियों का उत्तरदायित्व कहां तक था,
- किस प्रकार अन्य राजनीतिक कारण साम्राज्य को कमजोर करने के लिए उत्तरदायी थे,
- किस प्रकार अशोक की नीतियां साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी ठहराई जा सकती हैं,
- आर्थिक समस्याएं जिनका सामना मौर्य साम्राज्य ने किया, और
- मौर्य शासन के पतन के साथ-साथ उत्तरी एवं दक्षिणी भारत में स्थानीय राजनीति का उदय।

22.1 प्रस्तावना

मौर्य शासन भारत में साम्राज्यवादी सरकार की दिशा में प्रथम प्रयोग था। चन्द्रगुप्त मौर्य, बिन्दुसार और अशोक बहुत से जनपदों या राज्यों पर साम्राज्यवादी प्रभुत्व स्थापित करने में सफल हुए थे तथा वे काफी बड़े भू-भाग पर नवीन प्रकार की शासन प्रणाली को लागू करने में सक्षम हुए थे। लेकिन 232 ई.पू. में अशोक की मृत्यु के साथ मौर्यों का साम्राज्यवादी प्रभुत्व कमजोर पड़ने लगा और 180 ई.पू. में यह समाप्त हो गया। मौर्य साम्राज्य का विघटन क्यों हुआ, इस प्रश्न का उत्तर बड़ा ही उलझन भरा है और किसी एक कारक को इसके ह्रास के लिए पूर्णतः उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। मौर्य साम्राज्य के विघटन के लिए एक से अधिक कारण उत्तरदायी थे। इस इकाई में सर्वप्रथम हमने मौर्य साम्राज्य के विघटन में अशोक के उत्तराधिकारियों के उत्तरदायित्व की समीक्षा की है। इसके बाद, हमने अशोक की नीतियों, मौर्य राज्य की आर्थिक समस्याओं और मौर्य प्रशासन के ह्रास की समीक्षा की है। अन्त में, मौर्य साम्राज्य के विघटन की प्रक्रिया में स्थानीय राजनीति के विकास की भूमिका का भी उल्लेख किया है।

22.2 अशोक के उत्तराधिकारी

सामान्यतः यह विश्वास किया जाता है कि अशोक की मृत्यु 232 ई.पू. में हुई। फिर भी, अशोक की मृत्यु की आधी सदी के बाद तक मौर्य शासकों का शासन चलता रहा। अशोक के उत्तराधिकारियों के विषय में पुराणों, अबदान और जैन ग्रंथों में अलग-अलग वर्णन मिलता है। इन सभी वर्णनों पर संदेह इसलिए होता है क्योंकि इन सभी स्रोतों में विभाजित साम्राज्य की परिस्थितियों का वर्णन किया हुआ है। ऐसा कहा जाता है

कि अशोक की मृत्यु के बाद साम्राज्य का विभाजन उसके जीवित पुत्रों के बीच कर दिया गया था। अशोक के उत्तराधिकारियों के विषय में जो वर्णन दिया हुआ है, उसके अनुसार उनमें कुछ के नाम इस प्रकार हैं— कुणाल, दशरथ, समप्रति, सलिशुका, देवबर्मन, सतधनवान, ब्रिहद्रथ। परन्तु उनके शासनकाल का ठीक से निर्धारण करना कठिन काम है। लेकिन एक बात स्पष्ट है कि अशोक के बाद साम्राज्य विभाजित हो गया था और उनके शासक अल्पावधि के लिए उत्तराधिकारी बने। जल्दी-जल्दी शासकों में परिवर्तन होने के कारण प्रशासन पर साम्राज्यवादी नियंत्रण कमजोर पड़ने लगा। प्रारंभिक तीन सम्राटों—चन्द्रगुप्त मौर्य, बिन्दुसार एवं अशोक ने प्रशासन को इस ढंग से संगठित किया था कि उस पर लगातार कठोर नियंत्रण बनाए रखने की आवश्यकता थी। राजाओं में जल्दी-जल्दी परिवर्तन होने के कारण कोई भी ऐसा शासक नहीं हुआ जो साम्राज्य के सम्मुख उभरती समस्याओं का हल कर पाता और प्रशासन पर नियंत्रण बनाए रखता। इसको इस तथ्य के साथ भी जोड़ा जा सकता है कि वंशीय साम्राज्य शासकों की व्यक्तिगत योग्यता पर निर्भर करते हैं। लेकिन अशोक के उत्तराधिकारी अपनी योग्यता को सिद्ध करने में असफल रहे। उनमें से प्रत्येक ने बहुत थोड़े समय के लिए शासन किया, जिसके कारण न वे शासन करने की नई नीतियों का निर्धारण कर सके और न पुरानी नीतियों को बरकरार ही रख सके।

हालांकि इन राजाओं के शासन काल की विस्तृत जानकारियों को प्राप्त करना मुश्किल है, फिर भी अशोक के बाद के काल का हमें एक ऐसा चित्र प्राप्त होता है जिसमें भारत में राजनीतिक स्थिरता और यहां तक कि एक राजनीतिक केन्द्र को प्राप्त करना असंभव था। यह कहा जा सकता है कि इन उत्तराधिकारियों ने राजनीतिक रूप से साम्राज्य को कमजोर किया जिसके कारण इस पर वे प्रशासनिक, आर्थिक और सैनिक नियंत्रण खो बैठे। साम्राज्य का विभाजन इस बात का स्पष्ट साक्ष्य है कि विघटन की प्रक्रिया का प्रारंभ अशोक की मृत्यु के तुरन्त बाद ही प्रारंभ हो गया था।

22.3 विघटन के अन्य राजनीतिक कारण

अशोक की मृत्यु के पश्चात् प्रशासनिक प्रणाली में जो अव्यवस्था उत्पन्न हुई, उसको मौर्य साम्राज्य के विघटन के लिए उत्तरदायी महत्वपूर्ण कारणों में से एक कारण बताया गया है। अशोक के उत्तराधिकारियों के सम्मुख तत्कालीन समस्या यह थी कि अशोक की धम्म नीति और सरकार में उसकी सर्वोच्चता को जारी रखा जाए या नहीं। यह सरकार को संचालित करने का एक गैर-परम्परावादी तरीका था और इस प्रकार से सरकार की कार्य-प्रणाली को चलाना भी कोई सरल कार्य न था। अशोक इसलिए सफल हुए थे क्योंकि समाज की जटिल सामाजिक समस्याओं को समझने की उसके पास एक अनोखी कल्पना शक्ति थी और उसने धम्म के सिद्धान्त के महत्व को बहुमुखी आयामों के रूप में स्वीकार किया था। यह स्पष्ट नहीं है कि अशोक के आग्रहों के बावजूद उसके उत्तराधिकारियों ने क्या धम्म को उतनी ही महत्ता दी, जितनी की अशोक ने दी।

धम्म के राजनीतिक महत्व से संबंधित एक अन्य विशेषता यह भी थी कि एक बड़ी संख्या उन राज्य अधिकारियों के अस्तित्व की थी जिनको धम्म महामात्र कहा जाता था। कुछ विद्वानों का ऐसा मानना है कि अशोक के शासन के उत्तरार्ध में ये अधिकारी बड़े शक्तिशाली एवं दमनात्मक हो गए। अशोक ने स्वयं महामात्रों के नाम प्रथम अलग शिलालेख में, जो धौली और जौगद में स्थित हैं, निर्देश दिया कि उनको दमनात्मक नहीं बल्कि न्यायशील एवं मानवीय होना चाहिए। फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं है कि अशोक का प्रशासन पर कड़ा नियंत्रण था, लेकिन यह बाद के राजाओं के विषय में नहीं कहा जा सकता।

यह कोई सरल कार्य नहीं था कि धम्म महामात्रों के साथ सीधा-सम्पर्क रखते हुए यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे अपने अधिकारों का दुरुपयोग नहीं करेंगे बल्कि सम्पूर्ण मौर्यकालीन नौकरशाही को नियंत्रित करना जोखिम में था। मौर्य राज्य का ऐसा चरित्र था कि उसके लिए एक कठोर योग्यताओं वाले राजा की आवश्यकता थी। यह एक केंद्रीकृत व्यवस्था थी तथा जिसके लिए यह आवश्यक था कि राज्य के कर्मचारियों के साथ राजा का सीधा-सीधा सम्पर्क हो। इन कर्मचारियों के, जिसका केन्द्र-बिन्दु राजा था, सत्ता से जुड़े होने के कारण अगर कोई कमजोर राजा होता था तो सम्पूर्ण प्रशासन स्वभाविक रूप से कमजोर हो जाता। जैसे ही केन्द्र कमजोर पड़ा, उसी के साथ प्रांतों ने भी अलग होना प्रारम्भ कर दिया।

अधिकारियों को राजा स्वयं नियुक्त करता था तथा उनकी वफादारी केवल उसके प्रति होती थी। जैसे ही कमजोर राजाओं ने सत्ता संभाली और उन्होंने थोड़े-थोड़े समय के लिए प्रशासन किया उससे अधिकारियों की संख्या में लगातार बहुत अधिक वृद्धि होने लगी और इन अधिकारियों की अपने राजाओं के प्रति वफादारी थी न कि राज्य के प्रति। व्यक्तिगत वफादारी के सिद्धांत से यह खतरा था कि अधिकारीगण ताकत के आधार पर राजा का समर्थन करते थे या फिर उसका विरोध बाद के मौर्य राजाओं को लगातार इस स्थिति का सामना करना पड़ा। वास्तव में, स्थानीय शासकों और राजकुमारों को इन परम्परागत संबंधों के कारण

समर्थन मिला और आसानी से सत्ता के महत्वपूर्ण केन्द्र बन गए। इस प्रकार बाद के मौर्य शासकों के अधीन प्रांतीय सरकारों ने केन्द्र के प्रभुत्व पर प्रश्न चिह्न लगाना प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि कोई भी इस अवधारणा को स्वीकार नहीं कर सकता कि मौर्य राज्य के नियंत्रण को समाप्त करने के लिए कोई जन विद्रोह हुआ, परन्तु यह बात मज़बूती के साथ कही जा सकती है कि मौर्य नौकरशाही का सामाजिक आधार काफी दबाव एवं तनाव में था जिसकी परिणति एक असक्षम प्रशासन के रूप में हुई, जो सामान्यतः सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने में असफल रहा। इसी के साथ-साथ प्रारंभिक तीन मौर्य सम्राटों ने भ्रष्ट अधिकारियों के विरुद्ध सूचना प्राप्त करने के लिए एक जटिल गुप्तचर व्यवस्था का संचालन सफलतापूर्वक किया परन्तु बाद के मौर्य राजाओं के शासन काल मे यह व्यवस्था धराशायी हो गई। इस प्रकार, राजाओं के पास ऐसा कोई विकल्प नहीं था जिससे कि साम्राज्य की आम जनता के विचारों का अनुमान लगाया जा सके या भ्रष्ट अधिकारियों पर नियंत्रण किया जा सके क्योंकि केंद्रीत सत्ता में कमजोर शासकों के आने पर इस प्रकार की गतिविधियां स्वाभाविक थीं। मौर्य राजाओं ने सचेत रूप से सेना के नियंत्रण को कमजोर किया और इसको कुछ विद्वानों ने मौर्य साम्राज्य के पतन का एक प्रमुख राजनीतिक कारण बताया है। यह माना जाता है कि अशोक ने इस विषय में सचेत रूप से निर्णय लिया और हम इसके संदर्भ में आगे वर्णन करेंगे। इस स्थिति में हमारे लिए मुख्य रूप से इस बयान पर बल देना आवश्यक है कि मगध साम्राज्य के पतन का संतोषप्रद उत्तर इन बयानों के आधार पर नहीं दिया जा सकता कि उत्तराधिकारी कमजोर थे या सेना निष्क्रिय हो गई थी या जन-विद्रोह हुए। वास्तव में इनमें से प्रत्येक एक विशेष स्वरूप वाली मौर्य साम्राज्य की नौकरशाही प्रणाली से जुड़ा था और जब इसमें टूटन प्रारम्भ हुई तो सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था संकट में पड़ गई।

बोध प्रश्न 1

अपने उत्तर लिखने के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए

1) निम्नलिखित कथनों पर सही (√) या गलत (×) का निशान लगाइए :

   क) शासकों मे जल्दी-जल्दी परिवर्तन ने साम्राज्य के केन्द्र को कमजोर किया। ( )

   ख) मौर्य राज्य विकेंद्रीकृत था इसलिए उस पर नियंत्रण करना सरल था। ( )

   ग) मौर्य अधिकारियों का चयन राजाओं के प्रति उनकी व्यक्तिगत वफादारी के आधार पर किया जाता था। ( )

   घ) जन-विद्रोहों के कारण मौर्य राज्य का केन्द्र ध्वस्त हो गया। ( )

2) अशोक के उत्तराधिकारियों ने किन तत्कालीन प्रशासनिक समस्याओं का सामना किया? अपना उत्तर तीन या चार पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

3) आपके मत में मौर्यों की प्रशासनिक व्यवस्था की समस्या का मूल क्या था, जिसके कारण बाद के राजाओं के शासन काल में यह विघटित हो गया? 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

22.4 अशोक और उसकी नीतियां

बहुत से विद्वानों का मानना है कि अशोक के राजनीतिक निर्णयों या इन निर्णयों के प्रभावों के कारण मौर्य साम्राज्य का विघटन हुआ। कुल मिलाकर इन विद्वानों के तर्कों का आधार अशोक की धार्मिक नीति के दोषों में निहित है। सामान्यतः इन तर्कों की दो धाराएं हैं :

i) प्रथम इनमें कुछ वे विद्वान हैं जो यह तर्क देते हैं कि पुश्यमित्र शुंग, जिसने अंतिम मौर्य राजा को मारा था, ब्राह्मणवादी प्रतिक्रिया का प्रतिनिधित्व करता है, जोकि अशोक की बौद्ध धर्म के समर्थन की नीति तथा उसके उत्तराधिकारियों की जैन धर्म के समर्थन की नीति के खिलाफ थी। यह भी तर्क दिया जाता है कि मौर्यों के बाद दक्खन पर राज्य करने वाले सातवाहनों को ब्राह्मण कहा गया है। यह विद्वान अशोक के शासन काल में उसके द्वारा किए गए कार्यों की एक ऐसी सूची प्रस्तुत करते हैं जिसके कारण ब्राह्मण अशोक के विराधी हो गए। उदाहरणार्थ, अशोक ने पशुओं की बलि पर प्रतिबंध लगा दिया, परन्तु ब्राह्मणों ने विशेषकर इसका प्रतिरोध किया क्योंकि यह कार्य किसी एक शूद्र राजा के द्वारा किया गया था (पुराणों में मौर्य राजाओं को शूद्रों की सूची में वर्णित किया गया है)। आगे घे तर्क देते हैं कि धम्म के विशेष अधिकारियों "धम्म महामात्रों" जिनकी नियुक्ति अशोक ने की थी, ने ब्राह्मणों की गरिमा को नष्ट किया। इन अधिकारियों ने ब्राह्मणों को परम्परागत दण्ड देने के कानूनों और स्मृतियों में दिए गए नियमों को लागू करने से रोका।

स्पष्टतः, उपरोक्त दिए गए तर्कों के समर्थन में साक्ष्य नहीं हैं। इनके समर्थन में सतही स्तर पर जो वर्णन मिले हैं, उनके विरुद्ध सवाल उठाये जा सकते हैं। अशोक के शिलालेखों से इस प्रकार के साक्ष्य मिलते हैं, जिनके अनुसार अशोक ने धम्म महामात्रों को ऐसे निर्देश दिए थे जिससे कि वे ब्राह्मणों एवं श्रामणों, दोनों का सम्मान करें। परन्तु यह संभव है कि बाद के वर्षों में ये अधिकारीगण आम जनता के बीच अलोकप्रिय हो गए हों। बौद्ध ग्रंथों में दी गई कथाओं के आधार पर भी इसका अनुमान किया जा सकता है। धम्म की स्थापना के लिए इन अधिकारियों की नियुक्ति की गई, जिसके कारण राजा के द्वारा उनको विशेष प्रकार के अधिकारों से वशीभूत किया गया और इसलिए जनता में कुल मिलाकर इनको भय की दृष्टि से देखा गया। जैसे ही उन्होंने कड़ा नियंत्रण करना प्रारम्भ किया, अशोक का जन-मानस के साथ सीधा सम्पर्क अवरुद्ध हो गया। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि ये अधिकारी विशेषकर ब्राह्मणों के शत्रु हो गए। यह तर्क कि अशोक की नीति के कारण ब्राह्मणों के हितों को क्षति पहुंची तथा पुश्यमित्र शुंग ने ब्राह्मणों के खिलाफ विद्रोह भड़काया, को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। वास्तव में पुश्यमित्र शुंग की कार्यवाही कमजोर राजा के विरुद्ध उचित समय पर राजमहल में रचा गया सत्ता परिवर्तन का विद्रोह था।

ii) दूसरी श्रेणी के विद्वानों का मत है कि अशोक ने जिन शान्ति की नीतियों का प्रारम्भ किया वे मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी थीं क्योंकि इन्होंने साम्राज्य की शक्ति को कम कर दिया। अशोक की अहिंसा की नीति पर जोर देते हुए इसके चारों ओर तर्कों को गढ़ा गया है। अशोक की इस विशेष अहिंसावादी नीति का हानिकारक प्रभाव सैन्य दृष्टिकोण से देखा गया जिसका प्रभाव सेना को कमजोर करने में हुआ। इस तर्क को आगे जारी रखते हुए यह भी कहा जाता है कि इसी कारणवश अशोक के उत्तराधिकारियों के अधीन मौर्य सेना ग्रीक हमलों का सामना करने में असफल रही। यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि राजा की अहिंसात्मक नीति का परिणाम यह भी हुआ कि वह विशेषकर उन राज्यों के अधिकारियों पर नियंत्रण को बनाए न रख सका, जो दमनकारी हो गए थे और जिनपर नियंत्रण करना आवश्यक था। दिव्यवदान से बौद्ध कथाओं को उद्धृत करते हुए यह तर्क इस बात को सामने रखता है कि प्रांतों में विद्रोह होने लगे थे।

अशोक का उपरोक्त चित्रण सत्य से बहुत दूर है। अशोक के शासन काल में ब्राह्मणवाद विरोधी मत को मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए एक कारण मान लिया गया है। अशोक के अति शान्तिवाद को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि उसमें शासन करने की शक्ति एवं दृढ़ता का अभाव था। परन्तु हमारी इन तर्कों से असहमति है। यह सही है कि अशोक अहिंसा को धम्म के लिए अनिवार्य समझता था लेकिन फिर भी उसने इस संदर्भ में उस दृष्टिकोण को नहीं अपनाया। खाने के लिए पशुओं का वध करना और बलि देने को वह पसन्द नहीं करता था, परन्तु फिर भी शाही नीति के रूप में इसको पूर्णतः समाप्त नहीं किया गया और खाने के लिए पशुओं का वध जारी रहा, यद्यपि इसमें कमी निश्चित रूप से आयी। शासन एवं न्यायिक स्तर पर

अपराधी को मृत्यु दण्ड देने की प्रथा को समाप्त कर दिया जाना चाहिए, किन्तु यह जारी थी। सेना को निष्क्रिय कर दिया गया था। इसके लिए कोई प्रमाण नहीं है न ही किसी शिलालेख से इस संदर्भ में कोई जानकारी मिलती है। अगर इस संदर्भ में कोई प्रमाण मिलता है तो वह है कलिंग राज्य पर अशोक का सैनिक आक्रमण। क्या अशोक ने कलिंग नरेश को स्वतंत्र राजा के रूप में इसलिए पुनः पदस्थ किया क्योंकि वह एक अत्यधिक शान्तिवादी था परन्तु एक व्यवहार कुशल शासक के रूप में ऐसा किया जिससे कलिंग-राज्य पर मगध की सर्वोच्चता स्थापित हो गयी। इसके अतिरिक्त अन्य ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि अशोक ने साम्राज्य के अपने नियंत्रण को दृढ़ता के साथ स्थापित किया। उदाहरणार्थ, उसने आदिवासियों को चेतावनी देते हुए स्पष्ट किया कि उसके साम्राज्य में रहने वाली जनजातियों का अनाचरण वह एक सीमा के बाहर बर्दास्त नहीं करेगा। अशोक ने इन सभी कार्यों को इसलिए किया जिससे कि साम्राज्य को सुरक्षित रखा जा सके।

इस प्रकार, निष्कर्ष यह निकलता है कि अहिंसा की नीति ने मौर्य सेना एवं प्रशासन व्यवस्था को किसी भी प्रकार से कमजोर नहीं किया। इस सब के बावजूद पुश्यमित्र शुंग मौर्य सेना का सेनापति था और अशोक के शासन काल की आधी शताब्दी के बाद उसने यूनानियों को मगध के अन्दर प्रवेश करने से रोका था। प्रो. रोमिला थापर के अनुसार, शान्तिवादी नीति के एक पीढ़ी तक जारी रहते हुए भी न तो साम्राज्य को कमजोर किया जा सकता था और न ही विघटित। "साम्राज्यों के विघटन के लिए केवल युद्धों एवं भू-भाग की प्राप्ति को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। बल्कि इसके कारणों की खोज भली भांति ढंग से दूसरे क्षेत्रों में की जानी चाहिये।"

22.5 आर्थिक समस्याएं

डी.डी. कौशाम्बी का कहना है कि मौर्यों ने गंभीर आर्थिक संकट का सामना किया जिसके कारण मौर्य साम्राज्य का पतन हो गया। कौशाम्बी के द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्क दो प्रकार के हैं और उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि मौर्य अर्थव्यवस्था में वित्तीय बाधाएं निहित थीं। (क) विभिन्न वस्तुओं पर कर बढ़ाने के लिए सरकार ने अनेक उपाय किए (ख) इस काल के पंच मार्क्ड सिक्के इस बात का प्रमाण है कि मुद्रा की गुणवत्ता में गिरावट आयी। उनका अन्तिम तर्क उनके द्वारा इस काल के सिक्कों पर किए गए सांख्यिकी विश्लेषण पर आधारित है।

कौशाम्बी के मगध साम्राज्य में निर्णायक परिवर्तन तथा इन परिवर्तनों में मौर्य साम्राज्य के पतन के मुख्य कारण होने के विचार को स्वीकार किया गया है। उनके विचारों को निम्न प्रकार से वर्णन किया गया है :

i) ऐसा माना जाता है कि राज्य का धातु पदार्थों पर एकाधिकार धीरे-धीरे समाप्त हो गया। कृषि कार्यों के लिए लोहे की मांग इतनी अधिक बढ़ गई कि उसकी पूर्ति अकेले मगध के द्वारा न की जा सकी। वास्तव में दक्कन में लोहे के स्रोतों को खोजने और विकसित करने के लिए प्रयास किए गए। लोहा प्राप्त करने के कुछ स्थल आन्ध्र एवं मैसूर में पाए गए। मगध राज्य के लिए इन स्थलों से लोहा प्राप्त करना काफी खर्चीला काम था। इससे संबंधित और भी समस्याएं थीं। जैसे कि इन खदानों को स्थानीय सरदारों के आक्रमण से भी सुरक्षित रखना पड़ता था।

ii) दूसरी बात जिस पर जोर दिया गया है, वह यह है कि कृषि उत्पादन में विस्तार, जंगल की लकड़ी के अधिक प्रयोग तथा निर्वणीकरण ने बाढ़ तथा सूखे की स्थिति पैदा की। मौर्यकाल में उत्तरी बंगाल में भयंकर सूखे के प्रमाण मिले हैं। इस प्रकार कई कारणों से राजस्व की कमी आई। सूखे के दौरान राज्य से व्यापक स्तर पर सहायता की अपेक्षा की जाती थी।

केन्द्रीकृत प्रशासन में पर्याप्त मात्रा में राजस्व न उपलब्ध होने की समस्या के कारण दूसरे प्रकार की अन्य गम्भीर मुश्किलें पैदा हो जाती थीं। राजस्व की मात्रा को बढ़ाने के लिए अर्थशास्त्र में सुझाया गया है कि कलाकारों और वेश्याओं आदि पर भी कर लगाये जाने चाहिए। सरकारी खजाने में अधिक धन की आवश्यकता के फलस्वरूप उन सभी वस्तुओं पर कर लगाने की प्रवृत्ति को बढावा मिला, जिन पर कर लगाया जा सकता था और मुद्रा और अवमूल्यन से मुद्रा-स्फीति को बढावा मिला। अर्थशास्त्र में जो आपातस्थिति में लागू किए जाने वाले उपाय वर्णित हैं उनको उपरोक्त दिए गए संदर्भ में समझा जाना चाहिए। दूसरे, पंच मार्क्ड सिक्कों में चांदी की मात्रा को कम करके उनका जो अवमूल्यन किया गया वह इस बात का प्रमाण है कि उत्तर-मौर्य काल के शासकों के समय में खाली होते सरकारी खजाने की आवश्यकता की पूर्ति करता था। खर्च में भी वृद्धि हुई। अशोक के द्वारा जन कार्यों के लिए खर्च की गई धनराशि से भी स्पष्ट होता है। राज्य को जो अतिरिक्त धन मिलता था वह भी उसकी एवं उसके अधिकारियों यात्राओं पर

खर्च हो जाता था। राज्य ने वित्तीय व्यवस्था पर नियंत्रण के लिए जो प्रारंभिक कठोर उपाय किए थे, वे अशोक के शासन काल में परिवर्तित होने प्रारंभ हो गए।

रोमिला थापर ने इस पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। उनके अनुसार सिक्कों का अवमूल्यन होना अनिवार्यतः इस बात की ओर संकेत नहीं करता है कि अर्थव्यवस्था पर किसी प्रकार का दबाव था। यह कहना बहुत कठिन है कि कब और कहां सिक्कों का अवमूल्यन हुआ। सकारात्मक रूप में तर्क प्रस्तुत करती हुई वह बताती हैं कि भौतिक साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उस समय में भारतीय उपमहाद्वीप के बहुत से भागों की अर्थव्यवस्था में वास्तव में सुधार हुआ था। उपरोक्त कथन की पुष्टि बेहतर किस्म के पदार्थों के उपयोग, जो कि तकनीकी विकास की ओर इशारा करते हैं, से होता है। इस प्रकार, उनके अनुसार सिक्कों का अवमूल्यन भौतिक जीवन के स्तर में गिरावट के कारण नहीं हुआ था, बल्कि यह राजनीतिक अव्यवस्था का परिणाम था जो गंगा घाटी में व्याप्त थी और जिसके कारण व्यापारी वर्ग में धन को संग्रहित करने की प्रवृत्ति बढी, जिससे सिक्कों का अवमूल्यन हुआ। इस प्रकार वह निष्कर्ष निकालती हैं, ''इसमें कोई संदेह नहीं है कि मौर्य साम्राज्य के पतन के साथ ही आर्थिक सम्पन्नता भी व्याप्त थी।''

बोध प्रश्न 2

नीचे दिए गए खाली स्थान का प्रयोग अपने उत्तर लिखने के लिए करें।

1) निम्नलिखित कथनों पर सही (√) या गलत (×) का चिह्न लगाइए:

   क) ब्राह्मणों के विद्रोह के लिए परिस्थितियां पैदा करने के लिए अशोक उत्तरदायी था। ( )

   ख) अशोक की किसी भी नीति ने शान्तिवाद की वकालत नहीं की। ( )

   ग) उत्तर-मौर्य काल के सिक्कों में चांदी की मात्रा बढ़ गई थी। ( )

   घ) उत्तर-मौर्यों के शासनकाल में सिक्कों को संग्रहित करने की प्रवृत्ति ने सिक्कों के अवमूल्यन को बढ़ावा दिया। ( )

2) निम्नलिखित में से जो कारण मौर्यों के पतन के लिए उत्तरदायी नहीं था, उस पर ठीक (√) का निशान लगाइए:

   क) गंगा घाटी में वन उजड़ने के कारण बाढ आने लगी। ( )

   ख) पशु-बलियों पर प्रतिबंध लगने के कारण लोकप्रिय विद्रोह हुए। ( )

   ग) कुछ विशेष शक्तिशाली अधिकारियों पर बाद के मौर्य शासक नियंत्रण न रख सके। ( )

   घ) खर्चे बढ़ जाने के कारण साम्राज्य के खजाने पर दबाव बढ़ा। ( )

3) क) उन विद्वानों के तर्क 6 पंक्तियों में दीजिए, जो अशोक की नीतियों को मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी ठहराते हैं।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

4) क्या आप कौशाम्बी के इस विचार से सहमत हैं कि मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए वे आर्थिक समस्याएं उत्तरदायी थीं, जिनका सामना साम्राज्य ने किया? आप अपने उत्तर के समर्थन में कारण दीजिए। इस प्रश्न का उत्तर आप अपने केन्द्र के सलाहकार के साथ सलाह करके 100 शब्दों में दीजिए।

....

....

....

....

....

22.6 स्थानीय राजनीति का विकास

मौर्यों के राजनीतिक पतन के साथ-साथ अगर देश का भौतिक एवं तकनीकी विकास अवरुद्ध नहीं हुआ था तो यह कहा जा सकता है कि मौर्य-काल के बाद नवीन शक्ति के साथ बहुत सी स्थानीय राजनीतिक व्यवस्थाओं या राज्यों के उद्‌भव के लिए मजबूत भौतिक आधार मौजूद था। मौर्य राजा वास्तव में "साम्राज्य" के प्रमुख व महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर शासन करते थे, जिनका मुख्य केन्द्र मगध था। इसकी अधिक संभावना है कि मौर्यों ने दूर-दराज के क्षेत्रों पर शासन करने वाले राज्यपालों एवं अधिकारियों को स्थानीय लोगों में से चुना हो। कभी-कभी ये अधिकारीगण बड़े शक्तिशाली हो जाते थे और राजाओं के प्रतिनिधियों पर अंकुश लगाने का काम करते थे। जैसा कि पहले भी उद्धत किया गया है कि साम्राज्यवादी व्यवस्था को जारी रखने के लिए इन अधिकारियों की राजनीतिक वफादारी बड़ी निर्णायक होती थी। राजा में परिवर्तन का अर्थ था कि इन वफादारियों का पुनर्निर्धारण होना। यदि ऐसा अक्सर हो, जैसा कि अशोक के बाद के समय में हुआ भी तो व्यवस्था में मूलभूत कमजोरियाँ आ जाती और अंततः यह व्यवस्था असफल हो जाती।

अशोक के बाद आधा दर्जन राजाओं ने शासन किया परन्तु उन्होंने अपनी शासन करने की प्रणाली में कोई परिवर्तन नहीं किया और वही नीति अपनाई जो पहले तीन मौर्य सम्राटों ने अपनाई थी। यह भी कहा जाता है कि इनमें से कुछ राजाओं ने लगभग साथ-साथ साम्राज्य के बहुत से भागों पर शासन किया। इससे स्पष्ट है कि मौर्यों के शासन काल में ही साम्राज्य का विघटन हो गया था।

22.6.1 बड़े राज्य

मौर्य साम्राज्य के विघटन के फलस्वरूप भारत के विभिन्न भागों में कई राज्यों का उदय हुआ। मौर्यों के तुरन्त बाद पुश्यमित्र शुंग ने शुंग वंश की स्थापना की और मौर्य साम्राज्य के केवल एक भाग पर ही नियंत्रण रखने में शुंग सफल हुए थे। शुंग परिवार के पास मौर्यों के शासन काल में पूर्वी मालवा में विदिशा के पड़ोसी राज्य उज्जैन, जोकि पश्चिम मालवा में स्थित था, का शासन था। शुंगों ने सत्ता प्राप्त करने के बाद वैदिक प्रणाली और बलि को पुनः प्रारम्भ करने का प्रयास किया क्योंकि ग्रीक आक्रमणकारियों का सामना करने और उनके प्रथम राजा के द्वारा सत्ता हथिया कर उसको मजबूत करने के लिए ऐसा करना आवश्यक था। शुंगों के बाद कन्वों के वंश ने थोड़े समय के लिए शासन किया। इसी समय में ग्रीक आक्रमणकारी देश के उत्तर-पश्चिमी भागों में अपना शासन स्थापित करने में सफल रहे। उनके शासन को शकों के द्वारा ही समाप्त किया जा सका, जो सिंध नदी के किनारे बस गए थे। पार्थियन या पल्लव आक्रमणकारी भी उत्तर-पश्चिम भारत की ओर आए। लेकिन सबसे सफल विदेशी आक्रमणकारी कुषाण थे, जिन्होंने कुषाण साम्राज्य की स्थापना की।

गंगा घाटी राजस्थान, पूर्वी भारत तथा दक्कन में अनेक नए स्थानीय शासक परिवारों ने इस काल में राजनीतिक सत्ता प्राप्त की। यह स्पष्ट है कि मौर्य काल के दौरान अधिकतम ग्रामीण बस्तियां गंगा घाटी में बसीं। असम के पर्वतीय क्षेत्रों एवं बंगाल के मैदानी क्षेत्रों में बस्तियां स्थापित नहीं हुई थीं। इसी के समान, देश के दक्षिणी एवं दक्षिण-पूर्वी भाग मगध साम्राज्य के सम्पर्क में आ चुके थे, लेकिन व्यापक स्तर पर कृषि अर्थव्यवस्था अभी अस्तित्व में नहीं आई थी। मौर्य शासन के पतन के पश्चात् बहुत से स्थानीय शासक विदर्भ, पूर्वी दक्खन, कर्नाटक तथा पश्चिम महाराष्ट्र जैसे क्षेत्रों में शासन करने लगे। धीरे-धीरे सातवाहन परिवार ने दक्कन में स्थानीय केन्द्रों के समायोजन द्वारा एक साम्राज्य की स्थापना की (खंड 7 की इकाई 27 में आप सातवाहनों के बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे)।

जिस समय प्रारंभिक सातवाहन स्वयं को स्थापित कर रहे थे, उसी समय उड़ीसा के महानदी क्षेत्र में खरावेला ने एक शक्तिशाली शासक के रूप में अपने को स्थापित किया। उसके शासनकाल के एक शिलालेख में जो भुवनेश्वर के पास उदयगिरि की पहाड़ी में हाथी गुम्फा के गुफा में पाया गया है वह यह दावा करता है कि वह कलिंग के महामेघवाहन परिवार, जो कि प्राचीन चेदी परिवार की एक शाखा था का तीसरा शासक था।

कहा जाता है कि उसने मगध, सातवाहन और पाण्डया देशों पर सफलतापूर्वक आक्रमण किए। वह जैन धर्म का पक्का समर्थक था।

धुर दक्षिणी क्षेत्र में तीन राज्य, मौर्य काल से ही महत्वपूर्ण बने रहे। उनमें प्रथम चेर थे जिनका नियंत्रण मालाबार क्षेत्र पर था, दूसरे चोल थे जो दक्षिण-पूर्वी समुद्र के किनारे एवं कावेरी नदी की घाटी में फैले हुए थे और तीसरे पाण्डया थे जिनके अधिकार क्षेत्र दक्षिणी प्रायद्वीप का छोर था। इस काल के संगम साहित्य से उन तीनों राज्यों के समाज, पर्यावरण संबंधी राजनीति एवं अर्थव्यवस्था के विषयों में जानकारी प्राप्त होती है। (आप खंड 7 की इकाई 28 में इस क्षेत्र के इतिहास के विषय में और अधिक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे)।

उपरोक्त पंक्तियों में विदेशी एवं स्वदेशी राज्यों के राजनीतिक स्वरूप एवं भौगोलिक क्षेत्रों का विवेचना किया गया है। ये राज्य मौर्य काल के बाद अलग-अलग समय में शक्तिशाली बने रहे। 200 ई.पू. तथा 300 ईसवी के दौरान उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम में पहले यूनानी तथा बाद में शक, पार्थियन तथा कुषाण प्रमुख शक्तियां थीं। दक्कन में सातवाहनों का शासन सबसे स्थायी तथा व्यापक था। किन्तु इसी काल में इन प्रमुख शक्तियों के अतिरिक्त अनेक छोटे राज्य तथा गण-संघ थे जो जनपदों पर शासन कर रहे थे। यदि हम इन पर अपनी दृष्टि नहीं डालते हैं तो इस काल की राजनीतिक स्थिति स्पष्ट नहीं हो सकती है।

22.6.2 स्थानीय राज्य

इस काल में विकसित होती कृषि अर्थव्यवस्था के कारण या कुछ क्षेत्रों में व्यापारिक गतिविधियों के कारण शक्तिशाली कबीलों के अधीन स्थानीय या उपक्षेत्रीय राज्यों का उद्भव हुआ। बहुत से भारतीय साहित्यिक स्रोतों जैसे कि पुराण आदि नागा, गर्दाभील और आभीर आदिवासी जातियों का नाम है। इस काल में राजाओं का इन पर शासन था। उत्तर-मौर्य काल के चार नागा राजाओं, सात गर्दाभील राजाओं, तेरह पुश्यमित्र राजाओं और दस आभीर राजाओं की सूची उपलब्ध है। गर्दभीलों की उत्पत्ति संभवतः एक बड़ी भील नामक जनजाति से हुई जो संभवतः केन्द्रीय तथा पश्चिम भारत के वनों में रहते थे। कुछ अभीर संभवतः अहीर नाम की जाति में परिवर्तित हो गए जिनमें से कुछ चरवाहों के रूप में जाने जाते हैं। इन सबके अतिरिक्त भी हम अन्य कई ऐसे कबीलों के बारे में, जिनमें इस काल में परिवर्तन हुए उनके द्वारा अपने नाम पर जारी किए गए सिक्कों के माध्यम से या महाजनपदों के नाम से जानते हैं। यौद्वेय, जोकि पानिनि के समय में भी प्रसिद्ध एवं कुशल योद्धा थे और ऐसा कहा जाता है कि उनका पश्चिम भारत के शक नरेश रुद्रदमन ने दमन किया था। उनका अधिकार क्षेत्र सतलज एवं यमुना नदी के मध्य में स्थित था। इसी प्रकार मथुरा के पूर्वी-दक्षिणी भू-भाग पर शुंग शासन के अंतिम वर्षों में अर्जुनायन नाम के कबीले ने एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना कर ली थी। पंजाब में रावी और व्यास के मध्य के भू-भाग पर अधिकार करने वालों को ऑदम्बर कहा गया है। ऐसा कहा जाता है कि कुणिन्दों ने भी शिवालिक पहाडियों की तलहटी में व्यास एवं यमुना के मध्य के भू-भाग पर एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। इस काल में दूसरे कबीलाई गणराज्य सिबि, मालवा, त्रिगर्त आदि थे। ये जनपद उत्तरी एवं उत्तरी-पश्चिमी भारत के भू-भाग पर फैले हुए थे तथा इसी काल में स्वतंत्र राज्य जैसे कि अयोध्या, कोशाम्बी, मथुरा और अहिछत्र, जोकि किसी काल में मौर्यों के अधीन थे ने अपनी शक्ति को पुनर्स्थापित किया दक्कन के छोटे-छोटे स्थानीय राजाओं तथा राज परिवारों, जिन पर सातवाहनों ने अपना प्रभुत्व स्थापित किया, के विषय में जानकारी मुख्यतः सिक्कों से मिलती है।

महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा आंध्र से प्राप्त प्रमाणों से हमें कुछ परिवारों जैसे महारती, क्रुरू तथा अनार्द के विषय में जानकारी मिलती है। इसके अतिरिक्त, इस काल में दक्कन में अनेक स्थानीय सरदार, जिन्होंने सिक्के जारी किए, अस्तित्व में आए। हम यह भी जानते हैं कि धुर दक्षिण प्रदेश के तीन राज्यों चेरा, चोल, पाण्डया के राजा कम विकसित क्षेत्रों के छोटे सरदारों के साथ लगातार युद्धों में उलझे रहते थे। उदाहरण के लिए वेलिर सरदार इसलिए प्रसिद्ध थे क्योंकि दक्षिण-पूर्वी समुद्र के किनारे से रोम के साथ होने वाले व्यापार केन्द्रों पर उनका नियंत्रण था।

इस प्रकार उत्तर-मौर्य काल में बहुत से शासकीय वंशों ने साम्राज्य की स्थापना के लिए प्रयास किए। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जिनमें एक ने दूसरे के विरुद्ध अपना दावा प्रस्तुत किया। उप-क्षेत्रीय शक्ति को भी पूर्णतः दबाया नहीं जा सका। जहां एक ओर, मौर्यों के राजनीतिक पतन ने एक ऐसी स्थिति पैदा की जिसमें स्थानीय शक्तियों का उद्भव संभव हो सका, वहां दूसरी ओर मौर्यों के शासन काल की आर्थिक सम्पन्नता बिना किसी क्षति के जारी रही। इस प्रकार मौर्यों के मगध साम्राज्य में संसाधनों को नियंत्रित एवं संगठित करने का संकट था न कि इनकी कमी का।

बोध प्रश्न 3

1) निम्नलिखित कथनों पर सही (√) या गलत (×) के चिह्न लगाइए:

   क) पुष्यमित्र शुंग संभवतः मौर्यों के अधीन उज्जैन का राज्यपाल था। ( )

   ख) धुर दक्षिण में मौर्यों को सातवाहनों ने हटाया। ( )

   ग) संगम साहित्य हमें तीन राज्यों — चोलों, चेरों एवं पाण्डयों के विषय में बताता है। ( )

   घ) मौर्य काल के बाद के काल में कबीलाई राज्य विदेशियों को बाहर निकालने में सफल हो सके। ( )

   च) अयोध्या, कोशाम्बी, मथुरा और अहिच्छत्र कबीलाई गणतंत्र थे। ( )

2) उत्तर-मौर्य काल में दक्षिण एवं उत्तर भारत में हुए मुख्य राजनीतिक परिवर्तनों को लगभग 100 शब्दों में बताइए।

....

....

....

....

....

....

3) नीचे दिए गए संकेतों का प्रयोग करके मौर्यों के पतन के तीन महत्वपूर्ण कारण बताइए।

   1) ब्राह्मणों का विद्रोह

   2) राज्य नियंत्रण का कमजोर पड़ना

   3) साम्राज्यवादी खर्च में बढ़ोत्तरी

   4) विदेशी शक्तियों के आक्रमण

   5) प्रभावशाली संसाधन आधार को बनाने की अयोग्यता

   6) सेना की निष्क्रियता

   संकेत

   क) 1, 6, 4

   ख) 2, 3, 4

   ग) 2, 2, 3, 5

   घ) 1, 5, 6

22.7 सारांश

हमने इस इकाई में उन सभी कारणों का विश्लेषण किया जिनसे मौर्य साम्राज्य का पतन एवं उसी के साथ-साथ स्थानीय राजनीतिक व्यवस्थाओं का उत्थान हुआ। अशोक के उत्तराधिकारी साम्राज्य की उस अखण्डता को बनाए रखने में असफल रहे जो उन्हें अशोक से विरासत में प्राप्त हुई थी। अशोक के बाद साम्राज्य के बंटवारे एवं शीघ्र-शीघ्र शासकों के परिवर्तन ने निःसंदेह साम्राज्य के आधार को कमजोर किया। परन्तु अधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि मौर्य साम्राज्य व्यवस्था में अंतर्निहित विरोधाभासों ने इस संकट को और अधिक गहरा किया। उच्च स्तरीय केंद्रीकृत नौकरशाही की निष्ठा राजा के प्रति थी न कि राज्य के प्रति जिसके कारण प्रशासन का आधार पूर्णतः व्यक्तिवादी हो गया। राजा के परिवर्तन का तात्पर्य अधिकारियों में भी परिवर्तन होना था जिसका अशोक के बाद में प्रशासन पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा।

हम देख चुके हैं कि पहले कुछ विद्वान किस भांति अशोक की नीतियों को मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी ठहराते हैं परन्तु समकालीन प्रमाणों के आधार पर ये विचार स्वीकारने योग्य नहीं हैं। मौर्य साम्राज्य के पतन के कारणों पर कुछ विद्वानों के द्वारा आर्थिक समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में भी विचार किया गया है और हमने भी इस पर अपना ध्यान केंद्रित किया है। अंत में हमने उत्तर एवं दक्षिण भारत में राजनीति के उत्थान पर भी प्रकाश डाला है जिसने मौर्य साम्राज्य के पतन की प्रक्रिया को तेज गति प्रदान की।

22.8 शब्दावली

नौकरशाही : ऐसी सरकार की व्यवस्था, जिसमें अधिकारियों के द्वारा शासन किया जाता है और जो किसी एक शक्ति के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

स्थानीय राज्य : ऐसे राज्य जो छोटे थे और किसी विशेष स्थान या क्षेत्र में सीमित थे।

उप-क्षेत्रीय राज्य : किसी वड़े क्षेत्र के अन्तर्गत स्थित छोटे राज्य।

राजनीतिक व्यवस्था : राजनीतिक संगठन के प्रकार—कुछ राजतांत्रिक, गणतांत्रिक या कबीलाई हो सकते हैं।

पार्थियन : पार्थिया प्रदेश के निवासी, यह प्रदेश वैक्ट्रिया के पश्चिम और कैस्पियन सागर के दक्षिण-पूर्व में स्थित था।

22.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) क) √

   ख) ×

   ग) √

   घ) √

2) आपको उन समस्याओं के विपय में लिखना है जो अशोक की धम्म नीति को जारी रखने और धम्म महामंत्रों पर नियंत्रण रखने के मार्ग में वाधक थी। (देखिए भाग 22.3)

3) आपको अपने उत्तर में निम्नलिखित संदर्भों को सम्मिलित करना चाहिए — केंद्रीकृत प्रशासन, अधिकारियों की राजा के प्रति निष्ठा न कि राज्य के प्रति, नौकरशाही का चरित्र आदि-आदि। (भाग 22.3 देखिये)

बोध प्रश्न 2

1) क) ×

   ख) √

   ग) ×

   घ) √

2) ख)

3) आपको अपने उत्तर में शामिल करना चाहिए: अशोक वौद्ध धर्म समर्थक नीति, अशोक की शान्तिप्रियता की नीति और इसके प्रति ब्राह्मणों की प्रतिक्रिया। भाग 22.4 देखिए।

4) भाग 22.5 को पढ़िए और अपने उत्तर के लिए तर्क दीजिए।

बोध प्रश्न 3

1) क) √

   ख) √

   ग) √

   घ) ×

   च) ×

2) मौर्य साम्राज्य के विघटन के साथ-साथ बड़े एवं स्थानीय राज्य अस्तित्व में आये साथ ही आपको कबीलाई राज्यों के बारे में लिखना चाहिए। (उप-भाग 22.6.1 तथा 22.6.2 देखिए)।

3) ख)

इस खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

शिवशंकर मिश्र—प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास

डी.डी. कोशांबी—प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता

सत्यकेतु विद्याशंकर—मौर्य साम्राज्य का इतिहास

रोमिला थापर—प्राचीन भारत का इतिहास

इकाई 23 उत्तर पश्चिमी एवं उत्तर भारत

इकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य
23.1 प्रस्तावना
23.2 स्रोत
23.3 शुंग
23.4 भारतीय यूनानी
23.5 शक
23.6 पार्थियन
23.7 कुषाण
23.8 उत्तर भारत की स्थानीय शक्तियाँ
23.9 मध्य एशिया तथा उत्तर भारत के संपर्क का महत्व
    23.9.1 व्यापार एवं तकनीकी
    23.9.2 भौतिक अवशेष
    23.9.3 राजतंत्र
    23.9.4 धर्म और कला
23.10 सारांश
23.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

23.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप को निम्नलिखित विषयों की जानकारी होगी

- मौर्य युग के अंत से लगभग सन् 300 ई. तक की राजनीतिक गतिविधियाँ
- विभिन्न प्रकार के विदेशी तत्वों का भारतीय समाज पर प्रभाव और उनका समावेश
- मध्य एशियाई संपर्क का तकनीकी, धर्म तथा कला के क्षेत्र में प्रभाव तथा उस युग के भौतिक अवशेष।

23.1 प्रस्तावना

खंड 5 में आपने प्रथम भारतीय साम्राज्य की, जो मौर्य साम्राज्य के नाम से जाना जाता है, स्थापना और सुसंगठित होने के विषय में जानकारी प्राप्त की। राजनैतिक विस्तार, राजतंत्र तथा अशोक की धम्म की नीति के विषय में आपने विस्तृत रूप से जाना। आपको याद होगा कि पुश्यमित्र शुंग ने लगभग 180 ईस्वी पूर्व में आखिरी मौर्य सम्राट का निश्चित रूप से पतन कर दिया। सन् 200 ईस्वी पूर्व के बाद का जो युग था उसमें कोई बड़ा साम्राज्य तो स्थापित नहीं हुआ, पर यह युग ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इसलिए महत्वपूर्ण है कि उस युग में मध्य एशिया से सांस्कृतिक-संबंध स्थापित हुए और विदेशी तत्वों का भारतीय समाज में समावेश हुआ। इस युग में उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम भारत में अनेक राजनैतिक क्षेत्र उभर कर सामने आये। इस इकाई में हम शुंग, शक, भारतीय-यूनानी तथा पार्थियन जैसे अन्य महत्वपूर्ण वंशों का अध्ययन करेंगे। साथ ही साथ व्यापार, कला, धर्म तथा शिल्प विज्ञान के क्षेत्र में सांस्कृतिक संबंधों पर भी विचार करेंगे।

23.2 स्रोत

इस युग के राजनैतिक इतिहास की जानकारी के लिए विभिन्न प्रकार के स्रोतों की छान-बीन आवश्यक है। कुछ क्षेत्रों में शासकों और राजवंशों के बारे में पौराणिक विवरण अत्यंत उपयोगी है। पौराणिक विवरण के साथ-साथ कुछ विषयों के लिए शिलालेख भी अत्यंत महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

मौर्यों की पराजय के तुरन्त बाद के समय के लिये, गार्गी संहिता, पंतजलि के महाभाव्य, दिव्यावदान कालिदास के मालविकाग्निमित्र तथा बाण के हर्ष चरित आदि ग्रंथों में कुछ जानकारी तो अवश्य मिलती है, पर वह बिखरी हुई है। शुंग इतिहास से संबंधित प्रमाण भी हमें अयोध्या, विदिशा तथा भारूत के शिलालेखों में मिलते हैं।

मौर्यों के बाद के युग में राजनैतिक सत्ता किसी परिवार विशेष के हाथ में नहीं रह गयी। इस युग में राजनैतिक सत्ता के दो रूप सामने आते हैं। पहले का संबंध उत्तर-पश्चिम क्षेत्र से है जहां एक वंश के शासकों का स्थान दूसरे वंश ने लिया – पहले यूनानी मूल के शासक, उसके बाद शक या पार्थियन मूल के शासक तथा उसके बाद यूहचि मूल के शासकों ने सत्ता सम्हाली। इसके साथ, इसी युग में उत्तर भारत में हमें सत्ता का दूसरा रूप मिलता है, जिसमें स्थानीय स्तर पर सत्ता छोटे-छोटे परिवारों के हाथ में आयी। कुछ स्थानों पर हमें गण संघ भी मिलते हैं जो एक विस्तृत क्षेत्र में बंटे हुए थे। इन राज परिवारों का संकेत उन सिक्कों से मिलता है, जो उन्होंने ढाले। यह सिक्के बहुत महत्वपूर्ण स्रोत हैं क्योंकि उन पर शासकों के नाम अंकित हैं। इन सिक्कों तथा अन्य स्रोतों की मदद से हमें इस युग के राजनैतिक इतिहास को समझने में सहायता मिलती है। पश्चिमी एशिया के अनेक भागों से तथा विशेष कर मध्य एशिया से सांस्कृतिक आदान-प्रदान इस युग में एक आम बात थी। इस संदर्भ में, उत्तर-पश्चिम क्षेत्र के लिये, कुछ अन्य प्रकार के स्रोत भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। जैसे कि, समकालीन सिक्कों के साथ-साथ, इस युग में खरोष्ठी लिपि में लिखे गये अनेक लेख गान्धार क्षेत्र में मिलते हैं, तथा मध्य एशिया में भी अनके खरोष्ठी दस्तावेज प्राप्त हुए हैं। इसके अलावा उत्तर-पश्चिम भारत तथा वहां के शासकों के बारे में थोड़ा बहुत हवाला यूनानी और लैटिन स्रोतों में भी मिलता है। बौद्ध स्रोतों में भी इस युग से संबंधित जानकारी मिलती है, जैसे कि पाली में लिखित मिलिन्द पण्ह (मिलिन्द के प्रश्न) में यवन राजा मेनन्दर तथा बौद्ध धर्म का विवरण है। चीनी ऐतिहासिक वृतान्तों में, मध्य एशिया, बैक्ट्रिया तथा उत्तर-पश्चिम भारत की समकालीन घटनाओं के हवाले मिलते हैं। जैसे कि यह चि या कुशाण वंश का प्रारंभिक इतिहास जानने के लिये हमें चीन के प्रारंभिक तथा बाद के वंशों से संबंधित वृतान्तों पर निर्भर रहना होगा।

23.3 शुंग

शुंग एक ब्राह्मण परिवार था जिसका संबंध शायद पश्चिम भारत के उज्जैन क्षेत्र से था, जहाँ वे मौर्य राजाओं के समय में राज्य अधिकारी थे। शुंग वंश का संस्थापक पुश्यमित्र था। आम तौर पर समझा जाता है, उसने 180 वर्ष ई.पू. में अंतिम मौर्या राजा ब्रिहद्रथ को मार डाला। संस्कृत लेखक बाण जो कन्नौज के राजा हर्षवर्धन का राज्य कवि था, इस घटना की पुष्टि करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पुश्यमित्र ब्राह्मणवाद का समर्थक था और उसने अश्वमेघ या अश्व-बलि भी करवाया। अश्व-बलि एक वैदिक धर्मविधि थी जिसे राजसी गौरव का प्रतीक समझा जाता था। धनदेव के अयोध्या शिला लेख से मालूम होता है कि पुश्यमित्र ने दो बार अश्व-बलि की थी। इससे न केवल इस बात का संकेत मिलता है कि पुश्यमित्र का अधिपत्य एक बड़े क्षेत्र पर था, बल्कि उसके राज्य में प्रचलित ब्राह्मण रूढ़िवादिता के बारे में भी जानकारी मिलती है। बौद्धिक स्रोतों के अनुसार उसने बौद्ध धर्म के अनुयायियों पर अत्याचार किये।

दिव्यावदान की बौद्धिक परंपरा इस बात की पुष्टि करती है कि पुश्यमित्र ने बौद्ध मठ तथा धर्म स्थानों का विनाश किया, विशेषकर जिनका निर्माण अशोक ने करवाया था। (और अधिक जानकारी के लिए इकाई 25 को देखें)।

पुराणों के अनुसार पुश्यमित्र ने 36 वर्ष तक शासन किया और उसके बाद उसका पुत्र अग्निमित्र शासक बना। उसके शासन के बारे में बहुत कम जानकारी मिलती है। ऐसा लगता है कि मूलदेव काफी प्रभावशाली शासक था। उसके शासन काल ने शुंग वंश का विघटन शुरू किया। कुछ इतिहासकारों के अनुसार अयोध्या में मिले सिक्कों से मूलदेव का राजा होना सिद्ध होता है। अयोध्या के शिला लेखों में उसे कौशल का स्वामी कहा गया है। वह स्वतंत्र कौशल प्रदेश का शासक था। जल्दी ही, शुंग शासकों का राज्य मगध तथा मध्य भारत के क्षेत्र तक ही सीमित रह गया। देवभूति, शुंग वंश का चौथा और अंतिम शासक था। यदि हर्ष चरित्र के लेखक बाण के वृत्तान्त पर विश्वास किया जाए, तो वह अपने ब्राह्मण मंत्री वासुदेव के षड्यंत्र का शिकार हो गया। इस प्रकार शुंग शासकों का सिलसिला ईसा के 75 वर्ष पूर्व खत्म हो गया। हालाँकि वासुदेव ने शासकों की एक नयी कड़ी शुरू की जो कौरव कहलाये, जो चार पीढ़ियों तक कायम रही।

23.4 भारतीय-यूनानी

ईसा के लगभग 200 वर्ष पूर्व, भारतीय उप-महाद्वीप की उत्तर-पश्चिम सीमा के पार काफी सरगर्मी थी। यूनानियों ने जो बेक्ट्रिया में राज्य करते थे। सबसे पहले हिन्दू कुश को पार किया। यह क्षेत्र ऑक्सस नदी के दक्षिण में उत्तरी अफगानिस्तान से ढका हुआ था। सिकन्दर के उत्तर-पश्चिम भारत के हमले के बाद भी यूनान और भारत के बीच कोई विशेष निकटता स्थापित नहीं हुई। दो अलग प्रकार की संस्कृति का मिश्रण ईसा की दो शताब्दी पूर्व के युग में नजर आता है। यह सांस्कृतिक मिश्रण उस समय हुआ जब बेक्ट्रिया के यूनानी शासक उत्तर-पश्चिम भारत तक पहुँच गये और भारतीय यूनानी के नाम से जाने गये।

ईरान में अकेमेनिद राज्य के विलय तथा सिकन्दर की मृत्यु के बाद, ईरान तथा उसके आस-पास के क्षेत्रों पर सिकन्दर के सेनापतियों का अधिकार हो गया। धीरे-धीरे बेक्ट्रिया के यूनानी शासक जो मूलतः सेल्यूसिड और पारिथया के अरासासिड शासकों के अधीन थे, वे अब स्वशासन का दावा करने लगे। यूनानी शासकों को स्काईथियन जनजाति से गंभीर खतरे का सामना करना पड़ा। चीन की दीवार के निर्माण के बाद स्काईथियन चीन की ओर तो न बढ़ सके पर उन्होंने यूनानियों और पारथिस पर हमले किये। स्काईथियन जनजाति के दबाव से, बेक्ट्रियन यूनानियों को भारत की ओर आना पड़ा। ये हमले मौर्य शासन के अंतिम चरण में शुरू हो चुके थे और अशोक के उत्तराधिकारियों में उनसे सामना करने की क्षमता नहीं थी। ईसा के 150-200 वर्ष पूर्व की अवधि में उन्होंने उत्तर-पश्चिम भारत के एक बड़े भाग पर कब्जा कर लिया था। अपने सैनिक अभियानों में वे गंगा के मैदान तथा देश के अन्य भागों में दर तक पहुँच गये थे, जैसे पांचाल, साकेत तथा पाटलीपुत्र।

भारतीय यूनानी शासकों में मेनान्दर या मिलिन्द बहुत मशहूर हुआ। उसके शासन काल में भारतीय-यूनानी राज्य की सीमायें स्वात घाटी से शुरू होकर पंजाब में रावी नदी तक पहुँच गयी थी। उसने अपनी राजधानी पंजाब में साकला (आधुनिक स्यालकोट) में बनायी। बौद्ध भिक्षु और दार्शनिक नागसेन के द्वारा बौद्ध धर्म अपनाने के कारण भी मेनान्दर याद किया जाता है। मेनान्दर ने नागसेन से बौद्ध धर्म से संबंधित अनेक प्रश्न किये जिनका उल्लेख मिलिन्द-पन्ह या "मिलिन्द के प्रश्न नामक" पुस्तक में है।

समकालीन सिक्कों की एक बड़ी संख्या से कम से कम 30 भारतीय यूनानी शासकों के नाम मालूम हो जाते हैं। उत्तर में काबुल तथा दिल्ली के निकट मथुरा में मेनान्दर के सिक्के प्राप्त हुए हैं। भारतीय यूनानियों का इतिहास मुख्यतः इन्हीं सिक्कों की सहायता से लिखा गया है। इन सिक्कों पर यूनानी भाषा में अनुश्रुतियाँ अंकित है, बाद में खरोश्टी तथा ब्रह्मी लिपि भी मिलती है। इन प्रमाणों को समझने की कहीं-कहीं कठिनाई होती है, क्योंकि कुछ राजाओं के नाम एक से थे। इसलिए एक शासन के समय के सिक्कों को दूसरे से अलग करना आसान नहीं है। सिक्के, विशेषकर चाँदी के सिक्कों के ढालने की भारतीय यूनानी तकनीक कारीगरी का अच्छा उदाहरण है। इसका प्रभाव इस युग के कुछ स्थानीय शासकों द्वारा जारी किये हुए सिक्कों पर पड़ा और एक बड़े क्षेत्र में उनका प्रचलन हुआ। ये इस युग के बढ़ते हुये व्यापार संबंधों पर प्रकाश डालते हैं।

भारतीय यूनानियों की भूमिका, सांस्कृतिक संबंधों के संदर्भ में इसलिए भी महत्वपूर्ण समझी जाती है कि उन्होंने उत्तर-पश्चिम भारत में हेलेनिस्टिक कला से परिचय कराया, जिसने बाद में गंधार कला शैली का रूप लिया।

23.5 शक

शकों को स्काईथियन के नाम से भी जाना ाता है। कुछ स्रोत स्काईथियन और पारथियन दोनों का हवाला एक साथ देते हैं, तथा उन्हें शक पहलवा कहते हैं। यहाँ तक कि शासकों के नाम से भी कभी-कभी शक और पहलवा में अंतर करना अत्यन्त कठिन है। फिर भी, उत्तर, उत्तर-पश्चिम, और पश्चिम भारत में कुछ शक राज परिवारों की वास्तविकता को स्थापित किया जा चुका है। शकों का बोलन दर्रे के रास्ते से भारत में आना शुरू हुआ और ऐसा समझा जाता है कि वे पहले सिंधु के निचले क्षेत्र में आबाद हुए। शकों की विभिन्न शाखाओं से संबंधित सिक्के और अन्य स्रोत उपलब्ध हैं। ऐसा समझा गया है कि उनकी एक शाखा अफगानिस्तान में बसी तथा दूसरी पंजाब में और तक्षिला उसकी राजधानी थी। एक अन्य शाखा ने मथुरा में राज्य किया। चौथी शाखा पश्चिम तथा मध्य-भारत में आबाद हुई, जहाँ शकों ने चौथी शताब्दी तक शासन किया।

शक बेक्ट्रिया में यूनानी आधिपत्य को खत्म करने में सफल हुए। वे मूलतः मध्य एशिया के खानाबदोश थे जिन्हें एक अन्य मध्य एशियाई जनजाति यू-ची ने बेक्ट्रिया की सीमा पर स्थित अपने आवास से उखाड़ फेंका। फलस्वरूप शक भी यूनानियों के पीछे-पीछे भारत में आ गये। धीरे-धीरे स्थानीय शासकों को हटाकर शकों ने उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम भारत पर अधिकार कर लिया। भारत में शक-इतिहास को जानने के लिए विभिन्न प्रकार के स्रोत हैं। शकों का हवाला, यूनानी, यूनानी-रोमन, तथा चीनी वृत्तान्तों में भी मिलता है। शिलालेखीय तथा मुद्रा संबंधी स्रोत भी उपयोगी है। इस संबंध में सबसे पहली जानकारी एक ग्रंथ के रूप में महाभाष्य से मिलती है। पुराणों और महाकाव्यों में भी कम्बोज और यवनों के साथ-साथ शकों के बारे में भी जानकारी प्राप्त होती है।

भारत में पहला शक राजा मॉएस या मोगा जिसने गांधार में राज्य की स्थापना की। मॉएस के बारे में सिक्कों की शृंखला तथा अभिलेखों से भी जानकारी प्राप्त होती है जिनमें से एक अभिलेख कालांकित भी है। एक कालांकित ताँबे की पट्टी जो तक्षिला में प्राप्त हुयी है, इस बात की पुष्टि करती है कि बुद्ध की एक प्रतिमा मॉएस के समय में स्तूप में स्थापित की गयी। मॉएस के बाद, आजेए ने शासन किया। वह उत्तर भारत के अंतिम यूनानी राजा, हिषास ट्रेटस पर हमला करने में सफल हुआ।

शकों ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अपना शासन स्थापित किया, पर केवल पश्चिम भारत में ही चार शताब्दियों तक उनकी शक्ति कायम रही। पश्चिमी भारत का सबसे प्रसिद्ध शक शासक था, रुद्रामण प्रथम (130-152 ई.)। उसके राज्य की सीमायें सिंध, कच्छ, गुजरात, राजस्थान, कोणकन, नर्मदा घाटी, मालवा, काठियावाड़ तथा पश्चिमी दक्खन तक फैली हुई थी। रुद्रामण की सैनिक उपलब्धि, उसके राज्य की विशाल सीमायें तथा उसके अनेक व्यक्तिगत गुणों का उल्लेख जूनागढ़ के मशहूर शिलालेखों में किया गया। यह 150 ई. में लिखे गये तथा इनमें यह भी उल्लेख किया गया है कि उसके अधिकारी ने काठियावाड़ में सुदर्शन झील पर मौर्यों द्वारा बनवाये हुए बाँध की मरम्मत करवायी। इस झील के पानी से मौर्य काल से ही सिंचाई की जाती थी। यह विस्तृत शिलालेख पहला बड़ा शिलालेख है जो संस्कृत में लिखा गया। यह बात साफ है कि रुद्रामण ने संस्कृत को बढ़ावा दिया। यदा-कदा प्रतिकूल परिस्थितियों के बाद भी, रुद्रामण की मृत्यु के बाद शकों ने उस क्षेत्र में चौथी शताब्दी तक शासन किया।

पारथियन तथा शकों ने शासन की सत्रप व्यवस्था को अपनाया जो ईरान की अकेमेनिड और सेल्यूसिद्र व्यवस्था के अनुरूप थी। इसके अनुसार राज्य का विभाजन प्रान्तों में किया जाता था, जिनके शासन का कार्यभार सैनिक गवर्नरों के सुपुर्द था। इनको महाशत्रप (वरिष्ठ सत्रप) कहा जाता था। छोटे दर्जे के गवर्नर सत्रप कहलाते थे। यह गवर्नर स्वयं अपने शिलालेख खुदवाते और सिक्के जारी करते थे। यह इस बात की ओर ध्यान दिलाता है कि गवर्नर अपनी भूमिका निभाने में स्वतंत्र थे, जैसा कि इस युग के प्रशासनिक ढांचे में आम तौर पर नहीं देखा गया। शक राजा "राजाधिराज" (राजाओं का राजा) तथा महाराजा (महान राजा) जैसी पदवी भी ग्रहण कर लेते थे। यह उन्होंने यूनानी परंपरा से लिया।

23.6 पारथियन

हम पहले चर्चा कर चुके हैं कि प्राचीन भारत के संस्कृत ग्रंथों में शक-पहलवा शब्द शक तथा पारथियन दोनों को साथ-साथ संबोधित करता है। शक तथा पारथियन दोनों ने एक समय में उत्तर-पश्चिम भारत के विभिन्न भागों में शासन किया। पारथियन मूलतः ईरान के रहने वाले थे। ऐसा समझा जाता है कि वे भारत तथा ईरान के सरहदी क्षेत्र में तथा उत्तर-पश्चिम भारत में पारथियन शासकों के प्रतिनिधि बनकर आये। सीस्तान केशकों के पारथियन से निकट संपर्क थे। इसलिए हमें भारतीय शकों में मूल स्काईथियन तथा ईरानी पारथियन का मेल नजर आता है।

गॉडोफेयस सबसे प्रमुख पारथियन राजा हुआ। उसका राज्य काबुल से पंजाब तक फैला हुआ था, और संभवतः उसमें पारथियन साम्राज्य के कुछ ईरानी क्षेत्र भी शामिल थे। अलग-अलग समय पर जारी हुए सिक्के इस बात की पुष्टि करते हैं वह आधीनता की स्थिति से उठकर एक स्वतंत्र शासक बन गया। उसका नाम सेंट थामस से भी जुड़ा हुआ है। एक परंपरा के अनुसार सेंट थामस इजराईल से यात्रा करके गॉडोफायस के दरबार में आये, और भारत आकर उन्होंने ईसाई धर्म का प्रचार किया। पारथियनों के समय के चाँदी के सिक्कों की कमी स्पष्ट रूप से दिखायी देती है। यह भारतीय पारथियन साम्राज्य की साधारण आर्थिक स्थिति को प्रमाणित करता है। कुछ विद्वानों का विचार है, कि ऐसा भी हो सकता है पहले के शासकों—भारतीय यूनानी तथा शक-द्वारा बड़ी

मात्रा में जारी किए हुए चाँदी के सिक्कों को पारथियनों ने बड़े मूल्य के सिक्कों के लिए इस्तेमाल किया। साथ ही साथ कम मूल्य के सिक्के भी जारी किये गये होंगे जिसमें कीमती धातु की थोड़ी-सी मात्रा ही मिलायी गयी।

एबडागासेस, गॉडोफायस के तुरन्त बाद, उसका उत्तराधिकारी बना। जैसा कि दोनों के सामूहिक रूप से जारी किए हुए सिक्कों से जान पड़ता है, उसने कुछ समय तक अपने चाचा की अधिनस्थता में शासन किया। ऐसे बहुत से सिक्के हैं जिन पर मॉडोफायस और उसके भतीजे एडागासेस दोनों का नाम अंकित है। तक्षिला में सिरकप के पास खुदाई में मिले अनेक छोटे सिक्कों से पारथियन राज्य के अंत के बारे में मालूम होता है। समय के साथ-साथ पारथियन भारतीय समाज में घुलमिल गये।

बोध प्रश्न 1

1 √ या × का चिह्न लगाइए।

i) शुंग राज्य मौर्यों के तुरंत बाद स्थापित हुआ।

ii) ईसा के दो सौ वर्ष के पूर्व की अवधि से लेकर सन् 300 ई. तक के इतिहास की जानकारी के लिए पौराणिक वृत्तांत महत्वपूर्ण स्रोत है।

iii) कालिदास हर्षचरित्र का रचयिता था।

iv) मेनान्दर बौद्ध धर्म में परिवर्तित हुआ।

v) जूनागढ़ के शिला लेख संस्कृत में लिखे गये।

2 शुंग कौन थे? उनके शासन की रूप रेखा दीजिए। उत्तर 10 पंक्तियों में दीजिये।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3 उत्तर-पश्चिम भारत में शकों के शासन के महत्व पर 10 पंक्तियों में प्रकाश डालिये।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

4 ईसा के दो सौ वर्ष पूर्व से सन् 300 तक की अवधि के इतिहास को जानने के लिए आप किस स्रोत को सबसे अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं? 10 पंक्तियों में बताइये।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

23.7 कुषाण

अब हम कुषाण नाम के एक अन्य वंश की चर्चा करेंगे, जिसने उत्तर-पश्चिम भारत के बाहरी क्षेत्र पर पार्थियनों के बाद राज्य करना शुरू किया और धीरे-धीरे उत्तर भारत के अन्य क्षेत्रों में फैल गया। कुषाण यूहचिए थे, वे तोचारियन के नाम से भी जाने जाते हैं। उनका संबंध यूहची जनजाति के पांच कबीलों में से एक से था। यह खानाबदोश लोग थे, जो मूलतः उत्तर मध्य-एशिया के स्टेपीज़ (घास के मैदान वाले क्षेत्र) के रहने वाले थे और चीन के पड़ोस में बसे हुये थे। इन्होंने पार्थियनों को गांधार तथा शकों को बेक्ट्रिया क्षेत्र से उखाड़ फेंका। कुषाणों ने अपने राज्य को पहले भारत की सरहद के दूसरी ओर के क्षेत्र में मजबूत किया। धीरे-धीरे उनका आधिपत्य भारत में बढ़ने लगा और उन्होंने अपने राज्य क्षेत्र को सिंध घाटी के निचले भाग तथा गंगा के अधिकतर मैदानी भाग बनारस तक बढ़ा लिया। कुषाणों का साम्राज्य केवल एक शताब्दी से कुछ अधिक समय तक ही कायम रहा, पर उनके भारतीय समाज में समावेश तथा संस्कृति में योगदान का भारतीय मानस पर गहरा प्रभाव पड़ा। शक तथा पल्लव की भाँति, महाकाव्य, पुराण तथा दूसरे साहित्यिक स्रोतों में उनकी चर्चा की गयी है। कुषाणों के महत्व का एक विशेष कारण यह भी है कि उनका साम्राज्य पश्चिमी एशिया, चीन, भारत, मध्य एशिया तथा भूमध्य सागरीय सभ्यताओं का मिलन-स्थल बना।

सिक्के, शिलालेख तथा अन्य स्रोत दो कुषाण वंशों के बारे में जानकारी देते हैं। पहला वंश कुजुला कदाफिसेस से शुरू हुआ। उसने पांच यूहची जन-जातियों को मिलाया और भारत में प्रवेश करने में सफल होकर काबुल और काश्मीर में अपने राज्य की स्थापना की। कुजुला कदाफिसेस ने तांबे के अनेक प्रकार के सिक्के जारी किए, एक प्रकार के सिक्कों पर रोमन-शैली में पुरुष की अर्ध प्रतिमा मिलती है। विमा कदाफिसेस कुजुला कदाफिसेस का उत्तराधिकारी बना। उसने नये प्रकार के सिक्के जारी किए। भारतीय शासकों द्वारा नियत रूप से सोने के सिक्के जारी करने की प्रथा उसी के समय से शुरू हुई। उसने किसी हद तक सोने के सिक्के ढालने की रोमन प्रणाली अपनायी, जो धातु के वज़न पर निर्भर थी और यह व्यवस्था थोड़े संशोधन के बाद गुप्त काल तक जारी रही। यह स्पष्ट है कि विमा द्वारा जारी किये हुये सोने तथा ताम्बे के सिक्के उसके रोमन जगत से घनिष्ठ संपर्क की ओर संकेत करते हैं।

कनिष्क प्रथम कदाफिसेस शासकों का उत्तराधिकारी था। वह कुषाण शासकों में सबसे अधिक मशहूर है, इसका विशेष कारण था उसका बौद्ध धर्म से लगाव। पहले दो कदाफिसेस राजाओं से कनिष्क का क्या संबंध था, इसका रहस्य अभी तक बना हुआ है। पर यह बात स्पष्ट है कि वह भी मध्य एशियाई मूल का था, चाहे उसका पहले दो शासकों से कोई सीधा संबंध न हो। कनिष्क प्रथम के समय में कुषाण शक्ति अपनी चरम सीमा पर थी। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से उसका युग उत्तर भारत में सांस्कृतिक उन्नति तथा विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों से संबंध रखने वाले लोगों के समन्वय का युग था।

ऐसा समझा जाता है कि कनिष्क प्रथम सन् 78 से 144 ई. के बीच या शायद उसके बाद सिहांसन पर बैठा। आम तौर पर सन् 78 ई. से शुरू होने वाले युग को शक युग समझा गया है और सन् 78 ई. में ही संभवतः कनिष्क भी गद्दी पर बैठा। अपनी चरम सीमा पर कुषाण साम्राज्य मध्य प्रदेश में सांची तक तथा उत्तर प्रदेश में वाराणसी तक फैल गया था। पुरुषपुर के बाद जो आजकल के पेशावर के निकट था मथुरा दूसरा प्रधान नगर था। पुरुषपुर में कनिष्क ने एक बहुत बड़े स्तूप और मठ का निर्माण किया।

कनिष्क बौद्ध धर्म का महान् समर्थक तो था ही, उसका बौद्ध धर्म के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। बौद्ध धर्म के दर्शन और सिद्धांत पर विचार करने के लिये उसकी छत्र छाया में चौथी बौद्ध

सभा का आयोजन हुआ। बौद्ध के महायान स्वरूप से संबंधित धर्म सिद्धांतों को इस सभा में अन्तिम रूप दिया गया। धर्म प्रचार पर भी जोर दिया गया। फलस्वरूप बौद्ध भिक्षुओं ने उस युग में मध्य एशिया और चीन की यात्रा करना शुरू किया। कनिष्क ने कला तथा संस्कृत साहित्य को भी बढ़ावा दिया।

कनिष्क के उत्तराधिकारियों ने एक शताब्दी से अधिक की अवधि तक राज किया, पर कुषाण राज्य धीरे-धीरे कमजोर होता गया। कुछ शासकों ने वासुदेव जैसे भारतीय नाम भी रखे। तीसरी शताब्दी के मध्य में अफगानिस्तान तथा सिंधु नदी के पश्चिमी क्षेत्र में फैला कुषाण साम्राज्य ईरान के सासानियन शासकों ने हथिया लिया। उन्होंने पेशावर और तक्षिला पर कब्जा कर लिया जिसका परिणाम यह हुआ कि कुषाण इन शासकों के अधीन हो गये।

23.8 उत्तर भारत की स्थानीय शक्तियाँ

अभी तक हमने उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम भारत के प्रमुख वंशों की ऐतिहासिक रूपरेखा पर विचार किया जिन्होंने ईसा के 200 वर्ष पूर्व से सन् 300 ई. तक शासन किया। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि इन महाशक्तियों के साथ ही इसी युग में अनेक स्थानीय राज्य वंश और शक्तियां थीं जिन्होंने देश के कई कोनों में अलग-अलग समय पर शासन किया। यहां पर इनकी संक्षिप्त रूप में चर्चा की जायेगी।

हम कन्व या कन्वयान का हवाला पहले ही दे चुके हैं। शुंगों के बाद वासुदेव ने कन्वों के राज्य की बुनियाद रखी। उनकी शक्ति शायद मगध तक ही सीमित थी और थोड़े समय तक ही कायम रही। पुराणों में शासकों की उस श्रृंखला की चर्चा की गयी है। ऐसा समझा जाता है कि इस वंश के शासकों ने कुछ सिक्के भी जारी किये।

पश्चिम की ओर गंगा-यमुना के मैदान के ऊपरी भाग में अनेक स्थानीय वंशों ने शासन किया जिनका नाम हमें उनके द्वारा जारी किये सिक्को से मालूम होता है। इस तरह के सिक्कों के प्रमाण इस बात की पुष्टि करते हैं कि अयोध्या, कौसाम्बी, मथुरा तथा पांचाल जैसे छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्य लगभग एक ही युग में मौजूद थे। पंजाब पर जो पुष्यमित्र के समय में शायद शुंग राज्य का हिस्सा था, उसके उत्तराधिकारियों का कब्जा हो गया। यूनानियों ने रावी नदी तक के क्षेत्र पर अधिकार कर लिया था। बाद के शुंग शासकों की कमजोरी का फायदा उठाकर, तथा अपनी आर्थिक समृद्धि के बल पर रावी तथा यमुना के बीच रहने वाली क्षेत्रीय जनजातियाँ अपनी स्वतंत्रता का दावा करने लगीं। इनमें से कुछ के नाम इस प्रकार थे :

- औछुम्बर जिन्होंने रावी और व्यास के बीच के ऊपरी क्षेत्र पर अधिकार कर लिया।
- कुनिन्द, जिन्होंने शिवलिक पहाड़ी श्रृंखला के नीचे, व्यास तथा यमुना के ऊपरी भाग के बीच के क्षेत्र पर राज्य किया।
- त्रीगर्त ने रावी और सतलज के बीच के मैदान पर राज्य किया।
- यौध्येय प्रसिद्ध यौद्धा थे और उनका राज्य क्षेत्र सतलज और यमुना के बीच तथा पूर्वी राजस्थान के कुछ भागों में फैला हुआ था।
- अर्जुन्य, मालवा तथा सिबि जनजातियों का राज्य क्षेत्र राजस्थान के विभिन्न भागों में फैला हुआ था।

उडीसा में कलिंग एक अन्य क्षेत्र था जो अब महत्वपूर्ण हो गया। आपको याद होगा कि अशोक ने कलिंग के स्थानीय शासक से कलिंग दूसरी बार जीता, पर हमें स्थानीय शासन का नाम नहीं मालूम है। मौर्य काल के बाद के दिनों में स्थानीय शासकों की एक कड़ी सामने आती है जो महामेवाह्न के नाम से जानी गयी। उनका संबंध प्राचीन चेड़ी वंश से था। खारवेल, इस श्रृंखला का तीसरा शासक था। इसकी पुष्टि भुवनेश्वर के निकट उदयगिरि पहाड़ियों पर उसके द्वारा खुदवाये हुये शिला लेखों से होती है। इन लेखों में उसके राज्य के तेरहवें साल तक का वार्षिक वृत्तान्त है। इनके अनुसार खारवेल एक महान राजा था जिसने उत्तर, पश्चिम तथा दक्षिण भारत में सैनिक विजय प्राप्त की। उसने अपनी प्रजा के लिये अनके जनोपयोगी कार्य किये तथा जैन धर्म का अनुयायी होने के नाते उसने जैन मुनियों को आश्रय देने के लिए उदयगिरि पहाड़ियों में अनेक गुफायें भी खुदवायीं।

23.9 मध्य एशिया तथा उत्तर भारत के सम्पर्क का महत्व

विदेशी शासकों के उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम भारत के क्षेत्रों पर राजनैतिक अधिकार के अंतर्गत नवीन सांस्कृतिक तत्वों का भारतीय समाज की धारा में समावेश अन्तर्निहित था। मध्य एशिया से सम्पर्क ने व्यापार, टेक्नालॉजी, कला आदि क्षेत्रों को प्रभावित किया जिसकी चर्चा हम अलग-अलग करेंगे।

23.9.1 व्यापार और तकनीकी

विदेशियों के भारत में प्रवेश से मध्य एशिया और भारत के बीच स्थायी रूप से व्यापार सम्बन्ध स्थापित हुये। अफगानिस्तान से व्यापार तो पहले से हो रहा था, पर अब मध्य एशिया के साथ सम्पर्क ने व्यापार के नये रास्ते खोले। इनमें से एक रास्ता प्राचीन सिल्क रूट के नाम से प्रसिद्ध हुआ। विभिन्न देश तथा मूल के व्यापारियों ने व्यापार केन्द्र तथा बस्तियां स्थापित कीं जहाँ से वे कारोबार चलाते थे। ऐसे कुछ केन्द्र थे कशगर, यारकन्द, खोतान, मीरन, आदि। व्यापार को न केवल भारतीयों ने, बल्कि बौद्ध प्रचारकों ने भी बढ़ावा दिया। व्यापार की उन्नति से यातायात बेहतर हुआ। कुषाणों का सिल्क रूट पर नियंत्रण था। यह मार्ग चीन से शुरू होकर, मध्य एशिया, अफगानिस्तान तथा पश्चिमी एशिया से गुजरता था और इस मार्ग के द्वारा व्यापार कुषाणों की आमदनी का एक बड़ा स्रोत था। वे व्यापारियों पर चुंगी कर लगाते थे। भारत को मध्य एशिया के अलताई पर्वत से काफी मात्रा में सोना प्राप्त हुआ। सोने की प्राप्ति रोमन साम्राज्य के साथ व्यापार से हुयी होगी। यह बात ध्यान देने योग्य है कि, कुषाण शासकों ने बड़े पैमाने पर सोने के सिक्के जारी किये। व्यापार संबंध और मार्गों की विस्तृत जानकारी इस खण्ड की इकाई 24 में दी जाएगी।

शक तथा कुषाणों ने युद्ध विद्या तथा अश्वारोही सेना में अनेक नवीन तरीकों को शामिल किया। घुड़सवारी काफी लोकप्रिय हो गयी। उन्होंने घोड़े की लगाम और जीन को प्रचलित किया। उनका प्रयोग हमें समकालीन बौद्ध मूर्तियों में साफ नजर आता है। अफ़गानिस्तान के बेगरम क्षेत्र में खुदाई में मिली टेराकोटा (पक्की मिट्टी) की अनेक मूर्तियों पर घुड़सवारी के खेल का चित्रण इस युग में घुड़सवारी के बढ़ते हुए शौक का प्रमाण है। मध्य एशिया से सैनिकों के प्रयोग के लिये टोपी, हेलमेट (टोप) तथा बूट (जूता) भी भारत में आए। युद्ध के यह नवीन यंत्र उत्तर-पश्चिम भारत में प्रचलित हुये।

23.9.2 भौतिक अवशेष

मूर्ति, बरतन तथा सिक्के हमें नवीन तकनीक के प्रभाव की स्पष्ट जानकारी देते हैं। शक-कुषाण युग में गृह निर्माण की कला में प्रगति हुयी। उत्तर भारत में की गयी खुदाई में इमारतों के अनेक अवशेष प्राप्त हुये। इनसे छत तथा फर्श दोनों ही में पक्की ईंटों के प्रयोग का पता चलता है। ईंट के बने हुये कुएं भी इस युग में प्रचलित थे। इस युग के बरतन, लाल मिट्टी के बनते थे। कुछ पर पालिश भी की जाती थी, बनावट में कुछ औसत दर्जे के और कुछ उत्तम और सुन्दर थे। प्राप्त हुये बरतनों में पानी छिड़कने के तथा टोंटीदार बरतन प्रमुख है। मध्य एशिया में प्राप्त कुषाण अवशेषों में भी लाल रंग की वस्तुएं मिलती हैं। कुछ कुषाण सिक्कों का आकार रोमन सिक्कों से प्रभावित लगता है। कुषाण सिक्कों की अपनी मौलिकता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, पर इसमें संदेह नहीं कि अनेक सिक्कों में भारतीय यूनानी शैली का रूपांतर दिखायी देता है।

23.9.3 राज्य तंत्र

शक तथा कुषाण दोनों ही ने उस धारणा पर बल दियां कि राजत्व का ईश्वर से सीधा सम्बन्ध है। कुषाण राजा ईश्वर के पुत्र कहे जाते थे, यह शायद चीन का प्रभाव था। कभी ऐसा भी हुआ कि उन्होंने रोमन पदवी सीजर को भी एक भारतीय रूप देकर ग्रहण किया। राजा अपने प्रभुत्व को शक्तिशाली रूप में प्रदर्शित करने के लिए ऐसा करता था। कानून बनाने वाले ब्राह्मण मनु की रचनाओं में भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये गये हैं।

शकों ने शासन की सत्रप व्यवस्था अपनायी। राज्य सत्रपों में विभाजित था। यह भी प्रमाण मिलता है कि प्रशासन अधीनस्थ शासकों द्वारा चलाया जाता था। भारतीय-यूनानी शासन काल में नगर तथा अन्य छोटी इकाइयों के प्रशासन का कार्य **मेरी दर्ख** जैसे अधिकारियों की सहायता से किया जाता था। शिला लेखीय तथा मुद्रा संबंधित स्रोतों से अनेक क्षात्रप और महाश्रात्रप के नामों की जानकारी होती है। (इसी इकाई में 23.5 देखें)। विदेशी शासकों में से कुछ ने वंशानुगत शासन

की प्रणाली में युगल शासकों की प्रथा को भी शामिल कर लिया। अर्थात् छोटे और बड़े पद के दो राजा साथ-साथ एक राज्य का शासन करें। जैसे पिता और पुत्र का एक साथ राज्य करना। संभवतः यूनानियों द्वारा सैनिक गवर्नर नियुक्त करने की प्रथा शुरू की गयी। इन गवर्नरों को सत्रातेगों की पदवी दी जाती थी। उनकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण थी क्योंकि उन्हें स्थानीय जनता के बीच राजा के प्रभुत्व को बनाये रखना था तथा उत्तर-पश्चिम की ओर से आक्रमण को रोकना था।

23.9.4 धर्म और कला

इस इकाई में पहले ही चर्चा हो चुकी है कि मेनान्दर तथा कनिष्क जैसे कुछ शासकों ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया। कई शासक विष्णु तथा अन्य कई शिव के उपासक थे। हमारे पास कुषाण शासक वासुदेव का उदाहरण है, जिसका नाम कृष्ण के अनेक नामों में से एक है तथा जिसकी विष्णु के अवतार के रूप में पूजा की जाती थी। कई कुषाण शासक विष्णु और बुद्ध दोनों की पूजा करते थे, उनकी प्रतिमा अनेक कुषाण सिक्कों पर अंकित है। हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि सांस्कृतिक समावेश की इस प्रक्रिया के फलस्वरूप विदेशी शासकों ने भारतीय विचारधारा तथा उपासना के तरीकों को अपनाया। उन शासकों ने भारतीय कला तथा साहित्य को भी प्रोत्साहित किया। इस बात के प्रमाण मौजूद हैं कि विदेशी तथा भारतीय संगतराश, राजगीर तथा कारीगरों ने एक दूसरे को प्रभावित किया। यूनानी तथा रोमन शैली में निपुण कारीगरी का भारतीय शिल्पियों तथा कारीगरों से सम्पर्क स्थापित किया। ईसी सम्पर्क और आदान-प्रदान के फलस्वरूप, गांधार की बुद्ध मुर्तियों की शैली ने जन्म लिया। यह उस क्षेत्र में मौजूद अनेक सांस्कृतिक धाराओं के समन्वय का प्रतिकात्मक उदाहरण है। गांधार कला का प्रभाव मथुरा तक पहुँचा। जहां हमें इस युग की अनेक सुन्दर मुर्तियां तथा अन्य कलाकृतियां भी मिलती है। कला के विभिन्न प्रकारों पर विस्तृत चर्चा इसी खण्ड में कला तथा वास्तुकला से संबंधित इकाई में की जायेगी।

बोध प्रश्न 2

1) √ या × का चिन्ह लगाइये।

   क) कुषाण यूह ची जनजाति से संबंध रखते थे।

   ख) कन्वयान एक स्थानाय वंश था जो मगध में शासन करता था।

   ग) यौध्येय प्रसिद्ध यौद्धा थे जो सतलज और रावी के बीच के क्षेत्र में राज्य करते थे।

   घ) शकों ने भारत में सत्रप व्यवस्था लागू की।

2) निम्नलिखित विषयों पर 15 पंक्तियों में जानकारी दीजिये।

   क) मध्य एशियाई सम्पर्क का प्रभाव।

   ख) भारतीय समाज की धारा में विदेशियों का समावेश।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

23.10 सारांश

यूनानी, शक, पारर्थियन तथा कुषाण सभी का समय के साथ-साथ भारतीय समाज में विलय हो गया। वे भारत में योद्धा के रूप में आये, उस लिये उनमें से अधिकतर भारतीय समाज में योद्धा वर्ग या क्षत्रियों के रूप में सम्मिलित हो गए। ब्राह्मण कानून लागू करके उन्हें अपनाने की समस्या ब्राह्मणों ने इस प्रकार सुलझाई कि उन्हें क्षत्रियों के उस वर्ग में रखा गया जो अपने कर्तव्य का पालन करने में असफल रहे। इस प्रकार विदेशियों की एक बड़ी संख्या को ब्राह्मणवादी व्यवस्था में स्थान दे दिया गया जिसके बिना भारतीय सामाजिक व्यवस्था अधूरी रह जाती। उस इकाई के दौरान हमने मौर्य काल के बाद से सन् 300 ई. तक की मुख्य राजनैतिक धाराओं का अनुमान लगाया। उत्तर भारत में राजनैतिक शक्ति अधिकांश उन्हीं लोगों के हाथ में थी जो मूलतः मध्य एशिया के थे और उत्तर पश्चिमी सरहद से भारत में आये। फलस्वरूप अनेक देशों के बीच न केवल व्यापार और यातायात मार्ग स्थापित हुये, बल्कि इतने बड़े पैमाने पर आबादी तथा विचार धारा के आवागमन का सांस्कृतिक ढांचों पर भी बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

23.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) i) √ ii) √ iii) × iv) √ v) √
2) भाग 23.3 देखें
3) भाग 23.5 देखें
4) भाग 23.2 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) i) √ ii) √ iii) × iv) √
2) क) भाग 23.9 देखें
   ख) भाग 23.7 देखें।

इकाई 24 व्यापार तथा शहरीकरण का विस्तार

इकाई की रूपरेखा

24.0 उद्देश्य
24.1 प्रस्तावना
24.2 भौगोलिक पृष्ठभूमि
24.3 राजनैतिक ढांचा
24.4 व्यापार का विस्तार तथा वस्तुओं का उत्पादन
  24.4.1 देशीय व्यापार
  24.4.2 विदेशी व्यापार
  24.4.3 मुख्य व्यापार मार्ग
  24.4.4 शहरी केन्द्र
24.5 व्यापार में धर्म की भूमिका
24.6 व्यापारियों की स्थिति
24.7 सारांश
24.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

24.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ सकेंगे कि
- व्यापार की वस्तुओं का उत्पादन अथवा उनकी प्राप्ति किस प्रकार होती थी
- व्यापार कैसे चलता था
- उत्तरी भारत में व्यापार के मुख्य मार्ग कौन से थे
- विकसित होने वाले मुख्य शहरी केन्द्र कौन से थे
- भारत के अन्य देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्धों का स्वरूप क्या था
- समाज में व्यापारियों की स्थिति कैसी थी ?

24.1 प्रस्तावना

चौथे खण्ड में आपने पढ़ा कि उत्तर वैदिक काल में हुये विकास छठी शताब्दी ई. पूर्व में शहरों के विकास के रूप में किस प्रकार प्रतिफलित हुए। यह आरंभिक नगर गंगा अथवा इसकी मुख्य सहायक नदियों, जो कि संचार में प्रयोग की जाती थी, के तट पर स्थित थे। इनमें से अधिकतर राजनैतिक केन्द्र एवं आरंभिक राज्यों की राजधानी थे। इनमें से कुछ में मिट्टी के परकोटे एवं बांध होते थे। लेकिन सामान्यत: यह बस्तियाँ अनियोजित थीं। इन स्थलों की पुरातात्विक खुदाई बहुत कम हुई है तथा इस समय महलों के होने के प्रमाण नहीं मिल सके हैं। मौर्यकाल के समय में आकर ही जबकि राजधानी राजगृह से हटाकर पाटलीपुत्र बनायी गयी, स्मारकीय वास्तुकला के चिन्ह मिलने आरंभ होते हैं। इन आरंभिक विकासों की तुलना में शहरीकरण की प्रक्रिया उत्तर मगध काल में तीव्र हो गयी शहरों की संख्या बढी तथा अब इनमें राजनैतिक तथा व्यापारिक गतिविधियाँ एकीकृत हो गयी आवासीय घरों तथा किलेबंदी एवं सार्वजनिक इमारतों दोनों में ही ईंट का प्रयोग बड़े पैमाने पर होने लगा। इसी काल में ही भव्य धार्मिक स्मारक बनाए तथा अलंकृत किए गए।

इसी प्रकार प्रथम सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व के मध्य से व्यापारिक गतिविधियां आरंभ हो गयी थी। यह व्यापार मुख्यत: नमक, धातु आदि जैसी आवश्यक वस्तुओं से संबंधित था। मौर्य काल में आरंभिक मार्गों का महत्व और बढ़ गया। इस विस्तार के दो कारण थे। दकन में खनन किये जाने वाले सोना, हीरा एवं मणि जिन्हें कि व्यापार मार्गों से ले जाया जाता था, राजकीय खजाने की आवश्यकता की पूर्ति करते थे राज्य व्यापारियों से कर वसूल करके राजस्व प्राप्त करता था तथा व्यापार को प्रोत्साहन देता था।

राज्य द्वारा अपनी सेना एवं प्रशासन तंत्र को वेतन भुगतान करने के लिए व्यापार एवं कृषि राजस्व वसूल करना आवश्यक था। हमें यह भी ज्ञात है कि व्यापार थल मार्गों तथा समुद्री मार्गों दोनों ही के द्वारा होता था, मौर्यकाल में, समुद्री व्यापार मुख्यतः तटवर्ती क्षेत्रों में होता था। पश्चिमी तटों के बन्दरगाह संभवतः नर्मदा के मुहाने पर भरूच तथा आधुनिक बम्बई के निकट सोपर थे। पूर्व में ताम्र लिपि अथवा आधुनिक तामलुक बर्मा की ओर जाने वाले जहाजों के लिए एक महत्वपूर्ण मार्ग था। आइए देखें कि इन जल एवं थल मार्गों का द्वितीय एवं प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में किस प्रकार विस्तार हुआ।

24.2 भौगोलिक पृष्ठभूमि

इस इकाई में हम भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी भाग में होने वाली गतिविधियों का अध्ययन करेंगे इस उद्देश्य के लिए विभाजन रेखा विंध्य क्षेत्र होगी। अतः दकन इस इकाई के अध्ययन क्षेत्र से मुख्यतः बाहर होगा।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से कुछ भौगोलिक विशिष्टताएं अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी भाग के प्रधान नदी समूह सिंधु तथा गंगा है। गंगा नदी समूह सिंधु नदी समूह से बिल्कुल भिन्न है। उत्तर में बस्तियों की स्थिति तथा विकास पर भी इसका प्रभाव पड़ा है। हिमालय से निकल कर बंगाल की खाड़ी तक पहुंचने तक गंगा में कई सहायक नदियों का पानी मिलता है। यमुना, गोमती, घाघरा, गंडक आदि नदियों के गंगा में मिलने से इसमें इतना पानी बढ़ जाता है कि गर्मियों के महीनों में भी सिंचाई एवं कृषि के लिए इसमें पर्याप्त पानी होता है। दक्षिण पश्चिम मानसून से मुख्यतः मध्य एवं निचली गंगा घाटी में वर्षा होती है। तथा यह क्षेत्र एक बड़ी जनसंख्या के भरण पोषण की दृष्टि से काफी उपजाऊ है। केवल यही नहीं कि गंगा घाटी कृषि के लिए काफी उपजाऊ है। यह नदी नौ परिवहन के लिये उपयुक्त है। प्राचीन काल से गंगा से वस्तुओं एवं मनुष्यों का आवागमन होता रहा है तथा यह नदी उत्तर-पश्चिमी शहरों को निकटवर्ती तटों से जोड़ने वाली उत्तर की रक्षा-रेखा रही है।

इसके विपरीत सिंधु घाटी में दक्षिण-पश्चिम मानसून से काफी कम वर्षा होती है इसकी मुख्य सहायक नदियां झेलम, चेनाब, रावी, सतलज तथा बेयास पंजाब में मिलती है जहाँ का क्षेत्र उपजाऊ है। किन्तु इसके अतिरिक्त अरब सागर तक सिंधु रेगिस्तान से होकर बहती है जिससे निरंतर इसका पानी कम होता जाता है। इसके कारण कृषि उत्पादन तथा नौ संचालन की दृष्टि से इस नदी की उपयोगिता काफी कम हो गयी।

एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य हिमालय के दरों की स्थिति है। यह दर्रे व्यापार की वस्तुएं भारत के अन्दर आने तथा भारत एवं मध्य एशिया के बीच सम्पर्क का महत्वपूर्ण माध्यम रहे हैं।

24.3 राजनैतिक ढांचा

उत्तरी भारत की राजनैतिक परिस्थिति की समीक्षा यहां आवश्यक है क्योंकि इसी इकाई में आगे चलकर हम एक ऐसे प्रश्न पर चर्चा करेंगे जिससे इस परिस्थिति का संबंध है व्यापार पर नियंत्रण किसका था? इसका नियंत्रण राजाओं एवं शासकों के हाथ में होता था अथवा व्यापारियों के हाथ में? आपको ज्ञात है कि मौर्य काल में मगध शक्ति का केंद्र बना हुआ था किन्तु मौर्य वंश के पतन के साथ ही मगध की प्रधानता समाप्त हो गयी और कई नए केंद्र विकसित हुए। गंगा घाटी, विशेषकर मगध पर ईसवी युग के आरंभ तक शुग एवं उसके बाद कण्वों का शासन बना रहा।

उत्तर-पश्चिम में भारत-यूनानी राजा थे जिनका इतिहास मुख्यतः उनके द्वारा जारी की गयी मुद्राओं से जाना जाता है। उनके शासन का अन्त मध्य एशिया के खानाबदोश जनजातियों द्वारा उन पर आक्रमण के साथ हुआ इनमें प्रथम आक्रमण पार्थियनों तथा शकों द्वारा तथा दूसरा यूह-ची जनजाति की ओर से हुआ। इन्होंने काबुल तथा कश्मीर पर अधिकार कर लिया तथा कुषाण राजाओं की परंपरा आरंभ की। सबसे महत्वपूर्ण कुषाण राजा कनिष्क था, यद्यपि उसके शासन का निश्चित काल अभी भी विवाद का विषय बना हुआ है। कुषाणों की राजधानी आधुनिक पेशावर के निकट पुरुषपुरा थी। मथुरा को लगभग दूसरी राजधानी का स्तर प्राप्त था। उनका राज्य पूर्व में वाराणसी तथा दक्षिण में सांची तक फैला हुआ था। कनिष्क के काल में मध्य एशिया तथा चीन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बने तथा इन क्षेत्रों में स्थलमार्ग व्यापार को उन्नति मिली

उत्तर भारत में शक, पार्थव तथा कुषाण वंशों के अतिरिक्त भारी संख्या में स्थानीय शासक भी थे जो विभिन्न स्थानों पर शासन करते थे इनमें से पंजाब एवं राजस्थान के कई शासकों ने मुद्राए भी जारी की। द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व के अंतिम वर्षों तथा चौथी शताब्दी ईसवी के आरंभिक वर्षों के बीच लगभग 175 प्रकार की मुद्राएं प्राप्त हुई हैं। इसी प्रकार निचली गंगा घाटी तथा उड़ीसा तट के आसपास पुरी-कुषाण नाम से जानी जाने वाली मुद्राएं भारी संख्या में मिली है।

अतः हम कह सकते हैं कि उत्तर एवं उत्तर-पश्चिम भारत में कई बड़े एवं छोटे वंश शासन करते थे। परिणामतः स्थलमार्ग विभिन्न राज्यों से होकर निकलता होगा। संभवतः प्रत्येक शासक अपने केंद्रों पर वस्तुओं के विक्रय पर कर वसूलता होगा। व्यापारियों को सामान्यतः सुरक्षा प्रदान की जाती थी तथा व्यापार को बढ़ावा दिया जाता था।

24.4 व्यापार का विस्तार तथा वस्तुओं का उत्पादन

इस संदर्भ में एक प्रश्न यह उठता है कि उत्तर गुप्त काल में व्यापार गतिविधियों को बढ़ावा मिलने के क्या कारण थे? इस का उत्तर केवल एक नहीं हो सकता क्योंकि इसके कई कारण थे।

- कृषि से उत्पादन अब अतिरिक्त मात्रा में हो रहा था। इस कारण से सामाजिक वर्गों का जन्म हुआ जिन्हें विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की आवश्यकता महसूस हुई जो कि केवल व्यापार द्वारा ही प्राप्त की जा सकती थी। कृषि उत्पादन अपने आप में व्यापार की वस्तु बन गए थे क्योंकि शहरों में रहने वाली जनसंख्या अपने लिए भोजन का उत्पादन नहीं करती थी।
- बौद्ध तथा जैन मत जिनके अब भारी संख्या में अनुयायी हो चुके थे, दोनों ही धन संग्रहण तथा निवेश को प्रोत्साहन देते थे तथा व्यापार अब उच्च स्तरीय व्यवसायों में गिना जाता था। अतः हम देखते हैं कि व्यापारियों तथा बौद्ध संघों के बीच निकट सम्बन्ध थे तथा व्यापार मार्गों के मुख्य स्थानों पर बौद्ध मठ बनाए गये थे।
- शहरी केन्द्रों के विकास का अर्थ था कि उपभोक्ता का एक ऐसा वर्ग उदयीमान था जिसे जीवन यापन तथा विलास की वस्तुओं की आवश्यकता थी।

इस आंतरिक कारणों के साथ-साथ विदेशों में भारतीय माल की मांग भी एक कारण थी। इस काल में उभरने वाले दो मुख्य साम्राज्य पश्चिम रोमन साम्राज्य तथा चीन में उत्तर हान साम्राज्य थे, रोमन साम्राज्य के अंतर्गत पूर्व के उत्पादनों जैसे मसाले, सुगन्धित लकड़ी आदि की काफी मांग थी। इसी प्रकार उत्तर हान साम्राज्य ने व्यापारियों को काफी प्रोत्साहन दिया जिसके कारण भारत, मध्य एशिया तथा चीन के बीच सम्पर्क बढ़ता गया। व्यापार मार्गों के वर्ग में हम चर्चा करेंगे कि देशीय व्यापार मार्ग विदेशी व्यापार तंत्र से किस प्रकार जुड़े किन्तु इस बिन्दु पर हम इस काल के हस्तकला उत्पादन के प्रमाणों का विश्लेषण करेंगे।

देश भर में बौद्ध स्थलों से भारी संख्या में अभिलेख प्राप्त हुए है। इन अभिलेखों में बौद्ध संघों को दिए जाने वाले अनुदानों तथा भेंटों का उल्लेख है। साथ ही इनमें कुछ व्यवसायों एवं व्यवसायिक वर्गों की संपन्नता का भी उल्लेख मिलता है।

अतएव मथुरा में मिले अभिलेखों में व्यापारियों की विभिन्न श्रेणियों जैसे वणिक, सर्थवाह, श्रेष्ठिन तथा विभिन्न व्यवसायों जैसे सुनार, जौहरी, कोषपाल, लौह व्यापार आदि का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त इनमें शिल्पी संघ, जिसमें से एक को आटा बनाने वाले शिल्पी संघ के रूप में प्रमाणित किया है, का भी उल्लेख है। वस्तुकारों तथा शिल्पी संघ के विषय में जानकारी आरंभिक बौद्ध साहित्य तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी मिलती है। एक कला के विशेषज्ञ समूहों के एक साथ किसी गांव में रहने के उल्लेख मिलते हैं। उदाहरण के लिए जातकों में काशी के एक सीमा स्थिति गांव का उल्लेख है जहां भारी संख्या में बढ़ई रहते थे तथा व्यापारी उक्त गांव व्यापार की दृष्टि से जाते रहते थे। माल प्राप्त करने का एक अन्य तरीका बन्दरगाहों का भ्रमण करना होता था। जब कोई जहाज बन्दरगाह पहुंचता था तो व्यापारी माल खरीदने के लिए वहां इकट्ठे हो जाते थे। बहुधा उन्हें जहाज़ के माल में अपना हिस्सा सुरक्षित करने के लिए पेशगी भी देनी पड़ती थी।

अर्थशास्त्र के अनुसार कुछ दस्तकार अपने सहयोगियों के साथ स्वतंत्र रूप से कार्य करते थे तथा अन्य शिल्पी संघ में संगठित थे। अभिलेखों में इन दस्तकारों द्वारा किए गए अनुदानों का उल्लेख मिलता है तथा पुरातात्विक खुदाई से इनकी कला के नमूने भी प्राप्त हुए। कपड़ा बनाना काफी महत्वपूर्ण दस्तकारी कला थी तथा सूती कपड़े भारत से निर्यात किए जाते थे। उत्तर में मथुरा

और वाराणसी सहित कपड़ा उत्पादन के कई केंद्र थे। मथुरा में एक अनुदान एक रंगरेज़ की पत्नी द्वारा किया गया था। दस्तकारों की अन्य श्रेणियों में जौहरी, इत्रसाज़ तथा लुहार थे। आरंभिक ऐतिहासिक स्थलों पर मनको तथा अन्य आभूषणों की प्राप्ति प्रचुर मात्रा में हुई है। हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि उत्तर में उज्जैन मनके बनाने का मुख्य केंद्र था। यहां मनके अर्ध बहुमूल्य पत्थरों, कांच, हाथी दांत तथा मिट्टी के बनाए जाते थे तथा उत्तर की ओर कई केंद्रों पर इनकी बड़ी मांग थी। सांची स्थित अभिलेखों पर हाथीदांत आकृतियों तथा हाथीदांत कर्म के उत्कृष्ट उदाहरण सौभाग्यवश सुरक्षित बचे हुए है। बेगराम अथवा अफगानिस्तान के प्राचीन कपिसा में हुई खुदाई में हाथीदांत गठित आकृतियां भारी संख्या में प्राप्त हुई हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस काल में व्यापार में विभिन्न प्रकार की वस्तुएं विद्यमान थी। इनमें विलास की वस्तुएं जैसे हाथीदांत की वस्तुएं, आभूषण, मनके, मोती, हीरे तथा अन्य बहुमूल्य पत्थर तथा सामान्य प्रयोग की वस्तुएं जैसे कपड़े, कृषि उत्पादन तथा लौह उपकरण आदि शामिल है। निस्संदेह इनमें से कई वस्तुएं निर्यात भी की जाती थी जिन पर अलग से चर्चा की जाएगी। व्यापार की एक अन्य वस्तु संभवतः शराब थी। अर्थशास्त्र में मद्य के उत्पादन पर विस्तार से चर्चा की गयी है। इसकी लोकप्रियता का प्रमाण इस काल की मूर्तिकला में विशेषकर संघोल एवं मथुरा में चित्रित मदपान दृश्यों से मिलते हैं।

24.4.1 देशीय व्यापार

एक ओर जहां मिलिंद पण्ह तथा जातक जैसे साहित्य स्रोतों से व्यापार तंत्र के संगठन के विषय में जानकारी मिलती है, इस विषय में अतिरिक्त प्रमाण पुरातात्विक शिल्प तथ्य जैसे मुद्राओं, मुहरों तथा मुद्रांकणों से प्राप्त हो जाते है मिलिंद पण्ह का रचनाकाल ईसवी युग के आरंभ के लगभग है। इसका मूलपाठ अब उपलब्ध नहीं है तथा जो पाठ उपलब्ध है वह मूलपाठ का पाली अनुवाद है जो कि श्री लंका में काफी पहले तैयार किया जा चुका था। पाली में ही रचित जातक कथाओं की संख्या पांच सौ है तथा इन कथाओं में बुद्ध के पूर्व जन्मों का उल्लेख मिलता है। साथ ही इनमें इस काल की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण भी मिलता है। बौद्ध स्मारकों की नक्काशी से हमें पता चलता है कि इनमें से कई कथाएं प्रथम-द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व में प्रचलित थी। जातको से हमें ज्ञात होता है कि व्यापारिक गतिविधियों के विभिन्न तरीके प्रचलित थे तथा वस्तुओं का मूल्य निश्चित करने की भी कई पद्धतियाँ थी। उदाहरण के लिए घोड़ों, हाथियों और मणिकों जिनका प्रयोग मुख्यतः शासक वर्ग करता था, के मूल्य का निर्धारण राजसभा में मौजूद एक मूल्यांकक करता था। श्रेष्ठतम् घोड़े पश्चिम एशिया तथा मध्य एशिया से आते थे। यह घोड़े विशिष्ट व्यापारियों द्वारा लाए एवं बेचे जाते थे। पूर्वकालीन पाली एवं संस्कृत ग्रंथों में इन व्यापारियों का उल्लेख अश्व व्यापारी के रूप में मिलता है। व्यापारी शिल्प संघों में संगठित होते थे। अन्य व्यापारी निजी धन से व्यापार चलाते थे। कुछ व्यापारी केवल वित्त निवेश करके व्यापारियों को धन उपलब्ध कराते थे। इन भिन्न व्यापारियों के लिए संबोधन भी भिन्न थे वणिक सामान्य व्यापारी होता था, सेठी धनदाता होता था तथा सार्थवाह सुदूर प्रदेश से माल लाने वाले कारवां का मुखिया होता था।

इन साहित्यिक उल्लेखों के अतिरिक्त मुहरों, मुद्रांकणों तथा मुद्राओं से मिलने वाले प्रमाण भी हैं मुहर एक छाप होती थी जिस पर उसके स्वामी का नाम अथवा कोई चिन्ह बना होता था जबकि किसी वस्तु पर इसकी छाप को मुद्रांकण कहा जाता था। मुहरे विभिन्न वस्तुओं जैसे पत्थर, हाथीदांत ताम्र, सीसा आदि की बनी होती थी तथा इनका प्रयोग पहचान तथा माल की सुरक्षा के लिए होता था। वस्तुओं की आपूर्ति के पहले माल को रस्सी से बांध दिया जाता था तथा गांठ के ऊपर गीली मिट्टी लगा कर उस पर मुहर लगा दी जाती थी। इसके बाद मिट्टी को धूप अथवा गर्मी पहुंचा कर सुखा दिया जाता था। उत्तर भारत में पुरातात्विक स्थलों पर इस प्रकार के मिट्टी पर मुद्रांकण तथा उनके पिछले भाग पर रस्सियों के निशान सहित भारी संख्या में मिले हैं।

व्यापारिक गतिविधियों का महत्वपूर्ण प्रमाण मुद्राओं के चलन से मिलता है। मौर्य काल में चांदी की अंकित मुद्राओं के साथ ढली हुई गैर अंकित ताम्र मुद्राओं का भी चलन था उत्तर मौर्य काल में मुद्राओं के प्रकार एवं संख्या में भारी बढ़ोत्तरी हुई। मुद्राओं पर अंकन आरंभ हुआ तथा इनकी ढलाई में काफी सुधार आया, ताम्र सिक्कों की ढुलाई के लिए लगभग 100 ईसा पूर्व पुराने सांचे विभिन्न स्थानों जैसे खोकराकोट (जिला रोहतक), सुनेत (जिला लुधियाना), तक्षशिला तथा सांची में हज़ारों की संख्या में प्राप्त हुए हैं। उत्तरी भारत के गण संघों तथा स्थानीय वंशों द्वारा लगभग 200 प्रकार के सिक्के जारी किए गए थे।

उत्तर-पश्चिम के भारतीय-युनानी राजाओं ने कई प्रकार की आकृति चित्रित सुन्दर मुद्राएं जारी कीं, जिनका भारत में कई शताब्दियों तक चलन बना रहा। चांदी तथा ताम्र की इन मुद्राओं पर

द्विभाषी अभिलेख अंकित होते थे। मुद्रा के एक ओर यूनानी भाषा एवं लिपि में तथा दूसरी ओर प्राकृत भाषा में सामान्यतः खारोष्ठी लिपि में अभिलेख अंकित होते थे पश्चिमी भारत में क्षत्रपों की मुद्राएं काफी महत्व रखती है क्योंकि इनमें शक युग के प्रयोग के आरंभिक चिन्ह मिलते हैं जिससे काल निर्धारण के लिए निश्चित आधार प्राप्त हो जाता है। आरंभिक ईसवी शताब्दियों की मुद्रा शृंखला का एक अन्य महत्वपूर्ण उदाहरण कुषाणों की मुद्राएं है, ताम्र के अतिरिक्त कुषाणों ने सोने की मुद्राएं भी ढाली जिन पर भारतीय, यूनानी तथा ईरानी देवताओं की विभिन्न आकृतियां अंकित है। मुद्राओं के प्रकार एवं व्यवस्था की यह बहुलता धन के विस्तृत स्तर पर इस्तेमाल का द्योतक है।

अर्थशास्त्र में वेतन मुद्रा के रूप में भुगतान किए जाने का उल्लेख है। जातक कथाओं में ज़मानत देकर माल खरीदने तथा व्यापारियों द्वारा ऋण पत्र देकर धन उधार लेने का उल्लेख है। हमें यह भी ज्ञात है कि शिल्पी संघ धरोहर के रूप में रखकर धन पर ब्याज देते थे, जिसका उल्लेख मथुरा के एक अभिलेख पर अंकित मिलता है। देशी मुद्राओं के साथ विदेशी सिक्के, विशेषकर रोमन सिक्के व्यापार के द्वारा भारत आए। उत्तरी भारत में कम संख्या में ही रोमन सिक्के प्राप्त हुए हैं यद्यपि मिटटी पर इन सिक्कों के नकल, जिसे "बुले" कहा जाता है, के नमूने खुदाई में प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुए हैं। इनमें से कई में धागा डालने के लिए फन्दे बने हुए हैं जिनसे अनुमान लगाया जा सकता है ये "बुले" संभवतः गहनों के रूप में प्रयोग किए जाते होंगे।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़ें और उनके आगे सही ($\surd$) अथवा गलत ($\times$) का चिन्ह लगाएं।

   i) छठवीं शताब्दी ई.पूर्व के शहर प्रमुख नदियों के तटों पर स्थित थे

   ii) सिंधु नदी समूह में जल स्रोत गंगा की अपेक्षा अधिक थे।

   iii) अर्थशास्त्र के अनुसार दस्तकार स्वतंत्र रूप से बिना किसी शिल्पी संघ में संगठित हुए कार्य करते थे।

   iv) मुद्रा व्यवस्था व्यापार गतिविधियों की उत्तम सूचक है।

2) उत्तर मगध युग में व्यापार में बढ़ोत्तरी का उल्लेख आप किस प्रकार करेंगे। सौ शब्दों में लिखें।

....

....

....

....

....

....

3) आरंभिक ऐतिहासिक युग में गंगा घाटी के महत्व पर पांच पंक्तियां लिखें

....

....

....

....

....

24.4.2 विदेशी व्यापार

हम उल्लेख कर चुके हैं कि समुद्री व्यापार मौर्य युग में आरंभ हो गया था। आरंभिक संपर्क ईस्वी युग की आरंभिक शताब्दी में पनपा और विस्तृत हुआ। इसका एक कारण ईसवी युग के आरंभ में

1. इण्डो-ग्रीक सिक्के

उदित होने वाले दो साम्राज्यों की ओर से बढ़ने वाली मांग थी। यह साम्राज्य पश्चिम में शक्तिशाली रोमन साम्राज्य तक पूर्व की ओर चीन में हान साम्राज्य थे। फलतः इस युग की जानकारी कई विदेशी स्रोतों से प्राप्त होती है।

आरंभिक समुद्री व्यापार के संबंध में विस्तृत जानकारी हमें "लाल सागर परिभ्रमण" के विषय में लिखित श्रेष्ठ ग्रंथ (Periplus of the Erythrean Sea) से मिलती है। यह यूनानी कृति प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में किसी अज्ञात नाविक द्वारा लिखी गयी थी जिसमें लाल सागर तथा भारत के बीच उसके द्वारा भ्रमण किए गए बंदरगाहों का विवरण है। इस कृति से हमें इन बन्दरगाहों पर उपलब्ध व्यापार की वस्तुओं की भी जानकारी मिलती है।

उत्तरी भारत के केंद्रों से भेजी जाने वाली वस्तुओं के लिए दो मुख्य बन्दरगाह सिंधु नदी के मुहाने पर बर्बापी कोन तथा नर्मदा के मुहाने पर भरूच थे। हमने पीछे सिंधु के समानांतर बर्बारीकोन को पंजाब एवं गाधांर से जोड़ने वाले मार्गों का उल्लेख किया है। भरूच जिसे यूनानी बारीगाज़ा कहते थे, उज्जैन, मथुरा तथा गंगा घाटी से जुड़ा हुआ था पूर्व में आंध्र एवं तमिल तटों के साथ समुद्री व्यापार के लिए तामलुक एक महत्वपूर्ण मार्ग था।

उपरोक्त यूनानी ग्रंथ से हमें पता चलता है कि उत्तर में आयात की जाने वाली वस्तुएं ज़री, मूंगा, लोबान, कांच के बर्तन, मुद्राएं तथा कुछ शराब हुआ करती थीं। रोमन कांच के उत्पादनों में तकनीकी सुधार के लिए विख्यात थे परिणामतः उनके द्वारा उत्पादित कांच को विभिन्न प्रकार की वस्तुएं भारत और चीन सहित कई देशों में काफी मूल्यवान समझी जाती थीं। लोबान अरब के एक स्थानीय वृक्ष से निकलने वाला गोंद होता है। इसका प्रयोग सुगंध तथा दवाओं के लिए होता था। अभी तक उत्तरी भारत में चांदी और सोने के रोमन सिक्के काफी कम संख्या में मिले है, यद्यपि आप अगले खण्ड में पढ़ेंगे कि भारतीय प्रायद्वीप में यह भारी संख्या में प्राप्त हुए हैं। इसके कारण कई विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि कुषाणों एवं क्षत्रपों ने इन आयातित सिक्कों को पिघला कर अपनी मुद्राएं बनाने के लिए इन्हें पुनः प्रयोग किया होगा।

इसके बदले में भारत मसाले, फीरोज़ा, लाजर्वद, अक़ीक जैसे पत्थर, चीनी सिल्क और सूत आदि निर्यात करता था। इससे यह परिणाम नहीं निकालना चाहिए कि व्यापार पर केवल रोमन नियंत्रण ही था। इस व्यापार में अरब, यहूदी, पूर्व देशी यूनानी, मिस्त्र वासी रोमन आदि भी सम्मिलित थे। इसके अतिरिक्त भारतीय नाविक अपने पोतों में लाल सागर के बन्दरगाहों की ओर जाकर व्यापार करते थे जातक कथाओं में भारतीय व्यापारियों के ऐसे कई वृतांत मिलते हैं जिनसे वे धन कमाने के लिए लम्बी सुमद्री यात्राएं करते हैं इसकी पुष्टि कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा अभिलेखों के विवरणों से हो जाती है। बौद्ध मठों के अनुदानकर्ताओं में एक महत्वपूर्ण श्रेणी नाविक हैं।

माल की एक श्रेणी जिस पर चर्चा आवश्यक है वह चीनीं सिल्क तथा सूत है। चीनी सिल्क सीध भेजे जाने के बजाय भारत के माध्यम से क्यों भेजा जाता था? इसका कारण राजनैतिक परिस्थिति थी। भारतीय उपमहाद्वीप की उत्तर पश्चिमी सीमा के समानांतर पार्थव शक्तिशाली शासक थे। उनके और रोमन साम्राज्य के बीच शत्रुता निरंतर बनी हुई थी। फलतः चीन तथा पश्चिम के बीच थल मार्ग निरंतर अवरूद्ध रहा। इसीलिए चीन के अधिकतर उत्पादन भारत के थल मार्गों से व्यापार किए जाते थे।

भारत, मध्य एशिया तथा चीन के बीच सम्पर्कों के विषय में जानकारी इस काल में लिखे गए चीन के इतिहास में मिलती है। सामान्यतः यह माना जाता है कि व्यापारियों के साथ बौद्धमत चीन तथा मध्य एशिया में प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व तथा प्रथम शताब्दी ईसवी के आस-पास फैला। प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के बाद से मध्य एशिया की ओर जाने वाले उत्तरी मार्ग के समानांतर बौद्ध गुफाओं की एक पूरी श्रृंखला बनाई जाने लगी तथा तीसरी शताब्दी ईसवी से कई बौद्ध ग्रंथ चीनी भाषा में अनुवाद किए जाने लगे।

हमने अभी तक दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों जैसे बर्मा, थाईलैंड तथा इंडोनेशिया के साथ आरंभिक व्यापार संपर्क के विषय में बहुत कम चर्चा की है। इसका कारण यह है कि रोमन तथा चीनी साम्राज्यों की तुलना में इन देशों के आरंभिक ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं। अतः हमारी जानकारी का एक मात्र स्त्रोत पुरातात्विक खुदाई से प्राप्त वस्तुएं हैं। इनसे पता चलता है कि भारतीय दस्तकारों के विभिन्न उत्पादन जैसे मनके, अर्धबहुमूल्य पत्थरों की मुहरें, हाथीदांत की कंघियाँ

आदि दक्षिण-पूर्ण एशिया में इस काल में काफी मूल्यवान समझी जाती थीं। किन्तु लिखित प्रमाणों के अभाव में आरंभिक ईसवी शताब्दियों में व्यापार के संगठन से सम्बन्धित अधिक कुछ कहना संभव नही है।

24.4.3 मुख्य व्यापार मार्ग

उत्तरी अफ़गानिस्तान में आक्शस घाटी में बैक्ट्रिया मध्य एशिया एवं चीन के साथ अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का मुख्य केन्द्र था, इस नगर से एक मार्ग कपिस तथा काबुल घाटी से होता हुआ कुषाण साम्राज्य के मुख्य क्षेत्र को पहुंचता था। भारतीय उपमहाद्वीप में विभिन्न स्त्रोतों में दो मुख्य मार्ग होने के उल्लेख मिलते हैं। उत्तर पथ अथवा उत्तरी मार्ग उत्तरी क्षेत्र के मुख्य केन्द्रों को जोड़ता था तथा दक्षिण पथ अथवा दक्षिणी मार्ग प्रायद्विपीय भारत के केन्द्रों को जोड़ता था। उत्तर पथ पुष्कलावती अथवा आधुनिक चारसाड से आरंभ होकर तक्षशिला, मथुरा, कोशाम्बी तथा वाराणसी से पाटलीपुत्र होता हुआ चम्पा तथा चन्द्रकेतु गढ़ पहुंचता था। यह प्राचीन मार्ग मौर्य युग में मौजूद था तथा इसका उल्लेख यूनानी कृतियों में मिलता है। मथुरा से एक अन्य मार्ग पश्चिम दिशा में सिंध की ओर जाता था। इसी मार्ग से ही घोड़े उत्तर की ओर लाए जाते थे। मथुरा उज्जैन तथा नर्मदा के मुहाने पर भरूच के बन्दरगाह से भी जुड़ा हुआ था। एक तीसरा मार्ग सिंधु नदी के समानांतर जाता था तथा तक्षशिला को नदी के मुहाने पर पाटल से जोड़ता था। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि मुख्य मार्ग गंगा नदी के समानांतर चलता था। नदी से नाव द्वारा माल आने जाने के उल्लेख कई स्थानों पर मिलते हैं। इस मुख्य मार्ग से कई छोटे-छोटे मार्ग जुड़े हुए थे जिनमें से एक मार्ग वैशाली तथा श्रावस्ती होता हुआ नेपाल पहुंचता था

24.4.4 शहरी केन्द्र

उत्तरी भारत के शहरी केन्द्रों के विषय में जानकारी हमें आरंभिक पाली एवं संस्कृत ग्रंथों से मिलती है। किन्तु इनमें से कई विवरण काफी सामान्य स्वरूप के हैं। इस उद्देश्य के लिए सबसे उत्तम स्त्रोत मुख्य शहरी स्थलों की पुरातात्विक खुदाई से प्राप्त होते हैं। इनसे हमें घरों की बनावट, तथा यहां के निवासियों द्वारा प्रयोग किए जाने वाले उपकरणों एवं अन्य शिल्प तथ्यों के विषय में विस्तृत जानकारी मिलती है। तक्षशिला (आधुनिक इस्लामाबाद से 30 किलो मीटर उत्तर-पश्चिम में) की खुदाई कई दशक पहले सर जॉन मार्शल ने करवाई थी। खुदाई 1913 में आरंभ हुई और लगभग बीस वर्षों तक चलती रही। इस खुदाई से पता चला कि तक्षशिला में कम से कम मौर्य काल से लोग निवास कर रहे थे। यद्यपि यहां प्रथम योजनाबद्ध शहर भारतीय-यूनानियों के काल में विकसित हुआ। शहर की किले बन्दी बाद में की गयी। किलेबंदी की दीवारें अन्य स्थानों पर भी पायी गयी हैं लेकिन वे सामान्यत: चिकनी मिट्टी और अच्छी तरह गुंथी मिट्टी की बनी हुई हैं। पक्की ईटों का प्रयोग आरंभ हो चुका था और विभिन्न इमारतों के लिए इनका इस्तेमाल किया जा रहा था। किन्तु गोलाकार इमारतें अर्धवृत्ताकार ईटों से बनाई जाती थीं।

मौर्य काल की अपेक्षा आरम्भिक ऐतिहासिक युग में घरों की सरंचना बेहतर होती थी तथा दीवारों के लिए पक्की ईट तथा छतों पर पक्की खपरैल का प्रयोग होता था। खुदाई के दौरान भौतिक संस्कृति के शिल्प तथ्यों से पता चलता है कि यह बस्तियां पूर्व कालीन बस्तियों की अपेक्षा अधिक संपन्न थीं। भारी मात्रा में मनको के मिलने से आभूषणों के विस्तृत प्रयोग की जानकारी मिलती है। चिकनी मिट्टी का प्रयोग कई तरीकों से होता था। इसे बर्तन बनाने के अतिरिक्त मानवीय तथा पशु की लघु मूर्तियां बनाने के काम में लाया जाता था। कुछ लघु मूर्तियां ढाली भी जाती थीं। जिनमें जटिल गढ़ाई तथा अलंकरण पाया गया है। एक और महत्वपूर्ण तथ्य शहरी केन्द्रों की संख्या में बढ़ोत्तरी है खुदाई से यमुना के किनारे पुराना किला, मथुरा तथा कोशाम्बी जैसे अनेक उदयीमान केन्द्र मिले हैं। अहिक्षत्र (जिला बरेली) उत्तरी पांचालों की राजधानी थी। वाराणासी में राजघाट इस युग में हाथीदांत तथा कपड़ा उत्पादन के केन्द्र के रूप में पाया गया है। वैशाली में, जिसे उत्तरी बिहार स्थित आधुनिक वैशाली माना गया है। भारी संख्या में मुहरे तथा मुद्रांकण मिले हैं जिनमें से कई व्यापारियों एवं दस्तकारों से सम्बन्धित हैं। बंगाल के दो मुख्य स्थान तामलुक तथा चन्द्रकेतुगढ़ थे। चन्द्रकेतु की खुदाई से पता चलता है कि यह स्थान आरंभिक ईसवी शताब्दियों में मिट्टी के प्रकारों से घिरा हुआ था जबकि तामलुक बन्दरगाही नगर था और यहां से गंगा के समानांतर मार्ग निकलता था। कुछ और पश्चिम की ओर उज्जैन का किलेबंद शहर था जो कि मनका उत्पादन के लिए भी विख्यात था। इसके अतिरिक्त यहां हुई खुदाई से विशाल ईट की दीवारों तथा अन्य ढांचों के अवशेष मिले हैं।

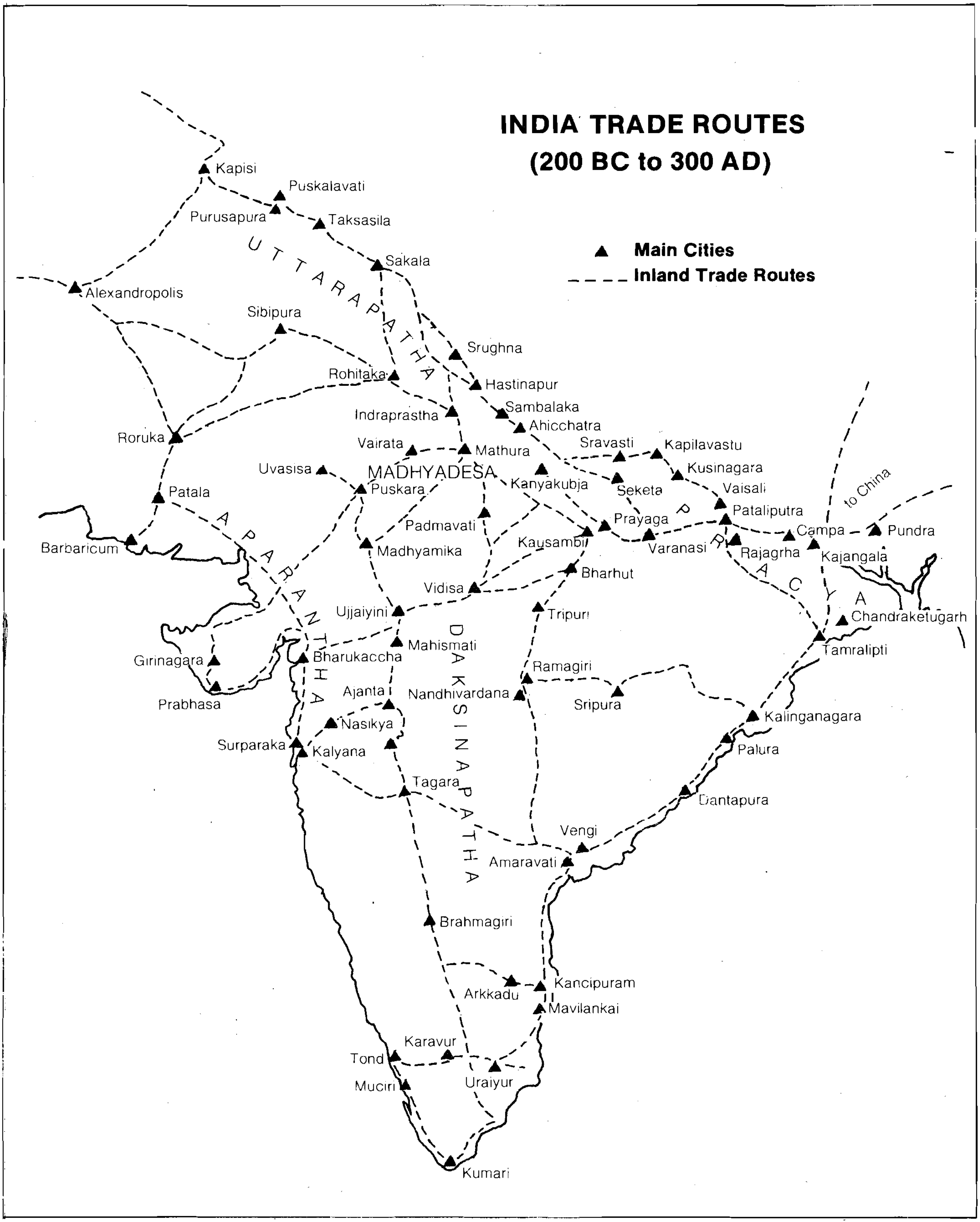

प्राचीन भारत के व्यापार मार्ग

24.5 व्यापार में धर्म की भूमिका

हमने पीछे उल्लेख किया है कि बौद्ध मत व्यापारियों को प्रोत्साहन तथा बड़ी संख्या में व्यावसायिक समूहों को संरक्षण प्रदान करता था। इसके विषय में हमें जानकारी विभिन्न बौद्ध स्थलों पर मिले अभिलेखों से मिलती है। यह अभिलेख राजा तथा जनसंख्या के विभिन्न वर्गों द्वारा दिए गए अनुदानों के लेखा के रूप में हैं। हम यह भी जानते हैं कि इस युग में महत्वपूर्ण बौद्ध मठ व्यापार मार्गों के समानांतर बने हुए थे।

तक्षशिला के आस पास का क्षेत्र एक ऐसा केन्द्र था जहां कई बौद्ध मठ स्थित थे। इस क्षेत्र में गांधार कला के नाम जानी जाने वाली विशिष्ट कला कुषाणों के शासन में विकसित हुई। बौद्ध मत का एक अन्य शक्तिशाली केन्द्र मथुरा था जो कि कला की दृष्टि से भी उतना ही विख्यात था। बौद्ध मत तथा जैन मत दोनों को ही संरक्षण प्राप्त था। खुदाई से बौद्ध तथा जैन दोनों के मठों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। एक और महत्वपूर्ण बौद्ध केन्द्र आधुनिक भोपाल के निकट सांची था। दकन तथा उत्तर के विभिन्न केन्द्रों के व्यापारी सांची गए और वहां अनुदान दिया जिससे सम्बन्धित अभिलेख मार्गों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं। सांची में स्तूप निर्माण के लिए धन का मुख्य अंश उज्जैन वासियों ने वहन किया था। मध्य भारत में भी भरहुत में एक स्तूप था। यहां अनुदान दकन में नासिक के निवासियों तथा उत्तर में पाटलीपुत्र तथा वैशाली के निवासियों ने किया।

दान में मिले धन एवं भूमि के कारण मठों की सम्पन्नता बढ़ गयी तथा समाज में बौद्ध संघों की भूमिका में भी परिवर्तन आया। पांचवी शताब्दी ईसा पूर्व में बौद्ध मत आरंभ होने के समय बौद्ध भिक्षु बहुत साधारण जीवन व्यतीत करते थे। बौद्ध मत के फैलाव एवं प्रसार तथा प्रभाव के बढ़ने से बौद्ध सम्प्रदाय के विशिष्ट समूह एवं शिक्षक काफी धनवान हो गए इस प्रकार कुषाणों के युग में कुछ बौद्ध मठों के पास काफी धन एवं भूमि हो गयी। ऐसे भी कई उल्लेख मिलते हैं जब बौद्ध भिक्षुओं एवं संघनियों ने स्वयं धन दान किया।

बौद्ध संघों में विभाजन का एक कारण कुछ नियमों की व्याख्या को लेकर खड़ा हुआ विवाद भी था। यह विवाद निरंतर बना रहा कि बौद्ध भिक्षु सम्पत्ति के स्वामी हो सकते हैं अथवा नहीं। एक अन्य प्रश्न बुद्ध को भगवान मानने एवं उनकी मूर्ति की पूजा करने से संबंधित था। प्रथम शताब्दी ईसवी तक बौद्ध संघ दो सम्प्रदायों में बट गया जिन्हें महायान तथा हीनयान के नाम से जाना जाता है। इनमें हीनयान अधिक रूढ़िवादी सम्प्रदाय था। लेकिन हमारे उद्देश्य के लिए अधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि बुद्ध की मूर्ति की पूजा के आरंभ होने से बौद्ध मत के कर्मकांडों में बढ़ोत्तरी हुई। अब मठों को दीप जलाने के लिए तेल, सुगन्ध के लिए लोबान तथा स्तूप सजाने के लिये सिल्क की पट्टियों की आवश्यकता हुई। भिक्षु के मठों में स्थायी रूप से रहने के साथ ही उन्हें वस्त्रों की भी आवश्यकता हुई। अब उनके पास धन एवं भूमि थी तथा वे अपने भोजन एवं अन्य आवश्यकताओं के लिए भिक्षा पर निर्भर नहीं रह गए थे। इस प्रकार वे इस युग में व्यापार की जाने वाली कई वस्तुओं के प्रमुख उपभोक्ता बन गए।

अभी तक हमने बौद्ध एवं जैन मत के संबन्ध में चर्चा की ब्राहमणवाद अथवा हिन्दू धर्म की इस संदर्भ में क्या भूमिका रही? अभिलेखों में ब्राह्मणों को भोजन कराने तथा वैदिक यज्ञों के लिए धन देने का उल्लेख मिलता है। कुषाणों के काल से संबंधित शिव एवं विष्णु की प्रतिमाएं भी प्राप्त हुई हैं। किन्तु ब्राहमणिक मन्दिरों की संरचना एवं स्वरूप का विकास मुख्यतः गुप्त काल से आरंभ होता है तथा समाज की विभिन्न गतिविधियों के केन्द्र के रूप में मन्दिर इस युग के बाद उभरे।

24.6 व्यापारियों की स्थिति

आरंभिक ईसवी शताब्दियों में संस्कृत में रचित ब्राहमणिक ग्रंथों में समाज को चार वर्गों : ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र में बांटा गया है। कृषि तथा व्यापार को सामान्यतः वैश्यों की गतिविधियां माना गया है। इसके विपरीत आरंभिक बौद्ध ग्रंथ समाज के विभाजन के विभिन्न तरीकों का उल्लेख करते हैं। इनमें वर्ण व्यवस्था के अतिरिक्त कार्य एवं शिल्प के आधार पर सामाजिक विभाजन का उल्लेख है। इन ग्रंथों में विभाजन उच्च एवं निम्न पर आधारित है। कृषि, व्यापार, पशुपालन आदि उच्च कार्यों में गिने जाते थे। इस प्रकार अनेक बौद्ध ग्रंथों में अच्छे परिवारों के नवयुवक सदैव कृषि, व्यापार तथा पशुपालन से जुड़े उल्लेखित मिलते है। इसी प्रकार शिल्प के अंतर्गत लेखा-जोखा तथा लेखन उच्च कार्यों में सम्मिलित हैं जबकि चर्मकारी,

टोकरियां बनाना, बुनाई आदि निम्न कार्य माने गए हैं मोटे तौर पर बौद्ध समाज में व्यवसाय पहचान का आधार थे तथा व्यापारियों को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था।

इसका उल्लेख अभिलेखों में भी मिलता है। बौद्ध मठों में अनुदानकर्ता केवल अपने व्यवसायों का उल्लेख करते थे। उनकी जाति का उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता। व्यापारी समाज में काफ़ी महत्वपूर्ण स्थान रखते थे तथा शिल्पी संघ अनेक निजी अधिकार के अधीन होते थे।

बोध प्रश्न 2

1) यूनानी कृति "लाल सागर परिभ्रमण" के अनुसार कौन सी वस्तुएं भारत में आयात तथा कौन सी वस्तुएं भारत से निर्यात की जाती थीं।

....

....

....

....

....

2) चीनीं माल का व्यापार यूरोप में भारतीय माध्यम से क्यों किया जाता था? पाच पंक्तियों में लिखें।

....

....

....

....

....

3) निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़ें तथा सही (√) अथवा (×) का निशान लगाएं:

   i) हमारे पास भारत के चीन तथा रोमन साम्राज्यों के साथ व्यापार के लिखित प्रमाण नहीं हैं।

   ii) भारी मात्रा में अनुदान पाने के फलस्वरूप बौद्ध भिक्षुओं की जीवन शैली में परिवर्तन आया।

   iii) पूर्वकालीन ऐतिहासिक युग में उत्तर पथ तथा दक्षिण पथ नाम के दो मुख्य व्यापार मार्ग थे।

   iv) बौद्ध ग्रंथों की तुलना में ब्राहमणिक ग्रंथों में व्यापारियों की सामाजिक स्थिति भिन्न आंकी गयी है।

24.7 सारांश

संक्षिप्त रूप में 200 ईसा पूर्व से 300 ईसवीं तक का काल व्यापार तंत्र के विस्तार तथा शहरों की संख्या में बढ़ोत्तरी की दृष्टि से अत्यधिक सम्पन्न काल माना जा सकता है। उत्तर भारत के मुख्य मार्ग उत्तर-पश्चिम के केन्द्रों को बंगाल के तट के समानांतर बन्दरगाहों से जोड़ते थे। इससे जुड़े हुए कई सहायक मार्ग थे तथा दक्षिण मार्ग था जो कि दक्षिण भारत तथा दकन तक जाता था। शहरी केन्द्रों के अतिरिक्त बौद्ध मठ भी इन्हीं मार्गों पर समानांतर स्थापित थे। इसका कारण इस युग में बौद्ध मत की सहायक के रूप में भूमिका थी। बौद्ध मत धन संग्रहण एवं व्यापार में धन निवेश को प्रोत्साहन देता था साथ ही संघों को अनुयायियों से धन एवं भूमि के रूप में अनुदान प्राप्त होने का भी लाभ होता था। इसी युग में विदेशी बाजारों, विशेषकर भूमध्य सागरीय क्षेत्र से भारतीय माल की मांग भी बढ़ी। मध्य एशिया तथा चीन के साथ व्यापार संपर्क के कारण बौद्ध मत के प्रसार का पथ प्रशस्त हुआ तथा इन व्यापार मार्गों के समानांतर चट्टानों को तराश कर अनेक बौद्ध मठ बनाए गए। दक्षिण पूर्व एशिया के साथ भी संपर्क बनाए जा रहे थे जिनके प्रमाण पुरातात्विक खुदाई से निरंतर मिल रहे हैं।

24.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) i) √ ii) × iii) × iv) √

2) आपके उत्तर में व्यापार को प्रोत्साहन देने में बौद्ध एवं जैन मतों की भूमिका, उदयीमान उपभोक्ता वर्ग, तथा विदेशी बाज़ारों, विशेषकर यूरोप एवं चीन के बाज़ारों में भारतीय माल की मांग का उल्लेख होना चाहिए। देखें भाग 24.4

3) गंगा घाटी कृषि के लिए उपजाऊ थी। यहां सिंचाई के लिए पानी पर्याप्त मात्रा में था तथा यह विभिन्न शहरों से जुड़ी हुई थी जिससे व्यापार में सुगमता होती थी। देखें भाग 24.2

बोध प्रश्न 2

1) देखें भाग 24.5

2) पार्थव तथा रोमन साम्राज्य की आपसी शत्रुता के कारण चीन एवं पश्चिम के बीच थल व्यापार मार्ग अवरूद्ध था। अतः चीन एवं पश्चिमी देशों के बीच व्यापार भारत के माध्यम से होता था। देखें भाग 24.5

3) i) × ii) √ iii) √ iv) √

इकाई 25 धर्म के क्षेत्र में परिवर्तन

इकाई की रूपरेखा

25.0 उद्देश्य
25.1 प्रस्तावना
25.2 बौद्ध धर्म
- 25.2.1 विस्तार और संरक्षण
- 25.2.2 महायान बौद्ध धर्म का उदय
- 25.2.3 विभिन्न संप्रदाय
- 25.2.4 विभिन्न केंद्र

25.3 जैन धर्म
- 25.3.1 विस्तार और संरक्षण
- 25.3.2 विभिन्न संप्रदाय
- 25.3.3 विभिन्न केंद्र

25.4 ब्राह्मण धर्म
- 25.4.1 नये तत्वों का समावेश
- 25.4.2 अन्य देवता

25.5 शैव संप्रदाय
25.6 वैष्णव संप्रदाय
25.7 सारांश
25.8 शब्दावली
25.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

25.0 उद्देश्य

मौर्यकाल के बाद भारत में विभिन्न धर्मों के विकास पर संक्षेप में चर्चा करना इस इकाई का उद्देश्य है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- इस काल में बौद्ध और जैन धर्म में होने वाले परिवर्तनों को पहचान सकेंगे
- ब्राह्मण धर्म के स्वरूप को रेखांकित कर सकेंगे
- शैव और वैष्णव धर्म से जुड़े धार्मिक संप्रदायों के विकास को निरूपित कर सकेंगे, और
- इन धर्मों द्वारा अपनाये गये नये विचारों का उल्लेख कर सकेंगे।

25.1 प्रस्तावना

इकाई 17 में आपने बौद्ध और जैन धर्म के उत्थान और 200 ई.पू. तक के उनके कार्यकलापों का अध्ययन किया है। इस इकाई में हम 200 ई.पू. से 300 ई. के बीच विभिन्न धर्मों की परिस्थिति और विकास पर विचार विमर्श करेंगे। मौर्यकाल के बाद राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन आया शुंग, सतवाहन, भारतीय यूनानी शक्ति, शक-पार्थियन शासक और उत्तर-पश्चिम में कुषाण राजाओं का प्रभुत्व स्थापित हुआ। इन शक्तियों के उदय ने भी धर्म की धारा को प्रभावित किया। उदाहरण के लिए अशोक के समय जहां बौ धर्म को राजकीय संरक्षण प्राप्त था, वहां शुगों के समय यह सम्मान, ब्राह्मण-धर्म को प्राप्त हुआ। इसी प्रकार बौद्ध धर्म की उदार सामाजिक दृष्टि के कारण विदेशियों को भारतीय समाज में शामिल करना अपेक्षाकृत सरल हो गया और इस प्रक्रिया में सामाजिक **आत्मसातीकरण** शुरू हुआ। बौद्ध धर्म की उदार सामाजिक दृष्टि और **आत्मसातीकरण** की प्रक्रिया के कारण भारतीय-यूनानी शासकों ने इस धर्म को समर्थन दिया।

हम यह बात पहले ही जान चुके हैं कि व्यापारी समुदाय के अधिकांश लोग बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। अतः इस काल में हुए व्यापारिक और वाणिज्यिक विकास के कारण भी बौद्ध धर्म के विकास में सहायता मिली। हालांकि, व्यापारियों का संबंध व्यापार से ही होता था, पर जहां वे जाते थे वहां अपने व्यक्तिगत धर्म की छाप अवश्य छोड़ आते थे। हम लोग देखेंगे कि इन कारणों से धर्म में

कौन-कौन से परिवर्तन हुए। इस काल में कट्टरपंथी, ब्राह्मण धर्म में भी परिवर्तन आये और शैव तथा वैष्णव धर्म से जुड़े कई समुदायों का उदय हुआ।

इस प्रकार, मौर्य काल के बाद धर्म में निम्नलिखित महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए :

- मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद बौद्ध धर्म को शुंगों की दुश्मनी का सामना करना पड़ा पर धीरे-धीरे इसके (बौद्ध धर्म) कई केन्द्र स्थापित हो गये और यह धर्म पड़ोसी देशों में फैलने लगा।
- विचारधारा संबंधी और धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण में अंतर होने के कारण बौद्ध धर्म अलग-अलग समूहों में बंटना शुरू हो गया। इनमें प्रमुख हैं : महायान और हीनयान।
- जैन धर्म का भी फैलाव हुआ और इसका अपना संगठन था, पर यह बौद्ध धर्म के सामने नही फैल सका।
- जैन धर्म में भी विभाजन हुआ और इसके मतावलम्बी श्वेताम्बर और दिगम्बर कहलाए।
- ब्राह्मण धर्म बौद्ध और जैन जैसे अनिरीश्वरवादी धर्मों से काफी अलग था। इस काल में वैष्णव और शैव संप्रदाय के रूप में इसकी लोकप्रियता बढ़ी।
- कट्टरपंथी और गैर कट्टरपंथी दोनों प्रकार के धर्मों ने देश के बाहर और भीतर के विचारों को आत्मसात किया। मनुष्य पर देवत्वारोपण, मूर्ति पूजा जैसे कई एक से तत्व कट्टरपंथी और गैर कट्टरपंथी धर्मों में शामिल किये गये।

25.2 बौद्ध धर्म

शुंग-कण्व शासन काल में बौद्ध धर्म के विकास को हलका सा धक्का लगा। इसका कारण यह था कि मौर्यों के पतन के बाद मगध के शुंग और कण्व शासक ब्राह्मण धर्म में आस्था रखते थे। प्रमुख बौद्ध ग्रंथ दिव्यावदान में पुष्पमित्र शुंग को बौद्ध धर्म का कट्टर शत्रु बताया गया है। इस ग्रंथ में यह भी बताया गया है कि उसने पाटलिपुत्र में स्थित कुकुट अर्मा बौद्ध विहार को नष्ट करने की कोशिश की थी। इस स्रोत के अनुसार प्रत्येक बौद्ध पुजारी का सर काटकर लाने पर 100 दीनार इनाम स्वरूप दिया जाता था।

यह हो सकता है कि इन शासको ने व्यक्तिगत रूप से बौद्ध धर्म का विरोध किया हो, पर इसका मतलब यह नहीं है कि बौद्ध धर्म के सामाजिक समर्थन में भी भारी कमी आयी। वस्तुतः मध्य भारत में भारहूत स्तूप का निर्माण शुगों के शासन काल में ही हुआ था। इसी काल में सांची स्तूप का आकार बढ़ाकर दुगना कर दिया गया, प्रवेश द्वार (तोरण) और चाहरदीवारी भी बनायी गयी। दिव्यावदान में तथ्यों को बढ़ा चढ़ा कर पेश किया गया है, पर इस बात में कोई संदेह नहीं है कि मौर्य काल के दौरान प्राप्त राज्य संरक्षण शुंग और कण्व काल में बौद्ध धर्म को उपलब्ध नहीं था।

25.2.1 विस्तार और संरक्षण

200 ई.पू. से 300 ई. के बीच भारत के सभी हिस्सों में बौद्ध धर्म का विस्तार हमें देखने को मिलता है। उत्तर पश्चिमी भारत में बौद्ध धर्म का जबरदस्त प्रभाव था। भारत पर आक्रमण करने वाले बहुत से विदेशी शासकों जैसे भारतीय-यूनानी और कुषाण, ने बौद्ध धर्म अपना लिया।

बौद्ध धर्म के सिद्धांतों की ओर आकर्षित होने वाले भारतीय-यूनानी राजाओं में मिनेन्द्र प्रमुख है। उसने बौद्ध धर्म अपना लिया था। बौद्ध ग्रंथों में उसका उल्लेख साकल के राजा मिलिन्द के रूप में हुआ है। इसमें उसके धर्म परिवर्तन से जुड़ी एक कहानी भी उल्लिखित है। इस ग्रंथ का नाम 'मिलिन्द पन्ह' (मिलिन्द के प्रश्न) है, जो संवाद के रूप में लिखा गया है। इसमें मिनेन्द्र और बौद्ध पुजारी नागसेन के बीच की बातचीत संकलित है।

बहुत से कुषाण राजाओं ने बौद्ध धर्म अपनाया। उदाहरण के लिए कुजुल कदाफिसेस और कनिष्क बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। कनिष्क के शासन काल में बौद्ध धर्म अपनी प्रतिष्ठा के उत्कर्ष पर विराजमान हुआ। इसी के शासनकाल में बौद्ध पुजारी पार्स्व की सलाह पर चौथा बौद्ध सम्मेलन आयोजित किया गया। हालांकि इस बात के बारे में कुछ विवाद है कि ठीक-ठीक यह सम्मेलन कहां संपन्न हुआ था पर समकालीन विद्वानों के उद्धरणों के साक्ष्य के आधार पर यह आम तौर पर स्वीकार कर लिया गया है कि यह सम्मेलन कश्मीर में आयोजित किया गया था वसुमित्र इस सम्मेलन का अध्यक्ष था। इसमें धर्मग्रथों के कुछ कठिन अध्यायों पर विचार-विमर्श हुआ। यह विचार-विमर्श भाष्य के रूप में संकलित है जिसे 'विभाषा शास्त्र' के रूप में जाना जाता है। इसी सम्मेलन में बौद्ध धर्म हीनयान और महायन में विभाजित हुआ।

कनिष्क ने देश के विभिन्न भागों में बौद्ध धर्म के प्रसार को बढ़ावा दिया। उदाहरण के लिए पेशावर में उसने एक स्तूप और बिहार का निर्माण करवाया, जो बौद्ध धर्म के विद्या और संकृति-केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। इसके अतिरिक्त इस काल में भारत के बौद्ध पुजारी/साधुओं ने बुद्ध के संदेशों को मध्य एशिया और चीन तक पहुंचाया।

दक्खन में सतवाहन राजाओं और पश्चिमी भारत के क्षत्रप राजाओं ने बौद्ध धर्म को संरक्षण प्रदान किया। बहुत से स्तूपों का निर्माण किया गया और अनुदानों द्वारा उस का प्रबंध किया गया। उदाहरण के लिए सतवाहन राजा पुलुमयी के शासन काल में अमरावती स्तूप को बड़ा बनाया गया और संगमरमर के नक्काशीदार टुकड़ों से उसे सजाया गया।

पश्चिमी तट के किनारे पश्चिमी घाटों में सतवाहनों और क्षत्रपों ने कई गुफाएं बनवाई। इन गुफाओं का उपयोग विहारों के रूप में और बौद्ध पुजारियों के निवास-स्थान के रूप में होता था। यह गुफाएं पत्थरों को काट कर बनायी जाती थी। ऐसी गुफाएं नासिक,कार्ले, भज, गुन्नार, कन्हेरी आदि जगहों पर पायी गयी हैं।

इस काल में तमिल देश में भी बौद्ध धर्म के अस्तित्व के संकेत मिले हैं। तमिल देश के आरम्भिक गुफा अभिलेखों में बौद्धों के कुछ स्थानों पर बसे होने का उल्लेख मिला है। इस अभिलेख में आम भक्तों द्वारा दी गयी अनुदान-राशि का भी जिक्र है।

25.2.2 महायन बौद्ध धर्म का उदय

महायान शाखा के विकास के कारण बौद्ध धर्म संपूर्ण भारत और सीमा पार विदेशों में लोकप्रिय धर्म के रूप में विकसित हुआ। विभिन्न मूलों और संस्कृतियों से जुड़े हुए लोगों की धार्मिक भावुकता ने क्रमशः बुद्ध को भगवान के रूप में परिवर्तित कर दिया। ईस्वी सन् की आरम्भिक शताब्दियों में बुद्ध की मूर्ति की स्थापना और पूजा का प्रचलन शुरू हुआ। इस प्रकार महायान बौद्ध धर्म के आगमन का मार्ग प्रशस्त हुआ।

महायान बौद्ध धर्म का उद्भव प्रथम शताब्दी ई.पू. में आंध्र प्रदेश में हुआ था। कनिष्क के समय में इसे मान्यता मिली और इसके बाद प्रथम और द्वितीय शताब्दी ई. के दौरान यह पूरे दक्षिण भारत में फैल गया। कट्टरपंथी बौद्ध धर्म के कारण आरंभ में महायान ज्यादा आगे नहीं बढ़ सका। पर नागार्जुन के आने के बाद इस शाखा ने लोकप्रियता प्राप्त करनी शुरू की। नागार्जुन महायान शाखा के प्रमुख प्रवर्तक थे। हालांकि महायान बौद्ध धर्म का उद्भव ई.पू. प्रथम शताब्दी में ही हो चुका था पर बौद्ध संघ का हीनयान और महायान में अंतिम रूप से विभाजन कनिष्क प्रथम के शासन काल में हुआ। यह विभाजन इस दौरान कश्मीर में हुए चौथे बौद्ध सम्मेलन में उभरकर सामने आया। हीनयान और महायान का शाब्दिक अर्थ है 'छोटी सवारी' और 'बड़ी सवारी' इस प्रकार की शब्दावली हीनयान पर महायान की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए गढ़ी गयी थी। पर मुख्य अन्तर महायान के मत में निहित है। यह मत पहले पहल बौद्ध मतावलम्बी महासंधिका द्वारा, प्रतिपादित किया गया था। इसके अनुसार सभी मनुष्य बौद्धत्व की प्राप्ति की आकांक्षा रख सकते हैं और विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजरकर बोधिसत्व की प्राप्ति कर सकते हैं। परमिताओं अर्थात् प्रतिभापूर्ण कार्यों से बोधिसत्व की प्राप्ति हो सकती है। महायान के अन्य सिद्धांत इस प्रकार है : शून्यता या शून्य या वस्तुओं की अथार्थता में विश्वास, मंत्रों में विश्वास, असंख्य बुद्धों और बोधिसत्वों में विश्वास और देवी देवताओं की पूजा का चलन। हीनयान के मतावलम्बियों के अनुसार इनमें उनके विश्वास और चलन बुद्ध द्वारा प्रतिपादित नहीं किए गये। उनका यह भी सोचना था कि बौद्धत्व के आदर्श की प्राप्ति का द्वार सभी लोगों के लिए खोलना व्यावहारिक नहीं है।

25.2.3 विभिन्न संप्रदाय

देश के विभिन्न भागों में बौद्ध धर्म के फैलाव के कारण अनेक सम्प्रदाय सामने आये। उदाहरण के लिए, थेरवादियों के कार्यकलापों का केन्द्र कोसाम्बी था, मथुरा, सारवस्तीवादियों का केन्द्र था, नासिक और कन्हरी में भद्र यनिका सम्प्रदाय का अस्तित्व था। आरम्भ में इन सम्प्रदायों के उद्भव के पीछे सैद्धांतिक मतभेद प्रमुख नहीं थे। वस्तुतः इनके उद्भव और विकास का मूल कारण इस देश की भौगोलिक विभिन्नता में निहित है। इसके अतिरिक्त स्थानीय स्तर पर विभिन्न समुदायों के दृष्टिकोण का भी इन सम्प्रदायों पर असर पड़ा होगा। इन सम्प्रदायों के उदय का एक कारण यह भी लगता है कि उस समय विभिन्न मठाधीशों के बीच संपर्क का कोई सुलभ माध्यम उपलब्ध नहीं था। सतवाहनों के शासन काल में धान्यकटक (अमरावती) प्रदेश महायान बौद्ध धर्म का प्रमुख गढ़ बना जबकि उत्तर भारत में स्थेरवादियों की लोकप्रियता ज्यादा थी।

इन सम्प्रदायों के कारण भी बौद्ध धर्म के स्वरूप में कुछ परिवर्तन आया। इनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जा रहा है :

- पहले जबकि बुद्ध को एक शिक्षक या उपदेशक के रूप में स्वीकार किया जाता था, वहीं महायान में भगवान के रूप में उनकी पूजा की जाने लगी। इसके कारण बुद्ध की उपासना की पद्धति में परिवर्तन आया मसलन, पहले की वास्तुकला में बुद्ध का प्रतिनिधत्व पैर के निशान, उजला हाथी और एक फूल के माध्यम से होता था, पर नये लोग बुद्ध की प्रतिमा बनाकर उन्हें पूजने लगे।
- बोधिसत्व की अवधारणा में भी परिवर्तन आया। उदाहरण के लिए, एक सम्प्रदाय मानता था कि बोधिसत्व बुद्ध के एक अवतार हैं, जबकि दूसरा सम्प्रदाय मानता था कि सभी की भलाई के लिए निस्वार्थ व्यक्तिगत सेवा ही बोधिसत्व है।
- अब लगातार पुनर्जन्म का विचार सुदृढ़ होता गया। इस बात पर बल दिया गया कि लगातार जन्म लेने से व्यक्ति प्रतिभा हासिल कर सकता है।
- कुछ खास धर्मनिष्ठ विधि अपनाकर प्रतिभा का हस्तांतरण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को किया जा सकता है।

25.2.4 विभिन्न केन्द्र

पहले से स्थापित धार्मिक और तीर्थ स्थल इस काल में भी लोकप्रिय केन्द्र बने रहे। इसके अतिरिक्त इस काल में निम्नलिखित तीर्थस्थल उभर कर सामने आये :

- शुंग काल और उसके बाद भरहुत, बोधगया और सांची प्रमुख तीर्थस्थल बने रहे।
- कुषाणों के अधीनपुरुषपुर बौद्ध संस्कृति के एक प्रमुख केंद्र के रूप में उभरा। इसके बावजूद इस क्षेत्र में तक्षशिला सर्वप्रमुख केंद्र बना रहा। दरअसल संपूर्ण गांधार क्षेत्र (इसमें पुरुषपुर और तक्षशिला शामिल थे) में बौद्ध धर्म इस हद तक प्रमुखता प्राप्त कर चुका था कि गांधार कला के नाम से एक कला विशेष का भी यहां विकास हुआ।
- मथुरा भी बौद्ध धर्म का एक प्रमुख केंद्र था और यहां भी गांधार की तरह एक कला विशेष का विकास हुआ। मथुरा में बनाई गयीं बोधिसत्व की मूर्तियां काफी दूर-दूर तक ले जायी गयीं। इस काल में पश्चिमी दक्खन नासिक, कन्हेरी और कार्ले में अनेक गुफाएं बनायी गयी जिनका उपयोग विहार और बौद्ध पुजारियों के निवास-स्थान के रूप में होता था।
- पूर्वी दक्खन के अमरावती और नागार्जुन कोंडा में बौद्ध कला फली-फूली। पूरे भारत में नागार्जुन कोंडा का महाचैत्य बौद्धों का प्रमुख तीर्थस्थल था।
- इनमें से कुछ शिक्षा संस्थानों के रूप में भी विकसित हुए। उदाहरण स्वरूप तक्षशिलाह, मथुरा, बनारस और नालन्दा बौद्ध शिक्षा के प्रमुख केंद्र के रूप में सामने आये। तक्षशिला के अध्ययन केन्द्र में देश के विभिन्न भागों से विद्यार्थी पढ़ने जाते थे। यहां मानविकी, विज्ञान हस्तकला, युद्धकला, विधि और औषधि संबंधी उच्च शिक्षा प्रदान की जाती थी।

25.3 जैन धर्म

बौद्ध धर्म की अपेक्षा जैन धर्म का विस्तार धीमी गति से हुआ। इसके अतिरिक्त बौद्ध धर्म के समान जैन धर्म को ज्यादा राज्य संरक्षण भी प्राप्त नहीं हुआ। इन समस्याओं के बावजूद जैन पुजारी सक्रिय थे और उन्होंने जैन धर्म को फैलाने के लिए काफी यात्राएं की। ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दियों में इन्होंने भारत में अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। पर बौद्ध धर्म के समान जैन धर्म के मतावलम्बियों ने उसके सिद्धांतों को भारत से बाहर फैलाने की कोशिश नहीं की।

25.3.1 विस्तार और संरक्षण

कुछ राजाओं ने जैन धर्म को संरक्षण प्रदान किया इन राजाओं में कलिंग के राजा खारवेल का नाम सर्वप्रथम है। वह और उसकी रानी न केवल जैन धर्म के सिद्धांतों का पालन करते थे बल्कि उन्होंने उदयगिरी पहाड़ियों में जैन साधुओं के रहने के लिए कुछ गुफाएं भी बनवायीं।

कुषाण काल में जैन धर्म मथुरा में लोकप्रिय था। मथुरा केन्द्र में तीर्थंकरों की मूर्तियों तथा जैनियों की अन्य पूज्य वस्तुओं का निर्माण होता था।

तमिल देश में तमिल राजाओं ने कुछ गुफाएं जैनियों को अर्पित की। अथियन नेटुमन अंजी ने दक्षिण आर्कोट जिले के जवाई नामक स्थान पर कुछ गुफाएं जैनियों को अर्पित की। सित्रनवसल (जिला पुडुकोट्टइ) में आम लोगों ने जैन साधुओं को गुफा अर्पित की। इससे इस प्रदेश में लोगों के

जैन धर्म के प्रचार के लिए जैन साधुओं ने सेवा दल संगठित किया। आरम्भ में इन सेवा दलों का उद्देश्य अकाल और भुखमरी से पीड़ित जैन साधुओं को सहायता और संरक्षण प्रदान करना था। पर धीरे-धीरे यह राहत सेवा-दल धार्मिक सेवा-दल में परिणत हो गया और जैन धर्म का प्रचार इसका उद्देश्य हो गया।

इस प्रकार के राहत सेवा दल पहले पहल मौर्य काल में गठित हुए थे। परम्परा से प्राप्त जानकारी के अनुसार भद्रबाहु जो चंद्रगुप्त मौर्य का समकालीन था ने जैनों को संरक्षण प्रदान करने के लिए दक्षिण की यात्रा की। वह राजा चंद्रगुप्त मौर्य के साथ दक्षिण की ओर गया और उसने कर्नाटक के श्रावण बेलगोला नामक स्थान पर एक केन्द्र की स्थापना की। इसी स्थान से जैन तमिल देश और आंध्र क्षेत्र के विभिन्न हिस्सों में फैले।

एक श्वेताम्बर परम्परा के विवरण से पता चलता है कि खारवेल के शासन काल में जैन साधु मगध से पूर्वी आंध्र तट की ओर जाकर बस गये थे। भुवनेश्वर के निकट उदयगिरी पहाड़ियों पर हाथीगुम्फा गुफा में मिले एक अभिलेख से भी इस बात की पुष्टि होती है।

एक अन्य परम्परा से पता चलता है कि जैन मथुरा में जाकर बस गये। मथुरा में कंकाली टीला का खंडहर और अनेक **समर्पणात्मक** अभिलेख इस बात का प्रमाण है कि पहली दूसरी शताब्दियों में यहां जैन धर्म का अस्तित्व था।

कालकाचार्य की कहानी से पता चलता है कि पहली-दूसरी शताब्दियों में जैन मालवा की ओर गये थे।

जूनागढ़ अभिलेख इस बात का प्रमाण है कि इस्वी सन् की आरम्भिक शताब्दियों में जैन धर्म गुजरात तक फैल चुका था।

25.3.2 विभिन्न सम्प्रदाय

ई.पू. दूसरी शताब्दी से ही श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायों का जिक्र मिलता है। जिन्होंने सारे वस्त्रों का त्याग कर नंगा रहने का व्रत लिया वे दिगम्बर कहलाए और जिन्होंने सफेद कपड़े पहने उन्हें श्वेताम्बर कहा गया। इन दोनों सम्प्रदायों का सैद्धान्तिक मतभेद बहुत ज्यादा नहीं था। यह मतभेद इस काल में भी कायम रहा।

प्रथम शताब्दी ई. के आस पास यापानीय नामक एक अन्य जैन सम्प्रदाय का उदय हुआ। इसकी स्थापना संभवतः एक श्वेताम्बर साधु ने कल्याणगढ़ में की थी। इस साधु का नाम कलस था। इस सम्रदाय की उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि इसके अनुसार स्त्रियां भी मोक्ष प्राप्त कर सकती थी और यह कि कैवल्यों को भोजन थोड़ा-थोड़ा करके करना चाहिए।

कुल मिलाकर जैन धर्म अपने मूल सिद्धांतों से बंधा रहा और इसके अनयायी कमोवेश एकनिष्ठ बने रहे।

25.3.3 विभिन्न केन्द्र

जैनियों के विभिन्न केंद्रों में राजगृह या राजगीर पहली और दूसरी शताब्दी ई. में एक महत्वपूर्ण केन्द्र के रूप में उभरा। श्वेताम्बर सम्प्रदाय के बज्रमुनि का नाम इस स्थान से जुड़ा हुआ है।

मथुरा एक अन्य महत्वपूर्ण केन्द्र था। मथुरा में प्राप्त वास्तुशिल्प और उन पर उकेरे गये **समर्पणात्मक** अभिलेख से प्रमाणित होता है कि व्यापारी वर्ग ने यहां जैन धर्म को काफी संरक्षण प्रदान किया था। कई शताब्दियों तक यह जैन धर्म का प्रमुख केंद्र बना रहा। बाद में एक अन्य स्रोत से पता चला कि इस काल में उज्जैन भी एक महत्वपूर्ण केन्द्र था।

ईसा बाद की आरम्भिक शताब्दियों में उत्तर पश्चिम में भी जैन धर्म विकसित हुआ। तक्षशिला में सिरकप नामक स्थान पर बौद्ध केन्द्र के साथ-साथ जैन केन्द्र भी स्थापित हुआ। यहां जैनियों की विशाल बस्ती थी। इसी प्रकार पश्चिमी घाट के भड़ौच और सोपारा बड़े केन्द्र थे और यहां पुजारियों का आना जाना लगा रहता था।

उड़ीसा में भुवनेश्वर के निकट उदयगिरी और खंडगिरि पहाड़ियाँ मौर्यों के समय से ही जैन धर्म का केंद्र थीं और ये खारवेल के शासन के बाद भी समृद्ध रहीं।

तमिल देश में, मदुरई और सित्तनवसल महत्वपूर्ण केन्द्र माने जा सकते हैं। ई.पू. दूसरी शताब्दी और उसके बाद इन जगहों पर विशाल जैन बस्तियां थी।

बोध प्रश्न 1

1) सही उत्तर के आगे (✓) और गलत उत्तर के आगे (×) का निशान लगाएं।
   i) भरहुत स्तूप शुंग के शासन काल के दौरान बनाया गया
   ii) भारतीय-यूनानी राजा मिनेन्द्र ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया
   iii) ई.पू. दूसरी शताब्दी में जैन धर्म तमिल देश में विकसित हुआ था।
   iv) यापानीय बौद्ध धर्म का एक सम्प्रदाय था।
   v) हाथीगुम्फा एक जैन केन्द्र था, जो खारवेलों के अधीन था।

2) महायानवाद की आधारभूत अवधारणा को स्पष्ट करें। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दें)

....

....

....

....

....

....

3) पाँच पंक्तियों में महत्वपूर्ण जैन केन्द्रों पर एक टिप्पणी लिखें।

....

....

....

....

....

25.4 ब्राह्मणवाद/धर्म

इस बात की चर्चा की जा चुकी है कि इस काल में ब्राह्मण धर्म को कई राजाओं का समर्थन प्राप्त था। समकालीन स्रोतों से पता चलता है कि अनेक राजा कुछ वैदिक अनुष्ठानों का पालन करते थे। उदाहरण के तौर पर पुष्यमित्र शुंग ने **अश्वमेघ यज्ञ** का आयोजन किया था। सतवाहन राजवंश के **सतकर्णी** प्रथम ने अश्वमेघ, राजसूय और कुछ अन्य बलियों का आयोजन किया था। यह भी कहा जाता है कि चोल और तमिल देश के पांड्य राजाओं ने भी बलियों का आयोजन किया था।

25.4.1 नये तत्वों का समावेश

इस काल में ब्राह्मण धर्म में भी कई नये परिवर्तन हुए और यहीं से हम तथाकथित पुराणपंथी हिन्दू धर्म को आकार ग्रहण करते हुए देखते हैं। इसमें बलि के स्थान पर देवी और देवताओं की पूजा को स्थान दिया गया। उदाहरण के लिए, सर्वोच्च ईश्वर की अवधारणा ने बल प्राप्त किया, विष्णु या शिव सर्वोच्च ईश्वर थे। विष्णु और शिव में से किसे सर्वोच्च ईश्वर माना जाए इस आधार पर दो नये संप्रदाय शैव और वैष्णव सामने आये।

हालांकि दोनों संप्रदाय यह विश्वास रखते थे कि भक्ति के माध्यम से ही मोक्ष की प्राप्ति की जा सकती है पर ईश्वर की सर्वोच्चता को लेकर उनमें गंभीर मतभेद था। इसी समय त्रिदेव की संकल्पना भी सामने आयी। ब्राह्मण परंपरा के सभी ईश्वर अब तीन प्रमुख ईश्वरों में समा गये। ब्रहमा को सृष्टिकर्त्ता, विष्णु को पालनकर्त्ता और शिव को संहारक माना गया। हालांकि इन ईश्वरों का उल्लेख वैदिक काल में भी मिलता है, पर इस काल में आकर उन्हें महत्व और प्रमुखता प्राप्त हुई। शिव और विष्णु के भक्तों की संख्या तेजी से बढ़ी पर ब्रह्मा के अनुयायियों को इतनी बड़ी तादाद में आकर्षित नहीं किया।

इस काल में होने वाले महत्वपूर्ण परिवर्तन निम्नलिखित हैं।

- शुद्ध अनुष्ठान से भक्ति की ओर प्रयाण और
- ब्राहमण धर्म द्वारा स्थानीय परंपराओं का **आत्मसातीकरण**।

उदाहरण के लिए, वैष्णव धर्म में वैदिक विष्णु की तरह अनेक तत्व आत्मसात कर लिए गए और ज्ञानी नारायण, वासुदेव और बलराम को भगवान का रूप माना जाने लगा। महाकाव्य के नायक राम और कृष्ण को इसमें शामिल किया गया और ब्राह्मण धर्म के देवताओं में उन्हें प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ। संगम साहित्य में उल्लिखित तमिल देवताओं को ब्राह्मण धर्म में शामिल कर लिया गया। इसी प्रकार ब्राह्मण धर्म में उत्तर भारत के कुछ स्थानीय देवताओं को भी शामिल कर लिया गया।

25.4.2 अन्य देवता

अनेक प्रकार के देवताओं की पूजा की जाती थी। उनमें ब्रह्मा, अग्नि, सूर्य और इन्द्र लोकप्रिय थे। चार संरक्षक देवताओं (दिकपाल) यम, वरुण, कुवेर और वासव की भी पूजा की जाती थी। इनके अतिरिक्त :

- हाथी, घोड़ा और गाय जैसे पशुओं की पूजा होती थी,
- देश के बहुत से हिस्सों में सर्प पूजा प्रचलित थी।
- कई प्रकार के पेड़ों और पेड़ पर रहने वाली प्रेतात्माओं की भी पूजा की जाती थी।

25.5 शैव संप्रदाय

शैव संप्रदाय का जन्म वैदिक काल से भी पहले माना जा सकता है यह धर्म सन् ईस्वी की आरंभिक शताब्दियों में भारत के लगभग सभी भागों में लोकप्रिय हो गया। शिव इस संप्रदाय के देवता थे और उनकी पूजा लिंग रूप में की जाती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि पूजा करने की यह पद्धति सन् ईस्वी के आरंभिक वर्षों में लोकप्रिय हुई। मनुष्य रूप में भी शिव की पूजा होती थी कुछ साहित्यिक ग्रंथों में इस प्रकार का वर्णन मिलता है।

इस काल में शैव संप्रदाय को कुछ हद तक राजकीय संरक्षण भी प्राप्त हुआ। कुषाण राजाओं में **बेमा कदाफिसेस** शिव का परम भक्त था। उसके सिक्कों में एक तरफ त्रिशूलधारी शिव की छवि अंकित होती थी हालांकि कनिष्क बौद्ध था, पर उसके कुछ खास प्रकार के सिक्कों पर भी शिव की छवि अंकित है। दक्खन में शिव की पूजा काफी पहले से प्रचलित थी। प्राकृत ग्रंथ सतवाहन राजा हल की पुस्तक गाथा सप्तशती और पूर्वी आंध्र प्रदेश से प्राप्त अति पुरातन पत्थर का बना लिंग शिव पूजा के अस्तित्व के द्योतक हैं।

तमिल देश में शैव धर्म की जड़ काफी मजबूत थी। तमिल संगम ग्रंथों में शिव को सबसे बड़ा भगवान (ममुडु मुडलेयन) माना गया है। संगम ग्रंथों में शिव की विस्तार से चर्चा की गयी है। उदाहरण के लिए, शिव अपने बाल को सर पर बांध कर रखते थे, बाघ की खाल पहनते थे, आदि। उनका उल्लेख संहारक देवता के रूप में हुआ है जिन्होंने स्वर्ग के तीन शहरों। (त्रिपुरंतक) को नष्ट कर दिया था।

शैव धर्म में शिव के अतिरिक्त कई अन्य देवी-देवताओं की भी पूजा होती थी। शिव की पत्नी पार्वती का इनमें प्रमुख स्थान था और उन्हें 'शक्ति' का प्रतीक माना जाता था। ऐसी धारणा प्रचलित हो गयी थी कि पार्वती से ही सभी शक्तियाँ उद्भव होती हैं। वे स्कन्द और गणेश की माता भी थी। पार्वती का एक प्रचंड रूप दुर्गा भी है और इस रूप में भी उनकी आराधना होती थी। सतवाहन राज्य में पार्वती के दूसरे रूप गौरी की पूजा होती थी।

इस काल में स्कन्द-पूजा लोकप्रिय हुई। उसे शिव का पुत्र माना जाता था। उसे देवताओं की शक्तियों के नेता के रूप में देखा जाता था। इसे कार्तिकेय और कुमार के नाम से भी जाना जाता था। तमिल देश में उसकी पूजा मुरुग रूप में होती थी। संगम ग्रंथ में उनके गुणों और उनके मंदिरों का उल्लेख था।

इस काल में गणेश का महत्व अपेक्षाकृत कम था। वह स्कन्द के बड़े भाई थे। वह गणों (शिव के अतिकेयों) के नेता थे और उन्हें विनायक के नाम से भी जाना जाता था।

शैव संप्रदायों में पशुपत संप्रदाय सर्वाधिक लोकप्रिय था। द्वितीय शताब्दी ई. में कभी गुजरात में भाकुलिसा ने इस संप्रदाय की शुरुआत की और पशुपत संप्रदाय के सन्यासी देश के विभिन्न भागों में फैल गये। शिव की पूजा पशुपति के रूप में की लाने लगी। कापलिक और कालमुख संप्रदायों का उदय काफी बाद में हुआ। इन सभी संप्रदायों ने शिव को सर्वोच्च ईश्वर माना।

25.6 वैष्णव संप्रदाय

वैष्णव संप्रदाय ब्राह्मण धर्म का एक प्रमुख संप्रदाय है जिसके अनुयायी भारत के सभी हिस्सों में फैले हुए थे। इस संप्रदाय के प्रमुख देवता विष्णु थे ब्राह्मण धर्म में उनका उल्लेख संरक्षक के रूप में हुआ है। आरंभिक काल में वैष्णव संप्रदाय भागवत धर्म के रूप में जाना जाता था जिसका विकास वैदिक पंथ वासुदेव-कृष्ण से हुआ।

भागवत धर्म का मूल उपनिषदों में निहित है। इसका उदय मथुरा के आस-पास हुआ। इसमें हरि को सर्वोच्च ईश्वर माना गया और बलि तथा अनुष्ठानों को कम से कम महत्व दिया गया। विष्णु के प्रति भक्ति को सर्वोच्च कर्त्तव्य माना गया। कुछ समय तक यह मथुरा तक ही सीमित रहा। ईस्वी सन् के आरंभ में समूचे भारत में इसका फैलाव शुरू हुआ। वासुदेव की आराधना को पुष्ट करने वाले अभिलेख महाराष्ट्र, राजपुताना, और मध्य भारत में मिलते हैं।

भागवत संप्रदाय के **केंद्रीय व्यक्तित्व वासुदेव को ब्राह्मण धर्म में** प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ। आरंभ में वे धर्म और इंद्र के समान माने जाते थे। द्वितीय शताब्दी ई. के सतवाहन राजा गौतमीपुत्र सातकर्णी की तुलना महाभारत के नायकों बलराम, केशव, अर्जुन, और भीमसेन—के साथ की गयी है।

द्वितीय शताब्दी ई. पू. तक आते-आते विष्णु और नारायण एक दूसरे में समाहित हो गये और उनकी पूजा एक देवता के रूप में होने लगी। इस प्रकार के सम्मिश्रण से संभवतः ब्राह्मण धर्म को बौद्ध धर्म के प्रसार पर नियंत्रण रखने में सुविधा हुई होगी। वासुदेव और अन्य व्यक्तित्वों को लेकर चलने वाला भागवत संप्रदाय भी वैष्णव धर्म का एक हिस्सा था।

डिमेट्स और मिनेन्द्र जैसा राजा बौद्ध धर्म के अनुयायी थे पर कुछ भारतीय-यूनानी राजाओं ने भागवत धर्म को भी अपनाया। उदाहरण के लिए, बेसनगर स्तम्भ अभिलेख से हमें पता चलता है कि तक्षशिला का **देलियोडोरस** (जो शुंग शासक के दरबार में भारतीय-यूनानी राजा **प्रैटियालसिड़** का राजदूत था) भागवत संप्रदाय का अनुयायी था उसने वासुदेव के सम्मान में भोपाल के निकट बेसनगर (विदिशा) में शिव के प्रतीक चिन्ह गरुड़ का शीर्ष लगवा कर एक स्तम्भ निर्मित करवाया था।

तमिल देश में विष्णु की पूजा बहुत लोकप्रिय थी। तमिल ग्रंथों में उनके विभिन्न कार्यकलाप और विशेषताओं की चर्चा है। इन ग्रंथों में कृष्ण को विष्णु का रूप कहा गया है। राम और बलराम भी उनके ही अवतार थे।

वैष्णव संप्रदाय के प्रमुख देवता विष्णु के कई अवतारों की चर्चा की गयी थी। इसलिए विष्णु की पूजा अवतारों के रूप में की जाती थी। कृष्ण,राम और बलराम विष्णु के सर्वप्रथम सम्माननीय अवतार थे लेकिन इनके अतिरिक्त नरसिंह और वराह जैसे अवतारों की भी पूजा की जाती थी।

इसके अतिरिक्त विष्णु की सवारी गरुड और उनके हथियार चक्र को भी श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता था। उनके प्रतीक चिन्ह गरुड़ की भी पूजा की जाती थी और गरुड़ के शीर्ष वाले अनेक स्तम्भों का निर्माण कराया गया था। ये स्थान वैष्णवों के लिए पवित्र स्थल थे।

विष्णु की पत्नी लक्ष्मी की भी पूजा की जाती थी। रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों में वैष्णव धर्म से संबंधित विभिन्न प्रकार के विचारों का समावेश किया गया है। भागवत गीता में वैष्णव धर्म के प्रमुख विचार कर्म के सिद्धांत को इसी काल में महाभारत में शामिल किया गया। इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को धर्मग्रंथों द्वारा स्थापित मानवीय कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए। बिना फल की कामना करते हुए कर्म करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है

बोध प्रश्न 2

1) सौ शब्दों में वैष्णव संप्रदाय के प्रमुख पक्षों का उल्लेख करें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) इस काल के दौरान ब्राह्मण धर्म में हुए परिवर्तनों के बारे में पांच पंक्तियों में लिखें।

....

....

....

....

....

3) सही वक्तव्य के आगे (√) और गलत वक्तव्य के सामने (×) का निशान लगाएँ।

i) इस काल के दौरान ब्राह्मण धर्म के लोकप्रिय संप्रदाय बहुत महत्वपूर्ण हो गये

ii) वैष्णव संप्रदाय ने "अवतार" की अवधारणा बौद्ध धर्म से ग्रहण की थी।

iii) ऋग्वैदिक देवता रुद्र ही को बाद में भगवान शिव के रूप में पूजा जाने लगा।

iv) इस काल की एक महत्वपूर्ण घटना यह थी कि ब्राह्मण धर्म में भक्ति के महत्व में तेजी से वृद्धि हुई।

25.7 सारांश

इकाई 17 में आप अध्ययन कर चुके हैं कि छठी शताब्दी ई.पू. के आसपास ब्राह्मण धर्म की रूढ़िवादिता के खिलाफ बौद्ध धर्म, जैन धर्म और अन्य अनिश्वरवादी संप्रदायों का उदय हुआ। पर दूसरी शताब्दी ई.पू. तक इन अनिश्वरवादी आंदोलनों में अनेक परिवर्तन आये और इनका स्वरूप काफी जटिल हो गया। हालांकि कुछ धर्मों को राजकीय संरक्षण भी प्राप्त था, पर धर्म के फैलाव में पुजारियों और प्रचारकों ने विशेष योगदान दिया।

इस काल में ब्राह्मण धर्म का पुनरुद्धार हुआ, जिसने कई अन्य धर्मों के कुछ विचारों को आत्मसात कर लिया। देवी-देवताओं की संख्या बढ़ी। पहले के कई प्रमुख देवी-देवताओं का महत्व समाप्त हो गया और नये देवी-देवता प्रमुख हो उठे। ब्राह्मण धर्म में कई संप्रदायों का उदय हुआ, वैष्णव और शैव इनमें प्रमुख हैं। वस्तुतः ब्राह्मण धर्म में विभिन्न संप्रदायों का यह उदय एक महत्वपूर्ण घटना थी।

25.8 शब्दावली

अवतार : भगवान का अवतार रूप लेना। यह विश्वास किया जाता है कि संकट की घड़ी में संसार को पूर्ण विनाश से बचाने के लिए विष्णु ने कई रूपों में अवतार लिए जैसे मत्स्य, वराह, राम, कृष्ण आदि।

ब्राह्मण धर्म : इस शब्द का प्रयोग विशाल अर्थ में, धार्मिक और दार्शनिक विचारों, विश्वासों, अनुष्ठानों, देवी और देवताओं के लिए किया जाता है। यह वेदों में वर्णित विचारों को सर्वोच्च मानता है और ब्राह्मणों को समाज के सभी वर्णों में श्रेष्ठ मानता है, यह अनिश्वरवादी विचारों का भी विरोध करता है।

वास्तुशिल्प : पत्थर, लकड़ी, मिट्टी आदि से बनायी गयी कलात्मक मूर्तियाँ और वस्तुएं

विहार : एक ऐसी जगह जहाँ कई पुजारी एक साथ रहते थे और धार्मिक नियमों का पालन करते थे।

संप्रदाय : किसी धार्मिक मत से अलग हो गया वह हिस्सा, जो किसी खास धार्मिक विश्वास के आधार पर विकसित होता है।

स्तूप : बुद्ध या उनके शिष्यों के अवशेषों के ऊपर बनाया गया स्मारक, इसमें बौद्ध अनुयायी पूजा-अर्चना करते हैं।

25.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) (i) (√) (ii) (√) (iii) (×) (iv) (×) (v) (√)

2) इस प्रश्न का उत्तर देते समय आप महायान बौद्ध संप्रदाय के सिद्धांतों का उल्लेख करें? देखिए, उपभाग 25.2.2

3) इस उत्तर में आप कुछ प्रमुख जैन केंद्रों का नाम लिखें और उनके महत्व पर प्रकाश डालें। देखिए, उपभाग 25.3.3

बोध प्रश्न 2

1) आप वैष्णव धर्म के सिद्धांतों, इस काल में वैष्णव धर्म के विकास, विष्णु के विभिन्न रूप आदि का उल्लेख करें।
देखिए भाग 25.6

2) इस प्रश्न का उत्तर देते समय आप ब्राह्मण धर्म में "भक्ति" के महत्व पर प्रकाश डालिए, इसके अतिरिक्त ब्राह्मण धर्म द्वारा स्थानीय तत्वों के **आत्मसातीकरण** का भी उल्लेख कीजिए, आदि।
देखिए, उपभाग 25.4.1

3) (i) (√) (ii) (√) (iii) (√) (iv) (√)

इकाई 26 कला तथा वास्तुकला

इकाई की रूपरेखा

26.0 उद्देश्य
26.1 प्रस्तावना
26.2 पृष्ठभूमि
26.3 वास्तुकला
    26.3.1 रिहायशी वास्तुकला
    26.3.2 मंदिर और बुर्ज
    26.3.3 स्तूप
    26.3.4 गुफा स्थापत्य
26.4 मूर्ति कला
    26.4.1 गांधार कला केंद्र
    26.4.2 मथुरा कला
    26.4.3 अमरावती कला
26.5 सारांश
26.6 शब्दावली
26.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

26.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- ई.पू. 200 से सन् ई. 300 के बीच की कला संबंधी गतिविधियों और वास्तुकला से संबंधित कार्यकलापों के बारे में जान सकेंगे,
- वास्तुकला और मूर्तिकला में अपनायी जाने वाली तकनीकों और तरीकों को रेखांकित कर सकेंगे,
- गांधार, मथुरा और अमरावती कला केंद्रों की प्रमुख विशेषताओं और स्वरूपों में अंतर स्पष्ट कर सकेंगे, और
- इस काल की कला तथा वास्तुकला पर धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों के प्रभाव पर प्रकाश डाल सकेंगे।

26.1 प्रस्तावना

इकाई 3, 10 और 11 में हमने पढ़ा है कि किस प्रकार विभिन्न कला-रूपों का जन्म और विकास हुआ और किस प्रकार इनमें तत्कालीन संस्कृति प्रतिबिंबित हुई है। ऐसी कलाकृतियों की संख्या काफी है, जिसमें आम आदमी की प्रतिदिन की जिंदगी प्रतिबिंबित हुई है, ये कलाकृतियाँ समाज के विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग का प्रतिनिधित्व नहीं करती है। ये कलाकृतियाँ शिला चित्र, मिट्टी की मूर्तियों और खिलौनों के रूप में उपलब्ध है। धीरे-धीरे विशेषज्ञों द्वारा तैयार की जाने वाली कलाकृतियाँ एक खास उद्देश्य के तहत बनायी जाने लगीं। मौर्यकाल में राज्य-संरक्षण में कई प्रकार की कलाओं को प्रोत्साहित किया गया। ऐसे नये सामाजिक वर्गों के उदय से, जो कला को संरक्षण दे सकते थे, कला संबंधी गतिविधियों में नये तत्वों का समावेश हुआ। मौर्योत्तर काल में विभिन्न सामाजिक समूहों द्वारा कला को संरक्षण दिए जाने के कारण इसका विस्तार भारत और उसके बाहर भी हुआ, अब यह केवल राज्य के अधीनस्थ नहीं रही। मौर्यकाल के पश्चात् एक और परिवर्तन आया : पत्थर जैसी न टूटने वाली सामग्री को कलात्मक अभिव्यक्ति का आधार बनाया गया। इस काल में भारत से बाहर के कला रूपों और यहाँ के कला-रूपों के बीच आदान प्रदान हुआ। कई कला-केंद्रों का जन्म हुआ। इस इकाई में गांधार और मथुरा कला रूप की प्रमुख विशेषताओं पर विचार करेंगे। इस संदर्भ में सारनाथ और अमरावती की भी चर्चा की जाएगी। अधिकांश कला-रूप बौद्ध और जैन धर्म से प्रभावित हैं, कुछ ब्राह्मण धर्म का प्रभाव ग्रहण किए हुए हैं। इसके अतिरिक्त इस इकाई में विभिन्न स्तूपों, विहारों और गुफाओं आदि की वास्तुकला और मूर्तिकला संबंधी विशेषताओं पर प्रकाश डाला जाएगा।

26.2 पृष्ठभूमि

मौर्यकाल में वास्तुकला और मूर्तिकला विकसित अवस्था तक पहुँच गयी थी। अशोक के स्तंभ, उन पर जानवरों की आकृतियाँ और खुदाई का काम, परिपक्व कला रूप का प्रमाण है। मौर्य काल की एक विशेषता यह थी कि इसमें पत्थर पर पालिश करके उसे चिकना बनाया जाता था, पत्थर की सतह पर इस प्रकार की शीशे जैसी चमक दूसरे किसी काल में देखने को नहीं मिलती। जानवर आकृतियों के अलावा दीदार गंज, पटना से यक्षिणी की मूर्ति मिली है, जो कला का सुंदर और उत्कृष्ट नमूना है। इस शानदार कलाकृति से उस समय की औरतों के बाल संवारने के ढंग, आभूषण और वस्त्रों का पता चलता है। खुदाइयों से मौर्यकालीन बहुत सी मिट्टी की मूर्तियाँ मिली हैं। यह इस बात का संकेत है कि कला कृतियों का निर्माण राजकीय घराने तक ही सीमित नहीं था, बल्कि जनता तक उनकी पहुँच थी। इसी कारण जब राजकीय कला का ह्रास हुआ और नये कलारूप सामने आये तब भी मिट्टी की मूर्तियों का निर्माण होता रहा।

जहाँ तक वास्तुकला का संबंध है, हम मेगस्थनीज के वर्णन से चंद्रगुप्त के लकड़ी के महल की सूचना पाते हैं। पाटलिपुत्र में हुई खुदाई से लकड़ी की दीवारें और खंभे मिले हैं। बौद्ध ग्रंथों और फाहयान हवैन सांग के वर्णन से यह पता चलता है कि मौर्यकाल में स्तूपों का भी निर्माण हुआ था। यह हो सकता है कि सांची, सारनाथ, तक्षशिला और भारहूत जैसे धार्मिक केंद्रों में स्तूपों का निर्माण कार्य मौर्यकाल में ही शुरू हुआ हो और बाद के वर्षों में उनका विस्तार किया गया हो।

ई.पू. 200 से सन् ई. 300 के बीच की कला की निम्नलिखित विशेषताएँ थी :

1) कला संबंधी गतिविधियों का संबंध धर्म से था और कलाकृतियों में धर्म परिलक्षित होता था।
2) इस काल में बुद्ध की मूर्ति बनायी जाने लगी, इसके पहले बोधि वृक्ष स्तूप, चरण-चिह्न आदि के रूप में ही उनकी पूजा की जाती थी। अन्य धर्मों में भी मूर्ति पूजा का प्रचलन तेजी से बढ़ा।
3) स्तूपों, चैत्यों और विहारों के निर्माण को लोकप्रियता मिली।
4) कलाकृतियों में, किसी एक ही धर्म का प्रतिबिंबन नहीं होता था। उदाहरण के लिए भरहूत और सांची स्तूपों में केवल बुद्ध के जीवन की झांकी ही नहीं अंकित है, बल्कि यक्ष, यक्षिणी, नाग और अन्य लोक प्रिय देवताओं के चित्र भी अंकित हैं।
5) इसी प्रकार, स्तूपों को सजाने के लिए प्राकृतिक दृश्य भी अंकित किए जाते थे। वस्तुतः यह "सेक्यूलर" कला रूप का उदाहरण है।
6) दूसरी संस्कृतियों से आदान-प्रदान के कारण इस काल की कलाकृतियों में गैर भारतीय कला की छाप भी मिलती है। खास तौर पर यह बात गांधार कला के लिए सटीक है, जिसके अंतर्गत एक क्षेत्र विशेष की कला सामने आई और इसने कई विभिन्न तत्वों को आत्मसात किया।

आइए, विस्तार से इस काल की कला और वास्तुकला के विभिन्न पक्षों पर विचार करें।

26.3 वास्तुकला

इस काल की वास्तुकला को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :

i) रिहायशी मकान/आवासीय संरचना
ii) धार्मिक स्मारक

रिहायशी मकान के अवशेष काफी कम मात्रा में पाये जाते हैं, क्योंकि आरंभिक दौर में उनका निर्माण लकड़ी जैसी नष्ट होने वाली सामग्री से होता था। खुदाई के दौरान दूसरी श्रेणी के कई स्मारकों के अवशेष प्राप्त हुए हैं।

26.3.1 रिहायशी वास्तुकला

खंड 4, इकाई 15 में हमने साहित्यिक और पुरातात्विक स्रोतों के आधार पर नगरीय जीवन के बारे में विचार विमर्श किया है। इस काल के बारे में भी हमें इसी प्रकार की सूचनाएँ मिलती हैं। उदाहरण के लिए मिलिन्द पण्ह में खंदक, चहारदीवारी, प्रवेश द्वार, बुर्ज, सुनियोजित गलियों,

बाजारों, बागों और मंदिरों से युक्त एक नगर का उल्लेख मिला है। ऐसी बहुमंजिली इमारतों का भी जिक्र किया गया है, जिसमें रेलिंग से घिरी खुली छत और बरामदे बने हुए थे, ये ज्यादातर लकड़ी के बने थे। इन वर्णनों की एक हद तक पुरातात्विक स्रोतों से पुष्टि कर ली गयी है। देहातों में वास्तुकला के तरीकों या झोपड़ियों के आकार-प्रकार में कोई विशेष बदलाव आने की सूचना नहीं मिलती है।

26.3.2 मंदिर और बुर्ज

उत्खनन से इस काल के मंदिर की संरचना का अपर्याप्त ब्यौरा ही प्राप्त हुआ है। इस काल के आरंभिक मंदिर निम्नलिखित हैं :

- झंडियाल (तक्षशिला) का मंदिर
- नागरी (राजस्थान) का शंकरशान मंदिर
- बेसनगर (मध्यप्रदेश) का भगवती मंदिर
- नागार्जुनकोंडा (आंध्र प्रदेश) का बहुकोणीय शिखर वाला मंदिर

फाहयान ने अपने वृतांत में पुरुषपुर (पेशावर) के बुर्ज का उल्लेख किया है। यह तेरह मंजिली भव्य इमारत थी, जिसमें लोहे का खंभा लगा था, इस खंभ से एक छतरी जुड़ी हुई थी। यह बुर्ज कनिष्क-1 को समर्पित था।

वस्तुतः मंदिरों का निर्माण और पूजा के लिए देवताओं की स्थापना जैसी गतिविधियाँ बाद के वर्षों में आरंभ हुई। इस काल में बौद्ध स्तूप और अन्य धार्मिक इमारतें ही ज्यादा बनायी गयीं।

2. झंडियाल मन्दिर

26.3.3 स्तूप

महत्वपूर्ण व्यक्तियों के अवशेषों को मिट्टी में दबाकर सुरक्षित रखने की प्रथा बहुत पुराने समय से चली आ रही थी। बौद्ध कला ने इस प्रथा को अपनाया और इस प्रकार के पुनीत स्थलों के ऊपर बनी इमारतों को स्तूप कहा गया। बौद्ध स्रोतों के अनुसार बुद्ध के अवशेषों को आठ भागों में बांट कर विभिन्न स्तूपों का निर्माण किया गया। अशोक के शासनकाल में इन स्थलों की फिर से खुदाई हुई और बुद्ध के अवशेषों को फिर से कई भागों में बांटा गया और इस प्रकार कई नये स्तूप सामने आये। स्तूप में पूजा-अर्चना आरंभ हुई, उसका अलंकरण बढ़ा और उनके निर्माण के लिए एक खास तरह की वास्तुकला विकसित हुई।

स्तूपों का आकार कटोरे या अर्द्ध वृत्ताकार गुंबद जैसा होता था। ऊपरी हिस्सा समतल होता था। जिसे हर्मिक या ईश्वर का आवास स्थल माना जाता था। यहीं पर बुद्ध या किसी अन्य धार्मिक व्यक्तित्व के अवशेष सोने या चांदी के डिब्बे में रखे जाते थे। मध्य में एक लकड़ी का खंभा (यशती) लगा होता था जिसका निचला हिस्सा स्तूप के ऊपरी हिस्से से जुड़ा होता था। इस खंभे के ऊपर तीन छतरियां लगी होती थी जो सम्मान, श्रद्धा और उदारता का प्रतीक मानी जाती थीं।

i) बोध गया (बिहार)

गया से पंद्रह किलोमीटर दूर बोध गया में बुद्ध ने बोधिसत्व की प्राप्ति की थी और यहीं अशोक ने बोधि मंड का निर्माण करवाया था। पर आज इस संरचना का कोई अवशेष उपलब्ध नहीं है। केवल शुंग काल में बने कुछ पत्थरों के खंभे प्राप्त हुए हैं। उनकी स्थापत्यगत संरचना स्तूपों के पास बने खंभों से मिलती जुलती है। उनमें जातक कथाएँ चित्रित हैं।

ii) **सांची का स्तूप (मध्य प्रदेश)**
सांची विदिशा (भिल्सा) से 14 किलोमीटर दूर है और यहां का स्तूप शायद भारत का सबसे महत्वपूर्ण है। इसमें तीन स्तूप बने हैं, तीनों स्तूपों के लिए अलग-अलग प्रवेश द्वार है। पर इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण वह महीन स्तूप है, जिसका निर्माण अशोक के शासनकाल (250 ई.पू.) में हुआ था। 150 ई.पू. में शुंग शासन काल में इसका आकार दुगना कर दिया गया। अशोक काल की ईंटों को हटाकर पत्थर लगाया गया और इसके चारों ओर "वेदिका" का निर्माण किया गया। इसकी सुंदरता बढ़ाने के लिए, प्रत्येक दिशा में एक प्रवेश द्वार बनाया गया। दक्षिण द्वार पर स्तंभ स्थापत्यकार का एक वक्तव्य प्राप्त हुआ है, जिसके अनुसार यह प्रवेश द्वार राजा शतकर्णी ने धर्मार्थ दान दिया था और इसमें नक्काशी का काम हाथी दांत का काम करने वाले शिल्पकारों द्वारा किया गया था।

उत्तरी द्वार और इसके चौखटों पर जातक कथाएँ अंकित हैं। इसके अतिरिक्त सांची स्तूप में निम्नलिखित चित्र बने हुए हैं

1) बुद्ध के जीवन से संबद्ध चार प्रमुख घटनाएँ—जन्म, बोधिसत्व की प्राप्ति, धर्मचक्र-प्रवर्तन और महापरिनिर्वाण
2) पक्षी और पशुओं जैसे शेर, हाथी, ऊँट, बैल आदि के चित्र काफी मात्रा में उपलब्ध हैं। इनमें कुछ जानवरों पर सवार भारी कोट और बूट पहने चित्रित किए गये हैं।
3) दीवारों पर कमल और अंगूर के गुच्छों के सुंदर चित्रों द्वारा अलंकरण किया गया है।
4) जंगली जानवरों का चित्र इस प्रकार बनाया गया है मानो सारा जंगल बुद्ध का उपासक हो गया हो।

iii) **भारहुत स्तूप**
यह स्तूप सतना (मध्य प्रदेश) से 21 किलोमीटर दक्षिण में स्थित है। मुख्य स्तूप का अब नामोनिशान नहीं है। इस स्तूप के प्रमुख अवशेष अब भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता और अन्य संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं :

- प्रवेश द्वार या तोरण, जो लकड़ी का बना होता था, इसमें पत्थर की नक्काशी की जाती थी।
- प्रवेश द्वार को छूती हुई रेलिंग। इसमें भी नक्काशी के तौर पर पत्थर लगाए जाते थे। भारहुत की पत्थर के रेलिंग की किनारी भारी पत्थर से निर्मित है।
- इन रेलिंगों के अनुलंब भाग पर यक्ष, यक्षिणी और उन अन्य देवताओं को उत्कीर्ण किया गया है, जो बौद्ध धर्म के साथ जुड़े हुए थे। इनमें से कुछ देवताओं का विवरण भी उत्कीर्ण है, जिससे इन्हें पहचानने में आसानी होती है। अन्य स्तूप रेलिंगों की तरह इसमें भी जातक कथाओं और इनमें जुड़े अन्य प्राकृतिक तत्वों को उत्कीर्ण किया गया है।

iv) **अमरावती**
गुंटूर से 46 किलोमीटर दूर स्थित यह स्तूप सफेद संगमरमर से बना है। हालांकि स्तूप अब पूरी तरह नष्ट हो चुका है, पर इसके नक्काशीदार चौखटे मद्रास और ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित है। मूल रूप में यह स्तूप नगर-प्रमुख और जनता के सहयोग से बनाया गया था।

यह सुंदर स्तूप अपनी गोलाई में 42 मीटर और ऊँचाई में लगभग 29 मीटर था। इसमें एक वृत्ताकार प्रार्थना-पत्र था जो 10 मीटर ऊँचा था और पत्थर से बना हुआ था। वेदिका खंभों पर माला पहने देवताओं, बोधि वृक्ष, स्तूप, धर्म-चक्र और भगवान बुद्ध के जीवन और जातक कथाओं से संबंधित चित्र उत्कीर्ण किए गए थे। स्तूप के प्रवेश द्वार (तोरण) की वेदिका पर चार शेरों को चित्रांकित किया गया है।

स्तंभों के ऊपर कमल को भी उत्कीर्ण किया गया था। अमरावती स्तूप से कई प्रकार की मूर्तियाँ पाई गयी है। आरंभिक चरण में बुद्ध का प्रतिनिधित्व प्रतीकों के माध्यम से होता था, पर प्रथम शताब्दी ई. से इन प्रतीकों के साथ बुद्ध की प्रतिमा भी बनने लगी।

v) **नागार्जुनकोंडा**
नागार्जुनकोंडा का स्तूप उत्तर भारत के स्तूपों से थोड़ा भिन्न है। यहाँ केंद्र में और बाहर की तरफ दो वृत्ताकार दीवारें थीं, ये दीवारें साइकिल की स्पोक जैसी दीवारों से जुड़ी थी और बीच का स्थान मिट्टी, छोटे पत्थर या ईंटों के छोटे टुकड़ों से भरा होता था। इस स्तूप की गोलाई 30 मीटर और ऊँचाई 18 मीटर थी। बाहर की तरफ इसके गुंबद को नक्काशीदार संगमरमर के पत्थरों से अलंकृत किया गया था। गुंबद की अर्ध गोलाकार छत को चूने और गारे के काम से अलंकृत किया गया था।

इस स्तूप के महत्व का कारण इसकी सुंदर रेलिंग है, जिस पर बुद्ध के जीवन से संबंधित कथाएँ वर्णित हैं। इनमें से प्रमुख हैं :

1) पृथ्वी पर जन्म लेने के लिए देवता बोधिसत्व से प्रार्थना करते हुए
2) सफेद हाथी के रूप में गर्भ में बुद्ध का प्रवेश
3) सागौन के पुष्पित वृक्ष के नीचे बुद्ध का जन्म

vi) **तक्षशिला**

तक्षशिला और उसके आसपास के इलाकों में हुई खुदाई से कई स्तूप प्राप्त हुए हैं :

- सर जान मार्शल ने तक्षशिला के चीर-तोपे स्तूप का उत्खनन किया है। इस स्तूप में गुंबद का बाहरी हिस्सा पत्थर का बना था और बोधिसत्व के विभिन्न रूपों से अलंकृत था।
- 1908 में हुए उत्खनन से पेशावर के निकट शाह जी की ढेरी में एक स्तूप था। स्तूप का निर्माण कनिष्क ने करवाया था और इसका जिक्र फाहयान ने भी किया है। इनकी वास्तुकला गांधार कला का नमूना है। (गांधार कला पर हम आगे अलग से इस इकाई में विचार करेंगे)
- झंडियल से प्राप्त स्तूप स्कायथियन-पार्थियन शैली में बना हुआ है। इसी के पास एक छोटी चांदी का पात्र मिला था, जिसमें सोना और कुछ हड्डियाँ रखी थीं।

इसी प्रकार, देश के कई हिस्सों में कई स्तूप पाये गये हैं। मसलन, दो स्तूप मथुरा से प्राप्त हुए हैं। वस्तुतः इस काल में स्तूप कला की एक विशेष शैली का विकास हुआ। सबसे बड़ी बात यह है कि विभिन्न धर्मों के स्तूपों में एक प्रकार की समानता है। इससे यह पता चलता है कि शिल्पकारों के बीच कला का आदान-प्रदान होता था और स्तूप निर्माण में वे जगह-जगह की कलाओं का इस्तेमाल करते थे।

26.3.4 गुफा वास्तुकला

बौद्ध और जैन दोनों की पूजा-अर्चना के लिए चैत्यों और विहारों का निर्माण करते थे।

चैत्य एक प्रकार का पूजा कक्ष था, जिसके केंद्र में एक स्तूप होता था। भिक्षुओं के रहने के लिए पहाड़ियाँ काटकर बनायी गयी गुफाओं को विहार कहते थे।

इस काल के अधिकांश चैत्य और विहार पश्चिमी और पूर्वी क्षेत्रों में बनाये गये थे। मसलन, पश्चिमी भारत में ये भज, कार्ले, कोंडन, नासिक, चिटाल्डो, अजंता और कन्हेरी में स्थित हैं। इसी प्रकार पूर्वी भारत में इस दृष्टि से उदयगिरि (उड़ीसा) उल्लेखनीय है। चैत्य की सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

- इसमें एक लंबा आयताकार कक्ष होता है, जिसका अंतिम छोर अर्द्ध वृत्ताकार होता है।
- यह कक्ष अंदर से मध्य भाग, एक बहुकोणीय शिखर और दो तरफा गलियारों में विभक्त होता है।
- गलियारे और झरोखे के बीच स्तंभों की दो कतारें होती हैं।
- उपासना स्तूप के चारों ओर स्तंभ होते थे और यह मध्य भाग के झरोखे जैसे भाग के केंद्र में स्थित होता था।
- कक्ष की छत गोलाकार-गुम्बजदार होती है।
- प्रवेश द्वार प्रायः उपासना स्तूप की सीध में होता है।
- इसके अग्रभाग में घोड़े की नाल के आकार की एक खिड़की होती है, जिसे चैत्य खिड़की कहते हैं।

गुफा वास्तुकला का दूसरा नमूना विहार या मठ है, जिसमें जैन और बौद्ध भिक्षु रहा करते थे।

पश्चिमी भारत की गुफाओं की संरचना एक सी नहीं है। पूर्वी भारत में एक निश्चित योजना का पालन किया गया है। विहारों की सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

- इसके केंद्र में एक चहुभुजाकार या अंडाकार कक्ष होता है।
- कक्ष के सामने खंभों वाला एक आंगन होता है।
- कई छोटी चहुभुजाकार कोठरियाँ भी मिलती हैं।
- इन कोठरियों और कक्षों में बेंच लगा होता था जिसका उपयोग भिक्षु किया करते थे।

पश्चिमी भारत के आरंभिक विहार भज, बेदसा, अजंता, पीतलकोरा, नासिक और कार्ले में प्राप्त हुए हैं। खारवेल के शासन काल में जैन भिक्षुओं के लिए उदयगिरि और खंडगिरि में विहार खुदवाये गये थे। दो हिस्सों में 35 गुफाएँ खोदी गयी थीं। किसी में एक कोठरी है और कई गुफाओं में अनेक कोठरियाँ हैं। इनमें एक खुला आँगन भी मिलता है। अंदरूनी हिस्सों के प्रवेश द्वार अर्द्ध वृत्ताकार मेहराबों से आच्छादित हैं। उदयगिरि की पहाड़ियों में निर्मित दुमंजिली रानीगुम्फा गुफा सभी गुफाओं में सबसे विशाल है।

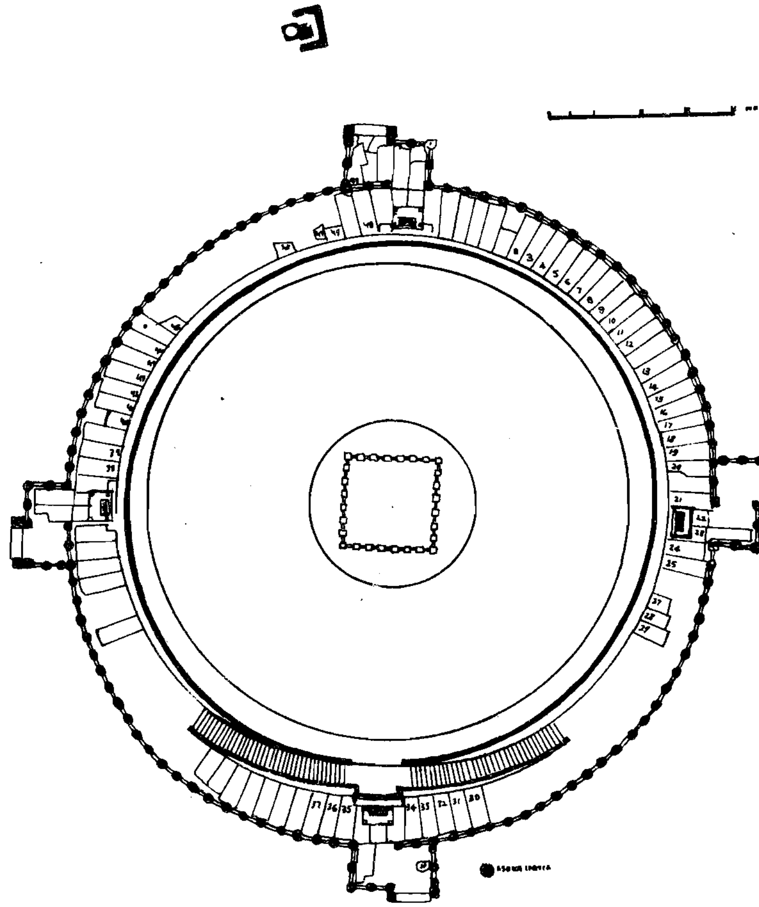

3. सांची स्तूप की बनावट

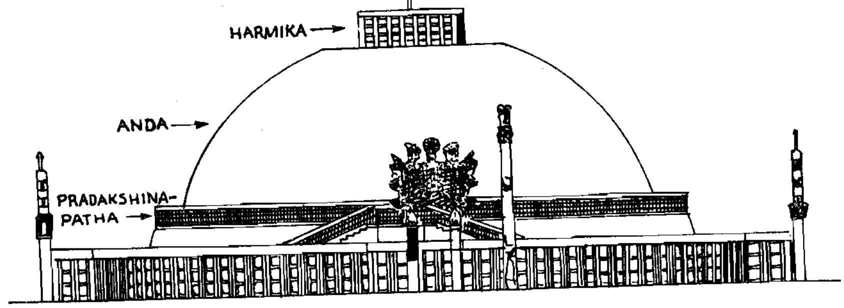

4. सांची स्तूप

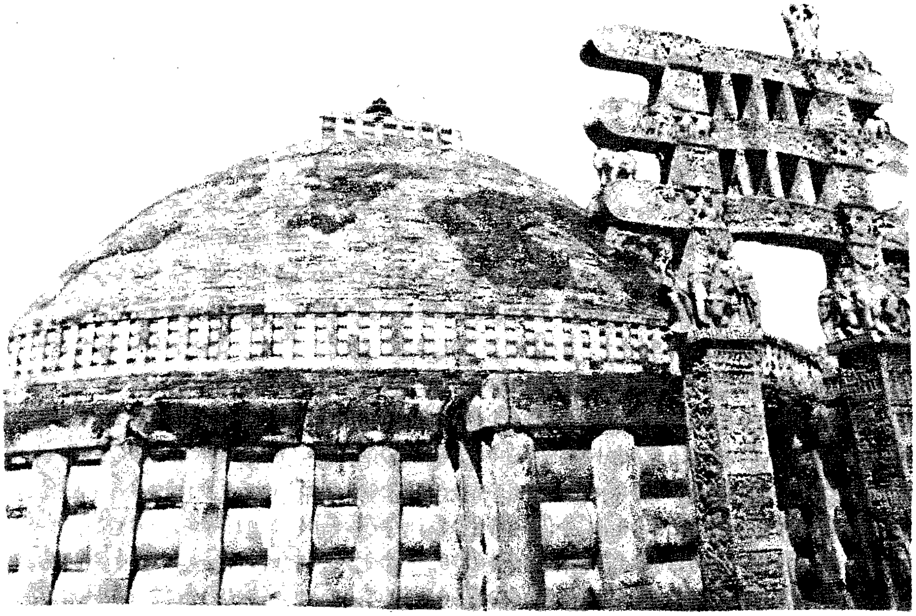

5. सांची के विशाल स्तूप का एक भाग

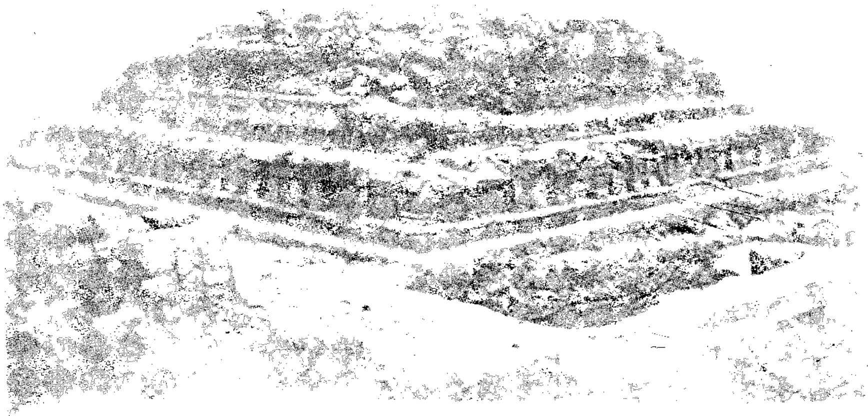

6. तक्षिला का चिरतोप स्तूप

7. दीवार पर नक्काशी की हुई स्तूप की एक आकृति
(नागार्जुनकोंडा)

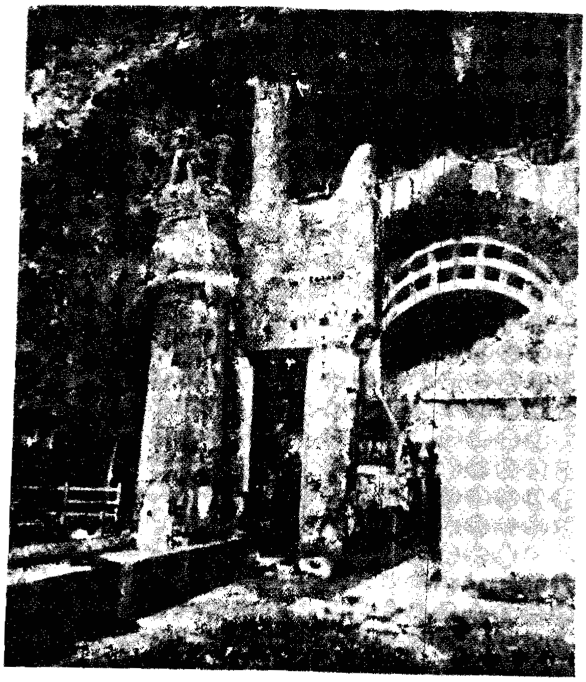

8. कार्ले चैत्य का समाने का भाग

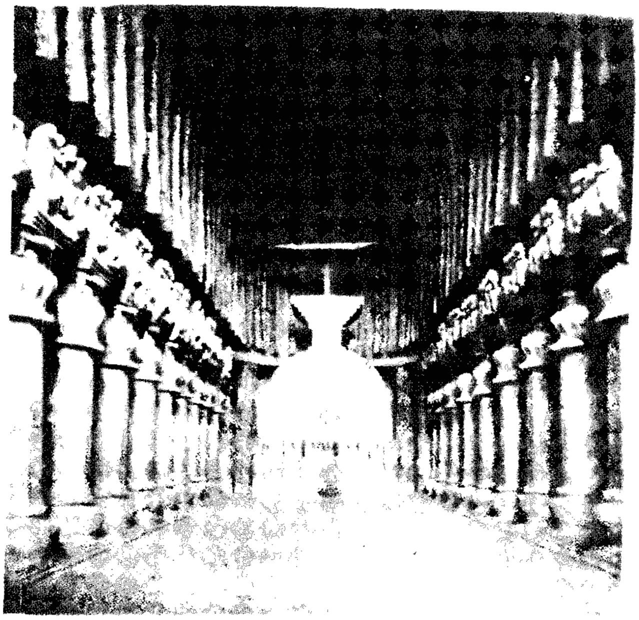

9. कार्ले चैत्य की गुफा

11. रानी गुम्फा की गुफा (उदयगिरि)

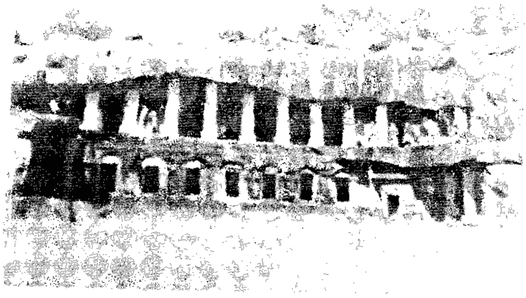

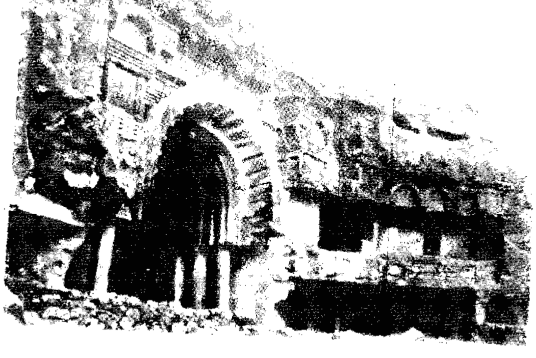

10. भज चैत्य की गुफा

बोध प्रश्न 1

1) पाँच पंक्तियों में मौर्य कला की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करें।

....

....

....

....

....

2) स्तूप से आप क्या समझते हैं? सांची स्तूप की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख करें। दस पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

i) बौद्ध और जैन धर्म ने अधिकांश कलारूपों को .... (प्रेरित/निरुत्साहित) किया।

ii) मौर्य कला .... (अपरिपक्व/परिपक्व) कला रूप है।

iii) नागार्जुनकोंडा स्तूप उत्तर भारत के अन्य स्तूपों से .... (अभिन्न/भिन्न) है।

iv) .... (मोर्टिमर व्हीलर/सरजान मार्शल) ने तक्षशिला में उत्खनन की शुरुआत की।

v) विहारों का उपयोग भिक्षु .... (पूजा स्थल/आवास) के रूप में करते थे।

26.4 मूर्ति कला

मूर्ति कला को स्थापत्य कला से अलग करके नहीं देखा जा सकता है, क्योंकि स्तूप और चैत्य जैसी कलात्मक संरचनाओं का निर्माण दोनों के योग से ही होता है। किसी भी मूर्ति की स्थापना विहारों या अन्य धार्मिक स्थलों पर ही होती थी। इस काल में, हमें मूर्ति कला के क्षेत्र में क्षेत्रीय या स्थानीय शैलियाँ और केंद्र देखने को मिलते हैं। उत्तर में गांधार और मथुरा केंद्र विकसित हुए, जबकि दक्षिण में निचली कृष्णा-गोदावरी घाटी में अमरावती प्रमुख आरंभिक केंद्र था।

समग्र रूप में, मौर्योत्तर काल की कला आरंभिक शाही मौर्य कला से अलग है। मौर्य कला को शाही कला कह सकते हैं, जबकि शुंग कण्व शासन कला की कला का सामाजिक आधार अधिक व्यापक है। इसके मूलभाव, तकनीक और महत्व में भी अंतर है।

इस युग की मूर्ति कला बुद्ध की मूर्ति और रेलिंगों पर उभरी हुयी खोद कर बनायी गयी नक्काशी, प्रवेश द्वार, स्तूपों के आधारों, तोरणों और विहारों और चैत्यों की दीवारों पर उभारदार नक्काशी में प्रतिबिंबित होती है। इस काल में ब्राह्मण धर्म से संबंधित मूर्तियाँ कम ही बनाई गयीं। इस कला में मथुरा और गांधार कला-केंद्रों में बुद्ध की प्रतिमा बनाने का चलन शुरू हुआ। बौद्ध और जैन धर्म की देखादेखी ब्राह्मण धर्म में भी कई देवी देवताओं की मूर्तियाँ बनाई जाने लगीं।

रेलिंगों पर चित्र उत्कीर्ण करने के अलावा गोलाकार आधार पर भी चित्र उत्कीर्ण किए जाते थे। ये चित्र आकार में बड़े और सुस्पष्ट हैं। इसके बावजूद वे सही गणितीय अनुपात में नहीं बने हुए

हैं। इस श्रेणी में यक्ष और यक्षिणी की मूर्तियाँ सबसे ज्यादा उत्कीर्ण की गयीं। इनमें सर्वप्रमुख दीदारगंज (पटना) से प्राप्त यक्षिणी जी की मूर्ति है।

शुंग काल से जैन धर्म में मूर्ति पूजा शुरू हो गयी थी। लोहानीपुर (पटना) से प्राप्त सिर विहीन नग्न मूर्ति का संबंध तीर्थंकर से बताया जाता है। हाथीगुम्फा अभिलेख के अनुसार पूर्वी भारत के जैनों के बीच मौर्य काल के पहले से मूर्ति पूजा प्रचलित थी। कुछ जैन मूर्तियाँ मथुरा से अष्टमंगलों (आठ शुभ चिह्न) के साथ उपासना शिल्प पट्ट पर प्राप्त हुई है। इससे पता चलता है कि प्रथम शताब्दी ईस्वी तक जैनों के बीच मूर्ति पूजा आम बात हो गयी थी।

बौद्ध धर्म में महायान संप्रदाय ने मूर्ति पूजा की शुरुआत की। मथुरा और गांधार में बैठने और खड़े होने की मुद्रा में बुद्ध की मूर्ति बनायी गयी।

सांची, भरहुत और बोध गया की दीवारों पर उभारदार, मूर्तियों का निर्माण किया गया है, ये उभारदार कला के आरंभिक उदाहरण हैं। इस प्रकार के अधिकांश शिल्प स्तूप को घेरे हुए रेलिंग के गोल या आयताकार फलक पर उत्कीर्ण पाये गये हैं। उभारदार शिल्प में या तो बुद्ध का जीवन उत्कीर्ण किया गया है या जातक कथाओं के दृश्य अंकित किए गये हैं और घटनाओं का वर्णन लगातार किया गया है।

26.4.1 गांधार कला केंद्र

गांधार भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी पश्चिमी क्षेत्र में सिंधु नदी के दोनों ओर स्थित है। इसमें पेशावर की घाटी, स्वात, बुनेर और बज्जोरा के इलाके शामिल हैं। छठी-पांचवी ई.पू. में ईरान के अक्कामेनिदों ने यहाँ शासन किया था। बाद में यूनानियों, मौर्यों, शकों, पल्लवों और कुषाणों ने इस क्षेत्र पर अधिकार जमाया। परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में एक मिश्रित संस्कृति का जन्म हुआ। बौद्ध धर्म से जुड़ी यह कला यूनानी कला रूप से काफी प्रभावित थी। उदाहरण के लिए बुद्ध की प्रतिमा में उत्कीर्ण वस्त्र यूनानी रोमन फैशन के अनुरूप झीने और पारदर्शी होते थे और बालों का डिजाइन प्रायः घुंघराला बनाया जाता था। पर एक बात याद रखनी चाहिए कि गांधार कला के प्रमुख संरक्षक शक और कुषाण थे।'

गांधार कला केंद्र की कला के नमूने जलालाबाद, हड्डा, बामरान, बेग्राम और तक्षशिला से प्राप्त हुए हैं। गांधार कला को दो स्कूलों में विभक्त किया जा सकता है—आरंभिक और बाद की कला। आरंभिक कला केंद्र का अस्तित्व सन् ईस्वी की प्रथम और द्वितीय शताब्दी में था, इस काल में मूर्तियों का निर्माण नीले-भूरे रंग की परतदार चट्टानों से किया जाता था। बाद के कला केंद्र में परतदार चट्टानों के स्थान पर मिट्टी, चूना, भित्ति स्तंभ और पलस्तर का उपयोग किया जाता था। इन मूर्तियों में मनुष्य की आकृति का जीवंत अंकन हो पाता था। उनके नाक-नक्शे तीखे हुआ करते थे और उनमें एक गणितीय अनुपात होता था।

इन मूर्तियों के अतिरिक्त दीवारों पर उभारदार मूर्तियाँ भी उत्कीर्ण की जाती थीं। इनमें अधिकांशतः बुद्ध और बोधिसत्व के जीवन से संबंधित चित्र अंकित होते थे। उदाहरण के लिए :

- तक्षशिला का स्तूप बोधिसत्व की मूर्तियों से सजाया गया है, ये मूर्तियाँ पूजा के लिए ताखे पर रखी हैं।
- सेहरीभेलोल स्तूप के छोटे खंभों के परकोटे पर बुद्ध, बोधिसत्व और उनके जीवन से संबंधित घटनाएँ उत्कीर्ण हैं।
- शाह जी की ढेरी स्थित स्तूप के बगल वाली दीवार से एक कांस्य अस्थि-मंजूषा प्राप्त हुई है। इसमें बुद्ध, कुषाण राजा और उड़ता हुआ हंस (विचरणशील भिक्षुओं का प्रतीक) चित्रित हैं।

गांधार कला की कई अन्य विशेषताएँ भी हैं। उदाहरण के लिए बिमरान में एक सोने की अस्थि-मंजूषा प्राप्त हुई है, जिसमें एक छतरी के भीतर कई चित्र अंकित हैं। इसी प्रकार हाथी दांत की बनी एक पटिया ब्रेग्राम से प्राप्त हुई है।

यहाँ हम कुछ चित्र दे रहे हैं (देखें सं. 12, 13, 14, 15, 16, 17) जिनमें गांधार कला के विभिन्न पक्ष उजागर हुए हैं।

26.4.2 मथुरा कला केंद्र

मथुरा कला का जन्म दूसरी शताब्दी ई.पू. से माना जा सकता है। ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दी तक न केवल यह कला के एक प्रमुख केंद्र के रूप में सामने आ गयी थी, बल्कि इसकी मांग दूर-दूर के इलाकों तक फैल गयी। चार सौ वर्षों के अपने जीवन-काल में इस कला-केंद्र ने विविध प्रकार के शिल्प प्रस्तुत किए और बौद्ध, जैन तथा ब्राह्मण धर्म के अनुयायियों के लिए मूर्तियाँ

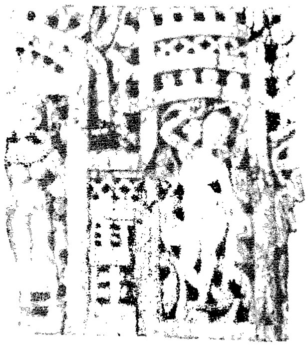

12. हाथीदांत का अलंकृत पट्ट

13. बुद्ध की खड़ी हुई मुद्रा में मूर्ति

14. ध्यान मग्न मुद्रा में बुद्ध

15. शिला पर निर्मित बोधिसत्व आकृति

16. बुद्ध का मुखमण्डल (एक विशेष पलस्तर से बना)

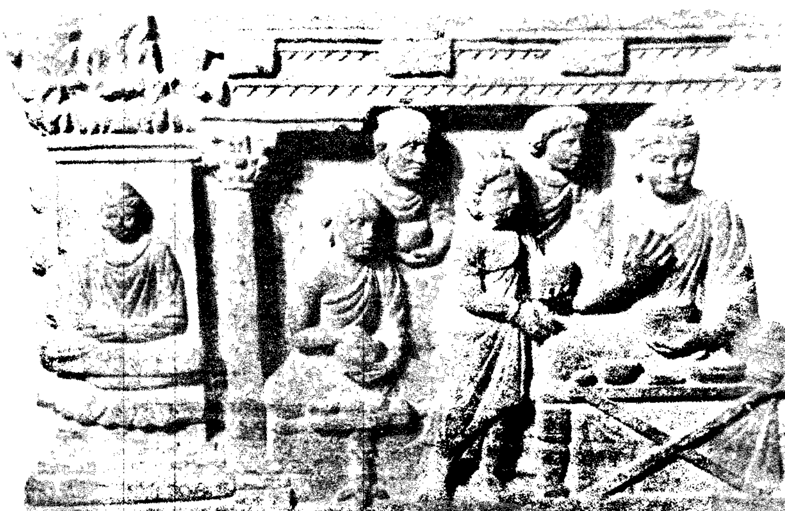

17. भिक्षुओं के साथ भोजन करते हुये महात्मा बुद्ध

बनायी। मथुरा कला की एक खास विशेषता यह है कि अफगानिस्तान की तरह इसमें भी कुषाण काल में राजा और सामंतों की मूर्तियाँ बनायी गयीं। इससे पता चलता है कि मथुरा के कलाकार इस युग की विभिन्न कलात्मक गतिविधियों से परिचित थे और भारतीय तथा अभारतीय मूल के विभिन्न सामाजिक समूहों की मांगों को पूरा करने के प्रति जागरूक थे। मथुरा कला में स्थानीय रूप से उपलब्ध लाल बलुआ पत्थर का उपयोग होता था। इस कला केंद्र की एक अन्य विशेषता यह है कि इसमें पवित्र खंभों पर जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रांकन किया गया है। मसलन, कहीं जंगल का दृश्य है, जहाँ पुरुष और स्त्री फूल चुन रहे हैं, महिलाएँ सारस के साथ खेल रही हैं या चिड़ियों को दाना चुगा रही हैं तथा फुलवारी और सरोवर में क्रीड़ा कर रही हैं। "कंकालितिया के पवित्र खंभों पर नारी सौंदर्य को शिल्पी ने सजीवता से उत्कीर्ण किया है"।

वस्तुतः मथुरा कला केंद्र के कलाकारों ने अपनी कला की प्रस्तुति के लिए अनेक विषय चुने। सांची और भारहुत में कलाकार ने प्राकृतिक दृश्यों का सुंदर उपयोग किया है।

इस कला केंद्र की मूर्तियाँ स्थानीय तौर पर प्राप्त लाल बलुआ पत्थर से बनायी जाती थीं। आइए, मथुरा कला केंद्र में बनायी गयी मूर्तियों के विषयवस्तु पर विचार करें।

1) **बुद्ध की प्रतिमाएँ** : बोधिसत्व और बुद्ध की मूर्ति संभवतः सबसे पहले मथुरा में बनायी गयी थी और यहीं से देश के सारे हिस्से में भेजी गयी थी। उदाहरण के लिए कनिष्क प्रथम के शासन काल में सारनाथ में स्थापित खड़े बोधिसत्व की मूर्ति का निर्माण मथुरा में ही किया गया था। हम बुद्ध की प्रतिमा मुख्यतः दो मुद्राओं में देखते हैं—खड़े और बैठे हुए। बैठने की मुद्रा वाली मूर्तियों में सबसे पुरानी प्रतिमा कात्रा में पायी गयी है। इस प्रतिमा की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

- बोधि वृक्ष के नीचे बैठे बुद्ध
- अभय की मुद्रा में दाहिना हाथ,
- हथेली और पैर के नीचे धर्म चक्र और त्रिरत्न के निशान उत्कीर्ण
- चुटिया के अतिरिक्त सिर पूरी तरह घुटा हुआ।

वस्तुतः इस युग की बौद्ध प्रतिमाओं की आम विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

i) उनका निर्माण उजले धब्बे वाले लाल पत्थर से किया गया है।

ii) मूर्तियों का निर्माण गोलाकार हुआ है ताकि चारों तरफ से उन्हें देखा जा सके।

iii) सिर के बाल और चेहरे की दाढ़ी बिल्कुल साफ है।

iv) दाहिना हाथ अभय की मुद्रा में है।

v) ललाट पर कोई निशान नहीं है।

vi) वस्त्र शरीर से बिल्कुल सटे होते हैं और इसका झालर बाएँ हाथ में रहता है।

2) **जैन प्रतिमाएँ** : मथुरा ब्राह्मण और बौद्ध धर्म का पवित्र स्थल होने के साथ-साथ जैन धर्म की भी पुण्य भूमि है। यहाँ बहुत से ऐसे अभिलेख प्राप्त हुए हैं, जिनमें जैन धर्म के अनुयायियों, जैन भिक्षुओं, भिक्षुणियों, उनको दिए गए दान-पुण्य का उल्लेख किया गया है। उदाहरण के लिए, द्वितीय शताब्दी की अर्द्ध शती के आस-पास के अभिलेख (प्रासाद-तोरण) में जैन श्रावक को "उत्तर दसक" कहा गया है। ककाली टीला मथुरा का प्रमुख स्थल है जहाँ से कई जैन मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इस स्थान से निम्नलिखित शिल्पगत नमूने प्राप्त हुए हैं :

- मूर्तियाँ
- जैन मूर्तियों से अंकित पत्थर की पट्टियां या आयक पट्ट, इन पट्टियों पर जैन धर्म की अन्य निशानियाँ, जैसे स्तूप आदि भी अंकित हैं।
- इमारतों के टूटे हुए अंश, जैसे खंभे, स्तंभ शीर्ष, अर्गला ढेंकली रेलिंग आदि।

आयक पट्ट पर जैन और तीर्थाकारों के चित्र कुषाण काल के पहले अंकित किए गए थे, पर कुषाण काल से ही मूर्तियाँ नियमित रूप से बनने लगीं। इनमें से पार्श्वनाथ को सांपों के साथ और ऋषभनाथ को कंधे पर झूलते बालों के साथ पहचाना जा सकता है, पर अन्य तीर्थाकारों की प्रतिमाओं को आसानी से नहीं पहचाना जा सकता है।

3) **ब्राह्मण धर्म की मूर्तिया** : ब्राह्मण धर्म से संबंधित कुछ मूर्तियाँ भी मथुरा से प्राप्त हुई हैं। इस प्रकार की आरंभिक मूर्तियों में शिव, लक्ष्मी, सूर्य और बलराम उल्लेखनीय हैं। कुषाण काल में कार्तिकेय, विष्णु, सरस्वती, कुबेर नाथ और अन्य देवताओं की मूर्तियाँ बनायी जाती थीं। इस काल की मूर्ति विद्या की यह विशेषता है कि प्रत्येक देवता अलग से पहचाने जा सकते हैं और

उदाहरण के लिए हालांकि शिव लिंग-रूप में पूजे जाते हैं, पर इस काल में चहुर्मुख लिंग का निर्माण होने लगा। इसमें एक लिंग के चारों ओर शिव की मुखाकृति लगी होती है।

- कुषाण काल में सूर्य देवता दो घोड़े से जुते एक रथ पर सवार दिखाये गये हैं। उन्होंने भारी कोट पहन रखा है, इसके अतिरिक्त उनके बदन पर सलवार और जूता भी है। उनके एक हाथ में तलवार और दूसरे में कमल है।
- बलराम के सिर पर भारी पगड़ी है।
- सरस्वती एक हाथ में रूद्राक्ष की माला और दूसरे हाथ में पुस्तक लिए बैठी है। उन्होंने साधारण वस्त्र पहन रखे हैं और उनके शरीर पर कोई आभूषण नहीं है, उनकी सेवा में दो प्रतिमाएं लगी हुई हैं।
- दुर्गा महिष-मर्दिनी रूप में है, उन्हें भैंस रूपी राक्षस को मारते हुए दिखाया गया है।

मथुरा से यक्ष और यक्षिणी की अनेक मूर्तियाँ मिली हैं। उनका संबंध बौद्ध, जैन और ब्राह्मण तीनों धर्मों से है। कुबेर अन्य देवता है, जिसकी मूर्ति एक मोटे व्यक्ति के रूप में बनायी गयी है। उसका संबंध मद्य और मद्यपान के आयोजन से बताया गया है। इस देवता पर वधू और डायोनीसस जैसे रोमन और यूनानी मद्य देवता की छाप दिखायी देती है।

3) **शासकों की प्रतिमा :** मथुरा के मट गांव से प्रमुख कुषाण राजाओं जैसे कनिष्क, बीम और चास्तन की विशाल प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। शासकों और राज्य की प्रमुख हस्तियों की प्रतिमाओं को बनाने और उनके रखरखाव का विचार संभवतः मध्य एशिया से आया होगा। यह शासक को देवत्व का दर्जा देने के लिए किया जाता था। इन प्रतिमाओं के वस्त्रों पर मध्य एशिया का प्रभाव स्पष्ट है।

मट से सिथियन अधिकारियों/शासकों की मूर्तियों का शीर्ष भाग प्राप्त हुआ है। इन खोजों से पता चलता है कि मथुरा कुषाण साम्राज्य के पूर्वी भाग का एक प्रमुख केंद्र था। इससे यह भी पता चलता है कि गांधार और मथुरा कला रूपों में काफी आदान-प्रदान हुआ था।

कालांतर में गुप्त कला-रूपों के विकास में मथुरा कला रूप ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

26.4.3 अमरावती कला केन्द्र

इस अवधि के दौरान, पूर्वी दक्खन में, कृषाण और गोदावरी की निचली घाटियों में अमरावती कला केंद्र का विकास हुआ। इस कला केंद्र को सतवाहन राजाओं, इक्षवाकु शासकों, राजनेताओं और उनके परिवारों, अधिकारियों, व्यापारियों आदि का संरक्षण प्राप्त था। यह कला बौद्ध धर्म से प्रभावित थी और इसके मुख्य केंद्र नागार्जुनकोंडा, अमरावती, गोली, घंटसाल, जग्गेयापेटा थे। यह कला 150 ई.पू. से सन् 350 ईस्वी तक अपनी समृद्धि और उत्कर्ष पर थी। इस कला केंद्र के शिल्पगत नमूने भी रेलिंग, चबूतरे और स्तूप के अन्य हिस्सों के रूप में उपलब्ध हैं। इस कला केंद्र में भी बुद्ध के जीवन और जातक कथाओं को जगह-जगह उभारदार शैली में उत्कीर्ण किया गया है। उदाहरण के लिए अमरावती में बुद्ध द्वारा एक मतवाले हाथी को वश में किए जाने की कथा उत्कीर्ण है। शिल्पकार ने पूरी कथा को स्वाभाविक ढंग से चित्रांकित किया है :

- एक मतवाला हाथी मार्ग में खड़े बुद्ध की ओर बढ़ रहा है,
- पुरुष और महिलाएँ भयभीत हैं, पुरुषों ने अपने हाथ उठा रखे हैं और महिलाएँ उनसे चिपकी हुई हैं,
- बुद्ध हाथी की ओर आराधना और विनम्रता की मुद्रा में बढ़ रहे हैं,
- हाथी आत्मसमर्पण की मुद्रा में नतमस्तक हो जाता है।
- यह संपूर्ण घटना पुरुष और महिलाएँ झरोखे और खिड़कियों से देख रहे हैं।

शिल्पकार ने यह सारी कहानी गोलाकार रूप में उभारदार शैली में उत्कीर्ण की है :

- मूर्तियाँ उजले संगमरमर से बनायी गयी हैं,
- उनकी टांगे लंबी हैं और ढाँचा छरहरा है,
- इस कला में शारीरिक सौंदर्य और सांसारिक अभिव्यक्ति छाई हुई है,
- हालांकि प्राकृतिक दृश्य भी उत्कीर्ण किए गए हैं, पर केंद्र में मनुष्य ही है, और
- राजाओं, राजकुमारों और राजप्रासादों को भी चित्रित किया गया है।

पांच सौ वर्षों की लंबी अवधि में अमरावती की कला लगातार परिपक्वता प्राप्त करती गयी। उदाहरण के लिए इस कला का आ भिक उदाहरण जग्गेयापेट से मिला है, जिसका समय 150 ई.पू. माना जाता है। इनमें मूर्तियों े अलग-अलग इकाइयाँ हैं और एक समूह के रूप में उनका

. अपने केश संवारती एक स्त्री

19. तीर्थंकर का मुख भाग

20. एक जातक कथा पर आधारित दीवार पर नक्काशी से बनी आकृतियाँ

21. सूर्य

22. कुबेर अपने अनुयायियों के साथ

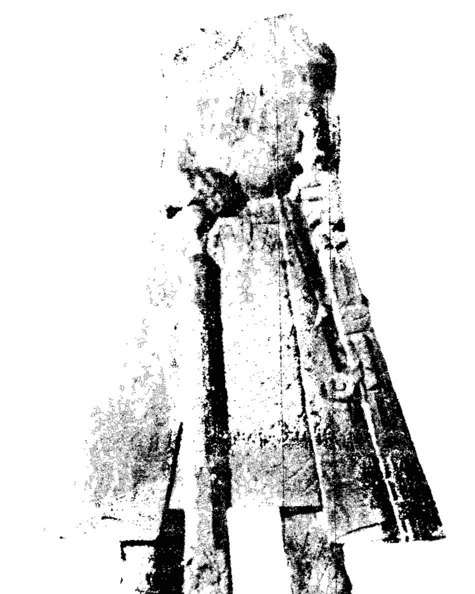

23. कनिष्क की मूर्ति

24. चतुर्मुखी शिवलिंग

कृष्णा घाटी की वर्णनात्मक उभारदार उत्कीर्ण कला की अनिवार्य विशेषता थी, बाद में इसे पल्लव मूर्ति कला ने अपना लिया। इन चित्रों में मूर्तियाँ ढंग से बनी हुई और एक दूसरे से संबद्ध हैं।

विषयवस्तु या कथ्य की दृष्टि से मथुरा और अमरावती की कला में कहीं-कहीं आश्चर्यजनक समानता है। उदाहरण के लिए अमरावती में छह स्त्रियों को एक साथ पात्र से स्नान करते हुए दिखाया गया है, इससे बिल्कुल मिलता जुलता एक नमूना मथुरा में भी पाया गया है। मथुरा में भी कुषाण राजाओं की मूर्तियाँ बनायी गयीं और अमरावती मूर्तिकला ने भी राजाओं और राजकुमारों को अपनी कला का कथ्य बनाया। इसके बावजूद अमरावती में इनका अंकन व्यक्तिगत तौर पर नहीं, बल्कि कथा कहने के क्रम में हुआ है। उदाहरण के लिए–

- राजा उदयन और उसकी रानी की कहानी
- नजराना कबूल करते हुए राजा और राजदरबार का दृश्य
- हाथी, घुड़सवार और पैदल सेना के साथ राजा की शोभायात्रा

वस्तुतः सतवाहनों के संरक्षण और मंजे हुए शिल्पकारों के कारण अमरावती कला केंद्र ने प्राचीन भारत के कुछ सर्वोत्तम कला रूप प्रस्तुत किया।

बोध प्रश्न 2

1) दस पंक्तियों में गांधार कला का विवेचन करें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करें, जिससे पता चले कि धार्मिक विषयवस्तु के अलावा राजनीतिक हस्तियों ने भी शिल्पियों का ध्यान आकृष्ट किया। दस पंक्तियों में उत्तर दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

3) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

i) उभारदार मूर्ति कला में .... (महाभारत/जातक कथाओं/रामायण) को विषयवस्तु बनाया गया।

ii) गांधार कला के मुख्य संरक्षक .... (मौर्य/सातवाहन/शक और कुषाण) थे।

iii) .... (अमरावती/तक्षशिला/मथुरा) की मूर्तिकला में प्राकृतिक दृश्यों का सर्वोत्तम अंकन हुआ है।

iv) ब्राह्मण धर्म से संबद्ध मूर्तियाँ .... (सारनाथ/मथुरा/नागार्जुनकोंडा) में प्राप्त हुई हैं।

25. स्नान करते हुए कुछ महिलायें

26. राजा उदयन तथा उसकी रानियों की नक्काशी की हुई आकृतियाँ

27. एक हाथी को वशीभूत करते हुये महात्मा बुद्ध

4) सही और गलत वक्तव्यों के सामने क्रमशः (√)और (×)का निशान लगाएँ।
   i) मथुरा से तीर्थंकर की एक संपूर्ण मूर्ति प्राप्त हुई है।
   ii) कुबेर की मूर्ति सूर्य उपासना का प्रतिनिधित्व करती है
   iii) गांधार मूर्ति कला में यूनानी कथ्य को भारतीय शैली में प्रस्तुत किया गया है।
   iv) अमरावती कला केंद्र पूर्वी भारत में फला-फूला।

26.5 सारांश

हमने देखा कि इस काल में स्थापत्य और मूर्तिकला अपने उत्कर्ष पर पहुँच गयी और शिल्पियों ने कला के उत्कृष्ट नमूने प्रस्तुत किए। दुर्भाग्य से, हमें इन शिल्पियों के बारे में कोई जानकारी नहीं है। हमारे पास उनकी कला है, पर उनके नाम नहीं है। कहीं-कहीं संरक्षकों के नाम भी उपलब्ध नहीं है। इससे पता चलता हे कि शिल्पी अब राजकीय सहायता पर ही आश्रित नहीं रहे, क्योंकि कई व्यापारियों, श्रद्धालुओं और अन्य लोगों ने उन्हें संरक्षण प्रदान किया।

कला रूप और कथ्य प्रस्तुति में निरंतर विकास होता रहा। मसलन, आरंभिक शिल्प चित्रकला, मिट्टी की मूर्ति जैसी संरचनात्मक अभिव्यक्तियों का विकास परिपक्व मूर्ति कला के रूप में हुआ। इस काल में सपाट और गोलाकार दोनों प्रकार की शिला मूर्तिकला का विकास हुआ। प्रतीकात्मक वस्तुओं की जगह मूर्तियों ने ले ली. इस प्रकार के परिवर्तन का सबसे अच्छा उदाहरण बुद्ध की मूर्तियाँ हैं।

इस इकाई में हमने यह भी देखा कि प्रदेश विशेष में अलग कला-रूपों का विकास हुआ। गांधार, मथुरा और अमरावती में अलग-अलग कला रूपों का विकास हुआ। हालांकि इन कला रूपों में धार्मिक विषयों को प्रमुखता प्राप्त हुई है, पर मनुष्य और प्रकृति का भी चित्रण किया गया है। इस प्रकार के चित्रों में उस काल की सामाजिक और आर्थिक जिंदगी की हल्की झांकी मिल सकती है। मथुरा में उत्कीर्ण भिक्षुओं, संरक्षकों और सेवकों की मूर्तियाँ इसका अच्छा उदाहरण है। भारतीय

कलाकारों ने यूनानी और मध्य एशियाई कला रूपों को भी ग्रहण किया और इस प्रकार आदान-प्रदान के माध्यम से भारतीय कला अपने उत्कर्ष पर पहुँच गयी।

26.6 शब्दावली

परतदार चट्टान : एक प्रकार की चट्टान जिसमें अनेक परतें होती हैं।

बहुकोण शिखर : अर्द्ध गोलाकार संरचना।

मेहराब : दरवाजे के ऊपर की धनुषाकार बनावट।

26.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखें भाग, 26.1
2) देखें उपभाग, 26.3.3
3) i) प्रेरित
   ii) परिपक्व
   iii) भिन्न
   iv) सर जान मार्शल
   v) आवास

बोध प्रश्न 2

1) उपभाग 26.4.1 के आधार पर अपना उत्तर लिखें।
2) मथुरा में हुई खुदाई के दौरान प्राप्त राजा की मूर्तियों और अमरावती की मूर्ति कला का उल्लेख करें।
   देखें उपभाग 26.4.2 और 26.4.3
3) i) जातक कथाएँ
   ii) शक और कुषाण
   iii) मथुरा
   iv) मथुरा
4) i) (√) ii) (×) iii) (×) iv) (×)

इस खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

शिव शंकर मिश्र *प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास*

ए.एल. बाशम *अद्भुत भारत*

डी.डी. कोशांबी *प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता*

रोमिला थापर *भारत का इतिहास—खण्ड एक*

डी.एन. झा *प्राचीन भारतीय इतिहास की रूपरेखा*

इकाई 27 दक्षिण में आरम्भिक राज्य निर्माण

इकाई की रूपरेखा

27.0 उद्देश्य
27.1 प्रस्तावना
27.2 स्रोत
27.3 राज्य की उत्पत्ति
27.4 पूर्ववर्ती कथायें
27.5 भौगोलिक पृष्ठभूमि
27.6 सातवाहन वंश के इतिहास की रूपरेखा
27.7 बस्तियों का प्रारूप
27.7.1 पश्चिमी तट
27.7.2 समुद्र तट से दूर की बस्तियां
27.8 प्रशासन
27.9 समाज
27.10 सारांश
27.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

27.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- सातवाहन वंश के विषय में जान सकेंगे जिसने दक्खन में सबसे पहले राज्य की स्थापना की;
- सातवाहनों के अन्तर्गत प्रशासन की प्रकृति समझ सकेंगे; और
- इस समय में समाज में हुए परिवर्तनों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

27.1 प्रस्तावना

खण्ड 6 में आपने उत्तर मौर्य काल में उत्तरी भारत में व्यापार के प्रसार के बारे में पढ़ा। इसका संबंध नगरों की संख्या में वृद्धि और कला एवं स्थापत्य कला के विकास से था। इस इकाई में आप दक्खन भारत में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करेंगे। प्रथम सदी ई.पू. के आस पास दक्खन में जिस ताकतवर वंश का उदय हुआ वह सातवाहन वंश था। यहां पर हम सातवाहनों के अन्तर्गत दक्खन की राजनैतिक व सामाजिक व्यवस्था पर ध्यान केंद्रित करेंगे।

27.2 स्रोत

सातवाहन शासकों को दूसरे नाम **आन्ध्राओं** से भी जाना जाता है। इन राजाओं के नामों की सूची पुराणों में भी पायी जाती है। इन सूचियों को ऐतिहासिक स्रोतों के रूप में दूसरे साक्ष्यों के साथ आलोचनात्मक तुलना किये और उपयोग करने में बहुत सी कठिनाइयां होती हैं। उदाहरण के तौर पर, विभिन्न पुराणों में राजाओं के नाम एवं उनके शासनकाल में काफी अन्तराल है। इससे भी अधिक बड़ी समस्या यह है कि इन राजाओं के विषय में सूचना केवल कल्पित एवं किवदंतियों में निहित है। इसलिये वास्तविकता एवं किवदंतियों के बीच अन्तर करने के लिये इन स्रोतों का ध्यानपूर्वक अवलोकन करना चाहिये। यदि अन्य स्रोतों जैसे कि सिक्कों व शिलालेखों के साथ पुराणों का अध्ययन किया जाये तो वे काफी उपयोगी हैं। सातवाहनों ने काफी बड़ी संख्या में चांदी व तांबे के मिश्रित सिक्कों को ढलवाया। उनके चांदी

के सिक्कों पर राजा का चित्र एवं नाम खुदा हुआ है। बौद्ध गुफाओं में पत्थर पर खुदे लेख एवं दान पात्र प्राप्त हुए हैं जिनको सातवाहन राजाओं एवं रानियों के साथ-साथ बड़ी संख्या में साधारण लोगों ने बनवाया। इन विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सूचना का तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद सामान्यत: विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि सातवाहनों ने प्रथम सदी ई.पू. के आस पास अपना शासन करना प्रारंभ किया। उनका सबसे प्रारम्भ का साक्ष्य महाराष्ट्र राज्य के नासिक के पास एक गुफा में पत्थर पर उत्कीर्ण लेख के रूप में पाया गया है।

27.3 राज्य की उत्पत्ति के विषय में

अब हम एक प्रश्न उठाते हैं राज्य क्या है और राज्य की उत्पत्ति ने समाज में कैसे परिवर्तन किये? राज्य की उत्पत्ति के कारणों के विषय में कई मत दिये जाते हैं। राज्य की उत्पत्ति के कारण एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न हैं। कुछ विशेष मामलों में व्यापार के विकास एवं नगरों के फैलाव के कारण राज्य की उत्पत्ति हुई। अन्य दूसरे मतों के अनुसार आबादी के दबाव एवं विजय के कारण उस समय की प्रचलित राजनैतिक व्यवस्था में परिवर्तन हुआ। सामान्यत: विद्वान लोग इस तथ्य से सहमत हैं कि बढ़ती जनसंख्या पर नियंत्रण करने के लिये राज्य एक सक्षम औजार है। एक राज्य भली भाँति परिभाषित एक क्षेत्र पर नियंत्रण रखता है और कर तथा राजस्व को एकत्रित करने के लिये एक प्रशासनिक मशीनरी को बनाकर रखता है। यह एक स्थायी सेना को भी रखता है जो कानून एवं व्यवस्था को बनाये रखने में मदद करती है। लेकिन इन सबके साथ-साथ समाज में असमानता एवं वर्ग विभेदण भी बढ़ता है। यहां शासक और शासित के मध्य स्पष्ट भेद है। शासन कर्त्ता अपने लाभ एवं उपयोग के लिये समाज के संसाधनों पर नियंत्रण रखते हैं। दूसरी ओर शासित वर्ग शाही परिवार के सदस्यों, राज्य के कुलीनों, बहुत से अधिकारियों एवं सेना के रख-रखाव के लिये आवश्यक धन एवं राजस्व उपलब्ध कराते थे। इस प्रकार कबीलाई समाज एवं राज्य समाज में मूल भूत अन्तर राजनीति के नियंत्रण की प्रकृति में निहित है। राज्य व्यवस्था के अन्तर्गत विशेषज्ञात्मक प्रशासनिक व्यवस्था शासक एवं शासित को अलग करती है। कबीलाई समाज में सामान्यत: एक कबीले के द्वारा राजनैतिक शक्ति का उपयोग किया जाता है जिसके पास अपने निर्णयों को लागू करने के कोई अधिकार नहीं होते। कबीले की स्थिति सदस्यों की वफादारी पर निर्भर करती है इसलिये अधिकतर निर्णयों को एक साथ ही करना होता है।

27.4 पूर्ववर्ती कथायें

आपने खण्ड 3 में पढ़ा कि दूसरी सहस्त्राब्दी ई.पू. में पश्चिम दक्खन में ताम्रपाषाण बस्तियों का प्रसार हुआ। बाद में प्रथम सहस्त्राब्दी ई.पू. के द्वितीय भाग में लोहे का प्रयोग करने वाली जातियों ने पूर्वी दक्खन पर अपना अधिकार कर लिया। ये मुख्य रूप से ग्रामीण बस्तियां थीं और जिनमें बहुत बड़ी तादाद में कबीलाई लोग वास करते थे। प्रारंभिक संस्कृत साहित्य विशेषकर महाकाव्यों एवं पुराणों में आन्ध्रा, सबर, पुलिन्द आदि जैसी कबीलाई जातियों का वर्णन है जो दक्खन में रहते थे। इनमें से कई जातियों के दक्खन नामों को अशोक शिलालेखों में भी उद्धृत किया गया है। परन्तु इनमें से अधिक सन्दर्भ सामान्य प्रकृति के हैं और इनके आधार पर उस निश्चित क्षेत्र को परिभाषित करना कठिन है जहां दक्खन में वे रहते थे। दक्खन में परिवर्तन की प्रक्रिया का प्रारंभ शायद मौर्यों के प्रसार के साथ हुआ। मौर्य मुख्यत: दक्खन प्रायद्वीप के खनिज संसाधनों को शोषित करने में रुचि रखते थे। आधुनिक कर्नाटक और आंध्र प्रदेश की खानों से प्राप्त किये गये सोने, हीरे एवं रत्नों को भूमि एवं समुद्र के किनारे वाले मार्गों के द्वारा उत्तर भारत में मगध को भेजा जाता था। इन मार्गों पर कई बाजार केंद्र विकसित हुए जैसे कि आंध्र प्रदेश के वर्तमान गुंटूर जिले में कृष्णा नदी के किनारे धरनिकोटा और महाराष्ट्र के सतारा जिले में करद। इर्द-गिर्द के अनेक स्थानों पर मराठों के नाम से जाने वाले अनेक सरदार महत्वपूर्ण हो गये। लेकिन ये स्थानीय मराठा सरदार सातवाहनों के अन्तर्गत ही थे तथा सातवाहनों एवं मराठों के बीच वैवाहिक संबंध थे और इस प्रकार सातवाहनों के रूप में दक्खन में प्रथम राज्य की उत्पत्ति हुई।

27.5 भौगोलिक पृष्ठभूमि

दक्खन प्रायद्वीप प्रठारीय क्षेत्र और पूर्वा एवं पश्चिमी किनारों के पर्वतीय श्रृंखलाओं के द्वारा

तटीय मैदानों में विभाजित है। पश्चिम के कोंकण तटीय क्षेत्र की अपेक्षा आंध्र का तटीय क्षेत्र काफी चौड़ा है। इस पठारी क्षेत्र का सामान्यतः ढलान पश्चिम क्षेत्र से पूर्व की ओर है तथा जिसके कारणवश महानदी, गोदावरी और कृष्णा जैसी नदियों का बहाव पूर्व दिशा की ओर है जिससे कि वे बंगाल की खाड़ी में मिल जाती हैं। नदियों के डेल्टा एवं घाटियों में बस्तियों के लिये काफी उत्पादक भूमि उपलब्ध होती है। दक्खन की एक भौगोलिक विशेषता शायद इस तथ्य में निहित है कि पठार के पर्वतीय क्षेत्रों को केवल दर्रों के द्वारा ही पार किया जा सकता है।

बोध प्रश्न 1

निम्नलिखित में सही उत्तर पर ✓ निशान लगाइये:

1) सातवाहनों का अध्ययन करने के लिये पुराण उपयोगी स्रोत हैं क्योंकि
   i) उनमें राजाओं के विषय कपोलक-कल्पित किस्से-कहानियां हैं।
   ii) उनमें सातवाहन काल के विषय में पर्याप्त मात्रा में कपोल-कल्पित किस्से-कहानियां हैं।
   iii) उनसे मिलने वाली सूचनाओं की अन्य साक्ष्यों जैसे कि सिक्कों एवं शिलालेखों के साथ तुलना की जा सकती है।
   iv) पुराणों में सत्यता निहित है।

2) यह कहा जा सकता है कि
   i) कबीलाई समाज का राजनैतिक ढांचा वैसा ही होता है जैसा कि विकसित राज्य व्यवस्था के समाजों का होता है।
   ii) एक विकसित राज्य व्यवस्था के अन्तर्गत शासक एवं शासित के मध्य स्पष्ट विभाजन होता है।
   iii) कबीलाई समाज में राजनैतिक निर्णय सम्पूर्ण कबीला लेता है।
   iv) दोनों ii) और iii)

3) राज्य के निर्माण के लिये दक्खन में परिवर्तन की प्रक्रिया शायद इसलिये उत्पन्न हुई
   i) हूणों के आक्रमण के कारण
   ii) मुगलों के आक्रमण के कारण
   iii) ग्रीकों के आक्रमण के कारण
   iv) सोने आदि के लिए दक्खन में मौर्यों ने विस्तारवादी नीति का अनुसरण किया तथा जिसका अनेक मार्गों के द्वारा आयात किया गया और जिसके कारण अनेक बाजार केंद्रों एवं सरदारों की उत्पत्ति हुई।

27.6 सातवाहन वंश के इतिहास की रूपरेखा

पुराणों के अनुसार सिमुक सातवाहन ने सातवाहन शक्ति की स्थापना की। उसके भाई कन्हा या कृष्णा के विषय में हमें जानकारी नासिक के लेख से प्राप्त होती है। वंश के अनेक शासकों का विवरण रानी नायनिक के नानघाट शिलालेख से भी प्राप्त होता है जो राजा सतकर्णी की विधवा थी तथा जिसने वैदिक बलि यज्ञों का आयोजन किया था। नानघाट एक काफी बड़ा दर्रा था जो जुनार के साथ समुद्र तट से जुड़ा था और इस दर्रे के ऊपर एक गुफा है जिसमें सातवाहन शासकों के चिन्ह खुदे हुए थे। दुर्भाग्य वश ये मूर्तियां अब पूर्णतः नष्ट हो चुकी हैं और जो अवशेष बचे हैं उनके मस्तक के ऊपर के चिन्ह उनका नाम मात्र देते हैं।

सतकर्णी के बाद गौतमीपुत्र सतकर्णी के शासन काल तक जिन शासकों ने शासन किया उनके विषय में हमें काफी कम जानकारी है। नासिक में एक गुफा के प्रवेश द्वार पर गौतमीपुत्र सतकर्णी की माता का एक लेख खुदा हुआ है जिससे उसके राज्य के फैलाव एवं उसके शासन काल की घटनाओं का विवरण प्राप्त होता है। गौतमीपुत्र सतकर्णी की मुख्य

उपलब्धि यह थी कि उसने पश्चिम दक्खन एवं गुजरात के क्षत्रणों को पराजित किया था। उसकी माता के इस लेख में इस तथ्य की प्रशंसा की गई है कि उसने पुनः सातवाहन गौरव को स्थापित किया था और इस तथ्य की पुष्टि मुद्रा साक्ष्यों से भी होती है। अपनी विजय के बाद गौतमीपुत्र सतकर्णी ने अपने विरोधी क्षत्रय नहापन की भांति अपनी वंश परम्परा एवं चिन्हों के साथ चांदी के सिक्कों को जारी किया। **पेरिप्लस ऑफ दी ऐरिथरियन सी** के अनुसार सातवाहनों एवं क्षत्रणों के मध्य चलने वाले संघर्ष के कारण बम्बई के पास स्थित बन्दरगाह में ठहरे हुए ग्रीक जहाजों को सुरक्षा के अंतर्गत भडौच स्थित बन्दरगाह पर भेजा गया। शायद अति लाभदायक विदेशी व्यापार को लेकर इन दोनों के बीच संघर्ष था। ऐसा प्रतीत होता है कि गौतमीपुत्र सतकर्णी शासन काल में ही शायद अच्छी प्रकार से सातवाहनों का शासन आंध्र प्रदेश तक फैल गया था।

गौतमीपुत्र सतकर्णी के बाद उसका पुत्र पुलूमावि शासक हुआ और इस समय तक सातवाहनों ने अपनी शक्ति का फैलाव पूर्वी दक्खन तक कर लिया था। हमें प्रथम बार सातवाहनों के लेख पश्चिम दक्खन से बाहर अमरावती में प्राप्त होते हैं। यज्ञनासरि सतकर्णी अंतिम महत्वपूर्ण सातवाहन शासक था और उसके बाद उनके साम्राज्य का विभाजन उसके उत्तराधिकारियों के बीच हो गया जिनकी एक शाखा ने आंध्र क्षेत्र में शासन किया बाद के सातवाहन शासकों ने द्विभाषा में लिखे हुए सिक्कों को जारी किया जिसमें राजा का नाम प्राकृत भाषा में लिखा हुआ है और ऐतिहासिक लेख किसी एक दक्षिणी भाषा में। इस भाषा को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ का मानना है कि यह तमिल में हैं तो कुछ के अनुसार यह तेलगू में हैं।

क्षत्रपों के साथ-साथ प्रारम्भिक सातवाहन शासक को उड़ीसा या कालिंग की खारवेल शक्ति के साथ संघर्ष करना पड़ा। खारवेल ने प्रथम शताब्दी ई.पू. में कालिंग में अपनी शक्ति की स्थापना की थी। उसने सातवाहन शासक सतकर्णी की परवाह किये बगैर पश्चिम की ओर अपनी सेना को भेजा। ऐसा कहा जाता है कि सातवाहन शासक को क्षत्रपों और खारवेल नरेश के हाथों पराजय भोगनी पड़ी। इसको केवल गौतमीपुत्र सतकर्णी ने पुनःस्थापित किया।

सातवाहन इतिहास की यह भी एक समस्या है कि हमें सातवाहन शासकों ने एवं उन छोटे सरदारों के बीच के सम्बन्धों की जानकारी बहुत कम है जो दक्खन प्रायद्वीप के अनेक क्षेत्रों में उनके शासन काल के दौरान फले फूले। उदाहरण के लिये एक लेख में सातवाहनों का मराठों एवं महाभोजों के बीच वैवाहिक सम्बन्धों का सन्दर्भ मिलता है — वास्तव में नानघाट के अभिलेख में एक मराठी सरदार एक राजकुमार पर अग्रता प्राप्त कर लेता है और नायनिका रानी स्वयं एक मराठी सरदार की पुत्री थी। मराठियों ने भी स्वयं स्वतंत्र रूप से दान किये — उनके अधिकतर अभिलेख कारले के आस-पास प्राप्त हुए हैं जबकि महाभोजियों के अधिकतर साक्ष्य पश्चिमी तट के क्षेत्र में मिलते हैं।

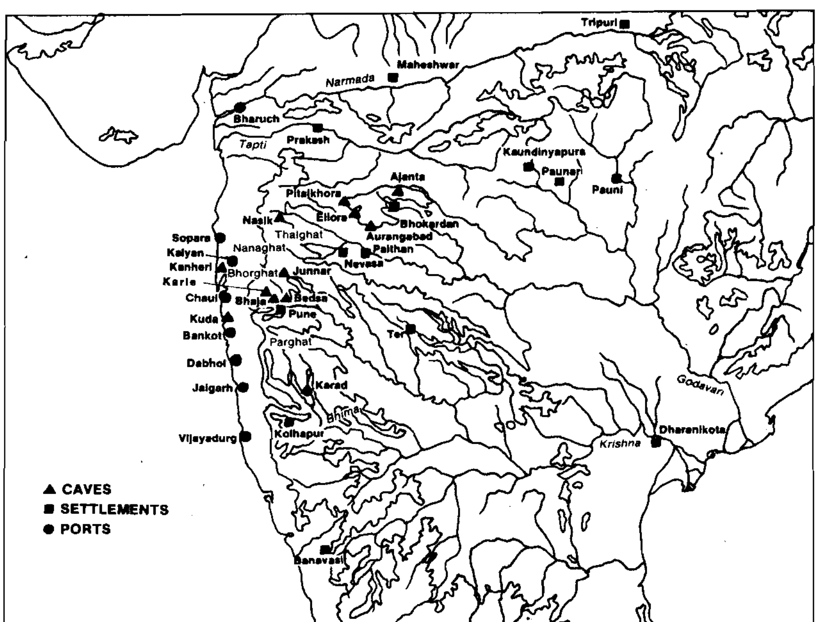

27.7 बस्तियों का प्रारूप

उनके प्रारंभिक अभिलेखों के प्राप्ति स्थान के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सातवाहनों ने अपने शासन का प्रारंभ पश्चिमी दक्खन से किया। गौतमीपुत्र सतकर्णी की माता का दूसरी सदी ई. का नासिक अभिलेख सातवाहनों के साम्राज्य प्रसाद की सूचना देता है। इस शिलालेख में यह भी सन्दर्भ है कि पश्चिमी एवं पूर्वी दोनों तट गौतमीपुत्र सतकर्णी के साम्राज्य के भाग थे जिसका तात्पर्य यह हुआ कि इस समय में सातवाहन शासन सम्पूर्ण दक्खन प्रायद्वीप पर था और यह अहार या जिलों में विभाजित था। इस शिलालेख में हमें पांच अहार या जिलों के नाम इस प्रकार मिलते हैं – नासिक के आस-पास केन्द्रित गोवर्धन अहार पश्चिमी तट पर **सोपारका-अहार**, पुणे एवं सतारा जिलों के पर्वतीय क्षेत्रों को मिलाकर **ममला-अहार**, सातवाहनिहारा कर्नाटक के जिले बैल्लारी में और कपूरशारा शायद गुजरात में था।

27.7.1 पश्चिमी तट

पश्चिमी तट पर भडौच, कल्याण, सोपरा और चोल एवं कोंकण तट पर दक्षिण में अनेक बन्दरगाहों की श्रृंखला थी। इन बंदरगाहों पर विक्रय वस्तुओं को देश के आंतरिक केन्द्रों से पश्चिमी तट के दरों के बीच में लाया जाता था। प्रथम सदी ई. को एक महत्वपूर्ण ग्रंथ **पेरिप्लस ऑफ दि इरीथीन सी** जिसकी रचना ग्रीक के एक गुमनाम नाविक ने की थी, इस समय की यात्रा एवं व्यापार की प्रकृति को समझने में बड़ी मदद करता है। अरब खाड़ी में भडौच की ओर जाने वाले ऐसे रास्तों का चित्रण यह ग्रंथ करता है जो काफी संकरी जगहों से होकर गुजरते थे। इसी कारणवश जिले के शाही मछवारे इन जहाजों को स्वयं चलाकर बंदरगाह के अन्दर ले जाते थे। हमने पहले ही इस तथ्य का वर्णन किया है कि क्षत्रियों एवं सातवाहनों के बीच सामुद्रिक व्यापार पर नियंत्रण करने और भडौच तथा कल्याण के बंदरगाहों के मध्य की प्रतियोगिता को लेकर युद्ध हुआ था।

27.7.2 समुद्र तट से दूर की बस्तियां

पश्चिमी तटों से दूर मुख्य भूभाग की ओर कारले की 30 कि.मी. की परिधि के अन्तर्गत नासिक व जुनार के आस-पास और आगे दक्षिण में कृष्णा के ऊपरी डेल्टा में कोल्हापुर के इर्द-गिर्द ये बस्तियां केन्द्रित थीं। यह माना जाता है कि ये सभी क्षेत्र कृषि के लिये काफी संपन्न एवं उपजाऊ थे जिससे कि ये पश्चिमी तट पर स्थित बंदरगाहों के लिये संसाधन का आधार उपलब्ध कराते थे। इन बंदरगाहों के माध्यम से भू-मध्य सागर क्षेत्र एवं भारत के बीच व्यापार किया जाता था और इनका सम्पर्क भू-मार्ग के द्वारा दक्खन प्रायद्वीप के पूर्वी तट एवं आंध्र प्रदेश के व्यापारिक केंद्रों के साथ भी था। यह भडौच से पैथन व तेर एवं पूर्व को आगे की ओर आंध्र के केंद्रों तक जाता था। पैथन का प्राचीन क्षेत्र गोदावरी के इर्द-गिर्द 4 कि.मी. क्षेत्र में फैला हुआ था और जब कभी भी इस स्थल की खुदाई की गई तो वहां से बहुत सी प्राचीन वस्तुएं जैसे कि सिक्के, मिट्टी की बनी वस्तुएं, परिकोटा एवं बर्तन प्राप्त हुए हैं। इन सबके बावजूद भी इस स्थल की कभी भी व्यवस्थित ढंग से खुदाई नहीं की गई है जिस के कारण हमें सातवाहनों के निर्माण संबंधी अवशेषों के विषय में बहुत कम ज्ञान है। तेर दक्खन के कपास उत्पादक क्षेत्र में स्थित है। इस स्थल का उत्खनन करने पर यहां से लकड़ी के परिकोटे और रंगने वाले बर्तन प्राप्त हुए हैं जिससे ऐसा मालूम पड़ता है कि यहां पर कपड़ों की रंगाई का भी कार्य होता था। तेर को इसलिये भी भली भांति जाना जाता है कि वहां पर पायी जाने वाली हाथी दांत की बनी सुन्दर तस्वीर पोमेयी से पायी जाने वाली प्रतिरूप के बहुत समान है। इस स्थल का सबसे महत्वपूर्ण अवशेष वह है जो ईंटों से निर्मित कुटी है और बाद में ब्राह्मणों के मंदिर के रूप में परिवर्तित हो गई।

दक्खन का दूसरा मार्ग वह था जो उज्जैन से नर्मदा पर स्थित महेश्वर से जुड़ा था तथा अजन्ता एवं पितलखोरा की गुफाओं पर से गुजरता हुआ भोकरदान और पैथन को जोड़ता था। भोकरदान मोती बनाने का काफी बड़ा केंद्र था तथा उसको खोल एवं हाथी दांत के काम के लिये भी जाना जाता था। भोकरदान के निवासियों या भोगवर्धनियों ने मध्य भारत में सांची एवं भरहुत की गुफाओं में अंकित लेखों के अनुसार बौद्धों को दान दिया। दक्षिण में आगे की ओर कृष्णा नदी की ऊपरी घाटी में करद नाम का एक और अन्य नगर था जिसका वर्णन बौद्ध अभिलेखों में हुआ है। इसी क्षेत्र में कोल्हापुर भी स्थित था। इस नगर के पश्चिमी भाग से तांबे की बनी वस्तुओं का ढेर प्राप्त हुआ है। इनमें से कुछ विशिष्ट आकृति वाली छोटी

मूर्तियों का आयात किया गया जबकि गाड़ियां एवं तांबे की नावें स्थानीय स्तर पर निर्मित की गई थीं। पास के जिले बेलगाँव में वैदगाँव-माधवपुर के प्राचीन स्थल हैं जो बेलगाँव का एक उपनगर था तथा जिसकी खुदाई किये जाने पर बहुत बड़ी संख्या में सिक्के एवं दूसरी प्राचीन वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। यहाँ से जब दक्षिण में आगे की ओर बढ़ते हैं तो बनावसी का स्थल है जहाँ से सातवाहनों का एक शिलालेख मिला है। यह सम्भवत: एक किलेबन्द बस्ती है क्योंकि यहां पर एक किले की दीवार एवं खाई के चिन्ह मिले हैं। प्रायद्वीप के पार दक्खन से गुजरते मार्ग पश्चिमी दक्खन में कृष्णा नदी की नीचे की घाटी में अमरावती जैसे इन स्थलों से जुड़े थे और आन्ध्र प्रदेश के करीमनगर तक जाते थे। करीमनगर क्षेत्र में भरपूर रूप से फैले हुए बहुत से प्रारंभिक ऐतिहासिक स्थल हैं जिनमें से हैदराबाद से उत्तर पश्चिम की ओर लगभग 70 कि.मी. दूर कोंडापुर के नाम से एक महत्वपूर्ण स्थल है। इस स्थल का उत्खनन करने पर पर्याप्त मात्रा में सिक्के, परिकोटे एवं बहुत से आकार की ईंटें मिली हैं जो गारा चूना में लगी हैं। पेद्दा-बंकूर आजकल एक छोटा सा गाँव है परन्तु सातवाहन शासन काल में एक महत्वपूर्ण बस्ती थी जो 30 हैक्टेयर क्षेत्र में फैली थी। पेद्दा-बंकूर से लगभग 10 कि.मी. दूर शूलि कट्टा नाम का स्थल किलेबन्द के रूप में था। यह एक कच्ची दीवार से घिरा था और इस स्थल का बहुत सा निर्माण ईंटों का है जिसकी अभी तक खुदाई नहीं की गई है। दूसरी बड़ी बस्ती कोटालिंगल थी जो सातवाहन शासन काल से पूर्व की है क्योंकि अभी हाल में प्राप्त वहां से सिक्के इसका प्रमाण हैं। सातवाहन कालीन बस्तियों की कच्ची दीवार से किलेबन्द की गई और विस्तृत रूप से वे ईंटों का निर्माण थीं। उत्खनन स्थलों से बड़ी मात्रा में लोहे का कचरा एवं कच्ची धातु प्राप्त हुए हैं। करीमनगर क्षेत्र से रास्ता प्रारम्भ होकर नीचे कृष्णा घाटी में शाखाओं में विभाजित हो जाता था जहां पर प्रारंभिक ऐतिहासिक बस्तियाँ केंद्रित हैं। इनमें से अमरावती और धारनिकोटा विशेष रूप से मुख्य हैं जो कृष्णा नदी के दोनों किनारों पर बसे हैं। धारनिकोटा नदी से नाव के रास्ते से जुड़ा हुआ था। इस स्थल पर प्रारंभिक निर्माण कार्य लकड़ी के घाट का था और बाद में जिसका स्थान ईंटों के निर्माण ने ले लिया। परन्तु नाव चलाने वाले स्थान पर रेत भर जाने के कारण चौथी सदी ई. में इस स्थल का परित्याग कर दिया गया। प्रायद्वीप के पार जाने वाले मार्गों में एक मार्ग विदर्भ होकर मध्य भारत को जाता था। उस काल के विदर्भ में पौनार, पौनि, मंथल, भाटकूली और आदम बस्तियाँ थीं।

सातवाहन वंश के इतिहास की एक अन्य विशेषता यह भी है कि इस काल में दक्खन में किलेबन्द बस्तियों का विकास हुआ और उत्खनन से हमें जो प्रमाण उपलब्ध हुए हैं उनसे स्पष्ट है कि निर्माण की गुणवत्ता में काफी सुधार हुआ। किलेबन्दी एवं अन्य निर्माण कार्यों के लिये ईंट का काफी प्रयोग होने लगा। छतों के ऊपरी भागों को ठोस प्रकार से मिश्रित की गई मिट्टी से बनाया जाने लगा। छत के निचले भाग को लकड़ी के खम्भों के सहारे एवं ऊपर से पत्थर के टुकड़ों की मदद से बनाया जाता था।

प्राचीन काल में जिन मार्गों का उपयोग किया गया वर्तमान रेलवे लाइन भी उन्हीं मार्गों पर बिछायी गई हैं। भोर घाट केवल एक मात्र ऐसा दर्रा है जो पश्चिमी तटों को पार करते हुए पुणे एवं मुम्बई को जोड़ता है तथा जिस पर प्रारंभिक बौद्ध गुफायें जैसे कि शैलारबदी, बंदसा, भाज, कारले, अम्बिाले एंव कोंडने पड़ती हैं।

27.8 प्रशासन

सातवाहन शासकों का प्रशासन मौर्य प्रशासन की अपेक्षा सरल था। शिलालेखों से ऐसे कई मन्त्रियों का विवरण मिलता है जिन पर विभिन्न कार्यों को पूरा करने का उत्तरदायित्व था। अन्य कार्यों के साथ-साथ वे कोषाधिकारी एवं भूमि संबंधी दस्तावेजों को रखने का भी कार्य करते थे। मंत्रियों की संख्या की वास्तविक जानकारी नहीं मिलती। इन मंत्रियों की नियुक्ति प्रत्यक्ष रूप से राजा के द्वारा की जाती थी और मंत्री का पद पैतृक नहीं होता था अर्थात् पिता के स्थान पर पुत्र मंत्री नहीं बनता था। उनको राज्य द्वारा एकत्रित किये गये राजस्व से धन दिया जाता था। हमारे पास इसकी कोई निश्चित संख्या नहीं है कि कितना राजस्व एकत्रित किया जाता था लेकिन हम यह जानते हैं कि कर को व्यापार एवं कृषि दोनों से एकत्रित किया जाता था। सातवाहन शासकों ने प्रथम शताब्दी ई. में जिस प्रथा का प्रारंभ किया वह यह थी कि किसी एक गाँव से प्राप्त किये गये राजस्व को ब्राह्मण या बौद्ध संघ को दान के रूप में दे दिया जाता था। इस प्रथा का गुप्त शासकों के द्वारा व्यापक रूप से प्रयोग किया गया।

राजा के लिये भू-राजस्व के महत्व को इस नीति की स्पष्टता से अनुमानित किया जा सकता है कि भूमि के दान को प्रमाणित किया जाता था। इन दोनों को प्रथम बार किसी सभा या निगम सभा के बीच घोषित किया जाता था। तब इसको किसी तांबे की प्लेट या कपड़े पर किसी अधिकारी या मंत्री के द्वारा लिखा जाता था। फिर इसको दान प्राप्त कर्ता या जिसको भूमि का अनुदान किया जाता था, दिया जाता। दस्तावेजों को सुरक्षित रखने वाला एक अधिकारी था जो इन दोनों के विस्तृत लेखे-जोखे को संभाल कर रखता था।

इस काल के शासक अधिक से अधिक भूमि कृषि योग्य बनाने के लिये उत्सुक रहते थे जिससे कि वे अतिरिक्त राजस्व प्राप्त कर सकें। ऐसा प्रतीत होता है कि जो जंगल को साफ करता था एवं उस खेत पर खेती करता था वही उस भूमि पर स्वामित्व का दावा प्रस्तुत कर सकता था। व्यापार से राजस्व प्राप्त करना राजस्व की आमदनी का एक दूसरा बड़ा स्रोत था। व्यापार के प्रसार के विषय में हम विस्तृत रूप से दूसरी इकाई में विवरण करेंगे। अधिकतर व्यापार पर नियंत्रण श्रेणियों का था जो बैंक का भी कार्य करती थी। व्यापार को प्रोत्साहित करने के लिये राज्य विशेष कदम उठाता था। दूरस्थ व्यापार मार्गों को सुरक्षित बनाया गया था और उनके किनारे आराम गृहों का निर्माण भी किया गया।

27.9 समाज

दक्खन में सातवाहन शासकों के अन्तर्गत सामाजिक व्यवस्था की बहुत सी विशेषतायें उन से भिन्न थीं जिनका विवरण संस्कृत ग्रंथों जैसे कि **मनुस्मृति** में हुआ है। उदाहरणार्थ, सातवाहन शासकों के बहुत से शिलालेखों में पिता के नाम के स्थान पर माता के नाम का उल्लेख हुआ है, जैसे कि गौतमीपुत्र सतकर्णी या सतकर्णी गौतमी का पुत्र। यह धर्मशास्त्रों की उस परम्परा के साथ मेल नहीं खाता जिसके अनुसार मान्यता प्राप्त विवाह के बाद पत्नी के पिता का गोत्र लुप्त हो जाता है और वह पति के गोत्र को धारण करती है।

इन शिलालेखों में एक दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि सातवाहन स्वयं को ऐसे अनोखे ब्राह्मणों के रूप में प्रस्तुत करते हैं जिन्होंने क्षत्रियों के अभिमान को कुचल दिया। परन्तु ब्राह्मणिक ग्रंथों के अनुसार केवल क्षत्रियों को ही शासन करने का अधिकार था। ये शिलालेख इसलिये भी उपयोगी हैं कि आबादी के विभिन्न वर्गों को दिये गये भू-दान के प्रमाण इनमें उल्लेखित हैं जिससे कि समाज के कुछ विशेष वर्गों की सम्पन्नता का अनुमान लगाया जा सकता है। दान करने वालों में व्यापारियों एवं सौदागरों का मुख्य रूप से संदर्भ आया है परन्तु लुहारों, मालियों एवं मछुवारों के नामों का उल्लेख भी महत्वपूर्ण है। इनमें कोई संदेह नहीं कि इन कारीगरों एवं दस्तकारों को निश्चित रूप से दूरस्थ व्यापार से लाभ हुआ था। पर विशेष उल्लेखनीय यह है कि इन लोगों ने अपने नामों के साथ अपने व्यवसायों का उल्लेख किया है न कि अपनी जाति का। हमने पहले की इकाई में उद्धृत किया था कि बौद्ध ग्रंथों में समाज के विभाजन का विवरण ब्राह्मणिक ग्रंथों के विवरण से भिन्न है। यहां पर भिन्नता कार्य एवं दस्तकारिता पर आधारित थी और अधिकतर लोगों को उनके व्यवसाय के आधार पर जाना जाता था न कि जाति के आधार पर।

दान कर्ताओं की एक और श्रेणी थी जिनको यवनों के नाम से या विदेशियों के रूप में जाना जाता है। यवन शब्द का प्रयोग अपने मूल शब्द में भारतीय यूनानियों से किया जाता था किन्तु प्रथम सदी ई. के आस-पास इस शब्द का प्रयोग बिना किसी भेदभाव के विदेशियों के लिये किया जाने लगा। बहुत से यवनों ने प्राकृत नामों को धारण किया और बौद्ध भिक्षुओं को दान दिये। महिलायें स्वतंत्र रूप से अपने आप या अपने पतियों या बेटों के साथ उपहार देती थीं। सातवाहन रानियों में से नायनिका नाम की एक रानी ने बौद्धिक बलि अनुष्ठानों का आयोजन किया और ब्राह्मणों तथा बौद्ध भिक्षुओं को उपहार दान दिये। इन सब प्रमाणों से स्पष्ट है कि दक्खन में समाज का संचालन जैसा कि इस काल के प्रमाणों से भी जाना जाता है, ब्राह्मणिक ग्रंथों में दिये गये नियमों के अनुसार नहीं होता था। इस प्रकार प्राचीन सामाजिक संरचना का पुनर्निधारण करते समय ग्रंथों के संदर्भों का हमें ध्यानपूर्वक विश्लेषण करना चाहिये तथा उनके तथ्यों की तुलना अन्य दूसरे स्रोतों जैसे कि शिलालेखों एवं पुरातात्विक तथ्यों के साथ करनी चाहिए। जिन बौद्ध भिक्षुओं का विवरण इस काल के स्रोतों में हुआ है इससे स्पष्ट है कि उनके व्यवहार एवं जीवन में बुद्ध के समय से काफी परिवर्तन हो चुका था। प्रारंभ में बौद्ध भिक्षुओं को कुछ व्यक्तिगत सामान रखने का अधिकार था। ये सामान कुछ ढीले-ढाले वस्त्रों एवं भिक्षा के पात्रों तक सीमित थे। परन्तु धीरे-धीरे बौद्ध संघ की सदस्यता

का प्रभाव बढ़ता गया। हम देख चुके हैं कि सातवाहन राजाओं ने काफी बड़ी मात्रा में बौद्ध भिक्षुओं को धन एवं भूमि के दान दिये। जिसके कारण संघ की सम्पत्ति में और वृद्धि हुई। इस काल के हमें कुछ ऐसे विवरण भी प्राप्त हुए हैं जिनके अनुसार बौद्ध भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों ने स्वयं भी दान दिये।

27.10 सारांश

दक्खन के इतिहास में सातवाहन काल इसलिये महत्वपूर्ण है क्योंकि प्रायद्वीप भारत में प्रथम बार पहली सदी ई.पू. में प्रारंभिक राज्य अस्तित्व में आया। राज्य का प्रशासन मौर्य प्रशासन की अपेक्षाकृत सरल था। सामुद्रिक एवं देश के अन्दर व्यापार का प्रसार इस काल के इतिहास का निर्णायक कारक था। इसके कारण शासकों के राजस्व में अतिरिक्त आमदनी का समावेश हुआ और बहुत से व्यावसायिक समूहों में इसके कारण सम्पन्नता भी बढ़ी। इस सब का परिणाम यह भी हुआ कि सम्पूर्ण दक्खन प्रायद्वीप में इस काल में बहुत से नगरों एवं शहरों का विकास हुआ।

बोध प्रश्न 2

1) क्या आप समाज के उन वर्गों का नाम बता सकते हैं जिन्होंने इस काल में भूमि दान किये।

....
....
....
....
....
....
....

2) इस काल में देश के अन्दर के व्यापार मार्गों पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

....
....
....

27.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) iii)
2) iv)
3) iv)

बोध प्रश्न 2

1) भाग 27.9 के आधार पर अपना उत्तर लिखें।

2) अपना उत्तर भाग 27.7 के आधार पर लिखें।

इकाई 28 दक्षिण भारत में आरम्भिक राज्य की उत्पत्ति (तमिल क्षेत्र)

इकाई की रूपरेखा

28.0 उद्देश्य
28.1 प्रस्तावना
28.2 क्षेत्र विशेष
28.3 पाँच पारिस्थितिकी प्रदेश और जीवनयापन का तरीका
28.4 राजनीतिक समाज का उदभव
    28.4.1 विभिन्न प्रकार के मुखियातंत्र
    28.4.2 लूटमार और लूट के माल का बंटवारा
    28.4.3 मूवेंदर और राजनीतिक नियंत्रण के विभिन्न स्तर
28.5 सारांश
28.6 शब्दावली
28.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

28.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह समझ सकेंगे कि:

- आरंभिक काल में दक्षिण भारत या तमिल क्षेत्र किन-किन भौगोलिक प्रदेशों या जलवायु क्षेत्रों में बंटा था;
- किस प्रकार जीवनयापन के विभिन्न तरीके एक साथ अस्तित्व में थे और उनमें कैसे आदान-प्रदान होता था;
- किस प्रकार विभिन्न प्रकार के मुखियातंत्र कार्य करते थे; और
- कैसे वे राजनीतिक नियंत्रण के विभिन्न स्तरों का प्रतिनिधित्व करते थे।

28.1 प्रस्तावना

इकाई 27 में आप सातवाहनों के अधीन दक्खन में आरंभिक राज्य उत्पत्ति की जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। इस काल के दौरान तमिल क्षेत्र में उसी प्रकार की स्थिति नहीं थी। इस क्षेत्र में केवल मुखियातंत्र विद्यमान था, राज्य शक्ति जैसी चीज का नामोनिशान नहीं था। राज्य के लिए एक क्षेत्र विशेष में केंद्रीकृत राजनीतिक शक्ति का होना अनिवार्य माना जाता है। क्षेत्र के विभिन्न स्त्रोतों पर नियंत्रण स्थापित होने पर ही किसी राजनीतिक शक्ति का अधिकार कायम होता है। इसके अतिरिक्त राज्य के लिए एक नियमित कराधान व्यवस्था और व्यवस्थित सेना का होना आवश्यक है। इस कराधान और सेना को व्यवस्थित करने के लिए राज्य के पास नौकरशाही या विभिन्न स्तरों के अधिकारियों का एक दल होना चाहिए। दूसरी तरफ मुखियातंत्र में ऐसी व्यापक व्यवस्था नहीं होती है। मुखियातंत्र वंशानुगत अधिकार पर आधारित एक ऐसा समाज होता है, जिसमें एक मुखिया का शासन होता है। उसके अधिकार क्षेत्र में वे लोग होते हैं जो उसके साथ संबद्ध कबीले के नियमों और सगोत्रता के सूत्र में बंधे होते हैं। मुखिया अपने लोगों के सगोत्रीय संबंधों का संस्थागत रूप होता है। इस प्रकार की व्यवस्था में लोगों से राजस्व के तौर पर नियमित रूप से कर नहीं वसूल किया जाता है, बल्कि स्वेच्छा से लोग समय-समय पर नजराना दिया करते हैं। इस इकाई में आप बिभिन्न प्रकार के मुखियाई अधिकारों और उनके राजनीतिक विकास के स्तर की जानकारी प्राप्त करेंगे।

28.2 क्षेत्र विशेष

वेंकटम पहाड़ियों और कन्याकुमारी के बीच के भू-क्षेत्र को तमिलहम याने तमिल क्षेत्र कहते

हैं। इसके अंतर्गत सम्पूर्ण आधुनिक तमिलनाडु और केरल आ जाते हैं। इस क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की भौगोलिक परिस्थितियाँ तथा जलवायु पाई जाती है। यहाँ वनों से आच्छादित पहाड़ियाँ, हरे मैदान, चरागाह, शुष्क प्रदेश, नम भूमि और लम्बे समुद्री तट भी हैं। तीन प्रमुख मुखियातंत्रों चेर, चोल और पांड्यों का भीतरी भू-भाग के साथ-साथ समुद्र तट पर भी नियंत्रण था। चेरों का भीतरी भू-भाग में करूर पर और पश्चिमी तट पर स्थित प्रसिद्ध प्राचीन बंदरगाह मुकीरी पर अधिकार था। भीतरी भू-क्षेत्र में उर्जैयुर पर और कोरामंडल तट में पुहार पर चोलों का आधिपत्य था। इसी प्रकार पांड्यों का भू-क्षेत्रीय मुख्यालय मदुरई और तटीय मुख्यालय कोरकर था। ये इस क्षेत्र के प्रमुख राजनीतिक केंद्र थे।

28.3 पाँच पारिस्थितिकी प्रदेश और जीवनयापन का तरीका

प्राचीन तमिल काव्य में प्रदेश की प्राकृतिक विभिन्नता का सुंदर समन्वय हुआ है। यह ऐंतिणैं या पाँच विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्रों की अवधारणा के रूप में व्यक्त हुआ है। तमिलहम को पाँच तिणै का समुच्चय बताया गया है, यह पाँच तिणैं हैं कुरिंजि (पहाड़ी वन क्षेत्र), पलै (शुष्क प्रदेश), मुल्लै (चारागाह क्षेत्र), मरूतम (नम भूमि) और नेयतल (समुद्र तट)। कुछ प्रदेश ऐसे भी थे, जहाँ एक से अधिक तिणैं का अस्तित्व था। पर आमतौर पर अधिकांश तिणैं चारों तरफ बिखरे पड़े थे। भौगोलिक स्थितियों के कारण प्रत्येक तिणैं में मनुष्य के 'जीवनयापन' का तरीका अलग-अलग था। सामाजिक समूह भी अलग-अलग थे। कुरिंजि प्रदेश में रहने वाले लोग शिकार और फल-फूल इकट्ठा कर अपनी जिंदगी बसर करते थे। पालै की सूखी भूमि के कारण, वहाँ के लोग कुछ उपजा नहीं सकते थे,अतः यहाँ के लोग जानवरों को चुराकर और लोगों को लूटकर अपना भरण-पोषण करते थे। मुल्लै के लोग पशुपालन और झूम खेती करते थे। मरूतम में हल से खेती की जाती थी और नेयुतल में मछली मारना और नमक बनाना जीवनयापन का मुख्य साधन था। इस प्रकार तमिलहम के पाँच तिणैं में भौगोलिक प्रभावों के कारण जीवन यापन के भिन्न-भिन्न तरीके अपनाये जाते थे। एक तिणैं के लोग दूसरे तिणैं के लोगों से वस्तुओं का आदान-प्रदान करते थे। जैसे पहाड़ियों में रहने वाले लोग मैदानी इलाके में अपने वन्य उत्पादों जैसे शहद, मांस, फल आदि के साथ आते थे। तटीय प्रदेश में रहने वाले लोग उनके इन पदार्थों के बदले मछली और नमक की आपूर्ति करते थे। कृषि प्रदेश सभी को आकर्षित करते थे। छोटे आत्मनिर्भर तिणैं का इस प्रकार के आदान-प्रदान और आपसी निर्भरता से अपेक्षाकृत बड़े भौगोलिक प्रदेशों में विकास हुआ। इनमें से कुछ प्रदेशों में उत्पादन की दृष्टि से स्थिति अनुकूल थी और कुछ प्रदेशों में प्रतिकूल। बेहतर उत्पादन वाले इलाके में अपेक्षाकृत विकसित सामाजिक श्रम विभाजन अस्तित्व में था। कम उत्पादन वाले इलाके में सामाजिक संरचना सरल थी और वह गोत्रों से मिलकर बनी थी। कुल मिलाकर तमिलहम असमान रूप से विकसित तत्वों से मिलकर बने एक जटिल समाज का प्रतिनिधित्व करता था जिनकी सांस्कृतिक विरासत एक समान थी। इस समाज में कई प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाएँ थीं, जिसमें गोत्रों पर आधारित सरल मुखियातंत्र से लेकर राजघरानों द्वारा शासित जटिल मुखियातंत्र का अस्तित्व था। पूर्णविकसित राज्य का निर्माण होना अभी बाकी था।

28.4 राजनीतिक समाज का उद्भव

विभिन्न कुलों के मुखियातंत्र से राजनीतिक समाज का उद्भव माना जा सकता है। कुलों का यह मुखियातंत्र बड़ा भी होता था और छोटा भी। कविताओं में कुल मुखियातंत्र के मुखियाओं को श्रेष्ठ (पेरू-मकन) या मुखिया पुत्र (को-मकन) कहा गया है, इससे कुल के सदस्यों और मुखिया के बीच संबंध का भी पता चलता है। वस्तुतः इससे सगोत्रीय आधार का पता चलता है। इसमें से कुछ मुखियातंत्रों ने दूसरे कुलों पर विजय प्राप्त करके उन्हें अपने कुल में मिलाकर, सगोत्रीय आधार का अतिक्रमण भी किया होगा। अपेक्षाकृत जटिल प्रकृति के बड़े मुखियातंत्रों का निर्माण आक्रमणों और दूसरों के इलाकों पर कब्जा जमाकर ही हुआ है। मुखियाओं की वैवाहिक संधियों के कारण भी बड़े मुखियातंत्रों का निर्माण हुआ, पर मुखियातंत्रों के विकास का मुख्य आधार उनकी सम्पत्ति थी। जिनके पास अधिक खेतिहर इलाके थे, वे मुखियातंत्र अधिक शक्तिशाली थे। समकालीन तमिल क्षेत्र में इस प्रकार के मुखियातंत्रों में चेर, चोल और पांड्य सर्वप्रमुख थे। ये मुखियातंत्र राज्य के उद्भव के पूर्व के चरण का प्रतिनिधित्व करते थे।

28.4.1 विभिन्न प्रकार के मुखियातंत्र

तमिल क्षेत्र में तीन प्रकार के मुखियातंत्र थे। इन्हें किलार (छोटे मुखिया), वेलीट (बड़े मुखिया)और वेंतर (सबसे बड़े मुखिया) कोटि में विभक्त किया जाता था। किलार छोटे गाँवों (उर) के मुखिया होते थे, जहाँ सगोत्रता का अधिपत्य था। काव्यों में कई किलारों का उल्लेख किया गया है। उनके आगे उनके अपने गाँव का नाम जुड़ा होता था जैसे **अरंकंटुर-किलार** या **उरंटुर किलार।** इनमें से कुछ प्रदेशों को बड़े मुखियातंत्रों ने हड़प लिया था और उन्हें (किलार) बड़े मुखियातंत्रों के अभियान में साथ देना पड़ता था। काव्य में इस बात का उल्लेख है कि किलारों को बड़े मुखियातंत्रों जैसे चेर, चोल और पांड्य के सैनिक अभियानों में विदुतोलिल (अनिवार्य सेवा) करनी पड़ती थी। इसके बदले में बड़े मुखियातंत्र किलारों को बतौर इनाम कुछ गाँवों का नियंत्रण सौंप देते थे। वेलीर मुख्यतः पहाड़ी क्षेत्र पर नियंत्रण रखते थे, पर इनमें से कुछ मैदानी इलाकों में भी जमे हुए थे। पहाड़ियों पर स्थित मुखियातंत्रों के मुखिया मुख्यतः शिकारी प्रमुख होते थे, जिसे वेडर कोमान या कुरवर-कोमान या नेडु वेट्टुवन के नाम से जाना जाता था। वेडर-कुरवर और वेट्टुवर पहाड़ी इलाके के प्रमुख कुल थे, जिसमें वेलीर का वर्चस्व था। इस काल के मुखियातंत्रों के प्रमुख केंद्र **वैंकटमलै** (वैंकटम की पहाड़ियाँ), **नांजिलमलै** (त्रावणकोर की दक्षिणी पहाड़ी), **परमपुरलाई** (संभवतः पोल्लाच्ची के समीप आधुनिक **परम्पिकुल्लम** आरक्षित वन), **पोट्टिलमलै** (महुरै जिले की पहाड़ियाँ) आदि थे। बड़े मुखियातंत्रों की श्रेणी में चेर, चोल और पांड्य प्रमुख राजघराने थे। इन्हें मूवेंदर के नाम से जाना जाता था। इन राजघरानों का बड़े हिस्सों पर नियंत्रण था। चेरों का नियंत्रण पश्चिमी घाट में स्थित कुरिजों पर था। चोलों का कावेरी क्षेत्र पर और पांड्यों का दक्षिण-मध्य समुद्री इलाके पर नियंत्रण था। उनके अधीन कई छोटे-मोटे सरदार थे, जो नजराना पेश किया करते थे। उस समय तक राज्य क्षेत्र का कोई निश्चित सीमा-निर्धारण नहीं हो सकता था। इस युग में राजनीतिक अधिकार का कार्यान्वयन जनता के माध्यम से होता था न कि मूलभूत स्त्रोतों पर अधिकार जमाकर। जैसे कि कुरवर या वेतर या वेंट्टुवर जैसे लोगों पर नियंत्रण स्थापित कर ही कोई मुखिया सरदार बन पाता था। इन लोगों का सामूहिक तौर पर पहाड़ी या मैदानी इलाकों पर अधिकार होता था। मुखिया या सरदार सगोत्रता पर आधारित समाज से ही अधिकार प्राप्त करता था। विभिन्न स्त्रोतों पर किसी व्यक्ति विशेष का अधिकार न होकर बल्कि पूरे समुदाय का अधिकार होता था, यह उनका वंशानुगत अधिकार होता था। यह वंशपरम्परा पर आधारित समुदाय था और वे स्वेच्छा से अपने मुखिया को नजराना देते थे। नियमित और निश्चित समय पर करों का भुगतान करना प्रचलन में नहीं था। फिर प्रमुख मुखिया की शक्ति अपने क्षेत्र की उत्पादकता और उपजाउपन पर आधारित होती थी। पशुपालक या शिकारी समुदाय के सरदार की शक्ति खेतिहर इलाके के सरदार से कम होती थी। शक्तिशाली सरदार कमजोर सरदार के इलाकों पर कब्जा जमा लेते थे और उनसे नजराना वसूल करते थे। इस काल में लूटमार कर धन इकट्ठा करना एक आम प्रचलन था।

28.4.2 लूटमार और लूट के माल का बंटवारा

अपने लोगों की जरूरतों को पूरा करने के लिए बड़े और छोटे सरदार अक्सर लूटमार किया करते थे। ये सरदार अपने सगोत्रों के अलावा लूट के माल का हिस्सा सैनिकों, भाटों, और चिकित्सकों को भी दिया करते थे। **कोडै** संस्था (उपहार प्रदान करने की संस्था) लूट के माल के पुनर्वितरण की प्रथा का एक अंतरिम हिस्सा थी। उपहार प्रदान करना किसी भी सरदार का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व माना जाता था। पुरनानूरू (एट्टुत्तोगै) की परम्परा में संकलित एक काव्य) की अधिकांश कविताओं में सरदार की उदारता की प्रशंसा की गयी है। इन कविताओं के अनुसार बहादुरी और उदारता को सरदारों का प्रमुख गुण माना जाता था। स्थानीय स्त्रोतों के अभाव में लूटमार आय का प्रमुख स्त्रोत बन जाता था। पुरनानूरू में संकलित एक काव्य में ऊर्तरकिन्तार नाम के सरदार का उल्लेख है, जिसके पास आय के स्रोत काफ़ी कम थे। जब भी कोई व्यक्ति उससे उपहार माँगने जाता था, तो वह अपने लोहार को बुलाकर नया बल्लम बनाने का आदेश देता था ताकि वह लूटमार करके धन एकत्र कर उसे उपहार के तौर पर अपने आश्रितों को दे सके। इस प्रकार लूटमार और प्राप्त माल का पुनर्वितरण उस समय की राजनीतिक व्यवस्था का एक अंग बन चुका था। सरदार एक दूसरे को लूटा करते थे। लूटमार के अभियान में छोटे सरदार बड़े सरदारों का साथ देते थे और लूट के माल के समय इनकी नजर ज्यादातर पशुधन और अनाज की ओर होती थी। इस काल के भाटों ने अपने गायन में हाथी, घोड़े, स्वर्ण कमल, रथ, हीरे-जवाहरात और मलमल के कपड़े आदि उपहारों की चर्चा की है। कभी-कभी बड़े सरदार अपने आक्रमण के दौरान दूसरे

सरदारों के भू-क्षेत्र पर भी अधिकार कर लेते थे। इन अधिकृत भू-क्षेत्रों को बड़े सरदार अपने सहायक छोटे सरदारों के बीच बाँट दिया करते थे। यह स्मरणीय है कि नियंत्रण वहाँ की जमीन पर नहीं, बल्कि वहाँ रहने वाले लोगों पर स्थापित होता था।

28.4.3 मूवेंदर और राजनीतिक नियंत्रण के विभिन्न स्तर

प्रधान शासक समुदाय के रूप में मूवेंदर की पुरातनता मौर्यकाल तक जाती है। अशोक की राजविज्ञप्तियों/फरमानों में उनका जिक्र मिलता है। भाट मूवेंदर की स्तुति एक "राजा" के रूप में करते हैं, और उनके अनुसार मूवेंदर का अधिकार पूरे तमिल क्षेत्र पर था। पर "राजा के उल्लेख का यह मतलब नहीं है राज्य की स्थापना हो चुकी थी। एक राज्य के निर्माण के लिए स्थायी सेना, नियमित कर व्यवस्था, नौकरशाही और स्थानीय प्रशासनिक निकायों का होना अनिवार्य है। अभी तक इनकी उत्पत्ति नहीं हो सकी थी। इसके बावजूद मूवेंदर अन्य सरदारों से बिल्कुल भिन्न था। लगातार छोटे सरदारों को अपने अधीन लाने का प्रयत्न करते रहे। तीनों शासक समुदाय – चेर, चोल और पांड्य का एक ही प्रमुख मकसद था, वेलीर (बड़े सरदारों) को अपने अधीन करना। वेलीर सरदार की परम्परा भी काफी प्राचीन थी। अशोक के फरमान में चेर, चोल और पांड्यों के साथ-साथ सत्यपुत्रों या **अदिकैमान** सरदारों का भी उल्लेख हुआ है। सत्यपुत्र वेलीर सरदारों की श्रेणी में आते थे। उनका ऊपरी कावेरी की पहाड़ियों पर स्थित लोगों पर नियंत्रण था। अन्य वेलीर सरदारों का अधिकार क्षेत्र भू-वेंदर की सीमा से लगी हुई ऊँची भूमि और समुद्री तट तक फैला हुआ था। वेलीर सरदारों के नियंत्रण में पहाड़ी और मैदानी इलाके थे, इनमें प्रमुख हैं: धर्मपुरी, नीलगिरि, मदुरई, उत्तरी आर्कोट, त्रिचिनापल्ली, पट्कोट्टइ आदि आधुनिक जिले। तमिल क्षेत्र में लगभग पन्द्रह महत्वपूर्ण वेलीर मुखियातंत्र अस्तित्व में थे। इनमें से कुछ वेलीरों का नियंत्रण व्यापारिक स्थल, बंदरगाह पहाड़ियों के मुहाने और पहाड़ी बस्तियों जैसे महत्वपूर्ण केंद्रों में रहने वाले लोगों पर था। स्थान और स्रोतों से उनकी शक्ति का निर्धारण होता था भारतीय-यूनानी व्यापार की शुरुआत होने के बाद महत्वपूर्ण स्थानों और व्यापारिक माल पर नियंत्रण से सरदारों का महत्व बढ़ गया। कविताओं में परंबुमैल के पारी (पोल्लाची के समीप), पोडियल के अरियार (मदुरई), नांजिमैल के आंदीरन (श्रावणकोर के दक्षिण), कोड्म्बै के इरुङ्गोवेल (पदुक्कोट्टइ) आदि प्रमुख वेलीर सरदारों का जिक्र किया गया है। ऐसे सामरिक महत्व के क्षेत्रों के वेलीर सरदारों को बार-बार भू-वेंदर जैसे बड़े सरदारों का आक्रमण झेलना पड़ता था। इस भाग-दौड़ में कभी-कभी कमजोर सरदारों का विनाश भी हो जाता था। भू-वेंदर द्वारा परबुनाडु के वेलीर सरदार की सारी रियासत का नाश इसी प्रकार का उदाहरण है। युद्ध के अतिरिक्त विवाह के माध्यम से भी बड़े सरदार वेलीर रियासत तक पहुँचने की कोशिश करते थे। चेर, चोल और पांड्यों द्वारा वेलीरों की लड़की से शादी करने के कई उदाहरण मिलते हैं, सामरिक महत्व के क्षेत्र के सरदार पर बड़े सरदार सैन्य नियंत्रण रखते थे। उनका दमन करके बड़े सरदार उन्हें अपने अधीन कर लेते थे। भू-वेंदर के नियंत्रण में ऐसे कई पराधीन सरदार थे, जो लूटमार के अभियान में उनका साथ देते थे।

यह स्पष्ट है कि समकालीन तमिल क्षेत्र में भू-वेंदर सर्वशक्तिमान राजनीतिक सत्ता थी। इसके बाद वेलीर का स्थान आता था। जबकि किलार के ग्रामीण सरदार राजनीतिक शक्ति का प्राथमिक स्तर थे। इन्हें देखकर एक राजनीतिक पदानुक्रम का आभास होता है पर राजनीतिक शक्ति के इन तीन स्तरों को सूत्रबद्ध करने के लिए राजनीतिक नियंत्रण की कोई कड़ी नहीं बन पायी थी। भू-वेंदर द्वारा युद्ध और विवाह के माध्यम से छोटे सरदारों को अपने अधीन करने की प्रक्रिया जारी थी, पर अभी भी एक एकीकृत राजनीतिक व्यवस्था का अभाव था।

सगोत्रीय आधार पर संगठित कुलों पर परम्परागत अधिकार ही इस काल के राजनीतिक नियंत्रण का आधार था। परम्परागत ज्येष्ठ लोगों की सभा प्रतिदिन के सभी कार्यकलापों को संपादित करती थी। सभी स्थल को **मन्रम** कहा जाता था अर्थात् किसी पेड़ के नीचे बैठने के लिए बनाया गया चबूतरा इसे पोतियिल भी कहते थे। सरदार की सहायता के लिए ज्येष्ठों की एक सभा होती थी, जिसे अवै (सभा) कहा जाता था, इसकी संरचना बनावट और कार्य का अभी तक पूर्ण ब्यौरा प्राप्त नहीं हुआ है। आरंभिक तमिल राजनीतिक व्यवस्था के दो और निकायों की प्रायः चर्चा की जाती है, इसे ऐमपेंरगुलु या पाँच बड़े समूह और **एणपेरायम** या आठ बड़े समूह के नाम से जाना जाता है। संभवतः इन निकायों का विकास तृतीय शताब्दी ई. के आसपास हुआ था, यह काफी बाद की गतिविधि है। इन निकायों की संरचना और कार्यों का भी कुछ निश्चित पता नहीं चला है।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़ें और सही (√) और गलत (×) का निशान लगाएँ।
   i) तमिलहम (तमिल क्षेत्र) के सरदार तंत्र नियमित कराधान पर आधारित थे। (   )
   ii) इस काल की राजनीतिक सत्ता आर्थिक स्रोतों के नहीं बल्कि लोगों के नियंत्रण पर आधारित थी। (   )
   iii) भू-वेंदर पूर्ण रूप से विकसित राज्य था। (   )
   iv) उपहार प्रदान करना सरदार का प्राथमिक सामाजिक कर्तव्य था। (   )

2) विभिन्न प्रकार के मुखियातंत्र किस प्रकार सहअस्तित्व में थे और उनमें कैसे आदान-प्रदान होता था? दस पंक्तियों में उत्तर दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

28.5 सारांश

इस इकाई में आपने तमिल क्षेत्र की विभिन्न भौगोलिक इकाइयों की जानकारी प्राप्त की। इसके अतिरिक्त वहाँ जीवनयापन के विभिन्न तरीकों और सरदार तंत्र स्तर के राजनीतिक स्वरूप से परिचित होने का भी आपको अवसर मिला। आप इस बात से भी अवगत हुए कि उस काल की राजनीतिक व्यवस्था में लूटमार और लूटमार के माल के विवरण का महत्वपूर्ण स्थान था। इसके अतिरिक्त आप को यह भी जानकारी मिली कि इस काल की राजनीतिक सत्ता का आधार गोत्र और कुल था। तृतीय शताब्दी ई. के बाद राजनीतिक संगठन के सतत विकास की प्रक्रिया से भी आप अवगत हो गये होंगे।

28.6 शब्दावली

किलार: मुखिया या सरदार का सबसे छोटा तबका जिसका अपने कुल पर सीधा अधिकार होता था।

तिणै: एक विशिष्ट परिस्थिति की जलवायु, सामाजिक समूहों और जीवनयापन के तरीकों से युक्त प्रदेश।

भाट: राजस्तुति करने वाले कवि।

मन्रम/पोतियल: पेड़ के नीचे बैठने के लिए बनाया गया चबूतरा।

पदानुक्रम: पद के अनुसार, इकाई में इस शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के (hierarchy) के लिए किया गया है।

भौगोलिक क्षेत्र या इकाई: एक विशिष्ट परिस्थिति की विशेषताओं जैसे, पर्यावरण, मिट्टी के प्रकार, उर्वरता आदि से युक्त प्रदेश।

मुखियातंत्र: वंशानुक्रम पर आधारित एक समाज जिसमें एक मुखिया अपने लोगों से उनकी स्वैच्छा से नजराना प्राप्त करता था।

भू-वेंदर: तीन प्रमुख शासकीय समूह, जैसे चेर, चोल और पांड्य।

वेलीर: प्रधान समूहों के ठीक बाद के प्रमुख या अपेक्षाकृत बड़े सरदार।

वेंतर: प्रधान समूह या सबसे बड़े सरदार।

28.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1) i) × ii) √ iii) × iv) √

2) देखें उपभाग 28.4.3

इकाई 29 कृषक बस्तियों का विस्तार

इकाई की रूपरेखा

29.0 उद्देश्य
29.1 प्रस्तावना
29.2 आजीविका के प्रकार
29.3 कृषक बस्तियों का प्रसार
29.3.1 तमिल क्षेत्र की बस्तियों में कृषि उत्पादन
29.3.2 दक्खन में बस्तियां
29.4 स्वामित्व का अधिकार
29.5 राजस्व और अधिशेष वसूली
29.5.1 कृषि से राजस्व
29.5.2 तमिल क्षेत्र में संसाधनों का अर्जन और वितरण के तरीके
29.5.3 वसूली में ज्यादतियां
29.6 सामाजिक संगठन
29.6.1 तमिल समाज
29.6.2 दक्खन में समाज
29.7 नए तत्व और सामाजिक परिवर्तन
29.8 सारांश
29.9 शब्दावली
29.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

29.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य 200 ई.पू. से 300 ई. तक दक्खन और दक्षिण भारत में **कृषक** बस्तियों के प्रसार के बारे में चर्चा करना है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप:

- जीविका के उन विभिन्न प्रकारों के बारे में, जो दक्षिण भारत के भिन्न-भिन्न भागों में विद्यमान थे;
- **कृषक** बस्तियों के प्रसार के स्वरूप;
- भूमि के स्वामित्व के स्वरूप;
- कृषि से राजस्व आय और **कृषक** बस्तियों में संसाधनों के पुन: वितरण;
- **कृषक** समाज के संगठन; और
- नए तत्वों के लागू होने तथा परिवर्तन शुरू होने के बारे में जान सकेंगे।

29.1 प्रस्तावना

प्रायद्वीपीय भारत में खेती के सबसे पुराने साक्ष्य नवपाषाण युग के उत्तरार्ध में पाए जाते हैं, जो ई.पू. के दूसरे सहस्त्राब्दि का पूर्वार्द्ध है। नवपाषाण युग के लोग मोटा अनाज (मिलेट) जैसे रागी और बाज़रा तथा दलहन जैसे काला चना और पशुओं के खाने वाला चने की खेती करते थे। नवपाषाण युग की बस्तियों की मुख्य विशेषता यह थी कि पहाड़ियों के ढलान पर सीढ़ीदार खेतों पर ही खेती की जाती थी। प्रायद्वीपीय भारत में प्रथम सहस्त्राब्दि ई.पू. के लगभग चावल पाए गए थे, जो दक्षिण में लौह युग के आरंभ होने की अवधि है। दक्खन और दक्षिण भारत में लौह युग के दौरान धान की खेती का प्रसार हुआ। ऊपरी क्षेत्रों में लौह युग के प्रारंभ की बस्तियां देखी गई हैं। लोहे के प्रयोग से खेती की तकनीकी में कोई आकस्मिक परिवर्तन नहीं हुआ। बाद में लोहे के हल-फाल के प्रयोग से तकनीकी प्रगति हुई। इस के साथ ही नदी घाटियों में बस्तियों का संकेन्द्रण भी हुआ। जुताई में बैलों को काम में लाने और लोहे के हल फाल के प्रयोग के विस्तार से खेती अधिक इलाके में होने लगी और खेती की उपज में

भी अप्रत्याशित वृद्धि हुई। इस वृद्धि के अनुसार, जनसंख्या में भी वृद्धि हुई। बाद में बौद्ध मठो और ब्राह्मणों जैसे धार्मिक लाभभोगियों को गांवों की भूमि दान देने की प्रथा शुरू होने से कृषक क्षेत्र में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ। उन्हें मौसम की बेहतर जानकारी थी और मौसम के बारे में पूर्व-अनुमान भी कर सकते थे। बौद्ध भिक्षुओं और ब्राह्मणों को भूमि देने के फलस्वरूप कृषक क्षेत्र में गैर-कृषक वर्ग का प्रवेश शुरू हुआ। इस प्रकार हमें दक्षिण भारत में कृषक बस्तियों के प्रसार में तीन अवस्थाओं का पता चलता है:

- **पहली अवस्था:** निम्न स्तर की प्रौद्योगिकी के साथ अपरिष्कृत खेती की प्रथम अवस्था जिसमें खेती केवल पहाड़ी ढलानों तक सीमित थी।
- **दूसरी अवस्था:** प्रौद्योगिकी में पर्याप्त वृद्धि के साथ हल द्वारा खेती और नदी घाटियों में खेती का विस्तार।
- **तीसरी अवस्था:** इसमें गैर-कृषक वर्ग का कृषक क्षेत्र में प्रवेश हुआ। इन वर्गों को मौसम, प्रबंधकीय क्षमता और खेती के तरीकों में उपकरणों का बेहतर ज्ञान था।

29.2 आजीविका के प्रकार

आजीविका के प्रकारों का निर्धारण कई कारकों द्वारा किया जाता है। जैसे क्षेत्र विशेष की भौगोलिक अवस्थिति, क्षेत्र की प्राकृतिक अवस्था, भौतिक संस्कृति और प्रौद्योगिकी का स्तर। यद्यपि कुछ क्षेत्रों में अपरिष्कृत तकनीक काफी समय तक चलती रही, परन्तु कुछ अन्य क्षेत्रों ने सामग्री उत्पादन और सामाजिक विकास में प्रगति की। तमिल क्षेत्र में आजीविका के प्रकारों में विविधताएं अधिक स्पष्ट दिखाई देती हैं। आप इकाई 31 में पढ़ेंगे कि प्रारंभिक तमिल संगम कविताओं में तिणै (tinai) के रूप में पांच आर्थिक प्रदेशों का उल्लेख है और प्रत्येक आर्थिक प्रदेश की आजीविका का स्वरूप बिल्कुल अलग है। ये निम्नलिखित हैं:

- **कुरिंजी (kurinji),** पहाड़ और वन;
- **मुल्लै (mullai),** चारागाह जिनमें कम ऊंची पहाड़ियां और छितरे वन थे;
- **मरूतम (marutam),** उपजाऊ कृषि मैदान;
- **नेयतल (neytal),** समुद्री तट; और
- **पालै (palai),** शुष्क क्षेत्र। **मुल्लै** या **कुरिंजी** भूमि क्षेत्र भीषण ग्रीष्म ऋतु में शुष्क हो जाता था।

कुरिंजी क्षेत्र में वन जन-जातियां थीं, जिन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार से जाना जाता था जैसे **कुरवर (kuravar), वेटर (vetar)** आदि। उनका मुख्य व्यवसाय आखेट और वन उत्पादों जैसे बांस, चावल, शहद और कंद-मूल एकत्रित करना था। वे पहाड़ी ढलानों पर ''काटना और जलाना'' विधि से खेती करते थे और ज्वार, बाजरा तथा दलहन पैदा करते थे। वे विभिन्न प्रकार के औज़ारों जैसे फावड़ा, दराती और लोहे की नोकयुक्त कुदाल का प्रयोग करते थे। ऐसे पहाड़ी इलाके वे थे, जहां मिर्च तथा मसालों की अन्य प्रजातियां काफी मात्रा में पैदा होती थीं। साहित्य में मिर्च की खेती और बागानों में सिंचाई सुविधाओं का वर्णन मिलता है।

मुल्लै (mullai) के चारागाहों पर **ग्वालों** का अधिकार था जो **इटैयर** (itayar) के नाम से जाने जाते थे। उनकी आजीविका का साधन पशुपालन था। वे दूध उत्पादों का विनियम करते थे। झूम कृषि भी करते थे और **मोटे अनाज** तथा दलहन एवं मसूर पैदा करते थे।

मरूतम या कृषक क्षेत्र अधिकतर उपजाऊ नदी घाटियों में थे जो धान और गन्ने की खेती के लिए उपयुक्त क्षेत्र थे। वे लोग जो **उषवर** (**ushavar**) कहलाते थे, जिसका अर्थ हलवाहा है, खेतों की जुताई में लगे रहते थे और अपनी आवश्यकता से अधिक मात्रा में धान पैदा करते थे।

अन्य तिणों के लोग चावलों और प्रमुख खाद्यान्नों के लिए **मरूतम** क्षेत्रों पर निर्भर थे।

नेयतल लोग जो **परतवर** (**paratvar**) थे, मछली पकड़ने और नमक उत्पादन में लगे रहते थे। वे अपनी आजीविका उपार्जन के लिए मछली और नमक का विनियम करते थे।

पल्लै क्षेत्र की ग्रीष्म ऋतु एक नियतकालिक घटना है। वहां ग्रीष्म ऋतु के दौरान पानी की

दुलर्भता के कारण खेती संभव नहीं थी। इसलिए उस क्षेत्र में कुछ लोग ऐसे थे जो राहजनी, डकैती और पशुओं की चोरी करते थे। नमक के व्यापारी और अन्य वस्तुओं के व्यापारी कारवां में इस क्षेत्र से गुज़रते थे। बहुधा इसे कारवां **मरवर (marava)** वर्गों के लोगों द्वारा लूटे जाते थे।

उपर्युक्त चर्चा से आजीविका के निम्नलिखित प्रकार वर्गीकृत किए जा सकते हैं:

- आखेट और वन उत्पादों का संग्रहण
- पशुपालन
- खेतों की जुताई
- मछली पकड़ना और नमक बनाना
- राहजनी

चार्ट-1: भू-आकृति विभाजन, निवासी और व्यवसाय

क्षेत्र	भौगोलिक लक्षण	निवासी	व्यवसाय
कुरिंजी	पर्वतीय और वन	आखेट और संग्रहण (कुरवर और वेटर)	आखेट, भोजन संग्रहण काटना जलाना और खेती
मुल्लै	चारागाह, कम ऊंची पहाड़ियाँ और छितरे वन	चरवाहे (आयर और इटैयर) (Ayar and Itayar)	पशुपालन, झूम कृषि
मरूतम	नदी घाटियां और मैदान	किसान (उषवर और बेल्लालर) (ushavar and vellaler)	कृषि जुताई
नेयतल	समुद्र तट	मछुआरे (परतवर) (Paratvar)	मछली पकड़ना, पर्ल गोता लगाना, नमक बनाना
पल्लै	शुष्क क्षेत्र, ग्रीष्म ऋतु में पहाड़ी क्षेत्रों की चारागाह भूमि का परिवर्तन	डाकू (एयिनर, मरवर) (Eyinar, Maravar)	राहजनी, डकैती और आखेट

बोध प्रश्न 1

1) सही ($\surd$) अथवा गलत ($\times$) का निशान लगाइए:

   i) तमिलहम् क्षेत्र में आजीविका के विविध प्रकार स्पष्ट दिखाई देते हैं।

   ii) पांच तिनाई दक्खन, आंध्र, तमिलनाडू और केरल थे।

   iii) पल्लै क्षेत्र एक नियतकालिक घटना है।

   iv) दक्षिण भारत में कृषि की तृतीय अवस्था **कृषि के क्षेत्र** में गैर-कृषि वर्ग का प्रवेश है।

2) प्राचीन तमिलहम् क्रे **आर्थिक क्षेत्रों** के बारे में पांच पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

3) मुल्लै अथवा चारागाह में आजीविका के प्रकारों के बारे में तीन पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

29.3 कृषक बस्तियों का प्रसार

दक्खन और दक्षिण भारत में नवपाषण युग से लौह युग तक जनसंख्या में वृद्धि एक महत्वपूर्ण परिवर्तन है। यह परिवर्तन लौह युग के कई स्थानों पर दिखाई देता है। इस परिवर्तन के फलस्वरूप ऊपरी क्षेत्र (Upland Area), क्षेत्रों से उपजाऊ नदी घाटियों में बस्तियों का प्रसार हुआ और अंशतः पशुपालन से और कुछ झूम खेती से व्यवस्थित कृषि अर्थव्यवस्था अपनाई गई। इस जीवन शैली की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार थीं:

- नदी घाटियों में बस्तियों का संकेन्द्रण;
- कुछ स्तरों पर दस्तकारी विशेषज्ञता;
- लोहे के औज़ारों और उपकरणों का व्यापक प्रयोग;
- लोहे के हल-फाल की नई प्रौद्योगिकी;
- लघु सिंचाई सुविधाओं का प्रबंध; और
- शुष्क भूमि फसलों से अधिक उपज देने वाली धान की आर्द्र भूमि फसलों में परिवर्तन।

पुरातत्व संबंधी स्थलों में ये परिवर्तन सम्पूर्ण दक्षिण भारत में यत्रतत्र दिखाई देते हैं। ये आम तौर पर महापाषाणीय स्थलों के नाम से जाने जाते हैं। आप खण्ड 3 में महापाषाण के बारे में पहले ही पढ़ चुके हैं। कृषक बस्तियों पर चर्चा करने से पहले हम संक्षेप में महापाषाणों के बारे में बताएंगे।

महापाषाण का शाब्दिक अर्थ बड़ा पत्थर है। इसका संबंध लोगों की वास्तविक बस्तियों से नहीं है, बल्कि कब्र के चारों ओर पत्थरों के वृत्त में कब्र के स्थान से है। कुछ आवासीय स्थानों जैसे विरूक्कमपुलियर, अलाकरै आदि में ऐसे स्थल प्रकाश में आए हैं परन्तु वे बहुत कम हैं। महापाषाण की शुरुआत लगभग 1000 ई.पू. मानी जाती है। परन्तु बहुत से मामलों में इन्हें पाँचवी से पहली शताब्दी ई.पू. माना जाता है। कुछ स्थानों में वे इससे भी बाद के थे। कब्र के सामान में विभिन्न वस्तुएं जैसे मानव अस्थियां, विभिन्न प्रकार के मिट्टी के बर्तन, एक विशेष प्रकार का लाल और काला भांड, आकृति बने ठीकरें, लोहे के औज़ार और हथियार, मनके तथा आभूषण, उपासना की वस्तुएं और कई अन्य वस्तुएं होती हैं। इन महापाषाणयुगीन अवशेषों से हमें दक्षिण भारत में लौह युग की कृषक बस्तियों की भौतिक संस्कृति की जानकारी मिलती है। इसके अलावा, उनसे तत्कालीन तमिल कवियों द्वारा दिए गए प्रमाणों की पुष्टि भी होती है।

29.3.1 तमिल क्षेत्र की बस्तियों में कृषि उत्पादन

तमिल क्षेत्र में कृषि लोहे के हल-फाल की सहायता से की जाती थी। फावड़ा, हल और दराती भी विभिन्न कृषि कार्यों के लिए प्रयोग में लाए जाते थे। लोहार को लोहे के धातुकर्म का ज्ञान था, और कुछ स्थानों पर लोहा पिघलाने के लिए प्रयुक्त भट्टियां भी थीं। ऐसे स्थानों से लौहचूर्ण भी प्राप्त हुआ है। गहरी जुताई के लिए लोहे के नोक वाला हल आवश्यक है। धान और गन्ने के लिए गहरी जुताई आवश्यक है। हल के उपयोग के बारे में साहित्य और शिलालेखों में प्रमाण मिलते हैं। तमिलहम् गुफा शिलालेखों में हल-फाल के व्यापारी को दाता के रूप में चित्रित किया गया है। बैलों और भैंसों को हल जोतने के काम में लाया जाता था। ताकतवर पशुओं को खेतों की जुताई पर लगाने से कृषि कार्यों में अधिक कार्य-कुशलता आई।

सिंचाई-सुविधाएं कभी स्थानीय किसानों द्वारा और कभी राजाओं तथा सामंतों द्वारा जुटाई जाती थीं। नदी के पानी को छोटी नालियों से खेतों में ले जाया जाता था। तमिलहम् में कावेरीपट्टनम के समीप प्राचीन जलाशयों के अवशेष पाए गए। उस क्षेत्र में कम वर्षा के कारण सिंचाई महत्वपूर्ण थी। उपजाऊ मरूथम क्षेत्र में धान और गन्ना दो प्रमुख फसलें थीं। दलहनों की भी खेती होती थी। उस समय के साहित्य से पता चलता है कि लोगों को मौसम की कुछ जानकारी थी जो खेती की सफलता के लिए आवश्यक है।

उषवर (Ushavar) और **वेल्लालर (Vellaler)** प्रमुख किसान थे। उषवर का शाब्दिक अर्थ हलवाहा है और वेल्लालर का अर्थ भूमि का मालिक है। कृषि के लिए श्रमिकों का एक स्रोत हलवाहों का वर्ग है। **अटियोर (Atiyor)** और **विनैवलार (Vinaivalar)** का भी उल्लेख खेतों में काम करने वाले व्यक्तियों के रूप में किया गया है।

अटियोर का अर्थ संभवत: गुलाम है और विनैवलार का अर्थ "मज़दूरी" अर्जित करने वाला कामगार। इनके मज़दूरी की दर और दूसरी शर्तों के बारे में बहुत जानकारी प्राप्त नहीं हुई है। बड़े परिवारों के सदस्य कृषि उत्पादन के विभिन्न कार्यों में लगे हुए पाए गए हैं। केवल परिवार के श्रम के आधार पर उत्पादन आवश्यकता से अधिक नहीं हो पाता था। फिर भी, इस कठिनाई के बावजूद कृषि बस्तियों में भिन्न-भिन्न वर्ग बने रहे जैसे लोहार, बढ़ई, भाट, नृतक, जादूगर, पुजारी, भिक्षु आदि।

29.3.2 दक्खन में बस्तियां

सातवाहन काल (पहली सदी ई.पू. से तीसरी सदी ई. तक) के दौरान नदी के मैदानों, समुद्र तटों और पठारी भाग के दक्खन में बस्तियों की संख्या में समग्र वृद्धि हुई। गोदावरी घाटी में सबसे अधिक बस्तियां थीं। सातवाहन बस्तियों की भौतिक संस्कृति में दक्खन के महापाषाणकालीन बस्तियों की अपेक्षा कुछ सुधार दिखाई देते थे। हल-फाल, दराती, फावड़ा, कुल्हाड़ी और तीर के नोक सहित औज़ार और उपकरण थे। कुदाल में निरंतर कुछ न कुछ सुधार होता रहा परन्तु यह उचित ढंग से सकोटर था। करीमनगर और वारंगल के क्षेत्रों में कच्चा लोहा उपलब्ध था। इन क्षेत्रों में लोहे की खुदाई से यह पता चलता है कि महापाषाण युग में भी इसका प्रचलन था। सातवाहन काल में दक्खन में सोने की खदानों के प्रमाण मिलते हैं। इन विकास कार्यों से पता चलता है कि इन क्षेत्रों में धातुकर्म उन्नत अवस्था में था।

तालाबों और कुंओं के रूप में सिंचाई सुविधाओं की उन्हें जानकारी थी। पानी उठाने के लिए रहटों का प्रयोग किया जाता था। तालाबों और कुंओं की खुदाई प्रशंसनीय कार्य समझा जाता था। कुछ शासकों की तालाब निर्माताओं के रूप में शिलालेखों में प्रशंसा की गई है। धनी लोग तालाब और कुएं बनवाते थे।

दक्खन के लोगों को धान रोपाई का ज्ञान था। ईसवी सदी की पहली दो शताब्दियों में कृष्णा और गोदावरी नदियों के मैदानों में प्रमुख चावल उत्पादक क्षेत्र थे। काली मिट्टी वाली भूमि में कपास की खेती की जाती थी और आंध्र का कपास विदेशों में भी प्रसिद्ध था। समुद्रतटीय क्षेत्रों के विकास में नारियल की पैदावार का बहुत बड़ा योगदान रहा। दक्खन के विभिन्न भागों में आम के वृक्षों और इमारती लकड़ी के अन्य वृक्षों के रोपण के बारे में भी सुना जाता है।

दक्खन में श्रमिकों का स्रोत, मज़दूरी पर श्रमिक और गुलाम थे। The Periplus of the Erythraean Sea में वर्णन है कि गुलामों को अरब से लाया जाता था। इससे स्पष्ट होता है कि समाज में स्पष्ट अंतर और वर्ग भेद था। तमिल क्षेत्र में "उच्च" और "निम्न" वर्ग के बीच अंतर था। "उच्च वर्ग" में शासक और सामंत तथा **वेल्लाल** और **वेलीर** वर्ग आते थे, जो भूमि के मालिक थे। "निम्न" वर्ग में साधारण किसान, भाट और नृतक तथा कामगार आदि थे। दक्खन के उन क्षेत्रों में यह अंतर और अधिक निश्चित रूप से उभरा, जहां स्थानीय विकास कार्यों और उत्तर के आदर्शों तथा विचारधारा का सम्मिलन पहले हुआ था।

29.4 स्वामित्व का अधिकार

सम्पदा और सम्पत्ति के आधार पर सामाजिक अंतर के फलस्वरूप स्वामित्व के आधार की समस्या उत्पन्न होती है। सुदूर दक्षिण में हमने देखा है कि वहां कुछ **वेल्लाल** वर्ग थे जो ज़मीन के मालिक थे। इससे प्रतीत होता है कि दूसरों की ज़मीन में मज़दूरी पर काम करने की अपेक्षा स्वयं भूमि का मालिक होना अच्छा समझते थे। कभी-कभी सामंत अपने सैनिकों और भाटों को **ऊर (Ur)** बस्तियां दे देते थे। इसके परिणामस्वरूप जिस व्यक्ति को ज़मीन दी गई थी, उसे उन **ऊर (Ur)** बस्तियों से आय संग्रह करने का अधिकार मिल जाता था।

आम तौर पर खेतों का सामूहिक स्वामित्व होता था और सामंतों के करों का भुगतान करने के बाद उत्पाद का उपयोग भी सामूहिक रूप से होता था। दक्खन में भूमि स्वामित्व का स्वरूप अधिक स्पष्ट है। वहां **गहपति (Gahapati)** परिवार थे, जो भूमि के स्वामी और व्यापारी, दोनों होते थे। एक शिलालेख के अनुसार पश्चिमी दक्खन के नाहापन क्षत्रपा शासक का दामाद उशावदत्ता ने ब्राहमण से ज़मीन का एक प्लाट खरीदा और उसे बौद्ध संघ को दान में दे दिया। इससे यह स्पष्ट है कि भूमि का स्वामित्व व्यक्तिगत भी होता था। इस कार्य में स्वामी को 40,000 **कहापन (Kahapana)** सिक्के मिले। सातवाहन राजाओं ने भूमि और

यहां तक कि गांव भी धार्मिक लाभभोगियों को दान में दिए। साधारण भक्तों ने बाद में इस प्रथा का अनुकरण किया। उस काल के शिलालेखों से पता चलता है कि व्यक्तिगत स्वामित्व में थोड़ी-थोड़ी ज़मीन होती थी।

बोध प्रश्न 2

1) निम्नलिखित के सामने (√) अथवा (×) का निशान लगाइए:
   i) महापाषाण युगीन स्मारक नवपाषाण युग के अवशेष हैं। ( )
   ii) कुदाल से मोटे अनाज की खेती नहीं की जा सकती है। ( )
   iii) तमिल क्षेत्र की नदी घाटियों में सिंचाई की सुविधाओं की जानकारी नहीं थी। ( )
   iv) सामंत मंदिरों को गांव दान में देते थे। ( )
   v) दक्खन में व्यक्ति भूमि के स्वामित्व का हकदार नहीं था। ( )

2) प्राचीन दक्षिण भारत में कृषि प्रधान गांव की छः विशेषताएं बताइए।

....
....
....
....
....
....

3) दक्खन में कृषि बस्तियों में औज़ारों और उपकरणों तथा सिंचाई सुविधाओं के बारे में पांच पंक्तियाँ लिखिए।

....
....
....
....
....

4) दक्खन में भूमि स्वामित्व के बारे में पांच पंक्तियाँ लिखिए।

....
....
....
....
....

29.5 राजस्व और अधिशेष वसूली

आय का मुख्य स्रोत भूमि राजस्व है। राज्य द्वारा भू-राजस्व की वसूली एक संगठित तंत्र के माध्यम से की जाती थी। इस भाग में हम भू-राजस्व और इसकी वसूली के बारे में चर्चा करेंगे।

29.5.1 कृषि से राजस्व

तमिल साहित्य में सामंतों द्वारा प्राप्त अंशदान का उल्लेख **इरै (irai)** और **तिरै (tirai)**, दो किस्मों के रूप में किया गया है। इरै अधिक नियमित अंशदान और तिरै, शुल्क-प्रतीत होता है। दुर्भाग्यवश हमारे पास तत्कालीन अभिलेखों से राजस्व वसूली की दर और तरीके के बारे में अधिक जानकारी नहीं है। राजस्व वसूली के लिए शासकों के भद्र और नम्र व्यवहार करने

की हिदायत दी जाती थी। इससे यह प्रतीत होता है कि किसानों से अपना हिस्सा लेने में प्राधिकारियों द्वारा जोर-जबरदस्ती और ज़्यादतियां की जाती थीं।

मानवाहनों के शासनकाल में दक्खन में राजस्व प्रणाली संभवतः अधिक नियमित थी, परन्तु इस संबंध में भी अधिक स्पष्ट ब्यौरे नहीं हैं। हम करों के कुछ नामों जैसे **कर**, **देय**, **मेय**, **भाग** के बारे में सुनते हैं।

इन शब्दों के असली महत्व या राज्य द्वारा वसूली गई राजस्व की राशि के बारे में कुछ मालूम नहीं है। बौद्ध संघों और ब्राहमणों को ग्रामदान में दान किए गए गाँवों का राजस्व भी शामिल था। ऐसे मामलों में कुछ छूटों का उल्लेख है। ये छूट निम्नलिखित थीं:

i) किसी प्रकार का शुल्क वसूली के लिए राजा के सैनिकों के प्रवेश के विरुद्ध;

ii) गांव से किसी भी वस्तु को अपने अधिकार में लेने के लिए शाही अधिकारियों के विरुद्ध।

इनसे यह स्पष्ट होता है कि:

- साधारणतया जब सैनिक गांव में आते थे तो उन्हें ग्रामवासियों को धन या वस्तु देनी पड़ती थी; अथवा
- सैनिकों को राजस्व वसूली का अधिकार मिला हुआ था।

ऐसा प्रतीत होता है कि सातवाहन क्षेत्र के ग्रामीण क्षेत्र **गोलमिक (Gaulmika)** के अधीन थे, जो एक छोटी सैन्य इकाई का प्रभारी था। जब बौद्ध मठों अथवा ब्राहमणों को भूमि दी जाती थी तो राज्य को यह गारंटी देनी पड़ती थी कि ग्रामीण क्षेत्रों में तैनात सैनिक उनके अधिकारों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे।

29.5.2 तमिल क्षेत्र में संसाधनों का अर्जन और वितरण के तरीके

उन लोगों तक संसाधन कैसे पहुंचे, जिन्हें उनकी आवश्यकता थी? दक्खन में सुगठित राज्य प्रणाली के अधीन नियम और प्रथाओं के अनुसार विनियोजन के तरीके विनियमित किए गए थे। आपनें इकाई 28 में पढ़ा है कि सुदूर दक्षिण में अभी नियमित राज्य प्रणाली विकसित होनी थी, इसलिए वहां संसाधनों के वितरण की कोई सुनियोजित प्रणाली नहीं थी।

तमिल क्षेत्र में कृषक बस्तियों में संसाधन वितरण के कई तरीके विद्यमान थे। यहां हम उपहार द्वारा पुनर्वितरण के महत्वपूर्ण तरीकों का वर्णन करेंगे। उपहार संभवतः संसाधन परिचालन का सबसे अधिक आम तरीका था। प्रत्येक उत्पादनकर्ता अपने उत्पादन का कुछ भाग उन व्यक्तियों को दे देता था, जो कार्य करते थे। बढ़िया भोजन अथवा वस्तु का उपहार पुनर्वितरण का साधारण रूप था। लूट-पाट और छापों से पहले और बाद में योद्धाओं को दावतें दी जाती थीं। गरीब गायक और नर्तकियां, जो सामंतों की प्रशंसा में गाते और नाचते थे, भरपेट भोजन और पहनने के वस्त्रों की चार में एक दरबार से दूसरे दरबार में भटकते रहते थे। कभी-कभी दावत के अलावा उपहार की वस्तुओं में आयातित बढ़िया शराब, रेशमी वस्त्र तथा स्वर्ण आभूषण भी दिए जाते थे। ब्राहमण पुजारियों और योद्धाओं को बहुधा अपनी सेवाओं के उपलक्ष्य में गांव और पशु उपहार में मिलते थे। प्राचीन तमिल क्षेत्र में ब्राहमणों को गांव दान में देने से ब्राहमण बस्तियों का आविर्भाव हुआ। समृद्ध और शक्तिशाली व्यक्तियों के तीन वर्गों द्वारा उपहार के माध्यम से पुनर्वितरण कार्य किया जाता था। ये तीन वर्ग थे **कृषक** बस्तियों के राजा **वेंतर (Vendar)**, छोटे सामंत **वेलीर (Velir)** और समृद्धशाली कृषक परिवार **वेल्लालर (Vellalar)**।

29.5.3 वसूली में ज्यादतियां

उपहारों के वितरण को संभव बनाने के लिए यह आवश्यक था कि केन्द्र में संसाधन एकत्र किए जाते थे। यह केन्द्र मुखिया का निवास स्थान होता था। केन्द्र से उपहारों का वितरण, पुनर्वितरण की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी। संसाधनों को एकत्र करने के लिए बहुधा **कृषक** क्षेत्र की लूट-पाट की जाती थी। अनाज और पशु लूटे जाते थे। लूट में जिस वस्तु को वे नहीं ले जा सकते थे, उसे वे नष्ट कर देते थे। किसानों की बस्तियों को जला दिया जाता था, शत्रुओं की फसलों को नष्ट कर दिया जाता था और समृद्ध बागानों को बंजर भूमि में बदल दिया जाता था; उन लुटेरों के दुष्कार्यों में से कुछ ये थे। पहाड़ी क्षेत्रों और चारागाहों के **मारवर (marava)** लड़ाकू को सामंतों द्वारा बस्तियां लूटने के काम में लाया जाता था। ऐसे लुटेरों के लूट के माल को मारवा लड़ाकुओं में पुनर्वितरित किया जाता था और पारम्परिक

धार्मिक अनुष्ठान के लिए उपहार और पारिश्रमिक स्वरूप ब्राह्मण पुजारियों को दिया जाता था। किसानों की असुरक्षित दुर्दशा और जिस प्रकार उन्हें आतंकित किया जाता था और उनका शोषण होता था, इसका प्रमाण **संगम** साहित्य के कई गीतों में मिलता है।

गरीबों और किसानों पर की गई इन सभी ज्यादतियों के बावजूद, युद्ध को प्रभावशाली उत्साहपूर्वक मनाया जाता था। इसे एक प्रथा का रूप दिया गया था। युद्ध पूजा का प्रचार उन योद्धाओं के साहस की प्रशंसा से किया जाता था, जिनका स्मारक पत्थर उपासना की वस्तु या पूजा की वस्तु बनाए गए थे। **पण (Pana)** गायक सामंतों और उसके सैनिकों के वीरोचित गुणगान करते थे। संसाधन की कमी के कारण लूट का माल हथियाना जरूरी था। कभी-कभी ज़्यादतियों के फलस्वरूत संसाधन नष्ट हो जाते थे। सामंत के स्तर पर पुनर्वितरण या तंत्र अपने आप में परस्पर विरोधी था।

बोध प्रश्न 3

1) निम्नलिखित पर सही (√) अथवा गलत (×) का निशान लगाइए:
   i) इरै और तिरै राजस्व की दो मदें थीं, जिन्हें नकद किया जाता था। ( )
   ii) **गोलमिक (gaulmikas)** सातवाहन के ग्रामीण प्रशासक थे। ( )
   iii) भाट और नृतक पशुओं और भूमि का उपहार पाने के लिए एक दरबार से दूसरे दरबार में घूमते रहते थे। ( )
   iv) प्राचीन तमिल क्षेत्र में लूट-पाट की कार्रवाई एक प्रथा बन गई थी। ( )
2) प्राचीन दक्षिण भारत में लूट-पाट युद्धों के बारे में पांच पंक्तियाँ लिखिए।

   ....
   ....
   ....
   ....
   ....

3) प्रारंभिक तमिल क्षेत्र में अधिशेष के विनियोजन में ज़्यादतियों के बारे में पांच पंक्तियाँ लिखिए।

   ....
   ....
   ....
   ....
   ....

29.6 सामाजिक संगठन

इस भाग में हम तमिलहम् और दक्खन के क्षेत्र में विभिन्न सामाजिक समूहों और प्रथाओं के बारे में पढ़ेंगे। आइए सबसे पहले तमिल क्षेत्र के बारे में चर्चा करें।

29.6.1 तमिल समाज

प्राचीन तमिलहम् में समाज का स्वरूप मूलतः आदिवासी था। उसमें नातेदारी संगठन, गणचिन्ह पूजा और जनजाति पूजा एवं प्रथाएं विद्यमान थीं। सभी तिणौं या आर्थिक क्षेत्रों में जनजाति रीति-रिवाज़ विद्यमान थे, परन्तु प्रमुखतया कृषि क्षेत्रों में धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगे। इन क्षेत्रों में सामाजिक संगठन जटिल हो रहे थे। यह धीरे-धीरे पुराने नातेदारी संबंधों के टूटने और वैदिक वर्ण अपनाने के कारण हो रहा था। सामाजिक वर्ग भेद या विभिन्न सामाजिक वर्गों के बीच असमानताएं उभर रहीं थीं और "उच्च" और "निम्न" के बीच बहुत अंतर हो गया। भूमिधारी **वेल्लालर** और **वेल्लाल** किसान कृषक बस्तियों में मूल उत्पादक वर्ग बन गए थे।

दस्तकारी विशेषज्ञता कृषि उत्पादन की केवल प्रारंभिक और पूरक थी। हम लोहारों (**कोल्लन**) और बढ़ई (**तच्चन**) के बारे में सुनते हैं। विस्तृत परिवार उनकी उत्पादन इकाई थी। बुनाई उनका अन्य व्यवसाय था।

ग्रामवासियों की धार्मिक पूजाएं और उपासना प्रथाएं पुराने आदिवासी धार्मिक अनुष्ठानों के अनुसार थी जिनसे धार्मिक अनुष्ठान वर्गों का होना आवश्यक था जैसे **वेलन** वेट्टुवन आदि। वे अध्यात्मिक तत्वों और उनके प्रबंध की देखभाल करते थे। परन्तु समाज ''पुजारी प्रधान'' नहीं था। वहां पर्याप्त अधिशेष था, जिसके फलस्वरूप व्यापारी वर्ग समृद्धिशाली । वे जिस वस्तु का व्यापार करते थे, उसके नाम से जाने जाते थे। इस प्रकार हम **उमणन** (नमक का व्यापारी), **कुलवाणिकन** (अनाज का व्यापारी), **अरूवैवाणिकन** (वस्त्रों का व्यापारी), **पोन्वाणिकन** (स्वर्ण व्यापारी) आदि के बारे में सुनते हैं। बाद में ये व्यापारी **वर्ण** व्यवस्था के अंतर्गत आ गए। उस समय तक वर्ण व्यवस्था का सुदूर दक्षिण में काफी प्रभाव हो गया था। तमिल व्याकरण की प्राचीनतम उपलब्ध कृति **तोलकाप्पियम** में यह वर्णन मिलता है कि तमिल समाज चार वर्णों में बंटा हुआ था। इस कृति के अनुसार, व्यापारी **वैश्य** वर्ग के थे। दूर दक्षिण में, विशेष कर मदुरै और तिरूनेलवेल्लि क्षेत्रों में पांड्य देश में इन व्यापा। कुछ असनातनी धार्मिक वर्गों से जुड़ा हुआ पाया गया है। उन्हें इस क्षेत्र के प्रारंभिक शिलालेखों में जैन और बौद्ध धर्म तपस्वियों के गुफा निवासदाता के रूप में वर्णित किया गया है। असनातनी सम्प्रदाय के योगियों की उपस्थिति से ऐसा प्रतीत होता है कि उस क्षेत्र में उनके कुछ अनुयायी थे।

यह स्वाभाविक है कि प्रमुख वर्गों ने **मरूतम** के **कृषक** क्षेत्रों में अपने केन्द्र इस कारण से स्थापित किए कि केवल वहां ही गैर-उत्पादनकर्ता वर्गों को आजीविका के लिए आवश्यक अधिशेष संसाधन उपलब्ध थे। कृषि क्षेत्र मरूतम के सामंतों ने यह दावा करना शुरू किया कि वे सूर्यवंश या चन्द्रवंश के वंशज हैं, जैसा कि उत्तर भारत के क्षत्रिय हैं।

सामंत कृषक बस्तियों में किसानों का शोषण करते थे और समीपवर्ती क्षेत्रों के **मरवा** वर्गों की सहायता से अधिशेष वसूल करते थे। वे बहुधा गांवों को लूटते थे। संगम कविताओं में नायकों के युद्ध और युद्धोचित गुणों का वर्णन है। पाण गायकों और **विरालि** नृतकों के कार्य नायकों और उनकी वीरता का बखान करना था। इस प्रकार, हम देखते हैं कि प्राचीन तमिलहम् के कृषक मरूतम क्षेत्र में समाज में प्राचीन जनजाति प्रथाओं और वैदिक आदर्शों तथा सिद्धांतों का सम्मिश्रण है।

29.6.2 दक्खन में समाज

दक्खन मे सभी तीनों धार्मिक व्यवस्थाओं अर्थात् सनातन धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म के काफी अनुयायी थे।

सातवाहन शासकों ने वैदिक कर्मकांड को प्रश्रय दिया। उदाहरण के लिए, सातवाहन परिवार की रानी, नागनिका कई वैदिक धार्मिक अनुष्ठान करती थी और वैदिक राज्यों में उल्लिखित उपहार देती थी। जैन धर्म के उस क्षेत्र में कुछ अनुयायी थे और इस अवधि में दिगम्बर सम्प्रदाय के कुछ प्रसिद्ध उपदेशक भी हुए। कोडकुंडाचार्य, मूल संघ के संस्थापक, जो दक्षिण में लोकप्रिय हुए, इसी क्षेत्र में रहते थे। बौद्ध धर्म लोकप्रिय आंदोलन के रूप में फैला और इस धर्म में बहुत बड़ी संख्या में इसके अनुयायी बने। इनमें अधिकांश व्यापारी और दस्तकार थे। बौध धर्म के महायान सम्प्रदाय ने भी काफी लोकप्रियता प्राप्त की। शासक वर्ग; धनी व्यक्तियों और कामगारों ने विहारों और स्पूतों को उदारतापूर्वक दान दिया। महायान मत के भाष्याकार आचार्य नागार्जुन के दक्षिण में बहुत ख्याति अर्जित की। कुछ विदेशी तत्वों जैसे यवनों, शकों और पल्लवों ने भी या तो वैदिक धर्म या फिर बौद्ध धर्म अपनाया। इस प्रकार इस काल में समाज में विभिन्न सांस्कृतिक तत्वों का सम्मिश्रण देखा गया है। विदेशी वंशों के शासक अपने शिलालेखों में प्राकृत का प्रयोग करते थे और बाद में संस्कृत का प्रयोग करने लगे तथा यहां तक कि भारतीय नाम और परिवार भी ग्रहण किए।

समाज का चार वर्गों में विभाजन का सिद्धांत दक्खन में सर्वविदित था। लोगों को उनके व्यवसाय के अनुसार संबोधित करने की प्रथा लोक प्रचलित थी। हलक (हलवाहा), गोलिक (गड़रिया), वर्धकी (बढ़ई), कोलिक (बुनकर) तिलपिसक (तेली) और कमार (धातुकर्मी) कुछ ऐसे ही व्यावसायिक स्तर थे। जाति अनुशासन बहुत ही लचीले थे। यह विदेशी तत्वों के साथ सम्मिश्रण के कारण हुआ। संयुक्त परिवार प्रणाली समाज की सामान्य विशेषता थी। सामाजिक जीवन में पुरुष का प्रभुत्व स्पष्टतः प्रमाणित था। कभी-कभी महिलाएं अपने पति

29.7 नए तत्व और सामाजिक परिवर्तन

दक्खन में पहली शताब्दी ई. के दौरान कृषिक व्यवस्था में कुछ नए तत्व पहली बार दिखाई दिए। सातवाहन और क्षत्रपा शासकों ने धार्मिक लाभार्थियों जैसे बौध भिक्षुओं और ब्राह्मणों को भूमि-खंड और यहां तक कि पूरे-पूरे गांव दान में दिए। भूमि के साथ-साथ, गांव से राजस्व वसूल करने के अधिकार तथा खदानों पर अधिकार जैसे कुछ आर्थिक विशेषाधिकार भी अनुदानग्राहियों को हस्तांतरित किए गए। ऐसा प्रतीत होता है कि भूमि दान में किसानों पर कुछ वित्तीय और प्रशासनिक अधिकार भी शामिल थे। शाही अनुदान से ग्रामवासी प्रशासनिक अधिकारियों और सैनिकों को ग्रामों में उनके दौरे के समय दिए जाने वाले अनिवार्य भुगतान से मुक्त किए गए। व्यक्तियों को दिए गए पिछले कई अनुदान अस्थायी थे। परन्तु अब उन्हें स्थायी बनाने की पृवत्ति उभरने लगी थी।

शासकों द्वारा धार्मिक लाभार्थियों को स्वीकृत विशेषाधिकार और छूट तथा भूमि पर स्थायी अधिकार ने अत्यन्त शक्तिशाली स्थिति प्रदान की। कृषि क्षेत्र में ये नए विकास कार्यों से भूमि व्यवस्था तथा अर्थव्यवस्था में गंभीर और दूरगामी परिवर्तन आए।

पहला, धार्मिक लाभार्थियों को नई आर्थिक और प्रशासनिक विशेषाधिकार सहित जो गांव मिले थे, उन गांवों में वे शक्तिशाली प्राधिकारी बन गए और वे उन पर अध्यात्मिक नियंत्रण भी रखते थे।

दूसरा, भिक्षुओं और पुजारियों को गांव देने से गैर-काश्तकार भूमि स्वामियों की एक श्रेणी बनी। बौद्ध भिक्षु और ब्राह्मण पुजारी स्वयं खेती नहीं करते थे। उन्हें अपनी भूमि पर काम करने के लिए अन्य लोगों को लगाना पड़ता था। इस प्रकार असली खेतिहर भूमि और उसके उत्पाद से पृथक हो गया।

तीसरा, इस किस्म का निजी स्वामित्व पहले समाप्त किया गया। वनों, चारागाहों, मत्स्य क्षेत्रों और जलाशयों पर सामूहिक अधिकार था।

चौथा, लाभार्थियों का अधिकार न केवल भूमि पर ही था, बल्कि उन किसानों पर भी था जो खेती में काम करते थे। इसके फलस्वरूप किसानों के अधिकार क्षीण हो गए और वे दास बन गए।

दक्खन में विद्यमान ये परिवर्तन अनुवर्ती शताब्दियों में अन्यत्र भी प्रचलित हुए। अंत में, भूमि देने की प्रथा से अन्य विशेषताओं के साथ-साथ ऐसी सामाजिक व्यवस्था बनी जिसे कुछ विद्वानों ने "भारतीय सामंतवाद" की संज्ञा दी है।

बोध प्रश्न 4

1) दिए गए स्थान में सही (√) और गलत (×) का निशान लगाइए:
   - क) चारागाहरों में सामाजिक जटिलता दिखाई देने लगी। ( )
   - ख) तोलकप्पियम के अनुसार, व्यापारी क्षत्रिय वर्ग थे। ( )
   - ग) मदुरै और तिरूनेलवेल्लि क्षेत्रों में जैन और बौद्धों जैसे असनातनी सम्प्रदायों के योगियों को गुफा निवास दान में दिए गए। ( )
   - घ) कोंड कुंडाचार्य दिगम्बर सम्प्रदाय के महासंघ के संस्थापक थे। ( )
   - च) समाज का चार वर्णों में विभाजन का मत दक्खन में सुविदित था। ( )

2) तमिल क्षेत्र में दस्तकारी वर्गों के बारे में तीन पंक्तियाँ लिखिए।

   ....

   ....

   ....

3) दक्खन में धार्मिक वर्गों को सातवाहन भूमिदान के बारे में सात पंक्तियाँ लिखिए।

   ....

....

....

....

....

....

4) बौद्ध भिक्षुओं और ब्राह्मण पुजारियों की भूमि दान के परिणामों के बारे में एक पैरा लिखिए।

....

....

....

....

....

29.8 सारांश

इस इकाई में हमने प्रायद्वीपीय भारत के कृषि बस्तियों और कृषक समाज के कई पहलुओं पर चर्चा की है। इस इकाई में आपने निम्नलिखित के बारे में पढ़ा है:

- तमिल क्षेत्र के विभिन्न उपक्षेत्रों के आर्थिक कार्यकलाप
- कृषि बस्तियों का प्रसार
- भूमि के स्वामित्व की समस्या
- संसाधनों का संग्रहण और वितरण
- तमिल क्षेत्र और दक्खन में सामाजिक संगठन की मुख्य विशेषताएं
- वे नए परिवर्तन जो ईस्वी सदी की शुरू की शताब्दियों में कृषि व्यवस्था में लागू किए गए थे और इन तत्वों द्वारा लाए गए परिवर्तन।

29.9 शब्दावली

पाना: तमिल क्षेत्र के प्राचीन गायक, जो सामंतों की प्रशंसा में गीत गाते थे।

कर्तन और दहन खेती: कृषि का अपरिष्कृत तरीका। पहाड़ी ढलानों में पेड़ों और झाड़ियों को काटा जाता है और उन्हें जलाया जाता है। इस प्रकार, ज़मीन तैयार की जाती है और बीज बोया जाता है।

झूम खेती: खेती का एक तरीका, जिसमें खेती का स्थान समय-समय पर बदला जाता है। एक ही स्थान को बार-बार उपयोग करके उनकी उर्वरता को नष्ट होने से बचाने के लिए ऐसा किया जाता है।

तिनाई: प्रारंभिक तमिल क्षेत्र में भूमि के भू-आकृतिक विभाजन के लिए प्रयुक्त प्रजातिगत शब्द।

29.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) (√) अथवा (×) का निशान लगाना:

क) √

ख) ×

ग) √

घ) √

2) आपको अपने उत्तर में कुरिंजी, मुल्लै आदि के बारे में लिखना चाहिए। भाग 29.2 देखिए।

3) आपको चारागाहों और पशु-पालन के बारे में लिखना चाहिए। भाग 29.2 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) i) ×

ii) ×

iii) ×

iv) ×

v) ×

2) भाग 29.3 देखिए।

3) आपको हल-फाल, दराती, फावड़ा आदि जैसे औज़ारों तथा तालाब एवं कुंए से सिचाई के बारे में लिखना चाहिए। उप-भाग 29.3.2 देखिए।

4) आपको वेल्लाला, गहपति आदि और उनके अधिकारों के बारे में लिखना चाहिए। भाग 29.4 देखिए।

बोध प्रश्न 3

1) i) ×

ii) √

iii) ×

iv) √

2) आपको कृषिक क्षेत्रों पर आक्रमण के बारे में लिखना चाहिए। भाग 29.5.3 देखिए।

3) आपको किसानों पर हुई ज़्यादतियों के बारे में लिखना चाहिए। भाग 29.5.3 देखिए।

बोध प्रश्न 4

1) क) ×

ख) ×

ग) √

घ) √

च) √

2) भाग 29.6 का दूसरा पैरा देखिए।

3) आपको धार्मिक तथा अन्य प्रयोजनों के लिए दान में दी गई भूमि और गाँवों के बारे में लिखना चाहिए। भाग 29.7 का पहला पैरा देखिए।

4) आपको धार्मिक लाभार्थियों के दान द्वारा कृषि क्षेत्र में आए परिवर्तनों मे बारे में लिखना चाहिए। भाग 2.7 के दूसरे पैरे से देखिए।

इकाई 30 व्यापार और शहरी केन्द्रों का विस्तार

इकाई की रूपरेखा

30.0 उद्देश्य
30.1 प्रस्तावना
30.2 व्यापार के प्रकार
  30.2.1 स्थानीय व्यापार
  30.2.2 दूरस्थ स्थल मार्ग व्यापार
  30.2.3 दूरस्थ समुद्री मार्ग व्यापार
30.3 वाणिज्यिक संगठनों के पहलू
30.4 विनिमय सुविधाएं
30.5 विनिमय के माध्यम के रूप में सिक्के
  30.5.1 स्थानीय सिक्के
  30.5.2 रोमन सिक्के
30.6 व्यापार से राजस्व
30.7 तोल और माप
30.8 शहरी केन्द्र
30.9 समाज पर व्यापार और शहरी केन्द्रों का प्रभाव
30.10 सारांश
30.11 शब्दावली
30.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

30.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य 200 ई. पू. से 400 ई. तक दक्षिण भारत में व्यापार और शहरी केन्द्रों के विस्तार के विभिन्न आयामों पर संक्षेप में चर्चा करना है। इस इकाई में सातवाहन राज्य और चेरों, चोलों और पांड्याओं के तथा कम महत्वपूर्ण सामंतों के अधीन सुदूर दक्षिण के क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित करना है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- विनिमय का स्वरूप जिससे प्रारंभिक प्रायद्वीपीय भारत में विभिन्न स्तरों पर व्यापार का स्वरूप निर्धारित हुआ;
- परिवहन और संचार सुविधाओं;
- व्यापार में विनिमय के माध्यम के रूप में सिक्के;
- व्यापार में राजनीतिक प्राधिकारियों के हितों;
- दक्षिण भारत में शहरी केन्द्रों; और
- प्रारंभिक प्रायद्वीपीय भारत के समाज पर व्यापार और शहरीकरण के प्रभाव के बारे में जान सकेंगे।

30.1 प्रस्तावना

इकाई 29 में आपने कृषिक बस्तियों और कृषिक समाज के बारे में पढ़ा है। इस इकाई में हम व्यापार और शहरीकरण के रूप में अर्थव्यवस्था के अन्य ऐसे पहलुओं पर चर्चा करेंगे जिनसे प्रारंभिक प्रायद्वीपीय भारत के समाज में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने में सहायता मिली।

प्रायद्वीपीय भारत में, व्यापार की वृद्धि और शहरी केन्द्रों का उद्भव कोई पृथक घटना नहीं थी, बल्कि उन अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तनों से भी बहुत अधिक जुड़े हुए थे जो उस समय क्षेत्र में हो रहे थे। वे परिवर्तन निम्नलिखित कारकों से उत्पन्न हुए थे :

- प्रमुख नदी घाटियों में कृषि की प्रगति द्वारा उत्पन्न प्रायद्वीपीय भारत के विभिन्न भागों में समाज के अंदर परिवर्तन। कुछ हद तक यह महाद्वीपीय महापाषाणकालीन संस्कृति (देखिए इकाई 29) की लौह प्रौद्योगिकी तथा सिंचाई से जुड़ी हुई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ हिस्सों में कृषि उत्पाद अधिशेष मात्रा में उपलब्ध थे।

- प्रायद्वीपीय भारत में मौर्य-राज्य के विस्तार के फलस्वरूप उत्तर के साथ अधिक सम्पर्क बना तथा व्यापारियों, सौदागरों तथा अन्य व्यक्तियों का अधिक आवागमन हुआ। इसका प्रमाण **अर्थशास्त्र** में दक्षिणी मार्ग (**दक्षिण पथ**) के लाभों के वर्णन मिलते हैं। इसके अलावा, समुद्र तट के साथ सम्पर्क भी थे। इस प्रकार प्रायद्वीपीय भारत में पहले की विनिमय प्रणाली और नेटवर्क में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए।

- पहली सदी ई.पू. के आसपास पश्चिम के रोमन विश्व में भारतीय सामान की मांग बढ़ी और इसमें एक और कारण जुड़ा जिससे वहां के सौदागर तथा जहाज़ प्रायद्वीपीय भारत के निकटतम सम्पर्क में आए। इससे व्यापार और शहरी केन्द्रों की वृद्धि को प्रोत्साहन मिला।

- इन सभी में फिर दस्तकारी विशेषज्ञता या दस्तकारी की मदों के उत्पादन में दक्षता की प्रगति जुड़ी, जिसके फलस्वरूप स्थानीय विनिमय के लिए या दूरस्थ व्यापार के लिए समाज के ऊंचे सदस्यों की आवश्यकता हुई। उदाहरण के लिए, विभिन्न प्रकार के मिट्टी के बर्तन, मनके बनाना, शीशे का काम, वस्त्रों की बुनाई – इन सभी के लिए भिन्न-भिन्न दक्षता की आवश्यकता हुई।

फिर भी यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि इन परिवर्तनों द्वारा भारत का प्रत्येक भाग समान रूप से प्रभावित नहीं हुआ। कुछ ऐसे स्थान थे, या ऐसे स्थान बने रहे जिनमें पिछली संस्कृति ज्यों की त्यों बनी रही। दूसरा, दक्खन और सुदूर दक्षिण में दक्खन के भिन्न-भिन्न भागों में परिवर्तन अधिक सुस्पष्ट थे। शुरू में सुदूर दक्षिण में परिवर्तन धीरे-धीरे और सीमित क्षेत्र में हुए।

व्यापार और शहरी केन्द्रों की वृद्धि के विभिन्न पहलुओं पर निम्नलिखित शीर्षकों के अधीन अध्ययन किया जा सकता है :

- स्थानीय लेन-देन और दूरस्थ व्यापार में विनिमय तंत्र,
- श्रेणियों का संगठन,
- परिवहन, भंडारण और नौवहन,
- विनिमय का माध्यम,
- व्यापार से राजस्व,
- शहरी केन्द्र, और
- व्यापार तथा शहरीकरण द्वारा उत्पन्न आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन।

30.2 व्यापार के प्रकार

आपने विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों और उनके उत्पादों के बारे में पढ़ा है। प्रत्येक क्षेत्र को अन्य क्षेत्रों की वस्तुओं से किसी वस्तु का विनिमय करना होता था। साथ ही इनमें से प्रत्येक क्षेत्र में किसी न किसी ऐसी वस्तु की कमी होती थी जो उनके समाज के लिए आवश्यक थी। कृषि क्षेत्र खाद्यान्न और गन्ना पैदा करते थे, किन्तु नमक और मछली के लिए उन्हें तटीय क्षेत्रों पर निर्भर रहना पड़ता था। तटीय क्षेत्रों में नमक और मछली का उत्पादन बहुत अधिक मात्रा में होता था परन्तु चावल और प्रमुख भोजन धान उत्पादक क्षेत्रों से लाना पड़ता था। पहाड़ी क्षेत्र इमारती लकड़ी और मसालों आदि में समृद्ध थे परन्तु खाद्यान्नों और नमक के लिए उन्हें कृषि क्षेत्रों तथा तटीय क्षेत्रों पर निर्भर रहना पड़ता था। इस प्रकार की पारस्परिक निर्भरता का परिणाम यह हुआ कि विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में विनिमय संबंध उभरे। दक्षिण में उपलब्ध कुछ वस्तुओं की मांग उपमहाद्वीप के अन्य क्षेत्रों में हुई और यहां तक इन वस्तुओं की मांग अन्य देशों तथा संस्कृतियों में भी हुई। उन सुदूरवर्ती देशों द्वारा स्थल मार्ग या समुद्री मार्ग से सम्पर्क बनाए गए और आवश्यक वस्तुएं प्राप्त की गई। इस प्रकार, हम व्यापार के तीन स्तरों की पहचान कर सकते हैं :

i) स्थानीय व्यापार

ii) दूरस्थ स्थल मार्ग व्यापार

iii) दूरस्थ समुद्री मार्ग व्यापार

30.2.1 स्थानीय व्यापार

स्थानीय विनिमय के संदर्भ में लेन-देन का सबसे सामान्य तरीका वस्तु विनिमय था। वस्तु विनिमय की अधिकांश वस्तुएं तत्कालिक उपभोग की थीं। सुदूर दक्षिण में वस्तु विनिमय की नियमित वस्तुएं नमक, मछली, धान, दूध उत्पाद, जड़ें, मृग मांस, शहद और ताडी थी। नमक का विनिमय धान से होता था, धान का विनिमय दूध, दही और घी से होता था, मछली तथा शराब के लिए शहद दिया जाता था, मृग मांस और ताड़ी के लिए चावल पपड़ियां और गन्ना दिया जाता था। अत्यन्त दुर्लभ, विलासिता की वस्तुएं जैसे मोती तथा हाथी दांत भी वस्तु विनिमय की मदें थीं। वे भी उपभोग की वस्तुओं जैसे चावल, मछली, ताड़ी आदि के लिए दी जाती थीं।

तमिल दक्षिण में वस्तु विनिमय प्रणाली में ऋण लेने की प्रथा प्रचलित नहीं थी। किसी वस्तु की निश्चित राशि का ऋण लिया जा सकता था और बाद में उसी प्रकार तथा उसी मात्रा में वही वस्तु लौटा दी जाती थी। यह प्रथा **कुरीटिरपई** कहलाती थी।

विनिमय दर निश्चित नहीं थी। वस्तुओं की कीमत केवल मोल-तोल से ही तय की जाती थी। धान और नमक केवल दो वस्तुएं ही ऐसी थीं जिनके लिए सुदूर दक्षिण की वस्तु विनिमय प्रणाली में निश्चित विनिमय दर थी। धान की समान मात्रा के बराबर नमक दिया जाता था।

सातवाहन शासन के अधीन दक्खन में सिक्कों का आम प्रचलन था। इसपर भी वस्तु विनिमय का प्रचलन जारी था। मिट्टी के बर्तन, पान, खिलौने और ट्रिंक्लेट जैसी दस्तकारी उत्पाद ग्रामीण क्षेत्रों में विनिमय वस्तुएं थीं।
सुदूर दक्षिण की वस्तु विनिमय प्रणाली में निम्नलिखित विशेषताएं ध्यान देने योग्य हैं :

i) विनिमय की अधिकांश मदें उपभोग की वस्तुएं थीं।

ii) विनिमय लाभोन्मुखी नहीं था।

iii) उत्पादन की तरह वितरण भी आजीविका का साधन था।

30.2.2 दूरस्थ स्थल मार्ग व्यापार

भारत के उत्तरी और दक्षिणी भाग के बीच विभिन्न क्षेत्रों में सम्पर्क यदि काफी प्राचीन नहीं रहा हो तब भी वह कम से कम चौथी शताब्दी ई.पू. से तो हो ही सकता है। विंध्याचल पर्वत श्रेणियों के दक्षिण में उस क्षेत्र के जो भी संसाधन थे, उत्तर में ज्ञात थे। प्राचीन बौद्ध साहित्य में जिस मार्ग का हवाला मिलता है, वह गंगा की घाटी से गोदावरी की घाटी में जाता था। यह दक्षिण पथ के नाम से जाना जाता था। अर्थशास्त्र के रचियता कौटिल्य ने इस दक्षिणी मार्ग के लाभों के बारे में लिखा है। कौटिल्य के अनुसार, दक्षिण राज्य क्षेत्रों में शंखों, हीरों, जवाहरातों, रत्न-मणियों और स्वर्ण विपुल मात्रा में था। इसके अलावा, ये मार्ग उन क्षेत्रों से होकर जाता था, जो समृद्ध खनिज पदार्थों और मूल्यवान वस्तुओं से भरपूर था। उनके कथनानुसार उस समय इस मार्ग से बहुत से लोगों का बार-बार आना-जाना था। वह मार्ग दक्षिण के प्रतिस्थान नगर सहित वहां के बहुत से केन्द्रों से होकर जाता था। प्रतिस्थान नगर बाद में सातवाहन राजाओं की राजधानी बनी थी। इस उत्तर-दक्षिण की अधिकांश मदें विलास की वस्तुएं थीं जैसे मोती, रत्नमणि और स्वर्ण। उत्तर और दक्षिण के बीच उत्तम किस्मों के वस्त्रों का व्यापार भी होता था। संभवतः श्रेष्ठ कोटि का रेशम कलिंग से आता था। इस महीन रेशम का नाम **कलिंग** था, स्पष्ट है कि इस रेशम का उस स्थान के नाम पर था, जहां इसका उत्पादन होता था। वह एक ऐसी मद थी, जिसे तमिल के सामंत पसंद करते थे। जो भाट, सामंतों की प्रशंसा का गुणगान करते थे, उन्हें बेशकीमती उपहार के रूप में कलिंग रेशम मिलता था। उत्तर कृष्ण मृद्भांड (एन.बी.पी.) नाम के सुन्दर किस्म के मिट्टी के बर्तन सुदूर दक्षिण में लोकप्रिय थे। पुरातत्वविदों ने खुदाई में पांड्या वंश के प्रारंभ के राज्यों में कुछ उत्तर कृष्ण मृद्भांडों को निकाला है।

उपर्युक्त मदों के अलावा, दक्षिण में मिट्टी के टूटे बर्तनों और मसालों की कुछ मदें भी मिली हैं। इनमें जटा मांसी और मालावथुम (मरहम बनाने के लिए जड़ी-बूटी) भी शामिल थे। इन मदों को पश्चिमी देशों में जहाज़ से ले जाया जाता था।

उत्तरी भारत के व्यापारी बहुत बड़ी मात्रा में चांदी के आहत सिक्से भी लाते थे। दक्षिण के भिन्न-भिन्न स्थानों से खुदाई के दौरान बहुत बड़ी मात्रा में ये सिक्के पाए गए। ये उत्तर और दक्षिण के बीच वाणिज्यिक सम्पर्क के प्रमाण हैं। उत्तर भारत के साथ दूरस्थ व्यापार अधिकतर विलास की वस्तुओं का होता था और इस व्यापार का लाभ केवल शासक वर्ग और उनके व्यक्तियों को ही होता था।

30.2.3 दूरस्थ समुद्री मार्ग व्यापार

भारतीय वस्तुएं जैसे मसाले, रत्न-मणियों, इमारती लकड़ी, हाथी-दांत और कई अन्य वस्तुओं की मांग पश्चिमी देशों में बहुत अधिक थी। इन वस्तुओं का मुख्य स्रोत दक्षिण भारत था। प्रारंभिक काल से ये वस्तुएं पश्चिमी देशों को समुद्री मार्ग से जाती थीं। रोमन विश्व से सीधा व्यापार था, इसमें बहुत बड़े पैमाने पर लेन-देन होता था और इससे लाभ भी बहुत ज्यादा होता था। हमारे पास इसके प्रमाण लगभग पहली शताब्दी ई.पू. से हैं और यह प्रायद्वीपीय भारत की अर्थव्यवस्था तथा समाज के लिए बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इस प्रायद्वीपीय भारत से रोमन के वाणिज्यिक सम्पर्क की दो अवस्थाओं का उल्लेख करेंगे।

i) प्रथम अवस्था में, बिचौलिए के रूप में अरब देश।

ii) दूसरी अवस्था में, मानसूनी हवाओं के ज्ञान के फलस्वरूप सीधा सम्पर्क स्थापित किया गया था।

काफी समय तक अरब सागर में नौवहन तट के साथ-साथ होता था। यह बहुत कठिन और खर्चीला था। अरब देशों ने ईस्वी सदी शुरू होने से पहले समुद्र को मुख्य मार्ग बनाते हुए भारत के साथ वाणिज्यिक संबंध बना लिए थे। अरब देशों की भौगोलिक स्थिति पूरब पश्चिम के व्यापार में उनकी एकाधिकार की स्थिति बनाने के लिए बहुत सुविधाजनक थी। उन्हें अरब सागर में पवन प्रणालियों का भी कुछ ज्ञान था उन्होंने इसे व्यापार रहस्य के रूप में गोपनीय रखा था। इस प्रकार, अरब देशों ने बिचौलिए का काम किया तथा प्रायद्वीपीय भारत से व्यापार में काफी लाभ अर्जित किया था।

मानसूनी हवाओं की "खोज" से जिसका श्रेय हिप्पालुस नाम के नाविक को है, रोमनों द्वारा भारत के साथ सीधा संबंध स्थापित हुआ। इससे रोमन और प्रायद्वीप भारत के बीच व्यापार में वृद्धि का सूत्रपात हुआ। रोमन अपना सामान भारतीय बंदरगाहों में लाते थे जिनमें कच्चा माल और तैयार उत्पाद, दोनों होते थे। कच्चे माल में तांबा, टीन, सीसा, पुखराज, चकमक, शीशा (मनका बनाने के लिए कुछ सामग्री के रूप में) होता था। तैयार उत्पादों में उत्तम कोटि की शराब, सुंदर बनावट के वस्त्र, मनमोहन आभूषण, स्वर्ण ओर चांदी के सिक्के तथा भिन्न-भिन्न किस्मों के श्रेष्ठ मिट्टी के बर्तन होते थे।

रोमनों द्वारा बहुत बड़ी मात्रा में प्रायद्वीपीय भारत से पश्चिमी देशों को वस्तुएं जहाज़ में लादी जाती थी। उन्हें हम निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं :

i) मसाले और औषधीय जड़ी-बूटियां जैसे जट मांसा, मालबाथरूम सिनबार।

ii) मूल्यवान रत्न, अल्प मूल्य रत्न जैसे बेरिल, ऐगेट (गोमेद), कर्नीलियन, जैस्पर और ओनीक्स तथा शंख. मोती एवं हाथी-दांत भी।

iii) इमारती लकड़ी जैसे तेन्दु, सागौन, चंदन की लकड़ी, बांस,

iv) रंगीन सूती वस्त्रों और मलमल की वस्तुएं तथा नील एवं लाख जैसी रंजक सामग्री।

निर्यात की उपर्युक्त वस्तुओं में मनके और सूती वस्त्र तैयार माल होते थे।

भारतीय माल के लिए रोमन अधिकतर सोना देते थे। निर्यात की अधिकाश वस्तुएं स्थानीय रूप से उपलब्ध थीं और भारतीय व्यापारियों द्वारा स्वयं ही दक्खन तथा दक्षिण भारत में सौदे एकत्रित किए जाते थे। उन्हें बंदरगाहों तक लाने के लिए वैगनों और पैकटों में भारवाही पशुओं को काम में लाया जाता था।

यद्यपि दक्खन तथा दक्षिण भारत में भारतीय समुद्री व्यापारी थे परंतु ज्यादातर विदेशी समुद्री व्यापारी ही पश्चिमी देशों को सामान भेजते थे।

दक्षिण भारत के व्यापारिक संबंध श्रीलंका और दक्षिण-पूर्व एशिया से थे। इस व्यापार की महत्वपूर्ण वस्तुएं कुछ मसाले, कैम्फर और चंदन की लकड़ी थी।

संभवतः तमिल मूल के व्यापारी इस व्यापार में पहल करने वाले थे। श्रीलंका के व्यापारी भी तमिलहम् आते थे। तमिल ब्राह्मी अक्षरों के शिलालेखों में उनका उल्लेख है जो ईलम (श्रीलंका) से आए थे। परन्तु इस व्यापार के विस्तृत ब्यौरे ज्ञात नहीं हैं।

30.3 वाणिज्यिक संगठनों के पहलू

बहुधा उत्पादक भी थोड़ा-बहुत स्थानीय व्यापार करते थे।

मछली पकड़ने और नमक बनाने का काम पूर्णतः परावटा समुदाय द्वारा किया जाता था। ये समुदाय नेयटाल (तटीय) प्रदेश में रहते थे। इसका उल्लेख संग क्षेत्र में किया गया है और इस प्रकार वे अपना सम्पूर्ण समय इन कार्यों में लगाते थे। इसलिए मछली और नमक के वितरण में भिन्न-भिन्न तरीके अपनाए गए थे।

मछुआरे परिवारों की महिलाओं द्वारा मछलियाँ समुद्र तट के निकटवर्ती क्षेत्रों में ले जाई जाती थीं। वे ग्रामीण मेलों और अन्य ग्रार्मीण समागम के स्थानों में दिखाई देती थीं। नमक अनिवार्य वस्तु होने के कारण इसकी मांग सर्वत्र थी। नमक के वितरण का काम अलग दल करता था। नमक के व्यापारियों को तमिलम् में उमाना के रूप में जाना जाता था।

तटीय क्षेत्रों और निकटवर्ती ग्रामों में उमाना हॉकर लड़कियां अपने सिर में नमक की गठरियां ले जाती थीं और मुख्य रूप से धान के बदले इसे देती थीं।

भीतरी ग्रामीण क्षेत्रों में नमक उमाना ले जाते थे। नमक के बड़े-बड़े थैले गाड़ियों में ले जाए जाते थे, जिन्हें बैल अथवा गधे खींचते थे। नमक के व्यापारी बड़े-बड़े झुंडों में जाते थे। नमक के ये कारवां उमानवुथ कहलाते थे। वे नमक को स्थानीय उत्पादों के बदले देते थे। इस प्रकार, उमानवुथ क्षेत्र के विभिन्न भागों से सौदे की वस्तुएं एकत्रित कर्ता के रूप में कार्य करते थे।

उमाना अपने परिवार के साथ कारवां में जाते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि परिवार के सदस्यों के अलावा, अन्य कोई संगठन नमक के व्यापारी के रूप में नहीं था, नमक व्यापारियों के अलावा, अनाज (कूलावानेकन), कपड़े (अरूवैवानिकन), स्वर्ण (पोन वनिकन), चीनी (पानीटा वनिकन) के व्यापारी थे। इनका वर्णन कुछ योगियों के निवास स्थान दाता के रूप में कुछ प्राचीन गुफाओं के शिलालेखों में मिलता है। इससे यह ज्ञात होता है कि वे धनाढ्य थे। उनके व्यापार और संगठन के बारे में कुछ ज्ञान नहीं है। सुदूर दक्षिण में तिरुवेल्लारी के व्यापारियों के संगठन का एक शिलालेख में उल्लेख है।

तिरुवेल्लारी में संगठन के सदस्यों का वर्णन निकामट्टार के रूप में किया गया है, जिसका अर्थ निगम, संघ का सदस्य है।

तमिलम् में व्यापारियों का संगठन एक दुर्लभ बात है। परन्तु दक्खन में व्यापारियों का संघ अथवा एसोसिएशन एक नियमित घटना है। वहां कई कस्बे थे और प्रत्येक कस्बे का संभवतः संघ या निगम होता था। प्रत्येक संघ का एक मुखिया (सेट्टी) था और उसका कार्यालय होता था। व्यापारियों का संघ बैंक के रूप में काम करता था। यह जमा राशि लेता था और धन बाहर कर्ज भी देता था। बुनकरों, कुम्हारों, तेलियों, बांस का काम करने वालों, ठठेरों आदि के संघ थे। इस बात की जानकारी दक्खन के शिलालेखों में मिलती है। परिवार इकाई की अपेक्षा कार्यकारी इकाई के रूप में संघ अधिक सक्षम था। एकता की शक्ति के अलावा, संघ अपने सदस्यों को वित्तीय सहायता सहित सभी प्रकार की सहायता देता था। इसके अलावा, प्रत्येक सदस्य को ग्राहक ढूंढने की जिम्मेदारी से भी राहत मिलती थी।

इस प्रकार, सातवाहन के अधीन राज्य क्षेत्र में व्यापार के संगठन की प्रणाली अपेक्षाकृत उन्नत थी।

बोध प्रश्न 1

1) प्राचीन दक्षिण भारत में वस्तु विनिमय प्रणाली की तीन विशेषताएं बताइए।

....

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित कथनों में सही (√) या गलत (×) का निशान लगाइए:

i) वस्तु विनियम की अधिकांश मदें विलासिता की थीं। ( )

ii) ''कुरिएटिरप्पई'' का अर्थ वह वस्तु विनिमय है जिसमें किसी वस्तु की निश्चित मात्रा ऋण में ली जाती है और बाद में उसी रूप में तथा उसी मात्रा में वापस की जाती है। ( )

iii) कौटिल्य ने सोचा कि दक्षिणी मार्ग श्रेष्ठ था, क्योंकि यह अन्य मार्गों की अपेक्षा कम खतरनाक था। ( )

iv) दक्षिण भारत पश्चिमी देशों को केवल कच्चे माल का निर्यात करता था और पश्चिमी देशों से तैयार माल का आयात करता था। ( )

v) दक्खन में व्यापारी संघ बैंक के रूप में काम करते थे, जो जमाराशि लेते थे और ऋण पर धन देते थे। ( )

2) तमिलहम में नमक कारवां पर तीन पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

4) दक्खन व्यापारी संगठनों के बारे में पाच पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

30.4 विनिमय सुविधाएं

लम्बी दूरी के व्यापार में परिवहन, भंडारण और नौवहन की सुविधाएं, विशेष रूप से, प्रासंगिक हैं जिसमें बहुत बड़े पैमाने में वस्तुओं को ले जाने की समस्या होती है। सुदूर दक्षिण में मिर्च, धान और नमक को ले जाने की समस्या थी जिन्हें बहुत बड़ी मात्रा में ले जाना होता था। पश्चिमी देशों से पश्चिमी दक्खन में इमारती लकड़ी की भी बहुत भारी मांग थी। भारवाही पशु और ठेले अंतर्देशीय परिवहन के लिए प्रयुक्त किए जाते थे।

तमिलम् में कई रास्ते थे, जो नदी घाटियों में भीतरी बस्तियों, बंदरगाहों और राजधानियों को जोड़ते थे। ऐसा ही एक मार्ग कावेरी की घाटी के पश्चिमी क्षेत्र से चोल बंदरगाह कावेरी-पुम्पट्टिनम् को जाता था। एक अन्य मार्ग पश्चिमी पहाड़ी क्षेत्र से कांचीपुरम् को जाता था। कांचीपुरम् स्थानीय सामंत की राजधानी थी और पश्चिमी तट का प्रसिद्ध ''नगर'' था।

नमक कारवां और अन्य व्यापारी ऐसे यात्री थे जो इन मार्गों से जाते थे। कारवां बड़े-बड़े दल बनाकर जाते थे। व्यापारियों के अलावा, बहुधा भाट, चारण, नृतक, संदेशवाहक, बैद्य आदि भी ऐसे मार्गों से एक स्थान से दूसरे स्थान में जाते रहते थे। ये लोग भी कारवां के साथ जाना पसंद करते थे क्योंकि यात्रा अधिकतर खतरनाक होती थी। अधिकांश मार्ग घने जंगलों और पहाड़ों के उपर से होकर जाते थे, जहां जंगली जनजातियां रहती थीं। व्यापारियों को राहजनी का खतरा रहता था और शासकों से किसी प्रकार के प्रभावी संरक्षण के अभाव में कारवां के साथ उनके अपने अंगरक्षक नियुक्त रहते थे।

सातवाहन के अधीन राज्य में स्थिति कुछ भिन्न थी। उत्तर से दक्षिण को मुख्य मार्ग उज्जैयिनी से सातवाहन राज्य की राजधानी प्रतिस्थान (पठाण) शहर को जाता था। प्रतिस्थान से यह दक्खन के पठार को पार करते हुए दक्षिण के प्रसिद्ध शहरों कांची और मदुरै को जाता था। ईसवी काल के प्रारंभ में विकसित मार्गों का जाल इस पुराने मार्ग को पश्चिमी

तट के अंतर्देशीय बज़ारों तथा कस्बों और बंदरगाहों को क्षेत्र के भीतरी भाग के उत्पादक क्षेत्रों से मिलाता था। गोदावरी और कृष्णा की उपजाऊ घाटियों के भी मार्गों के ऐसे जाल थे जो तटीय शहरों की भीतरी भागों से जोड़ते थे।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि दक्खन की कुछ प्राचीन प्रसिद्ध बौद्ध गुफाओं तथा धार्मिक केन्द्र इन व्यापारी मार्गों में थे। व्यापारी कारवां के लिए ये धार्मिक केन्द्र बहुत से मामलों में उपयोगी थे। उन्हें भोजन और आवास देने के अलावा वे उन्हें ऋण तक भी देते थे। शासक भी इन मार्गों की देखभाल पर रुचि दिखाते थे। उन बौद्ध धार्मिक स्थापनाओं को वे उदारतापूर्वक दान देते थे, जो मार्गों में स्थित थे। उन्होंने बंदरगाह नगर में विश्रामगृह बनवाए और मार्गों में प्याऊ स्थापित किए। उनके रख-रखाव के लिए अधिकारी भी नियुक्त किए गए। दुर्भाग्यवश मार्गों की सुरक्षा प्रबंधों के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

बहुधा मार्गों में नदियां पार करनी पड़ती थीं। ऐसे स्थलों पर नौघाट स्थापित किए गए थे और व्यापारियों से कर वसूल किया जाता था। कुछ नौघाट निःशुल्क भी थे।

लम्बे समुद्र तट और कई नदियों के प्रवाह से जानकारी होने के फलस्वरूप दक्षिण भारतीय समुद्री तथा नदियों के नौवहन को जानते थे। नौघाटों को पार करने तथा नदियों के नौवहन के लिए छोटी नौकाओं का प्रयोग किया जाता था। बड़े जहाज़ों के निर्माण तथा उनके प्रयोग से समुद्री यात्रा संभव हुई।

तमिलहम् में नौवहन मुख्य रूप से तटवर्ती क्षेत्रों में सीमित थी। श्रीलंका के साथ कुछ व्यापारिक संबंध थे। श्रीलंका (ईलम) के व्यापारियों का उल्लेख दक्षिण भारत के शिलालेखों में मिलता है। इसी प्रकार, श्रीलंका के कुछ प्रारंभिक शिलालेखों में तमिल व्यापारियों का उल्लेख दानदाता के रूप में मिलता है। इन प्रमाणों से पता चलता है कि तमिल के व्यापारी समुद्र व्यापार में भाग लेते थे।

दक्खन में ऐसे भी व्यापारी थे, जो खास तौर पर समुद्री व्यापार में लगे हुए थे। मारूकच्छा में जहाज़ों की उपस्थिति के बारे में उस समय के साहित्य से जानकारी मिलती है।

प्रायद्वीपीय भारत के व्यापारी खास तौर पर वे जो दक्खन के थे, विदेशी व्यापार में लगे हुए थे मिस्र और अलेक्ज़ेंडरिया में कुछ भारतीय व्यापारियों की मौजूदगी की जानकारी उस समय के विदेशी साहित्य में मिलती है।

राजा के प्राधिकारी समुद्री व्यापार के महत्व को जानते थे। वे व्यापारियों को सुविधाएं देते थे। मारूकच्छा में आने वाले जहाज़ों का मार्ग-दर्शन स्थानीय नौकाएं करती थीं और गोदियों में उनके लिए अलग स्थान की व्यवस्था की जाती थी।

सुदूर दक्षिण में तमिलहम् के बड़े सामंत समुद्र व्यापार को कई तरीकों से प्रोत्साहित करते थे। समुद्र के किनारे प्रकाश स्तम्भ बनाए गए थे, कई ऐसे जहाज़ घाट थे, जहां रोमन जहाज़ों से उतारे गए सामान पर सामंतों की मुहर लगाई जाती थी। भंडारण की सुविधा दी जाती थी और गोदामों में सामान के संरक्षण की व्यवस्था भी की जाती थी।

सुदूर दक्षिण में और दक्खन में भी समुद्री व्यापार की कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जिसे कुछ आधुनिक विद्वानों ने "निर्देशित व्यापार" कहा है। दोनों क्षेत्रों के बीच अंतर यह है कि दक्खन में ये विशेषताएं अधिक सुस्पष्ट हैं, जबकि तमिलहम् में वे गौण स्तर पर हैं।

30.5 विनिमय के माध्यम के रूप में सिक्के

यद्यपि वस्तु-विनिमय लेन-देन का सबसे अधिक सामान्य तरीका था, फिर भी चर्चाधीन अवधि में विनिमय के माध्यम के रूप में सिक्कों का प्रचलन था। प्रारंभिक प्रायद्वीप भारत के ज्ञात सिक्कों को मोटे तौर पर निम्नलिखित श्रेणियों में बांटा जा सकता है:

- विभिन्न प्रकार के स्थानीय सिक्के
- रोमन सिक्के

30.5.1 स्थानीय सिक्के

प्रायद्वीपीय भारत के विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार के स्थानीय सिक्के चलते थे।

प्राचीन तमिल साहित्य में उनके बारे में थोड़ी-बहुत जानकारी मिलती है जैसे **कासु**, **कनम**, **पोन** और **वेनपोन**। परन्तु इन नामों के अनुरूप असली सिक्के नहीं पाए गए हैं। दक्खन के शिलालेखों में **कहापना** के प्रयोग का हवाला मिलता है, जो चांदी के सिक्के थे और स्थानीय रूप से बनाए जाते थे तथा **सुवर्ण** जो सोने के सिक्के होते थे, वे या तो रोमनों के थे या फिर कुशानों के।

भिन्न-भिन्न प्रकार के असली सिक्के और भिन्न-भिन्न धातुओं से बनाए जाते थे, जैसे सीसा, पोटिन (तांबे, ज़स्ते, सीसे और टिन का यौगिक), तांबा और चांदी प्रयुक्त की जाती थी। उनमें सबसे पुराने आहत सिक्के थे, जैसा कि आपने खंड 4 में पढ़ा है। छठी-पांचवी शताब्दी ई.पू. से आगे उत्तर-पश्चिम और उत्तर भारत में इन्हें बनाया जाने लगा। प्रायद्वीपीय भारत में भी विभिन्न प्रकार के आहत सिक्कों की ढलाई भिन्न-भिन्न स्थानों पर होती थी। अन्य किस्म के सिक्कों को बनाने में अन्य प्रकार की तकनीक जैसे कास्टिंग, डाइस्ट्राकिंग का धीरे-धीरे प्रयोग किया जाने लगा। दूसरी शताब्दी ई.पू. से छोटी-छोटी बस्तियों के राजाओं या महत्वपूर्ण **महारथी** सदस्यों तथा अन्य परिवारों ने अपने नाम से सिक्के बनाने शुरू किए। इसी क्रम में भिन्न-भिन्न धातुओं के सातवाहन शासकों के सिक्के संभवतः पहली शताब्दी ई.पू. में आए। उत्तरी दक्खन, गुजरात, मालवा तथा निकटवर्ती क्षेत्रों में क्षत्रपण के चांदी के सिक्कों की बहुत मांग थी। इस प्रकार दूसरी शताब्दी ई.पू. और दूसरी शताब्दी ई. के अंत के बीच की अवधि में स्थानीय सिक्कों की बहुत सी किस्में बनी और ये प्रायद्वीपीय भारत में प्रचलित थे।

30.5.2 रोमन सिक्के

प्राचीन तमिल साहित्य में यवन (रोमन) जहाज़ों का उल्लेख मिलता है, जो तमिलहम् में बहुत बड़ी मात्रा में सोना लाते थे तथा काली मिर्च से इसका विनिमय होता था। रोमन सम्राट टिबरियस ने 22 ई. में सेनेट को लिखा था कि साम्राज्य की सम्पत्ति छोटी-छोटी वस्तुओं के बदले विदेशों में जा रही हैं। प्रथम शताब्दी ई. में दी नेशनल हिस्ट्री के लेखक प्लिनी ने शिकायत की थी कि रोमन की अतुल सम्पत्ति विलास की वस्तुओं के लिए भारत, चीन और अरब में गई। इन कथनों की पुष्टि प्रायद्वीपीय भारत के विभिन्न स्थानों जैसे आंध्र, कर्नाटक, तमिलनाडु और केरल में भारी मात्रा में पाए गए रोमन सिक्कों से होती है। अधिकांश सिक्के पहली शताब्दी ई.पू. और तीसरी शताब्दी ई. के बीच की अवधि के हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि इस अवधि के दौरान, प्रायद्वीपीय भारत से रोमन सम्पर्क बहुत अधिक था। अधिकांश रोमन सिक्के सोने और चांदी के हैं। तांबे के सिक्के यद्यपि नगण्य हैं, परन्तु पूर्ण अज्ञात नहीं हैं।

रोमन से धन उन वस्तुओं को खरीदने के लिए लाया जाता था जो पश्चिमी देशवासियों को प्रिय था। ये वस्तुएं थोक में रोमन वस्तुओं के विनिमय में नहीं ली जा सकती थीं। बड़े सौदे सोने के सिक्कों के माध्यम से होते थे। चांदी के सिक्कों का उपयोग अपेक्षाकृत छोटे सौदों के लिए किया जाता था। कुछ विद्वानों का यह मत है कि रोमन का सोना मुद्रा के रूप में नहीं लिया जाता था बल्कि बुलियन के रूप में लिया जाता था। कुछ विद्वानों का यह मत है कि दक्षिण भारतीयों द्वारा रोमन का सोना आभूषण के रूप में प्रयुक्त किया जाता था।

कुछ मुद्राशास्त्रियों का मत है कि रोमन सिक्के और आहत सिक्के दोनों देशों में साथ-साथ प्रचलन में थे। रोमन सिक्के भी आहत सिक्कों के लगभग बराबर वज़न के थे। कुछ खजानों में उन्हें आहत सिक्कों के साथ पाया गया है। दोनों ही लगभग एक जैसे ही घिसे हुए हैं। इससे प्रतीत होता है कि खजानों में रखने से पहले वे काफी समय तक प्रचलन में रहे हैं। दक्षिण भारत में रोमन सिक्कों की अनुकृतियां भी प्रचलन में थीं, विशेषकर कोरोमंडल समुद्र तट पर, जहां कुछ रोमन व्यापार के केन्द्र थे। संभवतः ऐसी बस्तियों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए नकली सिक्के बनाए गए हों।

30.6 व्यापार से राजस्व

खजाने के आय के नियमित स्रोत के रूप में राजस्व की वसूली सरकार की कार्यकुशलता सहित कई कारकों पर निर्भर करती है। उस समय प्रायद्वीपीय भारत के विभिन्न प्रदेशों में राजनीतिक परिस्थितियां एक समान नहीं थीं। इसलिए राजस्व प्रणाली भी एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में भिन्न थी।

भारवाही पशुओं और ठेलों में सौदा ले जाने के लिए चुंगी वसूल की जाती थी। यह चुंगी उल्क

के रूप में जानी जाती थी। यह शब्द "शुल्क" का व्युत्पन्न रूप है जिसका अर्थ चुंगी है। इससे यह प्रतीत होता है कि चुंगी का विचार उत्तर भारत से लिया गया है। फिर भी कहा जाता है कि दक्षिण के सभी अभिषिकत सामंत और कम महत्वपूर्ण सामंत, विशेषकर **यवनों** के साथ व्यापार करने में बहुत इच्छुक होते थे। इससे स्पष्ट है कि वाणिज्य से उन्हें अच्छी आमदनी होती थी।

चोल के बंदरगाह नगर कावेरीपुम्पपट्टिनम में सौदों की वस्तुओं पर चोल मुहर लगाने के लिए चोल शासक के एजेंट होते थे। इस मुहर में बाघ का चित्र अंकित था। वस्तुओं पर चुंगी भी ली जाती थी। इस संबंध में विस्तृत ब्यौरे उपलब्ध नहीं हैं।

इसके अलावा, ऐसा प्रतीत होता है कि सातवाहन के राज्य में कराधान अधिक नियमित और प्रणालीबद्ध रहा है। व्यापार की प्रत्येक वस्तु पर चुंगी वसूल की जाती थी। प्रत्येक प्रमुख शहर में व्यापारियों पर सीमा शुल्क और विभिन्न चुंगी कर लगाए जाते थे। कहीं भी ऐसे करों और चुंगियों की दरों का उल्लेख नहीं है। कर-आय का एक और स्रोत नौघाट था।

कहा जाता है कि पश्चिमी भारत के क्षत्रप्पा शासक नहापना का दामाद और प्रतिनिधि उशावदत्ता ने नदियों पर कर-रहित नौघाटों की व्यवस्था की थी। राजस्व नकद लिया जाता था।

दस्तकारों को अपने उत्पादों पर शुल्क देना पड़ता था। इसे कारूकारा के नाम से जाना जाता था (कारू + दस्तकार और कारा + कर)।

इस अपूर्ण सूचना से कोई भी यह कह सकता है कि शासन करने वाले वर्ग को व्यापार और वाणिज्य से पर्याप्त आय होती थी।

बोध प्रश्न 2

1) बताइए कि निम्नलिखित में कौन-से कथन सही (√) हैं या गलत (×):

   i) तमिलम् में कई ऐसे मार्ग थे, जो भीतरी क्षेत्रों को नदी घाटियों की बस्तियों, तटीय कस्बों और शासक सामंत की राजधानियों से जोड़ते थे। (   )

   ii) सातवाहनशासकों ने व्यापार मार्गों में जल विभाजक बनवाए थे और उनके रख-रखाव के लिए अधिकारी नियुक्त किए थे। (   )

   iii) चाहे उत्तर में पाए गए हों या दक्षिण में, आहत सिक्कों का वज़न समान था। (   )

   iv) प्राचीन दक्षिण भारत में रोमन स्वर्ण सिक्कों का उपयोग केवल आभूषणें के लिए किया जाता था। (   )

   v) व्यापारियों द्वारा दिया गया कर कारूकारा कहलाता था। (   )

2) लगभग 50 शब्दों में प्राचीन दक्खन और दक्षिण भारत में व्यापारी मार्गों के तुलनात्मक अनुभव का उल्लेख कीजिए।

   ....
   ....
   ....
   ....
   ....
   ....

3) दक्षिण भारत में स्थानीय सिक्कों पर तीन पंक्तियाँ लिखिए।

   ....
   ....
   ....

4) चांदी के आहत सिक्कों पर पांच पंक्तियाँ लिखिए।

   ....

....

....

....

....

5) रोमन सिक्कों और दक्षिण भारत में उनके उपयोग पर सात पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

30.7 तोल और माप

विनिमय की विकसित प्रणाली के लिए नियमित माप और तोल आवश्यक है। इससे किसी वस्तु को तोलना, मापना और गिनना संभव है, जब कोई उसे खरीद रहा है या बेच रहा है तो विनिमय आसान और कारगर होता है। क्रेयता और विक्रेयता को खरीदी गई या बेची गई वस्तु की मात्रा या आकार के बारे में किसी प्रकार का संदेह नहीं रहता है। दक्खन में जहां व्यापार केन्द्रों में विभिन्न वस्तुओं का व्यापार एक नियमित कार्य था वहां सही-सही माप का विचार भी अवश्य विद्यमान रहा होगा। भिन्न-भिन्न मूल्य वर्ग के सिक्के जारी किए गए थे और भूमि **निवर्तन** के अनुसार मापी जाती थी।

सुदूर दक्षिण में **मा** और **वेलि** भूमि के माप थे। यहां कर देने के लिए अनाज **अम्बानम** में तोला जाता था। संभवतः यह बड़ा तोल था। छोटे मापों के रूप में **नाली, उलाकू** और **अलाक** भी जाने जाते हैं।

तराजू से तोला जाता था। तराजू शायद एक डंडा होता था जिसमें निशान लगे होते थे। यहां तक छोटी से छोटी वस्तु भी तराजू से तोली जा सकती थी। तराजू पर सोना तोलने की बात भी हमें बताई गई है।

दिन-प्रतिदिन के लेन-देन में अनाज (एल), धान अनाज (नेल), अंगुलियों और हाथ की लंबाई के अनुसार रेखीय माप में व्यक्त किए जाते थे।

30.8 शहरी केन्द्र

उपर्युक्त चर्चा के दौरान हमने प्रारंभिक प्रायद्वीपीय भारत में व्यापार के वाणिज्यिक विस्तार के विभिन्न पहलुओं का उल्लेख किया है। इस प्रारंभिक व्यापार से कई शहरी केन्द्रों के उद्भव और विकास में बहुत प्रोत्साहन मिला। हम दक्खन के उन केन्द्रों का वर्णन शुरू करेंगे जहां शहरी विकास के स्पष्ट रूप दिखाई देते हैं।

पश्चिमी और पूर्वी समुद्र तटों पर कई बंदरगाह थे। आन्ध्र के तटीय प्रदेश में गोदावरी और कृष्णा के डेल्टा में कुछ महत्वपूर्ण केन्द्र थे। यहां से जहाज़ मलय प्रायद्वीप और पूर्वी आर्चिपेलागो को जाते थे। परन्तु पश्चिमी बंदरगाह मारूकच्छा (मरूय), सोपारा और कल्याण भारत-रोमन व्यापार की प्रारंभिक अवस्था में अधिक पुराने और महत्वपूर्ण प्रतीत होते हैं।

भीतरी इलाके में बड़े और छोटे शहरी केन्द्र थे: प्रतिस्थान (पैठाण), टागरा (टेर), भोगवर्धन (भोकरदन), करहाटका (कराड), नासिक, वैजयंती, धान्यकटक, विजयपुरी (नागार्जुन कुंडा)

आदि थे। हम निम्नलिखित कारकों का पता कर सकते हैं, जिनके फलस्वरूप इन केन्द्रों का उद्‌भव हुआ, जो सामान्य ग्रामीण बस्तियों से भिन्न थे :

i) कृषि का भीतरी प्रदेश जो शहरी केन्द्र में रहने वाले भिन्न-भिन्न सामाजिक वर्गों के उपभोग के लिए आवश्यक अतिरिक्त अनाज पैदा करने में सक्षम थे।

ii) व्यापारी, कारीगर, हस्तशिल्पी ऐसे व्यावसायिक वर्गों का उदय, जो खाद्यान्न उत्पादन से सीधे जुड़े हुए नहीं थे।

iii) ऐसे संगठनों का उदय, जो व्यापारियों और कारीगरों के कार्यों को संगठित करते थे।

iv) स्थानीय और विदेशी विनिमय में अपेक्षित जिंसों के संग्रह की सुविधाएं तथा नौवहन विकास।

v) केन्द्रों को अधिशेष सामग्री भेजने तथा सहायता और सुरक्षा प्रदान करने के लिए भी सक्षम शासक वर्ग।

vi) मुद्रा प्रणाली का आविर्भाव।

vii) लेखन प्रक्रिया का विस्तार जो गणना और लेखबद्ध करने के लिए आवश्यक है।

कार्यात्मक दृष्टि से शहरी केन्द्र विभिन्न श्रेणियों के थे। प्रशासनिक केन्द्र, संग्रहकर्ता केन्द्र, छावनी, विदेशी व्यापार केन्द्र, विपणन और विनिर्माण केन्द्र। फिर भी, इनमें से अधिकांश कार्य एक ही शहरी केन्द्र में किया जा सकता था।

अधिकांशतः संगम कविताओं तथा अन्य साहित्यिक लेखों के संदर्भों के आधार और कुछ सीमा तक पुरातत्व के आधार पर तमिलम् में तीन अलग-अलग किस्म के केन्द्रों का पता लगाया जा सकता है :

- ग्रामीण विनिमय केन्द्र;
- अंतर्देशीय विपणन नगर; और
- बंदरगाह

विभिन्न **तनाई** या आर्थिक क्षेत्रों के बीच जीविका की वस्तुओं के विनिमय की प्रक्रिया के दौरान सम्पर्क स्थलों के रूप में कई कन्द्रों का आविर्भाव हुआ। अधिकतर ये सम्पर्क स्थल पारंपरिक मार्गों के मिलन केन्द्र पर होते थे।

इनमें से कुछ केन्द्र नियमित विनिमय कार्यों के कारण बहुत सक्रिय हुए। इसलिए आधुनिक परिभाषा के अनुसार इन स्थानों को "शहरी" केन्द्र कहना उपयुक्त नहीं होगा। फिर भी, समकालीन समाज उन्हें सामान्य कृषिक बस्तियों से भिन्न समझता था। अंर्देशीय कस्बे जैसे उदैपुर (वर्तमान तिरूचिरापल्लि के समीप), कांची (कांचीपुरम्) और मदुरै के बाज़ार थे। वे पूर्णतः शहरी केन्द्रों के रूप में विकसित हुए।

पट्टिनम या बंदरगाह भी शासकों के संरक्षण में काफी सक्रिय थे। वहां कई ऐसे केन्द्र थे। पूर्वी तट पर : पुहार अथवा कावेरीपुम्पट्टिनम (चोलों का), अरिकमडु, कोरकाई (पांड्याओं का) थे; पशिचमी तट पर मुज़रिस और टिनडिस (चेराओं का) बकरे और नेलेयंदा वे समुद्री व्यापार के केन्द्र थे और अरिकमेडु जैसे कुछ **यवनों** की बस्तियां थी। बंदरगाह के अंदर मुज़रिस बहुत व्यस्त केन्द्र था, यहां हर प्रकार के जहाज़ों की भीड़ रहती थी और बड़े-बड़े गोदाम और मार्केट थे।

चूंकि बंदरगाहों पर व्यापार अधिकतर विलास की वस्तुओं का होता था इसलिए पट्टिनम स्थानीय विनिमय केन्द्रों के नेटवर्क से जुड़े हुए नहीं थे। वे मुख्य रूप से "विदेशी व्यापार के केन्द्र" बने रहे और शासक तथा धनी वर्ग उनके ग्राहक थे। इस प्रकार इन केन्द्रों की प्रगति का कारण विदेशी व्यापार था। विदेशी व्यापार के ह्रास से ये केन्द्र भी कमज़ोर पड़ गए और धीरे-धीरे समाप्त हो गये।

इसलिए निम्नलिखित के अभाव के फलस्वरूप इन शहरी केन्द्रों का स्वरूप बना था:

क) स्थानीय विनिमय नेटवर्क से संबंध

ख) दस्तकारी विशेषज्ञता

ग) मठों और संगठनों जैसी संस्थाओं का सहयोग

30.9 समाज पर व्यापार और शहरी केन्द्रों का प्रभाव

प्रारंभिक व्यापार और शहरी विकास कार्यों से तमिलहम् के सामाजिक जीवन में बहुत अधिक आधारभूत परिवर्तन नहीं आए हैं। स्थानीय विनिमय आजीविका प्रधान था। इसका तात्पर्य यह है कि वे मदें जो स्थानीय विनिमय के माध्यम से लोगों के पास जाते थे, विभिन्न वर्गों के लोगों के नियमित खपत की होती थी। दूरस्थ व्यापार अधिकतर विलास की वस्तुओं का होता था, जो केवल सामंतों के नातेदारों और उनके व्यक्तियों तक सीमित था। व्यापारियों की सम्पत्ति एवं समृद्धि जैसे कि भिक्षुओं को उनके उपहार से दिखाई देती थी, वह अधिक प्रभावकारी नहीं थी।

कारीगरों और व्यापारियों का कोई संगठन नहीं था। वे परिवार के सदस्यों या निकटतम संबंधियों की तरह मिल-जुलकर काम करते थे। इस प्रकार वे केवल जनजाति स्वरूप के नातेदारी संबंधों के अनुसार काम करते थे।

दक्खन में स्थिति भिन्न थी। स्थानीय व्यापारी वर्ग की भागीदारी दूरस्थ व्यापार के लिए भी आवश्यक थी। इसलिए इस व्यापार के लाभ समाज के निचले स्तरों में भी आए। कारीगरों, शिल्पियों और व्यापारियों की सम्पत्ति और समृद्धि बौद्ध मठों को उनके दान में झलकती थी।

कारीगरों और व्यापारियों के संघ संगठनों के कारण पुराने नातेदारी संबंध टूटने लगे और हस्तशिल्प की वस्तुओं के उत्पादन तथा व्यापार के कार्यों में नए किस्म के संबंध बनने लगे।

शासकों, वाणिज्य वर्गों और बौद्ध मठों के बीच संबंधों से दक्खन की अर्थव्यवस्था और समाज में महत्वपूर्ण परिवर्तन शुरू हुए।

बोध प्रश्न 3

1) नीचे दिए गए कथनों में सही (√) या गलत (×) का निशान लगाइए:
   - क) **मा** और **वेलि** रेखीय माप थे। ( )
   - ख) प्रारंभिक दक्षिण भारत में तटीय कस्बों की अपेक्षा अंतर्देशीय कस्बे अधिक सक्रिय थे। ( )
   - ग) संघों ने कारीगरों और व्यापारियों के बीच उत्पादन संबंधों में कुछ परिवर्तन शुरू हुए। ( )
   - घ) विलास की वस्तुओं का प्रचलन सम्राट के सदस्यों और उनके परिवार में ही था। ( )
   - च) दक्खन में दूरस्थ व्यापार स्थानीय विनिमय नेटवर्क पर आश्रित नहीं था। ( )

2) मठों और व्यापारियों के बीच संबंधों पर पांच पंक्तियाँ लिखिए।

....
....
....
....
....

3) स्थानीय व्यापारियों और कारीगरों पर व्यापार तथा शहरीकरण के प्रभाव पर पांच पंक्तियाँ लिखिए।

....
....
....
....
....

30.10 सारांश

इस इकाई में प्राचीन प्रायद्वीपीय भारत में व्यापार और शहरी केन्द्रों के विस्तार के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं पर चर्चा करने का प्रयास किया गया है। इस इकाई में आपने निम्नलिखित के बारे में पढ़ा है:

- विभिन्न प्रकार के व्यापार और तरीके जिनमें विनिमय होता था,
- कारीगरों और व्यापारियों का संघ,
- विनिमय सुविधाएं जैसे परिवहन, भंडारण और नौवहन
- विभिन्न प्रकार के सिक्के जो विनिमय के माध्यम के रूप में प्रयुक्त होते थे,
- व्यापार से राजस्व,
- शहरी केन्द्रों के विशिष्ट लक्षण और कार्य,
- प्रायद्वीपीय भारत के विभन्न क्षेत्रों में व्यापार और शहरीकरण का प्रभाव।

30.11 शब्दावली

आहत सिक्के: इन सिक्कों के निर्माण में धातु को पीट-पीटकर चपटा बनाया जाता था और तब उन्हें पट्टियों में काटा जाता था। खाली चद्दर को अपेक्षित भार के टुकड़ों में काटा जाता था। पहले तो ये टुकड़े वर्गाकार या आयताकार थे। सही भार के लिए इनके किनारों को छिला जाता था। इसलिए इन सिक्कों का आकार एक जैसा नहीं होता था। पंचित्र से उन पर प्रतीक चिन्ह का ठप्पा लगाया जाता था। प्रत्येक पंचित्र का प्रतीक बिल्कुल पृथक होता था।

निर्देशित व्यापार: इसका सबध उस व्यापार से है जिसमें व्यापार के केन्द्र होते थे, जिनमें लंगरगाह और भंडारण की सुविधाएं तथा नागरिक एवं कानूनी संरक्षण और भुगतान विधि पर कराकर जैसी सुविधाएं दी जाती थीं।

निगम: व्यापारियों और कारीगरों का संघ

पोतिन: तांबा और टीन का यौगिक

मुद्राशास्त्री: वे विद्वान जो सिक्कों के अध्ययन में विशेषज्ञ होते हैं

30.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) उप-भाग 30.2.1 देखिए।
2) क) (×)
   ख) (√)
   ग) (×)
   घ) (×)
   च) (√)
3) भाग 30.3 देखिए।
4) भाग 30.3 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) i) (√)
   ii) (√)

iii) (√)

iv) (×)

v) (×)

2) भाग 30.4 देखिए।

3) भाग 30.5 देखिए।

4) भाग 30.5 देखिए।

5) भाग 30.5 देखिए।

बोध प्रश्न 3

1) क) (×)

ख) (×)

ग) (√)

घ) (×)

च) (×)

2) भाग 30.8 देखिए।

3) भाग 30.9 देखिए।

इकाई 31 तमिल भाषा और साहित्य का विकास

इकाई की रूपरेखा

31.0 उद्देश्य
31.1 प्रस्तावना
31.2 प्रारम्भिक साक्ष्य
31.3 संघ काव्य (प्रेम और वीरता का काव्य)
31.3.1 वर्गीकरण
31.3.2 काव्य संगठन
31.3.3 समय निर्धारण की समस्या
31.3.4 काव्यशास्त्र
31.3.5 साहित्यिक विकास
31.4 अन्य रचनायें
31.5 सारांश
31.6 शब्दावली
31.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

31.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान सकेंगें कि:

- तमिल साहित्य कितना पुराना है;
- तमिल वीर और प्रेम का काव्य क्या है;
- उनकी रचना एवं वर्गीकरण कैसे किया गया;
- उनकी साहित्यिक विशेषतायें क्या हैं; और
- उस काल की दूसरी रचनायें क्या हैं?

31.1 प्रस्तावना

आपने पिछली इकाई में पढ़ा कि किस प्रकार से तमिलहम् में नई बस्तियों का विकास हुआ और कैसे कृषि का फैलाव एवं व्यापार की उन्नति हुई। व्यापार के कारण लोग बाहर से आकर बसते हैं और प्रदेश के अन्दर ही स्थानीय एवं बाह्य लोगों के बीच पारस्परिक संबंधों की प्रक्रिया के लिये अवसरों का प्रारंभ होता है। संस्कृतियों के पारस्परिक संबंधों की प्रक्रिया किसी क्षेत्र में भाषा एवं साहित्य के विकास में सहायता करती है। इस इकाई में आप तमिल भाषा एवं साहित्य के विकास की जानकारी प्राप्त करेंगे।

31.2 प्रारम्भिक साक्ष्य

तीसरी सदी ई.पू. के आस-पास तमिल भाषा पूर्णतः साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित हो चुकी थी अर्थात् ऐसी भाषा के रूप में जिसकी अपनी स्वयं लिखने की एक प्रणाली थी। तमिल साहित्यिक परंपरा अर्थात् तमिल भाषा में लेखन की परंपरा के संदर्भ में सबसे प्रारंभिक प्रमाण मदुरई की पहाड़ियों में बनी जैन एवं बौद्ध गुफाओं से प्राप्त तमिल ब्राह्मी के शिलालेख हैं। ये शिलालेख उन लोगों और संस्थाओं की पट्टिकाओं के रूप में हैं जिन्होंने इन कन्दराओं को दान में दिया। इन शिलालेखों के मुख्य स्थान अरिट्टाप्पत्ति (मौगलम, मदुरई), कारूंगलावकूति (मैलूर, मदुरई), कौंगरपुलियाम्कूलम (मदुरई), अजकरमलई (मदुरई) हैं। इन लेखों में तमिल के ऐसे बहुत से शब्दों का प्रयोग हुआ है जिनको स्थानीय स्तर पर संस्कृत, प्राकृत या पालि भाषाओं से ग्रहण किया गया है। निगमत्तूर (निगम का सदस्य) और

वणिमन (वह पुरुष जो वणिभम या व्यापार में संलग्न है) शब्दों को उदाहरण के रूप में बताया जा सकता है कि इनको तमिल भाषा में संस्कृत से ग्रहण किया गया है। इसको भी भली-भाँति जान लेना चाहिए कि इन लेखों में जिस तमिल भाषा का प्रयोग किया गया है वह तमिल साहित्य की भाषा से काफी अलग प्रकार की है। यह अन्तर इसलिए आया कि उत्तर की ओर से देशान्तर करने वाले जैन एवं बौद्ध धर्मों के अनुयाइयों ने काफी बड़ी संख्या में संस्कृत और प्राकृत या पालि की उक्तियों का प्रयोग किया। इन उक्तियों को तमिल भाषा की भाष्य प्रणाली के अनुरूप ही ग्रहण किया गया। इन लेखों में जिस ढंग से व्यक्तियों, व्यावसायिकों एवं स्थानों के नामों का प्रयोग हुआ है उस से तमिल का साहित्यिक भाषा के रूप में सूत्राधार मिलता है। इन लेखों का लेखन काल सामान्यतः 200 ई.पू. से 300 ई. के मध्य का है। तमिल भाषा के वीर काव्यों की लोकप्रियता संगम साहित्य के नाम से है और यह साहित्य ही तमिल साहित्य की प्राचीनतम परम्परा का प्रमाण प्रस्तुत करता है।

31.3 संघ काव्य (प्रेम और वीरता का काव्य)

तमिल के संघ काव्यों को संगम साहित्य इसलिये कहा गया है क्योंकि इनको संगम के द्वारा एकत्रित किया गया। संगम विद्वानों की एक संस्था थी। इन कविताओं की रचना स्वयं संगम के द्वारा नहीं की गई थी। वास्तव में ये कवितायें संगम से अधिक पुरानी हैं। संगम का इतिहास किवदंतियों से भरा पड़ा है। परम्परा के अनुसार प्रारंभ में तीन संगम अस्तित्व में थे परन्तु अन्ततः उनमें से एक ही संगम के द्वारा किये गये कार्य जीवित रह सके। पहले ऐसा विश्वास किया जाता था कि ये संगम दरबारी कवियों की संस्थायें थीं। परन्तु अब यह स्वीकृत तथ्य है कि वे साहित्यिक विद्वानों के द्वारा गठित की गई थीं। संगम और संघ काव्यों की रचना के मध्य समय की जो दरी है उसके कारण संगम साहित्य मिथ्या जैसा हो गया है। कुल मिलाकर तमिल वीर काव्य लोक कथाओं की उत्पत्ति था। ये भाट कवियों की परम्परा के महत्व को अभिव्यक्त करती हैं। ये भाट कवि अपने आश्रयदाता सरदारों की प्रशंसा में गाते हुए घूमते रहते थे। फिर भी सभी काव्यात्मक रचनायें घूमक्कड भाट कवियों की रचना नहीं थीं। उनमें से कुछ की रचना विद्वान कवियों ने की थी जिन्होंने भाट कवियों की परंपरा का अनुकरण किया। कापिलर, पारानर, अव्वायर और गौतमनार इस काल के जाने-पहचाने कवि थे। ये विद्वान भाट कवि थे और इनको साधारण भाट कवियों से अलग पुलावर के नाम से जाना जाता है। साधारण भाट कवियों को पनार कहा गया है। यह साहित्य किसी विशेष सामाजिक समूह या गुट से संबंधित नहीं है बल्कि साधारण जीवनयापन का एक भाग ही है। ये कवितायें कई शताब्दियों में फली फूलीं जिससे ऐसा लगता है कि तमिल भाषा एवं साहित्य का क्रमिक विकास हुआ। वे न केवल अपनी वास्तविक पहचान को कायम रखने में सफल हुई बल्कि वे वर्गीकृत काव्य-संग्रह या चुनिन्दा संग्रह का अभिन्न अंग बन गई।

31.3.1 वर्गीकरण

अब हम वर्गीकृत काव्य संग्रहों से कुछ विशेष काव्यात्मक शीर्षकों एवं परिपाटियों से प्राप्त की गई कविताओं को देखेंगे। एट्टूतोगै या कविताओं के आठ संग्रह और पत्तुप्पाट्टु या दस काव्य संग्रह की ऐसे काव्य संग्रहों की दो श्रेणियां जिनमें वीर गाथा काव्य का वर्णन है। एट्टूतोगै के अन्तर्गत नट्रिणैं, कुरून्तौगे, निटुण्तु आदि काव्य संग्रहों के समूह हैं। उदाहरणार्थ मूल्लैप्पाट्टू आदि काव्य संग्रह पत्तू पत्तू के अन्तर्गत हैं। (कृपया तालिका को देखें)। काव्य संग्रहों को अकम में विभाजित किया गया है इसके अन्तर्गत व्यक्तिनिष्ठ प्यार या प्रेम जैसे विषयों का वर्णन है और पुरम के अन्तर्गत वस्तुनिष्ठ जैसे लूट और सर्वनाश विषयों का वर्णन हुआ है। काव्य संग्रहों की इन श्रेणियों में अकम और पुरम जैसे शीर्षकों पर कवितायें हैं। काव्य ग्रंथ में अकम शीर्षक पर लिखी गई चार सौ कवितायें हैं और पुरानानूरू काव्य संग्रह में पुरम शीर्षक पर आधारित कवितायें हैं और ये दोनों एट्टूतोगै श्रेणी में ही आते हैं। इसी भांति दोनों अकम और पुरम काव्य संग्रह पत्तू पत्तू श्रेणी में आते हैं। वीर काव्य ग्रंथों के अलावा संगम साहित्य के वर्गीकृत ग्रंथों के अन्तर्गत तमिल व्याकरण का ग्रंथ तोल्काप्पियम और अट्ठारह धर्मोपदेशों के वर्णन से परिपूर्ण ग्रंथ पतिनेन्कीश्कणक्क भी आता है। तिरूक्कुरल द्वारा रचित सुप्रसिद्ध तिरूक्कूरल इन अट्ठारह धर्मोपदेशों में से एक है। तोल्काप्पियम और पतिनेन्कीश्कणक्क् दोनों की रचना एट्टूतौमै और पत्तू पत्तू काव्यों के संकलन के बाद हुई। वीर काव्य संग्रहों के संकलन की तकनीकी एवं शैली बाद में की जाने वाली रचनाओं से विशिष्ट प्रकार का अन्तर रखती है।

31.3.2 काव्य संगठन

संघ काव्य का संकलन मौखिक भाट साहित्य के सिद्धान्तों के आधार पर किया गया। मौखिक संकलन की विशेषतायें सारे विश्व में लगभग एक जैसी हैं। भरपूर मुहावरों तथा अभिव्यक्तियों का प्रयोग मुख्य विशेषता है। इनमें उन्हीं मुहावरों एवं अभिव्यक्तियों का प्रयोग किया गया है जो उन दिनों सामान्य जनों के मध्य प्रचलित थे। कवि लोग इनकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति को जानते थे और वे यह भी जानते थे कि इनका कहां एवं कैसे अपनी कविता में उपयोग किया जाये। कविताओं के संकलन में मूल भावों एवं स्वाभाविक अभिव्यक्तियों का प्रयोग इस प्रकार किया गया है कि उनको मौखिक रूप से प्रसारित किया जा सके और उनमें सामान्य रूप से भाट कवियों के साथ-साथ समाज की भागीदारी भी स्पष्ट हो सके। कविताओं में घटित होने वाले विभिन्न संदर्भों की अभिव्यक्तियों को व्यक्त करने के लिये काव्यात्मक बनाने की आवश्यकता होती थी। उदाहरण के लिये, यदि किसी सरदार की प्रशंसा करनी होती थी तो उसकी प्रशंसा के लिये "मालाधारी विजेताओं का योद्धा", "गौरवशाली रथों का स्वामी", "तेज दौड़ने वाले अश्वों का सरदार", "आंखों को रसिक लगने वाला योद्धा" जैसे काव्यात्मक शब्दों का प्रयोग बिना किसी रुकावट के किया जाता था फिर चाहे कोई भी कवि या सरदार रहा हो। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि भाट कवि कृत्रिम अभिव्यक्तियों एवं उनके संदर्भों के प्रयोग में दक्ष थे। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि हम उनकी काव्यात्मक प्रतिभा को कम करके देखना चाहते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि कवियों की व्यक्तिगत शैली एवं अभिव्यक्ति का कोई विशेष महत्व नहीं है। मौखिक कविता में छंद रचनाओं की तकनीकी साधारण शैली एवं अभिव्यक्तियों पर निर्भर करती थी। यह संकलन की एक ऐसी तकनीकी थी जिसमें ऐसे मुहावरों का प्रयोग होता था जिन पर न केवल कवियों की बल्कि समाज की भी सामान्य तौर पर पकड़ होती थी। इसलिये बार-बार ऐसी पंक्तियों एवं शीर्षकों का वर्णन आया है जिनका उदार परिवर्तन के साथ अनेक कवियों ने विभिन्न काव्यों में प्रयोग किया। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को किवदंतियां सुनाने की प्रक्रिया द्वारा वीर कवितायें पुरानी यादगारों से भरी हुई थीं। जिसके कारण इन कविताओं की रचना समय का निर्धारण करने में कठिनाई होती है।

31.3.3 समय निर्धारण की समस्या

संगम साहित्य के ग्रंथों में वर्णित श्रेणीबद्ध समस्याओं से इनकी रचना समय को निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकता। ग्रंथों की कवितायें वास्तव में भिन्न-भिन्न कालों का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन काव्यों के वास्तविक संकलन एवं मौखिक प्रसारण में दूसरी सदी ई.पू. से तीसरी सदी ई. के बीच की कई शताब्दियों का समय है। इनका काव्य संग्रहों के रूप में संकलन छठी सदी ई. से नौवीं सदी ई. के मध्य में हुआ। इनकी समीक्षाओं का काल भी 13-14वीं सदी ई. से पूर्व का नहीं है। तोलकाप्पियम जो परम्परागत व्याकरण निबन्ध है अपने वर्तमान रूप में तीसरी सदी ई. से पूर्व का नहीं है यद्यपि इसके कुछ आधारभूत भाग कुछ थोड़े से पहले के हो सकते हैं। किजखानाक्कू के सभी ग्रंथ तीसरी सदी ई. के बाद वाले समय के हैं। संगम साहित्य का समय निर्धारण करने में सबसे बड़ी समस्या यह है कि उसके प्रारंभिक व बाद के स्वरूप को निश्चित करना कठिन है क्योंकि ये सब एक दूसरे में घुल-मिल गये हैं।

31.3.4 काव्यशास्त्र

संगम साहित्य के आधार पर कुछ स्वस्थ विकसित काव्यात्मक परम्पराओं का विकास हुआ। यद्यपि काव्यात्मक परम्पराओं का विकास कुछ बाद की शताब्दियों में हुआ परन्तु संकलन के नियम एवं आचार विधियां तमिल भाट काव्य की पुरानी परंपराओं का ही भाग थीं। पारम्परिक तमिल काव्य की दो मूलभूत विशेषताओं को अकम एवं पुरम नामक काव्य शैलियों में विभाजित किया गया है। इस इकाई के पहले भाग में ही हम **अकम** एवं **पुरम** काव्यों के विषय में बता चुके हैं। पांच तिणै के संबंध में **अकम** को प्रेम के पांच उपभागों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक तिणै एक विशेष प्रकार की प्रेम मुद्रा से संबंधित है। उदाहराणार्थ, पालै प्रेमियों के बिछुड़ने की भावना से संबंधित है। पुरम काव्य की कविताओं में अपने स्वरूप तिणै (स्थितियों दृश्यों) एवं संदर्भों का वर्णन है। इसमें नौ दृश्यों और 63 संदर्भों का वर्णन है जिनको कवि संकलन के लिय ग्रहण कर सके। **अकम** एवं **पुरम** काव्य संग्रहों की कविताओं में प्रत्येक की निश्चित परम्पराओं का अनुसरण किया गया। प्रत्येक अकम कविता में तिणै के ऐसे भाव का अनुसरण किया गया था जिसके स्वयं अपने देवता, जीव, प्राणी, जीवनयापन के तरीके, संगीत यंत्र एवं गीत होते थे। इसी भांति प्रत्येक **पुरम** काव्य में ऐसे प्रतिबंधों का अनुसरण किया गया है जो तिणै या दृश्यों और व्यवहार की विविधता से जुड़े थे।

31.3.5 साहित्यिक विकास

तमिल साहित्य परम्परा भारत के शास्त्रीय संस्कृत साहित्यिक परम्परा से स्वतंत्र है। यह संस्कृत भाषा के समानांतर ही भाषायी परंपरा का प्रतिनिधित्व करती है। लेकिन इसके बावजूद भी तमिल भाषा एवं साहित्य के विकास की प्रक्रिया का प्रवाह कभी भी अलगाव की अवस्था में नहीं हुआ। तमिल साहित्य की प्रारंभिक रचनाओं पर भी संस्कृत का प्रभाव है। वीर काव्यों एवं संगम साहित्य की अन्य रचनाओं में आर्य संस्कृति के विषय में वर्णन है। यहां पर आर्य संस्कृति से हमारा तात्पर्य वैदिक काल के विचारों तथा संस्थाओं से है। वैदिक अनुष्ठानों की परम्परा को भी इन कविताओं के द्वारा प्रमाणित किया गया है। गौतमानर, पाशनर और कपिला जैसे कुछ भाट कवि ब्राह्मण थे। कवि गौतमानर को इसलिये उद्धृत किया गया है कि उसने अपने आश्रयदाता चेर सरदार चेलकेजू कुत्तुवन का भाग्य परिवर्तन करने के लिए बहुत से यज्ञ या वैदिक बलि सम्पन्न किए। तमिल वीर काव्य में महाकाव्यात्मक एवं पौराणिक विचारों को भी पाया गया है। जहां एक ओर संरक्षक सरदारों की प्रशंसा में कवितायें लिखी गईं वहां दूसरी ओर महाभारत के युद्ध में किसानों की भूमिका का भी वर्णन किया गया है। बहुत से पौराणिक देवी-देवताओं की तुलना तमिल देवी-देवताओं के साथ की गई है। तमिल कविताओं में मैयों (काला देवता) को कृष्ण के समान ही माना गया है। तमिल साहित्य की कठोर परम्परा के बावजूद भी इन प्रभावों को कम करके कभी भी नहीं देखा गया। तमिल साहित्य एवं भाषा का मूल पक्ष उद्भव के लिये संस्कृत का ऋणी नहीं है। परन्तु इसके पूर्ण भाषायी एवं साहित्यिक रूप में बढ़ने एवं विकसित होने में आर्य संस्कृति के प्रभाव ने अनुगृहित किया। वीर कवितायें और प्रेम एवं संगम परंपरा की कुछ रचनायें प्रारंभिक तमिल क्षेत्र की व्यापक साहित्यिक संस्कृति की ही पुष्टि करती हैं। तीसरी सदी ई. में तमिलों ने जो भाषायी परिपक्वता प्राप्त की वे उसकी ओर भी इशारा करती हैं।

31.4 अन्य रचनायें

तोल्काप्पियम के मूल भाग में **किजम्वांक्क** कुछ भाग यहां दूसरी रचनाओं को बनाते हैं। इनको दूसरी रचनायें कहा गया है क्योंकि ये वीर काव्य की भाट परंपराओं से संबंधित नहीं हैं। परन्तु भाट काव्य की परंपरा की साहित्यिक पृष्ठभूमि से ये बहुत अलग भी नहीं हैं। तोल्काप्पियम के भाग पोरूलदिकरम में पुराने तमिल अकम पुरम की परंपराओं का जो वर्णन हुआ है वह वीर काव्यों की रचना काल के काफी नजदीक है। इसी प्रकार से तिर्णै ग्रंथों एवं रचनाओं जैसे कि कालवाजि अपेक्षाकृत कुछ पहले के हैं। यद्यपि कुछ विद्वानों का मानना है कि सिलप्पतिकारम एवं मणिमेकलै दोनों महाकाव्य वीर काव्यों के समकालीन हैं लेकिन इन दोनों को काफी बाद की रचना माना गया है।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित कथनों को पढ़कर ठीक (√) एवं गलत (×) के चिन्ह लगाओः

   i) संगम साहित्य एक समान काल से संबंधित है। ( )

   ii) संगम साहित्य कपोलकल्पित है। ( )

   iii) वीर काव्य का संकलन मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग करके किया गया है। ( )

   iv) तमिल साहित्य एवं भाषा के विकास की प्रक्रिया अलगाव में हुई। ( )

2) आप तमिल भाट काव्य की साहित्यिक परंपराओं के विषय में क्या जानते हैं? इसका दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

31.5 सारांश

आपने इस इकाई में पढ़ा कि तमिल साहित्य कितना पुराना है और इसकी रचना किस भांति से हुई है। आपने इस इकाई में वीर काव्य की मुख्य विशेषताओं, उनके संकलन की तकनीक एवं समय निर्धारण की समस्याओं के विषय में भी पढ़ा। जो दूसरी जानकारी आपने प्राप्त की वह है कि पुराने तमिल साहित्य एवं भाषा का क्या स्तर था। यह भी आप जान सके कि पुरानी तमिल रचनाओं का वर्गीकरण कैसे किया गया और इनका संगम काल में काव्य संग्रहों के रूप में संकलन कैसे किया गया।

31.6 शब्दावली

संगम: विद्वानों की एक संस्था जिसने प्राचीन तमिल रचनाओं को संग्रहित एवं वर्गीकृत किया।

अकम: कविताओं का ऐसा संग्रह जिसमें व्यक्तिनिष्ठ अनुभवों जैसे प्रेम आदि विषयों पर लिखा गया।

पुरम: कविताओं का ऐसा संग्रह जिसमें वस्तुनिष्ठ अनुभवों जैसे कि लूट-खसोट विषयों पर लिखा गया।

भाट: वे लोग जो अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में घूम-घूम कर कविताओं को संकलित करते और गाते थे।

तुराय: एक प्रकार की काव्यात्मक परम्परा जिसके अनुसार पुरम कविताओं में शीर्षक दृश्य की ओर इशारा किया गया है।

31.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1) i) × ii) √ iii) √ iv) ×

2) भाग 31.3.4 को देखिये।

SOUTH INDIA'S TRADE WITH THE WEST

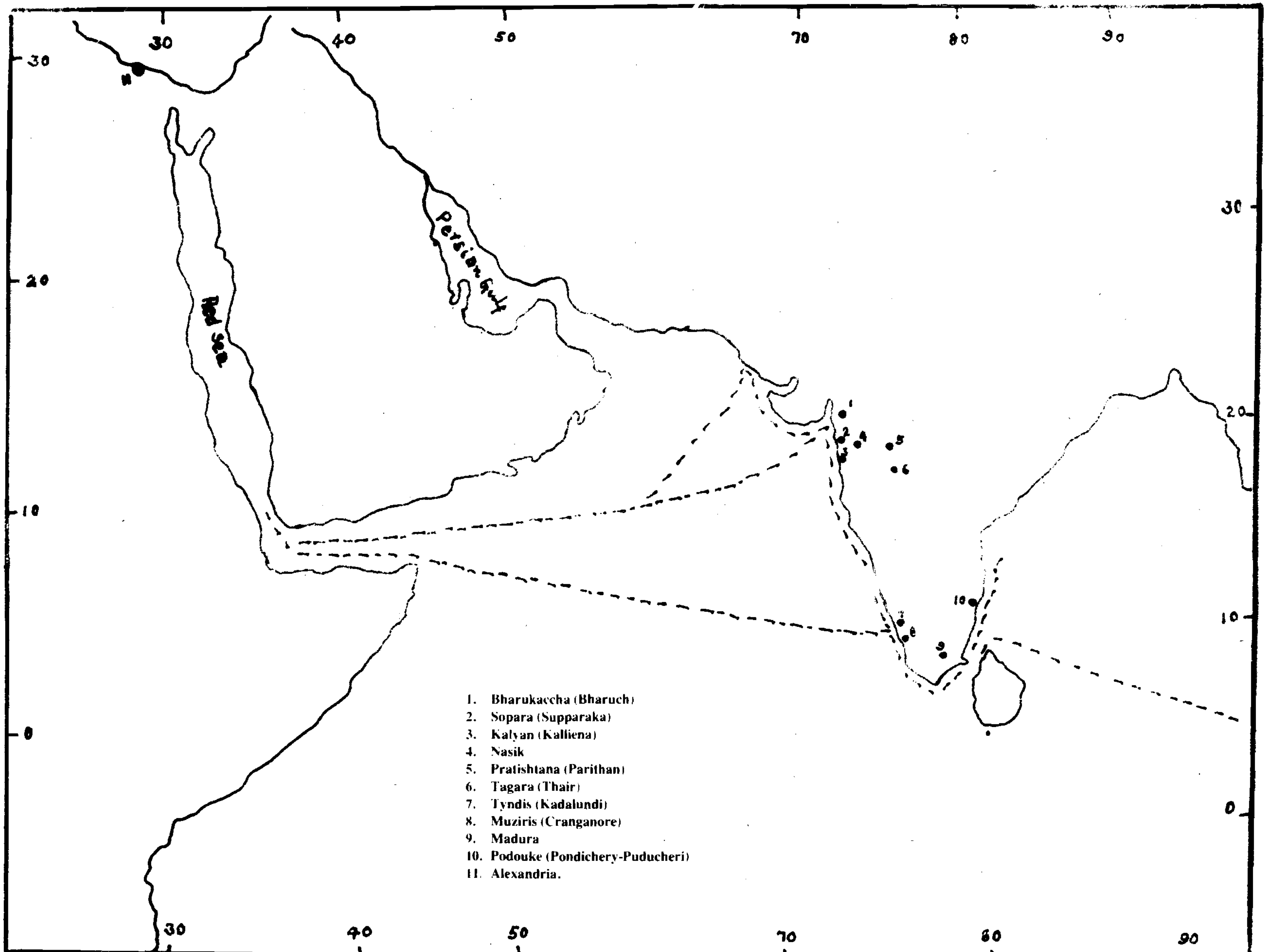

इकाई 32 गुप्त साम्राज्य

इकाई की रूपरेखा

32.0 उद्देश्य
32.1 प्रस्तावना
32.2 राजनैतिक पृष्ठभूमि
32.2.1 उत्तर-पश्चिम और उत्तरी भारत
32.2.2 पश्चिम और मध्य भारत
32.2.3 दक्खन और दक्षिण भारत
32.3 गुप्तों का प्रादुर्भाव
32.3.1 समुद्रगुप्त
32.3.2 प्रसार और सुदृढ़ीकरण
32.4 चन्द्रगुप्त-द्वितीय
32.5 कुमारगुप्त-I
32.6 स्कन्दगुप्त
32.7 गुप्त साम्राज्य का विघटन
32.8 सारॉश
32.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

32.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप—

- चौथी सदी ई. के प्रारंभ में भारत के राजनैनिक हालात के विषय में जान सकेंगे,
- उन परिस्थितियों से स्वयं को अवगत करा पायेंगे जिनके कारण गुप्त शक्ति का उदय हुआ,
- गुप्त साम्राज्य के प्रसार एवं सुदृढ़ीकरण के बारे में समझ सकेंगे,
- गुप्त शासकों के उत्तराधिकार के क्रम और सैनिक योग्यताओं के विषय में जान पायेंगे, और
- गुप्तों के पतन की प्रक्रिया की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

32.1 प्रस्तावना

इस इकाई में चौथी सदी की राजनैतिक स्थिति का संक्षेप में विवेचन करने के बाद हम उस ऐतिहासिक स्थिति का अध्ययन करेंगे जिसने गुप्त वंश के प्रादुर्भाव का मार्ग प्रशस्त किया। इस समय की राजनैतिक रूपरेखा का विवेचन करने का भी प्रयास किया जाएगा। हमने उन विवादों को भी दृष्टि में रखा है जो गुप्त राजाओं के उत्तराधिकार से संबंधित हैं और इसी के साथ-साथ उनकी उन उपलब्धियों का विवेचन भी किया गया है जिन्होंने उनके साम्राज्य के निर्माण एवं सुदृढ़ीकरण में सहायता की। समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त-II, कुमारगुप्त और स्कन्दगुप्त जैसे राजाओं का साम्राज्य के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। इस इकाई में उन समस्याओं के विषय में भी लिखा गया है जिनका सामना गुप्त राजाओं ने किया तथा उन कारणों का भी जो गुप्त शासन के पतन के लिये उत्तरदायी थे।

32.2 राजनैतिक पृष्ठभूमि

चौथी सदी ई. के प्रारंभ में भारत में कोई बड़ा संगठित राज्य अस्तित्व में नहीं था। आप खंड छह एवं सात में पढ़ चुके हैं कि उत्तर-मौर्य काल में उत्तर-भारत और दक्खन में दो राज्यों का उदय हुआ। ये उत्तर भारत में कुषाणों का राज्य और दक्खन में सातवाहनों का राज्य थे। यद्यपि कुषाण एवं शक सरदारों का शासन चौथी सदी ई. के प्रारंभिक वर्षो तक जारी रहा, लेकिन उनकी शक्ति काफी कमजोर हो गयी थी और

सातवाहन वंश का शासन तीसरी सदी ई. के मध्य से पहले ही लुप्त हो गया था। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि भारत में पूर्ण राजनीतिक रिक्तता पैदा हो गई। इस समय कोई बड़ी राजनीतिक शक्ति सत्ता में नहीं थी परन्तु छोटी-छोटी शक्तियों का शासन कायम था और नवीन परिवारों के शासकों का उद्‌भव हो रहा था। इस राजनीतिक स्थिति में गुप्त नाम के वंश ने चौथी शताब्दी ई. के प्रारंभिक समय से अपने साम्राज्य को बनाना प्रारंभ किया। इस वंश की उत्पत्ति के विषय में निश्चित मत नहीं हैं। इस साम्राज्य के इतिहास की रूपरेखा प्रस्तुत करने से पूर्व हम विभिन्न क्षेत्रों को अलग-अलग लेकर उस समय की राजनीतिक स्थिति की समीक्षा करेंगे।

32.2.1 उत्तर-पश्चिमी और उत्तरी भारत

तीसरी सदी ईसवी के मध्य से पूर्व ही ईरान में ससैनियनों का राज्य स्थापित हो गया था और ससैनियन शासकों ने कुषाण राजाओं पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना प्रारंभ कर दिया। इसके परिणामस्वरूप उत्तर-पश्चिम भारत के शक्तिशाली कुषाण राजा ससैनियन राजाओं के अधीन उनके सरदार मात्र बनकर रह गये और ससैनियन राजाओं का अधिपत्य हो सिन्ध एवं अन्य क्षेत्रों तक फैल गया।

काफी बड़ी संख्या में ऐसे सिक्के जो प्रारंभिक कुषाण राजाओं के सिक्के पर आधारित हैं, अफगानिस्तान एवं पंजाब से पाये गये हैं। इन सिक्कों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि इस क्षेत्र में कुषाण शासकों का शासन बना रहा। अफगानिस्तान, काश्मीर और पश्चिमी पंजाब में किदार कुषाण एवं उसके उत्तराधिकारियों के सिक्के प्राप्त हुए हैं जिससे यह सम्भावना है कि इनमें से कुछ कुषाण शासक प्रारंभिक गुप्त शासकों के समकालीन थे।

पंजाब, हरियाणा और राजस्थान के कुछ अन्य भागों से प्राप्त हुए पुराने सिक्के यह दर्शाते हैं कि इन क्षेत्रों में कई गणतंत्रीय राज्यों का अस्तित्व था। ये वे राज्य थे जिन पर किसी एक राजा का राज्य नहीं था। सम्भवतः उन पर कई सरदारों का शासन था, यह केवल संयोगवश होता था कि कोई-कोई सरदार स्वयं को एक कबीले के शासक के रूप में आरोपित करता था। जिन गणतंत्रों को गुप्त शासक समुद्रगुप्त ने विजित किया उनमें मद्रक, पंजाब में स्थित था, बहुत शक्तिशाली यौधेय वर्तमान हरियाणा में केन्द्रित थे और मालव राजस्थान में स्थित था। इसी भांति के अन्य गणतंत्र राज्य अस्तित्व में थे और उनमें से कुछ के नामों को गुप्त प्रमाणों में उल्लिखित किया गया है।

नागाओं की बहुत सी शाखाओं का भी उल्लेख हुआ है जो कुषाणों के पतन के बाद मथुरा तथा अन्य केन्द्रों पर उत्तर भारत में काफी शक्तिशाली हो गये। उत्तर भारतीय जिन शासकों को समुद्रगुप्त ने पराजित किया उनमें से कुछ निश्चित रूप से नागा जाति के थे।

32.2.2 पश्चिम और मध्य भारत

आप खंड 6 में पढ़ चुके हैं कि उत्तर-मौर्य काल में क्षत्रय शासकों की एक शाखा ने स्वयं को पश्चिम भारत के शासकों के रूप में स्थापित किया। क्षास्तन शाखा ने जिसका प्रसिद्ध शासक शक क्षत्रय रुद्रदमन था 304 ईसवी तक शासन किया और तत्पश्चात नये शासकों की शाखा ने शासन करना शुरू किया। फिर भी क्षत्रय शासन का अन्त चौथी सदी ई. के अन्तिम वर्षों में उस समय हुआ जबकि गुप्त शासक चन्द्रगुप्त-II ने उनको विजित किया और उनके क्षेत्रों का अधिग्रहण कर लिया। प्राचीन विदर्भ के क्षेत्र में जिसका केन्द्र बिन्दु उत्तर-पूर्वी महाराष्ट्र में स्थित नागपुर था, तीसरी शताब्दी ईसवी के मध्य में एक नयी राज शक्ति का उदय हुआ। यह शक्ति वाकाटक थी और शासकों की इस नवीन धारा का प्रारंभ विन्ध्याशक्ति के द्वारा किया गया था। वाकाटक राज्य शीघ्र ही शक्तिशाली हो गया और उसकी एक शाखा की स्थापना वस्त गुल्म (अकोला जनपद में आधुनिक वसिम) में भी की गई। बाद में वाकाटक वंश के गुप्तों के साथ वैवाहिक संबंध हो जाने के बाद घनिष्ठ संबंध कायम हो गये।

32.2.3 दक्खन और दक्षिण भारत

सातवाहन राज्य के पतन के साथ-साथ दक्खन के विभिन्न भागों में कई राजतंत्रीय परिवारों का उदय हुआ। आंध्र प्रदेश के तटीय क्षेत्र में इक्ष्वाकु, सलान्काय और दूसरे राजवंशों का राज्य कायम हो गया। कर्नाटक में सबसे महत्वपूर्ण शाही परिवार कदम्ब था। कदम्ब राज्य की स्थापना ब्राह्मण मौर्य सर्मन द्वारा की गयी थी और उसका तालगुण्डा शिलालेख, उन महत्वपूर्ण परिस्थितियों की जानकारी देता है जिनके अन्तर्गत कदम्ब राज्य की स्थापना एवं उसका प्रसार हुआ। पल्लवों का शासन तमिलनाडु में 9वीं शताब्दी ईसवी तक कायम रहा और वे तमिलनाडु में विशेष शक्तिशाली राजवंश बन गया तथा उनके प्रमाणों से प्राप्त साक्ष्यों से यह स्पष्ट

है कि उनका शासन तीसरी सदी ई. के मध्य से शुरू हुआ। प्रारंभिक पल्लव शासकों के अभिलेख प्राकृत भाषा में लिखे गए थे और वे तांबे की प्लेटों के रूप में थे। उनको 250 ई. से 350 ई. के बीच के समय का माना गया है। इस वंश के शिवंदावर्मन ने चौथी सदी ई. के प्रारम्भ में शासन किया। वह एक शक्तिशाली शासक था तथा उसने अपने राज्य में आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक एवं तमिलनाडु के कुछ भागों को शामिल किया। तमिलनाडु के शिंगलिपट जनपद में स्थित कांची या कांचीपुरम को पल्लवों ने अपने राज्य की राजधानी बनाया। जब गुप्त शासक समुद्रगुप्त ने दक्षिण में अपना सैनिक अभियान किया तो उसने पल्लेव नरेश विश्मिगोप को कांची में पराजित किया। उपरोक्त संक्षिप्त विवरण में बहुत से क्षेत्रों एवं राजतंत्रीय परिवारों का वर्णन नहीं किया गया है केवल उनके विषय में ही लिखा गया है जो तत्कालिक रूप से महत्वपूर्ण थे। यह भी रेखांकित किया जाना चाहिए कि बंगाल, उड़ीसा, मध्य प्रदेश के जंगलों एवं अन्य क्षेत्रों में पहली बार राज्यों का उदय हो रहा था। यह एक नयी विशेषता थी जो बाद के राजनैतिक इतिहास के लिये बड़ी ही महत्वपूर्ण है।

32.3 गुप्तों का प्रादुर्भाव

गुप्त वंश की वंशावली और प्रारंभिक इतिहास के बारे में बहुत कम जानकारी है जिसके फलस्वरूप बहुत सारी शंकायें उठ खड़ी हुई हैं। उनके नामों के बाद में गुप्त शब्द का प्रयोग होने से यह भी तर्क दिया गया है कि सातवाहन शिलालेख में प्रयोग हुए ''शिवगुप्त'' के साथ उनके वंश की उत्पत्ति का संबंध है। परंतु इस प्रकार के सुझाव स्थिति को जटिल बना देते हैं। विभिन्न विद्वान, उनकी उत्पत्ति के स्थान के विषय में विभिन्न स्थानों का नाम बताते हैं, कुछ उसको बंगाल में, कुछ बिहार में, मगध में और अन्य कुछ उत्तर प्रदेश को उनकी उत्पत्ति का स्थल बताते हैं। निम्नलिखित तर्कों के आधार पर इस समय हम यह कह सकते हैं कि गुप्तों की उत्पत्ति का स्थल पूर्वी उत्तर प्रदेश था:

- इलाहाबाद स्तम्भ अभिलेख जिसमें गुप्त के वंश के प्रारंभिक शासक की उपलब्धियों को उल्लेखित किया गया है, इसी क्षेत्र में स्थित है। इस क्षेत्र में पाये जाने वाले गुप्त शासकों के सिक्कों के भण्डार से भी ऐसा प्रतीत होता है।
- प्रारंभिक गुप्तों के क्षेत्रों के विषय में पुराणों में जो विवरण दिया गया है उससे भी इसका संकेत मिलता है।

यह भी संभव है कि तीसरी सदी ई. के अंतिम दशकों में कुषाण शासकों की एक शाखा के सहायकों के रूप में उत्तर-पश्चिम भारत में गुप्त शासक शासन करते हों। साहित्यिक एवं पुरातात्विक स्रोतों से स्पष्ट है कि वे चौथी सदी ई. के दूसरे दशक में स्वतंत्र शासक हो गये।

अभिलेख हमको बताते हैं कि श्रीगुप्त प्रथम राजा था और उसके बाद घटोत्कच राजा हुआ। चन्द्रगुप्त-I पहला स्वतंत्र राजा था जिसने महाराजाधिराज की उपाधि को धारण किया। मगध में अपनी स्वतंत्रता को घोषित करने के बाद लिच्छिवियों के साथ वैवाहिक संबंधों की मदद से उसने अपने राज्य का प्रसार किया। इस संबंध की जानकारी हमें एक विशेष प्रकार के सिक्कों से होती है। इन सिक्कों के अनुभाग पर चन्द्रगुप्त और उसकी रानी कुमारदेवी का चित्र बना हुआ है। और इनके दूसरे भाग पर लिच्छवायह (अर्थात् लिच्छवी) की कहानी से संबंधित बैठी देवी का चित्र बना है। ये सिक्के सोने के बने हुए हैं। गुप्तों ने सिक्कों के वजन के लिए कुषाण प्रणाली के सोने के सिक्कों का अनुसरण किया जिससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि गुप्त शासक कुषाण शासकों के क्षेत्रों से संबंधित थे।

चंद्रगुप्त के राज्य की सीमा निर्धारण के लिए कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। परंतु ऐसा माना जाता है कि उसके राज्य के अंतर्गत उत्तर प्रदेश, बिहार एवं बंगाल के भाग थे।

चंद्रगुप्त-I ने भी 319-320 ई. से नये वर्ष का प्रारम्भ किया। यह किसी भी प्रमाण से स्पष्ट नहीं है कि उसने वास्तव में नये वर्ष का प्रारम्भ किया जिसको गुप्त संवत के नाम से जांना जाता है परन्तु चन्द्रगुप्त-I ने महाराजाधिकार की उपाधि धारण की थी, इसीलिए ऐसा माना जाता है कि उसने एक नवीन वर्ष का प्रारम्भ किया। उसके पुत्र समुद्रगुप्त के शासन काल में गुप्त साम्राज्य का काफी प्रसार हुआ।

32.3.1 समुद्रगुप्त

इलाहाबाद में स्थित अशोक के स्तम्भ पर एक अभिलेख (बाद की तारीख में) खुदा हुआ है (जिसको प्रयाग प्रशस्ति नाम से भी जाना जाता है) जो समुद्रगुप्त के सिंहासना रोहण और विजयों के विषय में सूचनायें देता

है। हरिषेण नाम के एक महत्वपूर्ण राज्यधिकारी ने 33 पंक्तियों को संकलित किया था और उन्हीं को इस स्तम्भ पर खुदवाया गया है। अभिलेख में उद्धत है कि महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त-I ने अति भावनात्मक आवाज में अपने पुत्र समुद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। यह सभी दरबारियों के आनन्द की अनुभूति और बहुत से राज्य परिवार वालों की ईर्ष्या का कारण बना। इससे यह भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जो राज कुमार राजा बनने का दावा पेश कर रहे थे उनको इस घोषणा के द्वारा शांत कर दिया गया। कच्छ के नाम से जारी किये गये कुछ सोने के सिक्कों की प्राप्ति ने इस संबंध में विवाद को एक नया मोड़ दिया। यह विवाद इस लिये उत्पन्न हुआ क्योंकि I) कच्छ के सिक्के बिल्कुल समुद्रगुप्त के सिक्कों के ही समान हैं II) कच्छ का नाम गुप्त शासकों की अधिकृत सूची में शामिल नहीं है जैसे कि वह गुप्त शासकों के अन्य अभिलेखों में वर्णित है। इस सन्दर्भ में बहुत से तर्क प्रस्तुत किये गये हैं :

- एक परिभाषा यह दी जाती है कि समुद्रगुप्त के भाइयों ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और सबसे बड़े भाई कच्छ को सिंहासन पर बैठा दिया। किन्तु उत्तराधिकार की लड़ाई में वह मारा गया।
- दूसरा विचार यह है कि समुद्रगुप्त ने अपने भाई की स्मृति में इन सिक्कों को जारी किया।
- तीसरे विचार के अनुसार समुद्रगुप्त का प्रारंभिक नाम कच्छ था और दक्षिण की विजय करने के बाद उसने समुद्रगुप्त नाम को धारण किया।

इस विवाद का कोई हल नहीं है क्योंकि प्रत्येक विचार के समर्थन एवं विरोध में तर्क दिये जा सकते हैं। हम केवल यही कह सकते हैं कि कच्छ के सिक्के इतनी कम संख्या में पाये गये हैं कि अगर वह सिंहासन पर बैठा तो बहुत थोड़े समय के लिये। यह भी है कि चन्द्रगुप्त की उद्घोषणा के बावजूद भी समुद्रगुप्त ने सिंहासन के उत्तराधिकार के संबंध में समस्या का सामना किया हो किन्तु अंततः उसने इस पर विजय प्राप्त की।

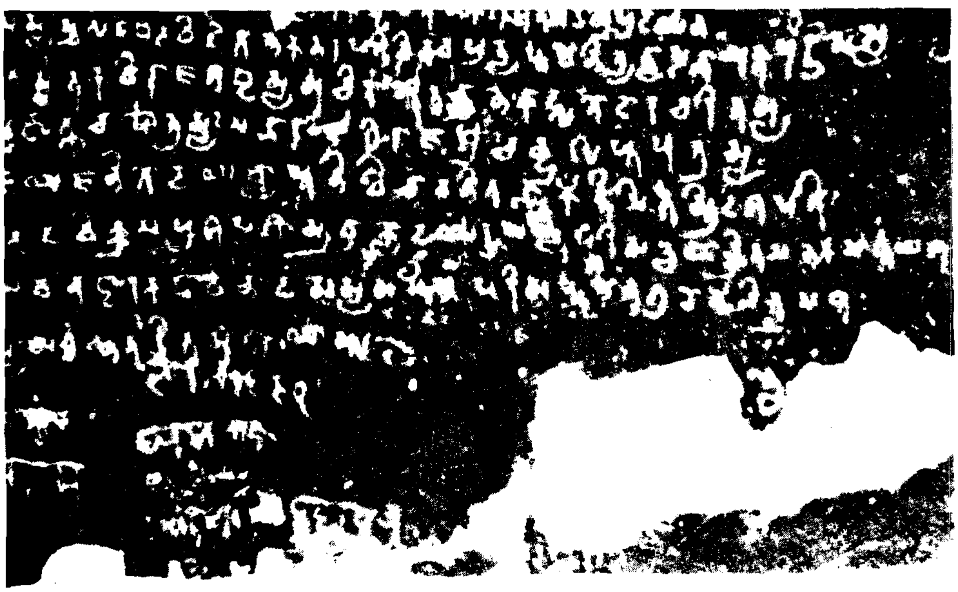

1. समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति

32.3.2 प्रसार एवं सुदृढ़ीकरण

गुप्त शक्ति के प्रसार एवं सुदृढ़ीकरण के लिये समुद्रगुप्त ने विजयों की आक्रामक नीति को अपनाया। इससे उस प्रक्रिया का श्रीगणेश हुआ जिसकी पराकाष्ठा गुप्त साम्राज्य के निर्माण के रूप में हुई। हमें इस वास्तविकता को भी रेखांकित करना चाहिये कि कुछ क्षेत्रों में विशेषकर दक्षिण में, उसने उन राजाओं को पुनः स्थापित किया जिनको उसने पराजित किया था तथा उन क्षेत्रों पर अपने शासन को कायम भी रखा। वास्तव में उन शासकों ने उसके अधिपात्य को स्वीकार किया और उसको उपहार भेंट किये। इस प्रकार की नीति का अनुसरण उन क्षेत्रों के लिये किया गया जो काफी दूरी पर थे और इससे सम्पर्क की समस्या का हल कर लिया गया तथा यह नीति काफी लाभदायक सिद्ध हुई और इससे कारगर नियंत्रण भी कायम रखा जा सका। इस नीति से कुछ समय के लिये स्थायित्व भी स्थापित हो गया। अब हम संक्षेप में समुद्रगुप्त द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में अपनायी गई आक्रामक नीति की विवेचना करेंगे। यह तथ्य हम पुनः बता दें कि समुद्रगुप्त के जिन सभी सैनिक अभियानों का विवरण हम प्रस्तुत कर रहे हैं कि वे सभी हरिषेण की प्रयाग प्रशस्ति पर आधारित है।

1) आर्यव्रत में सैनिक अभियान

कुछ इतिहासकारों का मानना है कि समुद्रगुप्त ने आर्यव्रत में केवल एक बार अपना सैनिक अभियान किया। परन्तु कुछ अन्य इतिहासकारों का कहना है कि प्रयागप्रशस्ति में समुद्रगुप्त की विजयों का विवरण समयानुसार दिया गया है। जिसका यह अर्थ निकलता है कि समुद्रगुप्त ने उत्तर भारत में दो अभियान चलाये। ऐसा इसलिये है कि पहले आर्यव्रत के तीन राजाओं का नाम उद्धत है और फिर उसके दक्षिण अभियान को उद्धत किया गया है तथा फिर आर्यव्रत के नौ राजाओं के नामों को उद्धत किया गया है ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्रगुप्त के उत्तराधिकार के संघर्ष में फंसा हुआ होने के कारण कुछ शासकों ने अपने आधिपत्य को स्थापित करने का प्रयास किया। इस संदर्भ में यह भी हो सकता है कि समुद्रगुप्त ने अच्युत नागसेन और काय-कुलजा को पराजित किया हो। इन विजयों के विषय में कोई विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं है और न ही उन विशेष क्षेत्रों की विशेष जानकारी है जिन पर ये शासक शासन करते थे। फिर भी इतिहासकारों का कहना है कि अच्युत अहिच्छत्र पर, नागसेना ग्वालियर क्षेत्र पर और कोटा-कुलजा या कोटा परिवार पूर्वी पंजाब और दिल्ली क्षेत्रों के उपर शासन कर रहे थे। यद्यपि इन क्षेत्रों की स्पष्टतः पहिचान करने पर भिन्नातायें हैं परन्तु यह स्पष्ट है कि समुद्रगुप्त ने उनको पराजित कर न केवल गंगा घाटी पर अपना अधिकार कर लिया बल्कि उसके आस-पास के क्षेत्र भी उसके नियंत्रण के अंतर्गत आ गये।

2) दक्षिण में अभियान

प्रयाग प्रशस्ति में दक्षिणपथ या दक्षिण भारत के 12 शासकों के नाम दिये गये हैं जिनको समुद्रगुप्त ने पराजित किया था। ये निम्नलिखित थे —

- कोसल (रायपुर, दुर्ग, सम्बलपुर, और बिलासपुर जिले) के शासक महेन्द्र।
- महाकन्दरा (उड़ीसा प्रदेश का जेयपुर जंगल) के शासक व्याधराज।
- कोरता (संभवतः मध्य प्रदेश का सोनपुर क्षेत्र या महेन्द्र पहाड़ी का उत्तर-पूर्वी मैदानी भाग) का शासक मन्तराज।
- पिष्टपुर (पिठा सुरम, पूर्वी गोदावरी जिला) का महेन्द्रगिरि।
- कोट्टूरा (गंजाम जिला) का स्वामीदत्ता)
- सरंदपल्ला (चिकाकोले या पश्चिमी गोदावरी जिला) का दमन।
- कांची (चिंग्लेपुट् जिला) का विष्णुगोप।
- अवामुक्ता (गोदावरी घाटी) का नीलराज।
- वेंगी (कृष्णा-गोदावरी डेल्टा में सिलोर) का हस्तीवमंन
- पालक्का (नोललोर जिला) का अग्रसेन।
- देवराष्ट्रा (विशाकापट्टम जिले में ये ललामं चीती) का कुबेर।
- कुस्थलपुर (संभवतः तमिलनाडु के उत्तरी अरकोट में) का धानजय।

पुनः इन राजाओं और इनके राज्यों की पहिचान को लेकर इतिहासकारों के बीच मत भेद है। प्रयागप्रशस्ति बताती है कि समुद्रगुप्त ने दक्षिणपथ के राजाओं के प्रति अपनी सहानुभूति को दिखाया क्योंकि पहले तो उसने उनको पकड़ (ग्रहण) लिया और फिर उनको छोड़ (मुक्त कर) दिया।

समुद्रगुप्त ने आर्यव्रत या उत्तरी भारत के राजाओं की अपेक्षा दक्षिण पथ के राजाओं के प्रति पूर्णतः भिन्न नीति का अनुसरण किया। उसने आर्यव्रत के राजाओं को न केवल पराजित किया बल्कि उनके राज्य गुप्त साम्राज्य के अभिन्न अंग बन गये। उत्तरी भारत में पराजित राजा इस प्रकार थेः रूद्रदेव, मतिला, नागदत्त, चन्द्रवर्मा, गणपति नाग, नागसेन्र, अच्युंत, नन्दी, बलवर्मा और अन्य। उन सबकी पहचान करना असंभव है, लेकिन यह निश्चित है कि वे सब उत्तरी भारत के विभिन्न क्षेत्रों पर शासन कर रहे थे। उनमें से कुछ निश्चित रूप से नागराजा थे जो गुप्तों से पूर्व बहुत से क्षेत्रों में शक्तिशाली थे। कुछ शासक जैसे कि चन्द्रवर्मा जो पश्चिमी बंगाल के क्षेत्र पर शासन करता था, नये वंशों का प्रतिनिधित्व करते थे। प्रशस्ति में आगे विवरण है कि वन क्षेत्रों के सभी राज्यों को समुद्रगुप्त ने सेवकों जैसी स्थिति मे पहुंचा दिया। दूसरी श्रेणी में सीमावर्ती राज्यों जैसे कि सामतट (दक्षिण-पूर्वी बंगाल), कामरूप (असम), नेपाल आदि, गणतांत्रिक राज्यों जैसे कि मालवा, योधेय, मद्रक, अमिर आदि का वर्णन है।

इन राज्यों ने वस्तुओं के रूप में भेंट और नजराना दिया, उसकी आज्ञाओं का पालन किया और उन्होंने उसकी उपासना की। अन्य श्रेणी के राज्यों के शासकों ने उसकी सम्प्रभुता को दूसरे रूपों में स्वीकार किया। उन्होंने "स्वयं को समर्पित करके, अपनी पुत्रियों को विवाह के लिये प्रस्तुत किया और स्वयं अपने राज्यों एवं जिलों का प्रशासन करने के लिये उससे प्रार्थना की"। इसका तात्पर्य यह हुआ कि वे अधीनस्थ राज्य थे और उनको अपनी स्वतंत्रता के लिये समुद्रगुप्त की स्वीकृति प्राप्त करनी पड़ती थी। इस श्रेणी में उत्तर पश्चिम भारत के विदेशी शासकों जैसे कि अन्तिम कुषाणों और शकों को तथा इसमें विभिन्न द्वीपों जैसे कि सिहला या श्रीलंका के शासकों को भी शामिल किया जा सकता है।

प्रयागप्रशस्ति के संकलनकर्ता हरिषेण के द्वारा दिये गये इस विवरण में कुछ को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर लिखा गया है परन्तु कुछ इनमें उचित ही हैं। परन्तु यह निश्चित है कि गुप्त साम्राज्य की सैनिक आधारशिला समुद्रगुप्त द्वारा रखी गयी और उसके उत्तराधिकारियों ने इसी आधारशिला पर गुप्त साम्राज्य का निर्माण किया।

बोध प्रश्न 1

1) रिक्त स्थानों को भरिये—
   अ) चौथी सदी ईसवी के प्रारंभ के समय उत्तर भारत में .... (बहुत से/कोई नहीं) छोटे राज्य थे।

   ब) चन्द्रगुप्त-I का .... (शकों/लिच्छवियों) के साथ वैवाहिक संबंध था।

   स) प्रयागप्रशस्ति में .... (प्रवरसेन/समुद्रगुप्त) की विजयों का वर्णन है।

2) गुप्त साम्राज्य के प्रसार के लिये समुद्रगुप्त के द्वारा जो प्रयत्न किये गये उनका 10 पंक्तियों में वर्णन कीजिये।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

3) चौथी सदी ईसवी के प्रारंभ पर उत्तरी भारत में पांच छोटी राज्यशक्तियों की सूची बनाइये।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

32.4 चन्द्रगुप्त-II

गुप्त अभिलेखों में उद्धत है कि समुद्रगुप्त का उत्तराधिकारी चन्द्रगुप्त-II था। लेकिन कुछ साहित्यिक स्रोतों और तांबे के सिक्कों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि समुद्रगुप्त का उत्तराधिकारी रामगुप्त था। विशाखदत्त ने अपने नाटक देवीचन्द्रगुप्तम में लिखा है कि चन्द्रगुप्त-II ने अपने बड़े भाई रामगुप्त की हत्या

की। उसने ऐसा इसलिये किया कि रामगुप्त की शकों के हाथों पराजय होने वाली थी और अपने राज्य को बचाने के लिये वह अपनी पत्नी को शक राजा को समर्पित करने के लिये सहमत हो गया। चन्द्रगुप्त ने इसका विरोध किया और वह भेष बदलकर ध्रुवदेवी के भेष में शक राजा के कैम्प में गया। उसने शक राजा के विरुद्ध सफलता प्राप्त की परन्तु इसी घटनाक्रम में अपनी भाई के प्रति शत्रुता के कारण उसने उसकी भी हत्या कर दी और ध्रुवदेवी के साथ विवाह कर लिया। कुछ अन्य ग्रन्थों जैसे कि हर्षचरित, काव्यमीमांसा आदि में भी इस घटनाक्रम का वर्णन है। रामगुप्त के नाम से खुदे कुछ तांबे के सिक्के पाये गये हैं और विदिशा से प्राप्त हुई जैन मूर्तियों के आधार पर खुदे अभिलेखों में महाराज रामगुप्त का नाम है। इसी प्रकार, वैशाली की एक मोहर पर ध्रुवदेवी को गोविन्दगुप्त (चन्द्रगुप्त का पुत्र) की माता के रूप में उद्धृत किया है। हम कह सकते हैं कि चन्द्रगुप्त सिंहासन पर उस समय बैठा जबकि पुनः गुप्त साम्राज्य के सम्मुख समस्यायें पैदा हो गई थीं और दोबारा गुप्त सार्वभौमिकता को स्थापित करने के लिये उसे सैनिक अभियान का संचालन करना पड़ा। उसने नागा राजकुमारी कुबेरनाग के साथ विवाह करके नागाओं के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किये और बाद में उसकी बेटी प्रभावती का विवाह उसने बाकाटक वंश के राजा रूद्रसेन-II के साथ किया। यद्यपि उसके शासनकाल की घटनाओं का उल्लेख प्रयागप्रशस्ति के रूप में नहीं हुआ है फिर भी हमें चन्द्रगुप्त के अभियानों, एवं सफलताओं की सूचनायें कुछ निश्चित अभिलेखों, साहित्यिक स्रोतों और सिक्कों से निम्नलिखित प्रकार से प्राप्त हैं:

उसने शक नरेश रूद्रसिंह-III को पराजित किया और उसके राज्य का अधिग्रहण कर लिया। इससे पश्चिमी भारत में शक क्षत्रय शासन का अंत हो गया और गुजरात, काठियावाड़ तथा दक्षिण मालवा गुप्त साम्राज्य के अंग बन गये। चन्द्रगुप्त के शकों के विरुद्ध अभियान की विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं है। उसके नागाओं और वाकाटकों के साथ वैवाहिक संबंधों का अभियानों की तैयारी के लिये विशेष महत्व है। सांची के पास विधागिरि की गुफाओं के अभिलेख तथा सांची के एक अभिलेख में चन्द्रगुप्त-II, उसके अधीनस्थ राजाओं एवं सैनिक अधिकारियों का संदर्भ है जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा गया है कि अपने अभियानों की तैयारी के लिये वह कुछ समय के लिये पूर्वी मालवा में ठहरा। एक अभिलेख में उसको उद्धृत करते हुए कहा गया है कि वह सम्पूर्ण भू-भाग को विजयी करने की आकांक्षा रखता था।'' शक शासकों के प्रदेशों की उसके द्वारा विजय लगभग सम्पूर्ण थी क्योंकि:

- इस काल के बाद शकों द्वारा जारी किये गये सिक्के प्राप्त नहीं होते यद्यपि बिना किसी अवरोध के उनके द्वारा जारी किये गये/पहली चार शताब्दियों के सिक्के मिलते हैं।

- इस क्षेत्र के लिये गुप्त शासकों ने चन्द्रगुप्त के समय से ही शकों के सिक्कों की भांति के चांदी के सिक्के जारी किये। उन्होंने इन सिक्कों में केवल अपने विशेष चिन्हों को जोड़ा अन्यथा ये सिक्के शकों के सिक्कों के जैसे ही थे। यह निश्चित रूप से यह दर्शाता है कि शक-क्षेत्रों को चन्द्रगुप्त-II ने अपने नियंत्रण में कर लिया।

- बाद में चलकर चन्द्रगुप्त-II की शकों के विरुद्ध यह सफलता शकारी विक्रमादित्य परम्परा मे बदल गई जिसका अर्थ है कि"विक्रमादित्य'' शकों का शत्रु था।

- महरौली के लोह स्तम्भ पर अंकित अभिलेख में जो दिल्ली में कुतुब-मीनार प्रांगण में स्थित है, ''नरेश चन्द्र'' की तुलना भी विद्वानों के द्वारा चन्द्रगुप्त द्वितीय के साथ की है। इस अभिलेख के अनुसार चन्द्रगुप्त ने सात नदियों के सिंधु क्षेत्र का पार कर वालहिकाओं (इसकी पहिचान बैक्ट्रिया के रूप में की गई है) को पराजित किया। कुछ विद्वानों ने चन्द्रगुप्त-II की तुलना कालिदास के नाटक रघुवंश के मुख्य पात्र रघु क साथ की है क्योंकि रघु की विजयों की तुलना चन्द्रगुप्त-II की विजयों से की जा सकती है।

- महरौली अभिलेख में बंगा (बंगाल) के शत्रुओं पर चन्द्रगुप्त की विजय का उल्लेख है।

इन प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने गुप्त साम्राज्य की सीमाओं को पश्चिम, उत्तर पश्चिम और पूर्वी भारत की सीमाओं तक बढ़ा दिया।

इस समय की सबसे महत्वपूर्ण घटना है कि चीनी यात्री फाह्यामीन बौद्ध, धर्म के ग्रंथों की खोज में भारत आया था। उसने अपने संस्मरणों के अन्तर्गत उन विभिन्न स्थानों का विवरण किया है जहां भी वह गया और उसने इसमें उस समय की कुछ निश्चित सामाजिक एवं प्रशासनिक विशेषताओं का भी उल्लेख किया है। परन्तु उसने अपने संस्मरणों में उस, समय के राजा के नाम का उल्लेख नहीं किया है। परन्तु उसने मध्य देश के जो उस समय गुप्त शासक के सीधे नियंत्रण में था, राजा की बड़ी प्रशंसा की है और उसके अधीन जनता सम्पन्न एवं प्रसन्न थी।

चन्द्रगुप्त-II के विद्वानों को भी संरक्षण प्रदान किया। उसने 415-16 ई. तक शासन किया।

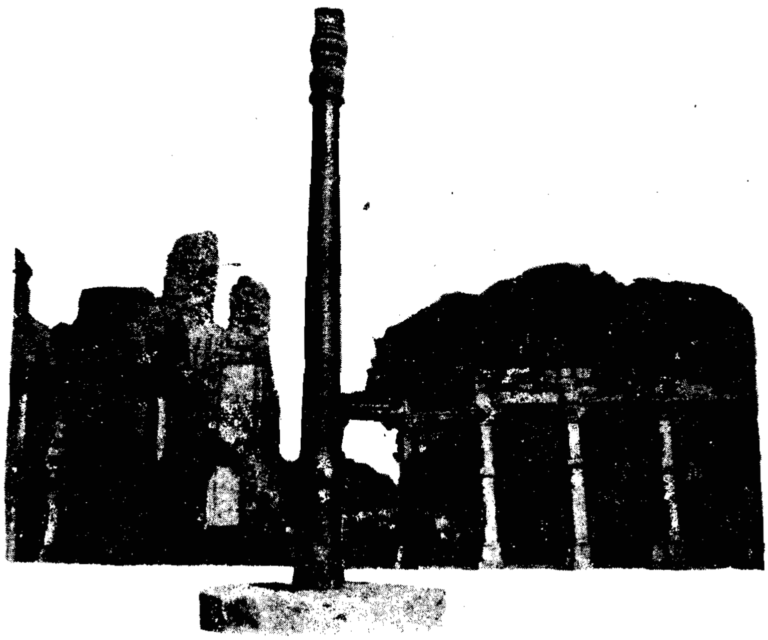

2. महरौली का लोह स्तम्भ

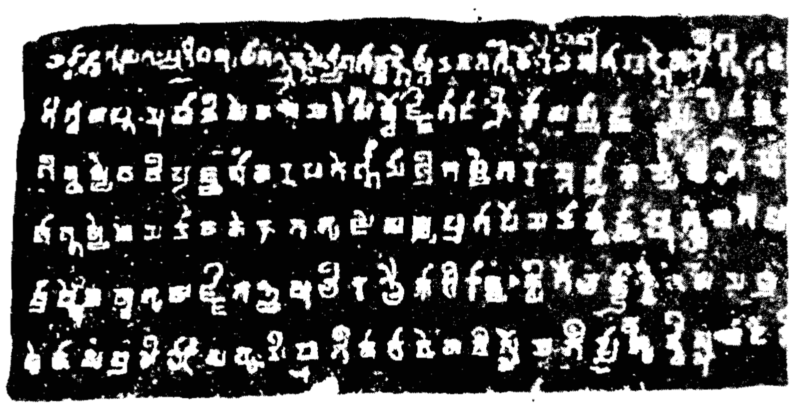

3. लोह स्तम्भ का लेख

32.5 कुमारगुप्त- I

चन्द्रगुप्त द्वितीय का उत्तराधिकारी उसका पुत्र कुमारगुप्त था। उसके विषय में हमें कुछ निश्चित अभिलेखों एवं सिक्कों से सूचनायें प्राप्त होती हैं। जो इस प्रकार हैं:

- उसके प्रारंभिक काल का अभिलेख वह है जो बिलसाड़ (एटा जिला) से प्राप्त हुआ है और जिसकी तिथि 415 ई. (गुप्ता तिथि 96) है।
- करमदंद (फैजाबाद) से प्राप्त उसके मन्त्री के अभिलेख (436 ई.) में उल्लेख है कि उसकी प्रसिद्धि चारों समुद्रों तक फैल गई।
- मन्दसौर से प्राप्त शिला अभिलेख (436 ई.) में उल्लेख है कि कुमारगुप्त का शासन सम्पूर्ण भू-भाग पर था।
- दामोदरपुर ताम्र प्लेट अभिलेखों (443 ई. और 447 ई.) में उसका उल्लेख महाराजाधिराज के साथ हुआ है और उसने स्वयं को अपने साम्राज्य के सबसे बड़े प्रशासनिक क्षेत्र पुण्डरवर्धन मुक्ति (प्रांत) का राज्यपाल (उपारिका) नियुक्त किया।
- कुमारगुप्त की अंतिम तिथि की जानकारी उसके चांदी के सिक्के 445 ई. (गुप्ता संवत् 136) से प्राप्त होती है।

उसके अभिलेख विशाल क्षेत्र में वितरित थे जिससे स्पष्ट है कि उसका शासन पूर्व में मगध एवं बंगाल तक और पश्चिम में गुजरात तक फैला हुआ था। उसने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। ऐसा कहा जाता है कि उसके शासन के अंतिम वर्षों में विदेशी आक्रमण हुआ जिसको उसके पुत्र स्कन्दगुप्त के प्रयत्नों के फलस्वरूप रोका जा सका। उसके वाकाटक शासकों के साथ मधुर संबंध थे जिनको पहले ही वैवाहिक संबंधों के द्वारा स्थापित किया गया था।

4. कुमारगुप्त के अभिलेख

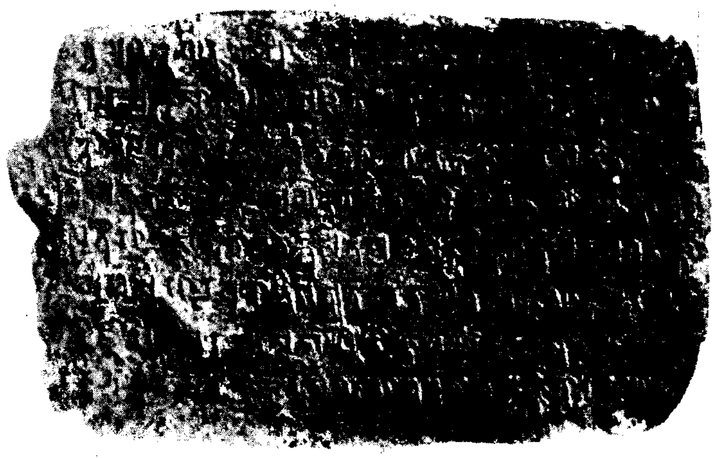

(अ) कुमारगुप्त के अभिलेख

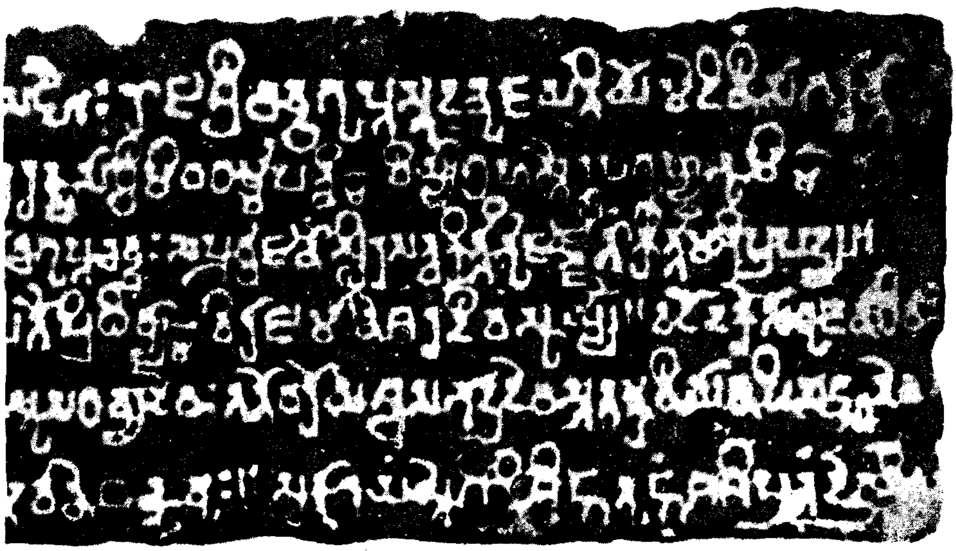

(ब) तुमन

32.6 स्कन्दगुप्त

स्कन्दगुप्त, कुमारगुप्त का उत्तराधिकारी बना और जो संभवतः गुप्त वंश का अंतिम शक्तिशाली शासक था। अपनी स्थिति को मजबूत करने के लिये उसको पुष्यमित्रों के साथ संघर्ष करना पड़ा और इसी समय देश की उत्तर-पश्चिमी सीमाओं के पार हूणों के आक्रमणों का सामना करना पड़ा। स्कन्दगुप्त ने सफलतापूर्वक हूण आक्रमण को पीछे ढकेल दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि इन युद्धों के कारण साम्राज्य की अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ा और स्कन्दगुप्त के द्वारा जारी किये गये सोने के सिक्के इस बात का स्पष्ट प्रमाण है। प्रारम्भिक शासकों के द्वारा जारी किये गये सोने के सिक्को की तुलना में स्कन्दगुप्त के द्वारा जारी किये गये सिक्को में सोने की मात्रा काफी कम थी। यद्यपि उसके द्वारा जारी किये गये सिक्कों में सोने की मात्रा काफी कम थी। यद्यपि उसके द्वारा जारी किये गये सिक्कों का वजन प्रारंभिक सोने के सिक्कों से अधिक था किन्तु उसके सिक्कों में सोने की मात्रा पहले सिक्कों से काफी कम थी। यह भी प्रतीत होता है कि गुप्त वंश का

वह अंतिम शासक था जिसने पश्चिमी भारत में चांदी के सिक्कों को जारी किया था। उसके जूनागढ़ अभिलेख में उल्लेख है कि उसने अपने शासन काल में जनहित के कार्यों को भी किया। सुदर्शन झील (जिसका निर्माण मौर्य काल में हुआ था) भारी वर्षा के कारण फट गयी थी परन्तु उसके शासन के प्रारंभिक वर्षों में उसके गवर्नर परनदत ने इसकी मरम्मत करायी। इससे स्पष्ट है कि राज्य ने जनहित के कार्यों को भी किया। स्कन्दगुप्त की अंतिम तिथि 467 ई. के बारे में जानकारी उसके चांदी के सिक्कों से प्राप्त होती है।

स्कन्दगुप्त के बाद के गुप्त शासक

यह बहुत स्पष्ट नहीं है कि स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारियों ने किस क्रम में शासन किया। स्कन्दगुप्त भी स्वयं सिंहासन का उचित अधिकारी नहीं था, इसलिये उसको सिंहासन प्राप्त करने के लिये अन्य दावेदारों के साथ संघर्ष करना पड़ा। यही कारण है कि एक मोहर अभिलेख में स्कन्दगुप्त के बाद शासकों के क्रम को स्कन्दगुप्त से नहीं अपितु कुमारगुप्त -I और उसके पुत्र पुरूगुप्त से उल्लेखित किया गया है। दुसरे, यह भी संभव है कि गुप्त साम्राज्य का विभिन्न क्षेत्रों में विघटन स्कन्दगुप्त के शासन के अंतिम वर्षों में ही प्रारंभ हो गया हो । इसी कारणवश पश्चिम मालवा से प्राप्त एक अभिलेख में जो उसके शासन काल के अंतिम वर्ष का है स्कन्दगुप्त के नाम का उल्लेख नहीं है परन्तु इसका प्रारंभ अन्य शासकों के नाम जैसे कि चन्द्रगुप्त-II के नाम से होता है।

अभिलेखों में स्कन्दगुप्त के जिन उत्तराधिकारियों का उल्लेख हुआ है वे इस प्रकार थेः बुद्धगुप्त, वैन्यगुप्त, भान-गुप्त, नरसिंहम गुप्त बालादित्य, कुमारगुप्त-II और विष्णु गुप्त। इसकी कोई संभावना नहीं है कि इन शासकों ने विशाल साम्राज्य पर प्रारंभिक काल के गुप्त शासकों चन्द्रगुप्त-II और कुमारगुप्त-I की भांति शासन किया हो। गुप्तों का शासन 550 ई. तक जारी रहा परन्तु उनकी ह्रास होती शक्ति का कोई महत्व नहीं रह गया था।

32.7 गुप्त साम्राज्य का विघटन

इस भाग में हम उन कारणों का विवरण करेंगे जो गुप्त साम्राज्य के पतन के लिये उत्तरदायी थेः

1) हुण आक्रमण

कुमारगुप्त-I के शासन काल से ही उत्तरी-पश्चिमी सीमाओं को हुणों ने आक्रांत करना शुरू कर दिया। हुण सेन्ट्रल एशिया का एक कबीला था जो सफलतापूर्वक विभिन्न दिशाओं में बढ़ रहा था और जिसने उत्तरी-पश्चिम, उत्तरी और पश्चिमी भारत में कई स्थानों पर अपने राज्यों की स्थापना कर ली थी। परन्तु इस समय में उनके आक्रमणों को निष्क्रिय कर दिया गया था। परन्तु पांचवीं सदी ई. के अंत में हुण सरदार तोरमण ने पश्चिमी एवं केन्द्रीय भारत के अधिकतर भागों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। उसके बेटे मिहिरकुल ने अपने आधिपत्य को ओर आगे बढ़ाया। इस प्रकार हुणों का आक्रमण विशेषकर उत्तरी-पश्चिमी और दक्षिणी क्षेत्रों में गुप्ता प्रभुत्व के लिये बहुत घातक साबित हुआ।

2) प्रशासनिक कमजोरियां

जिन पराजित राजाओं ने गुप्त शासकों के सामन्तीय प्रभुत्व को स्वीकार कर लिया उन स्थानीय सरदारों या राजाओं को पुनः स्थापित करने की नीति का अनुसरण गुप्त राजाओं ने किया। वास्तव में, इन क्षेत्रों पर कठोर और प्रभावकारी नियंत्रण को स्थापित करने के लिये कोई प्रयत्न नहीं किये गये। इस प्रकार यह स्वाभाविक ही था कि जब कभी भी उत्तराधिकार के प्रश्न या कमजोर राजा को लेकर गुप्त साम्राज्य में कोई संकट होता तो इसके अन्दर ही स्थानीय सरदार अपने स्वतंत्र प्रभुत्व को पुनः स्थापित कर लेते इससे प्रत्येक गुप्त सम्राट के लिये एक समस्या होती और उसे अपने प्रभुत्व को पुर्नस्थापित करना पड़ता। लगातार सैनिक अभियानों के कारण राज्य के कोष पर अतिरिक्त भार पड़ता था। पांचवी सदी ईसवी के अंत और छठी सदी ई. के प्रारंभ में, कमजोर सम्राटों का लाभ उठाते हुए बहुत सी स्थानीय शक्तियों ने पुनः अपने प्रभुत्व को स्थापित कर लिया और समय मिलने पर अपनी स्वतंत्रता को घोषित कर दिया। इन शक्तियों के विषय में आप इकाई 34 में पढ़ेंगे।

इनके अलावा ओर भी अन्य कारण थे जिन्होंने गुप्त साम्राज्य की शक्ति को क्षीण किया उदाहरण के लिये यह तर्क दिया जाता है कि गुप्त शासकों ने ब्राह्मणों के भूमि दान के पत्र जारी किये और इस प्रक्रिया के दौरान उन्होंने अपने राजस्व एवं प्रशासनिक अधिकारों को दान मिलने वालों के पक्ष में समर्पित कर दिया। ऐसा विश्वास किया जाता है कि सामंत व्यवस्था के अंतर्गत सामंतों ने जो केन्द्रीय शक्ति के सहायक के रूप

में शासन करते थे, गुप्त काल में अपनी शक्ति को मजबूत करना शुरू कर दिया। इसी के कारण गुप्त शासकों का प्रशासन कमजोर होने लगा। इस विषय में भिन्न-भिन्न मत हैं कि इस व्यवस्था की उत्पत्ति कैसे हुई और इस व्यवस्था की विस्तृत जानकारी के संबंध में भी विभिन्न मत हैं। परन्तु गुप्त साम्राज्य के अंतर्गत बडी संख्या में सामंतों की उपस्थिति यह स्पष्ट करती है कि उन्होंने गुप्त अधिपत्य से स्वतंत्र रूप से अपनी शक्ति को मजबूत किया।

इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि शाही परिवार के आंतरिक विभाजनों ने स्थानीय सरदारों या गवर्नरों के हाथों में शक्ति के सुदृढ़ीकरण और साम्राज्य की कमजोर प्रशानिक व्यवस्था ने गुप्त साम्राज्य के विघटन में योगदान किया।

बोध प्रश्न 2

1) चन्द्रगुप्त-II के सैनिक अभियानों का वर्णन 10 पंक्तियों में कीजिये।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) गुप्त साम्राज्य के विघटन के कारणों की विवेचना 10 पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) निम्नलिखित में से कौन सा कथन सही या गलत है।

i) कुमारगुप्त के समय में हुण आक्रमण को स्कन्दगुप्त के द्वारा रोका गया।

ii) फाह्यान जैन ग्रंथों की खोज में भारत आया।

iii) रामगुप्त को चन्द्रगुप्त-II का बड़ा भाई कहा गया है।

iv) कुमारगुप्त ने अश्वमेध प्रकार के सिक्कों को जारी किया।

v) सुदर्शन झील की मरम्मत स्कन्दगुप्त के शासन के दौरान हुई।

32.8 सारांश

चौथी सदी ईसवी के प्रारंभ में उत्तरी भारत बहुत से छोटे-छोटे राज्यों एवं रियायतों में विभाजित था। ये राज्य जो विभिन्न क्षेत्रों में थे अक्सर एक दूसरे से संघर्ष करते रहते थे। इस प्रकार अराजनैतिक परिस्थितियों में गुप्त वंश ने शक्ति को प्राप्त किया और क्रमशः एक साम्राज्य की स्थापना की। इस वंश के कई राजाओं ने विभिन्न क्षेत्रों में सैनिक अभियानों का संचालन किया। शाही शक्ति को समुद्रगुप्त एवं चन्द्रगुप्त-II के शासन काल में सही प्रकार से संगठित किया गया। गुप्तों की शक्ति स्कन्दगुप्त के शासन काल के समय तक काफी मजबूत थी परन्तु उसके बाद विघटन की प्रक्रिया का प्रारंभ हो गया। बहुत से कारणों जैसे कि विदेशी आक्रमण, शासक परिवार के अंतर्गत मतभेद, स्थानीय सरदारों के द्वारा पुनः अपनी शक्ति को स्थापित करना, प्रशासनिक कमजोरी आदि ने साम्राज्य के विघटन की प्रक्रिया को और तेज किया।

32.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) अ) बहुत से   ब) लिच्छवियों   स) समुद्रगुप्त

2) उपभाग 32.3.2 देखें।

3) यौधेय, मालवा, नाग, मद्रक और बाद में कुषाण।

   उपभाग 32.2.1 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 32.4 देखें।

2) भाग 32.8 देखें।

3) i) √ ii) × iii) √ (iv) √ (v) √

इकाई 33 गुप्तकालः अर्थव्यवस्था, समाज और राजतंत्र

इकाई की रूपरेखा

33.0 उद्देश्य

33.1 प्रस्तावना

33.2 गुप्त साम्राज्य के अंतर्गत प्रशासन

- 33.2.1 राजा
- 33.2.2 मंत्रि-परिषद और दूसरे अधिकारीगण
- 33.2.3 सेना
- 33.2.4 राजस्व प्रशासन
- 33.2.5 प्रांत, जिले और ग्राम

33.3 अर्थव्यवस्था

- 33.3.1 कृषि
- 33.3.2 दस्तकारी उत्पादन और व्यापार

33.4 समाज

33.5 सारांश

33.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

33.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आपः

- गुप्तकालीन प्रशासन के विभिन्न पहलुओं के बारे में जान सकेंगे।
- यह समझ सकेंगे की गुप्तकाल में कृषि, कारीगर उत्पादन और व्यापार की क्या स्थिति थी।
- गुप्तकालीन सामाजिक स्थिति के सन्दर्भ में जानकारी हासिल कर सकेंगे, और
- इस काल में जो परिवर्तन आर्थिक व सामाजिक स्थिति में हुए, उनको समझ सकेंगे।

33.1 प्रस्तावना

हमने पहले आपको गुप्तकालीन (इकाई 32) राजनैतिक इतिहास से भली-भांति अवगत कराया और अब हम आपको इस काल की अन्य विशेषताओं से अवगत करायेंगे। इस काल के ऐसे बहुत से अन्य स्रोत हैं जो हमको उस समय की आर्थिक सामाजिक, प्रशासनिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं के विषय में जानकारी उपलब्ध कराते हैं। वे स्रोत इस प्रकार हैं: i) कुछ ऐसे अभिलेख हैं जिनको समकालीन साहित्य एवं विभिन्न प्रकार की धातुओं जैसे कि तांबे की प्लेटें, पत्थर एवं मिट्टी की मोहरों पर लिखा, गया है, ii) विभिन्न वंशों के शासकों द्वारा जारी किये सिक्के, iii) उत्खनन से प्राप्त हुई सामग्री, iv) समकालीन साहित्य और v) फाह्यान जैसे विदेशी यात्रियों के संस्मरण।

इस इकाई में हम आपको गुप्त शासकों के द्वारा अपनायी गयी प्रशासन व्यवस्था के विषय में भी बतलायेंगे। इस इकाई में इस काल की आर्थिक गतिविधियों और राजस्व के विभिन्न स्रोतों का भी वर्णन किया जाएगा।

33.2 गुप्त साम्राज्य के अंतर्गत प्रशासन

हम इकाई 32 में पहले ही बता चुके हैं कि गुप्त शासकों ने उन क्षेत्रों के प्रशासन में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जहां के शासकों ने उनके सामन्तीय आधिपत्य को स्वीकार कर लिया था। फिर भी, इसका यह तात्पर्य नहीं है कि गुप्त राजा केवल अपने सामन्तों के माध्यम से शासन करते थे। उनकी अपनी एक सुव्यवस्थित प्रशासनिक व्यवस्था थी जो उन क्षेत्रों में लागू थी जिन पर उनका सीधा-सीधा नियंत्रण था।

33.2.1 राजा

राजा ही प्रशासन का मुख्य आधार था। परन्तु राजतंत्र के चरित्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो चुके थे। हम पाते हैं कि गुप्त राजाओं ने भारी भरकम उपाधियों को धारण किया था जैसे कि परमभट्टारका, परम-दैवत, चक्रवर्ती, परमेश्वर आदि-आदि। उदाहरण के लिये, समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में उसके लिये वर्णन हुआ है कि वह, "धनदा (कुबैर), वरूण (समुद्र का देवता), इन्द्र और अन्तका (वाम) जैसे देवताओं के समान था और जिसके समान विश्व में कोई दूसरी विरोधी शक्ति नहीं थी....।" जिस राजा को स्मृति ग्रंथों में दिव्यता का स्तर दिया गया था उसी की भांति पृथ्वी पर गुप्त शासकों को भी देव-तुल्य समझा जाने लगा। कालिदास द्वारा रचित एवं स्मृति साहित्य की भावना के अनुरूप ही स्कन्दगुप्त के भितरी शिलालेख में उसकी तुलना एक ऐसे व्यक्ति के रूप में चित्रित की गई है जिसने "संपूर्ण पृथ्वी को विजित किया और जो पराजित लोगों के प्रति दयालु हो गया, लेकिन इस सबसे वह न तो अभिमानी हुआ और न घमंडी यद्यपि उसकी प्रसिद्धि दिन-प्रति-दिन फ़ैल रही थी।" उसके पिता, कुमारगुप्त ने "धर्म के सत्य मार्ग का अनुसरण किया"। राजा के संबंध में प्रयोग किये गये इन संदर्भो से स्पष्ट है कि यद्यपि राजा के अंतर्गत सर्वोच्च शक्ति निहित थी फिर भी उससे यह अपेक्षा की जाती थी कि वह धर्म के अनुरूप कार्य करे और उसके कुछ निश्चित कर्त्तव्य भी थे:

- यह राजा का कर्त्तव्य था कि युद्ध और शांति के समय में राज्य की नीति को निश्चित करे। जैसे कि स्कन्दगुप्त ने दक्षिणपथ के राजाओं को उनके मूल राज्यों में पुनः स्थापित करने में काफी दूरदर्शिता का परिचय दिया।
- किसी भी आक्रमण से अपने देशवासियों की सुरक्षा करना राजा का मुख्य कर्त्तव्य था।
- युद्ध की स्थिति में राजा सेना का नेतृत्व करता था। इसकी पुष्टि समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त-II द्वारा किये गये सैनिक अभियानों से भी होती है।
- राजा ब्राह्मणों, श्रामणों और अन्य सब की जिनको उसकी सुरक्षा की आवश्यकता होती थी, मदद करता था।
- वह विद्वानों और धार्मिक लोगों को आश्रय देता था और हर संभव सहायता भी करता था।
- उसके सर्वोच्च न्यायाधीश होने के कारण वह न्याय प्रशासन की देखभाल धार्मिक नियमों एवं विद्यमान रीतियों के अनुरूप ही करता था।
- अपने केन्द्रीय एवं प्रांतीय अधिकारियों की नियुक्ति करना भी उसका कर्त्तव्य था।
- प्रयागप्रशस्ति और कुमारगुप्त-I के "अपरातिधा" किस्म के सिक्कों से स्पष्ट है कि राजा अपने शासन काल में ही अपने उत्तराधिकारी को मनोनीत करता था।

इस काल की एक महत्त्वपूर्ण राजनैतिक घटना यह थी कि वे सभी राजा अपने शासन को अपने-अपने क्षेत्रों में जारी रख सके जिन्होंने गुप्त राजा के सामंतीय आधिपत्य को स्वीकार कर लिया था। और गुप्त राजाओं ने इस प्रकार के क्षेत्रों के प्रशासन में कोई हस्तक्षेप भी नहीं किया।

33.2.2 मंत्रि-परिषद और दूसरे अधिकारीगण

गुप्त अभिलेखों से मंत्रियों की श्रेणीबद्धता के विषय में कोई स्पष्ट सूचना प्राप्त नहीं होती है। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि गुप्त राजा मंत्रियों से सलाह करते थे और सभी महत्वपूर्ण मामलों पर अपने अधिकारियों को लिखित संदेश जारी करते थे।

मंत्री का पद संभवतः पैतृक था। जैसा कि चन्द्रगुप्त-II का उदयगिरी अभिलेख हमें सूचना देता है कि युद्ध और शांति के मंत्री वीत्सेन ने इसको अपने पैतृक अधिकार के रूप में प्राप्त किया था। यद्यपि सर्वोच्च न्यायिक शक्तियां राजा में निहित थी फिर भी न्यायिक मामलों में उसकी सहायता महादण्डनायक (मुख्य न्यायाधीश) नाम का अधिकारी करता था। प्रांतों में यह कार्य उपारिकों एवं जिला स्तर पर विश्यापतियों द्वारा किया जाता था। गांवों में मामूली मामलों को गांव के मुखिया और बुजुर्गों के द्वारा संपन्न किया जाता था। चीनी यात्री फाह्यन के वृतान्त के अनुसार फांसी का दण्ड बिल्कुल भी नहीं दिया जाता था।

कुछ अन्य भी बड़े अधिकारी थे। जैसे कि महाप्रतिहार महल के रक्षकों का उच्च अधिकारी होता था। प्रतिहार अधिकारीगण उत्सवों का आयोजन करते थे और शाही लोगों को उपस्थित रहने की आज्ञा देते थे। प्रारंभिक समय की भांति इस समय भी गुप्तचर प्रणाली अस्तित्व में थी। भूमिदान से संबंधित अभिलेखों में दूतक नाम

के अधिकारियों का विवरण आया है जिनका मुख्य कार्य था कि जो भूमि ब्राह्मणों और अन्य लोगों को दान में दी जाती थी उस दान को लागू करना।

33.2.3 सेना

गुप्त शासकों के पास एक बड़ी सेना का संगठन था। युद्ध के समय सेना का नेतृत्व राजा स्वयं करता था परंतु साधारणतः सेना का एक मंत्री था जिसको संधिविग्राहिका (शांति और युद्ध के अभिभार वाला मंत्री) कहा जाता था। इस मंत्री की सहायता उच्च अधिकारी करते थे। बहुत से अभिलेखों में औपचारिक उपाधि महाबालाधिक्रिता का उपयोग हुआ है। उसके अंतर्गत पिलुपति (हाथियों का प्रमुख), अश्वपति (घोड़ों का प्रमुख), नरपति (पैदल सेना का प्रमुख) जैसे अधिकारीगण कार्य करते थे। सेना को वेतन नकद के रूप में दिया जाता था और इसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक अधिकारी को भी नियुक्त किया गया जिस पर भंडार गृह का अभिभार होता था तथा जिसको रणभण्डारिका कहते थे। इस अधिकारी के अन्य कर्त्तव्य थे कि आक्रमण एवं सुरक्षा के लिये सेना को हथियारों की सप्लाई जारी करना, जैसे कि युद्ध कुल्हाड़ियां, धनुष-कमान, नोकदार भाले, तलवारें, बर्छियां एवं लम्बे नुकीले भाले आदि।

33.2.4 राजस्व प्रशासन

जुर्माने के अतिरिक्त भू-राजस्व राज्य की आमदनी का मुख्य साधन था। समुद्रगुप्त के समय में एक अधिकारी गोपासरमिण का नाम मिलता है जो अक्षापतभाधिक्रिता के रूप में कार्य कर रहा था। इसके विभिन्न प्रकार के कर्त्तव्य थे। यह खातों की देखभाल करता था, यह कर्मचारियों की सुरक्षा निधियों से शाही देनदारी को वसूल करता, कृषि लाभ का निर्धारण करता और अवहेलना या धोखाधड़ी से होने वाली हानि के लिये जुर्माने को वसूल करता था।

दूसरा महत्वपूर्ण उच्च अधिकारी पुस्तपाल (लेखा-जोखा रखने वाला अधिकारी) था। किसी भी लेन-देन को अंकित करने से पूर्व उसकी उचित जानकारी प्राप्त करना उसका कर्त्तव्य था। गुप्त शासकों ने भूमि की उचित जानकारी एवं नाप के लिये एक स्थायी विभाग बनाया हुआ था तथा यही विभाग भू-राजस्व को एकत्रित करने का भी काम करता था। कामन्दक नीतिसार में बताता है कि एक राजा को अपने खजाने की उचित देखभाल करनी चाहिए, क्योंकि राज्य का जीवन पूर्णतः इस पर टिका होता है।

कालिदास एवं नारद-स्मृति के लेखक दोनों यह बताते हैं कि राज्य को कृषि उत्पाद के 1/6 भाग को शाहीराजस्व के लिए प्राप्त करना चाहिए। इनके अतिरिक्त उपरिकर भी था जिसे कपड़े, तेल आदि पर उस समय लगाया जाता था। व्यापारियों के संगठन को व्यापारिक कर (शुल्क) देना होता था। अगर कोई व्यापारी संगठन इसकी अदायगी को रोकता था तो उसके व्यापार करने के अधिकार पत्र को रद्द कर दिया जाता था या उसे अपने मूल व्यापारिक कर का आठ गुना अदा करना होता था। राजा को बेगार कराने का भी अधिकार था जिसको विष्टि, बलि आदि अनेक रूप में किया जाता था। जंगलों एवं शाही भूमि से होने वाली आय को राजा की व्यक्तिगत आय माना जाता था। इसके अतिरिक्त, राजा के कोष को यह अधिकार था कि कुछ बहुमूल्य पदार्थों, वस्तुओं (जैसे कि सिक्कों, आभुषण, अन्य अति महत्वपूर्ण पदार्थों, अकस्मात् जमीन के अंदर से खोजा गया खजाना आदि), खानों की खुदाई एवं नमक निर्माण को भी अपने अधीन कर सकता था।

33.2.5 प्रान्त, जिला और ग्राम

संपूर्ण साम्राज्य को देशों, या राष्ट्रों या भुक्तियों में विभाजित किया गया था। अभिलेखों में हमें कुछ भुक्तियों के नाम भी मिलते हैं। बंगाल में पुण्डवर्द्धन भुक्ति था जिसके अंतर्गत उत्तरी बंगाल का क्षेत्र आता था। तिर-भुक्ति उत्तरी बिहार में था। भुक्तियों पर राजा द्वारा नियुक्त किये गये उपारिकों द्वारा सीधे-सीधे शासन किया जाता था। कुमारगुप्त-I के समय में पश्चिमी मालवा में स्थानीय शासक बन्धवर्मन सहायक शासक के रूप में शासन कर रहा था। लेकिन सौराष्ट्र में पर्णदत्त को स्कन्दगुप्त के द्वारा गवर्नर नियुक्त किया गया था।

प्रांत या भुक्ति को पुनः जिलों या विषयों में विभाजित किया था जो आयुक्तक नामक अधिकारी के अधीन होती था और कहीं-कहीं पर उसे विषयपति भी कहा जाता उसको प्रांतीय गवर्नर के द्वारा नियुक्त किया जाता था। बंगाल से प्राप्त हुए गुप्त अभिलेखों से स्पष्ट है कि जिला कार्यालय (अधिकरण) के अधिकारी स्थानीय बड़े समुदाय के भुक्तियों से ही संबंधित थे। जैसे कि नगरश्रेष्टि (शहर व्यापारी समुदाय के प्रमुख), सर्थवाह (कारवें का नेता) प्रथमा-कुलिक (कारीगर समुदाय का प्रमुख)। इनके अतिरिक्त पुस्तपाल के नाम के भी अधिकारी थे जिनका मुख्य कार्य प्रबंध करना, एवं तथ्यों का रख-रखाव करना था। प्रशासन की सबसे

छोटी इकाई गांव था। ग्राम के मुखिया को ग्रामपति या ग्रामाध्यक्ष कहते थे। बंगाल से प्राप्त हुए गुप्त अभिलेखों से पता लगता है कि प्रशासन की एक इकाई गांव से भी कुछ बड़ी थी। कुछ उदाहरणों से हमें अष्टकुलाधिकरण का संदर्भ मिलता है। विभिन्न श्रेणी वाले गांवों जैसे कि ग्रामिक, कुटुम्बकी, और महत्तर उन कार्यालयों को अपने प्रतिनिधि भेजते थे जो विभिन्न अवसरों पर गांव से उपर के स्तर पर कार्य खेती बाड़ी करने वालों के अतिरिक्त गांव के समाज में अन्य दूसरे लोग भी थे जो बढ़ईगिरी, कताई-बुनाई, बर्तन बनाने, तेल निकालने, सुनारगिरी और बागवानी आदि व्यवसायिक कार्यों को करते थे। ये सभी समूह स्थानीय संस्थाओं एवं संगठनों को बनाते थे जो गांव के मामलों की देखभाल करती थीं। ग्रामीण झगड़ों का भी निपटारा इन संस्थाओं के द्वारा ग्राम-वृद्धों या बुजुर्गों की सहायता से किया जाता था।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित में से कौन-कौन कथन सही (√) एवं गलत (×) हैं?

   अ) गुप्त शासकों के अंतर्गत राजा केन्द्रीय शक्ति नहीं रह गया था।

   ब) युद्ध के समय राजा सेना का नेतृत्व करता था।

   स) महादण्डनायक राजस्व का मंत्री था।

   द) उत्पाद का 1/6 भाग शाही राजस्व के लिये वसूला जाता था।

   त) प्रशासन की सर्वोच्च इकाई गांव था।

2) गुप्त शासकों के राजस्व प्रशासन पर लगभग पांच पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

3) राजा की शक्तियों एवं कर्तव्यों के विषय में दस पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

33.3 अर्थव्यवस्था

आप प्रारम्भ में ही पढ़ चुके हैं कि कृषि के उत्पाद ही प्रमुख संसाधनों का निर्धारण करते थे। जिनका उत्पादन समाज के द्वारा किया जाता था और राज्य के राजस्व का बड़ा भाग कृषि से ही आता था। परंतु

इसका तात्पर्य यह कतई भी नहीं है कि केवल कृषि ही लोगों का व्यवसाय था या लोग केवल गांवों में ही रहते थे। व्यापार एवं दस्तकारी वस्तुओं का उत्पादन जैसे दूसरे व्यवसाय भी थे जो विशेषज्ञ व्यवसाय हो चुके थे। के विभिन्न गुट संलग्न थे। इसका यह तात्पर्य होता है कि, जैसे कि प्रारम्भिक काल में भी हुआ, लोग जंगल, कृषि-आबादी, नगरों एवं शहरों में रहते थे, परन्तु आर्थिक उत्पादन के तरीकों विभिन्न प्रकार के परिवर्तन प्रारम्भ हो चुके थे और जिनके परिणाम स्वरूप समाज के विभिन्न गुटों के सम्बन्धों में भी परिवर्तन हुआ। अब इसके अगले भाग में इन परिवर्तनों पर कुछ प्रकाश डालेंगे।

33.3.1 कृषि

सबसे पहले हम कृषि उत्पादन के प्रतिमान के विषय में लिखेंगे। कृषि उत्पादन का समाज के साथ क्या रिश्ता था, यह गुप्त काल के उन स्रोतों से स्पष्ट है जिनमें कृषि सम्बन्धी क्रिया कलापों के बहुत से पक्षों का विवरण किया गया है। अभिलेखों में कई किस्म की भूमि की चर्चा है: जैसे कि जिस भूमि पर खेती की जाती थी उसको क्षेत्र कहा गया है। जो भूमि कृषि योग्य नहीं होती थी उसका खिला, अपरहत आदि नामों से जाना जाता था। और अभिलेखों से यह भी संकेत मिलता है कि खेती न की जाने वाली भूमि को लगातार खेती करने के अनार्जन लाया जाता था। भूमि का उसकी किस्म, उर्वरकता और उपयोगिता के आधार पर कोई वर्गीकरण गुप्त काल में किया गया हो, इसके प्रमाण नहीं मिलते। भूमि की नाप के लिये विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न तौर तरीकों को अपनाया गया, इसके बावजूद भी यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि अमुक नाप वास्तव में क्या इंगित करती है। कुछ क्षेत्रों में भूमि की नाप के लिये निवार्तन प्रणाली का उपयोग किया गया है जबकि बंगाल से प्राप्त अभिलेखों से प्राप्त भूमि के क्षेत्र को नापने के लिये कुलयावाष और द्रोणवाद प्रणालियों का प्रयोग किया गया। फसलों के उत्पादन के अनुसार भी क्षेत्रों का निर्धारण करना सम्भव नहीं है। लेकिन बड़ी श्रेणियों की अन्न से सम्बन्धित फसलों जैसे कि जौ, गेंहू और धान, विभिन्न किस्म की दालें एवं चना और सब्जियों तथा इन्हीं की तरह नकदी फसलें जैसे कि कपास और गन्ना की पैदावार के विषय में हम गुप्त काल के पर्व से भी जानते हैं औरं इनकी पैदावार इस काल के पूर्व से भी जानते हैं और इनकी पैदावार इस काल में भी जारी थी। लेकिन इससे यह नहीं समझा जाना चाहिये कि गुप्त काल में किसानों को मक्का जैसे अनाज की फसल आलू एवं टमाटर जैसी सब्जियों की जानकारी थी।

कृषि-उत्पाद समाज के लिये कितना आवश्यक था इसकी पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि इस समय सिंचाई को कितना अधिक महत्व दिया गया था। प्रारंभिक खण्डों में आपने गुजरात सौराष्ट्र क्षेत्र में स्थित सुदर्शन झील (तड़ा) के विषय में पढ़ा। मूलरूप से इस झील का निर्माण मौर्यकाल के दौरान किया गया था। इस झील की पुनः मरम्मत तब की गई थी जबकि पूर्णतः क्षतिग्रस्त हो गई थी। यह स्कन्दगुप्त के समय फिर क्षतिग्रस्त हो गई और उसके नव-नियुक्त सौराष्ट्र के गवर्नर पर्णदत्त और बाद में पर्णदत्त के पुत्र चक्र पतिता ने पुनः इसकी मरम्मत करायी। सिंचाई के दूसरे साधन कुंए थे और सुव्यवस्थित ढंग से निर्मित नालियों की सहायता से इन कुंओं के द्वारा खेतों की सिंचाई की जाती थी। संभवतः गुप्त काल से भी पूर्व इस संबंध में एक यांत्रिकी जानकारी उपलब्ध थी, जिसके अनुसार कुछ बर्तनों की एक जंजीर होती थी और इस जंजीर को नीचे पानी के तल तक पहुंचाया जाता और इन बर्तनों की जंजीर को नीचे से भरकर निकाल कर खाली कर दिया जाता। इसकी इस प्रकार से व्यवस्था की गई थी कि ये बर्तन पानी से भरकर जंजीर के द्वारा लगातार बाहर आते रहे और खाली होते रहे। सिंचाई करने के लिये अपनाये गये इस तरीके को घाटी-यंत्र के नाम जाना जाता था क्योंकि घाटी शब्द का प्रयोग इस बर्तन के लिये किया गया। इस प्रकार के यंत्र को अशघाट के नाम से भी जाना गया। सातवीं सदी ई. में बाण भट्ट के द्वारा रचित पुस्तक हर्षचरित में खेतों की सिंचाई का बड़ा ही रोचक वर्णन है उसमें वर्णित है कि किसी प्रकार के गन्ने की फसलों की किस भांति से घाटी-यंत्र के द्वारा सिंचाई की जाती थी। बंगाल जैसे क्षेत्रों में वर्षा के पानी को गढ्ढों आदि में संग्रहित किया जाता था और प्रायद्वीपीय भारत में तालाब से सिंचाई करने की प्रथा सामान्य बात हो गई थी। इस प्रकार सिंचाई के लिये विभिन्न प्रकार की प्रणालियों का प्रचलन था और किसानों को सिंचाई सुविधा उपलब्ध कराने में राज्य का मामूली योगदान ही था। इसके बावजूद भी किसान सिंचाई के लिए मुख्य रूप से वर्षा पर ही निर्भर करते थे और इसी कारणवश न केवल कौटिल्य के अर्थशास्त्र में बल्कि गुप्त काल में लिखे गये अन्य ग्रंथों में भी वर्षा के महत्व के विषय में लिखा गया है।

गुप्त काल के स्रोतों से पता लगता है कि इस समय में कृषि समाज में कुछ निश्चित महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे। गुप्त काल के कुछ ऐसे अभिलेख प्राप्त हुए हैं जिनके अनुसार कुछ लोगों ने भूमि को नकद खरीदकर फिर इस खरीदी गई भूमि को इन लोगों ने उन ब्राह्मणों को भेंट कर दिया जिनसे आशा की गई थी कि वे उनके लिए वैदिक बलि का आयोजन करेंगे या कई बार इस प्रकार की भूमि जैन या बौद्ध मठों को भी दान में दिया गया। अब न केवल भूमि को खरीदा और दान में दिया जाने लगा बल्कि धार्मिक लोगों को भूमि को दान में या भेंट में देना एक सामान्य प्रथा बन गई। इसके अतिरिक्त जो अधिकारी गण किसी न किसी रूप

में शासकों की सेवा में लगे थे उनको भी अपनी सेवा के बदले में भूमि के बड़े-बड़े टुकड़े प्राप्त होने लगे। यद्यपि यह कोई पूर्णतः नयी बात नहीं थी। इस समय में शासक परिवारों की संख्या में बड़ी तेजी के साथ वृद्धि हुई जिसके कारण भूमि को प्राप्त करने वालों की संख्या में भी वृद्धि हुई परन्तु उस पर खेती-बाड़ी का कार्य वे स्वयं नहीं करते थे। भूमि दान करने वालों की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई और जो कोई दान की गई भूमि को ग्रहण करता था उसके लिए भयंकर परिणामों की धमकी दी जाती थी। इन सब का अन्ततः यह परिणाम हुआ कि समाज में एक ऐसे वर्ग की उत्पत्ति हुई जिसको भूमि पर उच्च स्वामित्व के अधिकार प्राप्त हो गये और समाज में उसका संबंध उच्च वर्ण के साथ होने के कारण उसको उच्च अर्थिक एवं सामाजिक दर्जा प्राप्त हुआ। यद्यपि यह भी सत्य है कि भूमि के मालिकाना अधिकार उन्हीं को ही नहीं थे जिन्होंने भूमि को दान में प्राप्त किया था। गुप्त अभिलेखों में ऐसे विभिन्न ग्रामवासियों को उद्धृत किया गया है जैसे कि ग्रामिका, कुटुम्बिका और महत्तर जिनका ग्रामीण भूमि पर अधिकार था और इनके भूमि के लेन-देन में संलग्न होने से यह स्पष्ट है कि वे भी ग्रामीण समाज के महत्वपूर्ण सदस्य थे।

शासकों से भूमि प्राप्त करने वालों और गांवों के प्रभावशाली भूमि स्वामियों के वर्गों के साथ साधारण किसानों की तुलना करने पर हम पाते हैं कि इन साधारण कृषकों की दशा बड़ी खराब रही होगी। कुछ इतिहासकारों का ऐसा मानना है कि भूमि दान की प्रथा के कारण संपूर्ण किसान आबादी का स्तर सामाज में काफी नीचे गिर गया था। परन्तु यह पूर्णतः सत्य नहीं है ये छोटे-छोटे किसान ही थे जिनकों विभिन्न नामों जैसे कि कृषिवाला, कृषक, या किनसा आदि नामों से जाना जाता था और जिनका सामाजिक एवं आर्थिक स्तर निम्न था। वास्तविक खेती करने वाले लोगों के बीच एक ऐसा भी वर्ग था जो केवल दूसरों की जमीन पर खेती करता था और उसके बदले में उसका उत्पाद का एक भाग प्राप्त होता था। इस समय में दासों का भी प्रचलन था जो अपने स्वामी के खेतों में काम करते थे। घरेलू महिला दासों के साथ क्रूरता का व्यवहार किया जाता था और हमें कामसूत्र से पता लगता है जो संभवतः गुप्त काल में ही लिखा गया कि किस प्रकार से अपने स्वामियों के द्वारा इन महिला दासों का उत्पीड़न किया जाता था।

साधारण किसान की हालत क्यों खराब हुई इसके दूसरे अन्य भी कारण थे। एक यह भी था कि कई सारे क्षेत्रों में छोटे-छोटे राज्यों का उद्‌भव हुआ। इन राज्यों के नये-नये शासकों, अधिकारियों और जनता के कुछ ऐसे लोगों ने जो कृषि कार्यों में भाग नहीं लेते थे समाज में असमानता को पैदा किया और वास्तविक खेती-बाड़ी करने वालों पर इन्होंने और अधिक भार डाल दिया। इस काल में उत्पादन करने वालों पर राज्य के द्वारा लगाये जाने वाले करों में और अधिक वृद्धि हो गई। इस काल में विष्टि या बेगार में और अधिक वृद्धि हुई यद्यपि हम को यह स्पष्ट जानकारी नहीं है कि कृषि वृद्धि उत्पादन के लिए कितनी आवश्यक थी। कुल मिलाकर इस काल में पहले की अपेक्षाकृत साधारण किसान की दशा और भी बिगड़ गई।

33.3.2 दस्तकारी उत्पादन और व्यापार

दस्तकारी उत्पादन के अन्तर्गत अनेक वस्तुयें आती थी। इसके अन्तर्गत घरेलू उपयोग की वस्तुयें जैसे कि मिट्टी के बर्तन फर्नीचर की चीजें, टोकरियां, घरेलू उपयोग के लिए धातु के औजार आदि-आदि आती थीं। और इसी के साथ-साथ विलासिता की वस्तुयें भी दस्तकारी उत्पादन के अन्तर्गत आती थीं जैसे कि सोने, चांदी एवं मूल्यवान पत्थरों से बने आभूषण, हाथी दांत की बनी चीजें, शानदार किस्म के सूती एवं रेशमी कपड़े और वे महंगी वस्तुएं जिनका उपयोग समाज के संपन्न लोग करते थे। इनमें से कुछ वस्तुओं को व्यापार के माध्यम से उपलब्ध कराया जाता था तो कुछ का स्थानीय स्तर पर उत्पादन भी किया जाता। उत्खनन के द्वारा जो वस्तुएं प्राप्त हुई हैं उनमें विलासिता की वस्तुएं नहीं मिली है परन्तु इन वस्तुओं का विवरण साहित्यिक ग्रंथों और अभिलेखों में पाया जाता है। इन स्रोतों में विभिन्न श्रेणियों के दस्तकारों का भी उल्लेख हुआ है। उदाहरण के लिए इस काल के विभिन्न ग्रंथों में भिन्न-भिन्न प्रकार के रेशमी कपड़ों का उल्लेख है और जिनका क्षोम और पत्रावस्त्र के नाम दिये गये हैं। पश्चिमी मालवा मंदसौर से प्राप्त एक अभिलेख में रेशम के कपड़े बनाने कालों की एक श्रेणी का उल्लेख है जो गुजरात प्रदेश को छोड़कर मालवा के क्षेत्र में आकर बस गये थे। अमरकोष और ब्रिहत स्मृति जैसे ग्रंथों में जो संभवतः गुप्त काल में लिखे गये थे, संस्कृत भाषा में ऐसी बहुत सी वस्तुओं के नाम दिये गये हैं और इसी के साथ-साथ इन ग्रंथों में उन दस्तकारों की कई श्रेणियों का उल्लेख हुआ है जो इनका निर्माण करते थे।

इस काल में निर्मित की जाने वाली वस्तुओं की मात्रा एवं किस्मों को जानने के लिये खुदाई वाले स्थलों से पायी जाने वाली वस्तुओं का अध्ययन करना होगा। बहुत से महत्वपूर्ण स्थानों से जैसे कि तक्षशिला अहिछत्र, मथुरा, राजघाट, और गंगा घाटी में स्थित पाटलिपुत्र तथा दूसरे भौगोलिक क्षेत्रों में स्थित प्राचीन स्थलों की खुदाई से मिट्टी के मृद भांड, परिकोठे, विभिन्न प्रकार के पत्थरों की मालाएं कांच की वस्तुयें, धातु की बनी वस्तुएं आदि प्राचीन दस्तकारी के उत्पादन प्राप्त हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अगर गुप्त काल की

दस्तकारी वस्तुओं की तुलना शक एवं कुषाण काल में बनी दस्तकारी वस्तुओं के साथ की जाये, तो गुप्त काल में दस्तकारी का कुछ ह्रास हुआ। परन्तु इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अभी इन दोनों कालों का तुलनात्मक अध्ययन करना संभव नहीं है।

सभी वस्तुयें सभी स्थानों पर उपलब्ध नहीं होती थी इसलिये पहले समय की भांति ही व्यापार के द्वारा ही ये वस्तुयें एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुंचती थी। आप खंड 6 एवं खंड 7 में पहले ही पढ़ चुके हैं कि भारत के केन्द्रीय, पश्चिमी और दक्षिण-पूर्वी एशिया एवं रोम साम्राज्य के साथ परवर्ती काल से घनिष्ठ व्यापारिक सम्पर्क था और देश के अन्दर भी कई सदियों में विभिन्न क्षेत्रों के बीच व्यापारिक मार्ग विकसित हुए थे। इसके भी पर्याप्त प्रमाण हैं कि गुप्त काल में भी ये व्यापारिक गतिविधियां जारी थीं। अपने परवर्ती कुषाण शासकों की भांति गुप्त राजाओं ने भी विभिन्न प्रकार के सिक्कों को जारी किया और गुप्त शासकों के सोने के सिक्के सर्वश्रेष्ठ दस्तकारी के नमूने हैं। गुप्त शासकों ने चांदी, तांबे एवं सीसे के सिक्कों को भी जारी किया। गुप्त साम्राज्य के कुछ क्षेत्रों में इन सिक्कों को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था। उदाहरणार्थ, उत्तरी बंगाल के जिला मुख्यालय के साथ दो व्यापारिक प्रतिनिधि नगरश्रेष्ठि और सर्थवाहा संबंधित थे। उत्तरी बिहार में वैशाली से प्राप्त गुप्त शासकों की मोहर से पता लगता है कि वैशाली नगर की जनसंख्या में व्यापारिक समुदाय का महत्वपूर्ण स्थान था। इस समय के साहित्यिक ग्रन्थों से स्पष्ट है कि पाटलिपुत्र एवं उज्जैनी जैसे नगरों में व्यापक स्तर पर व्यापारिक गतिविधियाँ होती रहती थीं और इन नगरों में विभिन्न देशों के लोग उपस्थित रहते थे। व्यापारिक लोग इन नगरों में महत्वपूर्ण समुदाय थे।

इन नगरों में दस्तकारों और व्यापारियों के कार्यों को सुविधापूर्वक चलाने के लिये इनके अपने संगठन थे। इन संगठनों के लिये जो प्राचीन शब्द प्रयोग किया जाता था, उसको श्रेणी कहते थे। राज्य इन श्रेणियों को सुरक्षा प्रदान करता था और इनके नियमों एवं रीतियों का उचित सम्मान किया जाता था। इसी प्रकार श्रेणियों के सदस्यों से वह आशा की जाती थी कि वे भी इन संगठनों के नियमों का पालन करें अन्यथा अवेहलना करने पर उनको दण्ड दिया जाता। श्रेणी शब्द को व्यापारियों एवं दस्तकारों के संगठन रूप में परिभाषित किया गया है परन्तु इस शब्द की अन्य परिभाषायें भी दी गई हैं और इसका विस्तृत अध्ययन भी किया गया है परन्तु हम अभी भी निश्चय के साथ यह नहीं कह सकते कि इस शब्द का वास्तविक अर्थ क्या था।

यदि गुप्त काल में दस्तकारी का काम और व्यापार काफी सक्रिय था परन्तु इस संदर्भ में दो तथ्यों को विशेष कर याद रखना चाहियेः

1) उस समय कई प्रकार के दस्तकार लोग थे परन्तु उनकी न तो आर्थिक संपन्नता के रूप में कोई पहिचान थी और न ही सामाजिक स्तर के रूप में। उदाहरणार्थ, सुनार और उसके परिवार जिसकी दुकान उज्जैनी में थी और गांव के लुहार परिवारों के मध्य काफी अंतर था। यह अंतर उन धर्मशास्त्रों से भी स्पष्ट होता है जिनको ब्राह्मणों ने लिखा था। धर्मशास्त्रों में दस्तकारों के विभिन्न वर्गों का स्पष्ट उल्लेख है परन्तु फिर भी समाज में उनका स्थान ब्राह्मणों, कायस्थों एवं वैश्यों से नीचा था। धर्मशास्त्रों में यह भी कहा गया है कि प्रत्येक दस्तकार गुट से एक जाति बनती थी जैसे कि बर्तन बनाने वाले दस्तकारों, से कुम्हार जाति बनी तथा स्वर्णकारों या सुनारों से एक दूसरी जाति की उत्पत्ति हुई और इस प्रकार से इन दस्तकार समूहों से उनकी अनेक जातियां बनी। यद्यपि जाति व्यवस्था इतनी सरल नहीं थी इसके बावजूद जो जिस प्रकार की दस्तकारी का काम करता था उन लोगों को उसी प्रकार की जाति बनी।

2) कुछ क्षेत्रों में गुप्त शासकों के काल में ही संभवतः दस्तकारी उत्पादन एवं व्यापारिक गतिविधियों का ह्रास होना प्रारंभ हो गया था और कुछ इतिहासकारों का मानना है कि इसी के साथ-साथ नगरों एवं शहरों का भी पतन प्रारंभ हो गया। जिसके कारण समाज की निर्भरता कृषि-उत्पादन पर और अधिक बढ़ने लगी। इन परिवर्तनों के विषय में आपको अधिक जानकारी खंड 9 में प्राप्त होगी।

बोध प्रश्न 2

1) रिक्त स्थानों को भरिये।

अ) खेती-बाड़ी की जाने वाली भूमि को .... (खिला/क्षेत्र) कहा जाता था।

ब) धार्मिक दान प्राप्तकर्त्ताओं को भूमि उपहार स्वरूप देने की परंपरा .... (प्रथम सदी ई./ पांचवी-छठी सदी ई.) .... में सामान्य (हो चुकी थी/बिल्कुल भी नहीं थी)।

स) इस काल के दौरान छोटे जोतदार .... (काफी फले-फूले/कम हुए)।

द) (स्कन्दगुप्त/परूगप्त) .... के शासन काल में सुदर्शन झील की मरम्मत की गई।

2) इस काल में सिंचाई के लिये अपनाये गये तरीकों के विषय में लगभग 10 पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) उन स्रोतों का विवरण लगभग पांच पंक्तियों में कीजिये जिनमें दस्तकारी एवं दस्तकारों का उल्लेख हुआ हो।

....

....

....

....

....

33.4 समाज

आप पहले ही पढ़ चुके हैं कि ब्राह्मणों ने जिस समाज की कल्पना की थी, उस समाज को चार वर्गों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) में इस ढंग से विभाजित किया गया था कि प्रत्येक वर्ण उन कार्यों को सम्पन्न करे जो उसके लिये निर्धारित किये गये थे और केवल वह उन्हीं अधिकारों का उपभोग करे जो उसके लिये बताये गये। यह आदर्श सामाजिक व्यवस्था थी और राज्य से यह आशा की गयी कि वह इसको सुरक्षित रखे। इसका अर्थ यह हुआ कि देश के किसी भी कोने में जब कभी भी किसी छोटे राज्य का उदय हुआ तो उसके राज्य से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह इसकी मान्यता एक आदर्श समाज व्यवस्था के रूप में करे। गुप्त काल से ही ब्राह्मण लोग राजा पर काफी प्रभाव डालने लगे थे यह इससे भी स्पष्ट है जिस ढंग से वे राजाओं व दूसरों से भूमि को उपहार के रूप में प्राप्त करने लगे थे। राजाओं एवं अधिकारियों ने न केवल ब्राह्मणों को व्यक्तिगत स्तर भूमि को उपहार स्वरूप भेंट किया बल्कि ब्राह्मणों के बड़े-बड़े समूहों को दूर-दराज के क्षेत्रों में भी बसाया गया। इस प्रकार, बहुत सी ब्राह्मण बस्तियों को ब्रह्मादिय अग्रहर कहा जाने लगा और उनकी संख्या भी बढ़ने लगी। दूसरी अन्य बातों के साथ-साथ, उन्होंने वर्ण विभाजित समाज व्यवस्था के विचार को भी फैलना प्रारंभ कर दिया।

वर्ण व्यवस्था के आदर्श व्यवस्था होने के बावजूद समाज में ऐसे बहुत से गुट थे जिनकी पहिचान को वर्ण व्यवस्था के विचार द्वारा निश्चित नहीं किया जा सकता। दूसरे, ऐसा समझा गया था कि विभिन्न वर्ण अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करेंगे परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं किया जा सका। परन्तु वास्तविक समाज में आदर्श समाज से मूलभूत अंतर होता है और इस अंतर को धर्मशास्त्रों के ब्राह्मण लेखकों ने भी रेखांकित किया। इसलिये उन्होंने विभिन्न जातियों की समाज में स्थिति निश्चित करने के लिये इन जातियों की उत्पत्तियों के संबंध में झूठी व्याख्यायें प्रस्तुत की। उनका कहना है कि बहुत सी जातियों और गुटों की उत्पत्ति बहुत से वर्णों के आपसी वर्ण-संस्कारों या उनमें आंतरिक विवाहों के कारण हुई। गुप्त काल से पूर्व के यूनानी या सीथियन विदेशी शासक परिवारों से संबंधित लोगों को सहायक-क्षत्रिय का स्तर (व्रत्य-क्षत्रिय) प्रदान कर दिया गया था क्योंकि उनकी उत्पत्ति को शुद्ध क्षत्रियों में नहीं माना गया। इसी भांति से उन कबिलाई गुटों की उत्पत्तियों के विषय में भी झूठी व्याख्यायें दी गई जिन्होंने ब्राह्मणिक सामाजिक व्यवस्था को अंगीकार कर लिया था।

धर्मशास्त्रों में अपधर्म की बात की गई है अर्थात् दरिद्रता के समय में जो व्यवहार किया जाता। इसका अर्थ यह हुआ कि जब भी आवश्यक हो वर्ण उन कार्यों एवं कर्त्तव्यों को भी कर सकते थे जिनको उनके लिये आवंटित नहीं किया गया था। इस प्रकार धर्मशास्त्रों के अनुसार भी वास्तविक समाज उनके द्वारा कल्पित किये गये आदर्श समाज से भिन्न था। इन परिवर्तनों का प्रारंभ गुप्त काल से काफी पहले प्रारंभ हो चुका था, परन्तु ब्राह्मणिक समाज की अवधारणा का देश के अन्य भागों में प्रचार हो जाने के कारण सामाजिक व्यवस्था काफी जटिल हो गई थी। इस नवीन सामाजिक व्यवस्था में बहुत से सामाजिक गुट समाहित हो चुके थे परन्तु एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में वास्तविक समाज व्यवस्था भिन्न-भिन्न थी, फिर भी इनमें कुछ निश्चित विचार सामान्य रूप से व्याप्त थेः

- ब्राह्मणों की पहिचान समाज के सबसे श्रेष्ठतम वर्ग के रूप में की गई इसलिये उनको उच्चतम वर्ण में रखा गया। ये लोग संस्कृत भाषा को भली-भांति जानते थे और धार्मिक अनुष्ठानों को पूर्ण करते थे जिसके कारण उनके राज सत्ता के साथ निकटतम संबंध कायम हो गये। स्थिति यह थी कि जब राजा बौद्ध, जैन एवं अन्य विशेष धर्मों के समर्थक थे तब भी उन्होंने ब्राह्मणों को संरक्षण प्रदान किया जो विशेष विद्वान थे। इसी के कारण ब्राह्मण लोग आर्थिक रूप से सम्पन्न एवं सम्मानीय थे।

- सैद्धान्तिक तौर पर समाज चार वर्णों में विभाजित था, परन्तु ऐसे बहुत से गुट थे जो इस योजना से बाहर थे। वे अत्यंजा या अछूत थे। उनको अशुद्ध माना गया, अगर कोई उनसे छू जाता तो वह भी अशुद्ध हो जाता और जिन इलाकों में उच्च वर्ण के लोग रहते थे उन इलाकों में उनके आवागमन को मना कर दिया जाता था। चण्डाल और चर्मकार जैसे गुटों को अपवित्र माना गया और जाति व्यवस्था से बाहर रखा गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्राह्मणिक सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत अनेक सामाजिक गुटों की हालत सदैव दरिद्र बनी रही।

- उच्च वर्गों की महिला वर्ग की हालत भी नीची थी। इस काल में भी वाकाटक रानी प्रभावती गुप्त जैसी महिलाओं के पास काफी शक्ति थी, परन्तु सभी महिलाओं को यह विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थे। ब्राह्मण ग्रंथों मे महिलाओं के अनुसरण करने योग्य नियमों का उल्लेख किया गया था। और उनसे आशा की जाती थी कि वे उनका अनुसरण करेंगे और वे परिवार में आदर्श पत्नियां एवं मातायें बनेंगी। कुछ ब्राह्मण ग्रंथों में महिलाओं की सामाजिक स्थिति को शूद्रों के समक्ष ही माना गया है। यह भी तथ्य महत्वपूर्ण है कि ब्राह्मणों को लगातार भूमि को दान में दिया गया परन्तु हमें इसका प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है कि ब्राह्मण महिलाओं को कभी भी भूमि प्रदान की गई हो।

सामाजिक जीवन का एक दूसरा पक्ष भी है कि नगरों में रहने सम्पन्न लोगों और ग्रामवासियों की जीवन शैली में काफी अंतर था। नगरों में रहने वाले आदर्श लोगों को नगरक कहा जाता था जिसका तात्पर्य यह हुआ कि उनका जीवन सम्पन्न था और वे खुशहाल एवं शानदार सभ्य जीवन व्यतीत करते थे। इस प्रकार के जीवन का विवरण न केवल वात्स्यायन के कामसूत्र ग्रंथ में मिलता है बल्कि इस काल के अन्य साहित्यिक ग्रंथों में भी हुआ है। इसके बावजूद भी यह समझना गलत होगा कि नगरों में रहने वाले सभी लोग इस भांति के जीवन को व्यतीत करने में सक्षम थे।

बोध प्रश्न 3

1) निम्नलिखित कथनों में से कौन-सा सही (√) और कौन-सा गलत (×) है?

   अ) गुप्त काल से राजाओं पर ब्राह्मणों का काफी प्रभाव बनने लगा था।

   ब) गुप्त काल में वास्तविक समाज, आदर्श समाज से भिन्न था।

   स) अन्तयाज वर्ण व्यवस्था की सबसे ऊंची इकाई थी।

   द) नगरों में रहने वाले लोगों और गांव में रहने वालों का जीवन समान था।

2) वर्ण व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों का विवरण दस पंक्तियों मे कीजिये।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

33.5 सारांश

इस इकाई में गुप्त प्रशासन, अर्थव्यवस्था और समाज के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि गुप्त काल में परवर्ती काल की अपेक्षा काफी महत्वपूर्ण परिवर्तन हो चुके थे। एक महत्वपूर्ण पक्ष राजतन्त्र से संबंधित है कि जिन क्षेत्रों के राजाओं ने, गुप्त राजाओं के सामन्तीय अधिपत्य को स्वीकार कर लिया था, उनका शासन उन क्षेत्रों में जारी रहा। कृषि उत्पादन पर भी पर्याप्त ध्यान केन्द्रित किया गया और इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि इस काल में सिंचाई ने प्रमुखता प्राप्त कर ली थी। भूमि को उपहार स्वरूप धार्मिक वर्गों को देने की प्रथा का प्रचलन सामान्य बात हो गयी थी और ब्राह्मण लोग राजाओं पर अपना काफी प्रभाव डालने लगे। कृषि करने वाले लोगों के बीच काफी भिन्नतायें उत्पन्न हो गई और अगर इनकी तुलना सम्पन्न लोगों के साथ की जाये तो हम पाते हैं कि साधारण किसान की हालत में काफी गिरावट आयी। इसी के समान ही विभिन्न किस्म के दस्तकारों के आर्थिक एवं सामाजिक स्तरों में भिन्नतायें थी। यद्यपि इस काल में भी व्यापारिक गतिविधियां जारी रही परन्तु दस्तकारी उत्पादन में कमी हुई। समाज में वर्ण व्यवस्था जारी रही परन्तु इसी के साथ-साथ बहुत से सामाजिक गुटों या समूहों विशेषकर अछूतों को वर्ण व्यवस्था से बाहर रखा गया। समाज में महिलाओं की स्थिति में भी पर्याप्त गिरावट आयी।

33.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अ) × ब) √ स) × द) √ त) ×
2) कृपया उप-भाग 33.2.4 को देखें।
3) अपने उत्तर का आधार उप-भाग 33.2.1 को बनायें।

बोध प्रश्न 2

1) अ) क्षेत्र ब) हो गया, पांचवी-छठी सदी ई. स) कम होना द) स्कन्दगुप्त
2) अपने उत्तर का आधार उप-भाग 33.3.1 को बनायें।
3) अपने उत्तर की तुलना उपभाग 33.3.2 के प्रथम व दूसरे पैराग्राफ से करें।

बोध प्रश्न 3

1) अ) √ ब) √ स) × द) ×
2) अपना उत्तर भाग 33.4 को पढ़कर दें।

इकाई 34 उत्तर भारत में गुप्त काल के बाद के राज्य

इकाई की रूपरेखा

34.0 उद्देश्य
34.1 प्रस्तावना
34.2 क्षेत्रीय शक्तियां
    34.2.1 यशोधर्मन
    34.2.2 मौखरी
    34.2.3 उत्तर-गुप्त शासक
34.3 थानेश्वर और कन्नौज के पुष्यभूति
34.4 हर्षवर्धन
34.5 उत्तर हर्ष काल में उत्तर भारत की राजनैतिक हालात
34.6 सारांश
34.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

34.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे:

- उन राजनीतिक परिवर्तनों के विषय में जो गुप्त साम्राज्य के विघटन के बाद हुए,
- उन बहुत सी उभरती राजनैतिक शक्तियों के विषय में जो क्रमिक रूप से महत्व को प्राप्त कर रही थीं,
- थानेश्वर और कन्नौज के पुष्यभूतियों की उत्पत्ति एवं विकास के विषय में,
- राजा हर्ष के शासन काल की कुछ घटनाओं के बारे में,
- राजा हर्ष की प्रशासनिक व्यवस्था के विषय में, और
- हर्ष की मृत्यु के बाद की उत्तर भारत की राजनैतिक परिस्थितियों के बारे में।

34.1 प्रस्तावना

छठी सदी ई. में गुप्त साम्राज्य के विघटन ने क्रमशः बहुत से छोटे राज्यों के विकास के मार्ग को प्रशस्त किया। कुछ निश्चित क्षेत्रों में छोटे नये राज्यों का उदय हुआ तो कुछ उन राज्यों ने स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया जिन्होंने गुप्त शासकों के सामन्तीय आधिपत्य को स्वीकार किया था। जैसे कि यशोधर्मन और मौखरी, हुण तथा बाद के मगध के गुप्त शासक अब नवीन राजनैतिक शक्तियां थे। इनके अतिरिक्त पुष्यभूति, गौड़ों, वर्मनों एवं मैतृकों का काफी महत्व हो गया। इस इकाई में इन राज्यों के राजनैतिक इतिहास का संक्षिप्त विवरण देने का प्रयास किया गया है। इसी के साथ-साथ हर्षवर्धन और पुष्यभूति परिवार के प्रशासनिक व्यवस्था की विशेषता बोद्धों को प्रदान किए गए राजनैतिक संरक्षण आदि कुछ निश्चित पक्षों का भी विवरण किया गया है।

34.2 क्षेत्रीय शक्तियां

एक शक्तिशाली शक्ति के अभाव में विभिन्न क्षेत्रों में कई क्षेत्रीय शक्तियों का उदय हुआ। इन शक्तियों का प्रतिनिधित्व भिन्न-भिन्न वंशों द्वारा किया गया और इन्होंने अपने-अपने राज्यों की स्थापना की तथा ये अक्सर एक-दूसरे से युद्धरत रहते थे। इन राज्यों में से यहाँ पर हम कुछ का संक्षिप्त विवरण करेंगे।

34.2.1 यशोधर्मन

कुमारगुप्त-I के शासन काल में उसके एक सामन्त के रूप में बन्धुवर्मन मन्दसौर पर शासन करता था और

यह पश्चिमी मालवा का एक बड़ा केन्द्र था। यह औलिकर परिवार से संबंधित था और उसने छठी सदी ई. के प्रारम्भ तक शासन किया। मध्य प्रदेश के मन्दसौर से प्राप्त दो पत्थर स्तम्भों के अभिलेखों मे से एक 532 ई. का है, जिसमें एक शक्तिशाली राजा यशोधर्मन का उल्लेख है। इनमें से एक अभिलेख यशोधर्मन की विजयों का वर्णन करता है। इस अभिलेख में वर्णन है कि उसने उन सभी क्षेत्रों को विजयी किया जिनको गुप्त शासक भी न जीत सके थे। परन्तु मिहिरकुल के अलावा किसी और पराजित राजा के नाम का उल्लेख इन अभिलेखों में नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि यशोधर्मन का एक शक्ति के रूप में उदय लगभग 528 ई. में हुआ और उसका शासन 532 ई. तक जारी रहा, (मन्दसौर अभिलेख की तिथि) परन्तु उसकी शक्ति का अन्त 543 ई. में हुआ।

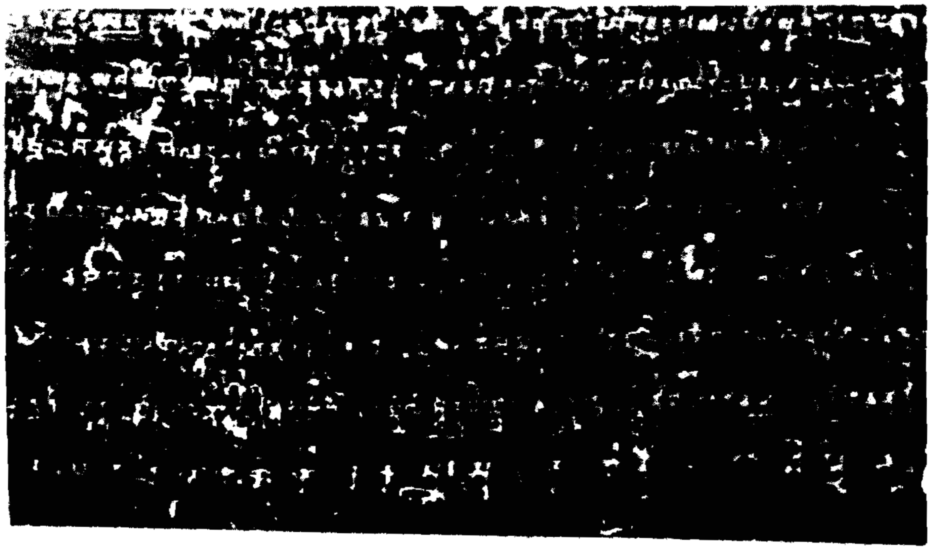

5. यशोधर्मन का मन्दसौर अभिलेख

34.2.2 मौखरी

मौखरियों का वंश का एक पुराना वंश था क्योंकि इसका उल्लेख पतंजली की रचना एवं दूसरे प्रारम्भिक स्रोतों में हुआ है।

मौखरियों ने राजनैतिक शक्ति को पांचवी सदी ई. के अन्त में प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया था जैसा कि हर्ष के समय के प्राप्त 554 ई. के अभिलेख से स्पष्ट है कि इसी काल में गया से यजूनवर्मन के उदय का उल्लेख है।

बाराबर और नागरजुनी से प्राप्त अभिलेखों में ऐसे प्रथम तीन मौखरी राजाओं का उल्लेख है जिन्होंने गया में, अपने कन्नौज उत्तराधिकारियों से लगभग 150 वर्ष पूर्व, शासन किया था।

ये प्रथम तीन राजा यजनवर्मन, सरदुलावर्मन और अनन्तवर्मन थे। इनमें से कुछ राजाओं ने केवल सामन्त की उपाधि धारण की जिससे इस बात की पुष्टि होती है कि वे गुप्त शासकों के अधीन सामन्तीय राजाओं की भांति शासन कर रहे थे।

असिरगढ से प्राप्त तांबे की मोहर पर हमें 1) हरिवर्मन, 2) आदित्यवर्मन, 3) ईश्वरवर्मन, 4) ईश्नवर्मन, और 5) सर्ववर्मन के नामों का उल्लेख मिलता है। ये राजा उत्तर प्रदेश के कन्नौज नगर पर शासन कर रहे थे। प्रथम तीन राजाओं ने महाराज की उपाधि को धारण किया तो ईश्नवर्मन ने स्वयं को महाराजाधिराज कहा है।

यह संभवतः ईश्नवर्मन ही था जिसने एक स्वतंत्र राज्य की स्थापमा की। प्रारंभिक मौखरी शासकों ने उत्तर-गुप्त शासकों के साथ पारिवारिक संबंधों को कायम किया। परन्तु ईश्नवर्मन ने जब अपने स्वतंत्र राज्य की घोषणा की तो उत्तर-गुप्तों एवं मौखियों के बीच संबंध बिगड़ गये क्योंकि अपसाड़ अभिलेख से सूचना मिलती है कि मगध के उत्तर-गुप्त वंश के चौथे शासक कुमारगुप्त ने ईश्नवर्मन पर विजय हासिल की। परन्तु ऐसा लगता है कि वंश का शासन जारी रहा।

ईश्नवर्मन के द्वितीय पुत्र सर्ववर्मन ने उत्तर-गुप्त वंश के शासक दामोदर गुप्त को पराजित कर मौखरियों के खोये हुए सम्मान को पुनः स्थापित किया। मौखरी वंश का अन्तिम शासक ग्रहवर्मन था जिसने थानेश्वर के शासक प्रभाकरवर्धन की पुत्री और प्रसिद्ध शासक हर्षवर्धन की बहन राज्यश्री के साथ विवाह किया। मालवा के शासक देवगुप्त ने कन्नौज पर आक्रमण किया और ग्रहवर्मन की हत्या करके मौखरी राज्य का अन्त कर दिया। मौखरियों ने आधुनिक उत्तर प्रदेश और मगध के कुछ हिस्सों पर शासन किया। परन्तु उन्होंने जो अनगिनत युद्ध किये उनमें, उनकी विजयों एवं पराजयों के कारण उनके राज्य की सीमाओं में परिवर्तन होते रहे।

34.2.3 उत्तर गुप्त शासक

जिन शासकों ने छठी सदी ई. के मध्य से 675 ई. तक मगध में शासन किया उनको मगध गुप्तों या उत्तर-गुप्त शासकों के नाम से जाना जाता है। परन्तु उसकी हमें कोई जानकारी नहीं है कि उनके प्रारम्भिक साम्राज्यवादी गुप्त शासकों के साथ किस प्रकार के सम्बन्ध थे।

गया से प्राप्त अपसाड़ अभिलेख में आठ उत्तर-गुप्त शासकों के नाम इस प्रकार से हैं—

1) कृष्णगुप्त	2) हर्ष गुप्त	3) जीवितगुप्त
4) कुमारगुप्त	5) दामोदरगुप्त	6) महासेनगुप्त
7) माधवगुप्त, और	8) आदित्यसेन	

उत्तर गुप्त राजाओं ने अपने अन्य समकालीन शासक परिवारों के साथ वैवाहिक संबंध कायम किये। उदाहरण के लिये हर्षगुप्त ने अपनी बहन का विवाह एक मौखरी राजा के साथ किया। इस पूरे काल में उत्तर गुप्त शासकों को अपने समकालीन किसी न किसी राजा के साथ संघर्ष करना पड़ा, उसके पुत्र जीवितगुप्त ने नेपाल के लिच्छिवियों एवं बंगाल के गौड़ राजाओं के विरुद्ध युद्ध किया, और जीवितगुप्त के उत्तराधिकारी राजा कुमारगुप्त ने मौखरी राजा ईश्नवर्मन को पराजित किया।

अगले गुप्त राजा कुमारगुप्त के पुत्र दामोदरगुप्त को मौखरी नरेश सर्ववर्मन ने पराजित कर उसका बध कर दिया और मगध का एक भाग खोना पड़ा। दामोदरगुप्त के उत्तराधिकारियों को कुछ समय के लिये मौखरियों के कारण मालवा की ओर पीछे हटना पड़ा परन्तु पुनः मगध पर अपनी सर्वोच्चता को स्थापित किया। उत्तर-गुप्त वंश का सबसे शक्तिशाली शासक आदित्यसेन था। वह 672 ई. में मगध में शासन कर रहा था तथा उसकी इस तिथि का उल्लेख उसके एक अभिलेख में भी हुआ है। उत्तर-गुप्त शासकों का शासन हर्षवर्धन के साम्राज्य तक बना रहा और आदित्यसेन ने अश्वमेध यज्ञ कर के अपने सिंहासनारोहण की शक्ति का प्रदर्शन किया। अपसाढ़ अभिलेख के अनुसार, उसके साम्राज्य में मगध, अंग एवं बंगाल के प्रदेश शामिल थे। यह संभव है कि उसके अपने राज्य में पूर्व उत्तर-प्रदेश को भी सम्मिलित कर लिया हो। वह एक परम भागवत था और उसने विष्णु के एक मंदिर का निर्माण कराया।

उत्तर गुप्त शासकों का अन्त उस समय हो गया जबकि बंगाल के गौड़ शासकों की शक्ति का प्रसार पश्चिम की ओर हुआ। लेकिन गौड़ों को कन्नौज के शासक यशोवर्मन के हाथों पराजित होना पड़ा।

इन उपरोक्त उल्लेखित वंशीय शक्तियों के अतिरिक्त उत्तर-गुप्त काल में दूसरी कई अन्य महत्वपूर्ण निम्नलिखित शक्तियों का भी उदय हुआ—

- गुजरात में स्थित वल्लभी के मैतृक
- राजपूताना और गुजरात के गुर्जर
- बंगाल में गौड़
- कामरूप (असम) में वर्मन
- उड़ीसा में मान और सैलोदभव।

वल्लभी के मैतृक प्रारम्भ में साम्राज्यवादी गुप्त शासकों के अधीन शासन करते थे और धीरे-धीरे उन्होंने अपनी सर्वोच्चता को स्थापित किया। गुर्जर राज्य का संस्थापक हरिचन्द्र था जिसके तीन उत्तराधिकारियों ने 640 ई. तक शासन किया। गौड़ शासन के अंतर्गत उत्तर और उत्तर-पश्चिम बंगाल के प्रदेश थे और इन पर सातवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में एक स्वतंत्र शासक के रूप में शशांक ने शासन किया जो हर्षवर्धन का समकालीन एवं शक्तिशाली प्रतिद्वंद्वी था। प्रयागप्रशस्ति, जिसमें गुप्त शासक स्कन्दगुप्त की उपलब्धियों का वर्णन है, में असम के दो राज्यों कामरूप एवं दवाक का उल्लेख हुआ है। चौथी सदी ई. के मध्य से कामरूप

उत्तर-पूर्वी-क्षेत्र का राजनैतिक रूप से एक महत्वपूर्ण क्षेत्र हो गया था। इस तिथि के लगभग आस-पास, पुष्यवर्धन ने संभवतः असम में प्रथम ऐतिहासिक राजवंश की स्थापना की। इस वंश ने बारह पीढ़ियों तक भास्करवर्मन के समय तक शासन किया। भास्करवर्मन कन्नौज के शासक हर्षवर्धन का समकालीन एवं सहयोगी था और उसने सातवीं शताब्दी ई. के पूर्वार्द्ध में शासन किया था।

यद्यपि इस बात के प्रमाण हैं कि उड़ीसा के कुछ स्थानीय शासकों ने गुप्त शासन के अन्तिम वर्षों में साम्राज्यवादी गुप्त शासकों के आधिपत्य को स्वीकार कर लिया था, परन्तु छठी सदी ई. के उत्तरार्द्ध में उड़ीसा में दो स्वतंत्र राज्यों का उदय हुआ। इनमें से एक मान राज्य था जो बालासौर से पुरी जिले तक फैला हुआ था और दूसरा कोन्गौड़ का शैलोदभव राज्य था। जिसकी सीमायें चिलका झील से गंजाम जिले की महेन्द्रगिरि पहाड़ियों तक फैली हुई थी। दोनों राज्यों की शक्ति का ह्रास बंगाल में शशांक राजा और कन्नौज के शासक हर्षवर्धन की शक्ति में वृद्धि हो जाने के कारण हुआ।

बोध प्रश्न 1

1) छठी सदी ई. में उत्तर भारत में जिन छोटी शक्तियों ने जिन क्षेत्रों में शासन किया उनकी सूची बताइये।

....
....
....
....
....
....
....
....

2) निम्नलिखित में कौन-कौन से कथन सही (√) हैं और कौन-कौन से गलत (×) हैं?

अ) मन्दसौर से प्राप्त पत्थर स्तम्भों के अभिलेखों में कुमारगुप्त-I का उल्लेख हुआ है।

ब) मौखरी राजाओं ने गया के ऊपर शासन किया।

स) आदित्यवर्मन मौखरियों का सबसे शक्तिशाली शासक था।

द) यह स्पष्ट है कि उत्तर-गुप्त शासकों का साम्राज्यवादी गुप्त शासकों के साथ संबंध था।

34.3 थानेश्वर और कन्नौज के पुष्यभूति

हमें बहुत से स्रोतों से पुष्यभूति वंश के उदय की सूचना मिलती है और जिसने पहले तो हरियाणा प्रदेश के थानेश्वर में तथा बाद में उत्तर-प्रदेश के कन्नौज से शासन किया। इन स्रोतों के अन्तर्गत बाणभट्ट द्वारा रचित हर्ष चरित, हुवेन-त्सांग के संस्मरण, कुछ अभिलेख एवं सिक्के आदि आते हैं। बाणभट्ट हमें सूचित करता है कि थानेश्वर में इस वंश का संस्थापक राजा पुष्यभूति था और इसी कारणवश इस परिवार को पुष्यभूति वंश के नाम से जाना जाता है। यद्यपि हर्ष के अभिलेखों में उसका कोई उल्लेख नहीं हुआ है। बांसखेड़ा और मधुवन से प्राप्त प्लेटों एवं शाही मोहरों में प्रारम्भिक पांच शासकों के नामों का उल्लेख है जिनमें से प्रथम तीन को महाराज की उपाधि दी गई है। इससे स्पष्ट है कि वे सार्वभौमिक राजा नहीं थे। चौथे राजा प्रभाकरवर्धन के लिए महाराजाधिराज की उपाधि का प्रयोग किया गया है जिससे हमें एक स्वतंत्र राजा की सूचना मिलती है और उसने अपनी पुत्री राज्यश्री का विवाह गृहवर्धन के साथ करके मौखरियों से वैवाहिक संबंध स्थापित किये।

इस समय में (604 ई. के लगभग) थानेश्वर को पश्चिम की ओर से हूणों से खतरा हुआ। बाणभट्ट ने प्रभाकरवर्मन को "हूण नामक हिरन के लिये शेर" कह कर वर्णित किया है। उसके अनुसार राज्यवर्धन के अधीन एक सेना हूणों को पराजित करने के लिये भेजी गई परन्तु उसके पिता के अचानक बीमार हो जाने के कारण वह वापस लौट आया। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के कारण परिवार ने कुछ समय के लिये समस्या का समाधान किया। मालवा के राजा ने गृहवर्मन की हत्या कर दी और राज्यश्री को बन्दी बनाकर ले गया। ऐसा

प्रतीत होता है कि मालवा एवं गौड़ राजाओं ने एक संघ बनाया और इससे थानेश्वर को भी खतरा उत्पन्न हो गया। राज्यवर्धन ने मालवा को पराजित कर दिया परन्तु गौड़ नरेश शशांक ने धोखे से उसका वध कर दिया। अब यह हर्ष का उत्तरदायित्व था कि वह बदला ले और इसी बीच उसने एक मजबूत साम्राज्य की स्थापना कर ली।

34.4 हर्षवर्धन

हर्ष 606 ई. के लगभग थानेश्वर के राजसिंहासन पर बैठा और तुरन्त गौड़ों के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिये प्रस्थान किया। उसने भास्करवर्मन के साथ समझौता किया जो प्रज्ञयोतिशा (असम) का राजा था और गौड़ नरेश शशांक दोनों का शत्रु था। हमें इसकी कोई सूचना नहीं है कि शशांक के साथ हर्ष का युद्ध हुआ या नहीं परन्तु उसने अपनी बहन राज्यश्री को बचाने में सफलता प्राप्त की और थानेश्वर तथा कन्नौज दोनों राज्यों का विलय कर दिया गया एवं हर्ष ने अब कन्नौज से शासन करना प्रारम्भ कर दिया। वास्तव में, ह्वेन-त्सांग द्वारा दिये गये विवरण में हर्ष और उसके पूर्ववर्तियों को कन्नौज के शासक बताया गया है। बाण और ह्वेन-त्सांग दोनों ने हर्ष के द्वारा दूसरे राजाओं को पराजित करने के लिये की गई प्रतिज्ञा का उल्लेख किया है। इसी के साथ-साथ उसने पश्चिम में वल्लभी और गुर्जर, दक्खन में चालुक्य और पूर्व में मगध एवं गौड़ राजाओं को पराजित किया—

- वल्लभी के मैतृक शासक गुजरात प्रदेश के सौराष्ट्र क्षेत्र में एक मजबूत शक्ति के रूप में उभर चुके थे। वल्लभी की साधारणतः पहिचान काठियावाड़ में भावनगर से 18 मील दूरी पर स्थित वला से की गई है। हमें वल्लभी के पांच राजाओं के नाम मिलते हैं जो हर्ष के समकालीन थे। ह्वेन-त्सांग ने अपने वृतान्त में वल्लभी नरेश ध्रुवसेन-II बालादित्य का उल्लेख किया है। यह हर्षवर्धन का दामाद था और उसने हर्षवर्धन द्वारा बुलायी गयी प्रयाग में धार्मिक सभा में भी भाग लिया। इससे यह आभास मिलता है कि हर्ष की शत्रुता, बल्लभियों के साथ वैवाहिक संबंध कायम करने के बाद समाप्त हो गई। हमें गुर्जर राजाओं के अभिलेखों से सूचना प्राप्त होती है कि उनके राजा दद्दा द्वितीय ने बल्लभियों का समर्थन किया। वल्लभी हर्षवर्धन के शासन काल में भी शक्तिशाली शासक बने रहे।
- बाण के विवरण में हमें मालूम होता है कि गुर्जर शासकों की वर्धन वंश के प्रति शत्रुता थी। इसी काल में गुजरात के भड़ौंच क्षेत्र के नन्दिपुरी स्थान पर गुर्जर शासकों का एक परिवार शासन कर रहा था। इनका शासन सम्भवतः हर्ष के काल में भी जारी रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि गुर्जर शासकों ने, हर्ष के विरुद्ध अपनी सुरक्षा के लिये, कर्नाटक में बादमी के चालुक्य शासकों के सामान्तीय आधिपत्य को स्वीकार कर लिया था क्योंकि अईहोले अभिलेख के अनुसार लाट, मालवा और गुर्जर शासक चालुक्य नरेश पुलकेशिन-II के सामन्त थे।
- पुलकेशिन-II की अईहोले प्रशस्ति के अनुसार, जो अईहोले के एक मन्दिर की दीवार पर स्थित है, पुलकेशिन-II ने हर्षवर्धन के विरुद्ध सैनिक सफलता प्राप्त की।
- ह्वेन-त्सांग के विवरण के अनुसार यद्यपि हर्षवर्धन ने कई राज्यों के विरुद्ध विजय प्राप्त की परन्तु वह पुलकेशिन-II को पराजित न कर सका। पुलकेशिन-II कर्नाटक में बादमी का चालुक्य नरेश था। यह युद्ध किस स्थान पर हुआ इसकी विस्तृत जानकारी हमारे पास नहीं है, परन्तु इतना स्पष्ट है कि हर्षवर्धन पुलकेशिन-II के विरुद्ध सफलता प्राप्त न कर सका।
- हर्ष अपने पूर्वी अभियान में सफल रहा। एक चीनी विवरण के अनुसार हर्ष 641 ई. में मगध का सम्राट था। हमने पहले भी बताया था कि हर्ष का असम के राजा भास्करवर्मन के साथ गठजोड़ था और इसीलिए यह संभव है कि उन दोनों ने संयुक्त रूप से बंगाल एवं पूर्वी भारत के अन्य भागों में सैनिक अभियान चलाया हो।
- हर्ष के चीन के साथ कूटनीतिक संबंध थे और उसके समकालीन चीनी सम्राट ती-आंग ने उसके दरबार में अपने तीन दूत मण्डलों को भेजा था। अन्तिम प्रतिनिधि मण्डल वांग-ह्वेन-त्से के नेतृत्व में 647 ई. में भारत आया उस समय तक हर्षवर्धन जीवित नहीं रहा था। हर्ष ने स्वयं भी एक ब्राह्मण को 641 ई. में चीन भेजा था।

हर्ष ने 41 वर्ष तक शासन किया और ऐसा अनुमान है कि 647 ई. के आस-पास उसकी मृत्यु हो गयी। हर्ष के अधीन भी वहीं प्रशासनिक व्यवस्था कुछ परिवर्तनों के साथ जारी थी जो व्यवस्था गुप्त शासकों के दौरान प्रचलित थी। ह्वेन-त्सांग के विवरण के अनुसार, हर्ष अपने सम्पूर्ण राज्य का भ्रमण करता था। राजा ही सर्वोच्च अधिकारी था और उसकी सहायता उसके मंत्रियों एवं विभिन्न श्रेणी के अधिकारियों द्वारा की जाती थी।

मधुबन से प्राप्त तांबे की प्लेट मे कई अधिकारियों का उल्लेख हुआ है जैसे कि उपरिका (प्रांतीय गवर्नर), सेनापति (सेनाध्यक्ष), दूतक (सूचना देने वाला), आदि। हर्ष के अभिलेखों, बाण की हर्ष चरित और ह्वेन-त्सांग के विवरण से यह स्पष्ट है कि साम्राज्य और प्रशासन का स्थायित्व सहयोगियों एवं सामन्तों (सामन्त और महासामन्त) के समर्थन पर निर्भर करता था। ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकारियों को वेतन का नकद भुगतान नहीं किया जाता था। इसके अलावा, उनको, उनकी सेवा के लिये, भूमि प्रदान की जाती थी। यह भी लगता है कि इस समय कानून और व्यवस्था की स्थिति अच्छी नहीं थी क्योंकि ह्वेन-त्सांग को भी डाकुओं के द्वारा लूटा गया था।

बांसखेड़ा, नालन्दा और सेनापति के अभिलेखों में उल्लेख है कि हर्षवर्धन शिव का पुजारी था। परन्तु बाद में उसने बौद्ध धर्म को अंगीकार कर लिया और कन्नौज में एक बौद्ध सभा का आयोजन किया। इस सभा में महायान के सिद्धान्त का बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ प्रचार किया गया। ह्वेन-त्सांग के अनुसार, इस सभा में 18 राजाओं और तीन हजार भिक्षुओं ने भाग लिया तथा यह सभा 18 दिन तक चली। हर्ष के शासन काल के दौरान दूसरी सभा पांच वर्ष के बाद प्रयाग में की गई। हर्ष ने अपने शासन के बाद 30 वर्षों में 6 बार इस प्रकार बौद्ध सभाओं का आयोजन किया। इन पांच वर्षों के अन्तराल में वह अपने खजाने में जितना भी धन एकत्रित करता था उसको वह इन समारोहों के अवसर पर दान में बांट देता था। इस काल में शिक्षा एवं विद्वानों को भी संरक्षण प्रदान किया गया। नालन्दा विश्वविद्यालय में एक हजार से भी अधिक विद्यार्थी थे। हर्ष ने इस विश्वविद्यालय को 100 गांव दान में दिये थे।

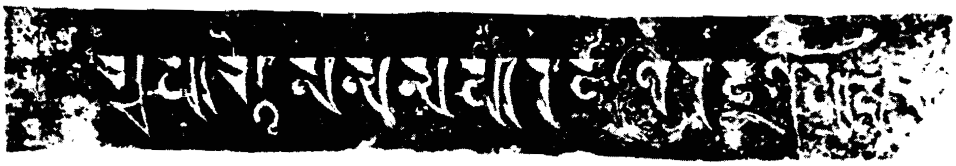

6. (बासखेड़ा लेख) हर्षवर्धन के हस्ताक्षर

7. नालंदा से प्राप्त मुहर

8. हर्ष का सोने का सिक्का

34.5 उत्तर-हर्ष काल में उत्तर भारत की राजनैतिक दशा

हर्षवर्धन ने जिस साम्राज्य की स्थापना की थी उसका ढांचा काफी ढ़ीला-ढ़ाला था और उसकी मृत्यु के बाद यह ढांचा भी समाप्त हो गया।

हर्ष की मृत्यु के तुरन्त बाद जो घटनाक्रम घटित हुआ उसका विस्तार के साथ विवरण चीनी सम्राट द्वारा नियुक्त किये गये राजदूत वांग-ह्वेन-त्से द्वारा किया गया है। जैसे ही उसने भारत की सीमाओं में प्रवेश किया वैसे उसके पास हर्ष की मृत्यु का समाचार पहुंचा। वह हमें बताता है कि चीनी राजदूत का भारत में प्रवेश रोकने के लिये अर्जुन (ती-नो-फी-ती) ने सेना को भेजा। वांग-ह्वेन-त्से किसी प्रकार से बच गया और अर्जुन से लड़ने के लिये वह तिब्बत से एक हजार तथा सात हजार नेपाल के सैनिक अपने साथ लेकर वापस आया। अर्जुन और सेना को पराजित कर दिया गया और उसको पकड़ लिया गया। बाद में अर्जुन की रानी संघर्ष करती रही और उसको भी हरा दिया गया। वांग अर्जुन को अपने साथ चीन ले गया तथा अपने राजा के समक्ष उसको उपस्थित किया। परन्तु कुछ विद्वानों ने इस विवरण की वैधता को चुनौती दी है।

उत्तर हर्ष वंश

उत्तर हर्ष काल के शासकों में राजा भास्करवर्मन के विषय में उसको निधानपुर अभिलेख में उल्लेख है कि उसका शासन बंगाल के मुर्शिदाबाद जिले के करनुसुवर्ना एवं उसके आस-पास के स्थानों पर था। इसी की भांति उपसाढ़ अभिलेख में उल्लेख है कि आदित्यसेन का शासन मगध पर था।

काश्मीर में दुर्लभवर्धन ने कारकोटा नाम के वंश का शासन स्थापित किया। उसके पौत्र चन्द्रपिद काश्मीर में अरबों के प्रवेश को रोका। इसी वंश के एक दूसरे राजा ललितादित्य मुक्तापिद ने कन्नौज पर आक्रमण किया और यशोवर्मन को हरा दिया। चीनी वृतान्तों से स्पष्ट है कि मुक्तापिद ने राज्य पर अपना अधिकार नहीं किया बल्कि उसके साथ समझौता करके उसको अपना सहयोगी बना लिया।

हर्ष की मृत्यु के 75 वर्ष बाद यशोवर्मन ने कन्नौज में शक्ति प्राप्त की थी। उसने गौड़ राजाओं को पराजित किया और मगध को जीत लिया। यशोवर्मन एक महान योद्धा होने के साथ-साथ विद्वानों को भी खूब संरक्षण प्रदान करता था उसके दरबार में वाक्पति एवं भावभूति जैसे विद्वान थे। वाक्पति ने प्राकृत में मालतिमाधव, महावीरचरित, और उत्तर-रामचरित की रचना की।

यद्यपि इन राजवंशों का शासन काफी कम समय तक रहा, परन्तु हमको यह याद रखना चाहिए कि इस काल में, भारतीय उपमहाद्वीप के क्षेत्रों में राज्य व्यवस्था में स्थायित्व आना प्रारम्भ हो गया था। इस समय कोई अखिल भारतीय साम्राज्य तो था नहीं, परन्तु वे क्षेत्रीय राजनैतिक ढांचों के प्रारम्भ होने का प्रतिनिधित्व करती थी। कश्मीर घाटी में, जिसके विषय में हम ऊपर लिख चुके हैं, कि प्रथम बार एक स्थानीय राज्य व्यवस्था कार्य कर रही थी। बंगाल में आठवीं सदी के मध्य में पाल शक्ति का उदय हुआ और कई सदियों तक इनका शासन वहां पर जारी रहा। यह इस प्रदेश के राजनैतिक इतिहास में एक नये युग का प्रारम्भ था। इसी प्रकार से, पश्चिम भारत में जिसके अन्तर्गत गुजरात एवं राजस्थान आता है, गुर्जर-प्रतिहार गुहिला, चाहमान तथा दूसरे राजवंशों के रूप में उदय हुआ और इन राजवंशों के रूप में उदय हुआ और इन राजवंशों के अंतर्गत राजपूतों की विभिन्न उप-जातियां थीं और इन्होंने पश्चिमी भारत की राजनीति पर कई शताब्दियों तक अपना अधिकार कायम रखा। इससे साफ है कि गुप्तों की शक्ति के पतन एवं हर्ष के साम्राज्य की समाप्ति का अर्थ यह नहीं होता कि भारत में राजनैतिक अराजकता का युग प्रारम्भ हो गया था। इन साम्राज्यों की समाप्ति के बाद, क्षेत्रीय शक्तियों ने स्वयं को सुदृढ़ किया और आने वाले युग के इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

बोध प्रश्न 2

1) निम्नलिखित में से कौन-कौन से कथन सही (√) एवं कौन गलत (×) हैं?

अ) ह्वेन-त्सांग एक अरब यात्री था।

ब) बल्लभी के मैतृक सौराष्ट्र क्षेत्र में एक मजबूत शासक शक्ति थे।

स) हर्ष ने पुलकेशिन-II को पराजित किया।

द) हर्ष ने कोई बौद्ध धर्म का सम्मेलन नहीं बुलाया।

इ) वांग-ह्वेन-त्सी के विवरण की वैधता पर कुछ विद्वानों ने संदेह व्यक्त किया है।

2) हर्ष एवं अन्य राज्यों के मध्य संबंधों पर 10 पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) उत्तर हर्ष काल में उत्तर भारत की राजनैतिक दशा कैसी थी? इस पर दस पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

34.6 सारांश

उत्तर-गुप्त काल में बहुत से राज्य अस्तित्व में आये। ये राज्य इतने बड़े नहीं थे जितना गुप्त राज्य। इन राजवंशों का भाग्य समय के साथ-साथ बदलता रहता था जिन्होंने इन राज्यों में शासन किया। हर्ष जैसे राजा ने सम्पूर्ण उत्तरी भारत को अपने अधीन करने में सफलता प्राप्त की परन्तु उनका राज्य थोड़े समय के लिए ही बना रह सका। इसी के साथ-साथ हम देखते हैं कि बहुत से क्षेत्रों में कई नयी राजनैतिक शक्तियों का उदय हुआ जो कई सदियों तक बनी रहीं। इस काल में कई क्षेत्रीय राज्यों के प्रारम्भ को खोजा जा सकता है। यद्यपि इन शाही परिवारों का शासन काफी कम समय के लिये बना रहा परन्तु इस काल के भारत उप-महाद्वीप में क्षेत्रीय स्तर पर स्थायी राज्य व्यवस्थाओं का प्रारम्भ हुआ। ये अखिल भारतीय स्तर के राज्य नहीं थे, परन्तु ये स्थानीय राज्य व्यवसायों के प्रारम्भ का प्रतिनिधित्व करते थे और भारत के आगामी काल के इतिहास में महत्वपूर्ण योगदान किया।

34.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 34.2 के आधार पर अपना उत्तर दें।

2) अ) × ब) √ स) × द) ×

बोध प्रश्न 2

1) अ) × ब) √ स) × द) × ई) √
2) भाग 34.4 के आधार पर अपना उत्तर दें।
3) भाग 34.5 के मुख्य-मुख्य अंशों के साथ तुलना करके अपना उत्तर दें।

इकाई 35 दक्खन और दक्षिण भारत के राज्य

इकाई की रूपरेखा

35.0 उद्देश्य
35.1 प्रस्तावना
35.2 मध्य छठवीं शताब्दी तक दक्खन की राजनीतिक स्थिति
- 35.2.1 विदर्भ
- 35.2.2 कर्नाटक
- 35.2.3 पूर्वी दक्खन
- 35.2.4 दक्षिणी कर्नाटक

35.3 दक्षिण भारत की राजनीतिक स्थिति
35.4 चालुक्यों, पल्लवों और पांडवों का उदय
- 35.4.1 चालुक्य
- 35.4.2 पल्लव
- 35.4.3 पांड्या
- 35.4.4 अन्य शक्तियाँ

35.5 विभिन्न शक्तियों में टकराव
- 35.5.1 छोटे राजाओं की भूमिका
- 35.5.2 राजनीतिक टकरावों के अन्य आयाम
- 35.5.3 अन्य देशों के साथ संबंध
- 35.5.4 केरल

35.6 राजनीतिक संगठन
- 35.6.1 राजा और प्रशासन का उच्चतर वर्ग
- 35.6.2 प्रशासनिक इकाइयाँ
- 35.6.3 स्थानीय संगठन

35.7 विभिन्न श्रेणी के शासकों के संबंध
35.8 सारांश
35.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

35.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- दकन और दक्षिण भारत में उदय होने वाले राज्य विशेषकर बादमी के चालुक्यों और कांची के पल्लवों के विषय में जान सकेंगे,
- इन राज्यों के बीच के संबंध समझ सकेंगे,
- हमारे काल के राजनीतिक इतिहास को समझने में भूगोल की भूमिका, और
- इस बात की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे कि इन राज्यों में जनता पर किस तरह शासन होता था?

35.1 प्रस्तावना

विंध्य के दक्षिण में पड़ने वाले भारत के भाग को लोग दक्षिण भारत या दक्खन कहते हैं। यह विभाजन दरअसल प्राचीन भारत के उस समय से ही चला आ रहा है, जब विंध्य के दक्षिण में पड़ने वाला क्षेत्र दक्षिणपथ या दक्षिणी क्षेत्र कहलाता था। दक्खन मध्य युग में आकर दक्कन हो गया, जिससे दकन शब्द निकला है। लेकिन इतिहासकारों और भूगोलविदों को मुख्य दकन को शेष दक्षिण भारत से अलग करके देखना उपयोगी लगा है। दक्खन में महाराष्ट्र और उत्तरी कर्नाटक आ जाते हैं, और गोदावरी और कृष्णा के दुहरे डेल्टा भी। इसी रीति का अनुसरण करते हुए, हम दक्खन और दक्षिण भारत की बात विंध्य के दक्षिण

में पड़ने वाले दो क्षेत्रों के रूप में करेंगे, जबकि 'दक्षिणी भारत' शब्द का इस्तेमाल दोनों क्षेत्रों के लिये, और उत्तर भारत से अलग करके देखे जाने वाले क्षेत्रों के लिये, करेंगे, आप इस क्षेत्र के इतिहास और समाज के अध्ययन में जितने गहरे उतरते जायेंगे, आपको इन भेदों का महत्व और अधिक समझ में आता जायेगा।

खण्ड सात में आप दक्खन और दक्षिण भारत में मौर्य काल और उत्तर मौर्य काल में होने वाले राजनीतिक विकास के बारे में पढ़ चुके हैं। आपने ध्यान दिया होगा कि दक्खन तो मौर्य साम्राज्य में शामिल था, और भारत की प्रमुख रियासतें–अर्थात् चोला, पांड्या, चेरा और सतियापुत्रों की रियासतें–मौर्यों की मित्र और पड़ोसी थी। उत्तर मौर्य काल के, प्रारम्भिक दौर में राजा की उपाधि वाले छोटे-छोटे सरदार दक्खन में उभरे और दक्खन को, अपने आपको "दक्खन के स्वामी" कहने वाले, सतवाहनों ने अपने में मिला लिया। दक्षिण में भी, रियासतों में महत्वपूर्ण बदलाव हो रहे थे, जिसके फलस्वरूप आने वाले काल में राज्य व्यवस्थाओं का उदय हुआ। इस इकाई में आप दक्खन में उत्तर-सतवाहन काल (तीसरी शताब्दी की शुरुआत) से आठवीं शताब्दी तक विकसित होने वाली राजनीतिक स्थिति के बारे में पढ़ेंगे।

35.2 मध्य छठवीं शताब्दी तक दक्खन की राजनीतिक स्थिति

सतवाहनों के पतन के बाद दक्खन पर एक वंश का राजनीतिक कब्जा खत्म हो गया। कई राज्य अलग-अलग क्षेत्रों में सतवाहनों के उतराधिकारियों के रूप में उभर कर आये। उत्तरी महाराष्ट्र में हम अमीरों को देखते हैं, जिन्होंने कुछ समय तक शक राज्यों में सेनापतियों का काम किया, और मध्य तीसरी शताब्दी में एक राज्य की स्थापना की। उसकी स्थापना ईश्वरसेन ने की, जिसने 248-49 ई. में एक युग की शुरुआत की। बाद में यह युग बहुत महत्वपूर्ण हो गया और इसे कलचुरी चेदा युग के नाम से जाना गया।

35.2.1 विदर्भ (महाराष्ट्र)

महाराष्ट्र पठार पर जल्दी ही वकटक हावी हो गये। उन्होंने तीसरी शताब्दी की अंतिम चौथाई से छोटे राजाओं के रूप में शुरुआत की, लेकिन तेजी से अपनी ताकत बढ़ा ली और महाराष्ट्र के अधिकांश भाग और उससे लगने वाले मध्य प्रदेश के भागों पर अपना कब्जा कर लिया। वकटकों की दो शाखाएं थीं जो अलग-अलग क्षेत्रों में राज्य कर रही थीं। मुख्य शाखा तो पूर्वी महाराष्ट्र (विदर्भ क्षेत्र) से राज करती थी, जबकि वककरों की घाटी शाखा के नाम से जानी जाने वाली एक सहयोगी शाखा दक्षिणी महाराष्ट्र में राज करती थी। सबसे मशहूर वकटक राजा मुख्य शाखा का प्रवरसेन प्रथम हुआ। सम्राट की उपाधि वकटकों में केवल प्रवरसेन प्रथम के पास ही रही। उसने कई वैदिक यज्ञ किये और ब्राह्मणों को कई भूमिदान भी किये। कुल मिला कर वकटक लोग शांति प्रिय रहे, और उन्होंने अपने शक्तिशाली पड़ोसियों जैसे उत्तर में गुप्त, पूर्वी दकन में विष्णुकुंडी और दक्षिण में कदम्ब के साथ शादी विवाह के और राजनयिक रिश्ते कायम किये। लेकिन छठवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में कलचुरियों और कादम्बों के अपने अपने क्षेत्र बना लेने से इस राज्य को टूटने और कमजोर होने से बचाया नहीं जा सका। मध्य छठवीं शताब्दी तक आते-आते दक्खन की बड़ी शक्ति के रूप में बादमी के चालुक्यों ने उनके पांव उखाड़ दिये।

35.2.2 कर्नाटक

उत्तरी कर्नाटक (उत्तर कन्नड़) की तटीय पट्टी और साथ के क्षेत्रों में चुटुओं ने एक छोटा राज्य बना लिया। उन्होंने चौथी शताब्दी के मध्य तक राज किया, फिर कदम्बों ने उन्हें उखाड़ फेंका। इस राज्य की स्थापना मशहूर मयूरसरमन ने की। मयूरसरमन छापापार लड़ाई में माहिर था और उसने कांची के पल्लवों को अपनी प्रभुसत्ता मानने पर मजबूर कर दिया। फिर उसने अश्वमेध यज्ञ किये और मयूरसरमन से मयूरवर्मन, याने ब्राह्मण से क्षत्रिय बन गया (बर्मन क्षत्रिय वर्ग सूचक नाम था, जबकि सरमन ब्राह्मण वर्ग सूचक)। कदम्ब राज्य के इतिहास की शुरुआत में उसका बंटवारा परिवार की दो शाखाओं के बीच हो गया, और वैजयंती (बनवासी) तथा पलसिका (हलसी) राजधानियाँ बनी। दोनों शाखाएँ कभी आपस में शांति बना कर नहीं रही, और दोनों पर उनके अधिक शक्तिशाली पड़ोसियों–पल्लवों, पश्चिमी गंगा, और सबसे अधिक, बादमी के चालुक्यों का खतरा रहा। चालुक्यों ने धीरे-धीरे उनकी भूमि हड़पनी शुरू कर दी, और 575 ई. तक आते-आते उन्हें बिल्कुल हरा दिया।

35.2.3 पूर्वी दक्खन

उत्तर सतवाहन दक्खन में, राजनीतिक दृष्टि से, सबसे अधिक अशांत क्षेत्र पूर्व में पड़ने वाला उपजाऊ

कृष्णा गोदावरी डेल्टा (आंध्र डेल्टा) क्षेत्र था। यहां सतवाहनों के बाद इक्षवकु आये जिन्होंने 225 ई. से इस क्षेत्र पर राज किया। पश्चिम से अभीरों के आने पर उनके राज में विघ्न आया। लेकिन यह एक अस्थायी दौर था : इक्षवकु फिर लौटे और उन्होंने अगले लगभग पचास सालों तक राज्य किया। फिर यह क्षेत्र कई जागीरों में बंट गया। तांबे के पत्तरों पर लिखे अभिलेखों से हमें पता चलता है कि पहले बृहतफलायन गोत्र के राजा आये फिर सलंकायन गोत्र के जबकि समुद्रगुप्त की प्रशंसा करने वाली इलाहाबाद स्तंभ या प्रयागप्रस्ति की (देखिये इकाई 32) के अभिलेख से हमें इस क्षेत्र में 350 ई. के आसपास के कोई आधा दर्जन राज्यों के बारे में जानकारी मिलती है। इनमें वेंगी कुरला के राज्य शमिल हैं: उनकी राजधानियाँ पिश्तापुर और देवराष्ट्र की अवमुक्ता थी।

आंध्र डेल्टा में राजनीतिक स्थिरता पाँचवीं शताब्दी के मध्य में विष्णुकुंडियोंके आने के साथ वापस आयी। उनके वकटकों के साथ अच्छे संबंध थे, लेकिन दक्षिण कर्नाटक के पश्चिमी गंगों के साथ के साथ उनका टकराव लगातार काफी समय तक बना रहा। कई अश्वमेध यज्ञ करने वाला, इस शाखा का संस्थापक, मधुवर्मन प्रथम (440-60) ई. और मधुवर्मन द्वितीय इस शाखा के मशहूर शासकों में हैं। विष्णुकुंडियों ने सातवीं शताब्दी की पहली चौथाई में चालुक्यों के आने तक राज किया।

35.2.4 दक्षिण कर्नाटक

दक्षिण कर्नाटक में पाँचवीं शताब्दी की शुरुआत में एक वंश का उदय हुआ। इस वंश के राजा गंग या पश्चिमी गंग कहलाते हैं, ये उड़ीसा के पूर्वी गंगों से अलग थे। पश्चिमी गंगों ने अलगे छह सौ सालों में शासन किया। इतने लम्बे संबंध के कारण यह क्षेत्र गंगवाड़ी कहलाने लगा। गंगवाड़ी एक अलग-अलग क्षेत्र है। पहाड़ियों से घिरा ये क्षेत्र कृषि की दृष्टि से कहीं कम सम्पन्न हैं। इन्हीं दोनों कारणों से गंग लोग बिना अधिक बाहरी हस्तक्षेप के इतने लम्बे समय तक शासन कर सके। बहरहाल, सैनिक महत्व की दृष्टि से उनकी स्थिति लाभकर थी। उन्होंने बाद में पल्लवों और चालुक्यों के टकराव में एक बहुत अहम भूमिका अदा की वे इन टकराओं में चालुक्यों के साथ रहे उन्होंने पल्लवों और पांड्यों के टकराव में भी अहम भूमिका निभायी। उनके सम्बन्ध पल्लवों के साथ आमतौर पर अच्छे नहीं रहे। पहाड़ पर बने अपने किले नंदी दुर्ग से उन्होंने पल्लवों को खूब छकाया।

35.3 दक्षिण भारत की राजनीतिक स्थिति

तमिलनाडु और केरल में संगम काल का अंत तीसरी शताब्दी के अंत तक हो गया। इस क्षेत्र का चौथी से छठवीं शताब्दी तक का इतिहास बहुत अस्पष्ट है। पल्लवों का शुरुआती इतिहास इसी काल का है। हमें उनके कांची से जारी किये गये तांबे के पत्तर वाले अभिलेख मिलते हैं। पल्लवों के राज्य का संबंध परम्परा से कांची क्षेत्र (पालर नदी की घाटी) या टोंडईमंडलम (टोंडई, पल्लव का तमिल पर्यायवाची है) के साथ रहा। लेकिन ऐसा लगता है कि इस दौर में कांची क्षेत्र उनके कब्जे में नहीं था क्योंकि उन्हें कालभ्र नाम की पहाड़ी जनजाति ने उत्तर की तरफ खदेड़ दिया था।

दरअसल, संगम काल के अंत से छठवीं शताब्दी के मध्य तक तमिलनाडु और केरल पर कालभ्रों का कब्जा था, हमें उनके बारे में अधिक जानकारी नहीं है, लेकिन जो भी थोड़ी बहुत जानकारी उपलब्ध है उसके अधार पर यह कहा जा सकता है किं वे ब्राह्मणों की संस्थाओं के खिलाफ थे और बौद्ध और जैन धर्मो के समर्थक थे, उन्होंने संगम युग के चेलों, चोलों और पांड्यों के राज को खत्म कर दिया, और वे ऐसी गैर खेतिहर पहाड़ी जनजातियों के लोग थे जिन्होंने बसी बसाई खेतिहर आबादी में भारी तबाही मचाई। ऐसा लगता है कि कालभ्रों ने उत्तर कर्नाटक में आने वाली चालुक्य राज्य की सीमाओं तक अपना विस्तार कर लिया था क्योंकि वे यह दावा करते हैं कि इन्होंने भी उन्हें हराया था। इस काल को "कालभ्र अन्तराल" के नाम से जाना जाता है।

35.4 चालुक्यों, पल्लवों और पांड्यों का उदय

छठवीं शताब्दी के मध्य से, दकन और दक्षिण भारत को राजनीति पर तीन शक्तियों की गतिविधियों का बोलबाला रहा। बादमी के चालुक्य कांची के पल्लव और मदुरा के पांड्या।

35.4.1 चालुक्य

पुलकेसिन प्रथम के राज्य के साथ चालुक्य एक प्रभुतासपन्न शक्ति बन गये। उसने कर्नाटक के बीजापुर जिले में बादमी के पास 543.4 ई. में एक मजबूत दुर्ग बनवाकर, अपने राज्य की बुनियाद डाली, और एक अश्वमेध यज्ञ किया। उसके उत्तराधिकारियों ने कदम्बों को उखाड़ फेंका और धीरे-धीरे उनके राज्य को अपने मे मिला लिया, और कोंकण (महाराष्ट्र की तटीय पट्टी) के मौर्यों को भी अपने अधीन कर लिया। पुलकेसिन द्वितीय के अभियानों के साथ चालुक्य दक्खन की सबसे बड़ी शक्ति बन गये। क्योंकि दक्षिण में पश्चिमी गंगों और अलुपों ने और लाटों, मालवों तथा गुर्जरों ने उत्तर में उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। पुलकेसिन द्वितीय की सेना ने हर्षवर्धन की सेनाओं को नर्वदा के तट पर रोक दिया।

पुलकेशन द्वितीय ने आंध्र डेल्टा के विष्णु कुंडियों को भी हटा दिया। लेकिन वह केवल अधीनता की माग से संतुष्ट नहीं हुआ क्योंकि लगभग दस लाख एकड़ खेती योग्य भूमि वाला कृष्णा-गोदावरी डेल्टा अपने आप में एक बहुत ही कीमती सम्पदा था। इसलिए 621 ई. के आसपास उसने अपने छोटे भाई विष्णुवर्धन को अपनी जीत मजबूत करने और डेल्टा को अपने कब्जें में करने के लिए भेजा। 631 ई. में विष्णुवर्धन को अपना राज्य कायम करने की इजाजत मिल गई। इस तरह, बेंगी के चालुक्यों या पूर्वी चालुक्यों का वंश चला जिसने पांच सौ साल से भी ज्यादा समय तक इस क्षेत्र पर कब्जा बनाये रखा।

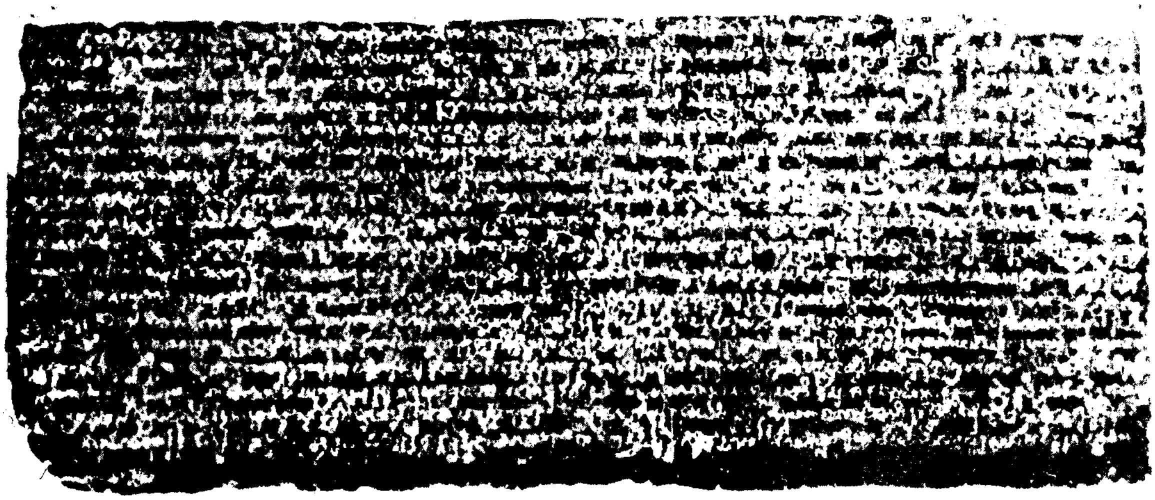

9. पुलकेशन द्वितीय का अहिहोल अभिलेख

35.4.2 पल्लव

पल्लवों का उदय छठवीं शताब्दी के मध्य के आसपास सिंहविष्णु के साथ हुआ। उसने टोंडईमंडलम (कांची क्षेत्र) में कालभ्र अंतराल का खत्म कर दिया और अपने राज्य का विस्तार दक्षिण में कावेरी डेल्टा तक कर लिया। उसके बाद महेन्द्रवर्मन प्रथम आया, उसने उत्तर में कृष्णा नदी तक के क्षेत्रों को अपने में मिला लिया। पल्लव राजाओं ने पड़ोस के सरदारों और राजाओं को भी अपने अधीन कर लिया और इस तरह के बादमी के चालुक्यों, और पांड्यों, के प्रभाव क्षेत्र में पहुंच गये। पांड्यों तक को कुछ अरसे के लिए उनकी अधीनता में रहना पड़ा। इस तरह सातवीं शताब्दी के मध्य तक पल्लवों के दक्षिण भारत में एक शक्तिशाली क्षेत्रीय राज्य कायम कर लिया था। उनकी शक्ति आठवीं शताब्दी के मध्य में दक्खन में चालुक्यों की जगह पर राष्ट्रकूटों के आने के साथ कमजोर होने लगे। दसवीं शताब्दी के शुरुआत तक, अपराजत के चोल प्रथम से हारने के साथ, पल्लवों राज्य का अंत हो गया।

35.4.3 पांड्या

छठवीं शताब्दी के अंत तक पांड्य कदुंगोन के साथ उस समय प्रकाश में आए जब उसने कालभ्रमों का दमन कर दिया। पांड्यों ने तमिलनाडु के धुर दक्षिण के ज़िलों में राज किया, और वेंगई नदी की घाटी उनके राज की केंद्रीय भूमि रही। उन्होंने उत्तर में कावेरी डेल्टा पर और दक्षिण-पश्चिम में केरा (केरल) पर अपना कब्ज़ा बढ़ाने की लगातार कोशिश की।

35.4.4 अन्य शक्तियाँ

गंगों का दक्षिण कर्नाटक में गंगवाड़ी पर शासन चलता रहा। इसके अलावा, उस समय दक्खन और दक्षिण भारत में नोलम्ब, बाणु, सिलाहर जैसे कई और छोटे-छोटे राज्य और रियासतें भी थीं। उत्तर भारत की तरह यहां दूर तक लगातार फैली घटियां या मैदान नहीं हैं। रायचूर दोआब (तुंगभद्र और कृष्णा के बीच), कृष्णा गोदावरी डेल्टा, निचली कावेरी घाटी और वेंगई घाटी जैसी बड़ी नदी-घाटियों को उबड़-खाबड़ पहाड़ी क्षेत्रों ने एक-दूसरे से काट रखा है। इसके अलावा, खेती करने वाले क्षेत्रों को विभाजित करने वाले बड़े-बड़े जंगल भी थे। इस सबसे राजनीतिक विभाजन को बढ़ावा मिला और छोटी-छोटी राजनीतिक ताकतें अलग-थलग पड़े क्षेत्रों में पनप सकीं। ऊपर जिन अहम नदी घाटियों का उल्लेख किया गया है वे बादमी (रायचूर दोआब) के चालुक्यों पल्लवों (पालार नदी घाटी) आदि अधिक बड़े राज्यों का साथ देने की स्थिति में थीं, और उन्होंने ऐसा किया भी, लेकिन इन क्षेत्रीय राज्यों में से किसी के लिए भी बाकी राज्यों पर अपना कब्जा जमाना मुश्किल काम था, उत्तरी भारत के राज्यों से भी ज्यादा मुश्किल काम। आगे चलुक्यों, पल्लवों और पांड्यों के आपसी टकराव का जो वर्णन किया जा रहा है, उससे यह स्थिति और भी स्पष्ट हो जाती है।

35.5 विभिन्न शक्तियों में टकराव

इस काल का इतिहास बादमी के चालुक्यों तथा पल्लवों के बीच, और पांड्यों और पल्लवों के बीच अक्सर होने वाली लड़ाइयों से रंगा पड़ा है। दुश्मनी की शुरुआत चालुक्य वंश के पुलकेसिन द्वितीय के हमले से हुई, जिसने महेन्द्र वर्मन को हराकर पल्लव राज्य के उत्तरी भाग पर कब्जा कर लिया। एक और अभियान में उसने (रायलसीमा में पल्लवों के सामंतों) बानों को हरा दिया और एक बार फिर कांची को धमकी दे डाली। लेकिन, महेन्द्र वर्मन के उत्तराधिकारी नरसिंह वर्मन प्रथम ने कई लड़ाइयों में उसे बुरी तरह हराया। नरसिंह वर्मन ने उसके बाद चालुक्यों पर हमला कर वादमी को हथिया लिया और शायद पुलकेसिन द्वितीय को मार भी दिया। पुलकेसिन द्वितीय के बेटे विक्रमादित्य प्रथम ने स्थिति को संभाला। उसने पल्लवों को खदेड़ दिया, पांड्यों के साथ गठबंधन किया, और पल्लवों के राज्य पर बार-बार हमले किये। इस संदर्भ में, उसके एक उत्तराधिकारी, विक्रमादित्य द्वितीय, का राज्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि उसके बारे में कहा जाता है कि उसने तीन बार कांची को रौंदा और लूटा।

विशेष युद्धों और छोटी लड़ाइयों के विस्तार में न जा कर, यहां हम बस इतना ध्यान में रख सकते हैं कि पल्लवों को पांड्यों के साथ भी लड़ाइयां लड़नी पड़ी।

यह बात गौर करने लायक है कि इन टकरावों में हर बार निशाना पल्लव ही बने। इसका केवल यह कारण नहीं था कि वे चालुक्यों और पांड्यों के बीच स्थित थे, बल्कि इसका मुख्य कारण यह था वे सबसे अधिक संपन्न थे। यह बात अपने आप में अहम है कि हमेशा चालुक्यों ने ही पल्लवों पर हमला किया और पल्लवों की चिंता बस उन्हें वापस उनके राज्य में धकेल देने की रही। इसका अकेला अपवाद था नरसिंह वर्मन प्रथम का चालुक्य राज्य पर हमला और इसकी राजधानी पर उसका कब्जा। लेकिन यह एक बदले की कार्यवाही थी, और टकराव के इस इतिहास में यह बस एक बार हुआ।

एक और बार पल्लव परमेश्वर वर्मन प्रथम ने ध्यान हटाने की कार्यवही के तौर पर चालुक्यों की राजधानी के खिलाफ अभियान छेड़ा था। परमेश्वर वर्मन ने अपनी राजधानी पर कब्जा किये चालुक्यों की सेनाओं से पीछा छुड़ाने के लिये उनका ध्यान वहां से हटाने की गरज से यह कार्यवाही की थी।

पांड्यों के बारे में भी यह सही है, जिन्होंने कावेरी डेल्टा के कब्जे के लिये बार-बार पल्लवों के साथ लड़ाई की। संगम साहित्य और ह्वेन सांग के वर्णन से यह पता चलता है कि पांड्यों के राज्य की केन्द्र–वेगई नदी-घाटी खेती की दृष्टि से कहीं बदतर थी। पांड्यों ने अवश्य ही यह महसूस किया होगा कि अगर वे अमीर और शक्तिशाली होना चाहते हैं तो, उन्हें संपन्न कावेरी डेल्टा पर कब्जा करना होगा। लगता है दिमाग में इसी मकसद को रखकर उन्होंने पल्लवों से लड़ाई की होगी, और नौवीं शताब्दी के शुरूआती दौर तक उन्होंने आखिर इस क्षेत्र पर कब्जा कर ही लिया था।

35.5.1 छोटे राजाओं की भूमिका

छोटे राजाओं और सरदारों ने क्षेत्रीय राज्यों के टकराव में इस या उस शक्ति के अधीनस्थ सहयोगियों के तौर पर हिस्सा लिया। पुलकेसिन द्वितीय को नरसिंह वर्मन प्रथम पर हमला करने से पहले पल्लवों के सहयोगी बाणों को शांत करना पड़ा था। इसी तरह, पल्लवों के सेनापति ने सबरा के राजा उदयन और निषादों के

सरदार पृथ्वीव्याघ्र के साथ लड़ाई लड़ी, जो शायद चालुक्यों का साथ दे रहे थे। इन अधीनस्थ सहयोगियों ने केवल लूट में ही हिस्सेदारी नहीं की, बल्कि अपने राज्यों में नये क्षेत्र भी मिला लिये।

छोटे राज्यों को अलग से देखने पर हम उनमें कुछ विशेष ध्यान देने योग्य नहीं दे पाते ऐसा इसलिए है क्योंकि हर छोटे राज्य की अपने आपमें कोई अहमियत नहीं थी, उनकी स्थिति छुट की सी थी। लेकिन उन्हें साथ मिला कर देखने पर, वे सचमुच दक्खन और दक्षिण भारत के मामलों में एक जबरदस्त राजनीतिक शक्ति के रूप में सामने आते हैं यह तथ्य भी अपने आप में इतना ही उल्लेखनीय है कि चौथी से नवीं शताब्दी तक कोई भी राजा दक्खन और दक्षिण भारत पर अपना कब्जा नहीं कर पाया। इन छह शताब्दियों तक, कई राजाओं की उत्साही कोशिशों और महत्वाकाक्षाओं के बावजूद आय स्थिति राजनीतिक फूट में भी, और छोटे राजाओं तथा सरदारों की अहमियत में भी।

35.5.2 राजनीतिक टकराओं के अन्य आयाम

पल्लवों और चालुक्यों के आपसी टकराव का एक अहम नतीजा रहा लता या दक्षिण गुजरात के चालुक्यों की राजधानी का उदय, नरसिंहवर्मन के बादमी पर कब्जे और पुलकेसिन द्वितीय की मौत के परिणामस्वरूप, चालुक्य राज्य में भयंकर गड़बड़ी और राजनीतिक अव्यवस्था फैल गयी। इसकी एकता को बहाल करने तथा विघटनकारी शक्तियों का दमन करने के काम में, और चालुक्यों को खदेड़ने के काम में, विक्रमादित्य प्रथम को उसके छोटे भाई जयसिंहवर्मन ने बहुत मदद दी। बदले में विक्रमादित्य ने उसे दक्षिण गुजरात उपहार में दे दिया।

35.5.3 अन्य देशों के साथ संबंध

इस समय की दक्षिण भारत की राजनीति की एक अहम विशेषता थी श्रीलंका के मामलों में सक्रिय दिलचस्पी, चालुक्यों के साथ लड़ाई में हमें सुनने को मिलता है कि नरसिंहवर्मन प्रथम की तरफ लंका का एक राजकुमार मारवर्मन था। उसे देशनिकाला दे दिया गया था और उसने पल्लवी दरबार में शरण ली थी। बादमी से लौटने के बाद नरसिंहवर्मन ने दो नौ सैनिक अभियान भेज कर मारवर्मन को अनुराधापुर का सिंहासन हासिल करने में मदद दी। बाद में, जब मारवर्मन से एक बार फिर उसका राज्य छिन गया तो, उसने पल्लव राजा से ही मदद ली। पांड्या भी श्रीलंका में गहरी दिलचस्पी रखते थे, जिसकी संपदा के लालच में उन्होंने इस क्षेत्र पर लूटपाट के इरादे से हमले किये।

पल्लवों के बारे में ऐसा लगता है कि उन्होंने दक्षिण पूर्व एशिया की राजनीति में दिलचस्पी ली और उसे प्रभावित भी किया। यह संभव है कि नंदीवर्मन द्वितीय पल्लवमल्ल ने दक्षिण पूर्व एशिया से आकर आठवीं शताब्दी के मध्य में पल्लवों के सिंहासन का उत्तराधिकार लिया। हमें नंदीवर्मन द्वितीय के शक्तिशाली जहाजी बेड़े के बारे में भी सुनने को मिलता है, और थाईलैंड में उपलब्ध एक दस्तावेज में एक विष्णु मंदिर और एक तालाब पर उसकी एक उपाधि का उल्लेख मिलता है। बहरहाल, दक्षिणपूर्व एशिया में और अधिक प्रत्यक्ष हस्तक्षेप चोलों के साथ हुआ, जिन्होंने दक्षिण भारत में पल्लवों के प्रभुत्व को समाप्त कर दिया।

35.5.4 केरल

ऐसा लगता है कि इस काल में केरल पर पेरूपलों का राज रहा, हालांकि इस काल के राजनीतिक इतिहास का ब्यौरा नहीं मिलता। इस वंश का एक मशहूर शासक चेरामन पेरूपल (आठवीं शताब्दी के अंतिम वर्ष/नवीं शताब्दी के शुरुआत वर्ष) था। संभवतः उसने अपने धर्म और धार्मिक नीति का कुछ असाधारण ढंग से पालन किया, जिससे जैन, ईसाई, शैव और मुसलमान केवल एक संरक्षक के रूप में उसकी प्रशंसा नहीं करते, बल्कि यह दावा भी करते हैं कि वह उनके अपने धर्म को मानता भी था। मालाबार की संपन्नता ने बाहरी हमलावरों को हमेशा अपनी और खींचा। न केवल पांड्या केरल हो हारने का दावा करते हैं। बल्कि यही दावा नरसिंहवर्मन, कई चालुक्य राजा, और बाद में जाकर राष्ट्रकूट भी करते हैं।

बोध प्रश्न 1

1) निम्न वक्तव्यों में से कौन-सा वक्तव्य सही (√) है और कौन-सा गलत (×)

   क) सतवाहनों के पतन के बाद दकन पर एक ही वंश का राजनीतिक कब्जा बना रहा।

   ख) वकटक शांति प्रिय लोग लगते हैं।

   ग) संगम काल के पतन के बाद तमिलनाडु और केरल पर कालभ्रों का कब्जा रहा।

घ) दक्षिण भारत में टकरावों में निशाना पल्लव ही रहे।

च) मालाबार की संपन्नता ने हमलावरों को अपनी तरफ नहीं खींचा।

2) चालुक्यों, पल्लवों, और पांड्यों के बारे में आप क्या जानते हैं? लगभग दस पंक्तियों में लिखें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) दक्षिण भारत की शक्तियों के टकराव किस किस्म के थे, विवेचना कीजिये। इसमें छोटे राजाओं की क्या भूमिका रही? लगभग दस पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

35.6 राजनीतिक संगठन

आइये इन राज्यों के राजनीतिक संगठन की संक्षेप में चर्चा कर ली जाये।

35.6.1 राजा और प्रशासन का उच्चतर वर्ग

अब हम यह विवेचना करेंगे कि इन राज्यों में किस किस्म का प्रशासन परया जाता था। सिद्धांत में तो राजा सभी अधिकारों का स्रोत होता था। उसके पास महाराजा, भट्टरक, धर्ममहाराजाधिराज जैसी ऊंची लगने वाली उपाधियां होती थी। शुरुआत में राजशाही वैदिक आदर्श से चलती थी। हमें राजाओं के अभिलेखों में यह घोषणा मिलती है कि उन्होंने अश्वमेध यज्ञ कर, या वाजपेय यज्ञ या राजसूय यज्ञ किये। इस दौर में इन यज्ञों की वह सामाजिक अहमियत नहीं थी जो आगे चल कर वैदिक काल में बनी। लेकिन उनका एक विशेष राजनीतिक अर्थ था क्योंकि वे राजा विशेष की स्वाधीनता को रेखांकित करते थे और उसके शासन करने के अधिकार को उचित ठहराने वाले थे। इस तरह, चालुक्य राज्य के संस्थापक पुलकेसिन प्रथम ने अपने वंश के शासन की शुरुआत दिखाने के लिये एक अश्वमेध यज्ञ किया। बहुत से अन्य राजाओं ने भी यही किया। बहरहाल, धार्मिक माहौल बदलने के साथ, धीरे-धीरे राजशाही के आदर्श में भी बदलाव आया और राजसी वैदिक यज्ञों की रीति भी खत्म हो गयी।

दरबार में राजा की मदद के लिये मंत्री होते थे युवराज और शाही परिवार के अन्य सदस्य ऊंचे स्तरों पर सरकार चलाने के काम में अहम हिस्सेदारी करते थे। फिर अलग-अलग ओहदों वाले कई अधिकारी होते थे जो राजा के नाम पर प्रशासन के विभिन्न कामों को अंजाम देते थे। उनका एक अहम काम होता था करों को इकठ्ठा करना। एक मुख्य भूमि कर होता था जो उत्पाद का छठवां भाग या उससे ज्यादा होता था. इसके अलावा कई विविध कर थे, जैसे कपड़ा बनाने वालों, मवेशियों, शादी की दावतों आदि पर लगने वाले कर। कर इकठ्ठा करने के अलाला राज्य के अधिकारी कानून और व्यवस्था बनाये रखने का काम करते थे और उनके सामने लाये जाने वाले अपराध और दीवानी झगड़ों के मामलों को भी निपटाते थे।

35.6.2 प्रशासनिक इकाइयाँ

राज्य को प्रशासनिक इकाइयों के श्रेणीबद्ध सोपान में बांटा जाता था। दक्खन में इन इकाइयों को विषय, आहार, राष्ट्र आदि कहा जाता था। आठवीं शताब्दी से दक्खन में राज्यों को दस-दस गांवों के गुणकों में बांटने की रीति की शुरुआत हुई। एक जिले में बारह गाांव होते थे। पल्लव राज्य में नाडु प्रशासन की मुख्य, स्थायी इकाई के रूप में उभरा।

इस काल के राजाओं ने कृषि और उनकी संपदा तथा शक्ति के मुख्य आधार, राजस्व की अहमियत को पहचाना यह अपने आप में एक अहम बात है कि पल्लव काल में (और बाद में चोलकाल में) बुनियादी राजनीतिक इकाई नाडु का मतलब खेती योग्य भूमि भी होता था, जो काडु या खेती के अयोग्य भूमि से अलग थी। इसलिए, राज्य खेती के प्रसार को बढ़ावा देने की हर संभव कोशिश करता था। कदम्ब वंश के राजा प्रयूरसरमन के बारे में कहा जाता है कि उसने दूर-दूर से ब्राह्मणों को बुला कर बड़ी-बड़ी अनजुती जमीनों को खेती योग्य भूमि में बदल दिया। शायद इसी उद्देश्य से एक पल्लव राजा ने एक हजार हल दे डाले थे। इसके अलावा, क्योंकि दक्षिण भारत में खेती बहुत हद तक सिंचाई पर निर्भर करती थी, इसलिये पल्लवों ने नहरें, तालाब, झीलें और बड़े-बड़े कुएं बनवाने और उनकी संभाल में बहुत दिलचस्पी ली।

35.6.3 स्थानीय संगठन

दक्षिण भारतीय राज्यतंत्र, विशेषकर पल्लवी राज्यतंत्र, की एक आम विशेषता थी जन जीवन के सबसे अहम पहलुओं में स्थानीय सामूहिक एककों की अहमियत। ऐसे अनगिनत स्थानीय समूह और संगठन थे जिनका आधार जाति, दस्तकारी, व्यवसाय या धर्म होता था। इस तरह, दस्तकारों के संगठन थे, जैसे जुलाहों, तेलियों के संगठन, नंदेसी जैसे व्यापारियों के संगठन, मनीग्रामम और पांच सौ अय्यावोल के संगठन, विद्यार्थियों के, साधुओं के, मंदिर के पुराहितों आदि के संगठन। इसके अलावा, तीन अहम क्षेत्रीय संस्थायें थीं : उर, सभा और नगरम। उर एक गैर-ब्राह्मण ग्राम सभा थी, सभा एक ऐसी ग्राम सभा थी जिसमें केवल ब्राह्मण होते थे, और नगरम एक ऐसी सभा थी जहां व्यापारिक हितों का बोलबाला होता था। (नगरम के कुछ खेती संबंधी हित भी होते थे)। हर सभा के सदस्य साल में एक बार मिलकर बैठते थे, जबकि दिन प्रति दिन के कामों को देखने के लिये एक छोटा अधिशासी निकाय था। हर समूह स्वायत्तता के साथ और प्रथा तथा रीति पर आधारित अपने संविधान के अनुसार काम करता था, और स्थानीय स्तर पर अपने सदस्यों की समस्याओं का समाधान भी करता था। उन मामलों में, जिनका प्रभाव एक से अधिक सभाओं या संगठनों पर पड़ता था, निर्णय आपसी सलाह-मशविरे से होता था।

सामूहिक इकाइयों के जरिये चलने वाले स्थानीय प्रशासन से सरकार का भार काफी हल्का हो जाता था। इससे जनता को न केवल अपनी शिकायतें और समस्याएं कहने का मौका मिलता था, बल्कि इससे जनता पर खुद उनकी शिकायतें को दूर करने और समस्याओं को सुलझाने की जिम्मेदारी भी डाली जाती थी। इस तरह से राज्य का विरोध कम से कम होने के कारण उसका आधार भी मजबूत होता था क्योकि लोग सरकार को इन मामलों के लिये जिम्मेदार नहीं ठहरा सकते थे।

इसीलिये हमें पल्लव राजा स्थानीय स्वायत्तशासी सामूहिक संगठनों के काम में दखलंदाजी करते दिखाई नहीं देते। लेकिन वे अपना आधार मजबूत करने की कोशिश जरूर करते थे, इसके लिये वे ब्राह्मणों को बुलाते थे, और विशेष अधिकार प्राप्त ब्राह्मण बस्तियां बनाते थे, ब्राह्मणों को भूमिदान करते थे। यह भूमिदान या तो प्रत्यक्ष (ब्रह्मदान) या किसी मंदिर के नाम पर (देवदान) होता था। पल्लव राज्य के केन्द्रीय क्षेत्रों में हर जगह ऐसी ब्राह्मण बस्तियां बसायी गयीं, ये केन्द्रीय क्षेत्र सिंचित धान की खेती वाले संपन्न क्षेत्र होते थे; जिनकी संपन्नता पर पल्लवों की शक्ति निर्भर करती थी। जैसा कि हम देख चुके हैं, ब्राह्मणों की ग्राम सभा सभा या महासभा कहलाती थी। बाद के पल्लव काल के दौरान सभा ने समितियों के माध्यम से शासन करने की व्यवस्था बनाई इसे समिति व्यवस्था या वरीयम व्यवस्था कहा जाता है यह दक्षिण भारत की ब्राह्मण बस्तियों में स्वायत्त शासन की एक विशेषता बन गयी। सभा, अधिकांश तौर पर इन समितियों के जरिये,

कई काम निपटाती–थी- जैसे, तालाबों और सड़कों की संभाल, धर्मार्थ दानों और मंदिर के मामलों का प्रबंध, और सिंचाई के अधिकारों को नियमित करना।

दक्खन में, स्थानीय संगठनों और सभाओं की भूमिका कहीं कम स्पष्ट थी। सामूहिक संस्थाओं की जगह स्थानीय महाजन चालुक्यों के समय में गांवों और कस्बों में स्थानीय प्रशासन में हिस्सा लेते थे। गांवों में महाजनों का एक नेता होता था जिसे गमुंडा (या, मुखिया) कहते थे। इन महाजनों के पास दक्षिण भारतीय सभाओं जैसी स्वायत्ता तो नहीं थी, लेकिन राज्य के अधिकारियों की उन पर नजदीकी देख रेख होती थी।

बहरहाल, ब्राह्मण बस्तियां पूरे दक्खन और दक्षिण भारत में भी मिल जाती थीं। हमें यह तो ठीक-ठीक नहीं पता कि दक्खन के ब्राह्मण अपने सामूहिक मामलों को किस तरह चलाते थे। लेकिन क्योंकि वे सभी राजाओं और सरदारों के बनाये होते थे, इसलिये यह जरूर कहा जा सकता है कि वे बस्ती में सरकार के हितों का ध्यान रखते होंगे।

35.7 विभिन्न श्रेणी के शासकों के संबंध

बड़े राजाओं और उनके छोटे स्तर के मित्रों या सहयोगियों के संबंध को लेकर मतभेद हैं। व्यापक दौर पर, शक्तिशाली राजाओं, और छोटे राजा या सरदार किसी बड़े राजा को, विशेषकर पल्लवों को, धर्म के आधार पर अपना अधिपति मानते थे। पल्लव राजा बड़े धार्मिक उत्सवों में हिस्सा लेते थे जिससे उन्हें एक ऊंची कर्मकांडी स्तर प्राप्त था। इसी ऊंचे कर्मकांडी स्तर का सम्मान छोटे राजा और सरदार करते थे। इस मत का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। इस मत से यह बात समझ में नहीं आती कि ये छोटे राजा पल्लवों के प्रति सम्मान को चालुक्यों के प्रति सम्मान में कैसे बदल सके, या अस्थिर राजनीतिक स्थितियों वे किसी ऊंचे कर्मकांडी स्तर वाले राजा का सम्मान करना क्यों बंद कर देते थे और अपनी स्वाधीनता का ऐलान कर देते थे, या दुबारा क्यों वे दबाव में आकर कर्मकांडी स्तर का सम्मान करने को बाध्य हो जाते थे।

दूसरा मत इन छोटे राजाओं और सरदारों को बड़ी शक्तियों के सामंतों के रूप में मानता है। लेकिन सामंत एक तकनीकी शब्द है जिसका इस्तेमाल मध्ययुगीन पश्चिमी यूरोप में पाये जाने वाले एक विशेष किस्म के संबंध के लिये होता है। हम निश्चित तौर पर नहीं कह सकते कि क्या ऐसा ही संबंध पल्लवों या चालुक्यों और छोटे राजाओं और सरदारों के बीच भी था। इसीलिए हमने छोटी राजनीतिक शक्तियों के बड़ी राजनीतिक शक्तियोंके साथ संबंध के लिये "अधीनस्थ सहयोगी" जैसे तटस्थ शब्द को वरीयता दी है।

बोध प्रश्न 2

1) प्रशासन में स्थानीय संगठनों की भूमिका की विवेचना करें। लगभग दस पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) विभिन्न श्रेणी के शासकों के बीच संबंधों की विशेषता बतायें। लगभग दस पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

35.8 सारांश

इस इकाई में अपने छठवीं शताब्दी के मध्य तक की दक्खन और दक्षिण भारत की राजनीतिक स्थिति के बारे में सीखा। इस काल के बाद हमें यह देखने को मिलता है कि चालुक्य, पल्लव और पांड्या क्षेत्र की बड़ी राजनीतिक शक्तियां थीं। कुछ छोटी शक्तियां भी थीं, लेकिन उनकी भूमिका बहुत महत्वपूर्ण नहीं थी। बड़ी शक्तियां लगातार आपस में टकराती रहती थीं और छोटी शक्तियां इन टकराओं में इस या उस बड़ी शक्ति के साथ रहती थीं।

जहां तक राजनीतिक संगठन का संबंध है, राजा प्रशासन का केन्द्रीय अंग होता था और दूसरे अधिकारी उसकी मदद करते थे। दिन प्रति दिन के प्रशासनिक काम में स्थानीय संगठनों की भूमिका एक महत्वपूर्ण विशेषता थी।

35.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) क) × ख) √ ग) √ घ) √ च) ×
2) उत्तर 35.4 के आधार पर दें।
3) उत्तर 35.5 के आधार पर दें।

बोध प्रश्न 2

1) उत्तर 35.6.3 के आधार पर दें।
2) उत्तर 35.7 के आधार पर दें।

इकाई 36 अर्थव्यवस्था में परिवर्तन

इकाई की रूपरेखा

36.0 उद्देश्य

36.1 प्रस्तावना

36.2 आर्थिक परिवर्तनों की व्याख्या

36.3 व्यापार का ह्रास

36.4 सिक्कों की कमी

36.5 नगरों का ह्रास

36.6 कृषि का प्रसार

36.6.1 कृषि ज्ञान एवं तकनीकी में प्रगति

36.6.2 फसलें एवं पौधे

36.7 ग्रामीण बस्तियां

36.8 कृषि संबधों की नवीन विशेषताएं

36.8.1 किसानों पर आर्थिक बोझ

36.8.2 सामंतीय भू-व्यवस्था

36.8.3 बंद अर्थव्यवस्था का विकास

36.9 सारांश

36.10 शब्दावली

36.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

36.0 उद्देश्य

इस इकाई में हमारा उद्देश्य है कि आपका परिचय गुप्त और विशेषकर उत्तर-गुप्त काल में होने वाले आर्थिक परिवर्तनों से कराना। इस प्रकार से हम प्रारंभिक मध्यकालीन भारत के संक्रमण के एक महत्वपूर्ण पक्ष का विवेचन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको:

- भूमि अनुदानों की उत्पत्ति एवं आर्थिक परिणामों की जानकारी प्राप्त होगी,
- नगरों और अन्य नगरीय बस्तियों के क्रमिक पतन की प्रक्रिया एवं परिणामों के विषय में जानकारी होगी,
- ग्रामों तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था की विशेषताओं का ज्ञान होगा,
- कृषि सम्बन्धों की विशेषता, और
- उन परिवर्तनों के विषय में ज्ञात होगा जो कृषि उत्पादन के सुधारों के लिये उत्तरदायी थे।

36.1 प्रस्तावना

गुप्त और उत्तर-गुप्त काल की विशेषताओं का निर्धारण भारतीय अर्थव्यवस्था में हुए कुछ निश्चित परिवर्तनों के द्वारा किया गया।

खण्ड 8 (इकाई 33) में हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि गुप्त काल से व्यापार एवं शहरी बस्तियों का ह्रास प्रारंभ हो चुका था। परन्तु ये भारतीय समाज की बहुत महत्वपूर्ण विशेषताएं थीं। इन परिवर्तनों के निम्नलिखित कई उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं:

1) गुप्तकाल के बाद से नगर (जैसे कि तक्षशिला, कौशाम्बी, पाटलिपुत्र) प्रायः लुप्त हो गए। शहरी बस्तियों का यह ह्रास कोई अपवाद नहीं था बल्कि ऐसा मालूम पड़ता है कि यह एक सामान्य विशेषता थी।

2) बहुत से कारणों से व्यापारिक गतिविधियों को भी धक्का लगा और उनकी गति भी मंद पड़ गई। इसकी

पुष्टि शायद इस तथ्य से भी होती है कि इस समय में पहले की अपेक्षाकृत सिक्कों का निर्माण एवं जारी होना बहुत सीमित स्तर पर हो गया। इन परिवर्तनों का विस्तृत रूप से विश्लेषण आगे किया जाएगा।

इस पर ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिए कि ये परिवर्तन गुप्त काल में ही प्रारंभ हो चुके थे। नगरों के पतन का यह तात्पर्य नहीं है कि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में गिरावट आई। परन्तु हमें यह स्वीकार करना ही होगा कि अब अर्थव्यवस्था नगरों के दस्तकारी वस्तुओं के उत्पादन एवं व्यापार की गतिविधियों, तथा कृषि के, आधारों पर चलने के बजाय, केवल एक ही आधार पर चलनी प्रारंभ हुई। यह मुख्य रूप से एक कृषि अर्थव्यवस्था थी।

36.2 आर्थिक परिवर्तनों की व्याख्या

इन परिवर्तनों की व्याख्या कौन कैसे करता है? कुछ इतिहासकारों का अनुमान है कि इस विकास की प्रक्रिया में भूमि-अनुदानों की प्रथा निर्णायक तत्व थी। भूमि-अनुदानों की संख्या में वृद्धि गुप्त तथा विशेषकर उत्तर-गुप्तकाल में हुई तथा सम्पूर्ण देश में इसका प्रसार हो गया। भूमि-अनुदानों को राजाओं, सरकारों, राज्य परिवार के सदस्यों और उनके सामंतों द्वारा, ब्राह्मणों और मंदिर जैसी धार्मिक संस्थानों एवं मठों को व्यापक स्तर पर किया जाता था। इससे पूर्व दक्कन में सातवाहनों ने इन अनुदान प्राप्तकर्ताओं को केवल लगान वसूल करने के अधिकार दिए थे। परन्तु पांचवीं शताब्दी ई. से न केवल इन भूमि-अनुदान प्राप्तकर्ताओं को भू-राजस्व (लगान) वसूल करने का अधिकार मिल गया अपितु इन क्षेत्रों में स्थित खानों से प्राप्त होने वाले खनिज पदार्थों को भी उनके अधीन कर दिया गया। दान की गई भूमि, गांव और गांवों को राजकीय अधिकारियों एवं सिपाहियों के हस्तक्षेप से मुक्त कर दिया गया। अंततः राजाओं और राजकुमारों ने इन अनुदान ग्रहीत ब्राह्मणों को यह अधिकार भी दिये कि वे उन सभी अपराधों के लिए दण्ड दे सकते थे जो परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति और व्यक्ति विशेष के विरुद्ध किए गए हों तथा यहां तक कि उनको आर्थिक दण्ड देने और इसको प्राप्त करने का भी विशेष अधिकार दिया गया।

राज्य के अधीनस्थ विभिन्न वर्गों के अधिकारियों को सेवा के लिए भूमि-अनुदान धार्मिक अनुदानों की अपेक्षा काफी कम दिया जाता था। समकालीन धर्मशास्त्रों के साहित्य में यह अनुमोदन किया गया है कि राज्य के अधिकारियों को वेतन के बदले भूमि-अनुदान या भू-राजस्व को एकत्रित करने का अधिकार दिया जा सकता था। गैर-धार्मिक अनुदानों की संख्या इस काल में कितनी थी इसके वास्तविक तथ्यों के बारे में विवरण देना इस इकाई का उद्देश्य नहीं है। आगामी समय अर्थात् 9-10वीं ई. सदी में इनकी संख्या में अवश्य वृद्धि हुई। इन अनुदानों में भी उसी प्रकार की छूटें एवं अधिकार दिए गए जो ब्राह्मणों, मंदिरों एवं मठों के लिए दिए गए थे।

अन्य बातों के साथ-साथ, भूमि-अनुदानों की यह प्रक्रिया भूमि पर अधिकारों के प्रश्न, किसान की आर्थिक-सामाजिक परिस्थितियों, नगरों में दस्तकारों तथा व्यापारियों के स्वतंत्र संगठन के अधिकार और बंद अर्थव्यवस्था के उदय का एक अभिप्राय थी। जिन ग्रामों एवं नगरों का अनुदान किया जाता उनके निवासियों को बहुत से कर अदा करने के साथ-साथ दान प्राप्तकर्ताओं की आज्ञा का अनुसरण करने के लिए भी कहा जाता। समुद्रगुप्त को आरोपित करते हुए, सातवीं सदी के दो राजाओं के द्वारा कर देने वाले किसानों एवं कारीगरों को अपना गांव छोड़ने और कर से मुक्त ग्राम में बसने से मना किया गया। भूमि-अनुदान के साथ-साथ अनुदान प्राप्तकर्ताओं के लाभ के लिए किसानों को भी देने की परम्परा का प्रारंभ छठी शताब्दी में मध्य भारत, उड़ीसा और गुजरात में हुआ तथा आठवीं सदी के आसपास यह परम्परा भारत के बहुत से भागों में काफी सामान्य हो गई। इससे भी अधिक, कारीगरों एवं सौदागरों को अपने स्थानीय ग्राहकों तथा स्वामियों की सेवा के लिए अपने निवास स्थलों तक ही सीमित कर दिया गया। दक्कन एवं दक्षिण भारत में कारीगरों को मंदिरों तथा मठों को दिया जाने लगा। ह्वेन-त्सांग ने भी इस प्रकार के दानों के प्रमाण दिए हैं। व्यापारियों की स्थिति भी कोई विशेष अच्छी नहीं थी। पश्चिम-दक्कन भारत से छठी-आठवीं सदी के प्राप्त हुए कुछ राजपत्रों में उन प्रतिबंधों का उल्लेख है जो व्यापारियों के कार्यों को सीमित करते हैं।

किसानों, कारीगरों और व्यापारियों को उनकी बस्तियों के साथ जोड़ देने तथा उनकी गतिविधियों पर विभिन्न प्रतिबंधों को लगा देने से एक ऐसा वातावरण बना जिसमें बंद अर्थव्यवस्था का उदय एक स्वाभाविक परिणाम था।

36.3 व्यापार का ह्रास

गुप्त और उत्तर-गुप्त काल में हुए आर्थिक परिवर्तनों का प्रत्यक्ष परिणाम भारत के आंतरिक एवं वाह्य व्यापार में ह्रास था। उत्तर-मौर्य काल में भारतीय विदेश व्यापार अपने चरमोत्कर्ष पर था क्योंकि तब भारत रोमन साम्राज्य, सेन्ट्रल एशिया और दक्षिण-पूर्वी एशिया के साथ व्यापार करता था। परन्तु व्यापारिक ह्रास का प्रारंभ गुप्त काल में हुआ और छठी सदी ई. के मध्य में अधिक गहरा हो गया। ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों के बाद रोमन सिक्कों का वहाव भारत के अंदर आना बंद हो गया। अन्य दूसरे स्रोतों से भी यह पता चलता है कि पश्चिम विश्व के साथ सम्पर्क का अभाव था। आगे की सदियों में रोमन साम्राज्य भी बिखर गया। व्यापार में, अरव एवं ईरानियों का प्रतियोगी के रूप में पैदा हो जाना, भारतीय सौदागरों के लिए अच्छा शकुनकारी सिद्ध नहीं हुआ। छठी शताब्दी ई. के आसपास के बिज़न्टाईन साम्राज्य के कुछ सिक्के आन्ध्र प्रदेश एवं कर्नाटक में प्राप्त हुए हैं। परन्तु संख्या की दृष्टि से इन सिक्कों की तुलना इससे परवर्ती काल के रोमन सिक्कों की भारी संख्या से नहीं की जा सकती। भारतीय बिज़न्टाईन व्यापार में मुख्य वस्तुएं रेशम एवं मसाले थे। छठी सदी ई. के मध्य बिज़न्टाईन लोगों ने कीड़ों से पैदा होने वाली रेशम की कला को सीख लिया। परिणामस्वरूप, रेशम का व्यापार भयंकर रूप से प्रभावित हुआ। रेशम का कपड़ा बनाने वाले जुलाहों का गुजरात से विस्थापित होना और दूसरे व्यवसायों को अंगीकार करना भी इसकी पुष्टि करता है। सेन्ट्रल एशिया के साथ गुप्त शासकों के संबंध कमज़ोर थे। इस समय में सेन्ट्रल एशिया और पश्चिम एशिया के साथ जो कुछ भी सम्बन्ध थे हूण आक्रमणों के वाद वे पूर्णतः समाप्त हो गए।

ऐसा कहा जाता है कि भारत के समुद्र तट के नगरों का कुछ व्यापार दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों एवं चीन के साथ चलता रहा। परन्तु इस आपसी व्यापार का कोई विशेष प्रभाव नज़र नहीं आता। इसका प्रमाण तो है कि भारत से दक्षिण-पूर्वी एशिया में सांस्कृतिक प्रभावों का प्रसार प्रारंभिक ऐतिहासिक तथा प्रारंभिक मध्यकालीन कालों में हुआ परन्तु इस काल के वर्तनों, सिक्कों या दूसरी वस्तुओं से संबंधित एक भी ऐसा कोई भी प्रमाण उपलब्ध नहीं है जिसके आधार पर यह कहा जाए कि इनके मध्य कोई विशेष वाणिज्य होता था। प्रारंभ में, भारत दक्षिण-पूर्वी एशिया के कुछ अन्य देशों के साथ मोतियों एवं अन्य वस्तुओं का व्यापार करता था, परन्तु चौथी शताब्दी ई. के वाद इस प्रकार के व्यापार का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। जो भारतीय प्रतिनिधि मण्डल चीन गए उनसे भी कुछ अधिक न हो सका। छठी सदी ई. से इस प्रकार के प्रतिनिधि मंडलों को विदेश भेजने की परम्परा में कमी आने लगी। तमिलनाडु से जो चीनी सिक्के एवं पीले-हरे रंग के मृद भांड पाए गए तथा जिनको नौवीं सदी ई. या इसके वाद के काल का बताया गया है, के अतिरिक्त ऐसा कोई अन्य प्रमाण नहीं मिलता है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि इस काल में भारत-चीन के मध्य व्यापार होता था।

व्यापार में ह्रास केवल विदेशी व्यापार तक ही सीमित न था। समुद्र तटीय नगरों तथा दूर-दराज के नगरों के बीच सम्पर्क कमज़ोर पड़ जाने के कारण आंतरिक व्यापार का भी पतन हुआ और इसका प्रभाव ग्रामों एवं नगरों के बीच होने वाले व्यापार पर भी पड़ा। शहरों का पतन, शहरी उपभोग उत्पादन में कमी आना तथा व्यापार का ह्रास, ये सब एक दूसरे से संबंधित समस्याएं थीं। इस काल के दौरान समाज में व्यापारियों एवं सौदागरों की स्थिति का पतन भी व्यापार एवं वाणिज्य के पतित होते भाग्य की ओर इशारा करता है। भूमि से लाभ प्राप्तकर्ताओं के अधीनस्थ आत्म-निर्भर असंख्य इकाइयों के उदय ने भी व्यापार पर नकारात्मक प्रभाव डाला। बाद के काल के एक ग्रंथ, **कथासरित्सागर** में उल्लेख हुआ है कि कई प्रकार के करों को अदा कर पाने में असमर्थ व्यापारी जंगलों की ओर चले गए। समुद्र-अभियानों और दूर-स्थलों की यात्राओं को धार्मिक रूप से प्रतिबंधित किया गया। इस प्रकार के दृष्टिकोणों के कारण निश्चित रूप से व्यापार को बढ़ावा नहीं मिला।

परन्तु इन सबका तात्पर्य यह नहीं है कि आवश्यक वस्तुओं जैसे कि नमक, लोहे और शिल्प वस्तुओं आदि का व्यापार नहीं होता था।

ये आवश्यक उपभोग की वस्तुएं भी प्रत्येक स्थान पर उपलब्ध नहीं थीं। इसके साथ-साथ लम्बी दूरी का व्यापार सम्मानीय, मंहगी विलासिता के सामानों जैसे कि बहुमूल्य पत्थरों, हाथीदांत की चीज़ों और घोड़ों के लिए लगातार चलता रहा। इस प्रकार की वस्तुओं के लिए कुलिनों, सरदारों और राजाओं के बीच मांग बनी रहती थी। इसलिये कुछ शताब्दियों के लिए विशाल तथा संगठित व्यापार का स्थान घुमक्कड़ छोटे सौदागरों, असंगठित और धीमी गति के व्यापार ने ले लिया।

36.4 सिक्कों की कमी

उत्तर-गुप्त काल में वाणिज्य के पतन की अभिव्यक्ति सिक्कों की कमी के रूप में भी होती है। कुषाण एवं गुप्त काल में सोने के सिक्कों की जो बहुतायत थी उनका छठी सदी ई. के बाद जारी होना बंद हो गया। चांदी और तांबे के सिक्कों की अनुपस्थिति भी हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित करती है। यह उल्लेखनीय है कि गुप्त काल के सोने के सिक्कों में सोने की मात्रा का अनुपात लगातार घट रहा था और बाद के गुप्त सोने के सिक्कों में सोने की मात्रा कुषाण सोने के सिक्कों की तुलना में आधी रह गई। गुप्त काल के सिक्कों की संख्या के रूप में तुलना भी ईसा की प्रारंभिक सदियों के साथ अच्छी प्रकार से नहीं होती है। इस काल के सिक्कों के विषय में शिलालेख संबंधी प्रमाण भी, सिक्कों की वास्तविक उपलब्धि की कमी के बारे में कोई विशेष प्रकाश नहीं डालते। हर्षवर्धन के द्वारा जारी किए गए सिक्के भी बहुत कम हैं तथा राष्ट्रकूट एवं पाल जो आठवीं सदी ई. में क्रमशः दक्कन एवं बंगाल में सत्ता में आए थे, ने अपने कोई सिक्के जारी नहीं किए। उत्तरी भारत के अधिकतर भागों, बंगाल, उड़ीसा, मध्य भारत तथा दक्कन में धातु वाली मुद्रा का पूर्ण अभाव था। जो इन क्षेत्रों के लिए सत्य था वह पूर्णतः दक्षिण भारत के लिए भी। बहुत से अध्ययनों से भी स्पष्ट है कि इस काल में ढले हुए सिक्कों तथा वाणिज्य मोहरों का पूर्ण अभाव था। परन्तु देश के अन्य भागों की तुलना में पंजाब तथा उत्तर-पश्चिमी भागों में 1000 ई. तक के प्रचुर मात्रा में सिक्के प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त, इस काल के कश्मीर से भी काफी मात्रा में सिक्के मिलते हैं।

इस संदर्भ में कुछ इतिहासकार यह तर्क देते हैं कि परवर्ती सदियों में जारी किए गए सिक्कों ने बाद के समय की मुद्रा आपूर्ति की मांग को पूरा किया, इसलिए नए सिक्कों को जारी करना अनावश्यक था। परन्तु यहां पर हम जिस काल का विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं उस समय में कृषि का व्यापक स्तर पर प्रसार हुआ और केवल इसकी पूर्ति के लिए काफी मात्रा में धातु मुद्रा धन की आवश्यकता होगी। दूसरे, सिक्के सार्वभौमिक सत्ता की भी अभिव्यक्ति थे। जब तक गंभीर मजबूरियां न हों तब तक कोई भी शासक सिक्कों को अपने नाम से जारी करने के विशेष अधिकार से स्वयं को वंचित नहीं करेगा। व्यापार के ह्रास तथा उच्च अधिकारियों को नकद धन का भुगतान करने के स्थान पर भूमि-अनुदान की परम्परा ने सिक्कों की आवश्यकता को खत्म कर दिया। इन सबके साथ-साथ इस बात के भी प्रमाण हैं कि नित्य-प्रतिदिन के लेन-देन के लिए अब मुद्रा का स्थान वस्तु विनिमय (**barter system**) एवं कौड़ियों ने ले लिया था।

36.5 नगरों का ह्रास

व्यापार का ह्रास, सिक्कों की कमी, सिक्के के सांचों तथा वाणिज्य मोहरों की अनुपस्थिति आर्थिक ह्रास एवं निर्मित उत्पादों की मांग में कमी की ओर इशारा करते हैं। जो नगर उत्तर-मौर्य काल में दस्तकारी उत्पादन के सक्रिय केन्द्र थे वे इस काल में निष्क्रिय एवं निर्जन्य हो गए। उत्तर भारत में जो नगर परवर्ती-कुषाण एवं कुषाण काल से तथा दक्कन में जो सातवाहन शासन काल से जुड़े हुए थे उनका ह्रास तीसरी सदी ई. के मध्य या चौथी सदी ई. से प्रारंभ हुआ। जो उत्तरी भारत, मालवा और दक्कन के लिए सत्य था वही दक्षिणी भारत के लिए भी समान सत्य था। वास्तव में नगरीय जीवन का ह्रास दो चरणों में हुआ। प्रथम का सम्बन्ध गुप्त शक्ति के उदय के दूसरे पहलू के साथ जुड़ा था। इस काल के नगरों जैसे कि संघोल, हस्तिनापुर, अंतरजिखेड़ा, मथुरा, सौंख, श्रावस्ती, कौशाम्बी, खैरादिह, चिरंद, तमलुक आदि के उत्खनन से स्पष्ट है कि गंगा के ऊपरी तथा मध्य मैदानों के नगरों का ह्रास होना प्रारंभ हो गया था। राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र के प्रारंभिक सम्पन्न केन्द्रों जैसे कि नॉह, उज्जैन, नागर, पौणी, तेर, भौकरदन, नालिक, पैंठन आदि नगरों में भी इसी प्रकार का झुकाव देखने को मिलता है। तमिलनाडु में अरिकामेदू, आन्ध्र प्रदेश तथा कर्नाटक के सातवाहन काल के नगरीय केन्द्र भी इस विशेषता के अपवाद नहीं थे। चौथी सदी से छठी सदी तक के इस प्रकार के प्राचीन केन्द्रों के निवास स्थलों की दीवारें प्रारंभिक शताब्दियों की तुलना में काफी पतली, खस्ता हालत एवं कम माल प्रयोग किए गए अवशेष हैं। बहुत से गुप्त कालीन प्राचीन स्थलों के निर्माण में प्रारंभिक दीवारों की ईटों, तथा कच्चे माल का पुनः प्रयोग किया गया है। नगरीय केन्द्रों के स्थलीय प्रसार तथा नागरिक सुविधाओं के दृष्टिकोण से ये नगर अपने परवर्ती कुषाण युग की तुलना में नगण्य हैं। अपने ह्रास के प्रथम चरण में संख्या के आधार पर कुछ ही नगर जैसे कि पाटलिपुत्र, वैशाली, वाराणसी तथा भीटा बच पाए। ये नगर गुप्त साम्राज्य के मुख्य क्षेत्रों में स्थित थे और इनके बच पाने का मुख्यतः यही कारण रहा होगा। नगरीय ह्रास का दूसरा चरण छठी सदी ई. के बाद शुरू हुआ और इसके पश्चात् ये केन्द्र नगर रह ही नहीं सके।

दस्तकारी तथा उपभोग निर्माण के सामान्य पतन की स्थिति में, पत्थर के मोतियों की मालाएं बनाने, खोल

वाली व हाथी दांत की वस्तुओं तथा शीशे के सामानों का निर्माण प्रायः समाप्त-सा हो गया। उत्तर-पांचवीं सदी ई. के निवासीय अवशेष स्थलों से ये वस्तुएं बहुत ही कम संख्या में प्राप्त हुई हैं। उत्तर-गुप्त काल के मृदभांडों से किसी भी प्रकार की कलात्मक बनावट प्रतीत नहीं होती और वे मुख्यतः साधारण प्रकार की हैं।

समकालीन साहित्य एवं अभिलेखों से भी भली-भांति नगरों एवं शहरों का पतन प्रकट होता है। छठी सदी ई. तक के अभिलेखों एवं मोहरों में नगरीय जीवन में कारीगरों, दस्तकारों तथा व्यापारियों के महत्व का उल्लेख किया गया है। बंगाल से प्राप्त अभिलेखों में कहा गया है कि उन्होंने नगरों के प्रशासन में विशेष योगदान किया। परन्तु छठी सदी के बाद इस प्रकार के स्रोतों से हमें ऐसी कोई सूचना प्राप्त नहीं होती। उत्तर-गुप्त काल में कुछ निश्चित शब्दों के भावार्थ में आए परिवर्तन उस समय की परिस्थितियों में हुए परिवर्तन की ओर स्पष्ट इशारा करते हैं। जैसे कि "श्रेणी" शब्द का कारीगरों तथा व्यापारियों के संगठन के लिए प्रयोग होता था परन्तु अब इसका उपयोग जाति के लिए होने लगा तथा निगम का अर्थ गांव से हो गया। छठी सदी ई. के पूर्वार्द्ध की वराहमिहिर की रचना **वृहत संहिता** में दस्तकारी, नगरों, एवं व्यापार के ह्रास का उल्लेख हुआ है। उत्तरी भारत में बौद्ध नगरों के पतन का उल्लेख चीनी यात्री ह्वेन-त्सांग ने अपने यात्रा विवरणों में किया है तथा वह हर्षवर्धन के शासनकाल में भारत आया था। वात्सायन के **कामसूत्र** में जिस नगरीय जीवन का सजीव एवं रोमांचक चित्रण हुआ है, उत्तर-गुप्त काल के साहित्य जैसे कि दामोदरगुप्त की रचना **कुत्तानिमतम** (सातवीं सदी ई.) में इतना सजीव वर्णन नहीं है तथा वह मुख्यतः ग्रामीण जीवन का ही उल्लेख करती है।

परन्तु सभी बस्तियां ग्रामीण नहीं थीं। उत्तर-गुप्त काल में गैर-कृषि बस्तियों की अभिव्यक्ति प्रशासनिक स्थलों, सैन्य दुर्गों तथा धार्मिक या तीर्थस्थल केन्द्रों के रूप में हुई। छठी सदी से आठवीं सदी ई. तक के अभिलेखों में सेना के कैम्पों का **स्कन्धवरा** के नाम से उल्लेख किया गया है। इसके प्रमाण उपलब्ध हैं कि कुछ नगर इसलिए बचे रह सके क्योंकि उनका परिवर्तन तीर्थस्थल केन्द्रों के रूप में हो गया। इन सभी गैर-कृषि बस्तियों को पुरा, पट्टन, नगर तथा राजधानी के नाम से जाना जाता था और ये उत्पादन के केन्द्र न होकर खपत के केन्द्र थे।

बोध प्रश्न 1

1) उन कारणों को दस पंक्तियों में लिखिए जो व्यापार के ह्रास के लिए उत्तरदायी थे।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित में कौन-सा कथन सही (√) और कौन-सा गलत (×) है:

i) उत्तर-गुप्त काल में सिक्कों की कमी वाणिज्य के ह्रास को अभिव्यक्त नहीं करती।

ii) उत्तर-गुप्त काल में शहरी बस्तियों का ह्रास हुआ।

iii) उत्तर-गुप्त काल में धार्मिक मठों को दिए जाने वाले भूमि-अनुदानों की संख्या में वृद्धि हुई।

iv) कुछ क्षेत्रों में भूमि को दान प्राप्तकर्ताओं को देते समय किसानों को भी दिए जाने की प्रथा का प्रारंभ हुआ।

v) भारत के समुद्र तटीय नगरों का दक्षिण-पूर्वी एशिया के साथ कोई व्यापारिक सम्पर्क नहीं था।

36.6 कृषि का प्रसार

गुप्त तथा उत्तर-गुप्त काल के शिलालेखीय प्रमाणों से स्पष्ट है कि इस समय में कृषि विकास एवं ग्रामीण प्रसार व्यापक स्तर पर हुआ। राजाओं, राजकुमारों तथा सरकारों के द्वारा कृषि को प्रदान किए गए संरक्षण, सिंचाई सुविधाओं में सुधार, कृषि विज्ञान के बढ़ते ज्ञान आदि ऐसे कुछ कारक तत्व थे जिनके कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था और सुदृढ़ हुई।

यह संभव है कि शहरों के पतन के फलस्वरूप बहुत से निपुण कारीगर ग्रामीण क्षेत्रों की ओर पलायन कर गए हों। उनमें से कुछ ने अपने पेशों को ही बदल लिया। दस्तकारों तथा कारीगरों के साथ-साथ तकनीकी कौशल के ग्रामीण अंचलों में बिखराव के कारण कृषि का विकास और तीव्र गति के साथ हुआ। कबिलाई सीमांत क्षेत्रों में भूमि-अनुदानों के कारण नवीन भूमि कृषि कार्यों के लिए उपलब्ध हो गई।

दक्कन तथा मध्य भारत में, पांचवीं सदी से सातवीं सदी तक लगभग पचास शासक शक्तियां अस्तित्व में रहीं। वे महाराष्ट्र, पूर्वी मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा तथा बंगाल में फैली हुई थी। इस क्षेत्र के बहुत से नए-नए शासक वंशों ने अपने स्वयं के भूमि-अनुदानों को जारी किया जिससे स्पष्ट है कि उनके अपने राज्यों में अधिकारीगण, सैनिक आदि का अस्तित्व था। इन राज्यों में से प्रत्येक भूमि और कृषि से प्राप्त होने वाले राजस्व पर निर्भर करता था। वास्तव में, उत्तर-गुप्त काल में कृषि ने राज्य के आधार को निर्मित किया। इस प्रकार प्रारम्भ में जिन क्षेत्रों में राज्य की स्थापना नहीं हुई थी उन क्षेत्रों में राज्य की स्थापना वहाँ की ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं कृषि प्रसार के लिये अग्रदूत साबित हुई।

इस समय में संस्कृत और गैर-संस्कृत नामों से प्रचलित बहुत से गांवों का उदय हुआ। समकालीन साहित्य में ग्रामीण जीवन का सजीव विवरण किया गया और जिनमें ग्रामीण बस्तियों की सम्पन्नता झलकती है। स्कन्द पुराण में विभिन्न क्षेत्रों के बहुत से ग्रामों का उल्लेख है। इसी भांति, बाद के युग से संबंधित ग्रंथों में पश्चिम तथा दक्षिण भारत की ग्रामीण बस्तियों की स्थापना एवं प्रसार के विषय में विवरण दिया गया है। उत्तर-गुप्त काल की अनेक भूमि-अनुदान आज्ञाओं में बहुत से ग्रामों के नामों को उद्धत किया गया। इनमें पुरानी बस्तियों के नाम भी सम्मिलित हैं। परन्तु नए गांवों का उद्‌भव व्यापक स्तर पर हुआ। हम गांवों का नाम केवल तभी नहीं जान पाते हैं जबकि अमुक गांवों का अनुदान किया गया बल्कि अनुदानित किए गए गांवों की सीमाओं पर बसे अनेक गांवों के नामों का भी ज्ञान हमें होता है।

36.6.1 कृषि ज्ञान एवं तकनीकी में प्रगति

कृषि के बारे में वृहत् संहित, अग्नि पुराण, विष्णुधर्मोत्तरा पुराण तथा कृषि पारासर में जो दिशा-निर्देश दिए गए हैं उनके आधार पर कृषि के बढ़ते हुए महत्व को समझा जा सकता है। हर्षचरित में फसलों को खाद देकर अधिक उपजाऊ बनाने के महत्व को स्पष्ट रूप से समझाया गया है। इसमें लिखा है कि खेतों में खाद देने के लिए गाय के गोबर व कूड़ा-करकट का उपयोग किया जाए। हर्षचरित में कई प्रकार से खेतों की जुताई का उल्लेख है, जैसे कि हल से जुताई करना, कुदाल से खुदाई करना तथा जंगलों को तेज हथियार से एवं जलाकर साफकर जुताई करने योग्य बनाना। शासकों और भूमि से अन्य लाभ प्राप्तकर्ताओं ने खेती की ओर जो विशेष ध्यान दिया उसको हल के विस्तृत वृतांतों तथा सिंचाई तकनीकों में सुधार के रूप में भी देखा जा सकता है। जमीन की पैमाइश करने के लिए इस समय लोकप्रिय तथा व्यापक रूप से प्रचलित इकाई को हल कहा गया जो इस समय में हल के महत्व को दर्शाता है। **कष्यापियाकृषिसुक्ति** नाम के ग्रंथ में कृषि से संबंधित सभी पक्षों का विस्तृत रूप से विवेचन किया गया तथा इसकी रचना आठवीं-नौवीं सदियों में की गई थी। प्रथम सहस्राब्दि ई. से पहले की अंतिम सदियों के कुछ इस प्रकार के ग्रंथ मिलते हैं जिनमें पौधों तथा पशुओं की बीमारियों की रोकथाम के विभिन्न तरीके सुझाए गए हैं।

हर्षचरित में पश्चिमी उत्तर प्रदेश के आसपास के क्षेत्र में कुछ सिंचाई सुविधाओं का उल्लेख है। इन सिंचाई के तरीकों का **उद्‌घटघटि** और **घटीयन्त्र** (रहंट) के नाम से उल्लेख किया गया है। बंगाल से प्राप्त अभिलेखों में ग्रामीण बस्तियों तथा उनकी सीमाओं के संदर्भ में नदियों, नालों तथा स्रोतों का उल्लेख हुआ है और इसी के साथ-साथ हमें **देवायात्रिका** (वर्षा द्वारा सिंचाई) का भी नाम मिलता है जो कृषि की निर्भरता को वर्षा और नदियों पर व्यक्त करता है। दक्षिण भारत में खेतों की सिंचाई के लिए तालाबों तथा बांधों का निर्माण किया जाता था। कुछ मामलों में तो वे ग्रामीण अंचलों में विशेष महत्व रखते थे जिससे उनका महत्व और भी बढ़ जाता है। दक्षिण भारत में पल्लव शासकों के शासनकाल में इन तालाबों तथा बांधों के निर्माण एवं रख-रखाव के लिए ग्रामों में निर्वाचित समितियां (**एरि-वरियामें**) थीं। बहुत से पल्लव शासकों को इस प्रकार की सिंचाई सुविधाओं का निर्माण करने के लिए कीर्ति प्रदान की गई। दसवीं सदी ई. के आसपास राजस्थान के

पूर्वी मेवाड़ के ग्रामीण क्षेत्रों में **अराघाटो** या कुओं से सिंचाई करने की प्रथा का प्रचलन था। यह भी संभव है कि इनका उपयोग इस तिथि से पूर्व ही होने लगा हो।

36.6.2 फसलें एवं पौधे

अमरकोष में, जिसकी रचना की तिथि गुप्त काल मानी गई है, अन्न से संबंधित बहुत सी किस्मों जैसे कि चावल, गेहूं तथा मसूर, फलियों वाले अनाज, सब्जियों और फलों के नामों का उल्लेख है। **बृहत् संहिता** से स्पष्ट है कि लोगों को फलों के पौधों की कलम बांधने के कार्य का ज्ञान था। ह्वेन-त्सांग ने चावल की किस्मों, सरसों, अदरक, बहुत से फलों तथा सब्जियों को उद्धत किया है। **हर्षचरित** में भी फसलों तथा पौधों के विषय में अच्छा-खासा विवरण है। विभिन्न प्रकार के चावल, गन्ना, सरसों, तिल, कपास, गेहूं, जौ एवं दालों का विवरण भी हमें **हर्षचरित** में मिलता है। विभिन्न प्रकार के मसालों जैसे कि हल्दी, लौंग, काली मिर्च और अदरख का भी उत्पादन होता था। सब्जियों में लौकी, खीरा, सेम, लहसुन, कद्दू आदि का उत्पादन होता था। फलों में नारियल, सुपारी, कटहल, सन्तरा, महुआ और आम को उद्धत किया जा सकता है। पान की पत्तियों का भी उत्पादन होता था। इनमें से कुछ पौधों तथा फलों को कुछ इस काल के अभिलेखों में उद्धत किया गया है। वाण की रचना **हर्षचरित** में व्यापक भौगोलिक क्षेत्र का विवरण है जिसके अंतर्गत गंगा के ऊपरी तथा मध्य मैदानों सहित असम, बंगाल एवं मध्य भारत को भी सम्मिलित किया गया है। इसलिए मध्य भारत के संदर्भ में बांसों, कपास के पौधों, सन व पटसन के गट्ठरों का उल्लेख किया गया है और वेंत, बांस तथा रेशम का पूर्वी भारत के विषय में। पल्लवों तथा चालुक्यों के क्षेत्रों में, जो सामान्यतः तमिलनाडु, पश्चिमी दक्कन तथा कर्नाटक के हिस्सों में फैला हुआ था, चावल, ज्वार-बाज़रा, अदरक तथा गन्ने आदि की खेती होती थी। फलों में केले सहित कटहल, आम तथा नारियल का उत्पादन होता था। यह बिना किसी संकोच के कहा जा सकता है कि अनाजों, फलों तथा सब्जियों की किस्में एवं संख्या बहुत ही प्रभावित करने वाली हैं। ग्रामीण बस्तियों में ब्राह्मणों तथा कारीगरों की उपस्थिति, भूमि की पुनः प्राप्ति, तकनीकी में कुछ निश्चित परिवर्तनों और सिंचाई सुविधाओं के प्रसार ने अनाजों तथा पौधों के उत्पादन में वृद्धि की। इन सब विकास कार्यों का परिणाम यह हुआ कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई।

36.7 ग्रामीण बस्तियां

उपरोक्त वर्णित विकासों ने प्रारंभिक मध्यकालीन भारत की ग्रामीण बस्तियों में स्थान ग्रहण किया। गांवों के लिए सामान्यतः ग्राम शब्द का प्रयोग किया गया। परन्तु सभी ग्रामीण बस्तियां एक समान नहीं थीं। हमें ऐसे दूसरे शब्दों के विषय में भी जानकारी है जो भिन्न प्रकार की ग्रामीण बस्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। **पालि** को सामान्यतः आदिवासी गांव के लिए प्रयोग किया जाता था। **पटका** से गांव के एक भाग का बोध होता है। यह एक छोटे गांव या पुरवा को इंगित करता है परन्तु वास्तव में यह एक बड़े गांव का ही एक भाग था। एक ही गांव की सीमाओं के अंतर्गत कई पटकों या पुरवों के पैदा हो जाने से स्पष्ट है कि कृषि का प्रसार हुआ। चरवाहों की बस्तियों को **घोष** कहा जाता था। परन्तु यह याद रखा जाना चाहिए कि ये शब्द जो विभिन्न प्रकार की बस्तियों का प्रतिनिधित्व करते थे सदैव परिवर्तित होते रहते थे। कृषि एवं ब्राह्मणिक संस्कृति के प्रसार के कारण आदिवासियों की बस्तियों के चरित्र में भी परिवर्तन हो गया था।

बहुत से कारणों के एक साथ मिश्रित हो जाने के कारण कुछ गांव ऐसी जगहों पर बस गए जहां एक बिन्दु पर ग्रामीण बस्तियों का एक समूह मिलता था और वे बड़ी बस्तियों में तबदील हो गए। वास्तव में, 9वीं सदी ई. से कुछ इस प्रकार की बड़ी बस्तियां नगरीय केन्द्रों में परिवर्तित होनी प्रारंभ हो गईं। यहां पर यह याद रखना होगा कि बस्तियों के नामों से इस प्रकार के परिवर्तन सदैव प्रकट नहीं होते थे। यहां तक कि अगर कोई ग्रामीण बस्ती अपने आकार तथा चरित्र में बदल जाती थी परन्तु उसके प्रारंभिक ग्रामीण नामों का प्रयोग जारी रहता था। गांवों के अपने संस्कृत तथा गैर-संस्कृत नामों से ऐसा प्रतीत होता है कि ये आदिवासी छोटे गांव थे जिनका क्रमिक रूप से संक्रमण कृषि ग्रामों में तथा संस्कृत नाम वाले गांवों में ब्राह्मणिक संस्कृति एवं विचारधारा का प्रसार हुआ। गांव का निर्माण कैसे होता था? ''सामान्यतः'' एक गांव के अंतर्गत निवास स्थल (वस्तु), खेती-बाड़ी वाली भूमि (क्षेत्र) और बिना जुताई वाली भूमि आती थी। भूमि की इस अंतिम श्रेणी के अंतर्गत चरागाह मैदान (गौचर) और जंगल सम्मिलित थे। गांवों की सीमाओं का निर्धारण करना एक समस्या थी क्योंकि इनको कभी भी स्पष्ट रूप से पारिभाषित नहीं किया जाता था। जैसा कि अब हम जानते हैं कि बस्तियां सदैव बढ़ती तथा फैलती रहती थीं। उस समय में प्राकृतिक सीमाओं जैसे कि पर्वतों या नदियों को ही गांवों की सीमाएं मान लिया जाता। परन्तु जहां बस्तियां एक गांव की स्थलीय सीमाओं से जुड़ती थीं वहां पर सीमाओं को पड़ोसी गांवों का उल्लेख करके निश्चित किया जाता था। उत्तर-गुप्त काल की बहुत सी तांबे की प्रज्ञाओं में, जिनको भूमि-अनुदान करते हुए जारी किया गया, भूमि की

विभिन्न किस्मों का उल्लेख किया गया है जिनके अंतर्गत खेती योग्य, बिना जुताई वाली, ऊंची, नीची, पानी ग्रहण करने वाली, दलदली, हरि और जंगल वाली भूमि शामिल थी। ज़मीन की उत्पादकता तथा भूमि के गुण को संभवतः इस प्रकार की उल्लिखित किस्मों के आधार पर ही निश्चित किया गया। भूमि की किस्मों के इस भांति के विस्तारपूर्वक विवरणों से स्पष्ट है कि कृषि एवं पशुपालन का महत्व बढ़ने लगा था।

जिन ग्रामों को ब्राह्मणों को अनुदान में दिया गया उनको "ब्रह्मदेय" और "अग्रहर" के नाम से जाना जाता था। जिन गांवों को ब्राह्मणों ने दान स्वरूप प्राप्त किया था उन गांवों में ब्राह्मणों के साथ-साथ गैर-ब्राह्मण लोग भी रहते थे। परन्तु इस प्रकार के गांवों में सम्पत्ति के अधिकार केवल ब्राह्मणों को प्राप्त थे। दक्षिण भारत में भी इस प्रकार के गांवों को **मंगल** के नाम से जाना जाता था। दक्षिण भारत में दोनों प्रकार की ब्राह्मणिक बस्तियां प्रशासनिक तथा सामाजिक संगठन के स्तर पर गैर-ब्राह्मणिक साधारण ग्रामों से भिन्न थीं। **सभाएं** ब्राह्मणों की बस्तियों का प्रतिनिधित्व करती थीं। जबकि डर साधारण ग्रामीण बस्तियों का प्रतिनिधित्व करती। देश के किसी भी भाग की इन दोनों प्रकार की बस्तियों के बीच अनुपातिक विभाजन करना एक कठिन कार्य है। जैसा कि अब हम जानते हैं कि साधारण ग्रामों का खूब अनुदान ब्राह्मणों को दिया जाता था। इन सबके बावजूद भी यह कहा जा सकता है कि दान किए गए गांव ग्रामीण बस्तियों का केवल एक भाग ही बनाते थे।

36.8 कृषि संबंधों की नवीन विशेषताएं

अब हम कृषि संबंधों की उन मुख्य-मुख्य विशेषताओं का विश्लेषण करेंगे, जिनका विकास प्रारंभिक मध्य काल में हुआ।

36.8.1 किसानों पर आर्थिक बोझ

भूमि-अनुदान प्रज्ञाओं के द्वारा अनुदान प्राप्तकर्ताओं को दान किए गए ग्राम या ग्रामों के निवासियों के ऊपर उच्चतर अधिकार प्रदान कर दिए गए। दान प्राप्तकर्ता सभी प्रकार के करों को एकत्रित करने के हकदार थे। वे स्थायी तथा अस्थायी करों को एकत्रित कर सकते थे और उनकी अदायगियों को भी निश्चित एवं अनिश्चित कर सकते थे। अभिलेखों में करों की जो सूची दी गई है उनमें **आदि** शब्द का उल्लेख हुआ है और जिसका उपयोग जब भी आवश्यक होता तो ज़मींदार अपने लाभ के लिए करता था। इन अतिरिक्ति अपवादीय लाभों के साथ-साथ दान प्राप्तकर्ता अन्य स्थायी करों जैसे कि **भाग, भोग, कर, उपारिकर, हिरण्य, उदरंग, हलिकाकर** इत्यादि को वसूल करते थे। यह वास्तविकता है कि प्रारंभिक मध्य काल में किसानों पर लगातार करों का बोझा बढ़ रहा था। वाकाटक अनुदान प्रज्ञाओं में चौदह प्रकार के करों का उल्लेख किया गया है। पल्लव शासकों के साक्ष्यों में इनकी संख्या अठारह से बीस बताई गई है। दसवीं सदी ई. के अंत तक विभिन्न प्रकार के करों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई।

गुप्त और उत्तर-गुप्त काल में उत्तरी महाराष्ट्र, कोंकण, मध्य प्रदेश तथा गुजरात से संबंधित भूमि-अनुदान प्रज्ञाओं में भूमि पर दान प्राप्तकर्ताओं के उच्च अधिकार स्पष्ट हैं। दान प्राप्तकर्ताओं को यह अधिकार था कि वे किसानों को अपनी इच्छानुसार बेदखल कर सकते और उनके स्थान पर नए किसानों को रख सकते थे। सातवीं सदी से अनुदानों के कारण जल साधनों, वृक्षों, झाड़ियों और चरागाहों पर भी दान प्राप्तकर्ताओं का अधिकार होना शुरू हो गया था। दसवीं सदी के बाद से इस परम्परा की गति और तेज हो गई। इन साधनों के दान प्राप्तकर्ताओं के हाथ में चले जाने से न केवल अनुदानित ग्रामों के किसानों पर विपरीत प्रभाव पड़ा बल्कि इससे दान प्राप्तकर्ताओं की स्थिति और मज़बूत हो गई। बंधुआ मज़दूरी का उल्लेख **स्कन्द पुराण** में आया है। अभिलेखों में भी यह उल्लेख आया है कि पांचवीं-छठी सदियों से पश्चिमी मध्य और दक्षिणी भारत में **विष्टि** का भली भांति प्रकार से प्रयोग होने लगा था। इसी के साथ-साथ भूमि-अनुदान प्रज्ञाओं में यह धारा भी दी गई कि किसानों को दान प्राप्तकर्ताओं (ग्रहीतों) के आदेशों का पालन करना चाहिए। चम्बा, राजस्थान, मध्य प्रदेश और पूर्वी भारत जैसे क्षेत्रों में निश्चित रूप से किसानों की स्थिति में गिरावट आई।

36.8.2 सामंतीय भू-व्यवस्था

स्मृति ग्रंथों के लेखकों याज्ञवलक्य और बृहस्पति ने भूमि के एक ही टुकड़े पर चार क्रम में भूमि अधिकारों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार अधिकारों का उपभोग करने वालों के विभिन्न क्रम इस प्रकार थेः महापति (राजा), क्षेत्रस्वामी (खेत का मालिक), कृषक (खेती करने वाला) और अर्ध-कृषक। भूमि-अनुदानों ने भूमि पर वर्गीय अधिकारों तथा अर्ध-काश्तकारी का मार्ग प्रशस्त किया और इस परम्परा के कारण

ज़मींदारों की उत्पत्ति हुई जो किसानों के द्वारा पैदा किए गए अतिरिक्त उत्पादन के आधार पर अपना जीवन व्यतीत करते थे। पूर्वी तथा दक्षिण भारत में धार्मिक संगठनों का व्यापक भूमि-अनुदानों, धन व काफी बड़ी संख्या में पशुओं आदि के साथ उड़ीसा के रत्नगिरि और बिहार में नालन्दा पर विशाल भू-मठाधीशों के रूप में उदय हुआ क्योंकि इन्होंने अनुदानों के फलस्वरूप विशाल भूमि को प्राप्त किया था। नालन्दा बौद्ध 200 गांवों का उपयोग करता था। दक्षिण भारत में पल्लव शासकों के शासन काल के दौरान मंदिरों को भूमि तथा गांवों का अनुदान किया गया। आगामी चोल शासकों के प्रमाणों में इस प्रकार के भूमि-अनुदानों के लिए देवदान (साहित्यिक रूप में देवताओं को दिया जाने वाला दान) शब्द का उल्लेख हुआ। पल्लवों के समय से ही मंदिर के सेवकों को वेतन के लिए भूमि को दिया जाने लगा। इसके परिणाम स्पष्ट हैं। अब धार्मिक मठों की भूमि से लाभ प्राप्त करने वाले हो गए और वे अपने आश्रितों जैसे कि छोटे अधिकारी, कारीगरों, संगीतज्ञों, सेवकों आदि को ज़मीन के खंडों को देते। इस प्रकार की ज़मीनों को लगान पर दे देते थे। इसी प्रकार से, मंदिरों की भूमि को खेती करने के लिए किसान को किराये या लगान पर दे दिया जाता। पल्लव शासकों के शासन काल से मंदिरों को जो भूमि अनुदान में दी जाने लगी उससे पेचीदा भू-व्यवस्था का विकास हुआ। इस प्रक्रिया की गति विशेषकर आठवीं सदी से और तीव्र हो गई तथा इसने किसानों के एक ऐसे वर्ग को जन्म दिया जो करों के अत्यधिक बोझ से दब गया एवं जो भूमि में उच्चतर अधिकारों से लैस ज़मींदार वर्ग के लिए जीविकोपार्जन करने वाले बन गए।

36.8.3 बंद अर्थव्यवस्था का विकास

प्रारंभिक मध्यकालीन भारतीय अर्थव्यवस्था ने बहुत-सी ऐसी ग्रामीण बस्तियों के उदय तथा विकास का अनुभव किया जिनका विनिमय कार्य प्रणाली और दूर-दराज के व्यापार से संपर्क नहीं था।

यद्यपि विनिमय व्यवस्था पूर्णतः नष्ट नहीं हुई, परन्तु विभिन्न प्रकार के दान प्राप्तकर्ताओं की बस्तियों को परिवर्तित कर देने के कारण मूलतः ऐसा वातावरण बन गया जिसके क़ारण आत्म-निर्भर, उत्पादन और उपभोग की बंद इकाइयों का जन्म हुआ। स्थानीय जरूरतों को स्थानीय स्तर पर ही पूरा किया जाने लगा। युद्धों के लिए सेनाओं और धार्मिक केन्द्रों के लिए तीर्थयात्रियों का आवागमन तथा ब्राह्मणों के द्वारा भूमि-अनुदानों को पाना एवं उल्लास मनाना ही संभवतः स्थलीय गतिशीलता के तरीके थे। धर्मशास्त्रों में ब्राह्मणों के द्वारा यात्रा करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। अपने वैदिक एवं घरेलू कार्यों के लिए, अग्नि सदैव प्रज्जवलित रखने के कारण वे दूर-दराज के स्थानों की यात्रा नहीं कर सकते थे। समुद्र यात्राओं को भी प्रतिबन्धित कर दिया गया। आस-पड़ोस में विवाह करने को प्राथमिकता दी जाने लगी। इन सबके कारण स्थानीय पहचान बनाए रखने की भावना को और बल मिला। ग्रामों की स्थानीयता और आत्म-निर्भरता की बढ़ती भावना को ग्राम धर्म, ग्रामकर और स्थानकर जैसे शब्दों में व्यक्त किया गया और इन सभी शब्दों का प्रयोग समकालीन पौराणिक साहित्य में गांव या स्थानीयता का उल्लेख करने के लिए हुआ।

बोध प्रश्न 2

1) कृषि तकनीकी क्षेत्र में हुई मुख्य प्रगति को पांच पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

2) प्रारंभिक मध्य काल के दौरान कृषि-संबंधों की मुख्य विशेषताओं का दस पंक्तियों में विवरण दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) निम्नलिखित कथनों में से कौन-सा कथन सही (√) है और कौन सा गलत (×):

   i) नगरों के ह्रास के कारण कारीगरों का विस्थापन गांवों की ओर नहीं हुआ।

   ii) हर्षचरित में सिंचाई सुविधाओं का कोई उल्लेख नहीं है।

   iii) सभी ग्रामीण बस्तियां एक समान नहीं थीं।

   iv) जिन ग्रामों का ब्राह्मणों को अनुदान किया गया तथा जिनमें ब्राह्मण निवास करते थे ब्रह्मदेव कहा जाता था।

   v) धर्मशास्त्रों ने ब्राह्मणों के आवागमन को नियंत्रित किया।

36.9 सारांश

दसवीं सदी ई. के मध्य से अर्थव्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों के विभिन्न प्रतिमानों का उल्लेख किया गया है। ये परिवर्तन इसलिये और अति महत्वपूर्ण हो जाते हैं क्योंकि इन्हीं के द्वारा भारत के इतिहास में प्राचीन काल का अन्त तथा नए युग का प्रादुर्भाव हुआ। जिस ढंग से पुराने युग ने नए युग में प्रवेश किया उसको महत्वपूर्ण परिवर्तनों ने स्वयं स्पष्ट किया। गुप्त और उत्तर-गुप्त काल के इतिहास को निम्नलिखित विशेषताओं के आधार पर रेखांकित किया जा सकता है:

- कृषि अर्थव्यवस्था में एक ज़मींदार वर्ग तथा दूसरे परतंत्र किसान वर्ग का उद्भव और जिसमें देहातीपन तथा कृषि की प्रमुखता थी;
- प्रत्यक्ष रूप से व्यापार का ह्रास;
- नगरों का ह्रास; और
- धातु धन की कमी।

फिर भी यह व्यापक गतिशीलता की विशेषता का युग था। इस पृष्ठभूमि में जो परिवर्तन हुए, उनको इस प्रकार से जाना जा सकता है: नवीन फसलों का विकास, सिंचाई सुविधाओं का निर्माण, पौधों तथा पशुओं की बीमारियों के प्रति सचेतना का बढ़ना, कृषि से संबंधित दूसरे अन्य पक्षों में सुधार, कुछ ऐसी बस्तियों के आकार में वृद्धि जो ग्रामीण समुदायों के मिलन बिन्दुओं के मध्य पैदा हुई और विनिमय व्यवस्था, मेलों तथा व्यापारिक केन्द्रों की पुनः उत्पत्ति।

36.10 शब्दावली

नवीन संस्कृति का ग्रहण : नई संस्कृति को अपनाना।

माल की अदल-बदल करना (वस्तु विनिमय) : एक सामान से दूसरे सामान के द्वारा विनिमय करना।

पुजारी की वृत्ति : उपहार में की गई भू-सम्पत्ति जो ब्राह्मणों आदि के अधीन हो।

ग्रहीत : लाभ प्राप्तकर्ता।

प्रज्ञा (राजपत्र) : जिसके द्वारा अनुदान के अधिकारों की व्याख्या होती थी।

विदेशी वस्तु : विदेश से आई वस्तु से परिचित होना।

घुमक्कड़ यात्री : एक जगह से दूसरी जगह की यात्रा करने वाला।

सौदागर : यात्रा पर जाकर सामान बेचने वाला।

बन्द अर्थव्यवस्था : ऐसी अर्थव्यवस्था जिसके अन्तर्गत विनिमय प्रणाली का कम से कम उपयोग होता हो और जिसका नगरीय केन्द्रों के साथ बहुत ही कम या नहीं के बराबर सम्पर्क हो।

36.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अपने उत्तर की तुलना भाग 36.3 के सार तत्व के साथ कीजिए।
2) i) × ii) √ iii) √ iv) √ v) ×

बोध प्रश्न 2

1) उपभाग 36.6.1 को देखिए।
2) भाग 36.8 को देखिए।
3) i) × ii) × iii) √ iv) × v) √

इकाई 37 समाज में परिवर्तन

इकाई की रूपरेखा

37.0 उद्देश्य
37.1 प्रस्तावना
37.2 राजनीतिक और सामाजिक पदानुक्रम तथा वर्ण व्यवस्था
37.3 कायस्थों का विकास
37.4 अछूत
37.5 दस्तकारी और जातियां
37.6 वैश्यों का ह्रास और शूद्रों के सामाजिक स्तर में बढ़ोत्तरी
37.7 वर्ण पदानुक्रम के विचार का प्रसार एवं रूपांतरण
37.8 महिलाओं की स्थिति
37.9 ज़मींदार और किसान
37.10 जातियों की संवृद्धि
37.10.1 ब्राह्मण
37.10.2 क्षत्रिय
37.10.3 शूद्र
37.11 सारांश
37.12 शब्दावली
37.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

37.0 उद्देश्य

इससे पूर्व की इकाई में हमने गुप्त और विशेषकर उत्तर-गुप्त काल में अर्थव्यवस्था में हुए महत्वपूर्ण परिवर्तनों का विवेचन किया था। इस इकाई में हम आपको समाज में हुए परिवर्तनों के विभिन्न आयामों की जानकारी से अवगत कराएंगे। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान पाएंगे:

- उन शक्तियों के विषय में जिनके कारण वर्ण पदानुक्रम की संरचना एवं अवधारणा में मामूली बदलाव आए,
- उन प्रक्रियाओं के विषय में जो बहुत-सी नई जातियों के उदय के लिए उत्तरदायी थीं,
- उन परिस्थितियों के विषय में जिनसे अछूतों की समाज में स्थिति दयनीय हो गई, और
- ऐसी जातीय व्यवस्था के विषय में जिसने प्राचीन काल से स्पष्ट अंतर किया।

37.1 प्रस्तावना

गुप्त तथा उत्तर-गुप्त काल में हुए सामाजिक परिवर्तनों को आर्थिक परिवर्तनों के साथ संबंधित किया जा सकता है और उनका हम इकाई 36 में विवेचन कर चुके हैं। इस काल की मुख्य-मुख्य आर्थिक शक्तियां व्यापक स्तर पर भूमि-अनुदान, व्यापार का ह्रास, वाणिज्य और नगरीय जीवन, धन की कमी, कृषि का प्रसार और समाज का बढ़ता कृषि चरित्र, उत्पादन और उपभोग की अपेक्षाकृत बंद स्थानीय इकाइयों का उद्भव थीं। इस आधार पर एक ऐसे समाज का ढांचा विकसित हुआ जिसके अंतर्गत मुख्य रूप से काफी बड़ी संख्या में शासक कुलीन ज़मींदार, बिचौलिए और बहु-संख्यक किसान थे। भूमि सम्पत्ति और सत्ता के असमान वितरण के कारण ऐसे नए सामाजिक गुटों तथा वर्गों का उदय हुआ जो वर्ण विभाजन जैसे कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र की सीमाओं को पार कर गया। सामाजिक संरचना में हुए दूसरे महत्वपूर्ण परिवर्तन थे नई जातियों की उत्पत्ति एवं संवृद्धि, जाति सम्बन्धों का कठोर होना और कबीलों के द्वारा ब्राह्मणिक संस्कृति को अपनाना। कबिलाई लोगों के द्वारा ब्राह्मणिक संस्कृति को अपनाना, भूमि-अनुदान के फलस्वरूप कबिलाई क्षेत्रों में ब्राह्मणों की गतिविधियों का साधारण परिणाम न था। इसी कारणवश दूर-दराज के इलाकों में स्थानीय शाही परिवारों का उद्भव हुआ और इन स्थानीय शासक परिवारों के द्वारा भूमि-

अनुदानों, शाही दरबारों तथा अन्य कार्यालयों में कार्य प्रदान करके ब्राह्मणों को संरक्षण प्रदान किया गया। इसका तात्पर्य यह हुआ कि इन क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासियों का उद्भव एक ओर अधिक जटिल समाज के रूप में हुआ जिसके अंतर्गत सामाजिक विभेद का प्रतिनिधित्व किसानों, ब्राह्मणों, दस्तकारों, व्यापारियों, शासकों आदि जैसे विभिन्न समूहों द्वारा किया जाता था।

37.2 राजनीतिक और सामाजिक पदानुक्रम तथा वर्ण व्यवस्था

भूमि-अनुदानों, उदित हुए बिचौलिए ज़मींदारों और राजनीतिक शक्ति तथा आर्थिक ताकत के गठजोड़ ने वर्ण के आधार पर विभाजित समाज को भी संशोधित किया। नए सामाजिक गुट चार वर्णों वाली व्यवस्था में समा न सके। असमान भूमि के बंटवारे ने ऐसे वर्गों को पैदा किया कि वे वर्ण पर आधारित सामाजिक स्तरों को लांघ गए। अपनी विभिन्न सामाजिक उत्पत्तियों (वर्णों अथवा अनुष्ठानिक वर्गों) के बावजूद सामन्तों और शासक भू-कुलीनों का उदय एक विशेष चरित्र के साथ हुआ। ब्राह्मण ज़मींदार इस वर्ग का एक भाग थे। उन्होंने अपने ब्राह्मणिक कार्य का परित्याग कर दिया और भूमि तथा जनता के प्रबंधन पर अपना ध्यान केन्द्रित करने लगे। ब्राह्मणों के इस प्रकार के गुट ब्राह्मणिक कार्यों को करने वालों की तुलना में शासक वर्ग के लोगों के साथ अधिक समानता रखते थे। बाद के समय में इन लोगों ने भी ठाकुर, रौत जैसी आदि उपाधियों को धारण किया। विदेशी जातीय गुटों तथा भारतीय कबिलाई सरदारों के शासक कुलीन वर्ग के क्षत्रिय वर्ण में और ब्राह्मण संस्कृति को ग्रहण करने वाले कबिलाई लोगों के शूद्र वर्ण में शामिल हो जाने से न केवल उनके सामाजिक स्तरों में वृद्धि हुई बल्कि वर्ण पर आधारित विभाजित समाज भी रूपांतरित हुआ। इससे भी अधिक, इस काल में द्विज (दो बार जन्मा) और शूद्रों के बीच का प्रारंभिक अंतर भी संशोधित होने लगा।

इस काल में भूमि ने समाज में विशेष महत्व प्राप्त कर लिया। भू-सम्पत्ति या किसी के अधीन कितनी भूमि है, इस आधार पर सामाजिक स्तरों का विभाजन होने लगा। और यह किसी वर्ण विशेष तक सीमित न था।

दूसरे शब्दों में, अब किसी की सामाजिक स्थिति साधारणतः इस बात पर आधारित नहीं रह गई थी कि वह किस वर्ण से संबंधित था। उसके सामाजिक रुतबे का सम्बन्ध इस बात से हो गया था कि विभिन्न श्रेणियों के भूमि स्वामियों में उसके भू-स्वामित्व की क्या स्थिति थी। इन प्रवृत्तियों का प्रारंभ इस समय में हुआ और 9-10वीं सदियों में इनकी गति और तीव्र हो गई। 9-10वीं सदियों से, कायस्थों, व्यापारियों और धनी प्रभुत्वशाली किसानों ने राणका, नायक जैसी उपाधियों को धारण करना शुरू कर दिया। वे उच्च समाज और शासक कुलीन वर्ग का एक भाग बन गए। वरामिहिर की **बृहत संहिता** में इन परिवर्तनों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। इसने जन्म पर आधारित सामाजिक पदों का पुर्नमिलन करने का प्रयास किया है। इस प्रकार की चिन्ता मध्यकालीन स्थापत्य कला के ग्रंथों में भी व्यक्त की गई है।

गुप्त और उत्तर-गुप्त कालों की मुख्य विशेषता नई जातियों का उदय एवं प्रसार था। नई जातियों की बढ़ती संख्या ने ब्राह्मणों, क्षत्रियों, कायस्थों एवं शूद्रों को प्रभावित किया। संकर-जातियों और शूद्र जातियों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। दस्तकार संगठनों का जातियों में रूपांतरण, व्यापार और नगरीय केन्द्रों के पतन के फलस्वरूप तथा दस्तकारी की पैतृक विशेषता ने नई जातियों के निर्माण की प्रक्रिया में मदद की। आठवीं सदी का ग्रंथ **विष्णुधर्मोत्रय** पुराण उल्लेख करता है कि वैश्य महिलाओं के छोटी जातियों के लोगों के साथ मिल जाने के फलस्वरूप संकर-जातियों की उत्पत्ति हुई। ईसा की प्रारंभिक सदियों की सामाजिक स्थिति की तुलना में यह एकदम विपरीत स्थिति थी क्योंकि मनु के अनुसार संकर-जातियों की संख्या मात्र 61 थी। ब्राह्मणिक संस्कृति को अपनाने और कबिलाइयों तथा शूद्र जातियों के पिछड़े लोगों के बीच परस्पर मिलन के फलस्वरूप नई जातियों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। इसी के साथ अछूतों को उद्धृत किया जा सकता है, जो भिन्न-भिन्न उत्पत्तियों से संबंधित थे।

वर्ण संकर

वर्ण संकर का अर्थ था कि परस्पर-मिश्रण या वर्ण/जातियों की एकता। सामान्यतः इसको सामाजिक मान्यता प्राप्त न थी और इसके फलस्वरूप संकर-जातियों की उत्त्पत्ति हुई, जो सामाजिक अव्यवस्था का प्रतीक थीं।

नई जातियों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि के फलस्वरूप जातीय व्यवस्था में काफी कठोरता आ गई और अंतर्जातीय विवाहों को कम पसन्द किया जाने लगा। पहले के अनुलोम विवाह या बड़ी जाति के पुरुष तथा छोटी जाति की महिला के बीच होने वाले विवाहों को स्वीकृति प्रदान कर दी गई। परन्तु प्रतिलोम विवाह (अनुलोम विवाह का उलटा) पर प्रतिबंध लगा दिया गया। परन्तु धीरे-धीरे अनुलोम विवाहों की संख्या में भी वृद्धि बंद हो गई।

37.3 कायस्थों का विकास

मुनीम या कायस्थ समुदाय उस समय की सामाजिक-आर्थिक शक्तियों की उपज थे। भूमि-अनुदानों के फलस्वरूप भूमि राजस्व तथा भूमि का हस्तांतरण ब्राह्मणों, धार्मिक संगठनों तथा अधिकारियों को हो गया था। इस तथा अन्य जटिल प्रशासनिक कार्यों के फलस्वरूप लेखन का काम करने एवं प्रमाणों को रखने वाले लोगों की आवश्यकता हुई जिनका कार्य था भूमि-अनुदानों का लेखन करना और राजस्व के बहुत से अन्य मामलों के साथ-साथ भूमि हस्तांतरण के विवरणों को रखना। गुप्त काल में भूमि का बंटबारा शुरू हो गया। उस समय भी भूमि विभाजन तथा ग्रामीण सीमाओं के झगड़ों के नियम थे जिनका उल्लेख धर्मशास्त्रों मे हुआ है। भूमि के एक-एक भूखण्ड के प्रमाण को ठीक प्रकार रखना, इस प्रकार के झगड़ों को निपटाने के लिए आवश्यक था। एक ही भूखंड या गांव पर भिन्न-भिन्न प्रकार के अधिकारों का अस्तित्व होने से भूमि व्यवस्था बड़ी जटिल हो गई। इसलिए भूमि प्रमाणों को आवश्यक विवरणों के साथ रखना पड़ता था। इस कठिन कार्य को एक लिखने वाले वर्ण के द्वारा किया जाता जिसको बहुत नामों जैसे कि कायस्थ, करण, करणिका, पुरत्तपल, चित्रगुप्त, अक्षपतिलिका आदि से जाना जाता था। लेखन का कार्य करने वालों का कायस्थ मात्र एक गुट था। परन्तु शनैः-शनैः मुनीम और समुदाय के रूप में प्रमाणों को रखने वालों को कायस्थ कहा जाने लगा। प्रारंभ में उच्च वर्णों के पढ़े-लिखे लोगों को कायस्थ का काम करने के लिए लगाया जाता। समय के साथ-साथ मुनीमों को कार्य करने के लिए उनकी भर्ती बहुत से वर्णों से की जाने लगी और उनके व्यवसाय के कारण उनके सामाजिक आदान-प्रदान का दायरा सिकुड़ने लगा एवं उनके बीच भी एक जातीय विवाह तथा परिवार से बाहर विवाह करने की परम्परा का अनुसरण किया जाने लगा। इस प्रकार कायस्थ जाति के निर्माण की प्रक्रिया पूरी हो गई। इनके विषय में सबसे पहले उल्लेख ईसा की प्रारंभिक सदियों से मिलना प्रारंभ हो गया। 900 ई. के लगभग से इनका उद्भव बहुत से राज्यों में उच्च पदों पर आसीन एक शक्ति शाली और दृढ़ निश्चय वाली जाति के रूप में हुआ।

37.4 अछूत

''अपवित्र'' या अछूत जातियों ने ईसा की प्रारंभिक सदियों में निश्चित स्वरूप प्राप्त कर लिया था। परन्तु उस समय में उनकी संख्या बहुत कम थी। तीसरी सदी ई. के आसपास से अछूत परम्परा ने ज़ोर पकड़ना शुरू कर दिया तथा इनकी संख्या में वृद्धि होने लगी। गुप्त काल में धर्मशास्त्र का लेखक कात्यायन ऐसा प्रथम लेखक था जिसने अछूत अर्थ के लिए **अस्पर्श** शब्द का प्रयोग किया। गुप्त और उत्तर-गुप्त काल में अन्य बहुत सी जातियों को अछूत श्रेणी में शामिल कर दिया गया। न केवल शिकारियों और कारीगरों के कुछ गुट अछूत हो गए बल्कि पिछड़े किसानों को भी इस स्थिति में रख दिया गया। प्रथम सहस्राब्दी ई. के आसपास से शिकारियों, मछुआरों, जानवरों का वध करने वाले (कसाइयों), जल्लादों और महत्तरों को अछूत श्रेणी में शामिल कर दिया गया। कालिदास, वराहमिहिर, फाहियान, बाण तथा अन्य लेखकों ने अपनी रचनाओं में उन पर लगाए गए सामाजिक प्रतिबंधों का रोचक चित्रण किया है। **चाण्डालों** का भी एक भाग अछूतों के अंतर्गत आता था, यद्यपि सामाजिक पदानुक्रम में उसका स्तर सबसे निम्न था। यह भी बड़ी ही रोचक बात है कि अछूतों के बीच भी जाति पदानुक्रम पैदा हो गया। तत्कालीन साहित्य में उनके लिए तिरस्कारपूर्ण शब्दों का प्रयोग किया गया। लालची, झूठा, चोर, अपवित्र आदि उनके विशेष गुण बताए गए।

इस काल तथा बाद के समय में अछूतों की संख्या में कितनी वास्तविक वृद्धि हुई इसको बता पाना कठिन है। ब्राह्मणिक तथा बौद्ध ग्रंथों का मत है कि अछूत जातियां मूलतः पिछड़े हुए आदिवासियों से संबंधित थीं। यह तर्क दिया जाता है कि उनके पिछड़ेपन तथा ब्राह्मणिक संस्कृति को अपनाने की प्रक्रिया और ब्राह्मणवाद के उनके विरोध के कारण उनको समाज में शामिल नहीं किया गया तथा उनको अछूतों की स्थिति की ओर धकेल दिया गया। यद्यपि यह भी हो सकता है कि उनको भूमि के अधिकार से वंचित करके गांवों के बाहर की ओर बसा दिया गया। ब्राह्मणों और सत्ता-सम्पन्न लोगों की ओर से इन पिछड़े लोगों का तिरस्कार और धार्मिक अवसरों पर उनके द्वारा आयोजित आतिथ्य को स्वीकार न किया जाना तथा समय-समय पर इन पिछड़े लोगों के द्वारा ब्राह्मणिक व्यवस्था का विरोध, इन सबसे ऐसा प्रतीत होता है कि अछूतों की संख्या में काफी वृद्धि हुई और अछूतता व्यावहारिक बन गई। श्रमिकों की बढ़ती मांग और अछूतों की शोषित, सम्पत्ति विहीन लोगों के समुदाय के रूप में उपस्थिति, ग्रामीण समाज के अन्य लोगों के लिए अति लाभकारी सिद्ध हुआ। सामान्यतः अछूतों के पास भूमि नहीं होती थी, गांव से बाहर की ओर उनको बसाया जाता और वे कृषक नहीं बन सकते थे। वर्ष में जिस समय काम कम होता तो उनको शारीरिक परिश्रम से वंचित कर दिया जाता तथा जिस समय कृषि कार्य अत्यधिक होता तो उनको काम दिया जाता। इस भांति अछूत लोगों

को उस समय रोज़गार उपलब्ध कराया जाता जबकि समाज को उसकी आवश्यकता होती परन्तु सामाजिक स्तर पर उनका बहिष्कार तथा अलगाव किया जाता।

बोध प्रश्न 1

1) उत्तर-गुप्त काल में सामाजिक व्यवस्था में होने वाले परिवर्तन किस प्रकार से अर्थव्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों से संबंधित थे। 15 पंक्तियों में विवरण दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) सही (√) या गलत (×) का निशान लगाइए:

   i) असमान भू-सम्पत्ति और शक्ति के बंटवारे के फलस्वरूप ऐसे नए सामाजिक गुटों का उद्भव हुआ जिन्होंने परम्परागत वर्ण विभाजनों की सीमाओं को लांघ दिया।

   ii) बौद्ध धर्म के ग्रंथों का मत है कि अछूत जातियों की उत्पत्ति पिछड़े हुए कबीलों से नहीं हुई।

   iii) गुप्त और उत्तर-गुप्त कालों में दूर-दराज के इलाकों में शाही परिवारों का उद्भव हुआ।

3) आप वर्ण संकर से क्या समझते हैं? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

37.5 दस्तकारी और जातियां

इस काल के दौरान कारीगरों तथा दस्तकारों के बहुत से गुटों ने अपने प्रारंभिक स्तरों को खो दिया और उनमें से कई को अछूतों की श्रेणी में माना जाने लगा। संभवतः यह उन नगरीय केन्द्रों के पतन के फलस्वरूप हुआ जहां पर दस्तकारों की काफी बड़ी संख्या में मांग थी। दस्तकारी के संगठन जातियों में रूपांतरित हो गए और इस रूपांतरण को दस्तकारी उत्पादन के संगठन तथा प्रकृति में हुए परिवर्तन में प्रभावकारी ढंग से

समझा जा सकता है। बहुत सी जातियां जैसे कि स्वर्णकार (सुनार), मालाकार (माला बनाने वाला), चित्रकार, नपिता (नाई) आदि की उत्पत्ति विभिन्न दस्तकारियों (जिनका अनुसरण विभिन्न गुटों द्वारा किया जाता था) से हुई। कारीगरों के भी कुछ वर्ग अछूत बन गए। दसवीं सदी के अंत तक जुलाहे, रंगकार, दर्जी, नाई, जूतों का निर्माण करने वाले, लुहार, धोबी और अन्यों की स्थिति भी अछूतों जैसी हो गई। उदाहरण के लिए, गुप्त काल में उनमे से कई की जैसे जुलाहों की सामाजिक स्थिति उच्च थी। इस प्रकार, जिस युग के विषय में हम लिख रहे हैं, बहुत से कारीगरों के समूहों ने धीरे-धीरे अपनी स्थिति को खो दिया।

37.6 वैश्यों का ह्रास और शूद्रों के सामाजिक स्तर में बढ़ोत्तरी

धर्मशास्त्रों और इसी तरह के अन्य साहित्य में उल्लेख है कि चारों वर्णों के ढांचे के अंतर्गत सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन होना शुरू हुआ। शूद्रों के एक भाग का कृषि के साथ सम्बन्ध कायमं होने के बाद उनके सामाजिक तथा आर्थिक स्तर में बढ़ोत्तरी हुई। वैश्यों के विशेषकर उस भाग का, जो अपने वर्ण में सबसे नीचे के स्तर पर थे, पतन शूद्रों के स्तर तक हुआ। इस प्रकार दो नीचे के वर्णों की सापेक्ष स्थिति में परिवर्तन हुआ। शूद्र अब केवल दास और सेवक मात्र नहीं रह गए थे। उनका उदय काश्तकारों, बटाईदारों तथा किसानों के रूप में हुआ। नगरों के पतन के कारण शूद्र कारीगरों को खेती के काम को मजबूरन स्वीकार करना पड़ा। कुछ आचार-संहिता की पुस्तकों तथा सातवीं सदी के चीनी यात्री ह्वेनत्सांग के यात्रा वृतांत में उल्लेख है कि खेती करना शूद्रों का कर्तव्य था। **स्कन्द पुराण** में शूद्रों को अनाज का देने वाला (अन्नदाता) कहा गया है।

उत्तर-मौर्य काल में भारत के विदेश व्यापार की पराकाष्ठा के दौरान वैश्यों की पहचान व्यवसायों तथा नगरों के साथ की जाती थी। उत्तर-गुप्त काल में कृषि व्यवस्था की प्राथमिकता के कारण वैश्य व्यापारियों तथा सौदागरों को आर्थिक नुकसान एवं सामाजिक पतनशीलता का सामना करना पड़ा। उनमें से बहुतों ने अपना जीवन यापन करने के लिए कृषि कार्यों को अपना लिया। साहित्यिक साक्ष्यों के अनुसार, गुप्त काल तक वैश्य वर्ण से नीचे स्तर वाले स्वतंत्र किसान भू-स्वामी इस समय में निर्भर तथा दासत्व किसानों में परिवर्तित हो गए। वैश्य एवं शूद्रों के बीच का अंतर काफी कम हो गया और उनके व्यवसायों तथा रहने के स्तर की भिन्नताएं भी समाप्त हो गईं। इसलिए बाद के काल की रचनाओं और विशेषकर अलबरूनी के लेखों में वैश्य तथा शूद्रों को एक ही श्रेणी में रखा गया।

37.7 वर्ण पदानुक्रम के विचार का प्रसार एवं रूपांतरण

उत्तर भारत के गांगेय प्रदेश से बाहर जब वर्ण व्यवस्था का प्रसार हुआ तो इसके अंतर्गत भी संशोधन हुए। चार-स्तरीय वर्ण व्यवस्था का प्रचलन पूर्वी, दक्कन, मध्य एवं दक्षिण भारत के भागों में नहीं था। उत्तरी-भारत में चार-स्तरीय वर्ण व्यवस्था की ऐतिहासिक जड़े थीं क्योंकि समय के साथ-साथ इसका वहां पर विकास हुआ और समाज पर इसकी पकड़ और मज़बूत हो गई। परन्तु वर्ण पर आधारित समाज विभाजन का विचार जब अन्य क्षेत्रों में फैला तब इसके मूलभूत रूप में काफी अंतर आ गया। पांचवीं-छठी सदियों से भूमि-अनुदानों के फलस्वरूप ब्राह्मण भी देश के अन्य भागों में फैल गए। उन्होंने स्थानीय पुजारी गुटों पर ब्राह्मणों के स्तर को प्रतिपादित किया। इन नए क्षेत्रों के स्थानीय कबिलाइयों ने ब्राह्मणिक संस्कृति को ग्रहण कर लिया तथा ब्राह्मणिक समाज के आधार पर पहले से बसे हुए कृषि समाज के साथ घुलमिल गए।

यद्यपि कुछ ब्राह्मण एवं ब्राह्मणिक विचार दक्षिण में पहले ही फैल चुके थे, परन्तु अग्रहार के नाम से प्रसिद्ध ब्राह्मणिक बस्तियां दक्षिण भारत में पल्लव एवं उत्तर-पल्लव कालों में अस्तित्व में आयीं। पल्लव राज्य में शिक्षण संस्थाओं के विकास में ब्राह्मणीकरण स्पष्ट दिखाई देता है। पांचवीं-छठी सदियों से ब्राह्मणों का विस्थापन विभिन्न दिशाओं को होने लगा था। इन सदियों में वे दक्कन, मध्य भारत, उड़ीसा, बंगाल एवं असम में फैल गए। इन क्षेत्रों में ब्राह्मणिक संस्कृति का प्रभाव इससे भी स्पष्ट है कि उनको इन क्षेत्रों में भूमि-अनुदान एवं उनको उच्च पद प्रदान किए गए।

प्रारंभिक मध्यकालीन भारत की दो महत्वपूर्ण सामाजिक प्रक्रियायें थीं, प्रथम, कबिलाइयों का एक जटिल सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत किसानों में रूपांतरण और दूसरे उनको शूद्र वर्ण के साथ संबंधित समझना। दूसरी ओर, क्षत्रिय वर्ण उत्तर भारत से बाहर के क्षेत्रों में अपनी जड़ें वास्तव में गहरी न कर सका। नए स्थापित राज्यों में बहुत से शासक वंशों ने क्षत्रिय होने का दावा प्रस्तुत किया तथा उन्होंने अपने वंशों का सम्बन्ध सूर्यवंश तथा चन्द्रवंश से सिद्ध करने के प्रयास किए। इसी के साथ-साथ वैश्य वर्ण इन क्षेत्रों में उदित

न हुआ क्योंकि इस समय तक दक्कन, मध्य भारत, पूर्वी भारत और दक्षिण में ब्राह्मणवाद का तेज़ी के साथ फैलाव हुआ एवं इसलिए इन क्षेत्रों में शूद्रों तथा वैश्यों के बीच का मतभेद काफी कम हो गया।

इस प्रकार, गांगेय प्रदेश से बाहर के क्षेत्रों में व्यापक रूप से समाज का वर्गीकरण केवल ब्राह्मणों तथा शूद्रों के रूप में ही हो पाया। क्षत्रियों की एक स्थायी एवं स्पष्ट समुदाय के रूप में जड़ें न जम सकीं और वैश्य भी केवल तब-तब प्रकट होते थे जब-जब आर्थिक सम्पन्नता, व्यापार एवं वाणिज्य की प्रगति होती थी। फिर भी उस समय ऐसी बहुत-सी व्यावसायिक जातियां थीं जिनके ओहदों में समय के साथ वृद्धि होती रहती थी।

37.8 महिलाओं की स्थिति

इस काल के दौरान समाज में महिलाओं की स्थिति में क्रमशः पतन हुआ। आचार-संहिता पुस्तकों में महिलाओं की कम आयु में या यौवन अवस्था से पूर्व विवाह करने की प्राथमिकता का उल्लेख हुआ है। महिलाओं के लिए औपचारिक शिक्षा को मना कर दिया गया। महिला और सम्पत्ति को एक ही श्रेणी में कर दिया गया जिससे उनकी सामाजिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव हुआ। सामान्यतः उनको सम्पत्ति अधिकार से वंचित कर दिया गया। परन्तु विधवाओं के मामले में सम्पत्ति अधिकारों में कुछ सुधार हुआ। **स्त्री धन** (जिसका साहित्यिक अर्थ है महिलाओं का धन) के प्रावधानों से स्पष्ट है कि इसका अधिक महत्व इसलिए नहीं था क्योंकि महिलाओं को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति जैसे जेवर, आभूषण एवं उपहारों से अधिक को रखने का अधिकार नहीं था। बृहत संहिता जैसे समकालीन साहित्यिक ग्रंथों में महिलाओं एवं शूद्रों के लिए संयुक्त रूप से संदर्भों का प्रयोग महिलाओं की समाज में दुर्दशा को स्पष्ट करता है। उनको बहुत से यज्ञों एवं उत्सवों में भाग लेने से वंचित कर दिया गया। इसी काल में सती प्रथा को भी सामाजिक स्वीकृति प्राप्त हो गई। विवाह के पश्चात् महिलाओं के गोत्र में परिवर्तन का प्रारंभ भी पांचवीं सदी ई. से हो गया। यह एक महत्वपूर्ण परिवर्तन था क्योंकि इसकी अंतिम परिणति उनके पैतृक घर में उनके अधिकारों की समाप्ति के रूप में हुई और यह पैतृक व्यवस्था या पुरुष-प्रधान समाज की विजय का प्रतीक था।

37.9 ज़मींदार और किसान

यह पहले ही बताया जा चुका है कि इस समय की कृषि व्यवस्था में किसानों से भिन्नता बनाए रखने के लिए ज़मींदारों के भी कई वर्ग थे। भोगी, भोक्ता, भोगपति, महाभोगपति, बृहद्भोगी आदि शब्दों का प्रयोग भूमि से लाभ प्राप्तकर्ताओं के लिए किया गया। ज़मींदारों को उच्च वर्ग में राणका, राजा, सामन्त, महासामन्त, मण्डलेश्वर आदि को भी सम्मिलित किया गया। भूमि पर अपने स्वामित्व और प्रभुत्व को स्पष्ट करने के लिए वे इस प्रकार की भारी भरकम उपाधियों को धारण करता था। ज़मींदार लोग भूमि पर अपने प्रभुत्व को बनाए रखने के लिए जिन उपाधियों का प्रयोग करते थे उनसे स्पष्ट है कि भू-सम्पत्ति पर उनको उच्च अधिकार प्राप्त थे। इन उपाधियों से यह भी प्रकट होता है कि उनका वास्तविक खेती कार्यों से कोई सम्बन्ध न था। यहां पर यह भी कहा जा सकता है कि उनको विशेष प्रकार के एवं बेदखल (इससे पूर्व की इकाई में इनका विवरण दिया गया है) करने के अधिकार प्राप्त थे। भूमि-अनुदान अधिकार पत्रों के द्वारा दान प्राप्तकर्ताओं को परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा व्यक्तिविशेष के विरुद्ध किए गए अपराधों सहित दस अपराधों (दशापराध) के लिए लोगों को दण्डित करने का अधिकार मिल गया था। वे दीवानी के मामलों का भी निबटारा करते थे। इस प्रकार के अधिकारों के साथ-साथ आर्थिक प्रभुत्व होने से ज़मींदारों ने प्रभावशाली ढंग से किसानों का शोषण किया।

किसान वर्ग भी स्वयं में कोई एक रूप समुदाय न था। उनको भी कृषक, कृषि वाला, किसान, क्षेत्राजीवी, हलिका, अर्धाश्री, अर्धिका, कुटुम्बी और भूमि कर्षक आदि अन्य नामों से पहचाना जाता था। इन सब नामों से सामान्यतः ऐसा प्रतीत होता है कि उनका भूमि पर नियंत्रण से कोई सम्बन्ध न था। उनका वर्गीकरण विभिन्न प्रकार से किया गया। उनको भूमि जोतने वाला, निर्भर किसान, बटाईदार, खेत मज़दूर आदि नाम दिए गए और इनमें से किसी का भी भूमि पर स्वतंत्र स्वामित्व न था। किसान लोग अपने परिश्रम के फल के मालिक न थे। उनके परिश्रम का एक बड़ा भाग ज़मींदारों की इच्छा पर था। इसके अतिरिक्त, उसको उत्पादन के लिए बेगार करनी होती थी और इसी के साथ किलों, मंदिरों तथा अनुदान प्राप्तकर्ताओं के आडम्बरपूर्ण निर्माणों के लिए परिश्रम करना होता था। इस संदर्भ में यह तथ्य रोचकपूर्ण है कि 1000 ई. के पूर्वार्द्ध में किलों की संख्या एवं उनका महत्व काफी बढ़ गया। किलों एवं विशाल भवनों के निर्माण भय के वातावरण को उत्पन्न करते थे एवं ज़मींदारों का सैन्य शक्ति के लिए सम्मान भी, तथा इनसे किसानों की जीविकोपार्जन भी निश्चित हो जाती थी।

चौथी सदी से सातवीं सदी तक के काल में बंधुआ मज़दूरी या **विष्ति** का प्रारंभ हो चुका था। कोंकण, महाराष्ट्र, गुजरात तथा मालवा में किसानों के साथ-साथ कारीगरों को भी बंधुआ मज़दूरी के लिए रखा जाता था। धार्मिक रूप से लाभ प्राप्त करने वालों को गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश तथा कर्नाटक के भागों में मज़दूर रखने का अधिकार था। छठी-सातवीं सदियों में गांवों के मुखियाओं तथा छोटे अधिकारियों को भी अपने व्यक्तिगत लाभों के लिए बंधुआ मज़दूरी कराने की परम्परा का सबसे पहला प्रमाण **भगवत पुराण** से उपलब्ध होता है जिसकी रचना आठवीं सदी के आसपास की गई। इस समय के आते-आते बंधुआ मज़दूरी की परम्परा सम्पूर्ण भारत में फैल चुकी थी। उत्तर-गुप्त काल में स्थानीयता की विशेषता के साथ निश्चित कृषि अर्थव्यवस्था के कारण बंधुआ मज़दूरी का प्रसार और महत्व और भी बढ़ गया।

37.10 जातियों की संवृद्धि

इस काल के दौरान की जाति व्यवस्था की कुछ विशेषताओं का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। यह स्पष्ट किया गया था कि इस समय में जो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ, वह था जातियों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि होना। इस परिवर्तन के कारण ब्राह्मणों, क्षत्रियों (बाद में राजपूतों), शूद्रों और अछूतों पर भी प्रभाव पड़ा। जिन वर्णों का अस्तित्व था वे जातियों में टूट गए और ऐसे कबीले जो जातियों में रूपांतरित हो चुके थे इनमें सम्मिलित हो गए। जैसे-जैसे ब्राह्मणिक समाज का प्रसार हुआ वैसे-वैसे वर्ण व्यवस्था के अंदर मतभेद गहरे होते गए। प्रत्येक वर्ण में पदानुक्रम पैदा हो गए क्योंकि विभिन्न स्तरों पर सांस्कृतिक विकास के कारण जनता और समुदायों के बहुत से गुटों के मिलन और उनके द्वारा ब्राह्मणिक संस्कृति को अपना लिया गया। सम्पत्ति तथा राजनीतिक शक्ति के असमान विभाजन ने इस काल में जाति के भेदभावों को और बढ़ाया। एक ही वर्ण के अंतर्गत बहुत-सी जातियों का संयोग हो गया परन्तु पहले के कुछ ऐसे भी उदाहरण है कि एक ही समान समुदाय कई वर्णों और जातियों में टूट गए। इस उपलक्ष्य में सबसे अच्छा उदाहरण आभीर कबीले का है, जो आभीर ब्राह्मणों, आभीर क्षत्रियों तथा आभीर शूद्रों में बंट गया।

37.10.1 ब्राह्मण

ब्राह्मणों के बीच जिन जातियों का उद्भव हुआ उनकी संख्या भी काफी थी। जिन ब्राह्मणों ने अपनी धार्मिक सेवाओं का "व्यापारीकरण" किया, जो स्थानीय निवासियों के सम्पर्क में आए तथा उनमें जो पूर्णतः शारीरिक परिश्रम की अवहेलना न कर सके, उन ब्राह्मणों को **क्षत्रिय अग्रहार ब्राह्मण** पतित समझने लगे तथा ये ब्राह्मण स्वयं शारीरिक परिश्रम न करते थे। भूमि-अनुदानों का भोग करने के लिए ब्राह्मणों का बहुत से क्षेत्रों का विस्थापना हुआ जिसके कारण वर्ण के अंतर्गत जातियों और उप-जातियों के निर्माण की प्रक्रिया और तेज हो गई। विस्थापित ब्राह्मणों ने अपनी उत्पत्ति के स्थान, उनके द्वारा अनुसरणीय वैदिक ज्ञान की शाखा आदि के आधार पर अपनी पहचान को बनाए रखा। उनकी वंशानुगत पहचान ने भिन्नताओं के लिए एक और आधार प्रदान किया। बहुत से कबीलों का जातियों में रूपांतरण हो जाने के बावजूद भी उन्होंने अपने पुराने पुजारियों को बनाए रखा और उनकी नीचे ब्राह्मणों के रूप में मान्यता हो जाने के फलस्वरूप ब्राह्मणों के बीच विभाजन को और गहरा किया। जहां एक बार वर्ण के विचार को स्वीकृति प्राप्त हो गई फिर उसके बाद स्थानीय पुजारी समुदायों को ब्राह्मण की मान्यता प्राप्त होने में कोई कठिनाई न रही। जो ब्राह्मण राजनीतिक शक्ति के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़े थे तथा राज्य में उच्च पदों पर आसीन होते थे उनका वर्ग अलग था। इस प्रकार के ब्राह्मणों के द्वारा विशेष पदों पर आसीन होने के कारणवश उन्होंने ब्राह्मण वर्ण के अंदर ही एक विशेष वर्ग बना लिया। यही प्रक्रिया क्षत्रियों के लिए भी सत्य थी।

37.10.2 क्षत्रिय

क्षत्रियों के बीच जाति संवृद्धि का कारण स्थानीय कबीलों के बीच से शासक घरानों का उदय तथा विदेशी जातीय गुटों का राजनीतिक शक्ति के साथ समाज की मुख्य धारा में मिल जाना था। विदेशी जातीय गुटों में से बैक्ट्रिया के पुजारियों, शकों, पार्थियनों, हूणों आदि को वर्ण व्यवस्था में समाहित करते हुए उनको दूसरी श्रेणी का क्षत्रिय बना दिया गया। यह अवधारणा कि केवल क्षत्रिय ही शासन कर सकते थे, इसके कारण नए शासक घरानों को क्षत्रियवाद हेतु ब्राह्मणों का समर्थन प्राप्त करने के लिए मजबूर होना पड़ा जिससे कि वे अपने शासन के लिए लोकप्रिय स्वीकृति एवं वैधता पा सके। क्षत्रिय जातियों की संख्या में गुणात्मक वृद्धि पांचवीं-छठी सदियों से उस समय से होनी प्रारम्भ हुई जबकि बहुत से कबीलों के सरदारों का उन ब्राह्मणों की स्वीकृति के द्वारा "हिन्दुत्व" रूपांतरण हुआ जिनको उन्होंने संरक्षण दिया और वैदिक बलि यज्ञों का आयोजन किया। उत्तर-गुप्त काल में बहुत से शासक वंशों का उद्भव छोटी जातियों से हुआ था और धीरे-

धीरे उन्होंने क्षत्रिय स्तर को प्राप्त कर लिया। प्रायद्वीप भारत के पल्लव और चालुक्य, बंगाल और बिहार के पाल, तथा उड़ीसा में बहुत से उप-क्षेत्रीय वंशों की उत्पत्ति आदिवासियों से हुई। आगामी शताब्दियों में अधिकतर राजपूतों का उद्‌भव कबीलों या फिर चरवाह जातियों से हुआ था। शासक वंशों की एक समान उत्पत्तियों तथा उनकी सामाजिक स्वीकृति की इच्छा क्षत्रिय समुदाय में जाति संवृद्धि का स्पष्ट प्रमाण है।

37.10.3 शूद्र

सजातीय वैवाहिक गुटों का बहुत से समुदायों एवं क्षेत्रों से आने पर शूद्र वर्ण का आधार व्यापक रूप से फैल गया। गुप्त और उत्तर-गुप्त काल में असमान आर्थिक शक्ति के संसाधनों के साथ-साथ छोटी-कृषक जातियां, धनी किसान, बंटाईदार तथा कारीगरी जातियां भी शूद्र वर्ण में शामिल हो गईं। इस प्रकार शूद्र वर्ण के अंतर्गत व्यापक रूप से भेदभाव वाले गुट सम्मिलित हो गए और सबसे अधिक जातियों की संख्या भी इसमें मिल गई। बहुत-सी मिश्रित जातियां, "पवित्र" एवं "अपवित्र" दोनों प्रकार की सातवीं-आठवीं सदियों में प्रकट हुईं। "अपवित्र" जातियों को अछूत कहा गया। दूर-दराज के इलाकों में कबिलाई समुदायों के द्वारा ब्राह्मणिक संस्कृति को अपनाना तथा उनका कृषक बनने वाली प्रक्रिया के सतत प्रवाह ने ब्राह्मण संस्कृति के प्रसार में सहायता की। कबीलों का क्रमिक रूप से किसानों में रूपांतरण होने के परिणामस्वरूप उनकी जातियां बन गईं और इन किसान गुटों को ब्राह्मणिक समाज में शूद्रों के रूप में शामिल कर लिया गया। इसके परिणामस्वरूप शूद्रों की संख्या तथा उनकी जातियों में काफी वृद्धि हुई। इसी के साथ-साथ जैसा कि ऊपर भी बताया गया कि इस प्रकार के मामलों में कबीलों के बीच के अग्रिम परिवारों तथा सरदारों को क्षत्रियों की उच्च जातियों या राजपूतों जैसी समान जातियों और ब्राह्मणों में शामिल कर लिया गया।

क्षेत्रीय (दस्तकारों, कारीगरों तथा व्यापारियों के संगठन) का जातियों में रूपांतरण और अछूतों के विभिन्न वर्गों के उद्‌भव ने सदैव बढ़ती जातियों की संख्या में और वृद्धि की। नौवीं-दसवीं सदियों तथा बाद के समय के दौरान जातियों एवं उप-जातियों के निर्माण की प्रक्रिया में अति तीव्रता आ गई। एक आधुनिक शोध के अनुसार, वर्तमान भारत में लगभग पांच हज़ार जातियां हैं और इसी के साथ एक भाषा वाले राज्य में लगभग तीन सौ जातियां हैं। इन स्थानीय जातियों के निर्माण की प्रक्रिया का प्रारम्भ निश्चित रूप से उत्तर-गुप्त काल में हुआ था।

बोध प्रश्न 2

1) वैश्य समुदाय में होने वाले परिवर्तनों का विवेचन उनके आर्थिक ह्रास के संदर्भ के साथ कीजिए। आपका उत्तर दस पंक्तियों से अधिक न हो।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) इस काल के दौरान महिलाओं की स्थिति का विवरण दीजिए। उत्तर दस पंक्तियों में हो।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) गुप्त तथा उत्तर-गुप्त काल में जातियों की संवृद्धि मुख्य परिवर्तन था। पन्द्रह पंक्तियों में विवरण दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

37.11 सारांश

इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्तर-गुप्त काल में विशेष महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन हुए। जैसा कि धर्मशास्त्रों से ज्ञात होता है कि वर्ण पदानुक्रम की व्यवस्था एवं चरित्र में क्रांतिकारी रूपांतरण हुआ। उत्तर भारत में वैश्यों तथा शूद्रों के बीच विभेद करना कठिन हो गया परन्तु पूर्वी भारत, दक्कन और दक्षिण भारत में मुख्य रूप से ब्राह्मण एवं शूद्र दो ही वर्ण अस्तित्व में थे। वर्ण पदानुक्रम समाज के लिए एक मात्र सैद्धांतिक योजना बनी रही परन्तु व्यावसायिक जातियां सामाजिक वास्तविकता में सक्रिय रूप से कार्यरत हो गई। परन्तु बहुत सारी जातियों के पदानुक्रम में इस योजना की उपयोगिता कायम रही क्योंकि यह जातियों की "पवित्रता" या "अपवित्रता" को निश्चित करती थी। क्षत्रिय जैसी नई जातियों के उद्‌भव के बहुत से कारण थे जैसे कि बंटवारे के कानूनों का क्रियाशील होना, भूमि का विभाजन और भूमि का हस्तांतरण। खेती करने वालों के रूप में शूद्रों की स्थिति में सापेक्ष वृद्धि हुई परन्तु वैश्यों की सामाजिक स्थिति में कुछ गिरावट आई। भूमिविहीन अछूत एक वास्तविकता बन गए और उनकी संख्या में वृद्धि हुई। सामान्यतः जातियों की संवृद्धि इस काल का सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन था। समाज लगातार पदानुक्रम के स्तरों में विभाजित होता जा रहा था और बहुत सारी जातियों को समाज में निम्न स्तर की स्थिति प्राप्त थी। ब्राह्मणिक समाज का स्पष्टतः तुलनात्मक रूप में कुछ उच्च जातियों एवं अधिसंख्यक नीची जातियों के बीच ध्रुवीकरण हो गया। द्विजों (ऊपर के तीन वर्णों में दो बार जन्मे) तथा शूद्रों के बीच कोई अंतर न रह गया। इसी समय से यह कहा जाने लगा कि ये जातियां अनुष्ठानिक रूप से पवित्र हैं तो अमुक अपवित्र। इन सभी प्रकार के परिवर्तनों के बीच में किसानों को आधीन किया जाने लगा और छोटे-बड़े सभी प्रकार के भूमि-अनुदान प्राप्तकर्ताओं के

द्वारा उनका शोषण होने लगा। इसके पूर्व की इकाई में वर्णित आर्थिक परिवर्तनों ने इन सामाजिक परिवर्तनों के लिए पृष्ठभूमि तैयार की।

37.12 शब्दावली

नई संस्कृति को अपनाना : यहां पर इसका प्रयोग ब्राह्मणिक संस्कृति को अपनाने के संदर्भ में किया गया है।

देशवासी : स्वदेशी : देशवासी : प्राचीनतम।

सहभोजन करना : आपसी लाभ के लिए एक साथ बैठकर खाना–पीना।

किसान आधार वाली जाति : इसका प्रयोग प्रारंभिक कृषि समाज की बस्तियों के लिए किया गया जिनके सदस्यों का वर्गीकरण जातियों के आधार पर किया गया।

सजातीय विवाह : एक ही जाति के अंदर वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना।

अंतर्जातीय विवाह : दूसरी जाति मे विवाह करना।

पैतृक/प्रभुत्व : वे परिवार जिनका संचालन पैतृक अधिकारों के अनुरूप होता है।

37.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपको अपने उत्तर में मुख्य आर्थिक परिवर्तनों, नए सामाजिक गुटों का उद्‌भव, नई जातियों की संवृद्धि, अनुष्ठान तथा गुटों के वास्तविक स्तर के बीच विरोधाभास आदि लिखना चाहिये। भाग 37.1 और 37.2 देखिए।
2) i) √ ii) × iii) √
3) उपभाग 37.2.1 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) आपको अपने उत्तर में कृषि आधार का प्रसार, व्यापार एवं शहरी व्यवसायों के ह्रास को शामिल करना चाहिए। भाग 37.6 देखिए।
2) भाग 37.8 देखिए।
3) भाग 37.10, उपभाग 37.10.1, 37.10.2 और 37.10.3 देखिए।

इकाई 38 राजनीतिक व्यवस्था की संरचना : सामंतों, महासामंतों, और शासकों तथा अधिकारियों के अन्य वर्ग

इकाई की रूपरेखा

38.0 उद्देश्य
38.1 प्रस्तावना
38.2 राजा
38.3 नौकरशाही
38.4 सेना
38.5 प्रशासनिक विभाजन
38.6 सामंत
38.7 कर प्रणाली
38.8 न्याय व्यवस्था
38.9 सारांश
38.10 शब्दावली
38.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

38.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप बता सकते हैं:

- राजनीतिक व्यवस्था या राजनीतिक संगठन का चरित्र,
- मौर्य राजनीतिक व्यवस्था और इस काल की राजनीतिक व्यवस्था के बीच अंतर, और
- उन कारणों को जिनके आधार पर इतिहासकार इस काल के राजनीतिक संगठन का चरित्र सामन्तीय मानते हैं।

38.1 प्रस्तावना

जिस काल का हम अध्ययन कर रहे हैं उस पर उत्तर में गुप्त तथा पुष्यभूतियों, दक्कन में वाकाटक, कदम्ब एवं बादामी के चालुक्य और दक्षिण के आंध्र तथा तमिलनाडु में पल्लवों का शासन रहा। इन सबके अतिरिक्त निश्चित रूप से कुछ छोटे राज्य एवं सरदारों के प्रभाव क्षेत्र देश के बहुत से भागों में विद्यमान थे। इस युग की राजनैतिक व्यवस्था का अध्ययन करने के लिए अभिलेख, धर्मशास्त्र साहित्य, बाण की रचना हर्षचरित, चीनी यात्रियों फाहियान एवं ह्वेन-त्सांग के यात्रा वृतान्त आदि इस काल के मुख्य स्रोत हैं। इस काल की राजनीतिक व्यवस्था के लिए सामान्यतः यह कहा जाता है कि उत्तराधिकारी राजतन्त्रों का छोटे क्षेत्रों पर शासन रहा परन्तु उनमें से एक या दो राजतन्त्रों ने एक व्यापक क्षेत्र पर अपने सम्प्रभु को स्थापित किया। उदाहरण के लिए, गुप्त शासकों के (300 ई. से 500 ई. तक) तथा हर्ष के (सातवीं सदी के पूर्वार्द्ध में) नियन्त्रण में सामान्यतः एक विशाल क्षेत्र था। उनके राजनैतिक इतिहास का विवरण खण्ड 8 में पहले ही किया जा चुका है। इस इकाई में हम 300 ई. से 700 ई. तक के काल के राजनैतिक संगठन की मुख्य विशेषताओं का विवेचन करेंगे। हम यह भी दिखाने का प्रयास करेंगे कि इन विशेषताओं ने पहले के युग के राजनैतिक संगठन में परिवर्तन को कैसे स्पष्ट किया और इसी प्रकार के परिवर्तन अन्य क्षेत्रों में भी हुए जैसे कि इस समय में देश के राजनैतिक संगठन में भी अति महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे।

38.2 राजा

देश के अधिकतर भाग पर राजाओं का ही शासन था। कुछ सीमान्त क्षेत्रों में गणों (कबीलाई गणतन्त्र) की

सरकार कायम थी। चौथी सदी ई. के प्रारम्भ में समुद्रगुप्त के द्वारा उत्तर भारत में सैनिक अभियान का संचालन करने के बाद ये सभी कबीलाई गणतन्त्र राजनैतिक दृश्य से गायब हो गये। इस प्रकार पंजाब में मद्र एवं योधेय, मध्य भारत के आभीर आदि का नाम फिर कभी भी सुनायी न दिया। कुछ कबीलाई सरदारों के राज्य धीरे-धीरे राजतन्त्रों में परिवर्तित हो गये। राजा अब परममहेश्वर, राजाधिरा, परमभट्टारक जैसी भारी भरकम उपाधियों को धारण करने लगे जिनसे अन्य छोटे शासकों पर उनकी सर्वोच्चता स्पष्ट होती है। इस काल में दैवी अधिकार सिद्धान्त का प्रचलन हो गया। इस सिद्धान्त को बनाये रखने के लिये राजा पृथ्वीबल्लभ जैसी उपाधियों को धारण करते थे। जिसका तात्पर्य है, "धरती पर देवताओं का प्यारा"। उसको पांचवा लोकपाल कहा जाता है क्योंकि चारों प्रधान दिशाओं के संरक्षकों पर लोकपालों के नाम से विख्यात अन्य चार थे कुबेर, वरुण, इन्द्र एवं यम। यद्यपि राजा का देवत्व का सिद्धान्त प्रधानता को प्राप्त कर गया था परन्तु इसके अन्दर राज्य की एक संरक्षक तथा रक्षक की अवधारणा भी निहित थी।

अपवाद के रूप में कुछ ऐसी रानियों के नाम भी मिलते हैं जो शासन करती थीं। इनमें वाकाटक रानी प्रभावती का नाम लिया जा सकता है जो गुप्त शासकों से संबंधित थी और बाद में काश्मीर की रानी दिद्दा थी। सामान्यतः रानियां पृष्ठभूमि में ही रहती थीं।

राजा का पद पैतृक था। यद्यपि सिंहासन पर उत्तराधिकार ज्येष्ठत्व के सिद्धान्त के अनुसार ही तय किया जाता था जिसका तात्पर्य है कि सिंहासन पर राजा का ज्येष्ठ पुत्र ही बैठता है परन्तु इस नियम के कुछ अपवाद भी थे। कभी-कभी राजा का निर्वाचन कुलीनों और मन्त्रियों के द्वारा होता था। सरकार का प्रमुख होने के कारण राजा अपने प्रदेश की सभी प्रशासनिक गतिविधियों का निरीक्षण करता था। वह सर्वोच्च न्यायाधीश था और सामान्यतः युद्ध के मैदानों में अपनी सेना का नेतृत्व करता था।

38.3 नौकरशाही

मौर्य काल की तुलना में, इस काल में राजा को सलाह देने के लिये किसी मन्त्रीपरिषद का अस्तित्व था इसके कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं हैं। परन्तु फिर भी कुछ उच्च अधिकारी इस समय में भी थे जिनको मन्त्री कहा जाता था। इसके उच्च अधिकारी थे संधिविग्राहिका, यह विदेशी मामलों, युद्ध एवं शांति का मन्त्री था, महाबालाधिकृत एवं महादण्डनायक ये दोनों सेना के उच्च अधिकारी थे। कभी-कभी एक समय में एक ही व्यक्ति एक से अधिक पदों पर पदासीन होता था। उदाहरण के लिये, हरिषेण जो समुद्रगुप्त की इलाहाबाद प्रशस्ति का रचियता था संधिविग्राहिका होने के साथ-साथ महादण्डनायक भी था।

इनके अतिरिक्त गुप्त सरकार के अन्तर्गत अधिकारियों का एक वर्ग था जिसको कुमारमात्य के नाम से जाना जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकार अधिभारियों की नियुक्ति इस वर्ग से की जाती थी और इसलिए कुमारमात्यों को अन्य बहुत से पदों जैसे कि संधिविग्राहिका, दण्डनायक, महाबालाधिकृत आदि पर भी नियुक्त किया जाता। उनमें कुछ प्रत्यक्ष रूप से राजा के नियन्त्रण में होते थे और उनमें से कुछ राजकुमारों के सेवकों तथा प्रांतीय सूबेदारों के रूप में कार्य करते थे। उपारिका के नाम से पुकारे जाने वाले अधिकारी के अधीन एक प्रशासनिक मण्डल मुक्ति होता था। आयुक्तक नौकरशाही का एक सदस्य था जो विषयपति के समान था तथा गाँव से उच्च स्तर पर कार्य करता था और वह ग्राम तथा मुक्ति के मध्य एक महत्वपूर्ण प्रशासनिक सम्पर्क था।

इस काल के प्रारम्भ में प्रशासनिक अधिकारियों को भुगतान नकद किया जाता था और बाद में एक निश्चित क्षेत्र का राजस्व वे प्राप्त करने लगे और इसलिए उनको भोमिका और भोगपति कहा जाने लगा। यह हर्षचरित से ज्ञात हुआ है जिसके अनुसार इस प्रकार के अधिकारियों के विरुद्ध गाँव वालों ने हर्ष से शिकायत की। ये पद बाद में पैतृक हो गये जिसके कारणवश राजा का प्रभुत्व कमजोर हो गया।

38.4 सेना

आंतरिक शांति रखने तथा आक्रमण से सुरक्षा के लिए लगातार या स्थायी रूप से सेना रखना इस युग की मुख्य विशेषता थी। जैसा कि ऊपर बताया गया कि उस समय में भी सेना के बहुत से उच्च अधिकारी थे और सेना इन अधिकारियों के अधीन होती थी। घुड़ सेना इस युग की सेना का मुख्य अंग होती थी। समुद्र तटीय पल्लव जैसे दक्षिण के राज्यों में नौसेना भी होती थी। इस युग की सेना में रथों का प्रचलन महत्वपूर्ण नहीं था। केन्द्रीय शाही सेना का उपभाग सामान्तों की सेना होती थी।

38.5 प्रशासनिक विभाजन

देश का प्रशासन सुचारू रूप से चलाने के लिए उसको कई मण्डलों में विभक्त किया गया। सबसे उच्च इकाई को भुक्ति कहा जाता था। कभी-कभी राजकुमार इस पद पर नियुक्त किये जाते थे। मुक्ति से आगे का प्रशासनिक मण्डल विषय होता था और प्रशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम होते थे। कुछ विशेष क्षेत्रों में विषय को राष्ट्र भी कहा जाता था। पूर्वी भारत में विषयों को भी विभिन्न विथियों में विभाजित किया गया था और जो ग्राम से ऊपर होता था। विषय के अधिकारियों को (या स्थानीय ताकतवर लोग) विषपति कहा जाता और वे प्रशासनिक कार्यों में अग्रिम भूमिका अदा करते। गाँव में एक मुखिया होता और गाँव के बड़े-बूढ़े लोग गाँव के मामलों में अग्रिम भूमिका अदा करते थे। नगरों या कस्बों में दस्तकारों तथा व्यापारियों के अपने संगठन (श्रेणियां) होते थे और वे अपने इन संगठनों का प्रशासन स्वयं चलाते थे।

38.6 सामन्त

अर्द्ध रूप से स्वतन्त्र स्थानीय सरदारों को सामन्त कहा जाता और ये सामन्त इस युग की राजनैतिक व्यवस्था की महत्वपूर्ण विशेषता थे। हम पहले ही बता चुके हैं कि समुद्रगुप्त ने बहुत क्षेत्रों को विजयी किया और उनको अपने अधीन कर लिया। इन क्षेत्रों के कुछ ऐसे शासकों को जो गुप्त साम्राज्य की सीमाओं पर स्थित थे राजा का सहायक शासक बना दिया गया था। वे सामन्तीय शासक हो गये जिससे कि वे समय-समय पर राजा को नजराना भेंट करते थे। उनमें से कुछ ने अपनी पुत्रियों का विवाह राजा के साथ उपहार के रूप में भी किया। वे स्वयं राजा के दरबार में उपस्थित होकर उसको प्रसन्न करने के लिए सम्मान व्यक्त करते। इसके बदले में राजा उनके अपने क्षेत्र में उनके शासन करने के अधिकार को मान्यता प्रदान करता और इसके लिये वह उनको राजपत्र भी देता। युद्ध के समय में ये सहायक शासक राजा की सेना में लड़ने के लिये अपने आदमियों को भेजकर उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते। इन सम्मानों तथा कृतज्ञताओं के बदले में सामन्तों को उनके अपने क्षेत्रों में उस प्रशासन को चलाने के लिए छोड़ दिया जाता। वास्तव में गुप्त साम्राज्य के केन्द्रीय भागों के प्रशासन का संचालन राजा के अधिकारियों के द्वारा किया जाता था।

पुजारियों और अधिकारियों को उनके निर्वाह के लिये भूमि-अनुदान दिये गये जिसके कारण विकेन्द्रीकरण विशेषताओं वाली राजनैतिक व्यवस्था का प्रचलन हुआ। सामान्यतः राजा भूमि-अनुदान ही नहीं प्रदान करता था बल्कि इसके साथ-साथ लोगों पर कर लगाने, अपराधियों को दण्ड आदि देने के अधिकारों को भी प्रदान करता। अनुदान में दिये गये क्षेत्रों को राजा की सेनाओं के प्रवेश से भी मुक्त कर दिया जाता। यह स्वाभाविक ही था कि इस प्रकार के अनुदान प्राप्त करने वाले राजा से लगभग स्वतन्त्र हो गये और वे स्वयं ही सामन्त बन गये। इसके फलस्वरूप हम देखते हैं कि सातवीं सदी ई. में इस प्रकार के अधिकारीगण महासामन्त जैसी भारी भरकम उपाधियां धारण करने लगे। एक सामन्त ने पांच शब्दों की एक विशेष उपाधि को धारण किया जिसको पंचमहाशब्द कहा गया। यद्यपि सामन्त तथा महासामन्त उपाधियों को धारण करने से उनकी स्वायत्तता की पुष्टि होती थी। राजनैतिक व्यवस्था में इन सब विशेषताओं के उत्पन्न हो जाने पर कुछ इतिहासकारों ने निष्कर्ष निकाला है कि गुप्त काल से जिस प्रकार की राजनैतिक व्यवस्था का जन्म हुआ वह सामन्तीय प्रकार की राजनैतिक व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करती थी।

38.7 कर प्रणाली

सरकार को अपना अधिकतम राजस्व कर प्रणाली के द्वारा प्राप्त होता था। भाग, भोग आदि नाम से पुकारे जाने वाले भूमि कर ही मुख्य कर थे और सदी दर सदी भूमि कर में वृद्धि होती रही। इस काल में व्यापार तथा वाणिज्य के पतन का कारण व्यापारिक करों की प्रमुखता नहीं पायी जाती। गाँवों के स्थानीय लोगों को घर एवं भोजन उपलब्ध कराके अनुग्रहीत किया जाता था। यह बात विचारणीय है कि जिन स्थानों पर पुजारियों और अधिकारियों को भूमि-अनुदान दिये गये उन स्थानों से सरकार को प्राप्त होने वाले राजस्व में काफी कमी आयी।

38.8 न्याय व्यवस्था

पहले की तुलना में इस समय न्याय व्यवस्था काफी विकसित हो गई थी। इस काल में ही विधि नियमों तथा

संहिताओं का संकलन हुआ और धर्मशास्त्रों में स्पष्ट रूप से वैधानिक मामलों पर लिखा गया।

उस समय में करण, अधकरण, धर्मासन आदि के नाम से अलग-अलग अदालतें थीं। दीवानी तथा फौजदारी मामलों में एक दूसरे से स्पष्ट विभाजन किया गया था। सम्पत्ति तथा उत्तराधिकार से संबंधित कानून स्पष्ट थे। परन्तु न्याय समाज के वर्ण विभाजन पर आधारित था। एक ही समान अपराध के लिये उच्च वर्ण से या उच्च जाति से संबंधित अपराधी को छोटे वर्ण या छोटी जाति से जुड़े अपराधी की अपेक्षा काफी कम दण्ड दिया जाता था। धर्मशास्त्रों में भी यह व्यवस्था की गई थी कि जब भी न्याय किया जाये तो उस समय विभिन्न श्रेणियों तथा जातियों की परम्पराओं और स्थानीय परिपाटियों को ध्यान में रखा जाए।

बोध प्रश्न 1

1) मौर्य राजनैतिक व्यवस्था एवं 300 ई. से 700 ई. तक की राजनैतिक व्यवस्था के बीच मुख्य भिन्नताओं का विवरण दीजिये।

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित कथनों पर चिह्न लगाकर बताइये कौन सा ठीक (√) या गलत (×) है:

i) सामन्त अपनी स्वयं की सेना को बनाकर रखते थे।

ii) भुक्ति सबसे छोटा प्रशासनिक विभाजन था।

iii) इस काल के दौरान राजा भारी भरकम उपाधियों को धारण करते थे।

iv) पल्लवों के पास नौसेना नहीं थी।

v) न्याय वर्ण विभाजनों पर आधारित था।

3) राजनीतिक व्यवस्था में सामन्तों के योगदान पर पांच पंक्तियाँ लिखिये।

....

....

....

....

....

38.9 सारांश

उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम 300 ई. से 700 ई. तक की प्रचलित राजनैतिक व्यवस्था की एक स्पष्ट सी रूपरेखा बना सकते हैं। परन्तु इसके बावजूद भी इस काल में भारत के सभी राज्यों में हम एक समान राजनैतिक व्यवस्था को नहीं देखते। परन्तु इन सब में कुछ समान विशेषताएं थीं। प्रशासनिक उद्देश्यों के लिए राज्य के क्षेत्र का एक स्थायी स्तर पर विभाजन किया जाना एक स्थायी सेना और एक राजस्व व्यवस्था या कर प्रणाली विशेषकर राज्य के केन्द्रीय भाग में लागू थीं। परन्तु जब इसकी तुलना मौर्य राजनैतिक व्यवस्था के साथ की जाती है तो हम देखते हैं कि इस काल में राजा की सरकार अपने सम्पूर्ण क्षेत्र पर उस प्रकार की प्रभावशाली शक्तियाँ तथा नियन्त्रण नहीं रखती थी।

केन्द्रीय भाग से बाहर वाले क्षेत्रों में सामन्त सरदारों के अपने प्रशासनिक नियम थे और वे राजा की शक्तियों को नाम मात्र की मान्यता प्रदान करते थे। परन्तु मौर्य सरकार के पास साम्राज्य के बड़े भाग में प्रत्येक सामाजिक तथा आर्थिक गतिविधियों पर नियन्त्रण करने के लिये काफी बड़ी संख्या में उच्च अधिकारी थे। लेकिन यह गुप्त साम्राज्य और दूसरे समकालीन राज्यों के विषय में सत्य नहीं था और वहाँ पर बहुत सी बातें

राज्य के नियन्त्रण से बाहर थीं। उदाहरण के लिए, मौर्य राज्य के अन्तर्गत दस्तकारी तथा व्यापारिक संगठनों (श्रेणियों) को सरकार के नियन्त्रण में रखा गया था परन्तु गुप्त काल में यह करीब-करीब स्वायत्त रूप से काम करते थे। जो नियम या कानून प्रत्येक श्रेणी से सम्बन्धित थे उनको भी गुप्त काल में मान्यता दी जाती थी। राजतन्त्र की शक्तियों में इस प्रकार के बिखराव ने सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में होने वाले व्यापक परिवर्तनों में काफी महत्वपूर्ण योगदान किया है। इस प्रकार के परिवर्तन सातवीं सदी ई. तथा इसके बाद के समय में होते रहे जिनको प्रो. आर.एस. शर्मा ने ''भारतीय सामन्तवाद'' का नाम दिया। जहाँ तक इस युग का संबंध है उसमें ये नवीन परिवर्तन शुरू हो रहे थे और वे बाद की शताब्दियों में ही निश्चित आकार ग्रहण कर सके।

38.10 शब्दावली

गण : एक कबीलाई गणतन्त्र को गण कहा जाता था जिसका शासन कबीले के सरदार द्वारा चलाया जाता था न कि राजा के द्वारा।

कुमारमात्य : उच्च अधिकारियों के सामान्य वर्ग को कुमारमात्य कहा जाता था।

सन्धिविग्रहिका : विदेशी मामलों, शांति एवं युद्ध का मन्त्री।

दैव्य अधिकार का सिद्धान्त : यह वह सिद्धान्त है जिसके अनुसार राजा को शासन करने की शक्ति ईश्वर से प्राप्त हुई है।

भुक्ति : उच्चतम प्रशासनिक विभाजन।

सामन्त : सामन्त सरदार।

भाग : भूमि कर।

सामन्तवाद : एक ऐसी सामाजिक आर्थिक एवं राजनैतिक व्यवस्था जिसके अन्तर्गत ज़मींदार तथा किसानों के सम्बन्ध भूमि पर आधारित होते हैं और जिसमें ज़मींदार का यह कर्तव्य है कि उसके भूमि क्षेत्र में रहने वाले लोगों की वह सुरक्षा के दायित्व का निर्वाह करे और इसके बदले में ये निवासी गण अपने ज़मींदार की आवश्यक समयों पर सैन्य सेवाओं की पूर्ति करते हैं।

38.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) पढ़िये भाग 38.2 और 38.9 तथा फिर अपना उत्तर दीजिये।

2) i) √ ii) × iii) √ iv) × v) √

3) देखिये भाग 38.6

इकाई 39 धर्म के क्षेत्र में परिवर्तन

इकाई की रूपरेखा

39.0 उद्देश्य

39.1 प्रस्तावना

39.2 ब्राह्मण मत में भक्ति का उद्भव

39.2.1 अवतारवाद

39.2.2 कबीलाई अनुष्ठानों को अपनाना

39.2.3 मंदिरों एवं ईश्वरवाद को राजकीय संरक्षण

39.3 दक्षिण भारत की ओर भक्ति का प्रसार

39.4 दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन

39.5 दक्षिण भारत के भक्ति आंदोलन में प्रतिरोध एवं सुधार और भक्ति आंदोलन का बाद में रूपान्तरण

39.6 तन्त्रवाद की उत्पत्ति

39.6.1 तन्त्रवाद की कुछ मुख्य विशेषताएं

39.6.2 तन्त्रवाद तथा वाममार्गी धर्म

39.7 सारांश

39.8 शब्दावली

39.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

39.0 उद्देश्य

इस इकाई का लक्ष्य है कि प्रारम्भिक मध्य काल में धर्म के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों की मुख्य विशेषताओं का विवेचन करते हुए भक्ति विचारधारा तथा तन्त्रवाद के रूप पर भी ध्यान केन्द्रित करना। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपको ज्ञात हो जायेगा :

- ब्राह्मणिक धार्मिक व्यवस्था में भक्ति की उत्पत्तियों के विषय में,
- उत्तर-ब्राह्मणिक मत की विशेषता के चरित्र एवं सामाजिक प्रसंग के विषय में,
- प्रारंभिक मध्य काल में भक्ति के चरित्र तथा सामाजिक प्रसंग में परिवर्तन कैसे हुआ,
- राज्य की मदद ने कैसे भक्ति सम्प्रदायों को संस्थात्मक आधार प्रदान किये,
- प्रारंभिक मध्य काल में तन्त्रवाद की उत्पत्ति तथा योगदान एवं इसके चरित्र के विषय में, और
- बौद्ध मत तथा जैन मत में तन्त्रवाद ने कैसे घुसपैठ की।

39.1 प्रस्तावना

प्रारंभिक भारत के धार्मिक इतिहास के विभिन्न चरणों से आप भली भांति अवगत हैं। पुरातात्विक सामाग्रियों से स्पष्ट है कि भारतीय धर्मो के कुछ निश्चित तत्व पुरातात्विक संस्कृतियों में निहित थे जो वेदों के पूर्वगामी थे। ऋग्वेद के श्लोकों से स्पष्ट है कि देवताओं को प्रसन्न करने के लिये किस प्रकार से अर्चना की जाती थी। समय के साथ-साथ ऋग्वेद की सरल प्रार्थनायें जटिल अनुष्ठानों में परिवर्तित हो गईं जिन पर ब्राह्मणों का प्रभुत्व कायम हो गया और इस स्थिति में ब्राह्मणों, शासकों तथा क्षत्रियों के बीच बढ़ते घनिष्ठ सम्बन्धों को कोई भी देख सकता है। न केवल उन घुमक्कड़ नास्तिक लोगों ने जो स्थापित समाज से दूर भागते थे बल्कि बौद्ध तथा जैन धर्मो के मतावलम्बियों ने ब्राह्मणों तथा उस कठोर समाज और नैतिक व्यवस्था का विरोध किया जिसकी ब्राह्मण वकालत करते थे। इस प्रकार इस समय में ब्राह्मण धर्म विरोधी आंदोलनों का उदय हुआ (वाममार्गी या गैर सनातनी धार्मिक आन्दोलन) जिनको न केवल शासक वर्ग ने समर्थन दिया बल्कि धनी व्यापारियों तथा जनता के अनेक वर्गों से इनको समर्थन मिला। पूर्व-गुप्त काल में बौद्ध धर्म अपनी प्रगति की चरम ऊँचाइयों पर पहुँच गया, भारत की सीमाओं से बाहर इसका प्रसार हुआ और बौद्ध धर्म के केन्द्रों का व्यापक स्तर पर निर्माण हुआ। इसी बीच ब्राह्मण धर्म में भी अनेक परिवर्तन हुए और इसी के

साथ-साथ वाममार्गी सम्प्रदायों में भी परिवर्तन हुए। धार्मिक दृष्टिकोण से होने वाले ये परिवर्तन इसलिए भी महत्वपूर्ण थे कि उपासना करने वाले के द्वारा उपासक को सर्वोच्च ईश्वर माना गया और इस प्रकार सर्वोच्च ईश्वर की उपासना एक आकार के रूप में होने लगी। वैष्णव मत तथा शैव मत ब्राह्मण धर्म के ही भाग थे और इन्होंने काफी अनुयायी आकर्षित किये इस प्रकार मूर्ति पूजा बौद्ध धर्म में भी काफी लोकप्रिय हो गई जिसके अर्न्तगत न केवल महात्मा बुद्ध या बोधिसत्व की मूर्ति की पूजा होने लगी बल्कि बौद्ध धर्म के अनेक देवताओं को पूजा जाने लगा। जैन धर्म के अन्दर भी तीर्थकरों के आकार, बहुत छोटे देवताओं, पत्थर के आकारों और अन्य प्रतीकों की भी पूजा होने लगी।

ब्राह्मणों ने मूर्ति पूजा का उपयोग विभिन्न स्रोतों से देवी-देवताओं को एकत्रित करके सामान्य पूजनीय योग्य देवताओं को निर्मित करने के लिए किया। इसी कारणवश गुप्त काल से ब्राह्मण धर्म में स्त्री देवताओं (शक्ति, देवियों) का महत्वपूर्ण स्थान हो गया। परन्तु इसके बावजूद भी ब्राह्मण धर्म में एकरूपता नहीं थी। और धर्मों की पूजा-अर्चना तथा विश्वासों में व्यापक विभिन्नतायें थीं। शैव मत के विभिन्न सम्प्रदाय जैसे पाशुपत कोला-कापालिक, कालमुख ब्राह्मणों के प्रभुत्व का विरोध करते थे। मठों के आस-पास उनकी अपनी धार्मिक व्यवस्था थी और उनको भी बहुत से राजवंशों से सहायता प्राप्त होती थी। इसी के साथ-साथ ब्राह्मणों को भी राजवंशों से सहायता प्राप्त होती थी और वे अब भी वेदों के ज्ञान के जानने वाले थे तथा वेद-यज्ञों को सम्पन्न करते। ब्राह्मणों की अग्रहार बस्तियां ब्राह्मणिक विचारों का सम्पूर्ण देश में प्रसार तथा व्यवहार करने वाली मुख्य सम्पर्क केन्द्र बन गई। इस युग में मंदिर ऐसे संस्थानों के रूप में बदल गये जहाँ पर लोग सामूहिक रूप से एकत्रित होते तथा जहाँ से ब्राह्मणिक विचारों का प्रसार भी प्रभावशाली ढंग से होने लगा।

भारत की प्रारम्भिक मध्य काल की इस जटिल धार्मिक स्थिति में यद्यपि ब्राह्मणों ने प्रमुखता प्राप्त कर ली थी परन्तु इस सन्दर्भ में हमको निम्नलिखित बातों का भी ध्यान रखना चाहिये

1) रूढ़िवादी ब्राह्मणिक व्यवस्था को शैव मत के आन्तरिक आंदोलन के साथ-साथ कवि सन्तों एवं तान्त्रिक पूजा करने वालों से चुनौतियां मिलती रहीं,

2) सभी धर्मों ने चाहे ब्राह्मण धर्म हो या फिर बौद्ध मत या शैव मत मंदिरों एवं मठों के रूप में अपना संस्थानात्मक आधार विकसित किया।

3) समाज के शासक एवं सम्पन्न वर्गों ने ब्राह्मणों, भिक्षुओं, धार्मिक मठाधीशों, संस्थाओं और दूसरों की सहायता भूमि-अनुदानों, धन तथा अन्य साधनों से की। संरक्षण देने वाले इन कार्यों के माध्यम से समाज के शासक तथा प्रभुत्व सम्पन्न वर्गों ने अपना स्वयं का सामाजिक आधार मजबूत किया।

इस इकाई में इन्हीं बहुत से पक्षों का विवरण किया गया है।

39.2 ब्राह्मण मत में भक्ति का उद्‌भव

ब्राह्मणों को वैदिक देवताओं इन्द्र एवं वरुण के साथ-साथ नये देवताओं विष्णु एवं शिव के बढ़ते महत्व को स्वीकार करना पड़ा। इस धारा में वासुदेव, स्कन्द जैसे नये देवताओं का भी समावेश हो गया। इन सभी कारणों वश भक्ति सम्प्रदाय का उदय हुआ।

चौथी सदी ई.पू. के आस-पास वासुदेव सम्प्रदाय लोकप्रिय होने लगा था। चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में आने वाले मैगस्थनीज की भांति क्लासिकल लेखकों ने इस विषय में सन्दर्भों का उल्लेख किया है।

वासुदेव के पुजारियों ने उचित धार्मिक साध्य के रूप में भक्ति को स्वीकार किया और स्वयं को भागवत कहने लगे। ईसा की प्रारम्भिक सदियों के प्राप्त अभिलेखों से स्पष्ट है कि मध्य भारत तथा दक्कन में वासुदेव सम्प्रदाय काफी लोकप्रिय था। वासुदेव सम्प्रदाय के साथ ही साथ पशुपतियों के मन्य, पशुपति या शिव के अनुयाइयों का प्रसार हुआ जो शिव की पूजा पैदावार के देवता के रूप में करते थे। पशुपत सम्प्रदाय का प्रचलन ब्राह्मणवाद विरोधी समुदायों में हड़प्पा संस्कृति के समय से ही था।

शुण तथा कुषाण शासकों के युगों में इन देवताओं की लोकप्रियता में और वृद्धि हुई। शुंग काल में जीवित रहने वाले पतांज्जलि ने अपने महाभाष्य में शिव, स्कन्द तथा विशाध की मूर्तियों की बिक्री एवं प्रदर्शनी का उल्लेख किया है। इन देवताओं के चित्रों को कुषाण राजाओं में विशेषकर दृविष्का के सिक्कों पर चित्रित किया गया है। उत्तर-ब्राह्मणिक मत में अन्य धर्मों या सम्प्रदायों की परम्पराओं को अपने अन्दर ग्रहण करने की क्षमता का विकास हो गया। यह इसलिये भी आवश्यक हो गया कि ''वाममार्गी सम्प्रदायों'' ने ब्राह्मण धर्म

को चुनौतियां देना प्रारम्भ कर दिया था। ब्राह्मण धर्म ने अन्य नये देवताओं को अपनाने के साथ-साथ वैदिक अनुष्ठान के स्थान पर भक्ति पर अपना बल देना शुरू कर दिया। भक्ति में यह अन्तर्निहित था कि उपासक ईश्वर के साथ अपना प्रत्यक्ष संबंध कायम कर सकता था। इस प्रकार ईश्वर के एकेश्वरवाद की अवधारणा विष्णु या शिव के रूप में अभिव्यक्त हुई और भक्ति शनैः-शनैः मजबूत होने लगी। भक्ति उत्तर-ब्राह्मण धर्म की एक गतिशील शक्ति बन गई जिसको हिंदूवाद के नाम से जाना गया।

39.2.1 अवतारवाद

नये ब्राह्मण धर्म की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इसने अनेक स्थानीय देवताओं को अवतार का रूप देना शुरू कर दिया और जिसके कारणवश एकेश्वरवादी या अद्वैतवादी महान ईश्वर की अवधारणा का विकास हुआ। इस सन्दर्भ में अवतारवाद का तात्पर्य यह था कि जिन विभिन्न देवताओं की पूजा विभिन्न लोगों के द्वारा की जाती थी उनकी पहचान को मान्यता प्रदान की गई और उनकी पूजा उसी सर्वोच्च देवता की अभिव्यक्ति के रूप में की गई। इस प्रकार वासुदेव को विष्णु रूप में बताया गया। विष्णु वेदों में वर्णित कम महत्व के देवता के समान थे और ब्राह्मणिक ग्रंथों के अनुसार जिनकी उत्पत्ति किसी अन्धकारमय या मलिन वस्तु से हुई। बाद में विष्णु का नाम कृष्ण के साथ घनिष्ठ रूप से संबंधित हो गया। कृष्ण एक योद्धा तथा ग्वाले के रूप में बांसुरी बजाने वाले देवता के संयुक्त रूप का प्रतिनिधित्व करते थे। विष्णु के साथ अन्य सम्प्रदायों के देवताओं को भी संबंधित कर दिया गया। जैसे कि "वराह देवता" को जो मालवा के एक कबीले का देवता था, ब्राह्मण नायक परशुराम और रामायण के महान नायक राम को भी विष्णु के साथ संबंधित कर दिया गया। इसके बाद विष्णु भगवद् गीता वाले सार्वभौमिक ईश्वर हो गये।

इसी भांति शिव को भी वैदिक इन्द्र तथा भैरव के रूप में मान लिया गया। शिव एक कबीलाई ईश्वर थे और उनकी लिंग के रूप में पूजा होने लगी। बाद में शिव के साथ स्कन्द तथा हाथी-मुख वाले गणेश जैसे देवताओं को सम्बन्धित कर दिया गया। आस्तिक सम्प्रदायों ने वैदिक यज्ञों की अपेक्षा पूजा पर अधिक बल दिया।

39.2.2 कबीलाई अनुष्ठानों को अपनाना

उत्तर-ब्राह्मण धर्म की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इसने सिद्धांतः वैदिक याज्ञिक अनुष्ठानों की सर्वोच्चता को बनाये रखते हुए कबीलाई अनुष्ठानों को अपना लिया। समय के साथ-साथ इन कबीलाई अनुष्ठानों के गुणों की तुलना वैदिक यज्ञों से की जाने लगी। आगे चलकर कबीले के पवित्र स्थलों को नये तीर्थस्थलों के रूप में कुछ कपोल कल्पनाओं के साथ ससम्मान स्वीकार कर लिया गया। इतिहास तथा पुराण ऐसी बहुत सी कहानियों से भरपूर हैं जिन्होंने व्यक्तिगत ईश्वर की ओर भक्ति को प्रेरित किया।

39.2.3 मंदिरों एवं ईश्वरवाद को राजकीय संरक्षण

पुराणों में मथुरा तथा बनारस जैसे महान धार्मिक केन्द्रों की धार्मिक यात्रा के पुण्यों पर प्रकाश डाला गया है और ये नगर महत्वपूर्ण तीर्थस्थल थे। इसके कारण मंदिर संस्था को विशेष बढ़ावा मिला। वास्तव में उस काल के पुराणों तथा अन्य ग्रंथों में ऐसे बहुत से तीर्थस्थानों के नाम दिये गये हैं जिनकी यात्रा भक्त लोग काफी बड़ी संख्या में करते थे क्योंकि इन तीर्थों पर जाने से पुण्य की प्राप्ति होती थी। मंदिर जो देवता का घर है, पूजा के स्थल बन गये और उपासना करने वाले लोग अपने घरों का परित्याग करके ऐसे स्थल की ओर पूजा करने के लिये आते थे जो सार्वजनिक केन्द्र हो गये थे। गुप्त काल में मंदिर स्थापत्यकला की जटिल शैली की नींव पड़ी। देवगढ़ का दसावतार मंदिर, तिगाव का विष्णु मंदिर और भूमरा का शिव मंदिर गुप्त काल के ऐसे मंदिर हैं जो आज भी मौजूद हैं और अपनी सुन्दरता के लिये प्रसिद्ध हैं। मंदिरों में उनके स्थापत्य में महाकाव्यों और पुराणों में राम तथा कृष्ण से संबंधित वर्णित कहानियों के अति सुन्दर नमूने पाये गये हैं। गुप्त राजाओं ने वैष्णव तथा शैव दोनों मतों को संरक्षण प्रदान किया। गुप्त शासकों का व्यक्तिगत धर्म वैष्णव धर्म था जिसके फलस्वरूप गुप्त काल में वैष्णव धर्म के अनेक केन्द्रों तथा मूर्ति कलाओं का भरपूर विकास हुआ। विष्णु के अवतारवाद का या यों कहें कि वराह एक मछली मानव को संकट से उभारने के लिये विष्णु का भूमि पर अवतारवाद के रूप में जन्म लेने की परम्परा का व्यवस्थित ढंग से प्रचलन गुप्त काल में ही प्रारम्भ हुआ।

छठी तथा सातवीं सदियों में वैष्णव धर्म का स्थान शैव धर्म ने ग्रहण कर लिया क्योंकि उत्तरी भारत में उसी राज्य का संरक्षण प्राप्त हुआ। शैव मत के अनुयायी उच्चतम शासकों से लेकर विदेशियों तथा भारतीयों तक के सभी वर्गों में थे। राजाओं में उसके अनुयायी मिहिरकुल, यशोवर्मन, शंशाक और हर्ष थे। पाशुपत या शैव

आचार्यों को समकालीन साहित्य में पर्याप्त मात्रा में उद्धत किया गया है। और इस साहित्य के अन्तर्गत अभिलेख, वराहमिहिर, बाण और ह्वेन-त्सांग की रचनायें भी सम्मिलित हैं।

39.3 दक्षिण भारत की ओर भक्ति का प्रसार

उत्तर भारत के सभी बड़े धर्मों जैसे कि बौद्ध धर्म, जैन धर्म और ब्राह्मण धर्म का प्रसार दक्षिण की ओर हुआ। ब्राह्मण धर्म के साथ-साथ दक्षिण के लोग वैदिक यज्ञों तथा गैर सनातनी सम्प्रदायों विष्णु मत और शैव मत के सम्पर्क में भी आये। राजाओं ने वैदिक अनुष्ठानों का इसलिये समर्थन किया क्योंकि ये अनुष्ठान उनकी स्थिति को मान्यता प्रदान करते थे। परन्तु ये वाममार्गी सम्प्रदाय सामान्य जनता के मध्य लोकप्रिय हो गये। परन्तु दक्षिण भारत में अकस्मात् ही भक्ति वाले ये दोनों वाममार्गी सम्प्रदाय अन्य किसी धर्म से अधिक शक्तिशाली हो गये और इस तथ्य की पुष्टि इससे भी होती है कि वैष्णव मत तथा शैव मत और उनके अन्य सम्प्रदायों को राजवंशों ने संरक्षण प्रदान किया। वतापि के प्रारम्भिक चालुक्य शासकों के मध्य कुछ भागवत मत तथा कुछ ने पशुपत सम्प्रदाय को प्रचारित किया। बादामी के प्रसिद्ध पत्थर स्तम्भों पर बने चित्र, दक्कन में छठी-सातवीं ई. सदियों में गैर सनातनी सम्प्रदायों (वाममार्गी सम्प्रदायों) की लोकप्रियता के प्रतीक हैं। इसी प्रकार कांची के पल्लव शासकों ने इन दोनों वाममार्गी सम्प्रदायों को संरक्षण प्रदान किया और इसकी पुष्टि महाबलिपुरम के एक ही पत्थर शिला पर बने रथों तथा उन पर बने बहुत से चित्रों के द्वारा होती है।

दक्षिण भारत में कुछ विशेष देवताओं की पूजा के इर्द गिर्द भक्ति के केन्द्रीकरण का प्रसार बड़ी तीव्रता से प्रारम्भ हुआ और इसका प्रसार ब्राह्मणों की बस्तियों तथा उन मंदिरों के माध्यम से भी हुआ जहाँ पर भूमि-अनुदानों की दानशीलता के साधनों से महाकाव्यों तथा पुराणों की व्याख्याओं को संस्थात्मक किया गया। इस प्रकार भक्ति की अवधारणा आम जनता के बीच लोकप्रिय हो गई। इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि ब्राह्मणों ने जिस प्रकार से उत्तर भारत में प्रारम्भिक धार्मिक रूपों का रूपान्तरण मंदिर को केन्द्र बनाकर वाममार्गी संस्कृति में किया उसी प्रक्रिया को पुनः दक्षिण में भी दोहराया गया।

39.4 दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन

भक्ति वाममार्ग का अन्तिम स्वरूप मुख्यतः तमिल उपासनावाद के प्रभाव का परिणाम था। यह उपासनावाद स्थानीय कबीलाई सम्प्रदायों (वेलान वेरिपादल) के परमानन्द तथा उत्तर वाममार्गी विचारों के संगम की उपज था। यह पारस्परिक सम्मिश्रण तिरुपति तथा कलाहस्ति में प्रारम्भ हुआ जिससे उस समय के तमिल देश का उत्तरी द्वार बनता था। फिर इसका विकास कांचीपुरम के आसपास हुआ जो उस समय पल्लव शासकों की राजधानी होती थी तथा शीघ्र ही यह पांडेय राजधानी मदुरई में पहुँच गया। **विरु मरुगन अरुप्पादई मुरुगन** देवता पर लिखा गया एक प्रसिद्ध उपासना वाला ग्रंथ है और इसमें स्थानीय कबीलाई देवता मुरुगन को स्कन्द का अवतार बताया गया है तथा पारस्परिक प्रजनन का सबसे पहला उदाहरण है।

शीघ्र ही तमिल उपासनावाद एक आंदोलन के रूप में उस समय विकसित हो गया जब इसने वैष्णव मत तथा शैव मत के दोनों वाममार्गी सम्प्रदायों को स्वीकार कर लिया। तब भक्ति आंदोलन देवता की पूजा करके गहन परमानन्द प्राप्त करने वाला न होकर वह उन वाममार्गी सम्प्रदायों के विरुद्ध एक आक्रामक आवेग हो गया जो राजकीय समर्थन के साथ जनता में लोकप्रिय होते जा रहे थे।

इस आंदोलन का प्रसार छठी सदी ई. में उन जन्मजात कवि सन्तों द्वारा किया गया जिन्होंने धर्म प्रचार के लिये कई बार देश का भ्रमण किया। वे अपने सारे रास्ते गीतों को गाते चलते, नाच करते और वाममार्गी सम्प्रदायों के साथ वाद विवाद करते। इन कवि सन्तों में शैव मत के अनुयाइयों को "नयनारो" के नाम से तथा वैष्णव सन्तों को "आलावरो" के नाम से जाना जाता था।

इस महान उत्साहवर्धक धार्मिक धारा का चरमोत्कर्ष प्रारम्भिक सातवीं सदी ई. में हुआ और इसकी अन्तिम विजय आगामी दो सदियों में हुई। इस काल के गायक कवि सन्तों की मुख्य विशेषता यह थी कि वे बौद्ध मत तथा जैन मत के विरुद्ध घृणात्मक तरीके से बोलते थे। इसके परिणाम-स्वरूप सार्वजनिक वाद विवाद, आश्चर्यजनक कार्यों को करने की प्रतियोगिता और अपने सिद्धान्तों की सत्यता को सिद्ध करने के लिए कठिन से कठिन परीक्षा को अपनाना दिन प्रतिदिन के कार्य हो गये। इन गायक सन्तों की सफलता का एक अन्य कारण भी था। इन गायक सन्तों ने जन साधारण की भाषा तमिल में सरलता से समझ में आ जाने वाले तरीकों से अपनी रचनाओं को गाया। उन ब्राह्मणों की भांति नहीं जो गोपनीय सिद्धान्तों तथा संस्कृत भाषा के माध्यम से हिन्दू धर्म का प्रचार करते थे। भक्ति की अवधारणा के अनुसार श्रेष्ठतम देवता के लिये

कोई विशेष सम्मान न करके अपितु उसके प्रति असीम प्रेम भाव को प्रकट करना था। भक्ति आन्दोलन की इस शक्तिशाली धारा को राज्य का भी समर्थन मिला जिसके कारण जैन तथा बौद्ध मत इसका सामना न कर सके और दक्षिण भारत में ये दोनों धर्म मृतप्रायः हो गये।

39.5 दक्षिण भारत के भक्ति आंदोलन में प्रतिरोध एवं सुधार और भक्ति आंदोलन का बाद में रूपान्तरण

जहाँ एक ओर ब्राह्मण जातिवादी नियमों का अनुसरण करते थे वहाँ भक्ति सम्प्रदाय ने न केवल जाति की अवेहलना की बल्कि उन्होंने अपने सम्प्रदाय में सभी जातियों के पुरुषों और स्त्रियों को सम्मिलित किया। नयनारों में अम्माई एक महिला तथा नंदनार एक छोटी जाति का सदस्य था। आलवरों में अन्दाल एक महिला थी और निरुप्पन छोटी जाति का था जो भक्ति गीतों को गाता था। इस प्रकार सम्पूर्ण भक्ति आंदोलन के अन्तर्गत विरोध एवं सुधार के तत्व मौजूद थे। परन्तु शीघ्र ही यह स्थापित व्यवस्था का एक अंग बन गया तथा इसको भी रूढ़िवादी ब्राह्मणों का संरक्षण प्राप्त हो गया।

भक्ति आंदोलन का विकास तथा संगठन प्रारंभिक मध्यकाल के राजतन्त्रों की भांति पहले पल्लवों एवं फिर चोल, पाण्डेय और चेरों के अधीन हुआ। पत्थर की चट्टानों से काटकर बनाए गए मंदिर और स्थापत्य कला के प्रतीक सुन्दर मंदिरों का निर्माण विष्णु एवं शिव के लिये सम्पूर्ण तमिलनाडु में उपरोक्त राजतन्त्रों के शासन काल में हुआ। इन मन्दिरों के लिये भूमि अनुदानों में प्राप्त हुई तथा कभी-कभी कर मुक्त विशाल भूमि भी थी। दक्षिण भारतीय मंदिरों की दीवारों पर खुदे हजारों दान अभिलेखों से स्पष्ट है कि ब्राह्मणों को भूमि का विशाल क्षेत्र अनुदान में प्रदान किया गया। शीघ्र ही पुरोहित और राजा की एक धुरी कायम हो गई। राजाओं ने मंदिरों पर केन्द्रित भक्ति अवधारणा का स्वागत किया क्योंकि यह राजतन्त्र की विचारधारा के अनुकूल थी। ब्राह्मणों ने इसका स्वागत इसलिये किया क्योंकि ब्राह्मण मत को मंदिर केन्द्रीकृत कृषि बस्तियों के रूप में संस्थात्मक आधार प्राप्त हो गया जिसके फलस्वरूप उसका दक्षिण में उत्थान एक गतिशील शक्ति के रूप में हुआ।

सभी जगहों पर मंदिर धार्मिक जीवन तथा नये सामाजिक निर्माण के मुख्य केन्द्र थे। ये मंदिर ब्राह्मणिक व्यवस्था की दो भुजाओं अर्थात् वैदिक अनुष्ठानिक सम्प्रदाय तथा अनीश्वरवादी सम्प्रदायों के मिलन बिन्दु के केन्द्र बन गये। मंदिर केन्द्रित भक्ति सम्प्रदाय की अवधारणा के कारण दक्षिण भारत के पुराने कबीले जाति व्यवस्था को स्वीकार करने की ओर आकर्षित हुए और जिससे उन्होंने पदानुक्रम जाति व्यवस्था को अंगीकार कर लिया। इस व्यवस्था ने कबीलों के लिये अनुष्ठानों तथा सामाजिक स्तरों को ब्राह्मणों के द्वारा निश्चित किये गये नियमों के अनुरूप ही निश्चित कर दिया। भक्ति की विचारधारा के माध्यम से राजाओं, पुरोहितों तथा आम जनता को आपसी सौहार्दपूर्ण सामाजिक संबंधों के ढांचे के अन्तर्गत एक साथ लाया जा सका।

राजाओं तथा ज़मींदारों के बढ़ते संरक्षण के कारण शीघ्र ही भक्ति आंदोलन व्यवस्था का एक अंग बन गया। दसवीं सदी ई. में सभी प्रकार के धार्मिक मतभेदों, विरोध तथा सुधार को समाप्त कर दिया गया। आलवर तथा नयनार अब कहीं दिखायी नहीं पड़ते थे। उनका स्थान वैष्णव आचार्यों ने ले लिया जो सभी ब्राह्मण थे या फिर शैववादी सनातनाचार्य के जो धनी भूस्वामी ललाल जाति से आये थे।

बोध प्रश्न 1

1) मंदिरों को दी जाने वाली राजकीय सहायता के विषय में पांच पंक्तियों में विवरण दीजिये।

....

....

....

....

....

2) किस प्रकार से दक्षिण में भक्ति आंदोलन ब्राह्मण धर्म से भिन्न हैं? 10 पंक्तियों में उत्तर दीजिये।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

39.6 तन्त्रवाद की उत्पत्ति

ऐसी धार्मिक क्रियायें जिनकी उत्पत्ति गैर आर्य कबीलाई लोगों के अति प्राचीन प्रजनन संस्कारों से हुई थी उनको बाद में चलकर तन्त्रवाद के नाम से जाना गया। इसने न केवल अन्य ''साम्य'' सम्प्रदायों (जैन मत, बौद्ध मत, शैव मत, वैष्णव मत आदि) को प्रभावित किया बल्कि इसका उद्भव उन सम्प्रदायों के लिये चुनौती एवं प्रतिक्रिया के रूप में हुआ जिनके अन्तर्गत निहित स्वार्थ उत्पन्न हो गये थे और जो प्रारम्भिक मध्यकाल के आते आते व्यवस्था का एक अंग बन गये। स्थापित धर्म की रीतियों ने तान्त्रिक धर्म को संशोधित किया और रहस्यमयी परिभाषाओं तथा प्रतीकों के माध्यम से इनको शुद्ध करने के प्रयास किये। इसलिये आधुनिक शिक्षितवर्ग के लिये तन्त्रवाद का तात्पर्य है कि आवेषपूर्ण संस्कारों को प्राप्त करने के लिये पांच मकरों—मद्य(शराब), मत्स्य (मछली), मांस, मुद्रा (हाव भाव) और मैथुन का उपयोग करना आवश्यक माना गया।

39.6.1 तन्त्रवाद की कुछ मुख्य विशेषतायें

सदैव जन मानस के बीच एक ऐसा छोटा समुदाय रहता है जिनके लिये रहस्यवाद, प्रजनन के संस्कारों और रहस्मयी कबीलाई सम्प्रदाय अनिवार्य दिखायी पड़ते हैं। ऐसे लोग जो औपचारिक सम्य धर्म से असन्तुष्ट थे वे युगों से इन रहस्यमयी संस्कारों से लगातार कुछ न कुछ जानकारी प्राप्त करते रहे और उनको अपनाते रहे।

प्रारंभिक मध्यकाल की तान्त्रिक क्रियाओं में हम देखते हैं कि उसकी तीन महत्वपूर्ण विशेषतायें एक दूसरे से आंतरिक रूप से संबंधित थीं। ये तीनों विशेषतायें थीं महिलाओं को ऊच्च स्थान प्रदान किया गया, यौन सम्बंधित अनुष्ठान और कई महिला देवताओं (देवियों) की उपस्थिति।

इन सबकी उत्पत्ति का कारण कबीलाई प्रजनन संस्कारों को बताया गया है। सभी कबीलाई क्षेत्रों में महिलाओं को उच्च स्थान प्राप्त था। जिस समय से उनको संस्कृत के ग्रंथों में शूद्रों की श्रेणी में रखा जाने लगा तब से अपना परम्परागत अनुष्ठानिक स्तर बनाये रखने के लिये यह आवश्यक हो गया कि वे तान्त्रिक क्रियाओं के साधनों को अपनायें।

इसी प्रकार भारत तथा भारत से बाहर आदिम लोगों के बीच उनके धार्मिक संस्कारों को निर्मित करने में यौन संस्कारों की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। कबीलाई लोगों द्वारा यह विश्वास किया जाता था कि इस प्रकार के सस्कारों से भूमि की उर्वराता में भी वृद्धि होती है।

तन्त्रवाद में देवियों या देवी माता का महत्व इस कारण से था कि सभी कबीलाई क्षेत्रों में देवी शक्ति या देवी माता के सम्प्रदाय का लोकप्रिय प्रचलन था। इन कबीलाई देवियों का प्रवेश ब्राह्मण धर्म में शक्ति के रूप में, बौद्ध धर्म में तारा तथा जैन धर्म में बहु संख्यक यक्षिणियों के रूप में हुआ। प्रारम्भिक मध्यकाल का प्राकृत भाषा का ग्रंथ गौड़वद्य काली एवं पारवती देवियों से उसी प्रकार सम्बन्धित हैं जैसे कि वे कोल एवं सुपारा कबीलों, शक्ति मातंगल (मातंग कबिले की देवी) और चाण्डपलि (चण्डाल कबीले की देवी) देवियों को जादू वाले संस्कारों, धार्मिक यौवनता और पशुबलि की एक नयी रीति के साथ उच्च सम्प्रदायों में शामिल कर लिया गया। प्रारम्भिक मध्य काल में इन सबका बहुत महत्व बढ़ गया। तन्त्रवाद का एक धर्म के रूप में उदय छठी सदी ई. में हुआ और नौवीं सदी में एक ताकतवर शक्ति बन गया।

इस वास्तविकता के बावजूद कि प्रारंभिक मध्यकाल में तन्त्रवाद अपने मूल चरित्र को खो चुका था और इसे भी राजाओं, अधिकारियों और उन उच्च वर्गों के द्वारा जिन्होंने इसका संस्कृतिकरण किया, ने संरक्षण प्रदान किया परन्तु फिर भी तन्त्रवाद संगठित एवं औपचारिक संरक्षण प्राप्त, ब्राह्मण धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म के लिये एक चुनौती बना रहा।

तन्त्रवाद के पुरोहितों ने ब्राह्मण धर्म के दीक्षा वाले संस्कारों को भी चुनौती दी। अगर ब्राह्मणों ने अपनी सर्वोच्चता का दावा वैदिक अनुष्ठानों के आधार पर किया तो कबीलाई पुरोहितों ने अपनी जादुई शक्तियों का दावा अपने रहस्यवादी अनुष्ठानों तथा यौवन योग क्रियाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया। इस प्रकार तन्त्रवाद ने, उन छोटी जातियों और महिलाओं को दीक्षा प्रदान करके जिनको ब्राह्मणिक व्यवस्था ने समाज में निम्न स्थान प्रदान किया था, महत्वपूर्ण सामाजिक लक्ष्य की सेवा की।

तांत्रिक पुरोहितों ने अनेक अनुष्ठानों पर अपने स्वामित्व का दावा किया, जैसे कि वे गूढ़ क्रियाओं और जड़ी बूटियों से न केवल सांप के काटने, कीड़ों मकोंड़ों के काटने और अन्य बीमारियों का इलाज करते थे बल्कि उन्होंने भूत प्रेतों एवं ग्रहों के बुरे प्रभावों को भी दूर करने वाले अनुष्ठानों को सम्पन्न करने का काम किया। इस प्रकार प्रारंभिक मध्यकाल के तान्त्रिक पुरोहितों ने एक पुरोहित, चिकित्सक, ज्योतिषि एवं पशमन (ओझा) का कार्य किया।

39.6.2 तन्त्रवाद तथा वाममार्गी धर्म

यह देखा गया कि आदिम प्रजनन्न संस्कार परिष्कृत रूप में पुनः प्रकट हुए, जैसे कि तन्त्रवाद ने बौद्ध मत, जैन मत एवं ब्राह्मणिक विचारधारा में भी प्रवेश किया। बुद्ध एवं महावीर के समकालीन मक्षालि घोसाल ने न केवल नग्नता को ग्रहण किया अपितु ऐसा कहा जाता है कि वे शराब का सेवन करते और कामोत्तेजना के लिये यौन क्रियाओं को भी करते। इन क्रियाओं की उत्पत्ति निश्चित रूप से आदिम सम्प्रदायों से हुई थी।

प्रारंभिक बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म ने इन तान्त्रिक क्रियाओं के प्रभाव को अपने सम्प्रदायों पर पड़ने से रोकने के लिए भरसक प्रयास किया। बौद्ध मत तथा जैन मत ने अपने इतिहास के प्रारंभिक दौर में मूर्ति पूजा के सम्प्रदाय नैतिक मूल्यों को नष्ट करने वाले अनुष्ठानों तथा बलि यज्ञों के विरुद्ध व्यवस्थित ढंग से अभियान चलाया। उन्होंने आत्मा की पवित्रता पर बल दिया क्योंकि इसी से निर्वाण या मुक्ति प्राप्त की जा सकती थी।

कुषाण काल के दौरान बौद्ध धर्म की एक शाखा महायान मत ने मूर्ति पूजा को ग्रहण कर लिया। महायान मत ने स्वयं को मन्त्रवाले मत या आंध्र प्रदेश के क्षेत्रों में तान्त्रिक प्रक्रियाओं को धारण करते हुए वज़यान मत के रूप में विकसित कर लिया। आन्ध्र तथा कलिंग प्रदेशों में तीसरी सदी ई. में लिखे जाने वाले अनेक तान्त्रिक ग्रंथों ने वंगा तथा मगध में तन्त्रवाद का प्रसार किया और पाल शासकों के शासन काल में मगध क्षेत्र नालन्दा का तान्त्रिक अध्ययन केन्द्र के रूप में विकास हुआ। श्री गुहयासमाज तन्त्र को सम्भवतः तीसरी सदी ई. में लिखा गया। वज्रयान तान्त्रिक साहित्य इतना विशाल है कि तिब्बत भाषा में जो साहित्य पाया गया है उसकी नाममात्र की सारिणी तीन खण्डों में संकलित की गई है।

ईसा की प्रारंभिक सदियों में जैन धर्म में भी मूर्ति पूजा एवं अनुष्ठानों की रीति प्रकट होने लगी। सामन्तभद्र (तीसरी सदी ई.) ने अपनी रचना पोपाकेरिया में अनुष्ठानों तथा मंदिर पूजा की महत्ता को दर्शाया। जैन धर्म के पुराणों और अन्य साहित्य में इस पर बल दिया गया कि आदिनाथ के उपासकों को शत्रुओं, बीमारियों एवं बुरी आत्माओं पर विजय प्राप्त करनी चाहिये।

प्रारम्भिक मध्यकाल में तन्त्रवाद ने अन्य धर्मों की भांति जैन धर्म पर भी अपना प्रभाव डाला। फलस्वरूप, जैन धर्म ने यक्षों तथा यक्षियों (तीर्थाकारों के देव एवं देवियां) के लिये देवालयों का निर्माण किया और इसी के साथ कुछ मन्त्रों (जादुई मन्त्र) को विकसित किया जिससे कि उनको तुष्ट किया जा सके। जैन तान्त्रिक ग्रंथों में जिनमें जादूई तथा आश्चर्य चकित तत्वों को शामिल किया गया, तथा उनके पद्मावति, अम्बिका, सिद्धायिका और ज्वालामालिनी जैसी यक्षियों के सम्प्रदाय की भी महिमा की गई। ऐसा विश्वास किया जाता था कि ये यक्षियां अपने भक्तों को दिव्य शक्तियां प्रदान करती थीं। जैन धर्म के यपानिया सम्प्रदाय ने प्रारम्भिक मध्य काल के कर्नाटक में तान्त्रिक रीति की पूजा का काफी प्रचार किया।

बोध प्रश्न 2

1) तन्त्रवाद की मुख्य विशेषताओं का विवरण 10 पंक्तियों में दीजिये।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) तन्त्रवाद के अन्य गैर सनातनी या वाममार्गी धर्मों के साथ सम्बंधों की विवेचना कीजिये। उत्तर दस पंक्तियों में दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

39.7 सारांश

इस इकाई में आप देख चुके हैं कि ब्राह्मण धर्म ने किस प्रकार से अन्य देवताओं के बढ़ते महत्व को स्वीकार किया और किस भांति से लोकप्रिय देवताओं को अपने में मिला लिया। भक्ति सम्प्रदाय का उद्‌भव विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों से हुआ और दक्षिण भारत में वह ताकतवर सम्प्रदाय बन गया। इसने जाति नियमों की अनदेखी की और भक्ति आन्दोलन के अन्तर्गत ब्राह्मण धर्म की तुलना में महिलाओं का दर्जा ऊंचा था। इसी काल में महिला देवताओं (देवियों) की संख्या में भी विशेषकर तान्त्रिक सम्प्रदाय में वृद्धि हुई। तन्त्रवाद की अनेक क्रियायें अन्य धर्मों में भी प्रवेश कर गईं।

39.8 शब्दावली

आलवारः प्रारम्भिक मध्यकाल के तमिल देश के वैष्णव सन्तों को कहा जाता था तथा उनकी पारम्परिक संख्या 12 थी (छठी सदी से नौवीं सदी ई. तक)।

भागवत : वासुदेव—कृष्ण का भक्त

ब्राह्मण धर्म : ब्राह्मण के नेतृत्व में यह एक संहिताबद्ध धर्म है। सिद्धांत रूप से यह सदैव वैदिक अनुष्ठानों की सर्वोच्चता को बनाये रखता है, इसने भक्ति, कबीलाई देवताओं एवं कबीलाई अनुष्ठानों को अपना लिया।

वाममार्गी सम्प्रदाय : वह सभी धर्म जिन्होंने ब्राह्मण धर्म को चुनौती दी, जैसे जैन मत, बौद्ध मत, आजीविका मत आदि।

मुरूगन : प्रारम्भिक तमिलों का यह एक कबीलाई देवता था। तीसरी-चौथी सदियों ई. के आस पास ब्राह्मणों ने इसको स्कन्द कार्तिकेय का अवतार बना दिया।

नयनार : तमिल देश के प्रारम्भिक मध्य काल में शैव भक्ति सम्प्रदाय के संत थे। इनकी संख्या 63 थी और उनमें से कुछ भक्ति गीतों के महान् कवि भी थे।

निर्वाण : वाममार्गी धर्मों के अनुसार आत्मा की मुक्ति।

पशुपत : शिव या पशुपति के भक्त। इस सम्प्रदाय की उत्पत्ति उत्तर में हुई और इसकी कुछ विशेषतायें थीं।

शैव मत : ऐसा कोई भी सम्प्रदाय जिसके अनुसार शिव को सर्वोच्च देवता माना जाता हो। शैव मत में स्थानीय विभिन्नतायें हो सकती हैं।

तन्त्रवाद : एक ऐसा धर्म जिसकी उत्पत्ति अनार्य कबीलाई क्षेत्रों में आदिम जनन (प्रजनन) संस्कारों से हुई।

वैष्णव मत : एक ऐसा धर्म जिसमें सर्वोच्च देवता विष्णु हो।

वेलान बेरियावल: यह सम्प्रदाय आदिम तमिल कबीलों के मुरुगन देवता पर केन्द्रित अति प्राचीन आवेगपूर्ण रहस्यवादी सम्प्रदाय था।

यज्ञ : जटिल अनुष्ठान जिनके अन्तर्गत अति खर्चीले पशुओं की बलि देना शामिल था और उत्तर वैदिक काल में प्रचलित था।

39.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए उपभाग 39.2.3
2) देखिये भाग 39.3 और 39.4

बोध प्रश्न 2

1) देखिये उपभाग 39.6.1
2) देखिये उपभाग 39.6.2